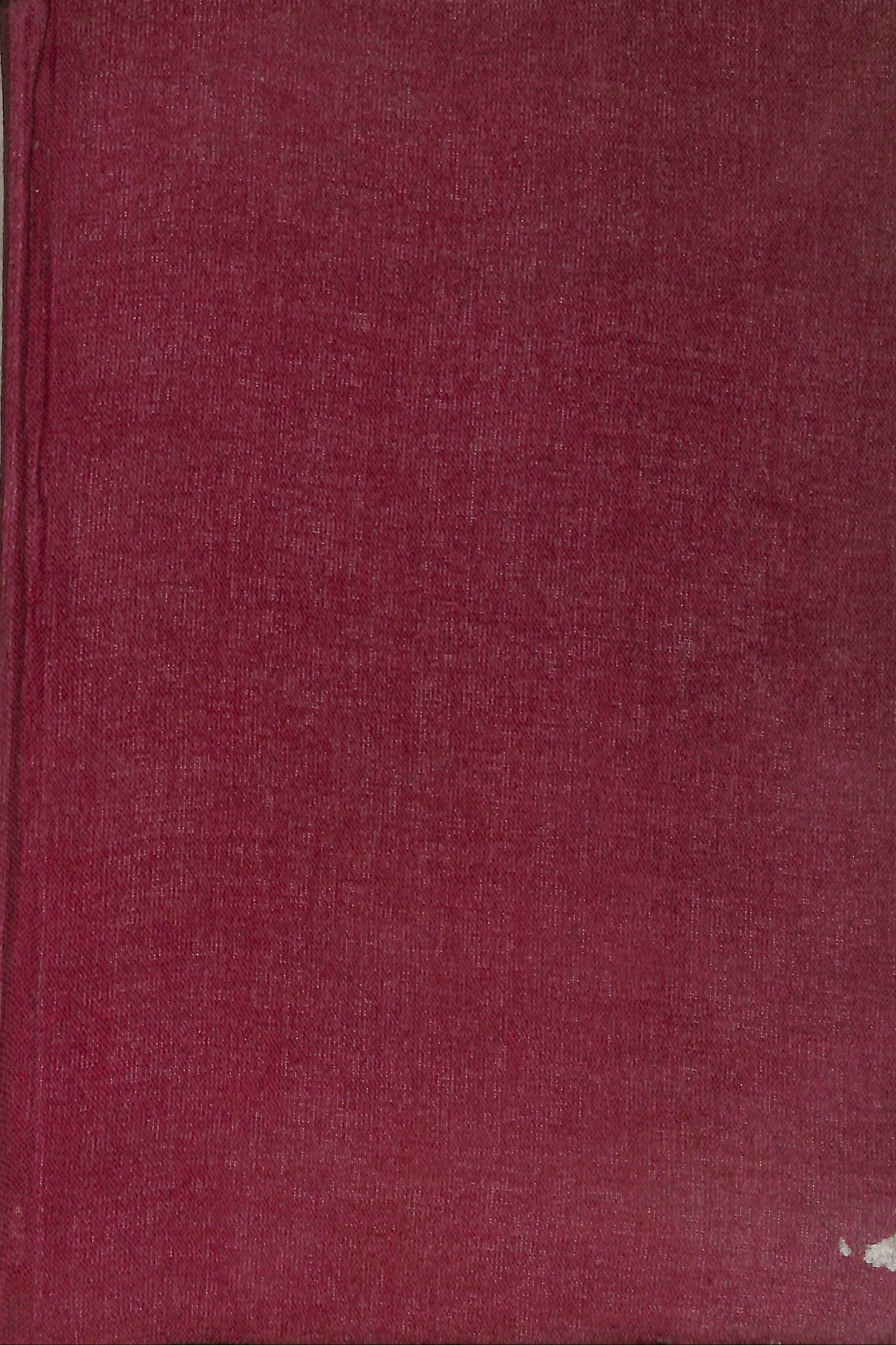
कालिका पुराणम्

KĀLIKĀ PURĀṆAM



सम्पादक

आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी



नवशक्ति ग्रन्थमाला - ५

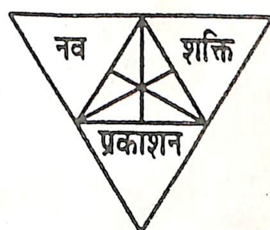
कल्याणी हिन्दी टीका

कालिकापुराणम्

(कालिकाखण्ड)

सम्पादक/टीकाकार

आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी



नवशक्ति प्रकाशन,

चौकाघाट, वाराणसी

२००६ ई.

प्रकाशक :
नवशक्ति प्रकाशन
जे० १३/२४ के० चौकाघाट, वाराणसी-२
दूरभाष : ०५४२-२२०२२३७, ०९३३६९३७७२६

I.S.B.N. 81-87904-06-2

प्रथम संस्करण : २००६

मूल्य : ३५०/-

अक्षर विन्यास :
न्यूमाप्रॉस कम्प्यूटर्स
चौकाघाट, वाराणसी-२
मो. ०९८३८९२७०९५

मुद्रक :
प्रभा प्रेस
चौकाघाट, वाराणसी-२
दूरभाष : ०५४२ - २२०२२३७

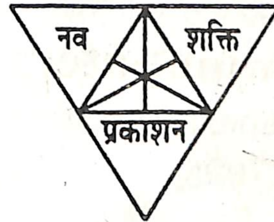
Navshakti Granthmala - 5

Kalyāṇī Hindī Tīkā

KĀLIKĀPURĀṆAM

(KĀLIKĀKHAṆD)

Edited & Translated
By
Acharya Mrityunjay Tripathi



NAVSHAKTI PRAKASHAN
CHOUKAGHAT, VARANASI-221002

2006

Published By :
Navshakti Prakashan
J. 13/24 k.
Choukaghat, Varanasi - 2
Phone : 0542-2202237, 09336937726

I.S.B.N. 81-87904-06-2

First Edition : **2006**

Price : Rs. 350/-

Composed By :
Numaproce Computers
Choukaghat, Varanasi-2
Mobile : 09838927095

Printed By :
Prabha Press
Choukaghat, Varanasi-2
Phone : 0542-2202237

प्रकाशकीय

शक्तिसाधना एवं देवीमाहात्म्य के अंश ब्रह्मवैवर्तपुराण, नारदीयपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वाराह पुराण, कूर्मपुराण, बृहद्धर्मपुराण में आंशिक रूप से तथा देवीभागवत, महाभागवत एवं कालिकापुराण में मुख्य रूप से पाये जाते हैं। शक्तिसाधना या तो दुरूह अथवा गोपनीय मानी जाती रही है। नवशक्ति प्रकाशन इसे मातृकृपास्वरूप मान, प्रचारित एवं प्रसारित करने की दृष्टि से अपना मुख्य लक्ष्य मान कर इस कालिकापुराण को प्रकाशित कर रही है। इसी दृष्टि से बृहद्देवीसूक्तम्, महाभागवत उपपुराण, दिव्यचण्डीक्रमादुर्गासप्तशती, त्रिकूटारहस्य नामक ग्रन्थों के प्रकाशन हुए हैं।

शक्ति के आदि स्वरूप कालिका एवं उनके परिवार से सम्बन्धित कथानकों का विशद् वर्णन तथा उनके विविध रूपों की पूजापद्धति, न्यासविधान, उत्सवों आदि के वर्णन के कारण शाक्तपुराणों में कालिकापुराण का विशिष्ट स्थान है। यह मार्कण्डेयपुराण का पूरक भी है।

इस प्रकार का ग्रन्थ जनसामान्य तक सहजता से पहुँच कर उनकी जिज्ञासा को सन्तुष्ट कर सके, इसी दृष्टि से प्रकाशन ने अपनी परंपरा के अनुसार कालिकापुराणम् का हिन्दीटीका सहित प्रकाशन किया है।

इसके प्रकाशन में सहयोगी टीकाकार एवं सम्पादक, मुद्रक तथा पाठक एवं प्रयोक्ता, प्रकाशक की ओर से सभी साधुवाद के पात्र हैं।

रक्षाबन्धन २०६३ वि. **लोकेश कृष्ण त्रिपाठी**

***

अपनी बात

नमामि ते कालि पदारविन्दं
त्वामाश्रयामि प्रणमामि नित्यम् ।
ध्यायामि गायामि वदामि नित्यम्
एवं कुरु त्वं मम चित्तवृत्तिम् ।।

वेदों के पश्चात् सर्वाधिक महत्त्व पुराणों को ही प्राप्त है । ये इनके अर्थ-बोध कराने वाले वे साधन हैं जो अपने लेखन के पूर्व से ही विद्वानों और जनसामान्य दोनों में ही समादृत हैं तथा अपनी समकालीन परम्पराओं और विचारों को समाहित कर आज भी भारतीय ज्ञान-विज्ञान को सुरक्षित रूप से क्रमशः आगे बढ़ा रहे हैं । ये धर्म, दर्शन, राजनीति, भूगोल, इतिहास, कला इत्यादि समस्त ज्ञानों के लोकप्रिय स्तवक हैं ।

पुराणसाहित्य मुख्यतः दो वर्गों में बाँटा गया है–

(१) महापुराण, (२) उपपुराण– इन दोनों में आलोचक १८-१८ पुराणों को सम्मिलित करते हैं। कल्याण के हिन्दू संस्कृति अङ्क में १८ महापुराण २६ उपपुराण और दो को १८ के अतिरिक्त महापुराणों की कोटि का ग्रन्थ बताया गया है। इस प्रकार ४६ पुराण साहित्य वर्णित हैं। उपर्युक्त दो वर्गों के अतिरिक्त औपपुराण नामक पुराणों का एक तीसरा वर्ग भी मिलता है जिसमें १८ ग्रन्थों का उल्लेख है। स्वामी ज्ञानानन्द जी के अनुसार पुराणशास्त्र, महापुराण, पुराण, उपपुराण, औपपुराण, इतिहासपुराणसंहिता इन पाँच भागों में विभक्त है।

महापुराण, उपपुराण और औपपुराण, तीनों वर्गों में पुराणों के ५४ ग्रन्थ स्वीकृत हैं। वर्गों के नामकरण में महापुराण, पुराण एवं उपपुराण नामकरण उचित प्रतीत होता है। सभी प्रकार के पुराण एक ही पुराणसंहिता के अंश हैं जिसे महर्षि व्यास ने अपने रोमहर्षण नामक शिष्य को पढ़ाया था।

यद्यपि शिवपुराण की उमासंहिता में महापुराणों की संख्या २६ बताई गई है किन्तु प्राचीन काल से महापुराणों या पुराणों की १८ संख्या निर्विवाद रूप से मानी जाती रही है।

अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः ।
चतुर्भिभगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः ।।

स्कन्दपुराण के इस श्लोक के अनुसार अठारह पुराणों में दो पुरांण देवी सम्बन्धी हैं । यदि देवीभागवत को महापुराणों की श्रेणी में न गिनें तो मार्कण्डेय

पुराणान्तर्गत ७८-९० तक १३ अध्यायों का देवीमहात्म्य, ब्रह्माण्डपुराण का ललितोपाख्यान, ब्रह्मवैवर्तपुराण का प्रकृतिखण्ड, नारदीयमहापुराण के ८३ से ८९ तक के सात अध्यायों में विशेषकर तथा वाराह, कूर्मादि कई पुराणों में शक्तिसाधना के बीज पाये जाते हैं। देवीभागवत, देवीपुराण, महाभागवत, कालिकापुराण, प्रसिद्ध शाक्त- पुराण हैं जिनमें देवीभागवत और महाभागवत स्वयं को ही महापुराण मानते हैं। देवीपुराण और कालिकापुराण अपने मूलरूप में प्रकाशित भी हो चुके हैं। शक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन महाभारत के तीन स्तोत्रों में भी देखने को मिलता है।

महापुराणों में शक्तिसम्बन्धी महापुराण हो न हो किन्तु उपपुराणों में कालिकापुराण निश्चित रूप से एक महत्वपूर्ण शाक्त उपपुराण है। यद्यपि हेमाद्रि ने अपने "चतुवर्गचिन्तामणि" में इसे ही मूल "भागवत" कहा है—

शैवं यद्वायुना प्रोक्तं वैरिञ्चिं वैष्णवं तथा ।
यदिदं कालिकाख्यातं मूलं भागवतं स्मृतम् ।।

चतुवर्गचिन्तामणि भाग १ पृ० ५३१

इससे कालिकापुराण देवीभागवत का ही अपर नाम प्रतीत होता है जो महापुराणों में चर्चित है। इसकी पुष्टि चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा द्वारा सम्पादित 'चरित्रकोश' में कालिकापुराण के सम्बन्ध में लिखे निम्नलिखित व्क्तव्य से होता है—

इस पुराण में देवीमाहात्म्य वर्णित है और यह पुराण देवीभागवत के अन्तर्गत समझा जाता है। देवीभागवत का पाचवाँ स्कन्ध ही कालिकापुराण कहा जाता है। देवीभागवत से समता के कारण ही इसे सम्भवतः महापुराण माना गया है किन्तु शर्मा जी इसे स्पष्ट शब्दों में उपपुराण घोषित करते हैं—

"कालिकापुराण उपपुराण माना जा सकता है" चरित्रकोश, हेमाद्रि से एक शताब्दी पूर्व के लक्ष्मीधर ने अपने कृत्यकल्पतरु नामक ग्रन्थ में लिखा कि—

अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत्तु दृश्यते ।
विज्ञानीध्वं मुनि श्रेष्ठास्तदेतेभ्यो विनिर्गतम् ।।

कृत्यकल्पतरु, खण्ड १, पृ०३०

कालिकापुराण १८ पुराणों से भिन्न है। अतः उपर्युक्त कथन के आधार पर यह महापुराणों से विनिर्गत एक पुराणग्रन्थ सिद्ध होता है। ऐसे ग्रन्थों को पुराणों में उपपुराण कहा गया है—

महापुराणान्येतानि अष्टादश महामुने ।
तथा चोपपुराणानि मुनिभिः कथितानि च ।।

विष्णुपुराण ३/६/२४

इससे यह एक उपपुराण ही सिद्ध होता है। चण्डेश्वर ने अपने 'दान सागर' नामक ग्रन्थ में इसका नाम उपपुराणों के ही सन्दर्भ में लिया है—

उक्तान्युपपुराणानि व्यक्त दानविधानिच ।
आद्यं पुराण साम्बं च कालिकाह्वयमेव च ।।

दानसागर पृ० ३

समस्त पुराणसूचियों में कालिकापुराण को उपपुराणों के श्रेणी में ही रखा गया है जहाँ अधिकांश तालिकाओं में इसे १२वाँ स्थान ही दिया गया है।

यहाँ कालिकापुराण के पुराणत्व पर विचार करने के दो आधार हैं—

(१) कालिकापुराण एक स्वतंत्र पुराण है अथवा यह किसी अन्य शाक्तपुराण का अपर नाम या रूप है ? इस दृष्टि से हेमाद्रि इसे अपने चतुवर्गचिन्तामणि में महापुराणों की श्रेणी में आये भागवत महापुराण का अपर रूप मानते हैं किन्तु भागवत के शक्तिसाधनापरक रूप को देवीभागवत कहते है। देवीभागवत का महापुराणत्व अपने आप में ही विवादास्पद है। वह ब्रह्मावैवर्तपुराण के प्रकृतिखण्ड को अपने में समाहित किये है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में कृष्णचरित की प्रधानता है तथा उनकी जीवनसङ्गिनी राधा के महत्व को ही दर्शाया गया है। कालिकापुराण शिव से सम्बन्धित कालिका के ही एक रूप, सती से सम्बन्धित है। अत: यह किसी महापुराण का अपर रूप हो नहीं सकता। इसलिए यह महापुराणों की श्रेणी में नहीं गिना जा सकता। यद्यपि यह पुराण अपनी गुणवत्ता में महापुराणों की टक्कर लेता अवश्य दिखायी देता है।

(२) यदि यह उपपुराण है तो उपपुराणों की भी दो कसौटियाँ बताई गई हैं— (क) वे १८ महापुराणों की तालिका से भिन्न हों (ख) उनमें से किसी भी एक से विनिर्गत हो।

कालिकापुराण १८ महापुराणों से भिन्न है यह निर्विवाद है। इस आधार पर तो इसे उपपुराण माना जा सकता है। किन्तु यह किस महापुराण से विनिर्गत है ? यह एक विचारणीय विषय है। हम देख चुके हैं कि चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा ने अपने चरित्रकोश में इसे देवीभावगत के पञ्चमस्कन्ध का ही अन्य नाम घोषित कर देवी भागवत से विनिर्गत सिद्ध करते हुए लिखा है कि "कालिकापुराण उपपुराण माना जा सकता है"। उन्होंने महिषासुरवध की कथा को इसके पञ्चमस्कन्ध का अपर रूप होने का मुख्य आधार माना है जो इसके ६०वें अध्याय में दुर्गापूजन प्रसङ्ग में आई है किन्तु देवीभागवत के महापुराणत्व सम्बन्धी पूर्ववर्ती तर्क यहाँ भी बाधक हैं। शिवपुराण से भी इस पुराण के कुछ अंशो की समानता है किन्तु शिवपुराण का महापुराणत्व भी निर्विवाद नहीं है। ऐसी परिस्थिति में यह किस महापुराण से उद्धृत हो सकता है?

१८ महापुराणों में मार्कण्डेयपुराण ही एक ऐसा पुराण मिलता है जिसमें मार्कण्डेय मुनि ने १३ अध्यायों में देवीमाहात्म्य का चरितकथन और पूजा- विधान सहित व्यवस्थित वर्णन किया है। उमा हैमवती के पार्वती रूप में ८२वें अध्याय में स्नानार्थ आकर देवताओं को वर देने के प्रसंङ्ग और अपने रचना विधान से मार्कण्डेयपुराण का देवी माहात्म्य बहुत अंशो में कालिकापुराण का बीजरूप प्रतीत होता है। परन्तु क्या यह मार्कण्डेय पुराण से विनिर्गत माना जा सकता है ?

नि:सन्देह मार्कण्डेयपुराण में देवी माहात्म्य की प्रधानता है। इसमें नौ हजार श्लोक होने चाहिए थे किन्तु वर्तमान में उपलब्ध प्रति में ६९०० श्लोक ही उपलब्ध होते हैं। शेष २१०० श्लोक कालिकापुराण को मिला लेने पर पूर्ण हो जाते हैं। संख्या की दृष्टि से तो यह मार्कण्डेयपुराण से सम्बन्धित प्रतीत होता ही है सम्वाद और शाक्तदृष्टि से भी काली से सम्बद्ध होने के कारण भी यह मार्कण्डेयपुराण का अवशिष्टभाग प्रतीत होता है। दोनों के ही वक्ता मार्कण्डेय मुनि हैं। मार्कण्डेयपुराण के मुख्य श्रोता, जैमिनी हैं तो कालिकापुराण के कमठ। पौराणिक कोशकार राणा प्रसाद शर्मा ने अपने कोश के पृष्ठ १०७ पर ९००० श्लोक और ९८ अध्यायों से समृद्ध कालिकापुराण को संख्याबल में मूल मार्कण्डेयपुराण का अपर रूप ही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। आज उपलब्ध कालिकापुराण में ९० अध्याय ही हैं। जिनमें २१ सौ से कुछ अधिक श्लोक हैं। यदि शेष ८ अध्याय मिल भी जायँ तो उनमें से ७०० श्लोक की सम्भावना कदापि सम्भव नहीं है अत: कालिकापुराण की भागवत से समरूपता की भाँति ही यह भी मार्कण्डेयपुराण की समरूपता के भ्रम में निर्धारित मान्यता के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

कालिकापुराण उपर्युक्त विश्लेषण से मार्कण्डेयपुराण से सम्बद्ध एक उपपुराण सिद्ध होता है यद्यपि अन्य सम्बद्ध उपपुराणों की चर्चा में इस सम्बन्ध का उल्लेख नहीं मिलता। सम्भव है शाक्तपुराणों की उपेक्षा के कारण ही इस विवेचन की ओर दृष्टि न गई हो।

स्वयं कालिकापुराण अपने को पुराण ही मानता है—

इति वं कथितं पुण्यं पुराणं कालिकाह्वयम् ।।

कालिकापुराण ९०/२९

महापुराणों की तुलना में उपपुराण ही पुराण कहे जा सकते हैं। तात्पर्य यह कि कालिकापुराण शक्तिसाधनापरक उपपुराणों में सर्वमान्य उपपुराण है जिसके उद्धरणों से अवान्तर विद्वानों ने अपनी कृतियों को विभूषित किया है। मार्कण्डेयपुराण इसका बीजरूप प्रतीत होता है।

नामकरण—

उपपुराणों की सूची में इसका नाम कालिकापुराण ही आया है यद्यपि स्कन्दपुराण की सौर एवं सूतसंहिताओं में कालीपुराण ही कहा गया है। वरुणपुराण में इसे कालीयपुराण भी कहा गया है। इस पुराण के मुख्यत: दो नाम पाये जाते है— (१) कालिकापुराण (२) कालीपुराण। कालीयपुराण भी कालीपुराण का ही अर्थ प्रकट करता है। कालिकापुराण का अर्थ हुआ कालिका सम्बन्धी पुराण और कालीपुराण का अर्थ होता है काली सम्बन्धी पुराण। इस प्रकार पुराण की वर्णिता मुख्यनायिका कालिका या काली और उनके इस पुराण में वर्णन पर विचार करना चाहिए। सामान्यत: "कालिका" और "काली" एक ही शक्ति के विभिन्न नाम या एक ही शब्द के पर्याय प्रतीत होते हैं किन्तु पुराणों में ये दोनों शब्द दो भिन्न रूपों के लिये प्रयुक्त हुए हैं।

(१) मार्कण्डेयपुराण के अनुसार कालिका, पार्वती का ही अपर रूप है—

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत् साऽपि पार्वती ।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ।।

मार्कण्डेयपुराण ८२/४४

अर्थात उस (कौशिकी देवी) के निकल जाने के बाद वही पार्वती काले रंग की हो गई और वे 'कालिका' नाम से प्रसिद्ध हुईं। परन्तु उसी पुराण में काली के प्राकट्य के विषय में लिखा है—

ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन्प्रति ।
कोपेन चास्या वदनं मसीवर्णमभूत्तदा ।।
भ्रुकुटी कुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम् ।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ।।

वही ८४/४-५

तब क्रोधित उस (अम्बिका/पार्वती) की टेढ़ी भौहों के मध्यललाट-फलक से शीघ्र ही काली प्रकट हुईं।

तात्पर्य यह कि कालिका से ही काली का प्राकट्य हुआ।

इन दोनों के कार्य में भी भिन्नता है। कालिका धूम्रलोचन, शुम्भ-निशुम्भ तथा रक्तबीज का वध करती है तो काली चण्ड-मुण्ड का। कालिका का अपर नाम चण्डिका है तो काली का चामुण्डा।

(२) इसी प्रकार नारदीयपुराण भी कालिका और काली में अन्तर स्पष्ट करता है—

वाग्देवतावतसिन्यः कालिकेति प्रकीर्तिता ।।

नारदीयपुराण पू०ख ८५/१

कालिका वाग्देवता का अवतार है। काली उसकी नित्याओं में एक नित्या है।

कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम् ।
विप्रचित्तां च षट्कोणे नवकोणे ततोऽर्चयेत् ।।
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां नीलाधानां बलाकिकाम् ।
मात्रां मुद्रां तथा मित्रां पूज्याः पत्रेषु मातरः ।।

वही १२-१/२-१४-१/२

तान्त्रिक पूजापद्धतियों में भी काली को कालिका की १५ शक्तियों में से एक शक्ति बताया है जो नारदीयपुराण के उपर्युक्त कथन की ही पुष्टि करता है। विविधपुराणों में वर्णित कालिका और काली दोनों के ध्यान में भी अन्तर है—

'कालिका' देवी का ध्यान— (नारदीयपुराण के अनुसार)

शिरःकृपाणमभयं वरं हस्तैश्च विभ्रतीम् ।
मुंडस्त्रङ्मस्तकां मुक्तकेशां पितृवनस्थिताम् ।
सर्वालंकृतवर्णा च श्यामांगी कालिकां स्मरेत् ।।

नारदीयपुराण ८५/६/७

इसके अनुसार कालिका देवी हाथो में शिर, कृपाण, वर और अभय मुद्राएँ धारण की हुईं, मस्तक पर मुण्डमाला धारण किये हैं। वे मुक्तकेशों वाली, पितृवन (श्मशान) में स्थित रहने वाली, श्याम (काले) शरीरवाली सभी प्रकार से अलंकृतवर्ण वाली हैं।

'काली' देवी का ध्यान मार्कण्डेयपुराण के अनुसार–

काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ।
विचित्र षट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा ।।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसाति भैरवा ।
अतिविस्तारवदना जिह्वाललन भीषणा ।।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ।

मार्कण्डेय पु० ८४ (६-७)

अर्थात् काली, भयंकरमुँहवाली, तलवार एवं खट्वाङ्ग धारण करने वाली, मनुष्यों की माला से सुशोभित, हाथी के चमड़े का वस्त्रधारिणी, माँसरहित,भयानक, अत्यन्त विस्तृत मुँह से युक्त, भीषण लाल-लाल नेत्रों वाली अपनी आवाज से सभी दिशाओं को भरने वाली हैं।

कोशकारों ने भी इस सम्बन्ध में दोनों की भिन्नता दिखाई है।

पं० रामावतार शर्मा रचित

वाङ्मयार्णव के श्लोक १३३८ के अनुसार—

काली मृडान्यामेकस्यां शम्भोर्नवसु शक्तिषु ।
प्रसहाख्य बृहत्यां भ्रुकुटौ कृष्णानवाम्बुदौ ।।

वाङ्मयार्णव १३३८

काली, मृडानी की नवशक्तियों में से एक हैं जो काले नये बादल के समान हैं।

अमरकोष अपने नानार्थवर्ग में कालिका को चण्डिका का एक भेद मानता है।

वही **"उमाकात्यायनी गौरी काली हैमवतीश्वरा"**। अमरकोष स्वर्गवर्ग ३६।

लिखकर काली को उमा (पार्वती) का पर्याय बताया है। वाचस्पत्यम् भी काली को उमा का पर्याय मानता है।

इस प्रकार महापुराण कालिका को पार्वती का ही एक रूप तथा काली को उनकी शक्ति मानते हैं। वाङ्गमयार्णव भी इसी का समर्थन करता है किन्तु वाचस्पत्यम् और अमरकोष काली को भी पार्वती का पर्याय मानते हैं। अमरकोष कालिका को चण्डिका का ही एक भेद मानता है।

अब कालिकापुराण में प्रधानता कालिका के स्वरूप की है या काली के इस दृष्टि से विचार करने पर दिखाई देता है कि— कालिकापुराण में सती का ही चरित, विस्तारपूर्वक वर्णित है और यही सती दक्षप्रजापति की वह पुत्री है जो दक्ष की तपस्या से प्रसन्न हो उन्हें 'कालिका' रूप से प्रत्यक्ष दर्शन देती है। उस समय का चित्रण इस प्रकार है—

सिंहस्थां कालिकां कृष्णां पीनोत्तुंगपयोधराम् ।
चतुर्भुजां चारुवक्त्रां नीलोत्पलधरां शुभाम् ।।
वरदाभयदां खड्गहस्तां सर्वगुणान्विताम् ।
आरक्तनयनां चारुमुक्तकेशां मनोहराम् ।।

कालिकापुराण- ८/९-१०

देवी काले रंग वाली पुष्ट और उँचे स्तनों से युक्त हैं। वे चार भुजाओं को धारण करने वाली, सभी गुणों से युक्त हैं, उन्होंने अपने हाथों में वरद, अभय मुद्रायें, खड्ग तथा नीलकमल धारण किया है। वे खुले केशों तथा लालनेत्रों से सुशोभित, सुन्दरमुँह और मनोहर रूपवाली हैं।

यह रूप नारदीयपुराण की कालिका का ही है क्यों कि वे अपने चारों भुजाओं में कृपाण, अभय एवं वरद मुद्रायें धारण की हुई, मुक्तकेशी श्यामांगी हैं। भेद यही है कि उन्होंने नीलकमल के स्थान पर मनुष्य का शिर धारण किया है।

तंत्रग्रन्थों में भी कालिका का यही स्वरूप वर्णित है—

करालवदनां घोरां, मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्॥
सद्यछिन्नशिरःखड्गवामोर्ध्वकराम्बुजाम्।
अभयं वरदं चैव, दक्षिणाधोर्ध्वपाणिकाम्॥

तात्पर्य यह कि 'कालिका' ही कालिकापुराण का प्रतिपाद्य है। अतः इस पुराण का नामकरण कालिकापुराण ही उपयुक्त जान पड़ता है यद्यपि इस पुराण में कालिका को पार्वती का पर्याय मानकर काली नाम से भी सम्बोधित किया है। क्योंकि स्वयं इस पुराण के आरम्भिक और अन्तिम भाग में भी इसे कालिकापुराण ही कहा गया है—

आरम्भ में मङ्गलाचरण के रूप में—

ईश्वरं जगतामाद्यं प्रणम्यपुरुषोत्तमम्।
नित्य ज्ञानमयं वक्ष्ये पुराणं कालिकाह्वयम्॥

कालिकापुराण १/३

और अन्त में—

इतिवःकथितं पुण्यं पुराणं कालिकाह्वयम्।

कालिकापुराण ९०/२९

यद्यपि डा० श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने अपने भारतीय वाङ्मयकोश में एक अन्य कालीपुराण नामक उपपुराण का भी उल्लेख किया है।

कालिकापुराण का स्वरूप-

पुराण के विस्तृत साहित्य में कालिकापुराण की अत्यधिक ख्याति है। शक्तिपूजा का आश्रय ले लिखे गये पुराणों में इसका अप्रतिम स्थान है। धर्मशास्त्री हेमाद्रि आदि निबन्धकारों ने इस पुराण के अपने ग्रन्थ से सम्बन्धित प्रसङ्गों को बड़ी श्रद्धा तथा आदर सहित उद्धृत कर अपने कथन की पुष्टि की है। इनमें से लक्ष्मीधर, अपरार्क, बल्लाल सेन, हेमाद्रि, श्रीदत्त उपाध्याय, चण्डेश्वर, मदनपाल, माधवाचार्य,

विद्यापति, वाचस्पति मिश्र, मदन सिंह देव, रुद्रधर, नरसिंह वाजपेयी द्वारा उद्धृत अंश वर्तमान में उपलब्ध, श्री विश्वनारायण शास्त्री द्वारा सम्पादित कालिकापुराण की प्रति में नहीं मिलते। वहीं विद्यापति ने अपनी दुर्गाभक्तितरंगिणी में तथा शूलपाणि, श्रीनाथ आचार्य, गोविन्दानन्द, रघुनन्दन, कृष्णानन्द आगमवागीश गदाधर, मित्र मिश्र, अनन्त भट्ट, कमलाकर भट्ट, नन्दन पण्डित जैसे निबन्धकारों द्वारा गृहीत उद्धरण मिलते हैं। इससे यह धारणा बनती है कि कालिकापुराण के दो रूप होने चाहिए। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने **भारतीय साहित्य का अनुशीलन नामक ग्रन्थ** में संकलित कालिकापुराण शीर्षक निबन्ध में भी बलराम शास्त्री भारद्वाज से अवलोकनार्थ प्राप्त वर्तमान कालिकापुराण से भिन्न कालिकापुराण का उल्लेख किया है।

इस प्रकार कालिकापुराण के दो रूप स्पष्टत: प्रतीत होते हैं। वर्ण्यविषय और कथोपकथन दोनों ही दृष्टियों से दोनों रूपों में पर्याप्त भेद है। प्राचीन प्रति में काली शिव की शक्ति हैं तो नयी में वैष्णवी योगमाया हैं। इससे स्थूलदृष्टि में प्राचीन प्रति में शिव की प्रधानता है तो नवीन में विष्णु की।

वर्तमान पुराण में ९० अध्याय हैं। जिनमें से ग्रन्थ के पूर्वार्ध में देवी-चरित की प्रधानता है तो उत्तरार्ध में कामाख्यामाहात्म्य के साथ तान्त्रिक पूजा-विधानों की। पूर्वार्ध में तप की प्रधानता है तो उत्तरार्ध में पूजन एवं बलिदान की। इसी आधार पर कुछ विद्वान् ४५ अध्यायों तक के कालिकापुराण को ही मूल पुराण तथा उत्तरार्ध को प्रक्षिप्त अंश मानते हैं।

वर्तमान महापुराण के मङ्गलाचरण में विष्णु की प्रार्थना, ब्रह्मा पर कुपित शिव को मनाने के लिये विष्णु द्वारा शिव को समझाने के दृश्य, इसे विष्णु समर्थक दिखाते हैं किन्तु समग्र पुराण तो शिव और उनके परिवार से सम्बन्धित बातों का ही चरित-चित्रण है। ग्रन्थ के पूर्वार्ध में देवीचरित और उत्तरार्ध में उनसे सम्बद्ध पूजा विधियों के वर्णन भी एक दूसरे के पूरक हैं। अत: उपर्युक्त आधारों पर कालिकापुराण के दो रूपों की उपस्थिति मानना उचित नहीं प्रतीत होता।

कालिकापुराण का पूर्वार्ध, सती (कालिका) चरित है तो उत्तरार्ध कालिका की संतातियों का ही चरित है इस प्रकार सम्पूर्ण कालिकापुराण सती और शिव से सम्बद्ध एक महान उपपुराण है। जिसका प्रत्येक भाग परस्पर एक उत्तम माला की भाँति सुन्दर ढंग से गुँथा हुआ है। क्योंकि इसका सतीचरित अपनी पूर्वपीठिका के सहित सती के नवीन रूप पार्वती के चरित से जुड़ता है। पार्वतीचरित का चरमोत्कर्ष

अर्धनारीश्वररूप की प्रतिष्ठा में होता है तथा उसके रूप के रहस्यवेत्ताओं के रूप में पार्वती के पुत्रों नन्दि, भृंगी, वेताल और भैरव के चरितवर्णन से पुराण को पूर्णता प्रदान करता है। दो कालिकापुराण मानने वाले विद्वान् कथोपकथन की दृष्टि से भिन्नता देखते हैं। क्योंकि इसके पूर्वार्ध में मार्कण्डेय मुनि मुख्यवक्ता हैं तथा उत्तरार्ध के प्रसङ्ग औौर्वसागर सम्वाद के रूप में वर्णित हैं। किन्तु ग्रन्थ का प्रारम्भ और समापन दोनों मार्कण्डेयमुनिसंवाद से हुआ है। अत: मध्य के और्वसागर संवाद से पुराण की एकरूपता में अन्तर नहीं आता। मार्कण्डेयपुराण का देवी माहात्म्य अर्थात् 'दुर्गासप्तशती' का आरम्भ और अन्त मार्कण्डेय मुनि के कथोपकथन से है तथा मध्य में सुमेधा मुनि और सुर या राजा तथा समाधि के संवाद से भी उसकी एकरूपता पर कोई सन्देह नहीं होता जबकि उसमें देवी के तीन अलग-अलग चरितों का वर्णन उपलब्ध होता है। अत: संवाद की भिन्नता एकरूपता में बाधक नहीं होती।

यह सम्पूर्णग्रन्थ, पूर्णशक्तिस्वरूप काली और उनके सहचर शिव की ही श्रेष्ठता एवं ज्येष्ठता को प्रतिपादित करता है। शिव का वह रूप, शरभरूप, महाभैरवरूप या चन्द्रशेखर के रूप में ही क्यों न हो। अनायास ही उत्पन्न ब्रह्मा की पुत्री सन्ध्या, तपबल से अरुन्धती के रूप में जन्म लेती है। वह ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ से विष्णुमंत्र की दीक्षा लेती है तथा पतिरूप में उनका वरण करती है। ये वशिष्ठ पुराण के पूर्वार्ध में अरुन्धती के उपदेष्टा, पति, तथा नरकासुरचरित में कामरूप की पीठाधीश्वरी कामाख्या के श्रेष्ठ उपासक हैं। वे ही उत्तरार्ध में वेताल एवं भैरव के प्रति समग्र उपासना पद्धतियों के निदेशक भी हैं। उत्तरार्ध का कामाख्यामाहात्म्य पूर्वार्ध के पीठोत्पत्ति और नरकासुर प्रसङ्ग से आबद्ध है।

इस आधार पर इस पुराण की आराध्या, अपने परिवार सहित सती (कालिका या कामाख्या), आराधक वशिष्ठ, वक्ता मार्कण्डेय तथा श्रोता मुनिगण सिद्ध होते हैं। इस प्रकार अपने बाह्यरूप से दृश्यमान भेदों के होते हुए भी कालिकापुराण सती और शिव से सम्बन्धित एक महान उपपुराण है जिसका प्रत्येक भाग परस्पर एक माला की भाँति सुन्दर ढंग से ग्रथित है।

कालिकापुराण के वर्ण्यविषय-

कालिकापुराण का वर्णयविषय सती और उसकी सन्तानों का वर्णन ही है। कालिका ने ही दक्षप्रजापति की प्रार्थना पर सती तथा हिमालयपत्नी मैना के स्नेह को देखकर पार्वती और शिव से अपने सम्बन्धों की पराकाष्ठा में अर्धनारीश्वर रूप को धारण किया है। इस प्रकार इसके वर्ण्यविषय के निम्नलिखित सोपान स्पष्ट होते हैं—

(१) सतीजन्म (२) सतीविवाह
(३) सतीविहार (४) सतीवियोग
(५) सती का पार्वती रूप में पुनर्जन्म (६) सती का अर्धनारीश्वर रूप धारण
(७) सती की विशिष्ट सन्तानों का वर्णन

इस पुराण में इसकी आधारभूत चरितनायिका कालिका, सती, योगमाया का ही वर्णन है। इस समग्रग्रन्थ को विषय के आधार पर दो प्रमुख खण्डों में बाँटा जा सकता है— (१) प्रारम्भिक ४५ अध्यायों तक चरितखण्ड (पूर्वार्ध) (२) अन्तिम ४६ से ९० अध्यायों तक उपासना खण्ड (उत्तरार्ध)। अन्य प्रकार से पूर्वार्ध को कालिकाखण्ड उत्तरार्ध को कालिकेय (कालिका संतति) खण्ड के नाम से पुकारा जा सकता है। यह पुराण अपने दोनों ही अंशों में परमोपयोगी एवं महान है।

कालिका खण्ड (१-४५ अध्याय)

सतीजन्म– चरितखण्ड के प्रारम्भिक ७ अध्याय सती जन्म से सम्बन्धित पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं। **प्रथमअध्याय** का प्रारम्भ 'हरिपादसरोज युग्म' के वन्दन से न केवल भगवान् विष्णु और उनकी माया, अपितु हरिपद वाच्य, इन्द्र, शिव, ब्रह्मा, यम, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु आदि देवों की वन्दना, हरिपादसरोज (विष्णु) के चरणकमलों से जुड़ी हुई वैष्णवी महालक्ष्मी की वन्दना से विषय निर्देशपरक मङ्गलाचरण से होता है। (श्लोक १ से ३) जिसमें कमठादि ऋषियों द्वारा मार्कण्डेय मुनि से पूछे गये प्रश्न ही कालिकापुराण के आधार हैं। (श्लोक ९ से १३)। इसी अध्याय में कालिकापुराण की परम्परा, ब्रह्मा के दक्षादि प्रजापतियों, मरीच्यादि १० मानस पुत्रों, सन्ध्या नामक मानसी पुत्री तथा काम नामक मानस पुत्र की उत्पत्ति का भी वर्णन मिलता है।

२सरेअध्याय में ब्रह्मा के पुत्र कामदेव के नामकरण, उसके द्वारा ब्रह्मा और उनकी संततियों का मोहन, ब्रह्मा की सन्ध्या के प्रति आकृष्टि तथा ब्रह्मा से अग्निष्वात्त और बर्हिषद नामक पितरों, दक्ष से रति, क्रतु, वशिष्ठ, पुलस्त्य और अङ्गिरा से क्रमशः सोमपा, आज्यपा, सुकालिन, हविष्मत् पितरों की उत्पत्ति तथा शिव द्वारा ब्रह्मा की भर्त्सना का वर्णन ५९ श्लोकों में हुआ है।

३सरेअध्याय में कामदेव को ब्रह्मा द्वारा शाप तथा दक्षप्रजापति से रति की पत्नीरूप में प्राप्ति का वर्णन है।

४थेअध्याय में ब्रह्मा के निःश्वास से वसन्त की कामदेव के सहचर रूप में उत्तपत्ति एवं उसका सौन्दर्यवर्णन साहित्यिक बन पड़ा है।

५वेंअध्याय में शिव को सम्मोहित करने में समर्थ विष्णुमाया की स्तुति एवं ध्यान वर्णित है। इसी में भगवती हेतु काली शब्द का प्रयोग हुआ है जो कालिकापुराण का मूल चरित्र तथा इसके नामकरण का आधार है।

६ठेंअध्याय में कामदेव के सहायकों के रूप में मारगणों की उत्पत्ति तथा योगमाया की महिमा का वर्णन किया गया है।

७वेंअध्याय में कामदेव, योगमाया के सहयोग के अभाव में शिव- सम्मोहन में अपनी असमर्थता व्यक्त करता है।

८वेंअध्याय में दक्ष द्वारा महामाया कालिका की तपस्या के फलस्वरूप सतीरूप से अपनी पुत्री के रूप में उनकी प्राप्ति के वर्णन, सती की बाललीला और दक्ष के घर ब्रह्मा और नारद के आगमन की बात कही गई है।

पुराण के ९ से १३ अध्यायों तक सती-विवाह का वर्णन है। **९वेंअध्याय** में सती द्वारा नन्दाव्रत के रूप में शिव को पतिरूप में प्राप्ति के लिये प्रतिमास शिव की क्रमश: आराधना, ब्रह्मा द्वारा सती से विवाह हेतु शिव की प्रार्थना उल्लिखित है।

१०वेंअध्याय में कामप्रभाव से व्यथित भगवान् शंकर की प्रार्थना पर ब्रह्मा द्वारा दक्षगृह जाकर शिव की ओर से दक्ष से कन्यादान हेतु प्रस्ताव का वर्णन हुआ है।

११वेंअध्याय मुख्यत: शिव की वरयात्रा एवं सती विवाह से संबंधित है। इसमें सती और शिव के विवाह का वर्णन करते हुये ब्रह्मा के विचलन से शिव के ब्रह्मा पर क्रुद्ध होने, विष्णु द्वारा उन्हें मनाने का वर्णन किया गया है। यह वर्णन कालिकापुराण के उदारभाव का संकेत करता है, इस प्रसङ्ग में नारायण के ये वचन ध्यान देने योग्य हैं।

न ब्रह्मा भवतो भिन्नो न शम्भुर्ब्रह्मणस्तथा ।
न चाहं युवयोर्भिन्नोऽभिन्नत्वं सनातनम् ।।
यज्ज्योरितग्रयं स्वपरप्रकाशं कूटस्थमव्यक्तमनन्तरूपम् ।
नित्यं च दीर्घादिविशेषणाद्यैर्हीनं परं तच्च वयं, न भिन्ना: ।।

१२वेंअध्याय में सृष्टि का विस्तार से वर्णन किया गया है (श्लोक ११-३७)। इसमें भी देवत्रय के एकत्व का विधान है। काल तथा माया का वर्णन (श्लोक ६०-६६)। उपनिषद् की यह प्रख्यात् अद्वैतभावना यहाँ भी उल्लिखित है– एकमेवाद्वयं

ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किञ्चन (श्लोक ६०) और इसी भावना के फलस्वरूप तीन देवों में अभेद है।

१३वेंअध्याय में ब्रह्मा से क्रुद्ध होने वाले शङ्कर को विष्णु ने त्रिदेवों का एकत्व प्रतिपादित कर शान्त किया। एकत्वप्रतिपादक श्लोक बड़े ही भावसम्पन्न हैं। (श्लोक ४८-५०)।

१४वें और १५वें अध्यायों में सती का शिव के साथ विहार वर्णित है। जिसमें ऋतुवर्णन और संयोगश्रृंगार का सुमधुर काव्यात्मक चित्रण है।

१६वेंअध्याय में पिता द्वारा किये गये शिव के अपमान से क्षुब्ध हो सती का देहत्याग, सतीवियोग में विजया का करुणक्रन्दन, **१७वेंअध्याय** में शिवगणों द्वारा दक्षयज्ञविध्वंस, **१८वेंअध्याय** में शिव का सती हेतु रुदन, वाष्प को रोकने हेतु शनि के प्रयत्न, सती के शव को शिर पर लेकर, विचरण ब्रह्मा, विष्णु और शनि द्वारा सती के शव के अङ्गों के गिरने से शक्ति पीठों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।

१९वेंअध्याय में शिवसंताप निवारण हेतु ब्रह्मा प्रबोधन करने हेतु शिवको शिप्रा सरोवर पर ले जाते है जहाँ से शिप्रा नदी का प्राकट्य हुआ है। यहीं शिप्रा उत्पत्तिप्रसङ्ग में अरुन्धती के विवाह से उत्पन्न जल का उल्लेख हुआ है। यहीं से कथाप्रवाह अरुन्धती की पूर्वजन्म की तपस्या एवं उसके चरित की ओर मुड़ता है। क्योंकि चन्द्रभागपर्वत पर सन्ध्या ने तपस्या आरम्भ की थी। **२०वें और २१वें** अध्याय में सन्ध्या की तपस्थली चन्द्रभागपर्वत और चन्द्रभागा नदी की उत्पत्ति के प्रसङ्ग में पत्नियों के साथ भेद-भाव करने के कारण चन्द्रशाप तथा उसके मुक्ति की कथा वर्णित है। पुराण का **२२वाँ** और **२३वाँ** अध्याय अरुन्धतीजन्म और विवाह से सम्बन्धित है।

अन्ततः ब्रह्मा ने शिव के अन्तः में स्थित योगमाया की ही स्तुति की, कि वे शिव के हृदय में अपना आवास छोड़ दें तब विष्णु ने वहाँ स्थित हो शिव को शान्त किया। इस निमित्त विष्णु ने क्या किया ? यह बताने हेतु मार्कण्डेय मुनि ऋषियों को आदि वाराहसर्ग की गाथा सुनाते हैं जो **२४वें अध्याय** से प्रारम्भ होकर पुराण के **४०वें अध्याय** में वर्णित वाराह के पुत्रों तथा धरती के गर्भ से उत्पन्न वाराह पुत्र नरकासुर के चरित्र तक जाती है। इस क्रम में **२४वें अध्याय** में प्रलय (संहार) कथन, **२५वें अध्याय** में आदि वाराहसर्ग, **२६ से २७ अध्याय** तक सृष्टि का वर्णन करते हुए संसार की अनित्यता का वर्णन किया गया है। **२८वें अध्याय** में जगत की असारता, **२९वें अध्याय** में वाराह और उसकी संततियों द्वारा उत्पीड़न

का वर्णन मिलता है। **३०वें अध्याय** में भगवान शिव का शरभावतार और शरभवाराह युद्ध वर्णित है। इसी में नृसिंह और नरनारायण के अवतार का अद्भुत वर्णन हुआ है। **३१वें अध्याय** में यज्ञवाराह और उसके बच्चों के शरीर से यज्ञ एवं यज्ञपात्रों की उत्पत्ति, **३२वें अध्याय** में मत्स्यअवतार का और **३३वें ३४वें अध्यायों** में अकालप्रलय, प्रलयानन्तर सृष्टि का वर्णन, **३५वें अध्याय** में शरभकायत्याग की कथा आई है। **३६ से ४० अध्यायों** तक में क्रमशः नरकासुरजन्म, उसका अभिषेक, उसकी तपस्या एवं राज्य और अन्त का वर्णन किया गया है।

४१ से ४५ अध्यायों में काली का **पार्वतीचरित** वर्णित है, यहाँ हिमालय पुत्री के रूप में पार्वती का जन्म, कामदहन, पार्वतीतप, शिवपार्वती विवाह एवं दोनों के एकात्मतावश काली के अर्धनारीश्वररूप प्राप्ति के रहस्य का वर्णन सराहनीय है।

कालिकेय खण्ड (४६ से ९० अध्याय)

पुराण के इस खण्ड का प्रारम्भ ही प्रथमखण्ड के कालिका के अर्धनारीश्वर रूप के रहस्य के ज्ञाता भृङ्गी और महाकाल के उत्पत्ति प्रसङ्ग में शिव के महामैथुन एवं उससे उत्पन्न भय का वर्णन **४६वें अध्याय** से होता है। **४७वें अध्याय** में वेताल और भैरव के जन्म की चर्चा के साथ ही शिव के मनुष्यावतार चन्द्रशेखर के चरित का आरम्भ होता है। **४८वें अध्याय** में काली के तारावती के रूप में जन्म और चन्द्रशेखर से उनके विवाह का वर्णन किया गया है। **४९वें अध्याय** में तारावती और कपोतमुनि के उपाख्यान के साथ ही चित्राङ्ग की उत्पत्ति, **५०वें अध्याय** में तारावती रूपी काली और कपालीरूपमय शिव के संयोग से वेताल और भैरव की उत्पत्ति, **५१वें अध्याय** में वेताल और भैरव की उदासीनता, कपोतमुनि द्वारा उनको शिवाराधन की प्रेरणा का वर्णन मिलता है। यहाँ वशिष्ठ की गुरु रूप में प्रस्तुति हुई है। **५२वें से ७१वें अध्याय** तक के बीस अध्यायों में काली और उनके विविधरूपों से सम्बन्धित पूजाविधियों एवं पूजोपचारों का विशद वर्णन और्व-सगर संवाद और वशिष्ठवेतालादि संवाद के रूप में हुआ है। प्रसङ्गतः महिषासुर के अनेक जन्मों और दुर्गोत्सव का आदि का भी सुन्दर वर्णन मिलता है। इन अध्यायों में शक्तिसाधना सम्बन्धी अनेक तंत्रों का समन्वय भी मिलता है। **७२वें से ७५वें अध्यायों** तक में कामाख्या देवी के माहात्म्य, पूजनकवच यात्रादि वर्णनप्रसङ्ग में विविध देवों, त्रिपुरामहात्म्य और पूजनविधान का वर्णन भी आया है। **७७ से ८३**

तक के ७ अध्यायों में कामरूपमण्डल की स्थिति और ब्रह्मपुत्रनद की उत्पत्ति तथा परशुरामचरित का भी संक्षिप्त वर्णन मिलता है।

८४ से ८८ तक के अध्यायों में राजधर्मवर्णन के अन्तर्गत विविध अवसरों पर राजा के कर्तव्यों का निर्देश किया गया है।

८९वें और ९०वें अध्यायों में वेताल और भैरव की संततियों का वर्णन एवं उपसंहार रूप में कालिकापुराण के माहात्म्य का निर्देशन हुआ है।

कालिकापुराण का वैशिष्ट्य–

देवी के ९ रूपों का दुर्गा अर्थात् शक्ति के रूप में उल्लेख मिलता है। इस पुराण का भी विस्तार ९० अध्यायों में हुआ है। मार्कण्डेय मुनि देवी- माहात्म्य के मुख्यवक्ता हैं। जिन्होंने मार्कण्डेय पुराण के १३ अध्यायों में योग- निद्रा, महिषमर्दिनी एवं सरस्वती के चरितों वर्णन किया है वे ही यहाँ योगनिद्रा (काली) से सम्बन्धित नाम रूपों के चरित और उनकी उपासनापद्धतियों का वर्णन करते दिखाई देते हैं।

मनुष्य की एक मूलभूत प्रवृति काम को भले ही वह कामदेव ही क्यों न हो। इसका आधारबिन्दु बनाया गया है। काम के प्रादुर्भाव और तत्कालिक क्रिया-कलाप के फलस्वरूप शिवद्वारा ब्रह्मादि की भर्त्सना, बदले की भावना से शिव को कामप्रभावित दिखाने के लिये काली का सतीरूप में अवतरण, सन्ध्या की काम के प्रभाव को संयमित करने की कामना से तपस्या, वाराह के पृथिवी के साथ अधार्मिककामाचरण से नरकासुर की उत्पत्ति, शिव-पार्वती की कामाचारावस्था को देख, देवताओं की व्यग्रता, भृङ्गी-महाकाल जैसे नामों का वेताल और भैरव के रूप में जन्म, चन्द्रमा का स्त्रीप्रसङ्ग, कपोतमुनि की तारावती के प्रति भावनाएँ सब इस पुराण के मूल चिन्तनबिन्दु के रूप में काम एवं उसके प्रभाव और उस प्रभाव के दुष्परिणाम तथा उसपर नियंत्रण के महत्व को ही निर्देशित करती हैं।

इसमें प्रसङ्गतः अनेक सुन्दरस्तुतियों एवं शिव, काली तथा अन्य देवी देवताओं की उपासना पद्धतियों का महत्वपूर्ण वर्णन किया गया है। शाक्त, तान्त्रिक उपासना विधि का तो यह आकरग्रन्थ सिद्ध होता है। सती, पार्वती चरित सम्बन्धी कथानक तो शिवपुराणदि में भी मिलते हैं किन्तु अरुन्धती- चरित, नरकासुरचरित और वेताल-भैरवचरित की योजना में इसकी अपनी प्रस्तुति है जिसमें चन्द्रभागा नदी के प्रसङ्ग में पर्यावरण, चन्द्रमाचरित में बहुपत्नीत्वदोष, अतिभोग से क्षयरोग की प्राप्ति, उसके निवारण, सतीवियोग के प्रसङ्ग में अतिवृष्टि और जलप्लावन से बचाव हेतु शनि ग्रह की उपासना और शव आदि के क्षरण में शनि के प्रभाव आदि अनेक

सामाजिक, वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक विषयों का समावेश, इस पुराण की अपनी मौलिकता है।

इसका त्रिदेवों की एकता का तर्कपूर्ण ढंग से प्रतिपादन और अर्धनारीश्वररूपवर्णनप्रसङ्ग में शिवाशिव की एकात्मता का अद्भुत वर्णन भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

कालिकापुराण का देश-काल–

इसका देश-काल अति विस्तृत है। इसमें कामरूप की प्रमुखता होते हुए भी काशी और कोल्हापुर भी नहीं छूटे हैं। सम्पूर्ण हिमालय इसका विहारक्षेत्र है। सर्ग-प्रतिसर्ग के वर्णन के साथ ही स्थान-स्थान पर मत्स्य, वाराह, राम, कृष्ण, नृसिंह, नरनारायण के अवतारों के कथा प्रसङ्ग भी आये हैं जिससे इसका काल कृतयुग से लेकर द्वापर के अन्त तक विस्तृत है क्योंकि पुराण के अन्तिम भाग में खाण्डवदहन की चर्चा आई है। भाषा की दृष्टि से यह नवीन है।

आभार प्रकाश–

यद्यपि असीम करुणामयी कालिकाम्बा के कमलवत् चरणों की शरणागति, परमगुरु **स्वामी अक्षोभ्यानन्दजी महाराज**, पूज्य गुरुदेव **पं. केदारनाथ तिवारी**, गुरुदेव **बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते** के दिव्य चरणों में प्रणति, परमपूज्य गुरुदेव **स्वामी ऋद्धेश्वरानन्दतीर्थ** एवं काशी पीठाधीश्वर **जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी नरेन्द्रानन्द सरस्वती** से प्राप्त आत्मबल से ही शाक्तपुराणों के अनुवाद के इस द्वितीयपुष्प "कालिकापुराणम्" की प्रस्तुति सम्पन्न हो सकी है तथापि काशी के गोवर्धनसराय निवासी द्विवेदी कुलावतंश **पं. आद्याप्रसाद द्विवेदी** एवं उनके अनुजद्वय **पं. अभय कुमार द्विवेदी** और **पं. अजय कुमार द्विवेदी** ने इस दिशा में प्रत्यक्ष प्रेरणा तथा प्रोत्साहन और ग्रन्थ की दुर्लभप्रति उपलब्ध कराकर इस कार्य के सम्पादन में जो महत् योगदान दिया है वह अप्रतिम है। जिसके प्रति शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापन असम्भव है। आद्याजी तो इस कार्य में आद्याम्बावत् ही सदैव कृपालु रहे हैं।

इस भव्यभवन के शिखरस्थापन का कार्य पूज्य श्री **स्वामी द्वारिकादास शास्त्री** तथा पंडितप्रवर **डॉ० परमहंस मिश्र** के महत्त्वपूर्ण सहयोग से ही बन पड़ा है। अतः कृतज्ञतापूर्वक मैं उन दोनों गुरुजनों के चरणों में नमन करता हूँ।

इसे मूर्तरूप देने में **डा. हरिप्रसाद अधिकारी** सर्वत्र मेरे प्रतिरूप बन कर रहे हैं। **डा. कपिलदेव पाण्डेय, डॉ० हरिशचन्द्रमणि त्रिपाठी, डा. शीतला प्रसाद उपाध्याय, डा. गंगाधर पण्ड्या, महामहोपाध्याय मनुदेवभट्टाचार्य,**

आचार्य रमेश चन्द्र पाण्डेय, पं. आशुतोष चतुर्वेदी, बहन सुषमा पाल, सुहृद्द्वय अनिल कुमार गुप्त एवं **मदनलाल एडवोकेट** एवं **पुत्रद्वय आचार्य राकेश रञ्जन त्रिपाठी** तथा **योगेशदत्त त्रिपाठी** आदि ने भी समय-समय पर जो सहयोग दिया है। उसके लिए मैं उन सबका हृदय से आभारी हूँ।

इसके प्रकाशन और मुद्रण में **नवशक्ति प्रकाशन** तथा **प्रभा प्रेस** के स्वत्वाधिकारियों **श्री लोकेश कृष्ण त्रिपाठी** व **श्री गोपेश त्रिपाठी** को साधुवादपूर्वक उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

यह पुराणपुष्पाञ्जलि तन्त्र और कर्मकाण्ड दोनों ही क्षेत्रों में अप्रतिम अधिकारसम्पन्न, साधकशिरोमणि, जगदम्बाचरणापन्न पण्डित प्रवर रामकुमार द्विवेदी 'कुँवरजी' महाराज के श्रीचरणों में सादर समर्पित है।

अन्ततः कालिकाम्बा का यह परमप्रसाद उन प्राज्ञपाठकों, सुहृद्साधकों तथा ज्ञानपिपासुओं को समर्पित है, जो हमारे परम सम्बल हैं। आशा है वे हंसवत् इसे अपना कर हमें अनुगृहीत करेंगे।

रक्षाबन्धन २०६३ वि. —मृत्युञ्जय त्रिपाठी

***



पण्डितप्रवर श्रीरामकुमार द्विवेदी 'कुँवर जी महाराज'
तान्त्रिक एवं कर्मकाण्डी



विषयानुक्रमणिका



॥ क्रीं कालिकायै नमः ॥

कालिकापुराणम्

प्रथमोऽध्यायः

कामप्रादुर्भावविवर्णनम्

मङ्गलाचरण

यद्योगिभिर्भवभयार्ति विनाशयोग्य-
मासाद्य वन्दितमतीव विविक्तचित्तैः ।
तद् वः पुनातु हरिपादसरोजयुग्म-
माविर्भवत् क्रमविलङ्घित - भूर्भुवः स्वः ॥१॥

अत्यन्त विवेकशील चित्तवाले योगिजन, भूः भुवः स्वः नामक तीनों लोकों के क्रम को पार कर, संसार (जन्म-मरण) के भय का नाश करने में समर्थ भगवान् विष्णु के जिन युगल चरणकमलों की वन्दना करते हैं; वे ही आपलोगों को पवित्र करने वाले होवें ॥१॥

सा पातु वः सकलयोगिजनस्य चित्ते-
ऽविद्यातमिस्त्रतरणिर्मतिमुक्ति-हेतुः ।
या चास्य जन्तुनिवहस्य विमोहिनीति
माया विभोर्जनुषि शुद्ध-कुबुद्धिहन्त्री ॥२॥

जो सभी योगिजनों के चित्त में फैले हुये अविद्यारूपी अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य हैं, जो बुद्धियों को मुक्ति प्रदान करने वाली हैं, जो इस प्राणी-समूह को मोहित करने वाली हैं, जो शुद्ध बुद्धि की जन्मदात्री तथा कुबुद्धि का नाश करने वाली हैं, वे परमात्मा की माया (परमेश्वरी) आप लोगों की रक्षा करें ॥२॥

ईश्वरं जगतामाद्यं प्रणम्य पुरुषोत्तमम् ।
नित्यज्ञानमयं वक्ष्ये पुराणं कालिकाह्वयम् ॥३॥

संसार के आदिभूत (जन्मदाता ब्रह्मा), पुरुषोत्तम (भगवान् विष्णु), ईश्वर (भगवान् शङ्कर) को प्रणाम कर मैं नित्यज्ञानमय कालिका (पुराण) नामक इस पुराण को कहता हूँ ॥३॥

मार्कण्डेयं मुनिश्रेष्ठं स्थितं हिमधरान्तिके ।
मुनयः परिपप्रच्छुः प्रणम्य कमठादयः ।।४।।

हिमालय पर्वत के निकट स्थित मुनिवर मार्कण्डेय को प्रणाम करके कमठादि मुनियों ने उनसे पूछा—।।४।।

।। मुनयः ऊचुः ।।

भगवन् सम्यगाख्यातं सर्वशास्त्राणि तत्त्वतः ।
वेदान् सर्वांस्तथा सांगान् सारभूतं प्रमथ्य च ।।५।।

मुनिगण बोले–हे भगवन् ! आपने (व्याकरणादि) अङ्गों सहित सभी वेदों का मन्थन कर साररूप में सभी शास्त्रों के तत्त्वों का भलीभाँति वर्णन किया है ।।५।।

सर्ववेदेषु शास्त्रेषु यो यो नः संशयोऽभवत् ।
स स छिन्नस्त्वया ब्रह्मन् सवितेव तमश्चयः ।।६।।

हे ब्रह्मन् ! सभी वेदों और शास्त्रों में हमें जो संशय हुआ, उन-उन का आपके द्वारा वैसे ही नाश किया गया है जैसे सूर्य के द्वारा अन्धकारसमूह का नाश किया जाता है ।।६।।

जैवातृकाग्र्य भवतः प्रसादाद्द्विजसत्तम ।
निःसंशया वयं जाता वेदे शास्त्रे च सर्वशः ।।७।।

दीर्घजीवियों में अग्रणी, हे द्विजसत्तम ! आपकी कृपा से हम वेद और शास्त्रों में सब प्रकार से संशयरहित हो गये हैं ।।७।।

कृतकृत्या वयं ब्रह्मन्त्वत्तोऽधीत्य समन्ततः ।
सरहस्यं धर्मशास्त्रं यदवादि स्वयम्भुवा ।।८।।

स्वयम्भू ब्रह्मा ने जिस धर्मशास्त्र को रहस्य सहित कहा था, उसे हे ब्रह्मन् ! आपसे ही पढ़कर हम पूरीतरह से कृतकृत्य हो गये हैं ।।८।।

भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामो हरं काली पुरा कथम् ।
मोहयामास पतिनं सतीरूपेण चेश्वरम् ।।९।।
सर्वदा ध्याननिलयं यतिनं पतिनां वरम् ।
कथं संक्षोभयामास संसारविमुखं हरम् ।।१०।।
सती वा कथमुत्पन्ना दक्षदारासु शोभना ।
कथं हरो मनश्चक्रे दारग्रहणकर्मणि ।।११।।
कथं वा दक्षकोपेन त्यक्तदेहा सती पुरा ।
हिमवत्तनया जाता भूयो वा कथमागता ।।१२।।

हम पुनः आपसे सुनना चाहते हैं कि—प्राचीन काल में भगवती काली ने सतीरूप धारण करके किस प्रकार ईश्वर, भगवान् शङ्कर को पतिरूप में मोहित

किया? सदैव ध्यानस्थित, यमी, रक्षकों में श्रेष्ठ, संसार से विमुख (विरक्त) भगवान् शङ्कर को उन्होंने कैसे संक्षुब्ध किया? अथवा सुन्दरी सती दक्षपत्नी के गर्भ से कैसे उत्पन्न हुईं? भगवान् शङ्कर ने दारग्रहण (विवाह) का मन कैसे बनाया? प्राचीन काल में दक्ष पर क्रोध करके सती ने अपने शरीर का त्याग कैसे कर दिया? वह हिमालय की पुत्री (पार्वती) के रूप में कैसे पुनः उत्पन्न हुईं? ॥९-१२॥

कथमर्द्धशरीरं साहरत् स्मररिपोः पुनः ।
एतत् सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण द्विजोत्तमः ॥१३॥
नान्योऽस्ति संशयच्छेत्ता त्वत्समो न भविष्यति ।
यथा जानीम विप्रेन्द्र तत् कुरुष्वैतदात्मवित् ॥१४॥

हे द्विजोत्तम! उन्होंने कामदेव के शत्रु भगवान् शङ्कर के अर्द्धाङ्ग (पत्नीत्व) को कैसे पुनः प्राप्त किया? यह सब (उपर्युक्त रहस्य) आप हमें विस्तार से बताइये क्योंकि आप के समान संशयों का नाश करने वाला अन्य कोई दूसरा नहीं है और न कोई होगा। हे आत्मविद्! हे विप्रेन्द्र! जिस प्रकार यह हम जान सकें, ऐसा उपाय कीजिये ॥१३-१४॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

शृण्वंतु मुनयः सर्वे गुह्याद् गुह्यतरं परम् ।
पुण्यं शुभकरं सम्यग् ज्ञानदं कामदं परम् ॥१५॥

मार्कण्डेय बोले– आप सभी मुनिगण, मेरे (द्वारा कथित) अत्यन्त गोपनीय से भी गोपनीय, पवित्र, शुभकर्त्ता, सम्यक् ज्ञान प्रदान करने तथा कामना की पूर्ति करने वाले, श्रेष्ठ, इस (कालिका पुराण) को सभी सुनें ॥१५॥

कालिका पुराण-परम्परा

एतद् ब्रह्मा पुरोवाच नारदाय महात्मने ।
पृष्टस्तेन ततः सोऽपि बालखिल्येषु चोक्तवान् ॥१६॥
बालखिल्या महात्मानस्तत आचक्षिरे पुनः ।
यवक्रीताय मुनये स प्रोवाचासिताय च ।
असितो मे समाचक्ष्व एतद्विस्तरतो द्विजाः ॥१७॥

हे द्विजों! इसे पहले ब्रह्माजी ने महात्मा नारद को बताया। उन्होंने बालखिल्यों के द्वारा पूछे जाने पर उन्हें बताया। महात्मा बालखिल्यों ने पुनः यवक्रीत मुनि को सुनाया और उन (यवक्रीत) ने असित से कहा। इस पुराण को विस्तारपूर्वक असित ने मुझसे कहा ॥१६-१७॥

अहं वः कथयिष्यामि कथामेतां पुरातनीम् ।
प्रणम्य परमात्मानं चक्रपाणिं जगत्पतिम् ॥१८॥

मैं संसार के स्वामी, चक्रधर परमात्मा (विष्णु) को प्रणाम कर आप लोगों से इस पुरानी कथा को कहूँगा ॥१८॥

व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय सदसद्व्यक्तरूपिणे ।
स्थूलाय सूक्ष्मरूपाय विश्वरूपाय वेधसे ॥१९॥
नित्याय नित्यज्ञानाय निर्विकाराय चेतसे ।
विद्याऽविद्यास्वरूपाय कलारूपाय वै नमः ॥२०॥

व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप, सत् और असत् रूप में प्रकट, स्थूल और सूक्ष्म सभी रूपों में व्यक्त, विधाता, शाश्वत्, नित्य-ज्ञानरूप, निर्विकार, चैतन्य, विद्या तथा अविद्या स्वरूप, कलारूप आप (परमात्मा) को नमस्कार है ॥१९-२०॥

निर्मलायोर्मिषट्कादिरहिताय विरागिणे ।
व्यापिने विश्वरूपाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ॥२१॥
योगिभिश्चिन्त्यते योऽसौ वेदान्तानान्तचिन्तकैः ।
अन्तर्वन्तः परं-ज्योतिःस्वरूपं प्रणमामि तम् ॥२२॥

उस निर्मल, उर्मि-षटकादि भेदों से रहित, विरागी, व्यापी, विश्वरूप जगत् की सृष्टि, स्थिति और अन्त करने वाले; जिनका वेदान्त के अन्त को जानने वाले चिन्तनशील योगीजन चिन्तन किया करते हैं, प्रत्येक अन्तःकरण में परम ज्योति रूप में जो विद्यमान हैं, उन परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२१-२२॥

सन्ध्या-उत्पत्ति

तमेवाराध्य-भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
प्रजाः ससर्ज सकलाः सुरासुरनरादिकाः ।
सृष्ट्वा प्रजापतीन् दक्षप्रमुखान् स यथाविधि ॥२३॥

उसी की आराधना कर, लोक के पितामह ब्रह्मा ने, दक्ष आदि दश प्रजापतियों की विधिपूर्वक सृष्टि करके, देवता, दैत्य, मनुष्यादि समस्त प्रजा की सृष्टि की ॥२३॥

मरीचिमत्रिं पुलहं तथैवाङ्गिरसं क्रतुम् ।
पुलस्त्यञ्च वशिष्ठञ्च नारदञ्च प्रचेतसम् ॥२४॥
भृगुञ्च मानसान् पुत्रान् यदा दश ससर्ज सः ।
तदा तन्मनसो जाता चारुरूपा वरांगना ।
नाम्ना सन्ध्येतिविख्याता सायं सन्ध्यां बरान्तिकाम् ॥२५॥

जब मरीचि, अत्रि, पुलह, अङ्गिरा, क्रतु, पुलस्त्य, वशिष्ठ, नारद, प्रचेता के पुत्र दक्ष, भृगु आदि दश मानस पुत्रों की उन्होंने सृष्टि कर लिया, तब उनके मन से सन्ध्या नाम से प्रसिद्ध एक सुन्दर रूपवाली, श्रेष्ठ अङ्गों वाली सायं सन्ध्या रूपा नारी उत्पन्न हुई ॥२४-२५॥

सन्ध्यासौन्दर्य-वर्णन

न तादृशी देवलोके न मर्त्ये न रसातले ।
कालत्रयेऽपि भविता सम्पूर्णगुणशालिनी ।।२६।।

उसके समान सम्पूर्ण गुणवाली, तीनों काल में देवलोक, मर्त्य-लोक या रसातल में भी कोई नहीं है ।।२६।।

निसर्गचारुनीलेन कचभारेण राजते ।
मयूरीव विचित्रेण वर्षासु द्विजसत्तमाः ।।२७।।

हे द्विजसत्तमों ! वह अपने विचित्र किन्तु स्वाभाविक रूप से सुन्दर काले बालों से युक्त वर्षा-ऋतु में मोरनी की भाँति शोभायमान हो रही थी ।।२७।।

आरक्तगौरपलकमाकर्णान्तं तथालकैः ।
रेजे सुराधिपधनुश्चारुबालेन्दुसन्निभम् ।।२८।।

उसके लालिमा लिये गौर कानों तक फैलीं उसकी पलकें, उसके घुँघराले केश, इन्द्रधनुष के समान सुन्दर और बाल-चन्द्रमा के समान आभायुक्त हो रहे थे ।।२८।।

प्रफुल्लनीलनलिनश्यामलं नयनद्वयम् ।
चकाशे चकितायास्तु कुरङ्ग्याः सदृशं चलम् ।।२९।।

उसके दोनों नेत्र खिले हुए नीलकमल के समान नीले थे और चकितावस्था में हरिणी के समान चञ्चल दिखाई दे रहे थे ।।२९।।

निसर्ग-चञ्चलं चारु भ्रूयुग्मं श्रवणायतम् ।
मीनाङ्ककोदण्डसमं नीलं तस्याः द्विजोत्तमाः ।।३०।।

हे द्विजोत्तमों! उसकी दोनों भौहें स्वाभाविक रूप से सुन्दर और चञ्चल तथा कानों तक फैली हुई थीं । वे मीनाङ्क (कामदेव) के धनुष के समान प्रभावशाली तथा नीलवर्ण (काले रङ्ग) की थीं ।।३०।।

भ्रूमध्याधोनिम्नभागादायत - प्रांशु - नासिका ।
लावण्यानि द्रवन्तीव ललाटात्तिलपुष्पवत् ।।३१।।

उसके भ्रूमध्य के निचले भाग के ललाट से तिल के पुष्प के समान, सौन्दर्य को प्रवाहित करती हुई लम्बी किन्तु नुकीली नासिका शोभायमान हो रही थी ।।३१।।

तद्वक्त्रं शोणपद्माभ - पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।
बिम्बाधरारुणिम्नातिरेजे रागि - मनोहरम् ।।३२।।

उसका मुख लाल कमल के समान आभायुक्त एवं पूर्णचन्द्र के समान प्रभा से युक्त था । उसके अधर अपनी सुन्दर लालिमा से बिम्बाफल की लालिमा को भी फीका कर रहे थे ।।३२।।

सौन्दर्यलावण्यगुणैरापूर्णं वदनं पुनः ।
अभितश्चिबुकं यातुमुद्यताविव तत्कुचौ ।।३३।।
राजीवकुड्मलाकारौ पीनोत्तुंगौ निरन्तरौ ।
श्यामास्यौ तत्कुचौ विप्रा मुनीनामपि मोहनौ ।।३४।।

ठुड्डी के चारों ओर उसका मुख सुन्दरता और मनोहरता जैसे गुणों से पूर्ण था। उसके दोनों स्तन कमल के कोश के आकार में उठे हुये थे। वे मोटे, पुष्ट और निरन्तर ऊपर उठते हुये जान पड़ते थे। हे ब्राह्मणों! उसके दोनों स्तनों के मुखमण्डल (कुचाग्र) श्यामवर्ण के थे, जो मुनियों का भी मन मोह लेते थे।।३३-३४।।

वलिभाजि क्षीणमध्यं मुष्टिग्राह्यमिवांशुगम् ।
तन्मध्यं ददृशुः सर्वे शक्तितुल्यं मनोभुवम् ।।३५।।

उसका मध्यभाग (कटि-प्रदेश) रेशमी वस्त्र की भाँति वलि (त्रिवली, मोड़) युक्त एवं मुट्ठी में आने योग्य पतला था। उसके मध्य सबने शक्तिस्वरूप मनोभुव[1] (मदनमन्दिर) का दर्शन किया ।।३५।।

तस्य चोरुयुगं रेजे स्थूलोर्द्ध्वं करभायतम् ।
आनमद्वारणकरप्रतिमं मृदुमन्थरम् ।।३६।।

उसकी दोनों जङ्घायें हाथी के बच्चे के समान स्थूल और उठी हुईं तथा हाथी के सूड़ के समान लटकती हुईं, कोमल एवं मन्थर गति से शोभायमान हो रही थीं ।।३६।।

स्थलाम्बुजरुणं पादयुग्मं सत्पार्ष्णिराजितम् ।
अङ्गुलीदलसंकीर्णं कुसुमायुधबाणवत् ।।३७।।

उसके दोनों चरण सुन्दर, पार्ष्णि (एड़ियों) से सुशोभित, धरती पर उगे कमल की भाँति लाल रङ्ग के थे, जिनकी परस्पर सटी हुई अङ्गुलियों के समूह कामदेव के बाण की भाँति मनोहर थे ।।३७।।

तां चारुदशनां तन्वीं तनुरोमावलीं शुभाम् ।
सस्वेदवदनां दीर्घनयनां चारुहासिनीम् ।।३८।।
चारुकर्णयुगां कान्तां त्रिगम्भीरां षडुन्नताम् ।
दृष्ट्वा धाता समुत्थाय चिन्तयामास हृद्गतम् ।।३९।।

उस सुन्दर दाँतोंवाली, पतली-पतली रोमावली से घिरी हुई, पसीने से युक्त मुखमण्डल वाली, लम्बे नेत्रों वाली, सुन्दर हँसी वाली, सुन्दर कानों से युक्त सुन्दरी, जिसके चिबुक (ढुड्डी), नाभि, योनि तीन अङ्ग गहरे तथा कपोल-स्तन-नितम्बों के

---

१. यहाँ मनोभुव की शक्ति समता शाक्तनिष्ठा दर्शाती है।

युगल छः अङ्ग उठे हुये थे, को देखकर ब्रह्मा उठ गये और हृदय में चिन्तन करने लगे ॥३८-३९॥

दक्षादयस्ते स्रष्टारो मरीच्याद्यास्तु मानसाः ।
दध्युः समुत्सुकाः सर्वे तां दृष्ट्वा वरवर्णिनीम् ॥४०॥

उस कुमारी को देखकर वे सब दक्ष इत्यादि और मरीचि आदि ब्रह्मा के मानस पुत्रों ने समान रूप से उत्सुकता को धारण किया ॥४०॥

किं कर्मास्या भवेत् सृष्टौ कस्य वा वरवर्णिनी ।
भविष्यतीति ते सर्वे चिन्तयामासुरुत्सुकाः ॥४१॥

वे उत्सुकतापूर्वक विचार करने लगे कि सृष्टि में इसका क्या कार्य है? तथा यह किसको वरण करेगी ॥४१॥

॥ काम-प्रादुर्भाव ॥

एवं चिन्तयतस्तस्य ब्रह्मणो मुनिसत्तमाः ।
मनसः पुरुषो वल्गुराविर्भूतो विनिसृतः ॥४२॥

हे मुनिसत्तमों ! जब ब्रह्माजी इस प्रकार से सोच रहे थे, तब उनके मन से निकल कर एक मनोहर पुरुष उत्पन्न हुआ ॥४२॥

॥ कामसौन्दर्य-वर्णन ॥

काञ्चनीचूर्णपीताभः पीनोरस्कःसुनासिकः ।
सुवृत्तोरुकटीजङ्घो नीलवेष्टितकेशरः ।
लग्नभ्रूयुगलो लोलः पूर्णचन्द्रनिभाननः ॥४३॥

उसके शरीर से सोने के चूर्ण की तरह पीली आभा निकल रही थी, उसके कन्धे भरे हुए (पुष्ट) तथा उसकी नासिका सुन्दर थी, उसके ऊरु, कमर एवं जङ्घे सुन्दर गोलाकार थे, उसके बाल नीले और घुँघराले थे, उसकी दोनों भौहें मिली हुईं, चञ्चल थीं तथा मुख पूर्णचन्द्र के समान था ॥४३॥

कपाटविस्तीर्णहृदि रोमराजिविराजितः ।
शुभ्रमातङ्गकरवत् पीननिस्तलबाहुकः ।
आरक्तपाणिनयनमुखपादकरोद्भवः ॥४४॥

उसका हृदय, कपाट की भाँति विशाल, रोमावलियों से सुशोभित था। उसकी भुजायें श्वेत मातङ्ग (ऐरावत) की सूँड़ की भाँति गोल और मोटी थीं। उसके हाथ, पैर, नेत्र, मुख, हाथ की अंगुलियाँ लाल रङ्ग की थीं ॥४४॥

क्षीणमध्यश्चारुदन्तः प्रमत्तगजबन्धनः ।
प्रफुल्लपद्मपत्राक्षः केशरघ्राणतर्पणः ।
कम्बुग्रीवो मीनकेतुः प्रांशुर्मकरवाहनः ॥४५॥

उसका मध्य भाग (कटि-प्रदेश) पतला था, उसके दन्त सुन्दर थे, कन्धे मतवाले हाथी के कन्धे के समान पुष्ट थे, नेत्र खिले हुए उन कमल के दलों के समान थे, जिनके पराग सुगन्धयुक्त थे। गला शङ्ख के समान था, ध्वजा पर मछली का निशान था, जो दीर्घकाय और मकर-वाहन पर सवार था ॥४५॥

पञ्चपुष्पायुधो[1] वेगी पुष्पकोदण्डमण्डितः ।
कान्तः कटाक्षपातेन भ्रामयन्नयनद्वयम् ॥४६॥
सुगन्धमारुतभ्रान्तं शृंगाररससेवितम् ।
तं वीक्ष्य तादृशं दक्षप्रमुखा मानसाश्च ये ॥४७॥
मरीच्याद्या दश ततो विस्मयाविष्टचेतसः ।
औत्सुक्यं परमं जग्मुरापुर्वैकारिकं मनः ॥४८॥

वह पाँच प्रकार के पुष्पों के अस्त्र धारण किये वेगवान् था, पुष्प के धनुष से सुशोभित था, सुन्दर कटाक्षपात्त से अपने दोनों नेत्रों को घुमा रहा था। उस सुगन्धित वायु से भ्रमित (मस्त) तथा शृङ्गाररस-सेवित, उपर्युक्त रूप के पुरुष को देखकर वे (ब्रह्मा के दक्ष एवं मरीचि आदि दश मानस पुत्र) तब विस्मय से भर गये, उनमें परम उत्सुकता उत्पन्न हो गई। उनके मन में तरह-तरह के विकार उठने लगे ॥४६-४८॥

स चापि वेधसं वीक्ष्य स्रष्टारं जगतां पतिम् ।
प्रणम्य पुरुषः प्राह विनयानतकन्धरः ॥४९॥

उस पुरुष ने भी जगत्पति, सृष्टिकर्ता, ब्रह्मा को देखकर, उन्हें प्रणाम किया और नम्रतापूर्वक मस्तक को झुका कर बोला—॥४९॥

॥ पुरुष-उवाच ॥

किं करिष्याम्यहं कर्म ब्रह्मंस्तत्र नियोजय ।
मां न्याय्ये पुरुषो यस्मादुचिते शोभने विधे ॥५०॥

पुरुष बोला– हे ब्रह्मन् ! हे विधाता ! मैं कौन सा कर्म करूँ? मेरे जैसे पुरुष के लिए जो सुन्दर, उचित और न्यायपूर्ण हो, उसमें मुझे नियुक्त कीजिये ॥५०॥

अभिधानं च यद्योग्यं स्थानं पत्नी च या मम ।
तन्मे कुरुष्व लोकेश त्वं स्रष्टा जगतां यतः ॥५१॥

हे लोकेश्वर! आप संसार के स्रष्टा हैं, इसलिए मेरा नाम, मेरे योग्य स्थान, तथा मेरी पत्नी का भी मेरे लिए आप ही निर्धारण कीजिये ॥५१॥

---

१. काम के पञ्चायुध
अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः ॥

।। मार्कण्डेय-उवाच ।।

एवं तस्य वचः श्रुत्वा पुरुषस्य महात्मनः ।
क्षणं न किञ्चित् प्रोवाच स्वसृष्टावपि विस्मितः ।।५२।।
ततो मनः सुसंयम्य सम्यगुत्सृज्य विस्मयम् ।
उवाच पुरुषं ब्रह्मा तत्कार्योद्देशमावहन् ।।५३।।

मार्कण्डेय बोले– इस प्रकार की उस पुरुष की वाणी को सुनकर, अपनी सृष्टि पर ही विस्मित हो, ब्रह्मा क्षणभर कुछ नहीं बोले। तब वे आश्चर्य को भलीभाँति छोड़कर, मन को संयमित करके, उस पुरुष के कार्यादि का निर्देश करते हुये, उससे बोले—।।५२-५३।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

अनेन चारुरूपेण पुष्पबाणैश्च पञ्चभिः ।
मोहयन् पुरुषांस्त्रींश्च कुरु सृष्टिं सनातनीम् ।।५४।।

ब्रह्मा ने कहा– इस सुन्दर रूप और पाँच पुष्प बाणों से तुम स्त्री-पुरुषों को मोहित करते हुये सनातनी, पारम्परिक सृष्टि करो। (अब तक ब्रह्मा ने मानसी सृष्टि की थी) ।।५४।।

न देवो न च गन्धर्वो न किन्नर-महोरगाः ।
नासुरो न च दैत्यो वा न विद्याधर-राक्षसाः ।।५५।।
न यक्षा न पिशाचाश्च न भूता न विनायकाः ।
न गुह्यका न वा सिद्धा न मनुष्या न पक्षिणः ।।५६।।
पशवो न मृगाः कीट-पतङ्गाजलजाश्च ये ।
न ते सर्वे भविष्यन्ति न लक्षा ये शरस्य ते ।।५७।।

जो भी देवता, गन्धर्व, किन्नर, महान् सर्प, असुर, दैत्य, विद्याधर, राक्षस, यक्ष, पिशाच, भूत, विनायक, गुह्यक, सिद्ध, मनुष्य, पशु-पक्षी, जन्तु, कीट, पतङ्ग, जलचर होंगे, उनमें कोई भी ऐसा नहीं होगा जो तुम्हारे बाणों का लक्ष न बने अर्थात् सभी तुम्हारे बाणों से व्यथित होंगे ।।५५-५७।।

अहं वा वासुदेवो वा स्थाणुर्वा पुरुषोत्तमः ।
भविष्यामस्तव वशे किमन्यैः प्राणधारिभिः ।।५८।।

मैं या वासुदेव (विष्णु) या स्थाणु (शिव) जैसे श्रेष्ठ पुरुष भी तुम्हारे वशीभूत रहेंगे, फिर अन्य प्राणियों की क्या बात है? वे तो रहेंगे ही ।।५८।।

प्रच्छन्नरूपी जन्तूनां प्रविशन् हृदये सदा ।
सुखहेतुः स्वयं भूत्वा कुरु सृष्टिं सनातनीम् ।।५९।।

तुम गुप्त रूप से जन्तुओं के हृदय में सदैव प्रवेश कर, स्वयं उनके सुख का कारण होकर सनातनी सृष्टि करो ।।५९।।

त्वत् पुष्पबाणस्य सदा मुख्यं लक्षं मनोऽस्तु तत् ।
सर्वेषां प्राणिनां नित्यं मदमोदकरो भवान् ।।६०।।

उन (प्राणियों) का मन तुम्हारे बाणों का सदैव मुख्य लक्ष्य होगा । तुम सभी प्राणियों में नित्य मद (मस्ती) और आनन्द उत्पन्न करने वाले होगे ।।६०।।

इति ते कर्म कथितं सृष्टि-प्रावर्तकं पुनः ।
नामानि च गदिष्यामि यत्ते योग्यं भविष्यति ।।६१।।

यह मैंने सृष्टि-प्रवर्तन सम्बन्धी तुम्हारे कर्मों का निर्देश किया । अब मैं पुनः जो तुम्हारे योग्य नाम होंगे उन्हें भी बताऊँगा ।।६१।।

।। मार्कण्डेय-उवाच ।।

इत्युक्त्वाथ च सुरश्रेष्ठो मानसानां मुखानि च ।
आलोक्य चासने पद्मे सूपविष्टोऽभवत् क्षणात् ।।६२।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे कामप्रादुर्भाव वर्णनम् नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

मार्कण्डेय बोले– सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा यह कहकर तथा अपने मानस पुत्रों के सुखों को देखते हुए क्षणभर में अपने पद्मासन पर भलीभाँति बैठ गये ।।६२।।

।। श्रीकालिकापुराण में कामप्रादुर्भाव वर्णन नामक पहला अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।१।।



द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्मामोहवर्णनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततस्ते मुनयः सर्वे तदभिप्रायवेदिनः ।
चक्रुस्तदुचितं नाम मरीच्यत्रिमुखास्तथा ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– उसके बाद उन मरीचि, अत्रि आदि मुनियों ने जो उन ब्रह्मा जी के देखने का अभिप्राय जानते थे, उस पुरुष का उचित नामकरण किया ।।१।।

मुखावलोकनादेव ज्ञात्वा वृत्तान्तमन्यतः ।
दक्षादयस्तु स्रष्टारः स्थानं पत्नीञ्च ते ददुः ।।२।।

ब्रह्माजी का मुख देखने मात्र से ही दक्षादि प्रजापतियों ने सब वृत्तान्त जानकर उस पुरुष को वासस्थान तथा पत्नी भी प्रदान किया ।।२।।

ततो निश्चित्य नामानि मरीचिप्रमुखाद्विजाः ।
ऊचुः सङ्गतमेतस्मै पुरुषाय द्विजोत्तमाः ।।३।।

हे द्विजोत्तमों! तब मरीचि आदि ब्रह्मपुत्रों ने उस पुरुष के नामों का निश्चय करके उसके लिये उचित नाम कहा ।।३।।

काम-नामकरण

।। ऋषय ऊचुः ।।

यस्मात् प्रमथ्य चेतस्त्वं जातोऽस्माकं तथा विधेः ।
तस्मान्मन्मथनाम्ना त्वं लोके ख्यातो भविष्यसि ।।४।।

ऋषि बोले– चूँकि तुम हमारे तथा विधाता के चित्त को मथकर उत्पन्न हुये हो, इसलिये तुम संसार में मन्मथ नाम से प्रसिद्ध होओगे ।।४।।

जगत्सु कामरूपस्त्वं त्वत्समो नहि विद्यते ।
अतस्त्वं काम नाम्नापि ख्यातो भव मनोभव ।।५।।

हे मन से उत्पन्न मनोभव! संसार में तुम कामरूप हो, तुम्हारे समान सुन्दर कोई नहीं है। इसलिए तुम काम नाम से भी प्रसिद्ध होओ ।।५।।

मदनान्मदनाख्यस्त्वं शम्भोर्दर्पाच्च दर्पकः ।
तथा कन्दर्प-नाम्नापि लोके ख्यातो भविष्यसि ।।६।।

उल्लासमय होने से तुम मदन प्रसिद्ध होगे, शम्भु के विक्षोभ कारक होने से दर्पक तथा कन्दर्प नाम से भी तुम लोक में प्रसिद्ध होगे ।।६।।

त्वदाशुगानां यद्वीर्यं तद्वीर्यं न भविष्यति ।
वैष्णवानाञ्च रौद्राणां ब्रह्मास्त्राणाञ्च तादृशम् ।।७।।

तुम्हारे बाणों का जैसा बल (प्रभाव) होगा वैसा पराक्रम विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा के अस्त्रों का भी नहीं होगा ।।७।।

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले ब्रह्मलोके सनातनः ।
तव स्थानानि सर्वाणि सर्वव्यापी भवान् यतः ।
किं वाचातिविशेषेण सामान्ये नास्ति ते समः ।।८।।

तुम सर्वव्यापी हो, इसलिए स्वर्ग, मर्त्य, पाताल, ब्रह्मलोक सभी स्थानों पर तुम्हारा शाश्वत स्थान होगा। अधिक बोलने से क्या ? सामान्य रूप में कौन तुम्हारे समान हो सकता है? ।।८।।

यत्र यत्र भवेत्प्राणी शाद्वलास्तरवोऽथवा ।
तत्र तत्र तव स्थानमस्त्वाब्रह्मसभोदयम् ।।९।।

जहाँ-जहाँ भी कोई प्राणी, वनस्पति या वृक्ष होंगे वहाँ-वहाँ ब्रह्मसभा आदि तक तुम्हारा स्थान होवे ।।९।।

दक्षोऽयं भवतः पत्नीं स्वयं दास्यति शोभनाम् ।
आद्यः प्रजापतिर्यो हि यथेष्टं पुरुषोत्तम ।।१०।।

हे पुरुषोत्तम! ये जो प्रथम प्रजापति दक्ष हैं, येही स्वयं तुम्हें इच्छित सुन्दरी पत्नी प्रदान करेंगे ।।१०।।

एषा च कन्यका चारुरूपा ब्रह्ममनोभवा ।
सन्ध्यानामेति विख्याता सर्वलोके भविष्यति ।।११।।

यह जो ब्रह्मा के मन से उत्पन्न, सुन्दर रूपवाली कन्या है, यह सब लोकों में सन्ध्या नाम से प्रसिद्ध होगी ।।११।।

ब्रह्मणो ध्यायतो यस्मात् सम्यग्जाता वराङ्गना ।
अतः सन्ध्येति लोकेऽस्मिन्नाम्ना ख्यातिर्भविष्यति ।।१२।।

चूँकि यह सुन्दरी ब्रह्मा के ध्यान करते समय उत्पन्न हुई है; इसलिए यह इस संसार में 'सन्ध्या' इस नाम से प्रसिद्ध होगी ।।१२।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा मुनयः सर्वे तूष्णीं तस्थुर्द्विजोत्तमाः ।
अवेक्ष्य ब्रह्मवदनं विनयावनताः पुरः ।।१३।।

मार्कण्डेय बोले– हे द्विजोत्तमों ! ऐसा कहकर सब मुनि नम्रतापूर्वक सामने झुककर, ब्रह्मा का मुख देखते हुये चुप हो गये ॥१३॥

ततः कामोऽपि कोदंडमादाय कुसुमोद्भवम् ।
उन्मादनेति विख्यातं कान्ताभ्रूतुल्य-वेल्लिताम् ॥१४॥
कौसुमानि तथास्त्राणि पञ्चादाय द्विजोत्तमाः ।
हर्षणं रोचनाख्यञ्च मोहनं शोषणं तथा ॥१५॥
मारणञ्चेति संज्ञाभिर्मुनिमोहकराण्यपि ।
प्रच्छन्नरूपी तत्रैव चिन्तयामास निश्चयम् ॥१६॥

हे द्विजोत्तमों! तब कामदेव भी उन्मादन नाम से प्रसिद्ध, स्त्री की भौंह के समान कम्पायमान, पुष्पों का बना हुआ अपना धनुष तथा पुष्पनिर्मित हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण और मारण नामक पाँच आयुधों को, जो मुनियों का मन मोहने वाले थे, गुप्तरूप से लेकर वहीं निश्चय पर विचार करने लगा ॥१४-१६॥

ब्रह्मणा मम यत्कार्यं समुद्दिष्टं सनातनम् ।
तदिहैव करिष्यामि मुनीनां सन्निधौ विधेः ॥१७॥

ब्रह्मा जी ने मेरे लिए जो शाश्वतकार्य निर्दिष्ट किया है, उसे मैं यहीं ब्रह्मा एवं मुनियों के सम्मुख सम्पन्न करूँगा ॥१७॥

तिष्ठन्ति मुनयश्चात्र स्वयञ्चापि प्रजापतिः ।
एषा सन्ध्या वरस्त्री च दक्षोऽप्यत्र प्रजापतिः ॥१८॥

यहाँ मुनिगण उपस्थित हैं। स्वयं प्रजापतिब्रह्मा भी उपस्थित हैं। श्रेष्ठ स्त्री यह सन्ध्या और प्रजापतिदक्ष भी उपस्थित हैं ॥१८॥

एते शरव्यभूता मे भविष्यन्त्यद्य निश्चयम् ।
सन्ध्यापि ब्रह्मणा प्रोक्तमिदानीमेव तद्वचः ॥१९॥
अहं विष्णुर्हरश्चापि तवास्त्रवशवर्तिनः ।
किमन्यैर्जन्तुभिरिति तत्सार्थं करवाण्यहम् ॥२०॥

निश्चय ही ये सब और सन्ध्या भी आज मेरे बाणों का लक्ष्य बनेगी। अभी ब्रह्मा ने जो वचन कहा है कि मैं, विष्णु और शङ्कर भी तुम्हारे अस्त्र के वशीभूत रहेंगे, अन्य जन्तुओं की क्या बात है? उस कथन को मैं सार्थक करूँगा ॥१९-२०॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

इति सञ्चिन्त्यमनसा निश्चित्य च मनोभवः ।
पुष्पज्यां पुष्पचापस्य योजयामास मार्गणैः ॥२१॥

मार्कण्डेय बोले– मनोभव कामदेव ने ऐसा मन में निश्चय कर अपने बाणों से अपने पुष्प-धनुष और पुष्पनिर्मित ज्या (धनुष की डोरी) को सन्नद्ध किया ॥२१॥

आलीढस्थानमासाद्य धनुराकृष्य यत्नतः ।
चकार वलयाकारं कामो धन्विवरस्तदा ।।२२।।

तब श्रेष्ठधनुर्धर कामदेव ने लक्ष्यवेध की मुद्रा में स्थानग्रहण किया तथा प्रयत्नपूर्वक धनुष को वलयाकार बनाया ।।२२।।

संहिते तेन कोदण्डे मारुताश्च सुगन्धयः ।
ववुस्तत्र मुनिश्रेष्ठाः सम्यगाह्लादकारिणः ।।२३।।

हे मुनिश्रेष्ठों! उसके द्वारा धनुष को सुसज्जित करते ही अच्छी प्रकार मन को आह्लादित, उन्मत्त करने वाली सुगन्धित वायु बहने लगी ।।२३।।

ततस्तानथ धात्रादीन् सर्वानेव च मानसान् ।
पृथक् पृथक् पुष्पशरैर्मोहयामास मोहनः ।।२४।।

तब उस मोहन कामदेव ने उन सभी ब्रह्मादि को तथा उनके मानसपुत्रों को अपने पुष्प-वाणों से अलग-अलग मोहित कर दिया ।।२४।।

ततस्ते मुनयः सर्वे मोहिताश्चतुराननः ।
मोहितो मनसा किञ्चिद्विकारं प्रापुरादितः ।।२५।।

तब वे सभी मुनिगण और स्वयं चतुरानन ब्रह्मा ने भी मोहित होकर कुछ मानसिक विकार को प्राप्त किया ।।२५।।

सन्ध्यां सर्वे निरीक्षन्तः सविकाराः मुहुर्मुहुः ।
आसन्प्रवृद्धमदनाः स्त्रीयस्मान्मदवर्द्धिनी ।।२६।।

विकारग्रस्त होकर काम से व्यथित होकर वे बार-बार सन्ध्या नामक स्त्री को, जो मद बढ़ाने वाली थी, देखने लगे ।।२६।।

ततः सर्वान् स मदनो मोहयित्वा पुनः पुनः ।
यथेन्द्रियविकारांस्ते प्रापुस्तानकरोत्तथा ।।२७।।

तब (मानसिक विकार[1] से ग्रस्त हो जाने पर) कामदेव ने उन सब को बार-बार मोहित करके ऐसा उत्तेजित कर दिया कि उनमें इन्द्रिय विकार भी उत्पन्न हो गये ।।२७।।

उदीरितेन्द्रियो धाता वीक्षाञ्चक्रे यदाप्य ताम् ।
तदैव ह्यूनपञ्चाशद्भावा जाताः शरीरतः ।।२८।।
विव्वोकाद्यास्तथा हावाश्चतुःषष्टिकलास्तथा ।
कन्दर्पशरविद्धायाः सन्ध्याया अभवन् द्विजाः ।।२९।।

हे द्विजों! जब ब्रह्मा उत्थितेन्द्रिय होकर उस मदवर्धिनी सन्ध्या को पाने की इच्छा किये तभी उनचास भाव, विव्वोकादि हाव तथा ६४ कलायें भी कामबाण से बिंधी हुई सन्ध्या के शरीर से उत्पन्न हो गयीं ।।२८-२९।।

१. यहाँ विकार पहले मन में उत्पन्न होता है, फिर क्रिया में आता है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का प्रतिपादन किया गया है।

सापि तैर्वीक्ष्यमाणाथ कन्दर्पशरपातजान् ।
चक्रे मुहुर्मुहुर्भावान् कटाक्षावरणादिकान् ।।३०।।

वह भी कामबाण से विद्ध उन प्रजापतियों को बार-बार देखती हुई कटाक्षप्रहारादि भावों को प्रकट करने लगी ।।३०।।

निसर्गसुन्दरी सन्ध्या तान् भावान् मदनोद्भवान् ।
कुर्वन्त्यतितरां रेजे स्वर्नदीव तनूर्मिभिः ।।३१।।

वह स्वाभाविक रूप से सुन्दरी सन्ध्या काम के प्रभाव से उत्पन्न भावों के कारण, अपनी पतली लहरों से युक्त हो स्वर्ग के सौन्दर्य का भी तिरस्कार करती हुई शोभायमान हो रही थी ।।३१।।

अथ भावयुतां सन्ध्यां वीक्षमाणः प्रजापतिः ।
घर्म्माम्भपूरिततनुः अभिलाषमथाकरोत् ।।३२।।

इसके बाद उपर्युक्त भावों से युक्त सन्ध्या को देखकर प्रजापतिब्रह्मा पसीने से भरकर उसकी अभिलाषा करने लगे ।।३२।।

ततस्ते मुनयः सर्वे मरीच्यत्रिमुखा अपि ।
दक्षाद्याश्च द्विजश्रेष्ठाः प्रापुर्वैकारिकेन्द्रियम् ।।३३।।

तब वे सभी मरीचि, अत्रि आदि मुनिगण तथा दक्षादि श्रेष्ठ द्विज भी इन्द्रिय विकार का अनुभव करने लगे ।।३३।।

दृष्ट्वा तथाविधान् दक्षमरीचिप्रमुखान् विधिम् ।
सन्ध्याञ्च कर्मणि निजे श्रद्दधे मदनस्तदा ।।३४।।
यदिदं ब्रह्मणा कर्म ममोद्दिष्टं मयापि तत् ।
कर्तुं शक्यमिति श्रद्धाभावितात्माभवत्तदा ।।३५।।

तब उस प्रकार ब्रह्मा, दक्ष तथा मरीचि आदि एवं सन्ध्या को भी उद्वेलित देखकर कामदेव ने अपने कर्म की सराहना की कि—यदि मेरे द्वारा ब्रह्मा भी इस कर्म में प्रवृत्त किये जा सकते हैं तब तो मैं कुछ भी कर सकता हूँ। इस आत्मप्रशंसा से वह भर गया ।।३४-३५।।

ततो वियद्गतः शम्भुर्विधिं दृष्ट्वा तथाविधम् ।
सदक्षान्मानसाञ्चापि जहासोपजहास च ।।३६।।
ससाधुवादं तान् सर्वान् विहस्य च पुनः पुनः ।
उवाचेदं द्विजश्रेष्ठा लज्जयंस्तान् वृषध्वजः ।।३७।।

हे द्विजश्रेष्ठों! तब भगवान् शङ्कर ने दक्षादि मानस पुत्रों सहित ब्रह्मा को उस प्रकार से लज्जाविहीन अवस्था में देखकर उपहास किया और उन सबको व्यंग्यात्मक धन्यवाद देते हुये हँसकर, बार-बार लज्जित करते हुये यों बोले—।।३६-३७।।

।।ईश्वर उवाच।।

अहो ब्रह्मन् अत्र कथं कामभावाः समुद्गताः ।
दृष्ट्वा स्वतनयां नैतद्योग्यं वेदानुसारिणाम् ।।३८।।

भगवान् शिव बोले– हे ब्रह्मदेव! आप में अपनी कन्या को देखकर ये कामभाव कैसे उत्पन्न हो गये? यह आप जैसे वेदविद् के लिए उचित नहीं है ।।३८।।

यथा माता तथा जामिर्यथा जामिस्तथा सुता ।
एष वै वेदमार्गस्य निश्चयस्त्वन्मुखोत्थितः ।
कथन्तु काममात्रेण तत्ते विस्मारितं विधे ।।३९।।

हे विधाता! जैसी माता होती है, वैसी ही जामि (बहन, पुत्रवधू आदि निकट सम्बन्धी स्त्रियाँ) होती हैं। जैसी जामि होती है वैसी ही पुत्री होती है। यही आपके द्वारा निर्धारित वेदमार्ग है। आपने अपने ही द्वारा बताये गये इस वेदविधान को काम के प्रभाव से कैसे भुला दिया? ।।३९।।

धैर्यं जागरितं ब्रह्मन् समस्तं चतुरानन ।
कथं क्षुद्रेण कामेन तत्ते विघटितं विधे ।।४०।।

हे विधाता! हे चतुरानन! हे ब्रह्मदेव! जो समस्त जागृत धैर्य था, उसे आपने क्षुद्र काम प्रभाव से क्यों नष्ट कर दिया? ।।४०।।

एकान्तयोगिनः कस्मात् सर्वज्ञा दिव्यदर्शनाः ।
कथं दक्षमरीच्याद्या लोलुपाः स्त्रीषु मानसाः ।।४१।।

सब जानने वाले, दिव्य-दर्शन वाले, एकान्त योगी, दक्ष, मरीचि आदि, स्त्री के प्रति लोलुपचित्त क्यों हो गये? ।।४१।।

कथं कामोऽपि मन्दात्मा प्राप्तकर्माधुनैव तु ।
युष्मान् शरव्यान् कृतवानकालज्ञोऽल्पचेतसः ।।४२।।

अभी-अभी अपने कार्य का निर्धारण होते ही समय का ज्ञान न रखने के कारण इस मन्दबुद्धि काम ने भी कैसे तुम सबको अपना लक्ष्य बना लिया? ।।४२।।

धिगस्तु तं मुनिश्रेष्ठं यस्य कान्ताजनो हठाद् ।
धैर्यमाकृष्य लौल्येषु मज्जयत्यपि तन्मनः ।।४३।।

उस मुनिवर को धिक्कार है, जिसके धैर्य को स्त्रियाँ बलपूर्वक आकर्षित करके, उसका मन लोलुपता में डुबा देती हैं ।।४३।।

।।मार्कण्डेय उवाच।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा लोकेशो गिरिशस्य च ।
व्रीडया द्विगुणीभूतस्वेदार्द्रो ह्यभवत् क्षणात् ।।४४।।

मार्कण्डेय बोले– लोकेश (ब्रह्मा) उस गिरीश (शङ्कर) के इस प्रकार के वचन को सुनकर क्षणभर में लज्जा से दूना पसीने-पसीने हो गये ॥४४॥

ततो निगृह्यैन्द्रियकं विकारं चतुराननः ।
जिघृक्षुरपि तत्याज तां सन्ध्यां कामरूपिणीम् ॥४५॥

तब ब्रह्मा ने अपने इन्द्रिय विकार को नियन्त्रित कर, कामरूपिणी सन्ध्या को, उसको ग्रहण करने की इच्छा रखते हुए भी, छोड़ दिया ॥४५॥

पितृगणों की उत्पत्ति

तच्छरीरात्तु घर्माम्भो यत्पपात द्विजोत्तमाः ।
अग्निष्वात्ता वर्हिषदो जाताः पितृगणास्तथाः ॥४६॥

हे द्विजोत्तमों! उस समय उनके शरीर से जो पसीने की बूँदे गिरीं, उनसे अग्निष्वात्त तथा बर्हिषद् नामक पितृगण उत्पन्न हुये ॥४६॥

भिन्नाञ्जननिभाः सर्वे फुल्लराजीवलोचनाः ।
नितान्त-यतयः पुण्याः संसारविमुखाः पराः ॥४७॥

वे सभी अञ्जन के समान काले वर्ण के, खिले हुए कमल के समान नेत्र वाले, अत्यन्त नियन्त्रित चित्त, पवित्र, संसार से विमुख एवं श्रेष्ठ थे ॥४७॥

सहस्राणां चतुःषष्टिरग्निष्वात्ताः प्रकीर्तिताः ।
षडशीतिसहस्राणि तथा वर्हिषदो द्विजाः ॥४८॥

हे द्विजों ! अग्निष्वात्त पितृगण चौसठ हजार तथा बर्हिषद् पितृगण छियासी हजार बताये गये हैं ॥४८॥

रति-जन्म

घर्माम्भः पतितं भूमौ यद्दक्षस्य शरीरतः ।
समस्तगुणसम्पन्ना तस्माज्जाता वराङ्गना ॥४९॥

दक्ष प्रजापति के शरीर से जो पसीने की बूँदें पृथ्वी पर गिरीं, उनसे समस्त गुणों से युक्त श्रेष्ठ अङ्गों वाली एक सुन्दरी उत्पन्न हुई ॥४९॥

तन्वङ्गी तनुमध्या च तनुरोमावली शुभा ।
मृद्वङ्गी चारुदशना तप्तकाञ्चनसुप्रभा ॥५०॥

वह पतले अङ्गों, पतली कटि तथा हल्की रोमावली जैसे शुभ लक्षणों से युक्त, कोमल अङ्गों वाली, सुन्दर दाँत तथा तपे हुए सोने की आभा वाली थी ॥५०॥

मरीचिप्रमुखैः षड्भिर्निगृहीतेन्द्रियक्रिया ।
ऋते क्रतुं वशिष्ठञ्च पुलस्त्याङ्गिरसौ तदा ॥५१॥

तब क्रतु, वशिष्ठ, पुलस्त्य, अङ्गिरा के अतिरिक्त मरीचि आदि छः प्रजापतियों ने इन्द्रियनिग्रह का आश्रय लिया ॥५१॥

क्रत्वादीनां चतुर्णाञ्च यो भूमौ निपपात ह ।
तेभ्यः पितृगणा जाता अपरे द्विजसत्तमाः ॥५२॥

सोमपा आज्यपा नाम्ना तथैवान्ये सुकालिनः ।
हविर्भुजस्तु ते सर्वे कव्यवाहाः प्रकीर्तिताः ।।५३।।

हे द्विजवर्यो! क्रतु आदि चार प्रजापतियों के शरीर से जो स्वेद-विन्दु भूमि पर गिरे उनसे (अग्निष्वात्त और बर्हिषद्गणों के अतिरिक्त) अन्य पितृगण उत्पन्न हुये। वे सोमपा, आज्यपा, सुकालिन् तथा हविर्भुक् नाम के थे, वे सभी कव्यवाह कहे गये हैं ।।५२-५३।।

क्रतोस्तु सोमपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः ।
आज्यपाख्याः पुलस्त्यस्य हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुताः ।।५४।।

क्रतु के सोमपा (सोमरस का पान करने वाले) वशिष्ठ के सुकालिन्, पुलस्त्य के आज्यपा (घी पीने वाले) तथा अङ्गिरा के हविष्मत्त (हविष्य भुक्) पितृगण, पुत्ररूप में उत्पन्न हुये ।।५४।।

जातेषु तेषु विप्रेन्द्रा अग्निष्वात्तादिकेष्वथ ।
लोकानां पितृवर्गेषु कव्यवाहाः समन्ततः ।।५५।।
सर्वेषामेव भूतानां ब्रह्माभूतः पितामहः ।
सन्ध्या पितृप्रसूर्भूता तदुद्देशाद्यतोऽभवत् ।।५६।।

हे विप्रश्रेष्ठों! पितृगणों में कव्यवाह (सोमपा, आज्यपा, सुकालिन् और हविर्भुक्) तथा अग्निष्वात्तादि पितरों की उत्पत्ति के पश्चात् ब्रह्मा संसार के सभी प्राणियों के उत्पन्नकर्ता, पितामह (दादा) हुये। ये पितृगण उसी को उद्देश्य कर उत्पन्न स्वेद के विन्दु से जन्म लिये थे; इसलिए सन्ध्या पितृगणों की जननी (माता) हुई ।।५५-५६।।

अथ शङ्करवाक्येन लज्जितः स पितामहः ।
कन्दर्पाय चुकोपाशु भ्रुकुटीकुटिलाननः ।।५७।।

इसके बाद शङ्कर के वचनों से लज्जित ब्रह्मा ने कामदेव के प्रति क्रोध प्रकट किया, जिससे उनकी भौंहे एवं मुखमण्डल टेढ़े पड़ गये ।।५७।।

पुरैव तदभिप्रायं विदित्वा सोऽपि मन्मथः ।
स्वबाणान् सञ्जहाराशु भीतः पशुपतेर्विधेः ।।५८।।

उस मन्मथ कामदेव ने ब्रह्मा के उस अभिप्राय को पहले ही जानकर भयवश अपने बाणों को शीघ्र ही भगवान् शङ्कर एवं ब्रह्मा पर छोड़ दिया ।।५८।।

ततः क्रोधसमाविष्टो ब्रह्मा लोक-पितामहः ।
यच्चकार द्विजेन्द्रास्तच्छृणुध्वं सुसमाहिताः ।।५९।।

।। श्रीकालिकापुराणे ब्रह्ममोहनो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

हे द्विजवरों! तब लोक पितामह ब्रह्मा ने क्रोध से भरकर जो कुछ किया, उसे भलीभाँति समाहितचित्त से तन्मयतापूर्वक आप सब सुनिये ।।५९।।

।। श्रीकालिकापुराण में ब्रह्ममोहन नामक दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।२।।



तृतीयोऽध्यायः

रतिउत्पत्तिवर्णनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततः कोपसमाविष्टः पद्मयोनिर्जगत्पतिः ।
प्रजज्वालातिबलवद्दिधक्षुरिव पावकः ।।१।।
उवाच चेश्वरं कामो भवतः पुरतो यतः ।
पुष्पेषुभिर्मामभजत् तत्फलस्याप्नुयाद्धर ।।२।।
तव नेत्राग्निनिर्दग्धः कन्दर्पो दर्पमोहितः ।
भविष्यति महादेव कृत्वा कर्मातिदुष्करम् ।।३।।

मार्कण्डेय बोले– तब पद्म से उत्पन्न, संसार के स्वामी, क्रोध से भरे हुये ब्रह्मा, जलाने को उद्यत अग्नि की भाँति जल उठे और भगवान् शङ्कर से बोले—हे हर! चूँकि कामदेव ने आपके सम्मुख ही मुझ पर अपने पुष्पबाणों का प्रहार किया है, इसलिए यह उसका फल प्राप्त करे। हे महादेव! अत्यन्त दुष्करकर्म करके यह घमण्ड से भरा हुआ कामदेव आपके नेत्र की अग्नि से दग्ध होवे ।।१-३।।

इति वेधाः स्वयं कामं शशाप द्विजसत्तमाः ।
समक्षं व्योमकेशस्य मुनीनाञ्च यतात्मनाम् ।।४।।

हे द्विजसत्तमों! इस प्रकार से ब्रह्मा ने यतात्मा मुनियों तथा भगवान् शङ्कर के सामने कामदेव को स्वयं शाप दिया ।।४।।

अथ भीतो रतिपतिस्तत्क्षणात् त्यक्तमार्गणः ।
प्रादुर्बभूव प्रत्यक्षं शापं श्रुत्वातिदारुणम् ।।५।।
उवाच चेदं ब्रह्माणं सदक्षं समरीचिकम् ।
तथ्यञ्च गद्गदं भीत्या भीतिर्हि गुणहानिकृत्[1] ।।६।।

इसके बाद उसी समय कामदेव उस अत्यन्त भयानक शाप को सुनकर भयभीत हो गया और बाण को छोड़कर शीघ्र प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हुआ, तथा दक्ष एवं मरीचि के सहित ब्रह्मा जी से भयवश गद्‌गद् वाणी से यह कहा—यह वास्तविकता है कि भय गुणों को हानि पहुँचाने वाला होता है ।।५-६।।

---

१. भीतिर्हि गुणहानिकृत् यह सूक्ति वाक्य है ।

।। मन्मथ उवाच ।।

ब्रह्मन् किमर्थं भवता शप्तोऽहमतिदारुणम् ।
अनागस्तव लोकेश न्यायमार्गानुसारिणा ।।७।।

मन्मथ कामदेव बोले- हे ब्रह्मन्! हे लोकेश! न्याय-पथ का अनुसरण करने वाले, निरपराध मैं आपके द्वारा अत्यन्त भयानक शाप से क्यों शापित हुआ? ।।७।।

त्वयैवोक्तन्तु तत् कर्म यत्तु कुर्यामहं विभो ।
तत्र योग्यो न शापो मे यतो नान्यन्मयाकृतम् ।।८।।

हे विभो! जो मैंने किया है वह तो आपके द्वारा मेरे लिए निर्धारित कर्म था। मैंने उस नियत कर्म से विपरीत कुछ भी नहीं किया है। अतः आपका मुझे उस हेतु शाप देना उचित नहीं लगता ।।८।।

अहं विष्णुस्तथा शम्भुः सर्वे त्वच्छरगोचराः ।
इति यद्भवताप्रोक्तं तन्मयापि परीक्षितम् ।।९।।

"मैं, विष्णु तथा भगवान् शङ्कर सभी तुम्हारे बाण के लक्ष्य होंगे।" ऐसा जो आपने कहा था। मैंने उस कथन की परीक्षा ही ली ।।९।।

नापराधो ममास्त्यत्र ब्रह्मन् मयि निरागसि ।
दारुणं शमयस्वैनं शापं मम जगत्पते ।।१०।।

हे ब्रह्मन्! इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। हे जगत्पते! मेरे जैसे निरपराध को, मुझे दिये गये भयानक शाप का आप शमन कीजिये ।।१०।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा विधाता जगतां पतिः ।
प्रत्युवाच यतात्मानं मदनं सदयं द्रुतः ।।११।।

मार्कण्डेय बोले- उस (कामदेव) के इस वचन को सुनकर जगत्पति ब्रह्मा ने दया के पात्र, नियतात्मा, कामदेव से शीघ्र प्रत्युत्तर में कहा—

।। ब्रह्मोवाच ।।

आत्मजा मम सन्ध्येयं यस्मादेतत्सकामतः ।
लक्ष्यीकृतोऽहं भवता ततः शापो मया कृतः ।।१२।।

ब्रह्मा बोले- यह सन्ध्या मेरी पुत्री है। तुमने मुझे इसके कामवश लक्ष बनाया। इसीलिए मैंने तुम्हें शाप दिया है ।।१२।।

अधुना शान्तरोषोऽहं त्वां वदामि मनोभव ।
भवतः शापशमनं भविष्यति यथा तथा ।।१३।।

हे मनोभव! अब मेरा क्रोध शान्त हो गया है। इसीलिए तुम से यह बता रहा हूँ, जिससे तुम्हारा शापमोचन हो ।।१३।।

त्वं भस्मभूतो मदन भर्गलोचनवह्निना ।
तस्यैवानुग्रहात् पश्चाच्छरीरं समवाप्स्यसि ।।१४।।
यदा हरो महादेवः कुर्याद्दारपरिग्रहम् ।
तदा स एव भवतः शरीरं प्रापयिष्यति ।।१५।।

हे मदन (कामदेव) ! तुम भगवान् शङ्कर के नेत्र से उत्पन्न अग्नि से भस्म होकर पुनः उन्हीं की कृपा से शरीर धारण करोगे। जब भगवान् शङ्कर अपनी पत्नी का वरण करेंगे तब वे ही तुम्हें पुनः शरीर प्राप्त करायेंगे ॥१४-१५॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एवमुक्त्वाथ मदनं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
अन्तर्दधे मुनीन्द्राणां मानसानाञ्च पश्यताम् ।।१६।।

मार्कण्डेय बोले– लोक के पितामह ब्रह्मा जी कामदेव से ऐसा कहकर मानसपुत्रों और मुनिवरों के देखते-देखते अन्तर्धान हो गये ॥१६॥

तस्मिन्नन्तर्हिते शम्भुः सर्वेषाञ्च विधातरि ।
यथेष्टदेशं गतवान् ब्रह्मा मारुतरंहसा ।।१७।।

सब के निर्माता उस ब्रह्मा के अन्तर्हित हो जाने पर भगवान् शङ्कर भी वायुवेग से अपने इच्छित स्थान को चले गये ॥१७॥

वेधस्यन्तर्हिते तस्मिन् शम्भौ निजास्पदे गतः ।
दक्षः प्राहाथ कन्दर्पं पत्नीं तस्य निदर्शयन् ।।१८।।

ब्रह्मा के अन्तर्हित होने तथा शिव के अपने स्थान चले जाने के पश्चात् दक्ष प्रजापति ने कामदेव को उसकी पत्नी को दिखाते हुए कहा—॥१८॥

।। दक्ष उवाच ।।

मद्देहजेयं कन्दर्प मद्रूप - गुणसंयुता ।
एनां गृह्णीष्व भार्यार्थे भवतः सदृशीं गुणैः ।।१९।।

दक्ष बोले– हे कन्दर्प! यह मेरे शरीर से उत्पन्न, मेरे समान रूप-गुण युक्त, आप के समान गुणों वाली है, इसे अपनी पत्नीरूप में स्वीकार कीजिए ॥१९॥

एषा तव महातेजाः सर्वदा सहचारिणी ।
भविष्यति यथाकामं धर्मतो वशवर्तिनी ।।२०।।

यह अत्यन्त तेजस्वी, सदैव सहचरण करने वाली, तुम्हारी कामनाओं के अनुरूप, धर्मानुसार वश में रहने वाली होगी ॥२०॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा प्रददौ दक्षः देहस्वेदम्बुसम्भवाम् ।
कन्दर्पायाग्रतः कृत्वा नाम कृत्वा रतीति ताम् ।।२१।।

मार्कण्डेय बोले– यह कह कर दक्ष प्रजापति ने अपने शरीर के पसीने से उत्पन्न उस देवी को 'रति' ऐसा नामकरण करके कामदेव को पत्नीरूप में दे दिया॥२१॥

तां वीक्ष्य मदनो वामां रत्याख्यां सुमनोहराम् ।
आत्माशुगेन विद्धोऽसौ मुमोह रतिरञ्जितः ॥२२॥

कामदेव, रति नामक उस सुन्दर, मन का हरण करने वाली स्त्री को देखकर, अपने ही बाणों से घायल हो, रतिभाव से सुशोभित हो, मोहित हो गया ॥२२॥

क्षणप्रभावदेकान्तगौरी मृगदृशी सदा ।
लोलापांग्यथ तस्यैव मृगीव सदृशी वभौ ॥२३॥

इसके बाद उसके ही क्षणिक प्रभाव से वह अत्यन्त गोरी, सदैव मृग के समान चञ्चल दृष्टि वाली रति, अपने चञ्चल कटाक्षों के कारण मृगी की भाँति हो गई॥२३॥

रतिरूप वर्णन

तस्या भ्रूयुगलं वीक्ष्य संशयं मदनोऽकरोत् ।
उन्मादकृन्मे कोदण्डं किं वा अस्यां निवेशितम् ॥२४॥

उसकी दोनों भौहों को देखकर कामदेव ने यह सन्देह किया, क्या मुझे उन्मत्त करने के लिए इसे धनुष धारण कराया गया है? ॥२४॥

कटाक्षाणामाशुगतिं दृष्ट्वा तस्या द्विजोत्तमाः ।
आशुगत्वं निजास्त्राणां श्रद्दधे न च चारुताम् ॥२५॥

हे द्विजवरों! उसे उस रति के कटाक्षों की तीव्रता देखकर अपने अस्त्रों की तीव्रता भी अच्छी नहीं लगी ॥२५॥

तस्याः स्वभावसुरभि धीरं श्वासानिलं तथा ।
आघ्राय मदनः श्रद्धां त्यक्तवान् मलयानिले ॥२६॥

उसके स्वभावतः सुरभित, धीर श्वास वायु को सूँघकर कामदेव की मलयाचल की वायु के प्रति भी श्रद्धा नहीं रही ॥२६॥

पूर्णेन्दुसदृशं वक्त्रं दृष्ट्वा भ्रूलक्ष्मलक्षितम् ।
न निश्चिकाय मदनो भेदत्वन्मुखचन्द्रयोः ॥२७॥

भौहों की शोभा से सुशोभित, पूर्ण चन्द्रमा के समान उसके सुन्दर मुख को देखकर कामदेव उसके मुख तथा चन्द्रमा में अन्तर निश्चित न कर सका ॥२७॥

सुवर्णपद्मकलिकातुल्यं तस्याः कुचद्वयम् ।
रेजे चुचुकयुग्मेन भ्रमरेणैव सेवितम् ॥२८॥

उसके चूचुकद्वय से सुशोभित स्तनद्वय भौरों से सेवित स्वर्णकमल की कलियों के समान सुशोभित हो रहे थे ॥२८॥

दृढपीनोन्नतघन - स्तनमध्याद्विलम्बिनीम् ।
आनाभितो रोमराजिं तन्वीं चार्वायतां शुभाम् ।।२९।।
ज्यां पुष्पधनुषः कामः षट्पदावलिसम्भृताम् ।
विसस्मार च यस्मात्तां विगृह्यैनां निरीक्षते ।।३०।।

तब पुष्पधनुष धारण करने वाला कामदेव भौरों के कतार से युक्त अपने धनुष की ज्या (डोरी) को भूल गया और उसे छोड़कर रति की रोमावली को देखने लगा। जो उसकी नाभि से उठकर उसके उठे हुए पुष्ट, विशाल स्तनों तक पहुँचती थी। वह पतली किन्तु फैली हुई सुन्दर और शोभन थी ।।२९-३०।।

गम्भीरनाभिरन्ध्रान्तश्चतुष्पार्श्वत्वगावृताम् ।
आननाब्जेक्षणद्वन्द्वमारक्तकमलं यथा ।।३१।।

उसकी नाभि भीतर की ओर गहरी तथा चारों ओर चमड़े से ढकी हुई थी और उसके मुख एवं दोनों नेत्र, कमल के समान लाल थे ।।३१।।

क्षीणामध्येन वपुषा निसर्गाष्टपदप्रभा ।
रत्नवेदीव ददृशे कामेन द्विजसत्तमाः ।।३२।।

हे द्विजश्रेष्ठों! शरभ के समान स्वाभाविक रूप से अपने शरीर के मध्यभाग, कटि प्रदेश के क्षीण पतले होने के कारण वह कामदेव को रत्नवेदी के समान दिखी।।३२।।

रम्भास्तम्भायतं स्निग्धं तदुरुयुगलं मृदु ।
निजशक्तिसमं कामो वीक्षाञ्चक्रे मनोहरम् ।।३३।।

उसके दोनों जङ्घे विशाल केले के खम्भे के समान चिकने, विस्तृत और कोमल थे। अतः कामदेव ने उन्हें अपनी शक्ति के समान सुन्दर समझा ।।३३।।

आरक्तपार्ष्णिपादाग्रप्रान्तभागं पदद्वयम् ।
अनुरागमयं मेने स्थितं तस्यां मनोभवः ।।३४।।

उसके दोनों पैर एड़ियों से अङ्गुलियों के अन्तिम छोर तक लाल थे। कामदेव ने उसे अपने प्रति प्रेमपूर्ण माना ।।३४।।

तस्याः करयुगं रक्तनखरैः किंशुकोपमैः ।
वृत्ताभिरङ्गुलिभिश्च सूक्ष्माग्रभिर्मनोहरैः ।।३५।।

उसके दोनों हाथ, लाल नखों, पतले अग्रभाग वाली अङ्गुलियों से घिरे हुए, किंशुक के समान मनोहर लग रहे थे ।।३५।।

इति दृष्ट्वा स्मरो मेने ममास्त्रैर्द्विगुणीकृतैः ।
मां मोहयितुमुद्युक्ता किमेषा द्विजसत्तमाः ।।३६।।

हे द्विजवरों! यह देखकर कामदेव ने समझा कि मेरे अस्त्रों को दूना प्रभावशाली करके मुझे ही मोहित करने के लिए यह कौन उद्यत हो गई है?

तद्बाहुयुगलं कान्तं मृणालयुगलायतम् ।
मृदुस्निग्धं रराजातिकान्ति - तोयप्रवाहवत् ।।३७।।

कमलनाल के जोड़े की भाँति कोमल, चिकनी, सुन्दर और पुष्ट उसकी दोनों भुजायें शोभा के जल-प्रवाह की भाँति अत्यधिक सुशोभित हो रही थीं ॥३७॥

नीलनीरदसङ्काशः केशपाशो मनोहरः ।
चमरीबालभारवद्विभातिस्म स्मरप्रियः ।।३८।।

उसके केशपाश नीले बादल के समान सुन्दर थे और बाल कामदेव को प्रिय लगते हुये चमरी के भार के समान शोभा दे रहे थे ॥३८॥

तां वीक्ष्य मदनो देवीं रतिमतिमनोहराम् ।
कान्तितोयौघसम्पूर्णां कुचवक्त्राब्जकुड्मलाम् ।।३९।।
वक्त्रपद्मां चारुवाहु - मृणालीशकलान्विताम् ।
भ्रूयुग्मविभ्रमद्व्रात - तनूर्मिपरिराजिताम् ।।४०।।
अपूर्णकचवक्त्रौघ - नेत्रनीलोत्पलान्विताम् ।
तनुलोमानिशैवालां मनोद्रुमविशातिनीम् ।।४१।।
निम्ननाभिह्रदां दक्षप्रालेयाद्रिसमुद्भवाम् ।
गङ्गामिव महादेवो जग्राहोत्फुल्ललोचनः ।।४२।।

जो कान्ति, शोभा के जल से परिपूर्ण थी, जिसके स्तनों के मुख, कमल की कली के समान थे। जिसके मुख कमल के समान सुन्दर, भुजायें कमलनाल-खण्डवत् थीं। जिसकी भौंहें पतली लहरों के समूह का भ्रम पैदा कर रही थीं, जिसके दृष्टिपात भौरों के समूह का बोध करा रहे थे, जिसके नेत्र नीले कमल के समान नीले थे, जिसकी रोमावली शैवाल के समान पतली थी, जो मनरूपी वृक्षों को उखाड़ फेंकने में समर्थ थी, जिसकी नाभि, ह्रद के समान गहरी थी, जो दक्षरूपी हिमालय से उत्पन्न गङ्गा के समान थी, उस अतीव सुन्दरी रति को जैसे महादेव ने गङ्गा देवी को प्रसन्न नेत्रों से ग्रहण कर लिया था, उसी प्रकार कामदेव ने भी ग्रहण कर लिया ॥३९-४२॥

उवाच च तदा दक्षं कामो मोदभरान्वितः ।
विस्मृत्य शापञ्च तदा विधिदत्तं सुदारुणम् ।।४३।।

तब प्रसन्नता से भरकर कामदेव ने ब्रह्मा के दिये हुये भयानक शाप को भी उस समय भूलकर, दक्ष प्रजापति से कहा- ॥४३॥

।। मदन उवाच ।।

अनया सहचारिण्या सम्यक्सुन्दररूपया ।
समर्थो मोहितुं शम्भुं किमन्यैर्जन्तुभिर्विभो ।।४४।।

मदन बोले- हे विभो! इस भलीभाँति सुन्दरी सहचारिणी के साथ मैं भगवान् शङ्कर को भी मोहित कर सकता हूँ। फिर अन्य प्राणियों से क्या? ॥४४॥

यत्र यत्र मया लक्ष्यं क्रियते धनुषोऽनघ ।
तत्रानयापि चेष्टव्यं मायया परमाह्वया ।।४५।।

हे निष्पाप! जहाँ-जहाँ मैं अपने धनुष का लक्ष्य बनाऊँ, वहीं-वहीं यह भी परमा नामक माया से चेष्टा करे ।।४५।।

यदा देवालयं यामि पृथिवीं वा रसातलम् ।
तदैषाप्यस्तु सध्रीची सर्वदा चारुहसिनी ।।४६।।

जब मैं देवलोक, पृथ्वीलोक या रसातल में जाऊँ, तब भी यह सुन्दर हँसी वाली सदा मेरी सहचरी रहे ।।४६।।

यथा पद्मालया विष्णोर्जलदानां यथा तडित् ।
तथा ममैषा भविता प्रजाध्यक्षसहायिनी ।।४७।।

हे प्रजापति ! जैसे लक्ष्मी विष्णु की तथा विद्युत् बादलों की सहायिका होती है, वैसे ही यह भी मेरी सहायिका होवे ।।४७।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा मदनो देवीं रतिं जग्राह सोत्सुकः ।
सागरादुत्थितां लक्ष्मीं हृषीकेश इवोत्तमाम् ।।४८।।

मार्कण्डेय बोले– ऐसा कहकर उत्सुक कामदेव ने उत्तम देवी रति को उसी प्रकार ग्रहण कर लिया, जिस प्रकार सागर से उत्पन्न लक्ष्मी को भगवान् विष्णु ने ग्रहण कर लिया था ।।४८।।

रराज स तया सार्द्धं भिन्नपीतप्रभः स्मरः ।
जीमूत इव सन्ध्यायां सौदामिन्या मनोज्ञया ।।४९।।

पीत प्रभा से रहित कामदेव उसके साथ सन्ध्या समय सुन्दर बिजली से युक्त बादल के समान शोभायमान हुआ ।।४९।।

इति रतिपतिरुच्चैर्मोदयुक्तो रतिं तां
हृदि परिजगृहे यां योगदर्शीव विद्याम् ।
रतिरपि पतिमग्र्यं प्राप्य तोषञ्च लेभे
हरिमिव कमलोत्था पूर्णचन्द्रोपमास्या ।।५०।।

।। श्रीकालिकापुराणे रत्युत्पत्तिवर्णनं नामतृतीयोऽध्यायः ।।३।।

इस प्रकार से रति पति कामदेव ने अत्यधिक प्रसन्नता से भरकर, जिस प्रकार योगीजन विद्या को हृदय से लगा लेते हैं, उसी प्रकार उस रति को हृदय से लगा लिया। पूर्णचन्द्रमा के समान मुखवाली रति ने भी श्रेष्ठ पति कामदेव को पाकर विष्णु को प्राप्त लक्ष्मी की भाँति सन्तोष का अनुभव किया ।।५०।।

।। श्रीकालिकापुराण में रतिउत्पत्तिवर्णन नामक तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।३।।



चतुर्थोऽध्यायः

वसन्तोत्पत्तिः

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततः प्रभृति धातापि यदैवान्तर्हितः पुरा ।
चिन्तयामास सततं शम्भुवाक्यविनिंदितः ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– तब ब्रह्मा जी जो पहले ही शङ्कर के वाक्य से निन्दित हो अन्तर्हित हो गये थे, सोचने लगे ॥१॥

कान्ताभिलाषमात्रं मे दृष्ट्वा शम्भुरगर्हयत् ।
मुनीनां पुरतः कस्मात् स दारान् संग्रहीष्यति ।।२।।

मेरे द्वारा पत्नीप्राप्ति की इच्छा मात्र ही देखकर ऋषियों के सम्मुख जिस शङ्कर ने मुझे अपमानित किया था, अब वह स्वयं दारग्रहण (विवाह) कैसे करेंगे? ॥२॥

का वा भवित्री तज्जाया का च तन्मनसि स्थिता ।
योगमार्गमवज्ञाप्य तस्य मोहं करिष्यति ।।३।।

उनकी पत्नी कौन होगी? कौन उनके मन में स्थित हो योगमार्ग की अवज्ञा कर उनको मोहित करेगी? ॥३॥

मन्मथोऽपि समर्थो नो भविष्यत्यस्य मोहने ।
नितान्तयोगी वामानां नामापि सहते न सः ।।४।।

कामदेव भी उनको मोहित करने में समर्थ नहीं होगा। वे अत्यन्त योगी हैं, उन्हें स्त्रियों का नाम भी सहन नहीं होता ॥४॥

अगृहीतेषु दारेषु हरेषु कथमादितः ।
मध्येऽन्ते च भवेत् सृष्टिस्तद्वधो न न्यकारितः ।।५।।

यदि भगवान् शङ्कर दारपरिग्रहण (विवाह) नहीं करेंगे और सृष्टि का नाश नहीं करेंगे तो आदि-मध्य-अन्त्य क्रम से सृष्टि कैसे होगी? ॥५॥

केचिद्भविष्यन्ति भुवि मया बध्या महाबलाः ।
केचिद्विष्णोबाधनीयाः केचिच्छम्भोरुपायतः ।।६।।

पृथ्वी पर कुछ महाबली मेरे द्वारा मारे जायेंगे, कुछ विष्णु द्वारा रोके जायेंगे तथा कुछ को भगवान् शङ्कर अपने उपायों से नियंत्रित करेंगे ॥६॥

संसारविमुखे शम्भौ तद्विकारविरागिणो ।
अस्मादृते न कर्मान्यत् करिष्यति न संशयः ॥७॥

शम्भु के संसार और उसके विकार से अत्यन्त विमुख तथा विरागी हो जाने पर हम लोगों के अतिरिक्त कोई भी इन कर्मों को नहीं कर सकता। इसमें कोई संशय नहीं है ॥७॥

चिन्तयिन्निति लोकेशो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
पुनर्ददर्श भूमिस्थान् दक्षादीन् वियति स्थितः ॥८॥

ऐसा सोचकर स्वयं अन्तरिक्ष में स्थित हुये, लोकों के स्वामी, संसार के पितामह ब्रह्मा ने पुनः दक्ष आदि भूमिस्थित प्रजापतियों को देखा ॥८॥

रतिद्वितीयं मदनं मोदयुक्तं निरीक्ष्य च ।
पुनस्तत्र गतः प्राह सान्त्वयन् पुष्पसायकम् ॥९॥

और रति सहित प्रसन्नचित्त कामदेव को देखकर पुनः उसके समीप जाकर उस पुष्पसायक (कामदेव) को सान्त्वना देते हुये बोले ॥९॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

अनया सहचारिण्या शोभसे त्वं मनोभव ।
एषा च भवता पत्या युक्ता संशोभते भृशम् ॥१०॥

ब्रह्मा बोले– हे कामदेव! तुम इस सहचारिणी के साथ शोभायमान हो रहे हो तथा यह भी तुम्हारे जैसे पति को प्राप्त कर अत्यधिक शोभा को प्राप्त कर रही है ॥१०॥

यथा श्रिया हृषीकेशो यथा तेन हरिप्रिया ।
क्षणदा विधुना युक्ता तया युक्तो यथा विधुः ॥११॥
तथैव युवयोः शोभा दाम्पत्यञ्च पुरस्कृतम् ।
अतस्त्वं जगतः केतुर्विश्वकेतुर्भविष्यसि ॥१२॥

जैसे लक्ष्मी के साथ विष्णु और उनके साथ लक्ष्मी एवं जैसे चन्द्रमा के साथ रात्रि तथा रात्रि के साथ चन्द्रमा की शोभा होती है, वैसी ही तुम दोनों, दम्पति की शोभा होगी और संसार के प्रधान तुम, सबके प्रधान होओगे ॥११-१२॥

जगद्धिताय वत्स त्वं मोहयस्व पिनाकिनम् ।
यथा सुखमनाः शम्भुः कुर्य्याद्दारपरिग्रहम् ॥१३॥

हे वत्स ! तुम संसार के कल्याण के लिए शङ्कर को मोहित करो जिससे वे सुखी मन से दारपरिग्रहण करें ॥१३॥

विजनेऽस्मिन् वनोद्देशे पर्वतेषु सरित्सु च ।
यत्र यत्र प्रयातीशस्तत्रतत्रानयासह ॥१४॥

मोहयस्व यतात्मानं वनिताविमुखं हरम् ।
त्वदृते विद्यते नान्यः कश्चिदस्य विमोहकः ।।१५।।

भगवान् शङ्कर निर्जन वन प्रदेश में, पर्वतों पर, नदी-तटों पर जहाँ-जहाँ जाँय, वहाँ-वहाँ तुम इस रति के साथ जाकर स्त्रीविमुख, नियतात्मा भगवान् शङ्कर को मोहित करो। तुम्हारे अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है जो इन शिव को मोहित कर सके ॥१५॥

भूते हरे सानुरागे भवतोऽपि मनोभव ।
शापोपशान्तिर्भविता तस्मादात्महितं कुरु ।।१६।।

हे कामदेव! शङ्कर के सानुराग हो जाने पर तुम्हारे भी शाप की शान्ति हो जायेगी। इस प्रकार तुम अपना ही कल्याण करो ॥१६॥

सानुरागो वरारोहां यदीच्छति मनोभव ।
तदा तवोपभोगाय स त्वां सम्भावयिष्यति ।।१७।।

हे कामदेव! अनुराग से भरकर जब वे पत्नी की इच्छा करेंगे, तब तुम्हारे (काम के) उपभोग के लिए वे तुम्हें भी उत्पन्न करेंगे ॥१७॥

तस्माज्जगद्धिताय त्वं यतस्व हरमोहने ।
विश्वस्य भव केतुस्त्वं मोहयित्वा महेश्वरम् ।।१८।।

इसलिए संसार के कल्याण के लिए तुम शङ्कर को मोहित करने के लिए प्रयत्नशील होओ। उन महादेव को मोहित कर तुम विश्व के लिए विशिष्ट व्यक्ति बनो ॥१८॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
उवाच मन्मथस्तथ्यं ब्रह्माणं जगतो हितम् ।।१९।।

मार्कण्डेय बोले– परमात्मा ब्रह्मा के इन वचनों को सुनकर संसार के हित में कामदेव ने ब्रह्मा से यह तथ्य कहा ॥१९॥

।। मन्मथ उवाच ।।

करिष्येऽहं तव विभो वचनाच्छम्भुमोहनम् ।
किन्तु योषिन्महास्त्रं मे तत्र कान्तां प्रभो सृज ।।२०।।

मन्मथ कामदेव बोले– हे विभो! मैं आपके वचनों के अनुसार भगवान् शङ्कर को मोहित करूँगा, किन्तु इस दृष्टि से स्त्रियाँ मेरा महान् अस्त्र हैं। अतः हे प्रभो! आप पहले उनके लिए किसी स्त्री की सृष्टि कीजिए ॥२०॥

मया सम्मोहिते शम्भौ यया तस्यानुमोहनम् ।
कार्यं मनोरमां रामां तां निदेशय लोकभृत् ।।२१।।

हे लोकभृत्! मेरे द्वारा सम्मोहित किये गये शङ्कर जिसके द्वारा अनुमोहित (आकर्षित) किये जायेंगे, उनके लिए ऐसी सुन्दरी का निर्माण कर उसे निर्देशित करें ।।२१।।

तामहं नहि पश्यामि यया तस्यानुमोहनम् ।
कर्तव्यमधुना धातस्तत्रोपायं तथा कुरु ।।२२।।

जिसके साथ उनका आकर्षण हो, ऐसी किसी स्त्री को मैं नहीं देख पा रहा हूँ। हे धाता! आपको इस समय जो करने योग्य उपाय हो, वह कीजिये ।।२२।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एवं वादिनि कन्दर्पे धाता लोकपितामहः ।
कुर्यां सन्मोहनीं योषामिति चिन्तां जगाम ह ।।२३।।

मार्कण्डेय बोले– इस प्रकार कामदेव द्वारा कहे जाने पर, धाता, संसार के पितामह ब्रह्मा, सम्मोहिनी स्त्री की सृष्टि करनी चाहिए, ऐसी चिन्ता करने लगे ।।२३।।

चिन्ताविष्टस्य तस्याथ निःश्वासो यो विनिःसृतः ।
तस्माद्वसन्तः संजातः पुष्पव्रातविभूषितः ।।२४।।

उस समय चिन्तित ब्रह्मा का जो निःश्वास निकला, उससे पुष्पसमूह से सुशोभित वसन्त उत्पन्न हुआ ।।२४।।

वसन्तरूप वर्णन

चूताङ्कुरान् मुकुलितान् विभ्रद्भ्रमरसंहतिम् ।
किंशुकान् सारसान् रेजे प्रफुल्ल इव पादपाः ।।२५।।

वह भौरों के समूह से सुशोभित खिली हुई आम की मञ्जरियों तथा सरस कोपलों से खिले हुये वृक्ष की भाँति शोभायमान हो रहा था ।।२५।।

शोणराजीवसंकाशः फुल्लतामरसेक्षणः ।
सन्ध्योदिताखण्डशशिप्रतिमास्यः सुनासिकः ।।२६।।

उसके नेत्र खिले हुये लालकमल के समान रसमय, तथा उसकी नासिका सन्ध्याकालीन उदीयमान चन्द्रमा के टुकड़े की भाँति सुन्दर थी ।।२६।।

शङ्खवच्छ्रवणावर्तः श्यामकुञ्चितमूर्द्धजः ।
सन्ध्यांशुमालिसदृश - कुण्डलद्वयमण्डितः ।।२७।।

उसके कान शङ्ख की भाँति थे। वे काले घुंघराले बालों से युक्त तथा सन्ध्याकालीन सूर्य के समान चमकते हुये दो कुण्डलों से सुशोभित थे ।।२७।।

प्रमत्तमातङ्गगतिर्विस्तीर्णहृदयस्थलः ।
पीनस्थूलायतभुजः कठोरकरयुग्मकः ।।२८।।

उसकी गति मतवाले हाथी के समान थी तथा उसका हृदयस्थल विशाल था। उसकी भुजायें मोटी, पुष्ट और विस्तृत थीं। उसके दोनों हाथ कठोर थे ॥२८॥

सुवृत्तोरुकटीजङ्घः कम्बुग्रीवोन्नतांशकः ।
गूढजत्रुः पीनवक्षाः सम्पूर्णः सर्वलक्षणैः ॥२९॥

उसके ऊरु, कमर और जङ्घे सुन्दर गोल (सुडौल) थे। गला शङ्ख के समान सुन्दर तथा कन्धा ऊँचा था। उसकी हँसली ढकी हुई थी, वक्ष-स्थल मोटा था एवं वह सभी लक्षणों से परिपूर्ण था ॥२९॥

तादृशेऽथ समुत्पन्ने सम्पूर्णे कुसुमाकरे ।
ववौ वायुः स-सुरभिः पादपा अपि पुष्पिताः ॥३०॥

इस प्रकार से परिपूर्ण बसन्त के उत्पन्न होने पर सुगन्धित वायु बहने लगी तथा वृक्ष भी पुष्पित हो उठे ॥३०॥

पिकाश्च नेदुः शतशः पञ्चमं मधुरस्वनाः ।
प्रफुल्लपद्मा अभवन् सरस्यः पुष्टपुष्कराः ॥३१॥

सैकड़ों कोयलें मधुर पञ्चम स्वर में कूकने लगीं तथा सरोवर विकसित कमलों से युक्त हो, खिले हुये कमलों वाले हो गये ॥३१॥

तमुत्पन्नमवेक्ष्याथ तथा तादृसमुत्तमम् ।
हिरण्यगर्भो मदनं जगाद मधुरं वचः ॥३२॥

उसे उस प्रकार से उत्तम रूप में उत्पन्न हुआ देख, ब्रह्मा जी ने मधुर वाणी में कामदेव से कहा ॥३२॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

एष मन्मथ ते मित्रं सदा सहचरो भवन् ।
आनुकूल्यं तव कृते सर्वदैव करिष्यति ॥३३॥

ब्रह्मा बोले– हे कामदेव! यह तुम्हारा मित्र सदा तुम्हारा सहचर होगा और सदैव तुम्हारे अनुकूल कार्य करेगा ॥३३॥

यथाग्नेः श्वसनो मित्रं सर्वत्रोपकरोति च ।
तथायं भवतो मित्रं सदा त्वामनुयास्यति ॥३४॥

जैसे अग्नि का मित्र वायु सर्वत्र उसका उपकार करता है, उसी प्रकार तुम्हारा यह मित्र सदैव तुम्हारा अनुगमन करेगा ॥३४॥

वसतेरन्तहेतुत्वाद्वसन्ताख्यो भवत्वयम् ।
तवानुगमनं कर्म तथा लोकानुरञ्जनम् ॥३५॥

अन्तः में वसने के कारण यह वसन्त नाम को प्राप्त होवेगा तथा यह तुम्हारा अनुगमन एवं लोकों को प्रसन्न करने का कार्य करेगा ॥३५॥

असौ वसन्तः शृङ्गारो वसन्ते मलयानिलः ।
भवन्तु सुहृदो भावाः सदा त्वद्वशवर्तिनः ॥३६॥

यह वसन्त, शृङ्गार रस का साधक होगा तथा वसन्त में मलयाचल की सुगन्धित वायु और इसके भाव, तुम्हारे वशीभूत होने के कारण सदैव तुम्हारे मित्रवत् होंगे।।३६।।

विव्वोकाद्यास्तथा हावाश्चतुःषष्टिकलास्तथा ।
कुर्वन्तु रत्याः सौहृद्यं सुहृदस्ते यथा तव ।।३७।।

उसके विव्वोकादि हाव तथा चौसठ कलायें तुम्हारा सुहृद् होने के कारण रति की सुहृदता को भी प्राप्त करायें ।।३७।।

एभिः सहचरैः काम वसन्तप्रमुखैर्भवान् ।
अनया सहचारिण्या त्वद्युक्तपरिवारया ।।३८।।
मोहयस्व महादेवं कुरु सृष्टिं सनातनीम् ।
यथेष्टदेशं गच्छ त्वं सर्वैः सहचरैर्वृतः ।
अहं तां भावयिष्यामि यो हरं मोहयिष्यति ।।३९।।

हे कामदेव! आप अपने वसन्त, शृङ्गार, मलयानिल वायु आदि सहचरों तथा रति जैसी सहचरी से युक्त परिवार के साथ महादेव को मोहित करो। इस प्रकार सनातनी सृष्टि का प्रवर्तन कर अपने सहयोगियों के साथ जहाँ इच्छा हो वहाँ तुम चले जाओ। मैं भी उसे उत्पन्न कराऊँगा जो भगवान् शङ्कर को मोह सके ।।३८-३९।।

एवमुक्तोऽथ मदनः सुरज्येष्ठेन हर्षितः ।
जगाम सगणस्तत्र सपत्न्यनुचरस्तदा ।।४०।।
दक्षं प्रणम्य तान् सर्वान् मानसानभिवाद्य च ।
यत्रास्ति शम्भुर्गतवांस्तत्स्थानं मन्मथस्तदा ।।४१।।

देवताओं के पूज्य ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर कामदेव प्रसन्न हुआ, तब अपनी पत्नी, सेवक तथा गणों के सहित वहाँ उपस्थित दक्षादि सभी ब्रह्मा के मानसपुत्रों को प्रणाम कर, जहाँ भगवान् शङ्कर विद्यमान थे, वहीं वह कामदेव भी चला गया ।।४०-४१।।

तस्मिन् गते सानुचरेऽथ मन्मथे
शृङ्गारभावादियुते द्विजोत्तमाः ।
प्रोवाच दक्षं मधुरं पितामहः
सार्द्धं मरीच्यत्रिमुखैर्मुनीश्वरैः ।।४२।।

।। श्रीकालिकापुराणे वसन्तोत्पत्तिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

हे द्विजोत्तमों! शृङ्गार भावादि से युक्त अपने अनुचरों सहित कामदेव के वहाँ से चले जाने पर पितामह ब्रह्मा ने मरीचि, अत्रि आदि ऋषियों के सहित दक्ष से मधुरवाणी में कहा ।।४२।।

।। श्रीकालिकापुराण में वसन्त की उत्पत्ति नामक चौथा अध्याय सम्पन्न हुआ ।।४।।



पञ्चमोऽध्यायः

कालीस्तुतिः

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ ब्रह्मा तदोवाच दक्षाय सुमहात्मने ।
मरीचिप्रमुखेभ्यश्च वचनञ्चेदमञ्जसा ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– इसके बाद तब ब्रह्माजी ने महात्मादक्ष और मरीचि आदि ऋषियों से यह वचन शीघ्र कहा ।।१।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

भवित्री शम्भुपत्नी का का तं सन्मोहयिष्यति ।
इति सञ्चिन्तयन् कान्तां न स्थिरीकर्तुमुत्सहे ।।२।।

कौन शिव की पत्नी होवेगी? कौन उन्हें मोहित कर सकेगी? ऐसा सोचते हुये मैं किसी स्त्री का निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ ।।२।।

विष्णुमायामृते दक्ष महामायां जगन्मयीम् ।
नान्या तन्मोहकर्त्री स्यात् सन्ध्यासावित्र्युमामृते ।।३।।

हे दक्ष! महामाया, जगत्स्वरूपा, सन्ध्या, सावित्री, उमा, विष्णुमाया के अतिरिक्त अन्य कोई स्त्री उन्हें मोहित नहीं कर सकती ।।३।।

तस्मादहं विष्णुमायां योगनिद्रां जगत्प्रसूम् ।
स्तौमि सा चारुरूपेण शङ्करं मोहयिष्यति ।।४।।

इसलिए मैं विष्णुमाया जगत्जननी योगनिद्रा की स्तुति करता हूँ। वेही अपने सुन्दर रूप से शङ्कर को मोहित कर सकेंगी ।।४।।

भवांस्तु दक्ष तामेव यजतां विश्वरूपिणीम् ।
यथा तव सुता भूत्वा हरजाया भविष्यति ।।५।।

हे दक्ष तुम भी विश्वरूपधारिणी उनका ही यजन करो, जिससे वे तुम्हारी पुत्री होकर शिव पत्नी होवें ।।५।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एवं वचनमाकर्ण्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
उवाच दक्षः स्रष्टारं मरीच्यादिभिरीरितः ।।६।।

मार्कण्डेय बोले– मरीचि आदि परमात्मा ब्रह्मदेव के कहे गये वचनों को सुनकर दक्ष ने सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से कहा— ।।६।।

।। दक्ष उवाच ।।

यथात्थ भगवंस्तथ्यं त्वं लोकेश जगद्धितम् ।
तत् करिष्यामहे सम्यग् यथा स्यात्तन्मनोहरा ।।७।।

दक्ष बोले– हे लोकेश! आपने संसार के हित के लिए यथोचित कहा है। मैं भलीभाँति वैसा ही करूँगा जिससे वे मनोहारिणी उत्पन्न होवें ।।७।।

तथा तथा भविष्यामि यथा मम सुता स्वयम् ।
विष्णुमाया भवेत् पत्नी भूत्वा शम्भोर्महात्मनः ।।८।।

वैसा-वैसा ही होऊँगा, जिससे विष्णुमाया महात्मा शङ्कर की पत्नी होकर स्वयं मेरी पुत्री होवें ।।८।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एवमेवेति तैरुक्तं मरीचिप्रमुखैस्तदा ।
यष्टुं दक्षः समारेभे महामायां जगन्मयीम् ।।९।।
क्षीरोदोत्तरतीरस्थस्तां कृत्वा हृदयस्थिताम् ।
तपस्तप्तुं समारेभे द्रष्टुं प्रत्यक्षतोऽम्बिकाम् ।।१०।।

मार्कण्डेय बोले– मरीचि आदि उन ऋषियों के द्वारा इसी प्रकार कहे जाने पर दक्ष ने जगन्मयी महामाया का यजन करना प्रारम्भ किया, तथा क्षीर-सिन्धु के उत्तरी तट पर स्थित हो, उन्हें हृदय में स्थित कर, उन अम्बिका देवी के प्रत्यक्ष दर्शन हेतु तपस्या करना प्रारम्भ किया ।।९-१०।।

दीव्यवर्षेण दक्षोऽपि सहस्राणां त्रयः समाः ।
तपश्चचार नियतः संयतात्मा दृढव्रतः ।।११।।

दृढ़वती दक्ष ने भी नियत और संयतात्मा होकर दिव्य तीन हजार वर्षों (१०८०००० मानव वर्षों) तक तपस्या किया ।।११।।

मारुताशी निराहारो जलाहारी च पर्णभुक् ।
एवं निनाय तत्कालं चिन्तयंस्तां जगन्मयीम् ।।१२।।

उस समय (अवधि) को उन्होंने वायु भोजन कर (हवा पीकर), निराहार रहकर, जलाहार कर (पानी पीकर), पत्तों को खाकर, जगन्मयी, अम्बिका का चिन्तन करते हुए बिता दिया ।।१२।।

गते दक्षे तपः कर्तुं ब्रह्मा सर्वजगत्पतिः ।
जगाम मन्दराभ्यासं पुण्यात्पुण्यतरं वरम् ।।१३।।

दक्षप्रजापति के तपस्या हेतु चले जाने पर, सारे संसार के स्वामी ब्रह्मा भी पवित्रतम और श्रेष्ठ स्थान मन्दराचल पर चले गये ॥१३॥

तत्र गत्वा जगद्धात्रीं विष्णुमायां जगन्मयीम् ।
तुष्टाव वाग्भिरर्थ्याभिरेकतानं शतं समाः ॥१४॥

वहाँ जाकर सौ वर्षों तक नितान्त ध्यान मग्न हो उन्होंने जगन्मयी, संसार का पालन करने वाली, विष्णुमाया की अर्थभरी वाणी से स्तुति की ॥१४॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

विद्याविद्यात्मिकां शुद्धां निरालम्बां निराकुलाम् ।
स्तौमि देवीं जगद्धात्रीं स्थूलाणीयःस्वरूपिणीम् ॥१५॥

ब्रह्मा बोले– मैं विद्या तथा अविद्या रूपा, शुद्ध स्वरूपा, आलम्बन तथा व्याकुलतारहित, संसार को धारण करने वाली, स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप वाली देवी की स्तुति करता हूँ॥१५॥

यस्या उदेति च जगत्प्रधानाख्यं जगत्परम् ।
यस्यास्तदंशभूतां त्वां स्तौमि निद्रां सनातनीम् ॥१६॥

जिसके उदय होने पर जगत् से परे यह प्रधान नामक संसार उदित होता है तथा जिनका अंशभूत है ऐसी सनातन रूप में सर्वदा एवं सर्वथा विद्यमान निद्रा देवी, मैं आपकी स्तुति करता हूँ ॥१६॥

त्वं चितिः परमानन्दा परमात्मस्वरूपिणी ।
शक्तिस्त्वं सर्वभूतानां त्वं सर्वेषां च पावनी ॥१७॥
त्वं सावित्री जगद्धात्री त्वं सन्ध्या त्वं रतिर्धृतिः ।
त्वं हि ज्योतिःस्वरूपेण संसारस्य प्रकाशिनी ।
तथा तमःस्वरूपेण च्छादयन्ती सदा जगत् ॥१८॥

आप चितिशक्ति, परमानन्ददायिनी, परमात्मरूपा हो! आप सभी प्राणियों की शक्ति हो, और सबको पवित्र करने वाली हो। आप सावित्री, जगद्धात्री हो, आप सन्ध्या, रति और घृति भी हो, आप ही ज्योतिरूप से संसार का प्रकाशन करने वाली हो तथा तम रूप से आप ही जगत् को सदैव आच्छादित करती हो ॥१७-१८॥

त्वमेव सृष्टिरूपेण संसारपरिपूरणी ॥१९॥
स्थितिरूपेण च हरेर्जगतां च हितैषिणी ।
तथैवान्तस्वरूपेण जगतामन्तकारिणी ॥२०॥

आप ही सृष्टि रूप से संसार को परिपूर्ण करती हो। आप स्थिति रूप से भगवान् विष्णु तथा जगत् का हित करने वाली हो तथा अन्त (मृत्यु) रूप से संसार का अन्त करने वाली हो ॥१९-२०॥

त्वं मेधा त्वं महामाया त्वं स्वधा पितृमोदिनी ।
त्वं स्वाहा त्वं नमस्कार-वषट्कारौ तथा स्मृतिः ॥२१॥

आप मेधा, महामाया तथा पितरों को प्रसन्न करने वाली स्वधा हो। आप स्वाहा, नमस्कार (नमः), वषट्कार (वषट्) तथा स्मृति भी हो ॥२१॥

त्वं पुष्टिस्त्वं धृतिर्मैत्री करुणा मुदिता तथा ।
त्वमेव लज्जा त्वं शान्तिस्त्वं कान्तिर्जगदीश्वरी ॥२२॥
महामाया त्वं च स्वाहा स्वधा च पितृदेवता ॥२३॥

आप पुष्टि हो। आप धृति, मैत्री, करुणा तथा मुदिता हो। आप ही लज्जा और शान्ति हो। आप कान्ति तथा जगदीश्वरी भी हो। आप महामाया और स्वाहा, स्वधा तथा पितृदेवता हो ॥२२-२३॥

या सृष्टिशक्तिरस्माकं स्थितिशक्तिश्च या हरेः ।
अन्तशक्तिस्तथैशानी सा त्वं शक्तिः सनातनी ॥२४॥

हमलोगों की जो सृष्टिशक्ति और विष्णु की जो स्थितिशक्ति तथा ईशान की जो अन्तशक्ति है, आप वही सनातनशक्ति हो ॥२४॥

एका त्वं द्विविधा भूत्वा मोक्षसंसारकारिणी ।
विद्याविद्यास्वरूपेण स्वप्रकाशाप्रकाशतः ॥२५॥

आप एक होते हुए भी विद्या और अविद्या रूपों से अपने प्रकाश और अप्रकाश के द्वारा दो रूपों को धारण कर संसार के मोक्ष तथा सांसारिक बन्धन का कारण बनती हो ॥२५॥

त्वं लक्ष्मीः सर्वभूतानां त्वं छाया त्वं सरस्वती ।
त्रयीमयी त्रिमाता त्वं सर्वभूतस्वरूपिणी ॥२६॥

आप सभी प्राणियों की लक्ष्मी हो। आप छाया हो। आप सरस्वती हो। आप त्रयीमयी, त्रिमाता और सभी प्राणियों के रूप वाली सर्वरूपा हो ॥२६॥

उद्गीतिः सामवेदस्य या पितृगणरञ्जनी ।
त्वं वेदिः सर्वयज्ञानां सामिधेनी तथा हविः ॥२७॥

जो पितृगणों को प्रसन्न करने वाली सामवेद की उद्गीति है वह आप ही हो। आप ही सभी यज्ञों की समिधायुक्त वेदि तथा हवि हो ॥२७॥

यदव्यक्तमनिर्देश्यं निष्कलं परमात्मनः ।
रूपं तथैव तन्मात्रं सकलं च जगन्मयम् ।।२८।।
या मूर्त्तिर्विततता सर्वधरित्री विभ्रती क्षितिम् ।
सा त्वं विश्वम्भरे लोके शक्तिभूतिप्रदा सदा ।।२९।।

जो परमात्मा का अव्यक्त, अनिर्देश्य, अनुच्चरित रूप है, उसी रूप तथा समस्त जगत्स्वरूप जो अपने विस्तृतरूप से सबको धारण करने वाली है एवं पृथ्वी को धारण करती है, आप वही विश्व का भरण-पोषण करने वाली, लोक में सदैव शक्ति और ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हो ॥२८-२९॥

त्वं लक्ष्मीश्चेतना कान्तिस्त्वं पुष्टिस्त्वं सनातनी ।
त्वं कालरात्रिस्त्वं मुक्तिः शान्तिः प्रज्ञा तथा स्मृतिः ।।३०।।

आप लक्ष्मी, चेतना, कान्ति हो, आप पुष्टि और सनातनी हो । आप कालरात्रि हो । आप मुक्ति, शान्ति, प्रज्ञा तथा स्मृति हो ॥३०॥

संसारसागरोत्तार - तरणिः सुखमोक्षदे ।
प्रसीद सर्वजगतां त्वं गतिस्त्वं मतिः सदा ।।३१।।

हे संसार सागर को पार करने हेतु नौका रूपी संसार को सुख तथा मोक्ष प्रदान करने वाली देवि, आप प्रसन्न होओ । आप गति हो, आप ही सदैव मति हो ॥३१॥

त्वं नित्या त्वमनित्या च त्वं चराचरमोहिनी ।
त्वं सन्धिनी सर्वयोग-साङ्गोपाङ्गविभाविनी ।।३२।।

आप नित्या हो, आप अनित्या हो तथा आप चर-अचर को मोहित करने वाली हो । आप सन्धिनी (किसी भी समय दुही जाने वाली गाय) हो, आप सभी अङ्ग और उपाङ्गों के सहित सभी योगों का बोध कराने वाली हो ॥३२॥

चिन्ता कीर्तिर्यतीनां त्वं त्वं तदष्टाङ्गसंयुता ।
त्वं खड्गिनी शूलिनी च चक्रिणी घोररूपिणी ।।३३।।

आप चिन्ता हो, कीर्ति हो, योगिजनों के लिए आप अष्टाङ्गयुक्त योग हो, आप कीर्ति हो । आप खड्ग धारण करने वाली, शूल धारण करने वाली और चक्र धारण करने वाली तथा घोररूप वाली हो ॥३३॥

त्वमीश्वरी जनानां त्वं सर्वानुग्रहकारिणी ।
विश्वादिस्त्वमनादिस्त्वं विश्वयोनिरयोनिजा ।
अनन्ता सर्वजगतस्त्वमेवैकान्तकारिणी ।।३४।।

आप भक्तों की स्वामिनी हो, आप सब पर कृपा करने वाली हो । आप सबकी आदि हो, आप ही अनादि भी हो । आप विश्व को उत्पन्न करने वाली हो, (किन्तु) स्वयं अयोनिजा हो । आप अन्तरहित हो (किन्तु) सम्पूर्ण जगत का अन्त करने वाली एक मात्र आप ही हो ॥३४॥

नितान्तनिर्मला त्वं हि तामसीति च गीयसे ।
त्वं हिंसा त्वमहिंसा च त्वं काली चतुरानना ॥३५॥

आप नितान्त निर्मल हो और तामसी भी कही जाती हो। आप हिंसा हो, आप ही अहिंसा भी हो। आप काली तथा ब्रह्माणी भी हो ॥३५॥

त्वं परा सर्वजननी दमनी दामिनी तथा ।
त्वय्येव लीयते विश्वं भाति तत्त्वं बिभर्षि च ॥३६॥

आप परा, सबकी माता, दमन करने वाली और बिजली हो। आप में ही यह विश्व लीन होता है। आप ही से वह प्रकट होता है तथा आप ही उसे धारण करती हो ॥३६॥

त्वं सृष्टिहीना त्वं सृष्टिस्त्वमकर्णापि सश्रुतिः ।
तपस्विनी पाणिपादहीना त्वं नितरां ग्रहा ॥३७॥

आप सृष्टि रहित हो, आप स्वयं सृष्टि हो। आप कान रहित होते हुए भी श्रुति (वेद) युक्त हो। आप तपस्विनी हो। आप हाथ-पैर से रहित हो। आप अपने (भक्तों को) पूर्णरूप से पकड़ने वाली हो ॥३७॥

त्वं द्यौस्त्वमापस्त्वं ज्योतिर्वायुस्त्वं च नभो मनः ।
अहङ्कारोऽपि जगतामष्टधा प्रकृतिः कृतिः ॥३८॥

आप आकाश हो, आप जल हो, आप ज्योति हो, आप वायु हो तथा आप ही नभ एवं मन हो। अहङ्कार भी आप हो। आप संसार की आठ प्रकार की प्रकृति तथा कृति भी हो ॥३८॥

जगन्नाभिर्मेरुरूपधारिणी नालिकापरा ।
परापरात्मिका शुद्धा माया मोहातिकारिणी ॥३९॥

आप मेरूरूप धारण की हुई संसार की नाभि, केन्द्रविन्दु हो, आप सर्वश्रेष्ठ नाड़ी हो। आप श्रेष्ठ से श्रेष्ठ हो, आप शुद्ध हो, आप माया हो तथा अत्यन्त मोह उत्पन्न करने वाली हो ॥३९॥

कारणं कार्यभूतञ्च सत्यं शान्तं शिवाशिवे ।
रूपाणि तव विश्वार्थे रागवृक्षफलानि च ॥४०॥

कारण, कार्यभूत, सत्य, शान्त, शिव और अशिव रूप तुम्हारे विश्व के प्रति रागवृक्ष के ही फल हैं ॥४०॥

नितान्त ह्रस्वा दीर्घा च नितान्ताणुबृहत्तनुः ।
सूक्ष्माप्यखिललोकस्य व्यापिनी त्वं जगन्मयी ॥४१॥

आप अत्यन्त छोटी, अत्यन्त लम्बी, अत्यन्त सूक्ष्म तथा अत्यन्त बृहत् शरीरा हो। हे जगन्मयी! आप सूक्ष्म होते हुए भी सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो ॥४१॥

मानहीना विमानाति - विमानोन्मानसम्भवा ।
यदष्टिव्यष्टिसम्भोगरागादिगलिताशया ।
तत्ते महिम्नि तद्रूपं तव भ्रान्त्यादिकं च यत् ।।४२।।

मानहीना, अत्यधिक विशिष्ट मान से युक्त, विमान और उन्मान से उत्पन्न जो अष्टि-व्यष्टि के सम्मिलन से उत्पन्न, रागद्वेषादि से रहित चित्त है वही आप का महिमाशाली रूप है। भ्रान्ति आदि जो है वह आपका ही रूप है ।।४२।।

इष्टनिष्ठाविपाकज्ञा यथेष्टानिष्टकारणम् ।
सर्गादिमध्यान्तमयं निम्नं रूपं तथैव च ।।४३।।

आप इष्टनिष्ठा के परिणाम को जानने वाली, यथेष्ट अनिष्ट की कारणभूत हो। सृष्टि की आदि, मध्य और अन्त्यमय नीचे से नीचा आपका ही रूप है ।।४३।।

विचाराष्टाङ्गयोगेन सम्पाद्यैवं मुहुर्मुहुः ।
यत् स्थिरीक्रियते तत्त्वं तत्ते रूपं सनातनम् ।।४४।।

अष्टाङ्ग योग के माध्यम से बारम्बार विचार का सम्पादन कर योगीजन जिस तत्त्व का निर्धारण करते हैं, वही आपका सनातन रूप है ।।४४।।

वाह्यावाह्ये सुखं दुःखं ज्ञानाज्ञाने लयालयौ ।
उपतापस्तथा शान्तिर्भूतिस्त्वं जगतः पतेः ।।४५।।

जगत् के स्वामी परमात्मा की वाह्य-अवाह्य, सुख-दुःख, ज्ञान-अज्ञान, लय-अलय, कष्ट तथा शान्ति आदि विभूतियाँ आप ही हो ।।४५।।

यस्याः प्रभावं नो वक्तुं शक्नोति भुवनत्रये ।
तस्यैव सन्मोहकरी सा त्वं किं स्तूयसे मया ।।४६।।

जिस (भगवान् शिव) के प्रभाव का वर्णन तीनों लोकों में कोई नहीं कर सकता। उसी को मोहित करने वाली आप हो। मैं आपकी क्या स्तुति कर सकता हूँ ।।४६।।

योगनिद्रा महानिद्रा मोहनिद्रा जगन्मयी ।
विष्णुमाया च प्रकृतिः कस्त्वां स्तुत्या विभावयेत् ।।४७।।

हे जगन्मयी! आप योगनिद्रा, महानिद्रा, मोहनिद्रा, विष्णुमाया तथा मूलप्रकृति हो। स्तुति के द्वारा आपको कौन जान सकता है? ।।४७।।

मम विष्णोः शङ्करस्य या वपुर्वहनात्मिका ।
तस्याः प्रभावं को वक्तुं गुणान् वेत्तुं च कः क्षमः ।।४८।।

मेरे विष्णु और शङ्कर के शरीर को जो वहन करने वाली भगवती है, उसके प्रभाव को बताने एवं गुणों को जानने में कौन समर्थ हो सकता है? ।।४८।।

प्रकाश - करणज्योतिःस्वरूपान्तरगोचरा ।
त्वमेव जङ्गमस्थेयरूपैका बाह्यगोचरा ।।४९।।

आप प्रकाशदात्री, ज्योतिरूप से अन्तःकरण में विद्यमान रहने वाली हो, आप ही स्थावर और जङ्गम, स्थिर और सचल रूपों में बाहर दिखाई देने वाली एक-मात्र शक्ति हो ।।४९।।

प्रसीद सर्वजगतां जननी स्त्रीस्वरूपिणी ।
विश्वरूपिणि विश्वेशे प्रसीद त्वं सनातनि ।।५०।।

हे सारे संसार की माता, हे स्त्रीस्वरूप धारण करने वाली, आप प्रसन्न होइये। हे विश्वरूप धारण करने वाली सनातनी देवि! विश्वेश्वरी ! आप प्रसन्न होइये ।।५०।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एवं संस्तूयमाना सा योगनिद्रा विरिञ्चिना ।
आविर्बभूव प्रत्यक्षं ब्रह्मणः परमात्मनः ।।५१।।

मार्कण्डेय बोले– इस प्रकार से ब्रह्मा द्वारा स्तुति किये जाने पर वह योगनिद्रा देवी परमात्मा ब्रह्मा के सम्मुख प्रत्यक्षरूप में आविर्भूत हुईं ।।५१।।

स्निग्धाञ्जनद्युतिश्चारुरूपोत्तुङ्गा चतुर्भजा ।
सिंहस्था खड्गनीलाब्जहस्ता मुक्तकचोत्करा ।।५२।।

उनकी चिकने अञ्जन के समान कांति थी, वे सुन्दररूप वाली, ऊँची, चार भुजाओं से युक्त, सिंह पर सवार थीं। उन्होंने हाथ में खड्ग और नीलकमल ले रखा था तथा उनके केश खुले हुये थे ।।५२।।

समक्षमथ तां वीक्ष्य स्त्रष्टा सर्वजगद्गुरुः ।
भक्त्या विनम्रतुङ्गा सस्तुष्टाव च ननाम च ।।५३।।

इस प्रकार उसे सामने उपस्थित देखकर समस्त संसार के पूजनीय सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने भक्तिपूर्वक अपने ऊँचे कंधे को झुकाकर भगवती को प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति की ।।५३।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

नमो नमस्ते जगतः प्रवृत्ति-
निवृत्तिरूपे स्थितिसर्गरूपे ।
चराचराणां भवती च शक्तिः
सनातनी सर्वविमोहनीति ।।५४।।

ब्रह्मा बोले– हे जगत् की प्रवृत्ति और निवृत्ति रूपवाली, हे स्थिति और सृष्टिरूप! आपको बार-बार नमस्कार है। चर और स्थिर जगत् की आप ही सनातनी शक्ति हो, आप सबको मोहित करने वाली हो ।।५४।।

या श्रीः सदा केशवमूर्त्तिमाया
विश्वम्भरा या सकलं विभर्त्ति ।
ह्रीर्योगिनी या महिता मनोज्ञा
सा त्वं नमस्ते परमात्मसारे ।।५५।।

जो श्रीरूप से सदैव विष्णु की मूर्तिमयी माया हैं, जो विश्व का भरण-पोषण करने वाली हैं और जो सबको धारण करती हैं, जो ह्री (लज्जा) रूपा,

योगिनी हैं, जो पूजनीया हैं, जो सुन्दरी हैं, हे परमात्मा की सारभूता भगवती आपको नमस्कार है ॥५५॥

यामादिपूर्वे हृदि योगिनो यां
विभावयन्ति प्रमितिप्रतीताम् ।
प्रकाशशुद्धादियुतां विरागां
सा त्वं हि विद्या विविधावलम्बा ॥५६॥

जिनको योगीजन सबके आदि में कहते ही हृदय में यथार्थ ज्ञान से जानने योग्य जानते हैं। प्रकाश, शुद्धादि से युक्त रागरहित जानते हैं, वह विविध अवलम्बों वाली विद्या, आप ही हो ॥५६॥

कूटस्थमव्यक्तमचिन्त्य - रूपं
त्वं बिभ्रती कालमयं जगन्ति ।
विकारबीजं प्रकरोषि नित्यं
प्रत्नानि न्यूत्नान्यथ मध्यमानि ॥५७॥

आप कूटस्थ, अव्यक्त, अचिन्त्यरूप, कालमयी जगतों को धारण करती हो। नित्य ही नाना प्रकार के पुराने, नये और परिवर्तनरूप समकालीन बीजों को फैलाती रहती हो ॥५७॥

सत्त्वं रजोऽथो तम इत्यमीषां
विकारहीना समवस्थितिर्या ।
सा त्वं गुणानां जगदेकहेतु-
र्बाह्यान्तरालं भवतीव याति ॥५८॥

सत्व, रज और तम की आसक्ति रहिता जो विकारहीन तीनों गुणों की समत्वकी स्थिति है। वही आप उपर्युक्त तीनों गुणों और संसार की एकमात्र हेतु हो और आप ही इस जगत् के बाहर तथा भीतर गमन करती रहती हो ॥५८॥

अशेषजगतां बीजे ज्ञेयज्ञानस्वरूपिणि ।
जगद्धिताय जगतां विष्णुमाये नमोऽस्तुते ॥५९॥

हे सम्पूर्ण संसार की बीजरूप, जानने योग्य तथा ज्ञानस्वरूप, हे विष्णु माया, जगत में जगत के हित के लिए आपको नमस्कार है ॥५९॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य काली लोकविमोहिनी ।
ब्रह्माणमूचे जगतां स्रष्टारं घनशब्दवत् ॥६०॥

मार्कण्डेय बोले– उनके इस वचन को सुनकर लोक को मोहने वाली काली ने मेघ की तरह गम्भीर वाणी में जगत्स्रष्टा ब्रह्मा से कहा—॥६०॥

।। देव्युवाच ।।

ब्रह्मन् किमर्थं भवता स्तुताहमवधारय ।
उच्यतां यदधृष्योऽस्ति तच्छीघ्रं पुरतो मम ।।६१।।

देवी बोलीं– हे ब्रह्मदेव! आपके द्वारा किसलिए मेरी स्तुति की गई है, बताइये। जो कुछ आपका अभीष्ट हो, उसे शीघ्र ही मेरे सम्मुख कहिये।।६१।।

प्रत्यक्षं मयि जातायां सिद्धिः कार्यस्य निश्चिता ।
तस्मात्ते वाञ्छितं ब्रूहि यत् करिष्यामि भाविता ।।६२।।

मेरे प्रत्यक्ष हो जाने पर कार्यसिद्धि निश्चित होती है। इसलिए आप अपना वांछित बताइये जो मैं आपके अनुकूल करूँगी ।।६२।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

एकश्चरति भूतेशो न द्वितीयां समीहते ।
तं मोहय यथा दारान् स्वयं स च जिघृक्षति ।।६३।।

भूतों के स्वामी भगवान् शङ्कर अकेले ही विचरते हैं। वे किसी अन्य जीवन-सङ्गिनी की इच्छा नहीं रखते, आप उन्हें मोहित कीजिए, जिससे वे स्त्री की इच्छा करने लगें ।।६३।।

त्वदृते तस्य नो काचिद् भविष्यति मनोहरा ।
तस्मात्त्वमेकरूपेण भवस्य भव मोहनी ।।६४।।

आपके अतिरिक्त कोई भी उनके मन को मोहने वाली नहीं हो सकती। अतएव आप अपने एक रूप से भगवान् शङ्कर का मन मोहने वाली होओ ।।६४।।

यथा धृतशरीरा त्वं लक्ष्मीरूपेण केशवम् ।
आमोदयसि विश्वस्य हितायैतं तथा कुरु ।।६५।।

आप जिस प्रकार लक्ष्मीरूप में शरीर धारण कर विष्णु को प्रसन्न करती हो, उसी प्रकार विश्व के कल्याण हेतु इन (शिव) के साथ भी करो ।।६५।।

कान्ताभिलाषमात्रं मे निनिन्द वृषभध्वजः ।
कथं पुनः स वनितां स्वेच्छया संग्रहीष्यति ।।६६।।

मेरे द्वारा स्त्री की अभिलाषा मात्र किये जाने पर जिन वृषभध्वज शङ्कर ने मेरी निन्दा की थी, अब वे अपनी इच्छा से स्वयं स्त्री-ग्रहण कैसे करेंगे?।।६६।।

हरेऽगृहीतकान्ते तु कथं सृष्टिः प्रवर्तते ।
आद्यन्तमध्यहेतौ च तस्मिञ्छम्भौ विरागिणि ।।६७।।

शिवद्वारा पत्नी ग्रहण के बिना सृष्टि कैसे चलेगी? यदि आदि, मध्य और अन्त के कारणभूत शिव ही विरागी हो जायेंगे ।।६७।।

इति चिन्तापरो नाहं त्वदन्यं शरणन्त्विह ।
लव्धवांस्तेन विश्वस्य हितायैतत् कुरुस्व मे ।।६८।।

इसी चिन्ता से मैं किसी और की शरण में न जाकर आपकी शरण में आया हूँ। अतः विश्व के कल्याण के लिए आप ऐसा ही कीजिए ।।६८।।

न विष्णुरस्य मोहाय न लक्ष्मीर्न मनोभवः ।
न चाप्यहं जगन्मातस्तस्मात् त्वं मोहयेश्वरम् ।।६९।।

हे जगन्माता! न विष्णु इनको मोहित करने में समर्थ हैं, न लक्ष्मी, न कामदेव, न मैं अतः आप ही शिव को मोहित कीजिये ।।६९।।

कीर्तिस्त्वं सर्वभूतानां यथा त्वं ह्रीर्यतात्मनाम् ।
यथा विष्णोः प्रियैका त्वं तथा सन्मोहयेश्वरम् ।।७०।।

सभी प्राणियों में जिस प्रकार कीर्तिरूप से, योगियों की (ह्री) लज्जा रूप से, विष्णु का उनकी पत्नी लक्ष्मी रूप से मोहन करती हो, उसी प्रकार पत्नीत्वेन शिव को भी आप मोहित करो ।।७०।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ ब्रह्माणमाभाष्य काली योगमयी पुनः ।
यदुवाच महाभागास्तच्छृणवन्तु द्विजोत्तमाः ।।७१।।

।। श्रीकालिकापुराणे कालीस्तुतिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

मार्कण्डेय बोले– हे द्विजोतमों! इसके बाद योगमयी काली ने पुनः ब्रह्मा से जो कहा—हे महानुभावों आप उसे सुनिये ।।७१।।

।। श्रीकालिकापुराण में कालीस्तुति नामक पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।५।।



षष्ठोऽध्यायः

योगनिद्रामाहात्म्यम्

।। देव्युवाच ।।

यदुक्तं भवता ब्रह्मन् समस्तं सत्यमेव तत् ।
मदृते मोहयित्रीह शङ्करस्य न विद्यते ।।१।।

देवी बोलीं– हे ब्रह्मदेव! आपने जो कहा वह सत्य ही है; क्योंकि मेरे अतिरिक्त इस संसार में शङ्कर को मोहित करने वाली कोई दूसरी नहीं है ।।१।।

हरेऽगृहीतदारे तु सृष्टिर्नैषा सनातनी ।
भविष्यतीति तत् सत्यं भवता प्रतिपादितम् ।।२।।

शिव के द्वारा दारग्रहण न करने पर यह सनातनी सृष्टि नहीं हो सकेगी, यह भी आपके द्वारा सत्य ही प्रतिपादित किया गया है ।।२।।

मयापि च महान् यत्नो विद्यतेऽस्य जगत्पतेः ।
त्वद्वाक्याद्द्विगुणो मेऽद्य प्रयत्नोऽभूत् सुनिर्भरः ।।३।।

मेरे द्वारा भी जगत्पति शिव के मोहन के लिए महान् यत्न किया गया था, किन्तु आज आपके वाक्यों के कारण मेरा यह प्रयत्न दुगुना सुनिश्चित हो गया है ।।३।।

अहं तथा यतिष्यामि यथा दारपरिग्रहम् ।
हरः करिष्यत्यवशः स्वयमेव विमोहितः ।।४।।

मैं भी ऐसा ही उपाय करूँगी जिससे स्वयं ही मोहित होकर विवश भगवान् शङ्कर दारपरिग्रहण करेंगे ।।४।।

चार्व्वीं मूर्तिमहं धृत्वा तस्यैव वशवर्तिनी ।
भविष्यामि महाभाग यथा विष्णोर्हरिप्रिया ।।५।।

हे महाभाग ! मैं सुन्दर रूप धारण कर उनकी वशीभूत होकर उसी प्रकार रहूँगी, जिस प्रकार लक्ष्मी विष्णु के साथ रहती हैं ।।५।।

यथा सोऽपि ममैवेह वशवर्ती सदा भवेत् ।
तथा चाहं करिष्यामि यथेतरजनं हरम् ।।६।।

मैं वैसा ही प्रयत्न करूँगी, जिससे वे शिव भी सदैव सामान्य मनुष्यों की भाँति मेरे ही वश में रहें ।।६।।

प्रतिसर्गादि मध्यं तमहं शम्भुं निराकुलम् ।
स्त्रीरूपेणानुयास्यामि विशेषेणान्यतो विधे ।।७।।

हे विधाता! प्रति सर्गादि कार्यों के बीच मैं उन शान्तचित्त भगवान् शङ्कर का स्त्रीरूप से अनुगमन करूँगी । अन्यों की अपेक्षा मैं उनकी विशेष सहायिका होऊँगी ।।७।।

उत्पन्ना दक्षजायायां चारुरूपेण शङ्करम् ।
अहं सभाजयिष्यामि प्रतिसर्गं पितामह ।।८।।

हे पितामह! मैं अपने सुन्दर रूप में दक्षपत्नी के गर्भ से उत्पन्न होकर शङ्कर के प्रतिसर्ग (प्रलय) कार्य में सहभागिनी बनूँगी ।।८।।

ततस्तु योगनिद्रां मां विष्णुमायां जगन्मयीम् ।
शङ्करीति वदिष्यन्ति रुद्राणीति दिवौकसः ।।९।।

तब देवतागण मुझे योगनिद्रा, विष्णुमाया, जगन्मयी, शङ्करी, रुद्राणी, ऐसा सम्बोधित करेंगे ।।९।।

उत्पन्नमात्रं सततं मोहये प्राणिनं यथा ।
तथा सन्मोहयिष्यामि शङ्करं प्रमथाधिपम् ।।१०।।

जिस प्रकार से निरन्तर प्राणियों को उत्पन्न होते ही मोह लेती हूँ, उसी प्रकार प्रमथगणों के स्वामी भगवान् शङ्कर को भी मोहित कर लूँगी ।।१०।।

यथान्यजन्तुरवनौ वर्तते वनितावशे ।
ततोऽप्यति हरो वामावशवर्ती भविष्यति ।।११।।

जिस प्रकार पृथ्वी पर अन्य प्राणी पत्नी के वशीभूत रहते हैं, उससे भी अधिक शङ्कर अपनी पत्नी के वशवर्ती होंगे ।।११।।

विभिद्य भुवनाधीनां लीनां स्वहृदयान्तरे ।
यां विद्याञ्च महादेवो मोहात् प्रतिग्रहीष्यति ।।१२।।

जिसने प्रवेश कर भुवन को अधीन कर लिया है, जो उनके हृदय में ही लीन रहती है, महादेव मुझ उसी विद्या (काली) का मोहवश प्रतिग्रह करेंगे ।।१२।।

।।मार्कण्डेय उवाच।।

इति तस्मै समाभाष्य ब्रह्मणे द्विजसत्तमाः ।
वीक्ष्यमाणा जगत्स्रष्ट्रा तत्रैवान्तर्दधे ततः ।।१३।।

मार्कण्डेय बोले– हे द्विजसत्तमों! ऐसा उन ब्रह्मा जी से कहकर जगत्स्रष्टा ब्रह्मा के देखते ही देखते देवी वहीं अन्तर्हित हो गईं ।।१३।।

तस्यामन्तर्हितायान्तु धाता लोक-पितामहः ।
जगाम तत्र भगवान् स्थितो यत्र मनोभवः ।।१४।।

उनके अन्तर्हित हो जाने पर लोक पितामह ब्रह्मा, जहाँ भगवान् कामदेव स्थित थे, वहाँ गये ।।१४।।

मुदितोऽत्यर्थमभवन्महामायावचः स्मरन् ।
कृतकृत्यं तदात्मानं मेने च मुनिपुङ्गवाः ।।१५।।

हे मुनिपुङ्गवों ! महामाया के वचनों का स्मरण करते हुये वे बहुत प्रसन्न थे और उन्होंने उस समय अपने को कृतकृत्य समझा ।।१५।।

अथ दृष्ट्वा महात्मानं विरञ्चिं मदनस्तथा ।
गच्छन्तं हंसयानेन चाभ्युत्तस्थौ त्वरान्वितः ।।१६।।

इसके बाद कामदेव हंसयान से महात्मा ब्रह्मा को आते देखकर शीघ्रता से उठ खड़ा हुआ ।।१६।।

आसन्नं तमथासाद्य हर्षोत्फुल्लविलोचनः ।
ववन्दे सर्वलोकेशं मोदयुक्तं मनोभवः ।।१७।।

उनके निकट पहुँचकर कामदेव ने प्रसन्न होकर हर्षोत्फुल्ल नेत्र से सभी लोकों के स्वामी ब्रह्मा को प्रणाम किया ।।१७।।

अथाह भगवान् धाता प्रीत्या मधुरगद्गदम् ।
मदनं मोदयन् सूक्तं यद् देव्या विष्णुमायया ।।१८।।

इसके बाद भगवान् ब्रह्मा ने प्रसन्नतापूर्वक मधुर एवं गद्गद् वाणी में देवी विष्णुमाया द्वारा जो सुन्दर वचन कहे गये थे, उन्हें कामदेव को प्रसन्न करते हुए सुनाया ।।१८।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

यदाह वत्स शर्वस्य मोहने त्वं पुरा वचः ।
अनुमोहनकर्त्री या तां सृजेति मनोभव ।।१९।।

ब्रह्मा बोले– हे वत्स कामदेव! तुमने शङ्कर को मोहित करने के लिए पहले जो कहा था कि उनका अनुमोहन आकर्षण जो कर सके ऐसी स्त्री की सृष्टि कीजिए ।।१९।।

तदर्थं संस्तुता देवी योगनिद्रा जगन्मयी ।
एकतानेन मनसा मया मन्दरकन्दरे ।।२०।।

उस निमित्त मेरे द्वारा मन्दराचल की कन्दरा में रहकर नितान्त ध्यानपूर्वक मानसिकरूप से जगन्मयी योगनिद्रा देवी का स्तवन किया गया ।।२०।।

स्वयमेव तया वत्स प्रत्यक्षीभूतया मम ।
तुष्टयाङ्गीकृतं शम्भुर्मोहनीयो मयेति वै ।।२१।।

हे वत्स! स्वयं ही मेरे सामने प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित हो, संस्तुष्ट हो उसके द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि शङ्कर मेरे (उसके) द्वारा ही मोहित किये जा सकते हैं ।।२१।।

तया च दक्षभवने स समुत्पन्नया हरः ।
मोहनीयस्तु न चिरादिति सत्यं मनोभव ।।२२।।

हे कामदेव! उसके द्वारा दक्ष-गृह में उत्पन्न होकर शङ्कर के सम्मोहन का शीघ्र प्रयत्न किया जायेगा। यह सत्य समझो ॥२२॥

।। मदन उवाच ।।

ब्रह्मन् का योगनिद्रेति विख्याता या जगन्मयी ।
कथं तस्या हरो वश्यः कार्यस्तपसि संस्थितः ।।२३।।

कामदेव बोले– हे ब्रह्मदेव! जो जगन्मयी योगनिद्रा नाम से प्रसिद्ध हैं वे कौन हैं? तपस्या कार्य में भलीभाँति लगे हुए शिव कैसे उनके वशीभूत हो सकते हैं ? ॥२४॥

किम्प्रभावाथ सा देवी का वा सा कुत्र संस्थिता ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो लोकपितामह ।।२४।।

वह देवी कैसी प्रभाव वाली हैं? वह कौन हैं? कहाँ रहती हैं? हे लोक के पितामह! वह सब आपसे जानना चाहता हूँ ॥२४॥

यस्य त्यक्तसमाधेस्तु न क्षणं दृष्टिगोचरे ।
शक्नुमोऽपि वयं स्थातुं तं कस्मात् सा विमोहयेत् ।।२५।।

जिस शिव के समाधि छोड़ने पर हम सब क्षण भर भी उनके दृष्टिपथ में स्थिर नहीं रह सकते, उन्हें वे कैसे विमोहित करेंगी? ॥२५॥

ज्वलदग्निप्रकाशाक्षं जटाराजिकरालितम् ।
शूलिनं वीक्ष्य कः स्थातुं ब्रह्मन् शक्नोति तत्पुरः ।।२६।।

हे ब्रह्मन् ! जलती हुई अग्नि के समान प्रकाशित नेत्रों वाले, जटाओं से भयानक, शूलधारी शङ्कर को देखकर, उनके सन्मुख कौन टिक सकता है? ॥२६॥

तस्य तादृक्स्वरूपस्य सम्यङ्मोहनवाञ्छया ।
मयाभ्युपेतं तां श्रोतुमहमिच्छामि तत्त्वतः ।।२७।।

मेरे द्वारा स्वीकृत कार्य और उनके उस स्वरूप को मोहित करने की इच्छा रखने वाली, उस देवी के विषय में मैं तात्त्विक रूप से जानना चाहता हूँ ॥२७॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

मनोभवस्य वचनं श्रुत्वाथ चतुराननः ।
विवक्षुरपि तद्वाक्यं श्रुत्वानुत्साहकारणम् ।।२८।।
शर्वस्य मोहने ब्रह्मा चिन्ताविष्टोऽभवन्नहि ।
समर्थो मोहयितुमिति निशश्वास मुहुर्मुहुः ।।२९।।

मार्कण्डेय बोले– कामदेव के उन अनुत्साहकारी वचनों को सुनकर बोलने की इच्छा रखते हुए चतुर्मुख ब्रह्मा, शिव के मोहित करने के सम्बन्ध में चिन्तातुर नहीं हुये। मोहित करने में समर्थ है ऐसा कहकर वे बारबार लम्बी साँस, निःस्वास लेने लगे ॥२८-२९॥

मारगणों की उत्पत्ति

निःश्वासमारुतात्तस्य नानारूपाः महाबलाः ।
जाता गणा लोलजिह्वा लोलाश्चाति भयङ्कराः ।।३०।।

उनके निःश्वास की वायु से अनेक रूपों वाले, महान्-बलशाली, चञ्चल-जिह्वा वाले तथा चञ्चल-स्वभाव वाले, अत्यन्त भयानक गण उत्पन्न हुये ।।३०।।

तुरङ्गवदनाः केचित् केचिद्गजमुखास्तथा ।
सिंहव्याघ्रमुखाश्चान्ये श्ववराहखराननाः ।।३१।।
ऋक्षमार्जारवदनाः शरभास्याः शुकाननाः ।
प्लवगोमायु - वक्त्राश्च सरीसृपमुखाः परे ।।३२।।

उनमें से कोई घोड़े, तो कोई हाथी, अन्य सिंह, बाघ, कुत्ता, सुअर तथा गधे के समान मुख वाले थे । दूसरे भालू, बिल्ली, शरभ, तोता, प्लव (भेंड़), गीदड़ और सरीसृप के समान मुखों वाले थे ।।३१-३२।।

गोरूपा गोमुखाः केचित्तथा पक्षिमुखाः परे ।
महादीर्घा महाह्रस्वा महास्थूला महाकृशाः ।।३३।।
पिंगाक्षा विडालाक्षाश्च त्र्यक्षैकाक्षा महोदराः ।
एककर्णास्त्रिकर्णाश्च चतुष्कर्णास्तथा परे ।।३४।।
स्थूलकर्णा महाकर्णा बहुकर्णा विकर्णकाः ।
दीर्घाक्षाः स्थूलनेत्राश्च सूक्ष्मनेत्रा विदृष्टयः ।।३५।।

साथ ही उनमें से कुछ गाय के रूप एवं मुख वाले थे तो दूसरे पक्षियों के रूप वाले थे । उनमें से कोई बहुत लम्बे थे तो कोई बहुत छोटे, कोई बहुत मोटे थे तो कोई बहुत दुबले । किन्हीं के नेत्र पीले थे, किन्हीं के बिल्ले के समान । किन्हीं के तीन नेत्र थे तो किन्हीं के एक ही । उनके पेट विशाल थे । वे एक कान, तीन कान, चार कान वाले, अन्य मोटे कान, बड़े कान, बहुत से कान या बिना कान वाले भी थे । उनमें से किन्हीं के लम्बे नेत्र थे, किन्हीं के विशाल नेत्र थे, तो किन्हीं के छोटे, तो कोई नेत्रहीन ही था ।।३३-३५।।

चतुष्पादाः पञ्चपादास्त्रिपादैकपदास्तथा ।
ह्रस्वपादा दीर्घपादाः स्थूलपादा महापदाः ।।३६।।
एकहस्ताश्चतुर्हस्ता द्विहस्तास्त्रिशयास्तथा ।
विहस्ताश्च विरूपाक्षा गोधिकाकृतयः परे ।।३७।।

किन्हीं के चार पैर थे, किन्हीं के पाँच, तीन या एक पैर ही थे । कोई छोटे पैर वाले थे, कोई लम्बे पैर, कोई मोटे पैर वाले थे, कोई बड़े पैर वाले । इसी प्रकार कोई एक हाथ वाले, कोई चार, दो या तीन हाथ वाले थे । उनमें कोई बिना हाथ वाले थे, तो कोई भद्दी आँखों वाले थे । दूसरे गोह के आकार वाले थे ।।३६-३७।।

मनुष्याकृतयः केचिच्छिशुमारमुखास्तथा ।
क्रौञ्चाकारा वकाकारा हंससारसरूपिणः ।
तथैव मद्गुकुरर - कंककाकमुखास्तथा ।।३८।।

कोई मनुष्य की आकृति वाले थे, कोई सूइँस के मुख वाले। कोई क्रौंच, बगुला, हंस, सारस आदि की मुखाकृति वाले थे तथा कोई मुद्‌गु (जलकाक), कुररी, कंक और कौवे के समान मुख वाले भी थे ॥३८॥

अर्द्धनीला अर्द्धरक्ताः कपिलाः पिङ्गलास्तथा ।
नीलाः शुक्लास्तथा पीता हरिताश्चित्ररूपिणः ।।३९।।

कोई आधे नीले, आधे लाल, कोई भूरे, कोई लालिमायुक्त पीले तथा कोई नीले, सफेद, पीले, हरे रंग के थे, तो कोई रंग-बिरंगे रूप वाले थे ॥३९॥

अवादयन्त ते शङ्खान् पटहान् परिवादिनः ।
मृदङ्गान् डिडिमांश्चैव गोमुखान् पणवांस्तथा ।।४०।।

वे शङ्ख, नगाड़े, मृदङ्ग, डिंडिम, पटह तथा पणवआदि बजा रहे थे ॥४०॥

सर्वे जटाभिः पिङ्गाभिस्तुङ्गाभिश्च करालिताः ।
निरन्तराभिर्विप्रेन्द्रा गणाः स्यन्दनगामिनः ।।४१।।
शूलहस्ताः पाशहस्ताः खड्गहस्ताः धनुर्द्धराः ।
शक्त्यंकुशगदावाण - पट्टिशप्रासपाणयः ।।४२।।

हे विप्रेन्द्रों! वे सभी निरन्तर ऊँचीं, भूरी, जटाओं से भयानक लग रहे थे। वे गण रथारूढ़ थे। वे शूल, पाश, खड्ग हाथ में लिये या धनुष धारण किये थे। वे शक्ति, अङ्कुश, गदा, बाण, पट्टिश, प्राश आदि आयुध हाथ में लिये हुए थे ॥४१-४२॥

नानायुधा महानादं कुर्वन्तस्ते महाबलाः ।
मारय च्छेदयेत्यूचुर्ब्रह्मणः पुरतो गताः ।।४३।।

वे महाबली गण अनेक अस्त्रों को धारण किये मारो-काटो ऐसा कहते हुये महान् गर्जन के साथ ब्रह्मा के सम्मुख पहुँचे ॥४३॥

तेषान्तु वदतां यत्र मारय छेदयेत्युत ।
योगनिद्रा प्रभावात् स विधिर्वक्तुं प्रचक्रमे ।।४४।।
अथ ब्रह्माणमाभाष्य तान् दृष्ट्वा मदनो गणान् ।
उवाच वारयन् वक्तुं गणानामग्रतः स्मरः ।।४५।।

जहाँ वे मारो-काटो बोल रहे थे, योगनिद्रा के प्रभाव से ब्रह्मा कुछ बोलें, इसी बीच ब्रह्मा से बोलते हुये गणों को देखकर कामदेव उन्हें रोककर स्वयं पहले बोले-॥४४-४५॥

।। मदन उवाच ।।

किं कर्म ते करिष्यन्ति कुत्र स्थास्यन्ति वा विधे ।
किन्नामधेया एते वा तत्रैतान् विनियोजय ।।४६।।

नियोज्यैतान्निजे कृत्ये स्थानं दत्त्वा नाम च ।
कृत्वा पश्चात् महामायाप्रभावं कथयस्व मे ।।४७।।

कामदेव बोले– हे विधि! ये आपका क्या कार्य करेंगे? या कहाँ रहेंगे? ये किस नाम से जाने जायेंगे ? वहाँ उनको लगाइये। इनको-इनके कामों में लगाकर, इनको स्थान एवं नाम प्रदान कर मुझसे महामाया जगदम्बा के प्रभाव का वर्णन करें ।।४६-४७।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य सर्वलोकपितामहः ।
गणान् समदनानाह तेषां कर्मादिकं दिशन् ।।४८।।

मार्कण्डेय बोले– इसके बाद सभी लोक के पितामह, कामदेव के उस वचन को सुनकर कामदेव के सहित उन गणों से उनके कर्मादि का निर्देश करते हुये बोले—।।४८।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

एते उत्पन्नमात्रा हि मारयेत्यवदंस्तराम् ।
मुहुर्मुहुरतोऽमीषां नाम मारेति जायताम् ।।४९।।

ब्रह्मा बोले–ये पैदा होते ही बार-बार 'मारो' ऐसा बोल रहे थे। इसलिए इनका मार यह नामकरण होवे ।।४९।।

मारात्मकत्वादप्येते माराः सन्तु च नामतः ।
सदा विघ्नं करिष्यन्ति जन्तूनाञ्च विनार्चनम् ।।५०।।

मारने वाले होने के कारण भी ये मार नाम से प्रसिद्ध होंगे। बिना आराधना के ये प्राणियों के लिए सदैव विघ्न करते रहेंगे ।।५०।।

तवानुगमनं कर्म मुख्यमेषां मनोभव ।
यत्र यत्र भवान् याता स्वकर्मार्थं यदा यदा ।
गन्तारस्तत्र तत्रैते साहाय्याय तदा तदा ।।५१।।

हे कामदेव! इनका मुख्य कार्य तुम्हारा अनुगमन करना होगा। आप अपने कार्य हेतु जब-जब और जहाँ-जहाँ जायेंगे तब-तब ये सहायतार्थ वहाँ-वहाँ जायेंगे ।।५१।।

चित्तोद्भ्रान्तिं करिष्यन्ति त्वदस्त्रवशवर्तिनाम् ।
ज्ञानिनां ज्ञानमार्गञ्च विघ्नयिष्यन्ति सर्वदा ।।५२।।

ये तुम्हारे अस्त्रों के वशीभूत लोगों के चित्त को सदैव विभ्रमित करेंगे, ज्ञानियों के ज्ञानमार्ग में विघ्न उपस्थित करेंगे ।।५२।।

यथा सांसारिकं कर्म सर्वे कुर्वन्ति जन्तवः ।
तथा चैते करिष्यन्ति सविघ्नमपि सर्वतः ।।५३।।

जिस प्रकार सभी प्राणी सांसारिक कर्म करते रहें, वैसा ही ये सब ओर से विघ्नों सहित करते रहेंगे ।।५३।।

इमे स्थास्यन्ति सर्वत्र वेगिनः कामरूपिणः ।
त्वमेवैषां गणाध्यक्षः पञ्चयज्ञांशभोगिनः ।
नित्यक्रियावतां तोय-भोगिनो वै भवन्त्विति ।।५४।।

ये वेगवान, इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ 'मारगण' सब जगह स्थित रहेंगे। इन्हें पञ्चयज्ञों के अंशभोग का अधिकार रहेगा और तुम इनके गणाध्यक्ष होगे। ये नित्यक्रियासम्पन्न पुरुषों के जल, अर्घ्यादि के भी पुण्यफल के ग्रहणकर्ता होवेंगे ।।५४।।

।।मार्कण्डेय उवाच ।।

इति श्रुत्वा तु ते सर्वे मदनं सविधिं ततः ।
परिवार्य यथाकामं तस्थुः श्रुत्वा निजां गतिम् ।।५५।।

मार्कण्डेय बोले– ऐसा सुनकर वे सभी ब्रह्मा के सहित कामदेव की परिक्रमा कर तथा अपनी गति को सुनकर इच्छित स्थानों को चले गये ।।५५।।

तेषां वर्णयितुं शक्यो भुवि किं मुनिसत्तमाः ।
माहात्म्यञ्च प्रभावञ्च ते तपःशालिनो यतः ।।५६।।

हे मुनिसत्तमों! उनका वर्णन करने में पृथ्वी पर कोई समर्थ नहीं है; उनके माहात्म्य एवं प्रभाव का भी वर्णन सम्भव नहीं है, क्योंकि वे तपस्वी थे।।५६।।

नैषां जाया न तनया निःसमीहाः सदैव हि ।
न्यासिनोऽपि महात्मानः सर्वे त ऊर्द्धरेतसः ।।५७।।

इनकी न कोई स्त्री है और न पुत्री । ये सदैव इच्छारहित रहते हैं। ये सभी सन्यासी वृत्ति के ऊर्द्धरेता महात्मा हैं ।।५७।।

ततो ब्रह्मा प्रसन्नः स माहात्म्यं मदनाय च ।
गदितुं योगनिद्रायाः सम्यक् समुपचक्रमे ।।५८।।

तब ब्रह्मा ने प्रसन्न हो कामदेव से योगनिद्रा का माहात्म्य भलीभाँति कहना प्रारम्भ किया ।।५८।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

अव्यक्तव्यक्तरूपेण रजःसत्त्वतमोगुणैः ।
विभज्य यार्थं कुरुते विष्णुमायेति सोच्यते ।।५९।।

अव्यक्त और व्यक्तरूप से रज, सत्व और तमोगुणों की सहायता से विभाजित कर जो अपनी अर्थसिद्धि (उद्देश्यपूर्ति) करती हैं, उन्हें ही विष्णुमाया कहते हैं ।।५९।।

या निम्नान्तस्थलाम्भस्था जगदण्डकपालतः ।
विभज्य पुरुषं याति योगनिद्रेति सोच्यते ।।६०।।

जो ब्रह्माण्डकपाल के निचले भाग में स्थित जल में रह, उस ब्रह्माण्ड का विभाजन कर, पुरुष तत्त्व को प्राप्त करती है, उन्हें ही योगनिद्रा कहते हैं ।।६०।।

मन्त्रान्तर्भावनपरा परमानन्दरूपिणी ।
योगिनां सत्त्वविद्यान्तः सा निगद्या जगन्मयी ।।६१।।

वे मन्त्रों का निहित भाव रूपवाली सर्वोत्कृष्ट हैं, वे परम आनन्द स्वरूपा हैं। वे योगियों के लिए अन्त:स्थित सत्व विद्या हैं। उन्हें ही जगन्मयी भी कहते हैं ।।६१।।

गर्भान्तर्ज्ञानसम्पन्नं प्रेरितं सूतिमारुतैः ।
उत्पन्नं ज्ञानरहितं कुरुते या निरन्तरम् ।।६२।।
पूर्वातिपूर्वं सन्धातुं संस्कारेण नियोज्य च ।
आहारादौ ततो मोहं ममत्वं ज्ञानसंशयम् ।।६३।।
क्रोधोपरोधलोभेषु क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा पुनः पुनः ।
पश्चात् कामे नियोज्याशु चिन्तायुक्तमहर्निशम् ।।६४।।
आमोदयुक्तं व्यसनासक्तं जन्तुं करोति या ।
महामायेति सा प्रोक्ता तेन सा जगदीश्वरी ।।६५।।

जो जीव को गर्भ के भीतर ज्ञान सम्पन्न रहते हुए भी सूति (प्रसव) वायु से प्रेरित कर ज्ञानरहित रूप में निरन्तर उत्पन्न करती रहती हैं। पूर्व से पूर्व अर्थात् पुरातन फल सन्धान हेतु संस्कारों के अनुसार आहार आदि में, तत्पश्चात् उनके परिणामभूत, मोह, ममता, अज्ञान, क्रोध, अवरोध, आदि में, बारम्बार फेंक कर, जब कामनाओं में शीघ्र ही प्रतिबद्ध कर, उसे दिन-रात चिन्ता, आमोद, व्यसन से युक्त कर देती हैं। इसीलिए उन जगदीश्वरी को महामाया भी कहते हैं ।।६२-६५।।

अहङ्कारादि संसक्ता सृष्टिप्रभवभाविनी ।
उत्पत्तिरितिलोकैः सा कथ्यतेऽनन्तरूपिणी ।।६६।।

वेही अनन्तरूपिणी, सृष्टि की उत्पत्तिकर्त्री, अहङ्कारादि से युक्त हो लोगों द्वारा उत्पत्ति ऐसा कही जाती हैं।।६६।।

उत्पन्नमङ्कुरं बीजाद् यथापो मेघसम्भवाः ।
प्ररोहयति सा जन्तूंस्तथोत्पन्नान् प्ररोहयेत् ।।६७।।

जिस प्रकार से मेघ से उत्पन्न जल-बीज से उत्पन्न अङ्कुर को बढ़ाता है, उसी प्रकार वे भी उत्पन्न जन्तुओं को पोषण दे बढ़ाती हैं।।६७।।

सा शक्तिः सृष्टिरूपा च सर्वेषां ख्यातिरीश्वरी ।
क्षमा क्षमावतां नित्यं करुणा सा दयावताम् ।।६८।।

वे शक्ति सृष्टिरूप से सबको प्रकट करने वाली और सबकी प्रसिद्धि और स्वामिनी हैं। वे क्षमाशीलों में नित्य विराजमान क्षमा तथा दयावानों में करुणा रूप से विद्यमान हैं॥६८॥

नित्या सा नित्यरूपेण जगद्गर्भे प्रकाशते ।
ज्योतिःस्वरूपेण परा व्यक्ताव्यक्तप्रकाशिनी ।।६९।।

वेही नित्या हैं, जो जगत् के गर्भ में नित्य (शाश्वत) रूप से प्रकाशित होती हैं। वेही परा ज्योति के रूप में व्यक्त और अव्यक्त दोनों को ही प्रकाशित करने वाली हैं॥६९॥

सा योगिनां मुक्तिहेतुर्विद्यारूपेण वैष्णवी ।
सांसारिकाणां संसारबन्धहेतु - विपर्यया ।।७०।।

वेही वैष्णवी, विद्या रूप से योगियों की मुक्ति का कारण हैं तथा इसके विपरीत अविद्या रूप से सांसारिक जनों के संसार बन्धन का भी कारण हैं ॥७०॥

लक्ष्मीरूपेण कृष्णस्य द्वितीया सुमनोहरा ।
त्रयीरूपेण कण्ठस्था सदा मम मनोभव ।।७१।।

हे मनोभव कामदेव! वेही सुन्दरी लक्ष्मीरूप से कृष्ण (विष्णु) की सहचरी है तथा वेदत्रयी के रूप में सदैव मेरे कण्ठ में स्थित रहती हैं॥७१॥

सर्वत्रस्था सर्वगा दिव्यमूर्ति-
र्नित्या देवी सर्वरूपा पराख्या ।
कृष्णादीनां सर्वदा मोहयित्री
सा स्त्रीरूपैः सर्वजन्तोः समन्तात् ।।७२।।

॥ श्रीकालिकापुराणे योगनिद्रामाहात्म्यं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

वे सभी जगह विराजमान हैं तथा सर्वत्र गमनशीला हैं। दिव्यवेश वाली हैं, नित्या और सर्वरूप वाली देवी हैं। उन्हें ही परा भी कहते हैं। वे कृष्ण आदि को सदा मोहित करने वाली हैं साथ ही स्त्रीरूप में सभी प्राणियों को सब ओर से मोहित करने वाली हैं॥७२॥

॥ श्रीकालिकापुराण में योगनिद्रामाहात्म्य नामक छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥६॥



सप्तमोऽध्यायः

मदनकथनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ ब्रह्मा महामाया - स्वरूपं प्रतिपाद्य च ।
मदनाय पुनः प्राह युक्तासौ हरमोहने ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– इसके बाद ब्रह्मा ने महामाया के स्वरूप का प्रतिपादन कर कामदेव से भगवान् शङ्कर को मोहित करने के लिए आगे कहा—।।१।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

विष्णुमाया महादेवो यथा दारपरिग्रहम् ।
करिष्यति तथा कर्तुमङ्गीकारं पुराकरोत् ।।२।।

ब्रह्मा बोले– भगवती विष्णुमाया ने महादेव जिससे दारपरिग्रहण (विवाह) करें वैसा करना पहले ही स्वीकार कर लिया है ।।२।।

सावश्यं दक्षतनया भूत्वा शम्भोर्महात्मनः ।
भविष्यति द्वितीयेति स्वयमेवावदत् स्मर ।।३।।

हे कामदेव! वह अवश्य ही दक्ष की पुत्री होकर महात्मा शङ्कर की द्वितीया (पत्नी) बनेंगी ऐसा उन्होंने स्वयं ही कहा था ।।३।।

त्वमेभिः स्वगणैः सार्द्धं रत्या च मधुना सह ।
यथेच्छति तथा दारान् ग्रहीतुं कुरु शङ्करः ।।४।।

तुम अपने इन गणों, रति तथा वसन्त के साथ शङ्कर को दारपरिग्रहण हेतु प्रेरित करने के लिए जो उचित समझो करो ।।४।।

शम्भौ गृहीतदारे तु कृतकृत्या वयं स्मर ।
अविच्छिन्ना सृष्टिरियं भविष्यति न संशयः ।।५।।

हे कामदेव ! शिव द्वारा विवाह के पश्चात् हम सभी कृतार्थ हो जायेंगे तथा यह सृष्टि अविच्छिन्न हो जायेगी, इसमें कोई संशय नहीं है ।।५।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

तथाब्रवीद्द्विजश्रेष्ठा लोकेशाय मनोभवः ।
मधुरं यत् कृतं तेन महादेवस्य मोहने ।।६।।

मार्कण्डेय बोले– हे द्विजश्रेष्ठों! तब कामदेव ने ब्रह्मा से जो कहा और शिव को मोहने के लिए जो उत्तम किया, उसे सुनो ॥६॥

।। मदन उवाच ।।

शृणु ब्रह्मन् यथास्माभिः क्रियते हरमोहने ।
प्रत्यक्षे वा परोक्षे वा तस्य तद्वदतो मम ।।७।।

कामदेव बोले– हे ब्रह्मदेव! शिव को मोहित करने के लिए हम लोगों द्वारा जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किया गया उसे बताता हूँ आप सुनिये ॥७॥

यदा समाधिमाश्रित्य स्थितः शम्भुर्जितेन्द्रियः ।
तदा सुगन्धिवातेन शीतलेन विवेगिना ।
तं बीजयामि लोकेश नित्यं मोहनकारिणा ।।८।।

हे लोकेश! जब अपनी इन्द्रियों को जीतने वाले शिव समाधि का आश्रय ले स्थित थे, उस समय मैंने सुगन्धित, शीतल और वेगरहित, मन्त्र मुग्ध करने वाली वायु से नित्य उनके लिए हवा का संचरण किया ॥८॥

स्वसायकांस्तथा पञ्च समादाय शरासनम् ।
भ्रमामि तस्य सविधे मोहयंस्तद्गणानहम् ।।९।।

तथा मैंने अपने पञ्चबाणों सहित अपने धनुष को लेकर उन्हें तथा उनके गणों को मोहित करने के लिए विधिपूर्वक भ्रमण किया ॥९॥

सिद्धद्वन्द्वानहं तत्र रमयामि दिवानिशम् ।
भावा हावाश्च ते सर्वे प्रविशन्ति च तेषु वै ।।१०।।

मैंने रात-दिन सिद्धगणों को, दम्पत्तियों को, जिनमें सभी हाव-भाव प्रविष्ट रहे थे, वहाँ रमण कराया ॥१०॥

यदि प्रविष्टे सविधे शम्भोः प्राणी पितामह ।
को वा न कुरुते द्वन्द्व-भावं तत्र मुहुर्मुहुः ।।११।।

हे पितामह! यदि ये विधिपूर्वक प्रवेश कर जायँ तो शम्भु को छोड़कर कौन ऐसा प्राणी है जो बार-बार द्वन्द्वभाव को न प्राप्त करे ॥११॥

मम प्रवेशमात्रेण तथा स्युः सर्वजन्तवः ।
न शम्भुर्न वृषस्तस्य मानसीं विक्रियां गतौ ।।१२।।

मेरे प्रवेशमात्र से ही सभी जन्तु उस द्वन्द्वभाव के हो जाते हैं, किन्तु उस समय न भगवान् शङ्कर और न उनका वृष ही इस मानसिक विकृति को प्राप्त हुये ॥१२॥

यदा हिमवतः प्रस्थं स याति प्रमथाधिपः ।
तत्र गन्ता तदैवाहं सरतिः समधुर्विधे ।।१३।।

ये विधे! जब वे प्रमथ गणों के स्वामी हिमालय के शिखर पर गये तभी मैं भी वहाँ रति और वसन्त के सहित पहुँच गया ॥१३॥

यदा मेरुं प्रयात्येष यदा वा नाटकेश्वरम् ।
कैलासं वा यदा याति तत्र गच्छाम्यहं तदा ।।१४।।

जब वे मेरु पर्वत पर या नाटकेश्वर अथवा कैलास गये तब मैं वहाँ भी गया ।।१४।।

यदा त्यक्तसमाधिस्तु हरस्तिष्ठति वै क्षणम् ।
ततस्तस्य पुरश्चक्रमिथुनं योजयाम्यहम् ।।१५।।

जिस क्षण भगवान् शङ्कर समाधि से विमुख हुये उसी क्षण उनके सम्मुख मैंने चक्र-पक्षी (चकवा-चकवी) के जोड़े को प्रस्तुत किया ।।१५।।

तच्चक्रयुगलं ब्रह्मन् हावभावयुतं मुहुः ।
नानाभावेन कुरुते दाम्पत्य - क्रममुत्तमम् ।।१६।।

हे ब्रह्मन् ! वह चकवा-चकवी का जोड़ा बारम्बार हाव-भाव से युक्त होकर अनेक प्रकार के दाम्पत्य-कर्म प्रस्तुत कर रहा था ।।१६।।

नीलकण्ठानपि मुहुः सजायानपि तत्पुरः ।
सन्मोहयामि सविधे मृगानन्यांश्च पक्षिणः ।।१७।।

पुनः मैंने उनके सम्मुख स्त्रियों के सहित नील कण्ठों को उपस्थित किया तथा विधिपूर्वक अन्य पशु-पक्षियों को भी मोहित किया ।।१७।।

विचित्रभावमासाद्य यदा प्रकुरुते रतिम् ।
मयूरमिथुनं वीक्ष्य तत्तदा को न चोत्सुकः ।।१८।।

विचित्र भावों का आश्रय ले जब मोरों का जोड़ा रमण करता है, तब कौन उत्सुक नहीं हो जाता? ।।१८।।

मृगाश्च तत् पुरस्थाश्च स्वजायाभिस्तु सोत्सुकाः ।
अकुर्वन् रुचिरं भावं तस्य पार्श्वे पुरस्तदा ।।१९।।

उनके सम्मुख स्थित मृगों ने भी अपनी मृगियों के सहित उत्सुकता पूर्वक उनके समीप तथा सामने सुन्दर भावों को दर्शाया ।।१९।।

अपश्यन् विवरं नास्य कदाचिदपि मच्छरः ।
निपात्यः स यदा देहे यन्मया सर्वलोकधृत् ।।२०।।
बहुधा निश्चितं ज्ञातं रामासङ्गादृते हरम् ।
अलं च सन्मोहयितुं ससहायोऽपि निष्कलम् ।।२१।।

हे सब लोकों को धारण करने वाले! जब उनके शरीर में कभी भी उनका कोई छिद्र (दोष) न देखकर मेरे द्वारा बाण छोड़ा गया । बहुधा निश्चित जानिये भगवान् शङ्कर को छोड़कर पत्नी और सम्पूर्ण सहायकों सहित सबको मोहित करने के लिए वह पर्याप्त था ।।२९-२१।।

मधुश्च कुरुते कर्म यद्यत्तस्य विमोहने ।
तच्छुणुष्व महाभाग नित्यं तस्योचितं पुनः ।।२२।।

हे महाभाग! वसन्त ने भी उन्हें मोहित करने के लिए जो-जो कर्म किया उसे सुनिये। ये उसके अनुरूप कर्म हैं ।।२२।।

चम्पकान् केशरानाम्रान् करुणान् पाटलास्तथा ।
नागकेशरपुन्नागान् किंशुकान् केतकान् घवान् ।।२३।।
माधवीर्मल्लिकाः पर्णधारान् कुरुवकांस्तथा ।
उत्फुल्लयति तत्तस्य यत्र तिष्ठति वै हरः ।।२४।।

जहाँ-जहाँ भगवान् शङ्कर स्थित रहे वह वहाँ-वहाँ चम्पक, केशर, अशोक, आम्र, करुण, पाटल, नागकेशर, पुन्नाग, किंशुक, केतकी, धव, माधवी, मल्लिका, चमेली, पर्णधार तथा कुरुवकों को प्रफुल्लित किया ।।२३-२४।।

सरांस्युत्फुल्लपद्मानि बीजयन् मलयानिलैः ।
सुगन्धीकृतवान् यत्नादतीव शङ्कराश्रमम् ।।२५।।

शिव के आश्रम में स्थित सरोवरों में खिले हुये, मलयाचल की वायु से संचालित तथा सुगन्धित किये हुये कमल के फूल सुशोभित हो गये ।।२५।।

लताः सर्वाः सुमनसः फुल्लपादपसञ्चयान् ।
वृक्षान् रुचिरभावेन वेष्टयन्ति स्म तत्र वै ।।२६।।

वहाँ फूले हुये पुष्पों से युक्त लतायें, फूले हुये पुष्पों से युक्त वृक्षों को सुन्दर भाव से आलिङ्गन करने लगीं ।।२६।।

तान् वृक्षांश्चारुपुष्पौघास्तैः सुगन्धिसमीरणैः ।
दृष्ट्वा कामवशं यातो न तत्र मुनिरप्युत ।।२७।।

वहाँ कौन ऐसा मुनि था, जो सुन्दर पुष्प से ढके हुये, सुगन्धित वायु से कंपित, उन वृक्षों को देखकर काम के वशीभूत न हो गया हो ।।२७।।

तद्गणा अपि लोकेश नानाभावैः सुशोभनैः ।
वसन्तिस्म सुराः सिद्धा ये ये चाति तपोधनाः ।।२८।।

हे लोकेश! वहाँ निवास करने वाले देवता, सिद्ध, अत्यन्त तपस्वी साधक, उन शिव के गण भी अनेक सुशोभित भावों से युक्त हो गये ।।२८।।

न तस्य पुनरस्माभिर्दृष्टं मोहस्य कारणम् ।
भावमात्रं न कुरुते कामोत्थमपि शङ्करः ।।२९।।

उनको मोहने का हम लोगों को अब कोई उपाय नहीं दिखता था। शङ्कर कामोत्पन्न भाव मात्र भी नहीं कर रहे थे ।।२९।।

इति सर्वमहं दृष्ट्वा ज्ञात्वा च हरभावनाम् ।
विमुखोऽहं शम्भुमोहान्नियतं मायया विना ।।३०।।

यह सब देखकर तथा शङ्कर की भावनाओं को जानकर मैं शिव के मोहित करने के काम से, जो माया के विना नियत नहीं था, विमुख हो गया ।।३०।।

इदानीं त्वद्वचः श्रुत्वा योगनिद्रोदितं पुनः ।
तस्याः प्रभावं श्रुत्वाथ गणान् दृष्ट्वा सहायकान् ।।३१।।
मया शम्भोर्विमोहाय क्रियते मुहुरुद्यमः ।
भवानपि त्रिलोकेश योगनिद्रा द्रुतं पुनः ।
भवेद् यथा शम्भुजाया तथैव विदधात्वियम् ।।३२।।

इस समय योगनिद्रा द्वारा कहे हुये आपके वचनों तथा उनके प्रभाव को सुनकर और अपने सहयोगी इन मारगणों को देखकर, मेरे द्वारा पुनः शिव को मोहित करने का प्रयत्न किया जायेगा। हे त्रिलोकेश! शीघ्र ही योगनिद्रा जिस प्रकार से शिव की पत्नी बनें वैसी ही आप भी व्यवस्था कीजिए ।।३१-३२।।

यमानां नियमानाञ्च प्राणायामस्य नित्यशः ।
आसनस्य महेशस्य प्रत्याहारस्य गोचरे ।।३३।।
ध्यानस्य धारणायाश्च समाधेर्विघ्नसम्भवम् ।
मन्ये कर्तुं न शक्यं स्यादपि मारशतैरपि ।।३४।।

मेरी समझ से सैकड़ों मारगण भी शङ्कर के यमों, नियमों, नित्य प्रति के प्राणायाम, आसन, इन्द्रियों के प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि जैसे अष्टाङ्गयोग में विघ्न नहीं कर सकते ।।३३-३४।।

तथाप्ययं मारगणः करोतु
हरस्य योगाङ्गविकारविघ्नम् ।
यदेव शक्यं किमु वा समर्थः
समक्षमन्यस्य न कर्तुमोजः ।।३५।।

।। श्रीकालिकापुराणे मदनकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

तो भी ये मारगण भगवान् शङ्कर के योगाङ्गों में विघ्न उत्पन्न करें। जो शक्य हैं अथवा जिसके सम्पादन में सक्षम हैं अन्य के सम्मुख बल प्रयोग नहीं करना चाहिए ।।३५।।

।। श्रीकालिकापुराण में मदनकथन नामक सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।७।।



अष्टमोऽध्यायः
सती-उत्पत्तिः

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततो ब्रह्मापि मदनमुवाचेदं वचः पुनः ।
निश्चित्य योगनिद्रायाः स्मृत्वा वाक्यं तपोधनाः ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– हे तपोधनों ! तब ब्रह्मा जी ने कामदेव से योगनिद्रा के वाक्यों का स्मरण कर निश्चयपूर्वक यह बात कही ।।१।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

अवश्यं शम्भुपत्नी सा योगनिद्रा भविष्यति ।
यथाशक्ति भवांस्तत्र करोत्वस्याः सहायताम् ।।२।।

ब्रह्मा बोले– वह योगनिद्रा अवश्य ही शिव की पत्नी होगी। आप वहाँ यथाशक्ति उनकी सहायता करें ।।२।।

गच्छ त्वं स्वगणैः सार्द्धं यत्र तिष्ठति शङ्करः ।
द्रुतं मनोभव त्वं च तत् स्थानं मधुना सह ।।३।।

हे कामदेव! जहाँ शङ्कर स्थित हैं, वहीं तुम अपने गणों और वसन्त के साथ शीघ्र ही जाओ ।।३।।

रात्रिन्दिवस्य तुर्यांशं जगन्मोहय नित्यशः ।
भागत्रयं शम्भुपार्श्वे तिष्ठ सार्द्धं गणैः सदा ।।४।।

रात और दिन के चौथे भाग अर्थात् दोनों सन्ध्याओं के समय नित्य सभी को मोहित करो। शेष तीन भागों में गणों के साथ सदैव शिव के पास स्थित रहो ।।४।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा सर्वलोकेशस्तत्रैवान्तरधीयत ।
शम्भोः सकाशं मदनो गतवान् सगणस्तदा ।।५।।

मार्कण्डेय बोले– ऐसा कहकर सभी लोकों के स्वामी ब्रह्मा वहीं अन्तर्धान हो गये। तब कामदेव भी अपने गणों के सहित भगवान् शङ्कर के समीप पहुँचा ।।५।।

एतस्मिन्नन्तरे दक्षश्चिरं कालं तपोरतः ।
नियमैर्बहुभिर्देवीमाराधयत सुव्रतः ।।६।।

इस बीच दक्षप्रजापति चिरकाल तक तपस्या में रत रहे। सुन्दर व्रत धारण करने वाले उन्होंने बहुत से नियमों के द्वारा देवी की आराधना की ॥६॥

ततो नियमयुक्तस्य दक्षस्य मुनिसत्तमाः ।
योगनिद्रां पूजयतः प्रत्यक्षमभवच्छिवा ॥७॥

हे मुनि सत्तमों! तब नियमपूर्वक योगनिद्रा की पूजा करने वाले प्रजापति दक्ष के सम्मुख शिवा (भगवती काली) प्रकट हुईं ॥७॥

ततः प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा विष्णुमायां जगन्मयीम् ।
कृतकृत्यमथात्मानं मेने दक्षः प्रजापतिः ॥८॥

तब उस विष्णुमाया जगत्स्वरूपा देवी को प्रत्यक्ष देखकर प्रजापति **दक्ष ने** अपने को कृतकृत्य माना ॥८॥

काली का स्वरूप

सिंहस्थां कालिकां कृष्णां पीनोत्तुंगपयोधराम् ।
चतुर्भुजां चारुवक्त्रां नीलोत्पलधरां शुभाम् ॥९॥
वरदाभयदां खड्गहस्तां सर्वगुणान्विताम् ।
आरक्तनयनां चारुमुक्तकेशीं मनोहराम् ॥१०॥
दृष्ट्वा दक्षोऽथ तुष्टाव महामायां प्रजापतिः ।
प्रीत्या परमया युक्तो विनयानतकन्धरः ॥११॥

उन सिंह पर स्थित, कृष्णवर्ण की, पुष्ट और उन्नत स्तनों वाली, चार भुजाओं से सुशोभित, सुन्दर मुखवाली, सुन्दर नीलकमल धारण करने वाली, शुभदात्री, वर और अभय देने वाली, हाथों में खड्ग लिए हुये, सभी गणों से युक्त, लाल नेत्रों वाली, सुन्दर खुले हुए केशों वाली किन्तु मनोहर मूर्ति कालिकाम्बा को देखकर, प्रजापति दक्ष ने अत्यधिक प्रेमपूर्वक नम्रता से अपने कंधों को झुकाकर महामाया की स्तुति की ॥९-११॥

दक्षकृता कालीस्तुति

॥ दक्ष उवाच ॥

आनन्दरूपिणीं देवीं जगदानन्दकारिणीम् ।
सृष्टिस्थित्यन्तरूपां तां स्तौमि लक्ष्मीं हरेः शुभाम् ॥१२॥

दक्ष बोले– मैं आनन्दरूपा, संसार को आनन्दमय करने वाली, सृष्टि, स्थिति (पालन) और अन्त स्वरूपा विष्णु की लक्ष्मी जैसी उन शुभदात्री देवी **की** स्तुति करता हूँ ॥१२॥

सत्त्वोद्रेकप्रकाशेन यज्ज्योतिस्तत्त्वमुत्तमम् ।
स्वप्रकाशं जगद्धाम तत्तवांश महेश्वरि ॥१३॥

हे महेश्वरि! सत्व गुण की अधिकता से प्रकाशित हो ज्योति स्वरूप जो उत्तम तत्त्व है, जो स्वयं प्रकाशित है तथा इस जगत् का परमधाम है। वह आपका ही अंश है ॥१३॥

रजोगुणातिरेकेण यत् कामस्य प्रकाशनम् ।
रागस्वरूपं मध्यस्थं तत्तेऽशांशं जगन्मयि ॥१४॥

हे जगत्स्वरूपा ! रजोगुण की अधिकता से जो आपके काम का प्रकाशन करने वाला रागस्वरूप मध्यम भाग है, वह आपके ही अंश का अंश है ॥१४॥

तमोगुणातिरेकेण यद्यन्मोहप्रकाशनम् ।
आच्छादनं चेतनानां तत्ते चांशांशगोचरम् ॥१५॥

तमोगुण की अधिकता से, जो मोह का प्रकटीकरण होता है या चेतना शक्ति का आच्छादन दिखाई देता है, वह सभी आपके अंश का अंश है ॥१५॥

परा परात्मिका शुद्धा निर्मला लोकमोहिनी ।
त्वं त्रिरूपा त्रयी कीर्तिर्वार्त्तास्य जगतो गतिः ॥१६॥

आप परा हो, परात्मिका हो, शुद्ध, दोषरहित, समस्त लोकों को मोहित करने वाली, सत्व-रज-तम स्वरूप या महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती नामक तीनों रूपों वाली, ऋग्, यजुः, सामवेद स्वरूपा, कीर्ति (यश), वार्ता (जीविका) स्वरूप हो, इस संसार की गति भी आप ही हो ॥१६॥

बिभर्ति माधवो धात्रीं यया मूर्त्या निजोत्थया ।
सा मूर्तिस्तव सर्वेषां जगतामुपकारिणी ॥१७॥

आप अपने जिस स्वरूप से विष्णु को धारण करती हैं, आपकी वह मूर्ति समस्त जगत का उपकार करने वाली है ॥१७॥

महानुभावा त्वं विश्वशक्तिः सूक्ष्मापराजिता ।
यदूर्द्धाधोनिरोधेन व्यज्यते पवनैः परम् ॥१८॥

आप महान् चेष्टाओं वाली हो, आप विश्व की शक्ति, सूक्ष्मा और अपराजिता हो। जिसके ऊपर नीचे के निरोध से वायु संचरण करती है ॥१८॥

तज्ज्योतिस्तव मात्रार्थे सात्विकं भावसन्मतम् ।
यद्योगिनो निरालम्बं निष्कलं निर्मलं परम् ॥१९॥
आलम्बयन्ति तत्तत्त्वं त्वदन्तर्गोचरन्तु तत् ।
या प्रसिद्धा च कूटस्था सुप्रसिद्धाति निर्मला ।
सा ज्ञाप्तिस्त्वन्निष्प्रपञ्चा प्रपञ्चापि प्रकाशिका ॥२०॥

वह सात्विकभाव से युक्त, स्वच्छ, श्रेष्ठ, निराश्रित, ज्योति स्वरूप तत्त्व, जिसका योगीजन अवलम्बन लेते हैं, वह आपके अन्तर्गत ही दिखाई देता है और केवल आपका ही बोध कराने वाला है। जो प्रसिद्ध गुह्यरूपिणी, स्वच्छ

तथा विख्यात है। वही तुम्हारे प्रपञ्चात्मक और प्रपञ्चरहित स्वरूप का प्रकाशन करने वाली बुद्धि है ॥१९-२०॥

त्वं विद्या त्वमविद्या च त्वमालम्बा निराश्रया ।
प्रपञ्चरूपा जगतामादिशक्तिस्त्वमीश्वरी ॥२१॥

आप विद्या हो, आप अविद्या हो, आप ही आलम्बन युक्त हो, आश्रयरहित भी आपही हो। इस प्रपञ्चात्मक जगत की आदि शक्ति हो। आप ही परमेश्वरी भी हो ॥२१॥

ब्रह्मकण्ठालया शुद्धा वाग्वाणी या प्रगीयते ।
वेदप्रकाशनपरा सा त्वं विश्वप्रकाशिनी ॥२२॥

जिसे ब्रह्मा के कण्ठ में स्थित शुद्ध वाक् या वाणी रूप में गाया जाता है, वह वेद ज्ञान का प्रकाशन करने तथा समस्त विश्व की प्रकाशिका आप ही हो ॥२२॥

त्वमग्निस्त्वं तथा स्वाहा त्वं स्वधा पितृभिः सह ।
त्वं नभस्त्वं कालरूपा त्वं काष्ठा त्वं बहिःस्थिता ॥२३॥

आप ही अग्नि तथा अग्नि-पत्नी स्वाहा हो, पितृगणों के सहित स्वधा भी आप ही हो। आप आकाशस्वरूप, कालरूप हो, आप काष्ठा (काल का सूक्ष्ममान) हो, आप सबके बाहर स्थित रहने वाली हो ॥२३॥

त्वमचिन्त्या त्वमव्यक्ता तथानिर्देश्यरूपिणी ।
त्वं कालरात्रिस्त्वं शान्ता त्वमेव प्रकृतिः परा ॥२४॥

आप अचिन्त्य, अव्यक्त तथा अनिर्देश्य रूप वाली हो। आप कालरात्रि हो, आप शान्ता हो, आप ही परा प्रकृति हो ॥२४॥

यस्याः संसारलोकानां परित्राणाय यद्वहिः ।
रूपं जानन्ति धात्राद्यास्तत्त्वां ज्ञास्यन्ति के पराम् ॥२५॥

ब्रह्मादि संसार और विविध लोकों की रक्षा के लिए जिसके बाह्यरूप को ही जान पाते हैं। उन आप के परम तत्वमय रूप को कौन जान सकता है?॥२५॥

प्रसीद भगवत्यम्बे प्रसीद योगरूपिणी ।
प्रसीद घोररूपे त्वं जगन्मयि नमोऽस्तु ते ॥२६॥

हे भगवति! हे अम्बे ! हे योगस्वरूपिणी ! आप प्रसन्न हों। हे घोर रूप वाली! आप प्रसन्न हों। आप जगन्मयी हैं। आपको नमस्कार है ॥२६॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

इति स्तुता महामाया दक्षेण प्रयतात्मना ।
उवाच दक्षं ज्ञात्वापि स्वयं तस्येप्सितं द्विजाः ॥२७॥

मार्कण्डेय बोले– हे द्विजों! विशेष रूप से संयतात्मा दक्ष के द्वारा इस प्रकार से स्तुति किये जाने पर महामाया भगवती ने दक्ष के अभीष्ट को जानकर उनसे कहा—॥२७॥

।। भगवत्युवाच ।।

तुष्टाहं दक्ष भवतो मद्भक्त्या ह्यनया भृशम् ।
वरं वृणीष्व चाभीष्टं तत्ते दास्यामि तत् स्वयम् ।।२८।।

भगवती बोलीं– हे दक्ष प्रजापति! वर माँगो और मैं स्वयं तुम्हें तुम्हारा अभीष्ट प्रदान करूँगी; क्योंकि मैं तुम्हारी इस अपनी भक्ति से बहुत सन्तुष्ट हूँ ।।२८।।

नियमेन तपोभिश्च स्तुतिभिस्ते प्रजापते ।
अतीव तुष्टा दास्येऽहं वरं वरय वाञ्छितम् ।।२९।।

हे प्रजापति ! मैं तुम्हारे नियम तपस्या एवं स्तुतियों से अत्यंत सन्तुष्ट होकर तुम्हें वर प्रदान करूँगी । इसलिए वांछित (मनचाहा) वरदान माँगो ।।२९।।

।। दक्ष उवाच ।।

जगन्मयि महामाये यदि त्वं वरदा मम ।
तदा मम सुता भूत्वा हरजाया भवाधुना ।।३०।।

दक्ष बोले– हे जगन्मयि! हे महामाया ! यदि आप मुझे वर देने को तत्पर हैं तो आप इसी समय मेरी पुत्री होकर भगवान् शङ्कर की पत्नी होवें ।।३०।।

ममैष न वरो देवि केवलं जगतामपि ।
लोकेशस्य तथा विष्णोः शिवस्यापि प्रजेश्वरि ।।३१।।

हे देवि! यह न केवल मेरे लिए वरदान होगा, अपितु संसार के लिए भी वरदान होगा । हे प्रजा (भक्त) जनों की स्वामिनी ! यह लोकेश (ब्रह्मा), विष्णु और शिव के लिए भी वरदान होगा ।।३१।।

।। देव्युवाच ।।

अहं तव सुता भूत्वा त्वज्जायायां समुद्भवा ।
हरजाया भविष्यामि न चिरात्तु प्रजापते ।।३२।।

देवी बोलीं– हे प्रजापति ! मैं शीघ्र ही तुम्हारी पत्नी से उत्पन्न हो, तुम्हारी पुत्री होऊँगी तत्पश्चात् शिव की पत्नी होऊँगी ।।३२।।

यदा भवान्मयि पुनर्भवेन्मन्दादरस्तदा ।
देहं त्यक्ष्यामि सपदि सुखिन्यप्यथवेतरा ।।३३।।

जब तुम पुनः मेरे प्रति मन्द आदरभाव वाले हो जाओगे तब मैं शीघ्र ही उस देह का त्याग कर दूँगी । अन्यथा मैं सुख से रहूँगी ।।३३।।

एष दत्तस्तव वरः प्रतिसर्गं प्रजापते ।
अहं तव सुता भूत्वा भविष्यामि हरप्रिया ।।३४।।

हे प्रजापति ! इस प्रकार से तुम्हें वरदान देकर मैं प्रतिसर्ग के समय तुम्हारी पुत्री होकर शिवपत्नी बनूँगी ।।३४।।

तथा सन्मोहयिष्यामि महादेवं प्रजापते ।
प्रतिसंर्गं तथा मोहं सम्प्राप्स्यति निराकुलम् ।।३५।।

उस प्रतिसर्ग काल में महादेव को मैं इस प्रकार सम्मोहित करूँगी, जिससे स्थिर चित्त होते हुए भी वे मोह को प्राप्त होंगे ।।३५।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एवमुक्त्वा महामाया दक्षं मुख्यं प्रजापतिम् ।
अन्तर्दधे ततो देवी सम्यग् दक्षस्य पश्यतः ।।३६।।

मार्कण्डेय बोले– तब प्रजापतियों में श्रेष्ठ दक्ष से इस प्रकार कहकर उनके देखते-देखते महामाया देवी पूर्णरूप से अन्तर्धान हो गईं ।।३६।।

अन्तर्हितायां मायायां दक्षोऽपि निजमाश्रमम् ।
जगाम लेभे च मुदं भविष्यति सुतेति सा ।।३७।।

माया भगवती के अन्तर्हित हो जाने पर दक्ष भी अपने आश्रम पर लौट गये तथा वह (देवी) मेरी पुत्री होगी, इस विचार से प्रसन्न हो उठे ।।३७।।

अथ चक्रे प्रजोत्पादं विना स्त्रीसङ्गमेन च ।
सङ्कल्पाविर्भवाश्यान्तु मनसा चिन्तनेन च ।।३८।।

तत्पश्चात् सङ्कल्पशक्ति से तथा मानसिकचिन्तन द्वारा स्त्री संसर्ग के बिना ही उन्होंने प्रजा का उत्पादन किया ।।३८।।

तत्र ये तनया जाता बहुशो द्विजसत्तमाः ।
ते नारदोपदेशेन भ्रमन्ति पृथिवीमिमाम् ।।३९।।

हे द्विजसत्तमों! उस समय जो बहुत से पुत्र उत्पन्न हुये वे सभी नारद के उपदेश से इस पृथ्वी पर भ्रमण कर रहे हैं ।।३९।।

पुनः पुनः सुता ये ये तस्य जाता सहस्रशः ।
ते सर्वे भ्रातृपदवीं ययुर्नारदवाक्यतः ।।४०।।

बार-बार उनके जो हजारों पुत्र उत्पन्न हुए वे सभी नारद के वचनों के अनुसार अपने बड़े भाइयों के ही पद को प्राप्त किये ।।४०।।

पृथिव्यां सृष्टिकर्तारः सर्वे यूयं द्विजोत्तमाः ।
पश्यध्वं पृथिवीं कृत्स्नामुपान्तप्रान्तमायताम् ।।४१।।
इति नारदवाक्येन नोदिता दक्षपुत्रकाः ।
अद्यापि न निवर्तन्ते भ्रमन्तः पृथिवीमिमाम् ।।४२।।

हे द्विजोत्तमों ! "आप सब पृथ्वी पर सृष्टिकर्ता के रूप में उत्पन्न हुये हैं । अतः एक छोर से दूसरे छोर तक फैली हुई सम्पूर्ण पृथ्वी का आप निरीक्षण करें ।" नारद के इस प्रकार के वाक्य से प्रेरित हो वे दक्षपुत्र आज भी नहीं लौटते और पृथ्वी पर भ्रमण कर रहे हैं ।।४१-४२।।

सतीजन्म

ततः समुत्पादयितुं प्रजाः मैथुनसम्भवाः ।
उपयेमे वीरणस्य तनयां दक्ष ईप्सिताम् ।
वीरिणी नाम तस्यास्तु असक्नीत्यपि सत्तमाः ।।४३।।

तब मैथुन (स्त्री-प्रसङ्ग) से उत्पन्न इच्छित सन्तान की प्राप्ति हेतु वीरण की पुत्री, जिसका नाम वीरिणी था, तथा जिसे असक्नी भी कहते हैं, का उन्होंने वरण किया ।।४३।।

तस्यां प्रथम-सङ्कल्पो यदा भूतः प्रजापतेः ।
सद्योजाता महामाया तदा तस्यां द्विजोत्तमाः ।।४४।।

हे द्विजोत्तमों ! दक्ष प्रजापति का वीरिणी के साथ प्रथम-सङ्कल्प जब हुआ तब उससे शीघ्र ही महामाया उत्पन्न हो गईं ।।४४।।

तस्यां तु जातमात्रायां सुप्रीतोऽभूत् प्रजापतिः ।
सैवैषेति तदा मेने तां दृष्ट्वा तेजसोज्ज्वलाम् ।।४५।।

उस देवी के उत्पन्न होने मात्र से दक्ष प्रजापति प्रसन्न हो उठे । उस स्वकीय तेज से प्रकाशित महामाया को देखकर यह वही है, जिसने पूर्व में वर दिया था । ऐसा उन्होंने अनुभव किया ।।४५।।

बभूव पुष्पवृष्टिश्च मेघाश्च ववृषुर्ज्जलम् ।
दिशः शान्तास्तदा तस्यां जातायाञ्च समुद्गताः ।।४६।।

उसके उत्पन्न होते ही (आकाश से) फूलों की वर्षा होने लगी, बादल जल बरसाने लगे तथा दिशायें शान्त एवं प्रमुदित हो गईं ।।४६।।

अवादयन्तस्त्रिदशाः शुभवाद्यं वियद्गताः ।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्तास्तस्यां सत्यां नरोत्तमाः ।।४७।।

हे नरोत्तमों ! उस सती के उत्पन्न होने पर आकाश में स्थित देवगण मङ्गलवाद्य बजाने लगे तथा अग्नियाँ शान्त हो जलने लगीं ।।४७।।

वीरिण्या लक्षितो दक्षस्तां दृष्ट्वा जगदीश्वरीम् ।
विष्णुमायां महामायां तोषयामास भक्तितः ।।४८।।

वीरिणि के देखते-देखते, उस जगदीश्वरी, विष्णुमाया, महामाया को देखकर भक्तिपूर्वक दक्ष ने उस देवी को सन्तुष्ट किया । उनकी स्तुति प्रारम्भ की ।।४८।।

।। दक्ष उवाच ।।

शिवा शान्ता महामाया योगनिद्रा जगन्मयी ।
या प्रोच्यते विष्णुमाया तां नमामि सनातनीम् ।।४९।।

दक्ष बोले– आप कल्याणकारिणी, शान्तस्वभाव वाली, महामाया, जगन्मयी, योगनिद्रा हो, जिसे विष्णुमाया भी कहा जाता है, उस सनातनी देवी को मैं नमस्कार करता हूँ ।।४९।।

यया धाता जगत्सृष्टौ नियुक्तस्तां पुराकरोत् ।
स्थितिञ्च विष्णुरकरोद्यन्नियोगाज्जगत्पत्तिः ।
शम्भुरन्तं ततो देवीं त्वां नमामि महीयसीम् ।।५०।।

प्राचीनकाल में जिसके द्वारा ब्रह्मा जगत् की सृष्टि हेतु नियुक्त किये गये, जिसके निर्देश से जगत् के स्वामी विष्णु पालन तथा शङ्कर अन्त अर्थात् संहार करते हैं। मैं आप महिमाशालिनी भगवती को नमस्कार करता हूँ ।।५०।।

विकाररहितां शुद्धामप्रमेयां प्रभावतीम् ।
प्रमाणमानमेयाख्यां प्रणमामि सुखात्मिकाम् ।।५१।।

मैं उस विकार (दोष) रहित, शुद्ध स्वरूप, अतुलनीय प्रभाववाली, प्रमाण और मानों से अवर्णनीय, सुखात्मिका देवी को प्रणाम करता हूँ ।।५१।।

यस्त्वां विचिन्तयेद्देवीं विद्याविद्यात्मिकां पराम् ।
तस्य भोग्यञ्च मुक्तिश्च सदा करतले स्थिता ।।५२।।

जो आप विद्या-अविद्यारूप-वाली सर्वश्रेष्ठ देवी का चिन्तन करता है। सदैव उसके हाथों में भोग्य और मुक्ति दोनों ही स्थित रहती है ।।५२।।

यस्त्वां प्रत्यक्षतो देवीं सकृत् पश्यति पावनीम् ।
तस्यावश्यं भवेन्मुक्तिर्विद्याविद्याप्रकाशिकाम् ।।५३।।

जो आपके पवित्र करने वाले विद्या और अविद्या के रहस्य का प्रकाशन करने वाले, आप देवी के स्वरूप का एक बार भी प्रत्यक्षतः दर्शन कर लेता है, उसकी मुक्ति अवश्य हो जाती है ।।५३।।

योगनिद्रे महामाये विष्णुमाये जगन्मयि ।
या प्रमाणार्थसम्पन्ना चेतना सा तवात्मिका ।।५४।।

हे योगनिद्रा! हे महामाया, विष्णुमाया, जगन्मयि! जो प्रमाण के अर्थ का बोध कराने वाली चेतनाशक्ति है, वह भी आपका ही स्वरूप है ।।५४।।

ये स्तुवन्ति जगन्मातर्भवतीमम्बिकेति च ।
जगन्मयीति मायेति सर्वं तेषां भविष्यति ।।५५।।

हे जगन्माता! जो आप अम्बिका, जगन्मयि, माया की स्तुति करते हैं; उनके लिए सब कुछ (उपलब्ध) होगा ।।५५।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति स्तुता जगन्माता दक्षेण सुमहात्मना ।
तथोवाच तदा दक्षं यथा माता शृणोति न ।।५६।।

मार्कण्डेय बोले– महात्मा दक्ष के द्वारा जगन्माता की इस प्रकार स्तुति की गई। तब माता वीरिणी जिस प्रकार न सुन सकें, ऐसा देवी ने दक्ष से कहा ।।५६।।

सम्मोह्य सर्वं तत्रस्थं यथा दक्षः शृणोति तत् ।
नान्यः शृणोति च तथा माययाह तदाम्बिका ।।५७।।

तब वहाँ उपस्थित सबको अपनी माया से सम्मोहित कर इस प्रकार कहा, जिससे केवल दक्षप्रजापति ही सुन सकें, अन्य न सुने ।।५७।।

।। देव्युवाच।।

अहमाराधिता पूर्वं यदर्थं मुनिसत्तम ।
ईप्सितं तव सिद्धं तदवधारय साम्प्रतम् ।।५८।।

देवी बोलीं– हे मुनिसत्तम! पूर्व में जिस निमित्त मैं आपके द्वारा पूजित हुई थी, वह तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो गया है । अब उसका ध्यान करो ।।५८।।

सतीबाल-लीलावर्णन

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एवमुक्त्वा तदा देवी दक्षञ्च निजमायया ।
आस्थाय शैशवं भावं जनन्यन्ते रुरोद सा ।।५९।।

मार्कण्डेय बोले– तब देवी ने दक्ष से ऐसा कहा और अपनी माया से शिशुत्व भाव का आश्रय ले, माता (वीरिणी) के निकट वे रोने लगीं ।।५९।।

ततस्थां वीरिणी यत्नात् सुसंस्कृत्य यथोचितम् ।
शिशुपालेन विधिना तस्यै स्तन्यादिकं ददौ ।।६०।।

तब वीरिणी ने प्रयत्नपूर्वक एवं उचित रूप से शिशुपालन की विधि से उनका संस्कार कर उसे दूध आदि प्रदान किया ।।६०।।

पालिता साथ वीरिण्या दक्षेण सुमहात्मना ।
ववृधे शुक्लपक्षस्य निशानाथो यथान्वहम् ।।६१।।

महात्मादक्ष तथा वीरिणी के द्वारा पालन की जाती हुई वे दिनों-दिन शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगीं ।।६१।।

तस्यान्तु सद्गुणाः सर्वे विविशुर्द्विजसत्तमाः ।
शैशवेऽपि यथा चन्द्रे कलाः सर्वा मनोहराः ।।६२।।

हे द्विजसत्तमों ! बचपन में ही उनमें सभी गुणों ने उसी प्रकार समावेश कर लिया, जिस प्रकार सभी मन को हरने वाली कलायें चन्द्रमा में प्रविष्ट हो जाती हैं ।।६२।।

रेमे सा निजभावेन सखीमध्यगता यदा ।
तदा लिखति भर्गस्य प्रतिमामन्वहं मुहुः ।।६३।।

वे जब सखियों के बीच आत्मविभोर हो रमण करती थीं (खेल खेलती थीं) तब भी वे प्रतिदिन बार-बार भगवान् शिव की ही प्रतिमा अथवा चित्रादि बनाती थीं ।।६३।।

यदा गायति गीतानि तदा बाल्योचितानि सा ।
उग्रं स्थाणुं हरं रुद्रं सस्मार स्मरमानसा ।।६४।।

जब वे बाल्योचित गीत गातीं तब कामासक्त मन से उग्र, स्थाणु, हर, रुद्रादि नामों का ही स्मरण करतीं ।।६४।।

तस्याश्चक्रे नाम दक्षः सतीति द्विजसत्तमाः ।
प्रशस्तायाः सर्वगुणैः सत्त्वादपि नयादपि ।।६५।।

हे द्विजसत्तमों ! उसके प्रशस्त गुणों तथा सत्व और नय के कारण दक्ष ने उन देवी का नाम 'सती' रखा ।।६५।।

ववृधे दक्षवीरिण्योः प्रत्यहं करुणातुला ।
तस्यां बाल्येऽपि भक्तायां तयोर्नित्यं मुहुर्मुहुः ।।६६।।

बाल्यावस्था में ही उनकी (शिव) भक्ति को देखकर दक्ष और वीरिणी की अतुलनीय करुणा प्रतिदिन बढ़ने लगी ।।६६।।

सर्वकान्त-गुणाक्रान्ता सदा सा नयशालिनी ।
तोषयामास पितरौ नित्यं नित्यं नरोत्तमाः ।।६७।।

हे नरोत्तमों ! नययुक्त, सभी को प्रिय एवं सभी गुणों से परिपूर्ण उन देवी ने भी नये-नये रूपों में माता-पिता को सन्तुष्ट किया ।।६७।।

अथैकदा पितुः पार्श्वे तिष्ठन्तीं तां सतीं विधिः ।
नारदश्च ददर्शाथ रत्नभूतां क्षितौ शुभाम् ।।६८।।

एक बार अपने पिता के समीप स्थित पृथ्वी की रत्न-रूप, शुभस्वरूपा उन सती देवी को ब्रह्मा और नारद ने देखा ।।६८।।

सापि तौ वीक्ष्य मुदिता विनयावनता तदा ।
प्रणनाम सती देवं ब्रह्माणमथ नारदम् ।।६९।।

तब उन सती ने भी उन दोनों को देखकर, प्रसन्नता पूर्वक, नम्रता से अपने कन्धों को झुकाकर ब्रह्मदेव और नारद को प्रणाम किया ।।६९।।

प्रणामान्ते सतीं वीक्ष्य विनयावनतां विधिः ।
नारदश्च तथैवाशीर्वादमेतमुवाच ह ।।७०।।

प्रणाम के अन्त में विनय से अवनत हुई सती को देखकर ब्रह्मा और नारद ने उसी प्रकार से यह आशीर्वाद दिया ।।७०।।

त्वामेव यः कामयते त्वं त्वं कामयसे पतिम् ।
तमाप्नुहि पतिं देवं सर्वज्ञं जगदीश्वरम् ।।७१।।

जो तुम्हारी ही कामना करता है तथा तुम जिस पति की कामना करती हो, तुम उस सबकुछ जानने वाले, जगत् के स्वामी महादेव को पति के रूप में प्राप्त करो ।।७१।।

यो नान्यां जगृहे नापि गृहणाति न ग्रहीष्यति ।
जायां स ते पतिर्भूयादनन्यसदृशः शुभे ।।७२।।

हे शुभे ! जिसने अन्य किसी पत्नी को न ग्रहण किया है, न करता है, न करेगा वही (शिव) तुम्हारा पति होगा, जिसके सदृश्य अन्य कोई नहीं है ।।७२।।

इत्युक्त्वा सुचिरं तौ तु स्थित्वा दक्षाश्रये पुनः ।
विसृष्टौ तेन संयातौ स्वस्थानं द्विजसत्तमाः ।।७३।।

।। श्रीकालिकापुराणे सत्युत्पत्तिर्नाम अष्टमोऽध्यायः ।।८।।

हे द्विजसत्तमों ! ऐसा कहकर वे दोनों दक्ष के समीप बहुत समय तक रहे, तत्पश्चात् उसके द्वारा विदा किये जाने पर अपने स्थान को चले गये ।।७३।।

।। श्रीकालिकापुराण में सतीउत्पत्ति नामक आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।८।।



नवमोऽध्यायः

हरानुनयनम्

(हर-प्रसादने पार्वती-तपवर्णनम्)

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

बाल्यं व्यतीत्य सा प्राप यौवनं शोभनं ततः ।
अतीव रूपेणांगेन सर्वाङ्गसुमनोहरा ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– अपनी बाल्यावस्था को बिताकर देवी ने अतीव सुन्दर युवावस्था को प्राप्त किया तब अतीव रूप और सुन्दर अङ्गों से वे सर्वाङ्गतः सुन्दर तथा मनोहारिणी हो गईं ॥१॥

तां वीक्ष्य दक्षो लोकेशः प्रोद्भिन्नान्तर्वयः स्थिताम् ।
चिन्तयामास भर्गाय कथं दास्ये इमां सुताम् ।।२।।

वयसन्धि की अवस्था में स्थित उसे देखकर दक्ष प्रजापति विचार करने लगे मैं कैसे अपनी इस पुत्री को भगवान् शङ्कर को प्रदान करूँ ॥२॥

नन्दाव्रत-वर्णन

अथ सापि स्वयं भर्गं प्राप्तुमैच्छत्तदान्वहम् ।
आराधयामास च तं गृहे मातुरनुज्ञया ।।३।।

वे स्वयं भी दिनोदिन शिव को पति के रूप में प्राप्त करने की इच्छा करने लगीं। तथा माता की आज्ञा ले, घर में ही शिवाराधन प्रारम्भ कीं ॥३॥

आश्विने नन्दकाख्यायां लवणैः सगुडोदनैः ।
पूजयित्वा हरं पश्चाद्ववन्दे सा निनाय तत् ।।४।।

आश्विनमास की नन्दा (प्रतिपद्) तिथि को नमक तथा गुड़ोदन (रसियाव) से उन्होंने भगवान् शङ्कर की पूजा की तथा उनकी वन्दना कर अनुष्ठान सम्पन्न किया ॥४॥

कार्तिकस्य चतुर्दश्यां सापूपैः पायसैर्हरम् ।
समाकीर्णैः समाराध्य सस्मार परमेश्वरम् ।।५।।

कार्तिक की चतुर्दशी (शिवरात्रि) को पूआ तथा खीर से भगवान् शङ्कर की पूजा की और परमेश्वर का स्मरण किया ॥५॥

कृष्णाष्टम्यां मार्गशीर्षे सतिलैः सयवोदनैः ।
पूजयित्वा हरं नीलैर्निनाय दिवसं पुनः ॥६॥

मार्गशीर्षमास के कृष्णपक्ष की अष्टमी को तिल, यवोदन (जौ की दलिया) नीलमणी से शिव का पूजन कर दिवस पर्यन्त अनुष्ठान किया ॥६॥

पौषे तु कृष्णसप्तम्यां कृत्वा जागरणं निशि ।
अपूजयच्छिवं प्रातः कृसरान्नेव सा सती ॥७॥

पूसमास के कृष्णपक्ष की सप्तमी तिथि को रात्रि जागरण कर प्रात:काल सती देवी ने खिचड़ी से भगवान् शिव का पूजन किया ॥७॥

माघस्य पौर्णमास्यान्तु कृत्वा जागरणं निशि ।
आर्द्रवस्त्रा नदीतीरे ह्यकरोद्धरपूजनम् ॥८॥

माघ की पूर्णिमा को रात्रि जागरण कर गीले वस्त्रों में ही नदीकिनारे उन्होंने भगवान् शिव का पूजन किया ॥८॥

नानाविधैः फलैः पुष्पैः सम्यक् तत्कालसम्भवैः ।
चकार नियताहारं तं मासं हरमानसा ॥९॥

अनके प्रकार के सामयिक फलों और पुष्पों से संयत आहार करती हुई, शिव का मानसिक चिन्तन करते हुए उन्होंने वह मास व्यतीत कर दिया ॥९॥

चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे तपस्यस्य विशेषतः ।
कृत्वा जागरणं देवं विल्वपत्रैरपूजयत् ॥१०॥

विशेषत: तपस्य (फाल्गुन) मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी (महाशिवरात्रि) को उन्होंने जागरण किया तथा बिल्वपत्रों से भगवान् देवाधिदेव शिव की पूजा की ॥१०॥

चैत्रे शुक्लचतुर्दश्यां पलाशैः कुसुमैः शिवम् ।
अपूजयद्दिवारात्रौ तं स्मरन्ती निनाय तम् ॥११॥

चैत्र के शुक्लपक्ष की चतुर्दशीतिथि को पलाश के फूलों से शिव की रात-दिन पूजा और स्मरण करते हुए अनुष्ठान सम्पन्न किया ॥११॥

वैशाखस्य तृतीयायां शुक्लायां सयवोदनैः ।
पूजयित्वा हरं देवं हव्यैर्मासं चरन्त्यनु ।
निनाय सा निराहारा स्मरन्ती वृषवाहनम् ॥१२॥

वैशाख के शुक्लपक्ष की तृतीयातिथि को यवोदन (जौ की दलिया) तथा हव्यों से शिव का पूजन कर निराहार रहकर महीने भर भगवान् वृषवाहन शिव का स्मरण करते हुए अनुष्ठान किया ॥१२॥

ज्येष्ठस्य पूर्णिमारात्रौ सम्पूज्य वृषवाहनम् ।
वसनैर्वृहतीपुष्पैर्निराहारा निनाय ताम् ॥१३॥

ज्येष्ठमास की पूर्णिमा की रात्रि को वस्त्रों तथा बृहती के पुष्पों से वृषवाहन की पूजाकर अपना अनुष्ठान सम्पन्न किया ॥१३॥

आषाढस्य चतुर्दश्यां शुक्लायां कृत्तिवाससः ।
वृहतीकुसुमैः पूजा देवस्याकारि वै तया ॥१४॥

आषाढ़ के शुक्लपक्ष की चतुर्दशीतिथि को कृत्तिवास शिव की उनके द्वारा बृहती के फूलों से पूजा की गई ॥१४॥

श्रावणस्य सिताष्टम्यां चतुर्दश्याञ्च सा शिवम् ।
यज्ञोपवीतैर्वासोभिः पवित्रैरप्यपूजयत् ॥१५॥

श्रावण के शुक्लपक्ष की अष्टमी तथा चतुर्दशी को उन्होंने वस्त्र. यज्ञोपवीत और पवित्र वस्त्रद्वारा भगवान् शिव की पूजा की ॥१५॥

भाद्रे कृष्णत्रयोदश्यां पुष्पैर्नानाविधैः फलैः ।
सम्पूज्याथ चतुर्दश्यां चकार जलभोजनम् ॥१६॥

भाद्रपदमास के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को अनेक प्रकार फलों तथा पुष्पों से शिव-पूजन कर चतुर्दशी को जलाहार किया ॥१६॥

इति व्रतं यदारब्धं पुरा सत्या तदैव तु ।
सावित्रीसहितो ब्रह्मा जगामाथ हरान्तिकम् ॥१७॥

प्राचीनकाल में जब सती ने इस प्रकार व्रत प्रारम्भ किया तभी सावित्री के सहित ब्रह्मा शिव के समीप पहुँच गये ॥१७॥

वासुदेवोऽपि भगवान् सह लक्ष्म्या तदन्तिकम् ।
प्रस्थं हिमवतः शम्भुः स्थितो यत्र गणैः सह ॥१८॥

भगवान् वासुदेव (विष्णु) भी लक्ष्मी के साथ हिमालय के उस शिखर पर पहुँच गये, जहाँ शिव अपने गणों के साथ उपस्थित थे ॥१८॥

तौ तु दृष्ट्वा ब्रह्मकृष्णौ सस्त्रीकौ संगतौ हरः ।
यथोचितं समाभाष्य पप्रच्छागमनं तयोः ॥१९॥
तथाविधांस्तु तान् दृष्ट्वा दाम्पत्यभावसंयुतान् ।
काञ्चिदीहाञ्च मनसा चक्रे दारपरिग्रहे ॥२०॥

भगवान् शङ्कर उन दोनों ब्रह्मा और कृष्ण (विष्णु) को सपत्नीक साथ-साथ आया देख, यथोचित व्यवहार कर उनके आने का कारण पूछे और दाम्पत्यभाव से युक्त उन दोनों को उस अवस्था में देखकर स्वयं भी स्त्री ग्रहण करने की कुछ इच्छा मन में करने लगे ॥१९-२०॥

अथागमनहेतुं नः कथयध्वञ्च तत्त्वतः ।
किमर्थमागता यूयं किं कार्यं वोऽत्र विद्यते ॥२१॥

आप लोग साररूप से अपने आने का कारण बताइए। आप किस हेतु पधारे हो, यहाँ आपका क्या कार्य है? ॥२१॥

इति पृष्टो त्र्यम्बकेण ब्रह्मा लोकपितामहः ।
उवाच च महादेवं विष्णुना परिचोदितः ॥२२॥

त्र्यम्बकशिव द्वारा उपर्युक्त रीति से पूछे जाने पर लोकपितामह ब्रह्मा ने विष्णु की प्रेरणा से महादेव शिव के प्रति कहा— ॥२२॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

यदर्थमागतावावां तच्छृणुस्व त्रिलोचन ।
विशेषतश्च देवार्थं विश्वार्थञ्च वृषध्वज ॥२३॥

ब्रह्मा बोले– हे तीननेत्रों वाले शिव ! हम लोग जिस हेतु आये हैं उसे सुनिये। हे वृषवाहन! हम सम्पूर्ण विश्व के लिए और मुख्य रूप से देवताओं के कल्याण हेतु आये हैं ॥२३॥

॥ त्रिदेवों की एकता ॥

अहं सृष्टिरतः शम्भो स्थितिहेतुस्तथा हरिः ।
अन्तहेतुर्भवानस्य जगतः प्रतिसर्गकम् ॥२४॥

हे शम्भो! मैं इस जगत् की सृष्टि में लगा रहता हूँ तथा विष्णु स्थिति के कारण हैं। प्रलय के समय आप इस संसार के अन्त के कारण हैं ॥२४॥

तत्कर्मणि सदैवाहं भवद्भ्यां सहितो ह्यलम् ।
हरिः स्थितावपि तथा मयालं भवता सह ।
त्वमन्तकरणे शक्तो विना नावां भविष्यसि ॥२५॥

उस कर्म में मैं सदैव आप दोनों के सहयोग से ही सक्षम हूँ। विष्णु भी पालन कर्म में मेरे और आपके सहयोग से ही सक्षम हैं। आप अन्त (विनाश) के कार्य में हमदोनों के बिना समर्थ नहीं होंगे ॥२५॥

तस्मादन्योन्यकृत्येषु सर्वेषां वृषभध्वज ।
साहाय्यं नः सदा योग्यमन्यथा न जगद्भवेत् ॥२६॥

हे वृषध्वज! एक दूसरे के सभी कार्यों में सहायक होना उचित है अन्यथा संसार की व्यवस्था नहीं चल सकती ॥२६॥

केचिद्भविष्यन्त्यसुरा मम वध्या महेश्वर ।
अपरे तु हरेर्वध्या भवतोऽपि तथापरे ॥२७॥
केचित्तद्वीर्यजातस्य केचिन्मेंऽशभवस्य वै ।
मायायाः केचिदपरे वध्याः स्युर्देववैरिणः ॥२८॥

हे महेश्वर ! कुछ राक्षस मेरे द्वारा मारे जाने योग्य होंगे, दूसरे श्री विष्णु द्वारा तथा अन्य आपके द्वारा भी। कुछ देवशत्रु आपके वीर्य से उत्पन्नों के द्वारा वध के

योग्य होंगे तो कुछ मेरे अंशावतारों द्वारा, कुछ दूसरे माया (भगवती) द्वारा मारे जाने योग्य होंगे ॥२७-२८॥

योगयुक्ते त्वयि सदा रागद्वेषादिवर्जिते ।
दयामात्रैकनिरते न वध्या असुरास्तव ॥२९॥

रागद्वेषादि से मुक्त हो आपके सदैव भोगयुक्त रह दयामात्र में निरन्तर लगे रहने से आप द्वारा मारे जाने वाले असुर मारे नहीं जा रहे हैं ॥२९॥

अबाधितेषु तेष्वीश कथं सृष्टिस्तथा स्थितिः ।
अन्तश्च भविता युक्तं नित्यं नित्यं वृषध्वज ॥३०॥

हे ईश! हे वृषध्वज! उनके न मारे जाने से नित्य उचित रूप से सृष्टि, स्थिति और संहार का कार्य कैसे हो सकेगा? ॥३०॥

सृष्टिस्थित्यन्तकर्माणि न कार्याणि यदा हर ।
शरीरभेदमस्माकं मायायाश्च न युज्यते ॥३१॥
एकस्वरूपा हि वयं भिन्ना कार्यस्य भेदतः ।
कार्यभेदो न सिद्धश्चेद्रूपभेदोऽप्रयोजनः ॥३२॥

हे हर! जब हम सृष्टि स्थिति और संहार का कार्यक्रम नहीं करेंगे तो हमारे एवं भगवती के शारीरिक भेद का क्या औचित्य रहेगा? क्योंकि हम सब कार्यों की भिन्नता के कारण भिन्न होते हुए भी तत्त्वतः एक रूप हैं। यदि कार्यभेद सम्पन्न न हो तो रूपभेद तो प्रयोजनरहित (व्यर्थ ही) है ॥३१-३२॥

एक एव त्रिधा भूत्वा वयं भिन्नस्वरूपिणः ।
भूता महेश्वर इति तत्त्वं विद्धि सनातनम् ॥३३॥

हे महेश्वर! हम सब एक होते हुए भी तीन रूप धारण कर भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। इस सनातन तत्त्व को जान लीजिये ॥३३॥

मायापि भिन्नरूपेण कमलाख्या सरस्वती ।
सावित्री चाथ सन्ध्या च भूता कार्यस्य भेदतः ॥३४॥

माया (भगवती) भी कार्यभेद से ही कमला, सरस्वती, सावित्री तथा सन्ध्या होती हैं ॥३४॥

प्रवृत्तेरनुरागस्य नारी मूलं महेश्वर ।
रामापरिग्रहात् पश्चात् कामक्रोधादिकोद्भवः ॥३५॥

हे महेश्वर! अनुराग की प्रवृत्ति का मूल नारी ही है। पत्नी ग्रहण के पश्चात् ही काम, क्रोधादि की उत्पत्ति होती है ॥३५॥

अनुरागे तु सञ्जाते कामक्रोधादिकारणे ।
विरागहेतुं यत्नेन सान्त्वयन्तीह जन्तवः ॥३६ ।

अनुराग में काम-क्रोधादि के उत्पन्न हो जाने पर प्राणी विराग के लिए यत्न द्वारा इस लोक में सान्त्वना प्राप्त करते हैं ॥३६॥

संगः प्रथम एव स्याद्रागवृक्षात् फलं महत् ।
तस्मात् संजायते कामः कामात् क्रोधस्ततो भवेत् ।।३७।।

सङ्ग अर्थात् आसक्ति ही रागरूप वृक्ष का पहला और महान् फल है। उस सङ्ग से ही काम उत्पन्न होता है और काम से क्रोध होता है ।।३७।।

वैराग्यञ्च निवृत्तिश्च शोकात् स्वाभाविकादपि ।
संसारविमुखे हेतुरसंगश्च सदातनः ।।३८।।

वैराग्य, स्वाभाविक शोक से निवृत्ति और असङ्ग (अनाशक्ति) संसार से विमुखता का स्थायी कारण है ।।३८।।

दया तत्र भवेन्नित्यं शान्तिश्चापि महेश्वर ।
अहिंसा च तपः शान्तिर्ज्ञानमार्गानुसाधनम् ।।३९।।

हे महेश्वर! वहाँ (जहाँ वैराग्य होता है) नित्य शान्ति होती है। शान्ति तथा ज्ञान मार्ग के साधक शान्ति, अहिंसा और तपस्या भी वहीं होती है ।।३९।।

त्वयि तावत्तपोनिष्ठे विसंगिनि दयायुते ।
अहिंसा च तथा शान्तिः सदा तव भविष्यति ।।४०।।

आपके तपस्यारत, सङ्गति रहित, दयालु रहने पर अहिंसा और शान्ति आपके लिए सदैव रहेगी ।।४०।।

ततो सुखविधौ यत्नस्तव कस्माद्भविष्यति ।
अकृते दूषणं यद्यत्तत् सर्वं कथितं तव ।।४१।।

तब (सुख) हेतु आपका प्रयत्न कैसे हो सकेगा? इस प्रकार का प्रयत्न न करने से जो-जो दोष हैं, वे सब मैंने आपसे कह दिया है ।।४१।।

तस्माद्विश्वहिताय त्वं देवानाञ्च जगत्पते ।
परिगृह्णीष्व भार्यार्थे वामामेकां सुशोभनाम् ।।४२।।
यथा पद्मालया विष्णोः सावित्री च यथा मम ।
तथा सहचरी शम्भोर्या स्यात्त्वं गृह्ण सम्प्रति ।।४३।।

इसलिए हे जगत्पति! तुम देवताओं तथा विश्व के कल्याण हेतु एक सुन्दरी स्त्री को पत्नी के निमित्त ग्रहण करो। जिस प्रकार लक्ष्मी विष्णु की तथा सावित्री मेरी सहचरी हैं, उसी प्रकार जो तुम्हारी सहचरी होवे, उसे तुम इस समय ग्रहण करो ।।४२-४३।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः पुरतो हरेः ।
तदा जगाद लोकेशं स्मितार्द्दितमुखो हरः ।।४४।।

मार्कण्डेय बोले– विष्णु के सम्मुख ब्रह्मा के इस प्रकार के वचनों को सुनकर, मुस्कुराते हुए भगवान् शङ्कर ने ब्रह्मा से कहा— ।।४४।।

।। ईश्वर उवाच ।।

एवमेव यथात्थ त्वं ब्रह्मन् विश्वनिमित्ततः ।
न स्वार्थतः प्रवृत्तिर्मे सम्यग् ब्रह्मविचिन्तनात् ।।४५।।

ईश्वर (शिव) बोले– हे ब्रह्मन् ! विश्व कल्याण हेतु तुमने यथार्थ ही कहा है । भलीभाँति ब्रह्म का चिन्तन करने से स्वार्थ में मेरी प्रवृत्ति नहीं है ।।४५।।

तथापि यत्करिष्यामि तत्ते वक्ष्ये जगद्धितम् ।
तच्छृणुष्व महाभाग युक्तमेव वचो मम ।।४६।।

तो भी संसार के कल्याण के लिए मैं जो कुछ करूँगा वह मैं तुमसे कहता हूँ । हे महाभाग ! मेरे उन उचित वचनों को सुनें ।।४६।।

या मे तेजः समर्था स्याद् ग्रहीतुमिह भागशः ।
तां निदेशय भार्यार्थे योगिनीं कामरूपिणीम् ।।४७।।

इस संसार में जो मेरे अंशभूत तेज को धारण करने में समर्थ हों ऐसी योगिनी किन्तु इच्छानुसार रूप धारण करने वाली स्त्री को मेरी पत्नी के निमित्त बताओ ।।४७।।

योगयुक्ते मयि तथा योगिन्येव भविष्यति ।
कामासक्ते मयि पुनर्मोहिन्येव भविष्यति ।
तां मे निदेशय ब्रह्मन् भार्यार्थे वरवर्णिनीम् ।।४८।।

हे ब्रह्मन्! ऐसी कुमारी को मेरी पत्नी के निमित्त बताओ जो मेरे योगयुक्त होने पर योगिनी होवे तथा मेरे कामासक्त होने पर वही पुनः मोहिनी हो जावे।।४८।।

यदक्षरं वेदविदो निगदन्ति मनीषिणः ।
ज्योतिःस्वरूपं परमं चिन्तयिष्ये सनातनम् ।।४९।।

जिसे वेद को जानने वाले मनीषीगण अक्षर अविनाशी कहते हैं । मैं उसी ज्योतिस्वरूप, सनातन, श्रेष्ठ तत्त्व का चिन्तन करूँगा ।।४९।।

तच्चिन्तायां सदा शक्तो ब्रह्मन् गच्छामि भावनाम् ।
तत्र या विघ्नजननी न भवित्रीह सास्तु मे ।।५०।।

हे ब्रह्मन् ! उसके चिन्ता अनुरक्त हो जब ब्रह्मभाव को प्राप्त करूँ, उस समय जो विघ्न को जन्म देने वाली न होवे, वह मेरे लिए ऐसी स्त्री होवे ।।५०।।

त्वं वा विष्णुरहं वापि परब्रह्मस्वरूपिणः ।
अङ्गभूता महाभाग योग्यं तदनुचिन्तनम् ।।५१।।

तुम, मैं या विष्णु परब्रह्मस्वरूप ही हैं, जिसके अङ्गभूत हम सब हैं, उस परब्रह्म का हमें चिन्तन करना ही उचित है ।।५१।।

तच्चिन्तया विना नाहं स्थास्यामि कमलासन ।
तस्माज्जायां प्रादिशस्व मत्कर्मानुगतां सदा ।।५२।।

हे कमलासन! उसके चिन्तन के बिना मैं नहीं रह सकता, अतः सदैव मेरे कर्मों का अनुगमन करने वाली पत्नी मुझे निर्दिष्ट करो ।।५२।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा सर्वजगत्पतिः ।
सस्मितं मोदितमना इदं वचनमब्रवीत् ।।५३।।

मार्कण्डेय बोले– उन महादेव के ऐसे वचनों को सुनकर सम्पूर्ण जगत् के स्वामी ब्रह्मा, मुसकान सहित, प्रसन्नमन से यह वचन बोले ॥५३॥

।। ब्रह्मोवाच ।।

अस्तीदृशी महादेव मार्गिता यादृशी त्वया ।।५४।।

ब्रह्मा बाले– हे महादेव! जैसा आपने निर्देश दिया है। वैसी कुमारी (उपलब्ध) है ॥५४॥

दक्षस्य तनया याभूत् सती नाम्नी सुशोभना ।
सैवेदृशी भवद्भार्या भविष्यति सुधीमती ।।५५।।

दक्ष की जो सती नामक सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई है वही बुद्धिमती उपर्युक्त प्रकार की आपकी पत्नी होगी ॥५५॥

तां त्वदर्थे तपस्यन्तीं तत्प्राप्तिं प्रतिकामिनीम् ।
विद्धि त्वं देवदेवेश सर्वेष्वात्मसु वर्तसे ।।५६।।

हे देवों के भी देव महादेव! तुम सब की आत्मा में निवास करने वाले हो। उसे अपने लिए तपस्या करने वाली, अपने प्रति बदले में आपसे अपेक्षा करने वाली समझो ॥५६॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ ब्रह्मवचः शेषे भगवान् मधुसूदनः ।
यदुक्तं ब्रह्मणा सर्वं तत् कुरुष्वेत्युवाच सः ।।५७।।

मार्कण्डेय बोले– इस प्रकार ब्रह्मा के वचनों के शेष (समाप्त) हो जाने पर भगवान् मधुसूदन (विष्णु) ने कहा कि जो ब्रह्मा ने कहा है वह सब आप सम्पादित करिये ॥५७॥

करिष्ये इति तेनोक्ते स्वेष्टं देशं प्रजग्मतुः ।
हरिर्ब्रह्मा च मुदितौ सावित्री-कमला-युतौ ।।५८।।

उन भगवान् शिव के द्वारा ऐसा ही करूँगा कहे जाने पर विष्णु और ब्रह्मा, लक्ष्मी तथा सावित्री के सहित प्रसन्नता पूर्वक अपने इच्छित स्थान को चले गये ॥५८॥

कामोऽपि वाक्यानि हरस्य श्रुत्वा
चामोदयुक्तो रतिना समित्रः ।
शम्भुं समासाद्य विविक्तरूपी
तस्थौ वसन्तं विनियोज्य शश्वत् ।।५९।।

॥ श्रीकालिकापुराणे हरानुनयनो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

कामदेव भी शिव के वाक्यों को सुनकर, पत्नी रति तथा मित्र मारगणों सहित, पुत्र वसन्त को प्रसन्नतापूर्वक समुचित रूप से नियुक्त कर, स्वयं एकाकी भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुआ ॥५९॥

॥ श्रीकालिकापुराण का हरानुनयन नामक नौवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥९॥



दशमोऽध्यायः

सती याचनं

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ सत्या पुनः शुक्लपक्षेऽष्टम्यामुपोषितम् ।
आश्विने मासि देवेशं पूजयामास भक्तितः ।।१।।

इसके बाद पुनः आश्विन के शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि को सती द्वारा उपवास पूर्वक देवेश शिव की भक्तिपूर्वक पूजा की गई ।।१।।

इति नन्दाव्रते पूर्णे नवम्यां दिनमागतः ।
तस्यास्तु भक्तिनम्रायाः प्रत्यक्षमभवद्धरः ।।२।।

इस प्रकार से आश्विन के शुक्ल पक्ष के नवमी के दिन नन्दा व्रत के पूर्ण हो जाने पर उस भक्ति से विनम्र हुई सती के सम्मुख शिव स्वयं प्रत्यक्षरूप से प्रकट हो गये ।।२।।

प्रत्यक्षतो हरं वीक्ष्य समोदहृदया सती ।
ववन्दे चरणौ तस्य लज्जयावनता नता ।।३।।

शिव को प्रत्यक्ष देखकर वे प्रसन्नहृदया सती देवी लज्जा से विनम्र हो गईं और उन्होंने झुककर उन शिव के चरणों की वन्दना की ।।३।।

अथ प्राह महादेवः सतीं तद् व्रतधारिणीम् ।
तामिच्छन्नपि भार्यार्थे तस्याश्चर्यफलप्रदः ।।४।।

इसके बाद उन व्रत धारण करने वाली सती से पत्नी के रूप में उनकी इच्छा करते हुए, उन्हें आश्चर्यजनक फल प्रदानकर्ता महादेव ने कहा ।।४।।

।। ईश्वर उवाच ।।

अनेन त्वद्व्रतेनाहं प्रीतोऽस्मि दक्षनन्दिनि ।
वरं वरय दास्यामि यस्तवाभिमतो भवेत् ।।५।।

भगवान् बोले– हे दक्षनन्दिनि सती ! मैं तुम्हारे इस व्रत से प्रसन्न हूँ, जो तुम्हारा इच्छित वर हो मांग लो। मैं तुम्हें वह प्रदान करूँगा ।।५।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

जानन्नपीह तद्भावं महादेवो जगत्पतिः ।
ऊचेऽथ वरयस्वेति तद्वाक्यश्रवणेच्छया ।।६।।

मार्कण्डेय बोले– संसार के स्वामी महादेव ने उन (सती) के भावों को जानते हुये उनके वाक्यों को सुनने की इच्छा से "तुम वर माँगो" ऐसा कहा— ॥६॥

सापि त्रपासमाविष्टा नो वक्तुं हृदये स्थितम् ।
शशाक बालाभीष्टं यल्लज्जयाच्छादितं यतः ॥७॥

वह कुमारी भी लज्जा से भरकर हृदय में जो अभीष्ट था और लज्जा से ढँका स्थित था, उसे कह न सकीं ॥७॥

एतस्मिन्नन्तरे कामः साभिप्रायं हरं तदा ।
वामापरिग्रहे नेत्रवक्त्रव्यापारलिंगितम् ॥८॥
सम्प्राप्य विवरञ्चापं सन्दधे पुष्पहेतिना ।
हर्षणेनाथ बाणेन विव्याध हृदये हरम् ॥९॥

तब इसी बीच कामदेव ने नेत्र और मुख की चेष्टाओं से प्रकट होते, स्त्री परिग्रहण के अभिप्राय युक्त शिव पर छिद्र (दुर्बलता) पाकर अपने पुष्पधनु से सन्धान किया तथा हर्षण नामक बाण से शिव के हृदय को वेध दिया ॥८-९॥

ततोऽसौ हर्षितः शम्भुर्वीक्षाञ्चक्रे सतीं मुहुः ।
विस्मृत्य च परं ब्रह्मचिन्तनं परमेश्वरः ॥१०॥

तब परमेश्वर शिव जो ब्रह्म चिन्तन में लगे रहते थे, उस ब्रह्म चिन्तन को भूलकर हर्षित (आकर्षित) हो बारम्बार सती को देखने लगे ॥१०॥

ततः पुनर्मोहनेन बाणेनैनं मनोभवः ।
विव्याध हर्षितः शम्भुर्मोहितश्च तदा भृशम् ॥११॥

तब अपने हर्षण नामक बाण का प्रभाव देखकर, मनोभव कामदेव ने अपने मोहन नामक बाण से उन्हें वेध दिया। तब हर्षण के प्रभाव से हर्षित शिव अत्यधिक मोहित हो गये ॥११॥

ततो यदासौ मोहस्य हर्षस्य च द्विजोत्तमाः ।
भावं व्यक्तीचकारैष माययापि विमोहितः ॥१२॥

हे द्विजोत्तमों ! जब वे काम के प्रभाव तथा माया भगवती से मोहित कर हर्ष और मोह के इस प्रकार के भावों को व्यक्त करने लगे ॥१२॥

अथ त्रपां स्वां संस्तभ्य यदा प्राह हरं सती ।
ममेष्टं देहि वरद वरमित्यर्थकारकम् ॥१३॥
तदा वाक्यस्यावसानमनपेक्ष्य वृषध्वजः ।
भवस्व मम भार्येति प्राह दाक्षायणीं मुहुः ॥१४॥

इसके बाद जब सती ने अपनी लज्जा को छोड़कर शिव से "हे वरदायक! मुझे मनोरथ पूरा करने वाला अभीष्ट वर दीजिए" ऐसा कहा। तब वृषध्वजशिव उनके

कथन की समाप्ति की अपेक्षा किये बिना ही तुम "मेरी पत्नी होओ" ऐसा बार-बार दाक्षायणी सती से कहने लगे ॥१३-१४॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य साभीष्टफलभावनम् ।
तूष्णीं तस्थौ प्रमुदिता वरं प्राप्य मनोगतम् ॥१५॥

अपने अभीष्ट फलदायक (शिव की) वाणी को सुन तथा मनोभिलषित वर को प्राप्त कर, सती प्रसन्नता पूर्वक मौन खड़ी रहीं ॥१५॥

सकामस्य हरस्याग्रे तत्र सा चारुहासिनी ।
अकरोन्निजभावांश्च हावानपि द्विजोत्तमाः ॥१६॥

वहाँ कामसहित शिव के आगे सुन्दर हँसीवाली उस सती ने अपने हाव-भावों को भी प्रकट किया ॥१६॥

स्वस्य भावान् समादाय शृङ्गाराख्यो रसस्तदा ।
तयोर्विवेश विप्रेन्द्राः कलहो वा यथोचितम् ॥१७॥

हे विप्रेन्दों ! तब अपने भावों को लेकर शृङ्गार नामक रस के कलह ने भी उन दोनों के बीच यथोचित रूप ने प्रवेश किया ॥१७॥

हरस्य पुरतो रेजे स्निग्धभिन्नाञ्जनप्रभा ।
चन्द्राभ्यासेऽङ्कलेखेवस्फटिकोज्जवलवर्ष्मण: ॥१८॥

उस समय स्फटिक के समान उज्ज्वल शिव के सामने स्निग्ध अञ्जन के समान प्रभा वाली पार्वती चन्द्रबिम्ब में धब्बों की भाँति सुशोभित हो रही थीं ॥१८॥

अथ सा तमुवाचेदं हरं दाक्षायणी मुहुः ।
पितुर्मे गोचरीकृत्य मां गृह्णीष्व जगत्पते ॥१९॥
एवं स्मितं वचो देवी यदोवाच सती तदा ।
मम भार्या भवेत्यूचे पुनः कामेन मोहितः ॥२०॥

"हे जगत्पति ! मुझे मेरे पिता के देखते-देखते ग्रहण कीजिए।" ऐसा उस दक्षपुत्री सती ने शिव से बार-बार। और जब सती ने इस प्रकार का वचन मुस्कुराते हुये बार-बार कहा तो काम से मोहित हो शिव "तुम मेरी पत्नी होओ" ऐसा पुनः कहने लगे ॥१९-२०॥

अथैतद्वीक्ष्य मदनः सरतिः ससखो मुदा ।
युक्तो वभूव शश्वच्च आत्मानञ्चाभ्यनन्दयन् ॥२१॥

इसके बाद इसे देख अपने मित्र वसन्त तथा पत्नी रति के सहित, कामदेव प्रसन्न हो गया और स्वयं ही अभिनन्दित होता हुआ, शाश्वत्रूप मोहन अर्थ में, अपने उपर्युक्त हो गया ॥२१॥

अथ दाक्षायणीं शम्भुं समाश्वास्य द्विजोत्तमाः ।
जगाम मातुरभ्यासं हर्षमोहसमन्विता ॥२२॥

तब हे द्विजोत्तमों ! शिव को पिता से मांगने का परामर्श और स्वयं उनकी पत्नी बनने का आश्वासन दे, हर्ष तथा मोह से युक्त हो दक्षतनया सती अपनी माता वीरिणी के समीप गईं ॥२२॥

हरोऽपि हिमवत्प्रस्थं प्रविश्य च निजाश्रमम् ।
दाक्षायणीविप्रलम्भदुःखाद् ध्यानपरोऽभवत् ॥२३॥

शिव भी हिमालय के शिखर पर स्थित अपने आश्रम में प्रवेश कर दाक्षायणी के वियोगजन्य दुःख से ध्यानपरायण हो गये ॥२३॥

विप्रलब्धोऽपि भूतेशो ब्रह्मावाक्यमथास्मरत् ।
जायापरिग्रहस्यार्थे यदुक्तं पद्मयोनिना ॥२४॥

भूतों के स्वामी शिव ने वियुक्त होते हुए स्त्री परिग्रहण के सम्बन्ध में कहे गये कमलयोनिब्रह्मा के वचनों का स्मरण किया ॥२४॥

स्मृत्यैव ब्रह्मवाक्यस्य पुरा विश्वासतः परम् ।
चिन्तयामास मनसा ब्रह्माणं वृषभध्वजः ॥२५॥

प्राचीनकाल में अध्यधिक विश्वासपूर्वक कहे गये ब्रह्मा के वचनों का स्मरण करते ही वृषभध्वज शिव ने मन ही मन ब्रह्मा का चिन्तन किया ॥२५॥

अथ संचिन्त्यमानोऽसौ परमेष्ठी त्रिशूलिना ।
पुरस्तात् प्राविशत्तूर्णमिष्टसिद्धिप्रचोदितः ॥२६॥
यत्रायं हिमवत्प्रस्थे विप्रलब्धो हरः स्थितः ।
सावित्री सहितो ब्रह्मा तत्रैव समुपस्थितः ॥२७॥

त्रिशूलधारी शिव के इस प्रकार चिन्तन किये जाते हुए परमेष्ठी ब्रह्मा अभीष्ट सिद्धि से प्रेरित हो शीघ्र ही उनके सम्मुख हुए। जहाँ हिमालय के शिखर पर विरही शिव उपस्थित थे वहीं सावित्री सहित वे भी पहुँच गये ॥२६-२७॥

अथ तं वीक्ष्य धातारं सावित्रीसहितं हरः ।
सोत्सुको विप्रलब्धश्च सत्यर्थे तमुवाच ह ॥२८॥

तब सावित्री सहित उस ब्रह्मा को देखकर शिव ने सती के लिए उत्सुक और विरही हो उनसे कहा— ॥२८॥

॥ ईश्वर उवाच ॥

ब्रह्मन् विश्वार्थतो दारपरिग्रहकृतौ च यत् ।
त्वमात्थ तत्सार्थमिव प्रतिभाति ममाधुना ॥२९॥

ईश्वर (शिव) बोले– हे ब्रह्मदेव! विश्व कल्याण हेतु आपने जो मुझे दारपरिग्रहण के लिए कहा था, वह तुम्हारा वचन अब मुझे यथार्थ ही प्रतीत हो रहा है ॥२९॥

अहमाराधितो भक्त्या दाक्षायण्यातिभक्तितः ।
तस्या वरमहं दातुं यदायातः प्रपूजितः ॥३०॥

तत्सकाशे तदा कामो मां विव्याध महेषुभिः ।
मायया मोहितश्चाहं तत्प्रतीकारमञ्जसा ।
न शक्तः कर्तुमभितः पुराहं कमलासन ।।३१।।

हे कमलासन ब्रह्मा ! दाक्षायणी द्वारा भक्ति के प्रकृष्टरूप से पूजित तथा आराधित हो, मैं जब उसे वर देने उसके पास गया तब कामदेव ने अपने महान (प्रभावशाली) बाणों से मुझे बीध दिया। पहले मैं उससे प्रभावित नहीं हुआ था, किन्तु उस समय माया भगवती सती से मोहित होने के कारण मैं उसका प्रतीकार न कर सका ।।३०-३१।।

तस्याश्च वाञ्छितं ब्रह्मन्नेतदेव मयेक्षितम् ।
यदहं स्यां विभो भर्ता व्रतभक्तिमुदायुतः ।।३२।।

हे ब्रह्मन्! उसका वांछित और मेरे द्वारा जो चाहा हुआ था, उसका यही भाव था कि उसकी व्रतभक्ति से प्रसन्न हो विभुस्वरूप मैं उसका पति होऊँ ।।३२।।

तस्मात्त्वं कुरु विश्वार्थे मदर्थे च प्रजापते ।
दक्षो यथा मामामन्त्र्य सुतां दाता तथाद्रुतम् ।।३३।।

इसलिए हे प्रजापति! तुम मेरे तथा विश्व के कल्याण के लिए शीघ्र ही कुछ ऐसा उपाय करो, जिससे कन्यादाता दक्ष मुझे आमन्त्रित कर दान करें ।।३३।।

गच्छ त्वं दक्षभवनं कथयस्व वचो मम ।
यथा सतीवियोगस्य भंगः स्यात् त्वं तथा कुरु ।।३४।।

तुम दक्ष के घर जाओ और उनसे मेरा वचन कहो। ऐसा उपाय करो जिससे मेरा सतीवियोग दूर होवे ।।३४।।

।। मार्कण्डेय उवाच।।

इत्युदीर्य महादेवः सकाशेऽस्य प्रजापतेः ।
सावित्रीं वीक्ष्य सत्यास्तु विप्रयोगो व्यवर्द्धत ।।३५।।

मार्कण्डेय बोले– महादेव ने ऐसा कहा और प्रजापति ब्रह्मा के समीप सावित्री को देखकर, सती के प्रति उनका वियोग अधिक बढ़ गया ।।३५।।

तं समाभाष्य लोकेशः कृतकृत्यो मुदान्वितः ।
इदं जगाद जगतां हितं पथ्यं च धूर्ज्जटेः ।।३६।।

उनके प्रति लोकेश ब्रह्मा ने प्रसन्नतापूर्वक संसार के हित के लिए शिव के पथ्यभूत यह कहा– ।।३६।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

यदात्थ भगवच्छम्भो तद्विश्वार्यं सुनिश्चितम् ।
नास्त्येव भवतः स्वार्थो ममापि वृषभध्वज ।।३७।।

ब्रह्मा बोले– हे वृषभध्वज! हे भगवान् शम्भु! आप ने जो कहा है निश्चित रूप से वह केवल आपके स्वार्थ के लिए नहीं है, वह विश्व के कल्याण के लिए तथा मेरे कल्याण के लिए भी है ॥३७॥

सुताञ्च तुभ्यं दक्षस्तु स्वयमेव प्रदास्यति ।
अहञ्चापि वदिष्यामि त्वद्वाक्यं तत्समक्षतः ॥३८॥

स्वयं दक्ष ही आपको अपनी कन्या प्रदान करेंगे। मैं भी आपके वाक्यों को उनके समक्ष कहूँगा ॥३८॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

इत्युदीर्य महादेवं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
जगाम दक्षनिलयं स्यन्दनेनातिवेगिना ॥३९॥

मार्कण्डेय बोले– महादेव से ऐसा कहकर लोक पितामह ब्रह्मा तेजगति वाले रथ से दक्ष के भवन को गये ॥३९॥

अथ दक्षोऽपि वृत्तान्तं सर्वं श्रुत्वा सतीमुखात् ।
चिन्तयामास देयेयं मत्सुता शम्भवे कथम् ॥४०॥

उधर दक्ष भी सती के मुख से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर चिन्ता करने लगे, मैं इस अपनी पुत्री को शम्भु को कैसे प्रदान करूँ ॥४०॥

आगतोऽपि महादेवः प्रसन्नः सञ्जगाम ह ।
पुनरेव कथं सोऽपि सुतार्थेऽत्यर्थमीप्सितः ॥४१॥

महादेव प्रसन्नतापूर्वक आये तथा चले भी गये। वही पुनः मेरी कन्या हेतु अत्यधिक उत्सुक कैसे हो सकते हैं? ॥४१॥

प्रस्थाप्यो वा मया तस्य दूतो निकटमञ्जसा ।
नैतद्योग्यं न गृह्णीयाद् यद्येनां विभुरात्मने ॥४२॥

या उनके समीप मुझे उचित रूप से एतदर्थ अपना दूत भेजना चाहिये। यदि उस विभुआत्मा ने इस कन्या को ग्रहण नहीं किया तो यह दूत भेजना उचित नहीं होगा ॥४२॥

अथवा पूजयिष्यामि तमेव वृषभध्वजम् ।
मदीयतनयाभर्ता स्वयमेव यथा भवेत् ॥४३॥

अथवा मैं उन वृषभध्वज शिव का पूजन करूँगा, जिससे वे स्वयम् ही मेरी कन्या के पति हो जायें ॥४३॥

तथैव पूजितः सोऽपि वाञ्छन्त्यातिप्रयत्नतः ।
शम्भुर्भवतु मद्भर्तेत्येवं दत्तञ्च तेन तत् ॥४४॥

अत्यन्त यत्नपूर्वक "शम्भु मेरे पति होवें" इस भाव से पहले भी वे मेरी कन्या द्वारा पूजे गये हैं। ऐसा होने का उनके द्वारा वर भी दिया गया है ॥४४॥

इति चिन्तयतस्तस्य दक्षस्य पुरतो विधिः ।
उपस्थितो हंसरथः सावित्रीसहितस्तदा ।।४५।।

तभी इस प्रकार से चिन्तन करते दक्षप्रजापति के सम्मुख हंसरथ पर आसीन ब्रह्मा सावित्री के सहित उपस्थित हो गये ।।४५।।

तं दृष्ट्वा वेधसं दक्षः प्रणम्यावनतः स्थितः ।
आसनञ्च ददौ तस्मै समाभाष्य यथोचितम् ।।४६।।

उन ब्रह्मा को आया देख दक्ष प्रणाम करते हुए नम्रतापूर्वक खड़े हुये तथा यथोचित सम्भाषण के साथ उन्हें आसन प्रदान किया ।।४६।।

ततस्तं सर्वलोकेशं तत्रागमनकारणम् ।
दक्षः पप्रच्छ विप्रेन्द्राश्चिन्ताविष्टोऽपि हर्षितः ।।४७।।

तब उन सर्वलोकेश ब्रह्मा से चिन्तित होते हुए भी प्रसन्न दक्ष प्रजापति ने वहाँ आने का कारण पूछा ।।४७।।

।। दक्ष उवाच ।।

तवात्रागमने हेतुं कथयस्व जगद्गुरो ।
पुत्रस्नेहात् कार्यवशादथवाश्रममागतः ।।४८।।

दक्ष बोले– हे जगत् गुरु ! आप यहाँ पधारने का कारण बताइये । आप पुत्र-प्रेम वश या किसी अन्य प्रयोजन हेतु मेरे आवास पर पधारे हैं ।।४८।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति पृष्टः सुरश्रेष्ठो दक्षेण सुमहात्मना ।
प्रहसन्नब्रवीद्वाक्यं मोदयंस्तं प्रजापतिम् ।।४९।।

मार्कण्डेय बोले– महात्मा दक्ष के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा हँसते हुये तथा उन प्रजापतिदक्ष को प्रसन्न करते हुए बोले ।।४९।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

शृणु दक्ष यदर्थं ते समीपमहमागतः ।
तल्लोकस्य हितं पथ्यं भवतोऽपि तदीप्सितम् ।।५०।।

ब्रह्मा बोले- हे दक्ष ! मैं जिस हेतु तुम्हारे पास आया हूँ वह सुनो । वह प्रयोजन लोक के लिए हितकारी और उचित तो है ही, वह तुम्हारा भी अभीष्ट है ।।५०।।

तव पुत्र्या समाराध्य महादेवं जगत्पतिम् ।
यो वरः प्रार्थितः सोऽद्य स्वयमेवागतो गृहम् ।।५१।।
शम्भुना तव पुत्र्यर्थे त्वत्सकाशमहं पुनः ।
प्रस्थापितोऽस्मि यत् कृत्यं श्रेयस्तदवधारय ।।५२।।

तुम्हारी पुत्री द्वारा जगत् के स्वामी महादेव की आराधना कर जिसे वर रूप में माँगा गया था, वह आज स्वयं तुम्हारे घर में आया था। मैं पुनः तुम्हारी पुत्री के लिए शिव द्वारा तुम्हारे पास भेजा गया हूँ। अब जो श्रेयस्कर हो वह करो ॥५१-५२॥

वरं दातुं यदायातस्तावत्प्रभृति शङ्करः ।
तत्सुताविप्रयोगेण न शर्म लभतेऽञ्जसा ॥५३॥

जब शङ्कर वर देने के लिए आये थे तब से उन्हें तुम्हारी कन्या के वियोग में, उचित रूप से शान्ति नहीं मिल रही है ॥५३॥

लब्धच्छिद्रोऽपि मदनो निचखान तदा भृशम् ।
सर्वैः पुष्पकरैर्बाणैरेकदैव जगत्प्रभुम् ॥५४॥

उस समय छिद्र (अवसर) देखकर कामदेव ने अपने सभी पुष्प बाणों का एक साथ ही उन जगदीश पर प्रहार किया था ॥५४॥

स बाणविद्धः कामेन परित्यज्यात्मचिन्तनम् ।
सतीं विचिन्तयन्नास्ते व्याकुलः प्राकृतो यथा ॥५५॥
विस्मृत्य प्रस्तुतां वाणीं गणाग्रे विप्रयोगतः ।
क्व सतीत्येव गिरिशो भाषतेऽन्यकृतावपि ॥५६॥

वे शिव कामदेव के बाण से घायल तथा व्याकुल हो आत्मचिन्तन छोड़कर सामान्य मनुष्यों की भाँति (आपकी पुत्री) सती का चिंतन करते रहते हैं। वियोग के कारण अवसरानुकूल बात को भूलकर गणों के आगे गिरीश, अन्यों की भाँति सती कहाँ है? ऐसा कहते रहते हैं ॥५५-५६॥

मया यद्वाञ्छितं पूर्वं त्वया च मदनेन च ।
मरीच्याद्यैर्मुनिवरैस्तत् सिद्धमधुना सुत ॥५७॥

हे पुत्र! मेरे, तुम्हारे, कामदेव और मरीचि आदि ऋषियों से जो चाहा गया था वह इस समय सिद्ध (पूर्ण) हो गया है ॥५७॥

त्वत्पुत्र्याराधितः शम्भुः सोऽपि तस्या विचिन्तनात् ।
अनुमोदयितुं प्रेप्सुर्वर्तते हिमवद्गतौ ॥५८॥

आपकी पुत्री द्वारा आराधित हो वह शम्भु भी उसके चिन्तन से आपके अनुमोदन प्राप्ति की इच्छा से हिमालय पर्वत पर स्थित हैं ॥५८॥

यथा नानाविधैर्भावैः सत्या नन्दाव्रतेन च ।
शम्भुराराधितस्तेन तथैवाराध्यते सती ॥५९॥

जिस प्रकार अनेक प्रकार के भावों तथा नन्दाव्रत के द्वारा सती ने भगवान् शङ्कर की आराधना की, उसी प्रकार उनके द्वारा सती की आराधना की जाती है ॥५९॥

तस्मात्त्वं दक्ष तनयां शम्भ्वर्थे परिकल्पिताम् ।
तस्मै देह्यविलम्बेन तेन ते कृतकृत्यता ।।६०।।

इसलिए तुम दक्षपुत्री को जो शम्भु के लिए ही परिकल्पित है, शीघ्र उन्हें प्रदान कर दो । उसी से तुम्हारी सार्थकता है ।।६०।।

अहं तमानयिष्यामि नारदेन त्वदालयम् ।
तस्मै त्वमेनां संयच्छ तदर्थे परिकल्पिताम् ।।६१।।

मैं नारद के द्वारा उन्हें तुम्हारे घर लाऊँगा, उन्हें तुम इसे जो उन्हीं के लिए परिकल्पित है, भलीभाँति दे देना ।।६१।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एवमेवेति दक्षस्तमुवाच परमेष्ठिनम् ।
विधिश्च गतवांस्तत्र गिरिशो यत्र संस्थितः ।।६२।।

मार्कण्डेय बोले– तब दक्ष ने परमेष्ठी ब्रह्मा से कहा कि ऐसा ही होगा और ब्रह्मा भी वहाँ चले गये, जहाँ गिरीश स्थित थे ।।६२।।

गते ब्रह्मणि दक्षोऽपि सदारतनयो मुदा ।
अभवत् पूर्णदेहस्तु पीयूषैरिव पूरितः ।।६३।।

ब्रह्मा के चले जाने पर दक्ष भी पत्नी और पुत्री के साथ प्रसन्न हो गये मानो उन सबका शरीर अमृत से भर गया हो ।।६३।।

अथ ब्रह्मापि मोदेन प्रसन्नः कमलासनः ।
आससाद महादेवं हिमवद्गिरिसंस्थितम् ।।६४।।

कमलासन ब्रह्मा भी प्रसन्नतापूर्वक आनन्द से हिमालय पर्वत पर जहाँ महादेव स्थित थे पहुँच गये ।।६४।।

तं वीक्ष्य लोकस्रष्टारमायान्तं वृषभध्वजः ।
मनसा संशयं चक्रे सतीप्राप्तौ मुहुर्मुहुः ।।६५।।

उन लोकस्रष्टा ब्रह्मा को (लौटकर) आया हुआ देखकर वृषभध्वज, सती प्राप्ति के सन्दर्भ में बार-बार मन में शङ्का करने लगे ।।६५।।

अथ दूरान्महादेवो लोकेशं सामसंयुतम् ।
उवाच मदनोन्माथः विधिं स स्मरमानसः ।।६६।।

मदन से उन्मादित, व्यथित, कामासक्त मन से, शान्तमन लोकेश ब्रह्मा से उनके दूर रहते ही वे महादेव बोले ।।६६।।

।। ईश्वर उवाच ।।

किमवोचत् सुरश्रेष्ठ सत्यर्थे त्वत्सुतः स्वयम् ।
कथयस्व यथास्वान्तं मन्मथेन न दीर्यते ।।६७।।

ईश्वर बोले– सती (को देने) के लिए तुम्हारे पुत्र दक्ष ने स्वयं क्या कहा ? बताओ जिस से मन्मथ मेरे अन्तःकरण को विदीर्ण न कर दे ॥६७॥

बाध्यमानो विप्रयोगो मामेव च सतीमृते ।
अभिहन्ति सुरश्रेष्ठ, त्यक्त्वान्यान् प्राणधारिणः ॥६८॥

हे सुरश्रेष्ठ! अन्य प्राणियों को छोड़, सती के अभाव में विरह से बाधित मुझे ही वह सब भाँति मार रहा है ॥६८॥

सतीति सततं वेद्मि ब्रह्मन् कार्यान्तरेऽप्यहम् ।
सा यथा हि मया प्राप्या तद्विधत्स्व तथा द्रुतम् ॥६९॥

हे ब्रह्मदेव ! अन्य कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी मैं निरन्तर सती को ही जाना करता हूँ। जिस प्रकार से वह मुझे शीघ्र प्राप्त हो जाय वैसा ही आप करें ॥६९॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

सत्यर्थे यन्ममसुतो वदति स्म वृषध्वज ।
तच्छृणुष्व निजं साध्यं सिद्धमित्यवधारय ॥७०॥

ब्रह्मा बोले– हे वृषभध्वज ! सती हेतु मेरे पुत्र ने जो कहा है, उसे आप सुनें तथा अपना साध्य सिद्ध हुआ ही समझें ॥७०॥

देया तस्मै मया पुत्री तदर्थे परिकल्पिता ।
ममापीष्टमिदं कर्म त्वद्वाक्यादधिकं पुनः ॥७१॥
मत्पुत्र्याराधितः शम्भुरेतदर्थे स्वयं पुनः ।
सोऽप्यन्विच्छति तां यस्मात्तस्माद्देया मया हरे ॥७२॥

"मैं अपनी कन्या उन्हीं शिव को दूँगा; क्योंकि वह उन्हीं के लिए बनाई गई है। यही मेरा भी इच्छित कार्य है। पुनः आपके कहने से तो इसका महत्त्व और बढ़ जाता है। फिर मेरी पुत्री ने भी स्वयं इसी हेतु भगवान् शिव की आराधना की है तथा वे भी उसे चाहते हैं। इसलिए मेरे द्वारा वह शिव को ही दी जायेगी ॥७१-७२॥

शुभे लग्ने मुहूर्ते च समागच्छतु मेऽन्तिकम् ।
तदा दास्यामि तनयां भिक्षार्थे शम्भवे विधे ॥७३॥

हे ब्रह्माजी ! वे शुभलग्न और शुभमुहुर्त में कन्या माँगने हेतु मेरे समीप आवें तो मैं विधिपूर्वक अपनी पुत्री शिव को प्रदान करूँगा" ॥७३॥

इत्यवोचन्मुदा दक्षस्तस्मात्त्वं वृषभध्वज ।
शुभे मुहूर्ते तद्वेश्म गच्छ तामनुयाचितुम् ॥७४॥

हे वृषभध्वज ! ऐसा दक्ष ने प्रसन्नतापूर्वक कहा है इसलिए आप शुभमुहुर्त में उस (सती) को माँगने, उनके घर जाइये ॥७४॥

।। ईश्वर उवाच ।।

गमिष्ये भवता सार्द्धं नारदेन महात्मना ।
द्रुतमेव जगत्पूज्य तस्मात्त्वन्नारदं स्मर ।।७५।।
मरीच्यादीन् दश तथा मानसानपि संस्मर ।
तैः सार्द्धं दक्षनिलयं गमिष्येऽहं गणैः सह ।।७६।।

ईश्वर बोले– मैं आपके और महात्मा नारद के साथ वहाँ जाऊँगा इसलिए हे जगत्पूज्य! आप शीघ्र ही नारद का स्मरण कीजिये तथा मरीचि आदि अपने दश मानस पुत्रों का भी भलीभाँति स्मरण कीजिए। मैं उनके और अपने गणों के साथ दक्ष के घर जाऊँगा ।।७५-७६।।

ततः स्मृतास्ते कमलासनेन
सनारदा ब्रह्मसुता मनोजवाः ।
समागता यत्र हरो विधिश्च
तत्रागताः काममवेत्य चिन्ताम् ।।७७।।

।। श्रीकालिकापुराणे सतीयाचनं नाम दशमोऽध्यायः ।।१०।।

तब कमलासन ब्रह्मा द्वारा स्मरण करते ही मन के समान वेग वाले, ब्रह्मा के मानसपुत्र नारद के सहित, जहाँ शिव और ब्रह्मा स्थित थे, काम के रक्षा की चिन्ता सहित वे सब वहाँ आये ।।७७।।

।। श्रीकालिकापुराण में सतीयाचना नामक दशवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।



एकादशोऽध्यायः

त्रिदेवानामेकत्वप्रतिपादनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततः समागताः सर्वे मानसाश्च सनारदाः ।
विधेः स्मरणमात्रेण वातेनैव विनोदिताः ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– तब ब्रह्मा के स्मरण मात्र से नारद के साथ ब्रह्मा के सभी मानसपुत्र, आनन्दपूर्वक और वायुवेग से वहाँ पहुँच गये ।।१।।

तैः सार्धं ब्रह्मणा शम्भुः सगणो दक्षमन्दिरम् ।
जगाम मोदयुक्तोऽथ काले तत्कर्मयोगिनि ।।२।।

भगवान् शङ्कर उन सब तथा ब्रह्मा और अपने गणों के सहित प्रसन्नतापूर्वक उस कर्म-योगिनी सती के लिए निश्चित समय पर दक्ष के घर गये ।।२।।

गणाः शङ्खाश्च पटहान् डिण्डिमांस्तूर्यवंशकान् ।
वादयन्तो मुदायुक्ता अनुगच्छन्ति शङ्करम् ।।३।।

उस समय वे गण शङ्ख, नगाड़े, ढोल और बाँस की बनी हुई तुरही आदि वाद्य, प्रसन्नतापूर्वक बजाते हुए शिव का अनुगमन कर रहे थे ।।३।।

केचित्तालं करतलैः कुर्वन्तोंऽघ्रितलस्वनम् ।
विमानैरतिवेगैः स्वैरनुयान्ति वृषध्वजम् ।।४।।
कोलाहलं प्रकुर्वन्तस्तथा नानाविधान् रवान् ।
गणा अनेकाकृतयः शब्दयोगेन निर्ययुः ।।५।।

कोई हथेलियों से ताल बजा रहे थे तो कोई पैरों (तलवों) से नाचते समय ध्वनि कर रहे थे । अनेक अपने वेगमान विमानों द्वारा वृषभध्वज का अनुगमन कर रहे थे तथा वे गण अपनी अनेक प्रकार की आकृतियों तथा शब्दों से विविध भाँति कोलाहल करते हुए निकले ।।४-५।।

ततो देवा मुदा युक्ता गन्धर्वाप्सरसो गणाः ।
वाद्यैर्मोदैस्तथा नृत्यैरन्वीयुर्वृषभध्वजम् ।।६।।

उस समय प्रसन्नतापूर्वक देवगण, आनन्द से गाते-बजाते गन्धर्वगण एवं नृत्य करती अप्सराओं के समूह ने भी वृषभध्वज शिव का अनुगमन किया ।।६।।

तेषां शब्देन विप्रेन्द्रा गन्धर्वाणां गरीयसाम् ।
गणानाञ्च दिशः सर्वाः पूरिता च वसुन्धरा ।।७।।

उन गरिमामय गन्धर्वों तथा गणों के शब्दों से सभी दिशायें एवं पृथ्वी भर गई ।।७।।

कामोऽपि सगणः शम्भुं सश्रृङ्गाररसादिभिः ।
मोदयन् मोहयन् कायमन्वियात् स समन्वतः ।।८।।

कामदेव भी श्रृङ्गार रस आदि तथा मारगणों के सहित शिव को प्रसन्न करता, मोहित करता, काम-विह्वल करता, आगे आगे चल पड़ा ।।८।।

हरौ गच्छति भार्यार्थे तदानीं सकलाः सुराः ।
ब्रह्माद्याः स्वयमेवाशु वाद्यं चक्रुर्मनोहरम् ।।९।।

जब शिव पत्नी हेतु जा रहे थे, उस समय ब्रह्मादि सभी देवताओं ने शीघ्रता से अपने-अपने सुन्दर बाजे बजाये ।।९।।

दिशः सर्वाः सुप्रसन्ना बभूवुर्द्विजसत्तमाः ।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः पुष्पवृष्टिरजायत ।।१०।।

हे द्विजसत्तमों! उस समय सभी दिशायें प्रसन्न हो गईं, अग्नियाँ शान्तिपूर्वक जल उठीं तथा फूलों की वर्षा होने लगी ।।१०।।

ववुर्वाताः सुरभयो वृक्षाश्चापि सुपुष्पिताः ।
बभूवुः प्राणिनः स्वस्था अस्वस्था येऽपि केचन ।।११।।

सुगन्धित वायु बहने लगी, वृक्ष भी सुन्दर ढंग से फूलों से भर गये, जो कोई प्राणी अस्वस्थ थे, वे भी स्वस्थ हो गये ।।११।।

हंससारसकादम्बा नीलकम्बुश्च चातकाः ।
चुक्रुशुर्मधुरान् शब्दान् प्रेरयन्त इवेश्वरम् ।।१२।।

हंस, सारस, कलहंस, मोर और चातकों[1] ने मानो शिव को प्रेरित करते हुए मधुर शब्द किये ।।१२।।

भुजगो व्याघ्रकृत्तिश्च जटा चन्द्रकला तथा ।
जगाम भूषणत्वञ्च तेनापि परिदीपितः ।।१३।।
ततः क्षणेन बलिना बलीवर्देन वेगिना ।
सब्रह्मनारदाद्यैश्च प्राप दक्षालयं हरः ।।१४।।

उस समय उनके शरीर पर स्थित सर्प, व्याघ्र-चर्म, गज-चर्म, जटा तथा चन्द्रकलाओं ने आभूषणत्व धारण कर लिया इनसे उदीप्त होते हुए क्षण भर में

१-१. इन पक्षियों के स्वर रति के प्रेरक हैं ।

वेगवान् और बलवान् बलीवर्द (बैल) के द्वारा वे शिव, ब्रह्मा तथा नारद आदि के सहित दक्ष के भवन पर पहुँच गये ॥१३-१४॥

ततो दक्षो महातेजा अभ्युत्थाय स्वयं हरम् ।
ब्रह्मादीञ्चाददौ तेषामासनानि यथोचितम् ॥१५॥

तब महातेजस्वी दक्ष प्रजापति ने स्वयं उठकर शिव तथा ब्रह्मादि को उचित आसन प्रदान किया ॥१५॥

कृत्वा यथोचितां तेषां पूजां पाद्यादिभिस्तथा ।
चकार संविदं दक्षो मुनिभिर्मानसैः पुनः ॥१६॥

उनकी पाद्य, अर्घ्य आदि के द्वारा यथोचित रूप से पूजा करके दक्ष प्रजापति ने मानसरूप उत्पन्न मुनियों के साथ विचार-विमर्श किया ॥१६॥

ततः शुभे मुहूर्ते तु लग्ने च द्विजसत्तमाः ।
सतीं निजसुतां द्क्षो ददौ हर्षेण शम्भवे ॥१७॥

हे द्विज सत्तमों! तब शुभलग्न एवं शुभ मुहूर्त्त में दक्ष ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी कन्या सती, शिव को प्रदान किया ॥१७॥

उद्वाहविधिना सोऽपि पाणिं जग्राह हर्षितः ।
दाक्षायण्या वरतनोस्तदानीं वृषभध्वजः ॥१८॥

तब उन वृषभध्वज शिव ने भी दाक्षायणि के श्रेष्ठ पाणि का प्रसन्नतापूर्वक विवाह विधि से ग्रहण किया ॥१८॥

ब्रह्माश्च नारदाद्याश्च मुनयः सामगीतिभिः ।
ऋचा यजुर्भिः सुश्राव्यैस्तोषयामासुरीश्वरम् ॥१९॥
वाद्यं चक्रुर्गणाः सर्वे ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
पुष्पवृष्टिञ्च ससृजुर्मेघा गगनसङ्गताः ॥२०॥

ब्रह्मा और नारदादि मुनियों ने सुनने में सुन्दर लगने वाले, सामगीत, ऋचा, यजुस् आदि द्वारा ईश्वर (शिव) को संतुष्ट किया। सभी गणों ने बाजे बजाये, अप्सरा समूहों ने नर्तन और आकाश में स्थित बादलों ने फूलों की वर्षा की ॥१९-२०॥

अथ शम्भुमुपागत्य गरुडेनातिवेगिना ।
सार्धं कमलया चेदमुवाच गरुड़ध्वजः ॥२१॥

इसके बाद वेगवान गरुड़ पर सवार हो लक्ष्मी के सहित गरुड़ध्वज विष्णु शम्भु के निकट आकर यह वचन बोले– ॥२१॥

॥श्रीभगवानुवाच॥

स्निग्धनीलाञ्जनश्याम-शोभया शोभसे हर ।
दाक्षायण्या यथा चाहं प्रातिलोम्येन पद्मया ॥२२॥

श्रीभगवान् विष्णु बोले– हे शिव! इस चिकने नीले अञ्जन के श्यामवर्णी दाक्षायणी की शोभा से आप वैसे ही सुशोभित हो रहे हैं, जैसा कि मैं इसके विपरीत क्रम में लक्ष्मी के साथ सुशोभित होता हूँ ॥२२॥

कुरु त्वमनया सार्धं रक्षा देवस्य वा नृणाम् ॥२३॥

आप इस देवी के साथ देवताओं व मनुष्यों की रक्षा करें ॥२३॥

अनया सह संसारसारिणां मंगलं सदा ।
कुरु दस्यून् यथायोग्यं हनिष्यसि च शङ्कर ॥२४॥

इसके साथ सांसारिकजनों का सदा मङ्गल करें और हे शङ्कर! यथोचित रूप से दस्युजनों का आप वध करेंगे ॥२४॥

य एवैनां साभिलाषो दृष्ट्वा श्रुत्वाथवा भवेत् ।
तं हनिष्यसि भूतेश नात्र कार्या विचारणा ॥२५॥

जो भी इसे देख अथवा सुनकर इच्छायुक्त (कामासक्त) होगा। हे भूतेश ! उसे तुम मार दोगे। इसमें कोई तर्क-वितर्क नहीं है ॥२५॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

एवमस्त्विति सर्वज्ञः प्रोवाच परमेश्वरम् ।
प्रहृष्टमानसं प्रीत्या प्रसन्नवदनो द्विजाः ॥२६॥

मार्कण्डेय बोले– ऐसा ही हो, यह प्रसन्नमुख सर्वज्ञ विष्णु ने प्रसन्नमन परमेश्वर शिव से प्रेमपूर्वक कहा ॥२६॥

अथ ब्रह्मा तदा दृष्ट्वा दक्षजां चारुहासिनीम् ।
स्मराविष्टमना वक्त्रं वीक्षांचक्रे तदीयकम् ॥२७॥

तब ब्रह्मा ने सुन्दर हँसी वाली दक्षपुत्री के मुख को देखकर उसके प्रति कामासक्त हो गये और उसकी इच्छा करने लगे ॥२७॥

मुहुर्मुहुस्तदा ब्रह्मा पश्यति स्म सतीमुखम् ।
तदेन्द्रियविकारञ्च प्राप्तवानवशः पुनः ॥२८॥

उस समय ब्रह्मा बारम्बार सती का मुख देखने लगे। उसी समय उन्हें पुनः (सन्ध्या-प्रसङ्ग के बाद) इन्द्रियविकार उत्पन्न हो गया ॥२८॥

अथ तस्य पपाताशु तेजो भूमौ द्विजोत्तमाः ।
तज्जलद्दहनाभासं मुनीनां पुरतस्तदा ॥२९॥

हे द्विजोत्तमों! शीघ्र प्रज्ज्वलित अग्नि की आभावाला उनका तेज (वीर्य) मुनियों के देखते देखते भूमि पर आ गिरा ॥२९॥

ततस्तस्मात् समभवंस्तोयदाः शब्दसंयुताः ।
सम्बर्तश्च तथावर्तः पुष्करो द्रोण एव च ।
गर्जन्तश्चाथ मुञ्चन्तस्तोयानि द्विजसत्तमाः ॥३०॥

हे द्विजसत्तमों! तब उस भूमि पर गिरे हुए तेज से आवाज करते, गरजते और जलों की वर्षा करते आवर्त, संवर्त, द्रोण और पुष्कर जैसे जलद (बादल) उत्पन्न हो गये ॥३०॥

तैस्तु सञ्छादिते व्योम्नि तेषु गर्ज्जत्सु शङ्करः ।
पश्यन् दाक्षायणीं देवीं भृशं कामेन मोहितः ॥३१॥
मोहितोऽप्यथ कामेन तदा विष्णुवचः स्मरन् ।
इयेष हन्तुं ब्रह्माणं शूलमुद्यम्य शङ्करः ॥३२॥

आकाश में छाये हुए तथा गरजते बादलों को देखते हुए शङ्कर दाक्षायणी सती के प्रति मोहित हो गये और यह जान लिया कि ब्रह्मा भी मोहित हो गये हैं। तब "इसके कामासक्त अभिलाषा करने वालों का तुम वध करोगे" विष्णु के इन वचनों का स्मरण कर वे त्रिशूल उठाकर ब्रह्मा को मारने की इच्छा से उद्यत हो गये ॥३१-३२॥

शम्भुनोद्यमिते शूले विधिं हन्तुं द्विजोत्तमाः ।
मरीचिनारदाद्यास्ते चक्रुर्हाहाकृतिं तदा ॥३३॥

तब हे द्विजोत्तमों! शम्भु को त्रिशूल उठाए ब्रह्मा के वध हेतु उद्यत देख नारद-मरीचि आदि उपस्थित सभी हाहाकार करने लगे ॥३३॥

दक्षो मैवं मैवमिति पाणिमुद्यम्य शङ्कितः ।
वारयामास भूतेशं क्षिप्रमेत्य पुरोगतः ॥३४॥

दक्षप्रजापति भी शङ्कित मन से, ऐसा मत करें, ऐसा मत करें कहते हुए शिव को रोकने हेतु शीघ्र ही सामने आ गये ॥३४॥

अथाग्रे मीलितं वीक्ष्य तदा दक्षं महेश्वरः ।
प्रत्युवाचाप्रियमिदं स्मारयन् वैष्णवीं गिरम् ॥३५॥

तब आगे मिले दक्ष को देखकर महेश्वर ने भगवान् विष्णु की वाणी का स्मरण कराते हुए यह अप्रिय बात कही ॥३५॥

॥ईश्वर उवाच॥

नारायणेन विप्रेन्द्र यदिदानीमुदीरितम् ।
मयाप्यंगीकृतं कर्तुं तदिहैव प्रजापते ॥३६॥
एनां यः साभिलाषः सन् वीक्षते तं हनिष्यसि ।
इति वाचन्तु सफलमेनं हत्वा करोम्यहम् ॥३७॥

ईश्वर बोले–हे विप्रेन्द्र दक्षप्रजापति ! नारायण ने जो अभी कहा है, उसे करने का मैंने विचार किया है। "इसे जो अभिलाषा (प्राप्ति कामना) से देखे, उसे आप मार डालोगे।" इस कथन की सफलता, मैं ब्रह्मा को मार कर सिद्ध करूँगा ॥३६-३७॥

साभिलाषः कथं ब्रह्मा सतीं समवलोकयत् ।
अभवत्त्यक्ततेजास्तु ततो हन्मि कृतागसम् ॥३८॥

ब्रह्मा ने सती को अभिलाषा युक्त हो क्यों देखा? फलतः ये तेजरहित हो गये हैं, इसलिए मैं ऐसे पापकर्मी का वध करूँगा ॥३८॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

तमेवं वादिनं विष्णुः क्षिप्रं भूत्वा पुरःसरः ।
इदमूचे वारयंस्तं हन्तुं सर्वजगत्प्रभुः ।।३९।।

मार्कण्डेय बोले– तब सम्पूर्ण जगत् के स्वामी विष्णु शीघ्र ही सामने आकर इस प्रकार से बोलने वाले शिव को उन ब्रह्मा के वध से रोकते हुए यह बोले ॥३९॥

।। श्रीभगवानुवाच।।

हनिष्यसि भूतेश स्त्रष्टारं जगतां वरम् ।
अनेनैव सती भार्या भवदर्थे प्रकल्पिता ।।४०।।

श्रीभगवान् बोले– हे भूतेश! जगत्श्रेष्ठ, सृष्टिकर्ता, ब्रह्मा का आप वध करेंगे। जबकि इन्होंने ही आपके लिए सती जैसी उत्तम पत्नी की योजना की है ॥४०॥

प्रजाः स्त्रष्टुमयं शम्भो प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ।
अस्मिन् हते जगत्स्त्रष्टा नास्त्यन्यः प्राकृतोऽधुना ।।४१।।

हे शम्भु! प्रजा की सृष्टि हेतु यह चुतर्मुख (ब्रह्मा) उत्पन्न हुए हैं। इनका वध करने पर इस समय कोई जगत् का सृष्टिकर्ता नहीं दीखता है ॥४१॥

सृष्टिस्थित्यन्तकर्माणि करिष्यामः कथं पुनः ।
अनेनापि मया चैव भवता च समञ्जसम् ।।४२।।

इनके, मेरे और आपके सामञ्जस्य से जो जगत् की सृष्टि, पालन और विनाश का कर्म है, वह हम कैसे करेंगे ? ॥४२॥

एकस्मिन्निहतेऽमीषु कस्तत्कर्म करिष्यति ।
तस्मान्न वध्यो भवता विधाता वृषभध्वज ।।४३।।

हे वृषभध्वज! हममें से एक के भी मारे जाने पर उसका कर्म कौन करेगा? इसलिए आपके द्वारा ये ब्रह्मा मारे जाने योग्य नहीं हैं ॥४३॥

।। ईश्वर उवाच।।

प्रतिज्ञां पूरयिष्यामि हत्वैनं चतुराननम् ।
अहमेव प्रजाः स्त्रक्ष्ये स्थावराणि चराणि च ।।४४।।
अन्यं स्त्रक्ष्ये विधातारमथवाहं स्वतेजसा ।
स एव सृष्टिकर्ता स्यात् सर्वदा मदनुज्ञया ।।४५।।

ईश्वर (शिव) बोले– मैं इस चतुरानन ब्रह्मा को मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा। तत्पश्चात् मैं स्वयं ही स्थावर (स्थिर) तथा चर (गतिशील) प्रजा की सृष्टि करूँगा अथवा मैं अपने तेज से दूसरे ब्रह्मा की सृष्टि करूँगा। वही ब्रह्मा सदैव मेरी आज्ञा से सृष्टिकर्ता होंगे ॥४४-४५॥

हत्वैनं विधिमेवाहं प्रतिज्ञां पालयन् विभो ।
स्त्रष्टारमेकं स्त्रक्ष्यामि न वारय चतुर्भुज ।।४६।।

हे विभु! इस प्रकार मैं इस ब्रह्मा का वध कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करूँगा तथा एक नये सृष्टिकर्ता की सृष्टि भी करूँगा। हे चतुर्भुज विष्णु ! अत: आप मुझे न रोको॥४६॥

॥मार्कण्डेय उवाच॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा गिरिशस्य चतुर्भुजः ।
स्मितप्रसन्नवदनः पुनरैरेवमितीरयन् ॥४७॥
प्रतिज्ञापूरणं कर्तुं योग्यमात्मनि नो भवेत् ।
इत्युवाचाभिवदनमीश्वरस्य द्विजोत्तमाः ॥४८॥

मार्कण्डेय बोले– हे द्विजोत्तमों ! उन गिरीश के वचनों को सुनकर मुस्कान् सहित प्रसन्न मुख विष्णु ने पुन: ऐसा मत करो इस प्रकार कहते हुए अपनी आत्मा पर प्रतिज्ञा पूर्ति करना उचित नहीं है। ऐसा ईश्वर से कहा ॥४७-४८॥

ततः पुनः शम्भुरूचे कथमात्मा विधिर्मम ।
लक्ष्यते भिन्न एवायं प्रत्यक्षेणाग्रतः स्थितः ॥४९॥

तब पुन: शम्भु ने पूछा– ब्रह्मा कैसे मेरी आत्मा हैं। यह तो प्रत्यक्ष ही भिन्न रूप में सामने स्थित हैं ॥४९॥

अथ ग्रहस्य भगवान् मुनीनां पुरतस्तदा ।
इदमूचे महादेवं तोषयन् गरुड़ध्वजः ॥५०॥

तब हँसते हुए भगवान् विष्णु ने शिव को संतुष्ट करते हुए मुनियों के सम्मुख यह कहा ॥५०॥

॥श्रीभगवानुवाच॥

न ब्रह्मा भवतो भिन्नो न शम्भुर्ब्रह्मणस्तथा ।
न चाहं युवयोर्भिन्नोऽभिन्नत्वं सदातनम् ॥५१॥

श्रीभगवान् बोले– न ब्रह्मा आप शिव से भिन्न हैं, न शिव ब्रह्मा से भिन्न हैं और न मैं आप दोनों से भिन्न हूँ। हम लोगों का अभिन्नत्व तो सदा से ही है ॥५१॥

प्रधानस्याप्रधानस्य भागाभागस्वरूपिणः ।
ज्योतिर्मयस्य भागो मे युवामेकोऽहमंशकः ॥५२॥

आप दोनों प्रधान और अप्रधान, अंश एवं अंशी स्वरूप ज्योतिर्मय, मेरे ही भाग हैं तथा मैं आप ही जैसा एक अंश हूँ ॥५२॥

कस्त्वं कोऽहञ्च को ब्रह्मा ममैव परमात्मनः ।
अंशत्रयमिदं भिन्नं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥५३॥

आप कौन हैं? मैं कौन हूँ? ब्रह्मा कौन हैं? ये ज़गत की सृष्टि, पालन, तथा संहार के कारण रूप मुझ परमात्मा के ही तीन अंश हैं ॥५३॥

चिन्तयस्वात्मनात्मानं संस्तवं कुरु चात्मनि ।
एकत्र ब्रह्मवैकुण्ठशम्भूनां हृद्गतं कुरु ॥५४॥

स्वयं अपना चिन्तन कीजिए और स्वयं अपनी ही स्तुति करें तथा ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर की एकता को हृदयङ्गम कीजिए ॥५४॥

शिरोग्रीवादिभेदेन यथैकस्यैव धर्मिणः ।
अङ्गानि मे तथैकस्य भागत्रयमिदं हर ।।५५।।

हे हर! जैसे शिर, गला आदि एक ही शरीर के विभिन्न अङ्ग होते हैं। उसी प्रकार यह (हम लोगों का नाम भेद भी) एक मात्र मेरा ही अलग अलग तीन भाग है ।।५५।।

यज्ज्योतिरग्र्यं स्वपरप्रकाशंकूटस्थमव्यक्तमनन्तरूपम् ।
नित्यञ्च दीर्घादिविशेषणाद्यैर्हीनं परं तच्च वयं न भिन्नाः ।।५६।।

जो ज्योतियों में अग्रगण्य है, जो स्वयं ही श्रेष्ठ प्रकाशरूप है, जो कूटस्थ और अव्यक्त है, जो अनन्त रूप है, जो नित्य शाश्वत है, जो दीर्घ ह्रस्वादि द्वंद्वात्मक विशेषणों से रहित है, उस पर ब्रह्म तत्त्व से हम भिन्न नहीं है ।।५६।।

।।मार्कण्डेय उवाच।।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य महादेवो विमोहितः ।
जानन् स चाप्यभिन्नत्वं सद्विस्मृत्यान्यचिन्तनात् ।।५७।।
पुनः प्रपच्छ गोविन्दमनन्यत्वं त्रिभेदिनाम् ।
ब्रह्मविष्णुत्र्यम्बकानामेकस्य च विशेषकम् ।।५८।।

मार्कण्डेय बोले– विष्णु के उक्त वचन को सुनकर मोहग्रस्त शिव, उन ब्रह्मा के प्रति एकता को जानकर, उनके प्रति पराये की भावना को भूलकर विष्णु से विशेषकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीन रूप वालों की आपसी एकता, अन्योन्याश्रय सम्बन्ध के विषय में पूछने लगे ।।५७-५८।।

ततो नारायणः पृष्टः कथयामास शम्भवे ।
अनन्यत्वं त्रिदेवानामेकत्वञ्च व्यदर्शयत् ।।५९।।

तब शिव द्वारा पूछे जाने पर नारायण भगवान् विष्णु ने तीनों देवों की एकता और अनन्यता का विशिष्ट वर्णन किया ।।५९।।

श्रुत्वा ततो विष्णुमुखाब्जकोशा-
दनन्यतां विष्णुविधीशतत्त्वे ।
दृष्ट्वां स्वरूपं च जघान नैनं
विधिं मृडः पुष्पमधुप्रकाशकम् ।।६०।।

।। श्रीकालिकापुराणे त्रिदेवानामेकत्वप्रतिपादन नामैकादशोऽध्यायः ।।११।।

विष्णु के मुखकमल कोश से विष्णु ब्रह्मा तथा शिव की तात्त्विक अनन्यता को सुनकर पुष्प, मधु, प्रकाशक उन ब्रह्मा को आत्मरूप जानकर शिव ने उनका वध नहीं किया ।।६०।।

।। श्रीकालिकापुराण में त्रिदेवानामेकत्वप्रतिपादन नामक ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।११।।



द्वादशोऽध्यायः

त्रिदेवानामनन्यत्व-प्रतिपादनम्

।। ऋषय ऊचुः ।।

अनन्यत्वं त्रिदेवानां यज्जगाद जनार्दनः ।
शम्भवे तद्वयं श्रोतुमिच्छामो द्विजसत्तम ।।१।।
एकत्वं दर्शयामास कथं वा गरुडध्वजः ।
तत् समाचक्ष्व विप्रेन्द्र परं कौतूहलं हि नः ।।२।।

ऋषिगण बोले– हे द्विजसत्तम! भगवान शङ्कर से विष्णु ने त्रिदेवों की जिस अनन्यता का वर्णन किया था, उसे हम सब सुनना चाहते हैं अथवा गरुड़ध्वज विष्णु ने कैसे एकता दर्शायी ? हे विप्रेन्द्र! वह सब बताइये; क्योंकि इस सम्बन्ध में हमें महान कौतुहल (उत्सुकता) है ॥१-२॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

शृणुध्वं मुनयो गुह्यं परमं प्रयतं परम् ।
त्रिदेवानामनन्यत्वं तथैवैकत्वदर्शनम् ।।३।।

मार्कण्डेय बोले– हे मुनिगण (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) त्रिदेवों की अनन्यता और एकता दर्शाने वाले इस परमगुप्त तथा परमपवित्र प्रसङ्ग को आप सब सुनिये ॥३॥

हरेण पृष्टो गोविन्दस्तं समाभाष्य सादरम् ।
इदमाह मुनिश्रेष्ठा अभिन्नप्रतिपादकम् ।।४।।

हे मुनिश्रेष्ठों! शिव द्वारा पूछे जाने पर इस अभिन्नता का प्रतिपादन करने वाले, वृतान्त को गोविन्द ने उनसे आदरपूर्वक कहा था ॥४॥

।।श्रीभगवानुवाच।।

इदं तमोमयं सर्वमासीद्भुवनवर्जितम् ।
अप्रज्ञातमलक्ष्यञ्च प्रसुप्तमिव सर्वतः ।।५।।

श्रीभगवान् बोले– प्रारम्भ में यह सब कुछ तमोमय था। भुवनों का कहीं चिह्न भी नहीं था। सब ओर से अनदेखा और अनजाना प्रसुप्त की भाँति प्रतीत हो रहा था ॥५॥

न दिवारात्रिभागोऽत्र नाकाशं न च काश्यपी ।
न ज्योतिर्न जलं वायुर्नान्यत् किञ्चन संस्थितम् ।।६।।

वहाँ न तो दिन-रात्रि का अन्तर था, न आकाश था, न पृथ्वी थी, न अग्नि था, न जल, न वायु, न अन्य ही कुछ स्थित था ।।६।।

एकमासीत् परंब्रह्म सूक्ष्मं नित्यमतीन्द्रियम् ।
अव्यक्तं ज्ञानरूपेण द्वैतहीनविशेषणम् ।।७।।

एकमात्र सूक्ष्म, इन्द्रियों की पहुँच से परे, शाश्वत, अव्यक्त, शोक हर्षादि द्वन्द्वरहित परब्रह्म परमात्मा ही ज्ञानरूप से स्थित था ।।७।।

प्रकृतिः पुरुषश्चैव नित्यौ द्वौ सर्वसंहितौ ।
स्थितः कालोऽपि भूतेश जगत्कारणमेककम् ।।८।।

हे भूतेश! उस समय प्रकृति और पुरुष दो तत्त्व जो शाश्वत और सब कुछ मिले हुए स्थित थे । जगत का एकमात्र कारण काल भी उपस्थित था ।।८।।

यदेकं परमं ब्रह्म तत्स्वरूपात् परं हर ।
रूपत्रयमिदं नित्यं तस्यैव जगतः पतेः ।।९।।

हे हर! जो एक परब्रह्म था, उस जगत् के स्वामी के उस मूलभूत स्वरूप से ही उत्पन्न यह तीन रूपों वाला जगत् भी श्रेष्ठ एवं नित्य है ।।९।।

कालो नामापरं रूपमनाद्यं तत्तु कारणम् ।
सर्वेषामेव भूतानामवच्छेदेन संगतः ।।१०।।

काल नामक एक दूसरा रूप भी है, जो अनादि, प्रथम है वही सभी प्राणियों के विनाश से सम्बद्ध कारण भी है ।।१०।।

ततस्तत् स्वप्रकाशेन भास्वद्रूपं प्रकाशते ।
पुरा सृष्ट्यर्थमतुलं क्षोभयन् प्रकृतिं स्वयम् ।।११।।

प्राचीनकाल में सृष्टि हेतु तब वह अपने ही प्रकाश से प्रकाशरूप में प्रकाशित, स्वयं प्रकृति को अत्यधिक क्षुब्ध कर दिया ।।११।।

संक्षुब्धायान्तु प्रकृतौ महत्तत्त्वमजायत ।
महत्तत्त्वात्ततः पश्चादहङ्कारस्त्रिधाभवत् ।।१२।।

प्रकृति के संक्षुब्ध हो जाने पर महत् तत्त्व की उत्पत्ति हुई । उसके बाद महत् तत्त्व से तीन प्रकार का अहङ्कार उत्पन्न हुआ ।।१२।।

अहङ्कारे तु संजाते शब्दतन्मात्रतस्ततः ।
आकाशमसृजद्विष्णुरनन्तं मूर्तिवर्जितम् ।।१३।।

अहङ्कार के उत्पन्न होने पर उससे शब्द तन्मात्रा की और उस शब्द तन्मात्रा से निराकार अनन्त आकाश की विष्णु ने सृष्टि की ।।१३।।

ततस्तु रसतन्मात्रादपः सृष्ट्वा महेश्वरः ।
निराधारः स्वयं दध्रे तास्तदा निजमायया ॥१४॥

तब रसतन्मात्रा से शिव ने निराधार जलतत्त्व की सृष्टि की तब स्वयं निराधार होते हुए भी उस अप्तत्त्व को अपनी माया से धारण किया ॥१४॥

ततस्त्रिगुणसाम्येन संस्थितां प्रकृतिं प्रभुः ।
पुनः संक्षोभयामास सृष्ट्यर्थं परमेश्वरः ॥१५॥

तब सत्व-रज-तम नाम त्रिगुणों के साम्य से भलीभाँति स्थिरप्रकृति को सृष्टिहेतु परमेश्वर परब्रह्म ने क्षुब्ध किया ॥१५॥

ततः सा प्रकृतिस्तासु बीजं त्रिगुणभागवत् ।
अप्सु संसर्जयामास जगद्बीजं निराकुलम् ॥१६॥

तब उस प्रकृति ने त्रिगुणात्मक रूप से बीज का विभाग कर संसार के आदिबीज रूप जगत्बीज की जल में सृष्टि की जो स्वयं में चेतनारहित था ॥१६॥

तद्धि वृद्धं क्रमेणैव हैममण्डमभून्महत् ।
जग्राहापः समस्तास्ता गर्भ एव तदण्डकम् ॥१७॥

वही क्रमशः बढ़ते हुए बहुत बड़ा सोने का अण्डा बन गया । उसी अण्डे में जल ने गर्भ धारण किया ॥१७॥

अप्सु स्थितासु हैमाण्डगर्भे विष्णुस्तदण्डकम् ।
त्वयैव मायया दध्रे ब्रह्माण्डमतुलं पुनः ॥१८॥

जल में स्थित उस स्वर्णअण्ड के गर्भ में विष्णु ने उस अतुलनीय अण्ड को, जिसे ब्रह्माण्ड कहते हैं, आपकी ही माया से पुनः धारण किया ॥१८॥

वारिणा वह्निभिश्चैव वायुभिर्नभसा तथा ।
बहिस्तदण्डकं छन्नं सर्वपार्श्वे समन्ततः ॥१९॥

उस अण्डे को जल, अग्नि, वायु तथा आकाश तत्त्व से बाहर तथा सब ओर से सम्पूर्ण रूप से घेर दिया ॥१९॥

सप्तसागरमानेन तथा नद्यादि मानतः ।
ब्रह्माण्डाभ्यन्तरे तोयं तदन्यत्तु बहिर्गतम् ॥२०॥

सात समुद्रों तथा नदी आदि के मान (आवश्यकता) के अनुसार जल ब्रह्माण्ड के भीतर धारणकर शेष अतिरिक्त जल बाहर कर दिया ॥२०॥

तदन्तः स्वयमेवासौ विष्णुर्ब्रह्मस्वरूपधृक् ।
दैवं वर्षमूषित्वैव प्रविभेद तदण्डकम् ॥२१॥

उसके बाद वह (परब्रह्म) स्वयं विष्णु, ब्रह्मा का रूप धारण १ दिव्यवर्ष (३६० मानव वर्षों के बराबर समय) तक उसमें रहकर, उस अण्डे में छिद्र कर दिया ॥२१॥

तस्मात् समभवन्मेरुरुत्पन्नोऽस्मिन् महेश्वर ।
जरायुः पर्वता जाता समुद्राः सप्त तज्जलात् ।।२२।।

हे महेश्वर! उससे मेरुपर्वत उत्पन्न हुआ। उस अण्डे की जरायु (भ्रूण का ऊपरी आवरण) से पर्वत तथा उसके जल से सप्तसमुद्र उत्पन्न हुए ।।२२।।

तन्मध्ये गन्धतन्मात्रात् पृथिवी समजायत ।
ईश्वरेण प्रकृत्या च योजिता त्रिगुणात्मिका ।।२३।।

उसके मध्यभाग में गन्धतन्मात्रा से पृथ्वी उत्पन्न हुई। ईश्वर ने इसे त्रिगुणात्मिका प्रकृति से जोड़ दिया ।।२३।।

प्रागेव पर्वतादिभ्यः समुत्पन्ना वसुन्धरा ।
ब्रह्माण्डखण्डसंयोगाद्दृढा भूता तु सा भृशम् ।।२४।।

पर्वत आदि से पहले ही वसुन्धरा (पृथ्वी) उत्पन्न हुई, ब्रह्माण्ड के अधोखण्ड के संयोग से वह अत्यधिक दृढ़ हो गई ।।२४।।

तस्यामेव स्थितो ब्रह्मा सर्वलोकगुरुः स्वयम् ।
यदा ब्रह्माण्डमध्यस्थो ब्रह्मा व्यक्तो न चाभवत् ।
तदैव रूपतन्मात्रात्तेजः सम्यगजायत ।।२५।।

उसमें समस्त लोकों के गुरु (पूर्व पुरुष) ब्रह्मा स्थित हुए। किन्तु ब्रह्माण्ड मध्य में स्थित होते हुए भी वे जब प्रकट नहीं हुए तभी रूपतन्मात्रा से तेज तत्त्व भलीभाँति उत्पन्न हुआ ।।२५।।

वायुस्तु स्पर्शतन्मात्रात् प्रकृत्या विनियोजितात् ।
बभूव सर्वभूतानां प्राणभूतः समन्ततः ।।२६।।

सभी प्राणियों का प्राणभूत वायु तत्त्व स्पर्श तन्मात्रा के प्रकृति के साथ विनियोजन से सब ओर व्याप्त हो गया ।।२६।।

अद्भिस्तेजोभिरतुलैर्वायुभिर्नभसा तथा ।
अन्तर्बहिस्तदण्डस्य व्याप्तमन्यत्तु गर्भगम् ।।२७।।

जल, अतुलनीय अग्नि, वायु और आकाश उस गर्भस्थ अण्डे के अन्दर तथा बाहर व्याप्त हो गया। उसके अतिरिक्त भी शेष रहा ।।२७।।

ततो ब्रह्मशरीरन्तु त्रिधा चक्रे महेश्वरः ।
प्रधानेच्छावशाच्छम्भो त्रिगुणत्रिगुणीकृतम् ।।२८।।

हे शिव! तब महेश्वर (परब्रह्म) ने ब्रह्मा के शरीर को तीन रूपों में तथा प्रधान की इच्छानुसार उन तीनों को भी तीन-तीन भागों में बाँटा ।।२८।।

तदर्द्धभागः संज्ञातश्चतुर्वक्त्रश्चतुर्भुजः ।
पद्मकेशरगौराङ्ग - कायो ब्राह्मो महेश्वरः ।।२९।।

उसका ऊपरी भाग महेश्वर के चार भुजा, चार मुख, कमल के केशर के समान गोरी शरीर वाले ब्रह्मरूप में प्रकट हुआ ।।२९।।

तन्मध्यभागो नीलाङ्ग एकवक्त्रश्चतुर्भुजः ।
शङ्खचक्रगदापद्मपाणिः कायः स वैष्णवः ।।३०।।

उसके मध्य भाग ने श्यामवर्ण, चतुर्भुज, एक मुख, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किया वह विष्णु स्वरूप हुआ ।।३०।।

अभवत्तदधोभागः पञ्चवक्त्रश्चतुर्भुजः ।
स्फटिकाभ्रसमः शुक्लः स कायश्चन्द्रशेखरः ।।३१।।

उसका निचला भाग पाँच मुख, चार भुजा, स्फटिक की आभा के समान श्वेत शरीर वाला चन्द्रशेखरशिव स्वरूप हो गया ।।३१।।

इतस्ततो ब्राह्मकाये सृष्टिशक्तिं न्ययोजयत् ।
स्वयमेवाभवत् स्रष्टा ब्रह्मरूपेण लोकभृत् ।।३२।।

इधर उधर बिखरी हुई अपनी सृष्टिशक्ति को परमात्मा ने उस ब्राह्मी काया में नियोजित किया तथा स्वयं ब्रह्मा रूप में सृष्टिकर्ता और लोकों के धारण कर्ता हुए ।।३२।।

स्थितिशक्तिं निजां मायां प्रकृत्याख्यां न्ययोजयत् ।
महेशो वैष्णवे काये ज्ञानशक्तिं निजां तथा ।।३३।।
स्थितिकर्ताभवद्विष्णुरहमेव महेश्वर ।
सर्वशक्तिनियोगेन सदा तद्रूपता मम ।।३४।।

महेश्वर ने स्थितिशक्ति रूपी अपनी माया को जो प्रकृति कही जाती है उसे तथा अपनी ज्ञानशक्ति को वैष्णवीकाया में नियोजित किया । हे महेश्वर! मैं ही विष्णु रूप में स्थिति (पालन) कर्ता हुआ । सभी शक्तियों के नियोग के कारण सदैव मेरी एकरूपता बनी रहती है ।।३३-३४।।

अन्तःशक्तिं तथाकाये शाम्भवे च न्ययोजयत् ।
अन्तकर्ताभवच्छम्भुः स एव परमेश्वरः ।।३५।।

अन्त शक्ति का शाम्भवकाया में नियोजन किया और वही परमेश्वर स्वयं अन्तकर्ता शिवस्वरूप हो गये ।।३५।।

ततस्त्रिषु शरीरेषु स्वयमेव प्रकाशते ।
ज्ञानरूपं परं ज्योतिरनादिर्भगवान् प्रभुः ।।३६।।

तबसे ज्ञानस्वरूप, परंज्योतिरूप, अनादि जो प्रभु है वही स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तीनों रूपों में प्रकाशित होते हैं ।।३६।।

सृष्टिस्थित्यन्तकरणादेक एव महेश्वरः ।
ब्रह्माविष्णुःशिवश्चेति संज्ञामाप पृथक् पृथक् ।।३७।।
अतस्त्वञ्च विधाता च तथाहमपि न पृथक् ।
एवं शरीरं रूपञ्च ज्ञानमस्माकमन्तरम् ।।३८।।

सृष्टि-स्थिति-विनाश के कारणभूत होने से उसी महेश्वर परमात्मा ने ब्रह्मा, विष्णु, और शिव इन अलग-अलग नामरूपों को धारण कर रखा है। इसी लिए शरीर, रूप और ज्ञान में भिन्नता होते हुए भी आप, ब्रह्मा और मैं भिन्न नहीं है ॥३७-३८॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य विष्णोरमिततेजसः ।
हर्षोत्फुल्लमुखः प्रोचे पुनरेव जनार्दनम् ।।३९।।

मार्कण्डेय बोले– अमिततेजस्वी भगवान् विष्णु के इन वचनों को सुनकर प्रसन्न मुख हो शिव पुनः जनार्दन से इस प्रकार बोले ॥३९॥

।। ईश्वर उवाच ।।

एक एव महेशश्चेत् ज्योतीरूपो निरञ्जनः ।
का वा मायाथ कः कालः का वा प्रकृतिरुच्यते ।।४०।।

ईश्वर उवाच– यदि महेश, निरञ्जन, ज्योति-स्वरूप परब्रह्म परमात्मा एक ही है तो यह माया कौन है? काल कौन है? या किसे प्रकृति कहते हैं? ॥४०॥

के पुमांसस्ततोभिन्नाभिन्नाश्चेत् कथमेकता ।
तन्मे वदस्व गोविन्द तत्प्रभावं यथागतम् ।।४१।।

हे गोविन्द! ये पुरुष कौन हैं? क्या ये उससे अभिन्न हैं? यदि भिन्न हैं तो इनमें एकता कैसे है? उसके विषय में आप बताइये जिससे उस परमात्मा का प्रभाव मैं जान सकूँ ॥४१॥

।। श्रीभगवानुवाच ।।

त्वमेव पश्यसि सदा ध्यानस्थः परमेश्वरम् ।
आत्मन्यात्मस्वरूपं तज्ज्योतीरूपं सदक्षरम् ।।४२।।

श्रीभगवान् बोले– आप भी सदैव ध्यानस्थ होकर अपने में ही उस आत्मस्वरूप, ज्योतिरूप, अविनाशी परमेश्वर को देखते रहते हैं ॥४२॥

मायाञ्च प्रकृतिं कालं पुरुषञ्च स्वयं विभो ।
ज्ञाता त्वं ध्यानयोगेन यस्माद्ध्यानपरो भव ।।४३।।

हे विभु! माया, प्रकृति, काल और पुरुष आप स्वयं ही हैं। इनके विषय में आप स्वयं ध्यान योग द्वारा जान सकते हैं। अतः आप ध्यान धारण कर स्वयं जान लें ॥४३॥

मायया मोहितो यस्मादधुना त्वम्मदीयया ।
ततो विस्मृत्य परमं ज्योतिर्हि वनितारतः ।।४४।।
अधुना कोपयुक्तस्त्वं विस्मृत्यात्मानमात्मनि ।
यां पृच्छसि प्रकृत्यादिरूपाणि प्रमथाधिप ।।४५।।

हे प्रमथों के स्वामी! इस समय आप जिस प्रकृति आदि रूपों वाली माया के सम्बन्ध में पूछ रहे हो, उसी मेरी माया से मोहित हो, जिससे आप अपने परम ज्योतिस्वरूप आत्म तत्व को भूलकर स्त्रीप्रेमवश क्रोधाविष्ट हो गये हो ।।४४-४५ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततस्तत्र महादेवः श्रुत्वा वाक्यं सुनिश्चितम् ।
मुनीनां पश्यतां योगयुक्तो ध्यानपरोऽभवत् ।।४६।।

मार्कण्डेय उवाच– तब महादेव शिव विष्णु के उन निश्चयात्मक वचनों को सुनकर वहाँ मुनियों के देखते ही देखते योग का आश्रय ले ध्यान-स्थित हो गये ।।४६।।

आसाद्य बन्धं पर्यकं निर्निमीलितलोचनः ।
आत्मानश्चिन्तयामास तदात्मनि महेश्वरः ।।४७।।

तब महेश्वर शिव बन्धरूपी पलङ्ग का आश्रय ले, अपलक नेत्रों से अपने आत्मस्वरूप का चिन्तन करने लगे ।।४७।।

परं चिन्तयतस्तस्य शरीरं विवभौ शुभम् ।
तेजोभिरुज्ज्वलं द्रष्टुं नशेकुर्मुनयस्तदा ।।४८।।

उस समय परंतत्व का चिन्तन करते हुये उनका शरीर उज्ज्वल तेज से भलीभाँति चमक उठा। मुनिजन भी उसे देखने में समर्थ नहीं थे ।।४८।।

तत्क्षणात् ध्यानयुक्तश्च शम्भुः स विष्णुमायया ।
परित्यक्तोऽति विवभौ तपस्तेजोभिरुज्ज्वलः ।।४९।।

उसी क्षण तपस्या के तेज से उज्ज्वल और ध्यानस्थ शिव विष्णु माया से मुक्त हो विभूषित हुये ।।४९।।

ये ये गणास्तदा तस्थुः सेवया शङ्करान्तिके ।
न तेऽपि वीक्षितुं शेकुः शङ्करं वा दिवाकरम् ।।५०।।

उस समय जो-जो गण शङ्कर के समीप थे वे भी उस तेजस्वी शङ्कर अथवा (सूर्य की तरह प्रकाशित होने के कारण) उस शिव रूपी सूर्य को देखने का साहस नहीं जुटा सके ।।५०।।

स्वयमेव तदा विष्णुः समाधिमनसो भृशम् ।
प्रविवेश शरीरान्तर्ज्योतीरूपेण धूर्जटेः ।।५१।।

तब स्वयं विष्णु भगवान् ने ज्योति रूप से अत्यधिक समाधि में मन लगाये हुए धूर्जटी शिव के शरीर में प्रवेश किया ।।५१।।

प्रविश्य तस्य जठरे यथा सृष्टिक्रमः पुरा ।
तथैव दर्शयामास स्वयं नारायणोऽव्ययः ।।५२।।

तब स्वयं नारायण ने जो अविनाशी हैं, उन शिव के जठर में प्रवेश कर प्राचीनकाल में जैसा सृष्टि क्रम चला था वैसा ही उन्हें दिखाया ।।५२।।

न स्थूलं न च सूक्ष्मञ्च न विशेषणगोचरम् ।
नित्यानन्दं निरानन्दमेकं शुद्धमतीन्द्रियम् ।।५३।।
अदृश्यं सर्वद्रष्टारं निर्गुणं परमं पदम् ।
परमात्मगमानन्दं जगत्कारणकारणम् ।।५४।।
प्रथमं ददृशे शम्भुरात्मानं तत्स्वरूपिणम् ।
तत्र प्रविष्टमनसा बहिर्ज्ञानविवर्जितः ।।५५।।

वहाँ प्रवेश कर बाह्य ज्ञान से रहित हो पहले भगवान् शङ्कर को अपना वह स्वरूप दिखाया—जो न स्थूल था न सूक्ष्म और न इन्द्रिय विशेष द्वारा जाना ही जा सकता था। जो नित्य आनन्दमय था। जो आनन्दरहित, एकमात्र, शुद्ध, इन्द्रियातीत, स्वयं अदृश्य होते हुए भी सबको देखने वाला, निर्गुण, श्रेष्ठ स्थान, परमात्मतत्त्व का ज्ञाता समस्त संसार के कारण का भी कारण था ॥५३-५५॥

तस्यैव रूपं प्रकृतिं सृष्ट्यर्थे भिन्नतां गताम् ।
ददर्श तस्यैवाभ्यासे पृथग्भूताविवैकिकाम् ।।५६।।

प्रकृति जो उन्हीं का रूप थी, किन्तु सृष्टि कार्य हेतु भिन्नता को प्राप्त की थी, उसे ध्यानाभ्यास में अलग हुई एकाकिनी रूप में देखा ॥५६॥

पुरुषांश्च ददर्शासौ यथैव वसतस्ततः ।
अग्नेरिव कणात् स्थूलादजस्त्रं द्विजसत्तमाः ।।५७।।

हे द्विजसत्तमों! उनमें निवास करते पुरुषों को उसी प्रकार देखा जैसे स्थूल अग्नि के बीच उसके अनेक सूक्ष्मकण निरन्तर विचरते रहते हैं ॥५७॥

तदेव कालरूपेण भासते च मुहुर्मुहुः ।
सृष्टिस्थित्यन्तयोगानामवच्छेदेन कारणम् ।।५८।।

उसे ही बार-बार सृष्टि, स्थिति, अन्त के कारण और भेद से, कालरूप से आभाषित होते देखा ॥५८॥

प्रकृतिः पुरुषश्चैव कालोऽपि च मुहुर्मुहुः ।
अभिन्नान् भाषमानांश्च सर्गार्थे भिन्नतां गताम् ।।५९।।

उपर्युक्त प्रकृति-पुरुष तथा काल भी बारम्बार अभिन्न प्रतीत होते हुए भी सृष्टि के लिए भिन्नता को प्राप्त किये थे ॥५९॥

पृथग्भूतानभिन्नांश्च ददृशे चन्द्रशेखरः ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ।।६०।।
सप्रधानस्वरूपेण कालरूपेण भासते ।
तथापुरुषरूपेण संसारार्थं प्रवर्तते ।।६१।।

चन्द्रशेखर ने अभिन्न और भिन्न दोनों ही रूपों में प्रकृति-पुरुष कालादि को देखा। एक मात्र अद्वितीयब्रह्म जो है यहाँ उसके अतिरिक्त कुछ भी नाना नहीं था।

वह संसार (सृष्टिकर्म) हेतु प्रधान तथा कालरूप में भाषित होता है तथा पुरुष रूप में कार्य करता है ॥६०-६१॥

भोगार्थं प्राणिनां शश्वच्छरीरे च प्रवर्तते ।
सैव माया या प्रकृतिः सा मोहयति शङ्करम् ॥६२॥

वही शाश्वत होते हुए भी भोग हेतु प्राणियों के शरीर में संचरण करता है। वही माया, जो प्रकृति है, वही शङ्कर, विष्णु ब्रह्मा तथा अन्य जन्म लेने वालों को मोहित करती है ॥६२॥

हरिं तथा विरिञ्चिञ्च तथैवान्यजनुर्भवान् ।
मायाख्या प्रकृतिर्जाता जन्तुं सन्मोहयत्यपि ॥६३॥
सा स्त्री रूपेण च सदा लक्ष्मीभूता हरेः प्रिया ।
सा सावित्री रतिः सन्ध्या सा सती सैव वीरिणी ॥६४॥

माया नाम की जो प्रकृति है वही प्राणि मात्र को मोहित करती है। वही स्त्री रूप से लक्ष्मी हो विष्णु की पत्नी है। वही (ब्रह्मा की पत्नी) सावित्री (कामदेव की पत्नी) रति, सन्ध्या, (शिवपत्नी) सती, (दक्षपत्नी) वीरिणी है ॥६३-६४॥

बुद्धिरूपा स्वयं देवी चण्डिकेति च गीयते ।
इति स्वयं ददर्शाशु ध्यानमार्गगतो हरः ॥६५॥
महदादि प्रभेदेन तथा सृष्टिक्रमं स्वयम् ॥६६॥

वही स्वयं बुद्धिरूपा है तथा कार्यवश चण्डिका के रूप में गाई जाती है। यह सब कुछ स्वयं शङ्कर ने ध्यानावस्थित हो स्वयं देखा तथा महदादि भेद से सृष्टि क्रम का भी दर्शन किया ॥६५-६६॥

दर्शयित्वा हरिः कालं प्रकृतिं पुरुषांस्तथा ।
तथान्यद्दर्शयामास तच्छरीरं द्विजोत्तमाः ॥६७॥

॥ श्रीकालिकापुराणे त्रिदेवानामनन्यत्वप्रतिपादनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

हे द्विजोत्तमों! विष्णु ने कालप्रकृति तथा पुरुष का दर्शन कराकर अलग से शिव को उनके रूप का दर्शन कराया ॥६७॥

॥ श्रीकालिकापुराण में त्रिदेवों के अनन्यत्वप्रतिपादन नामक बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥



त्रयोदशोऽध्यायः

हरकोपोपशमनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततो ब्रह्माण्डसंस्थानं दर्शयामास शम्भवे ।
ववृधे तोयराशिस्थं ब्रह्माण्डञ्च यथापुरा ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– तब विष्णु ने शिव को ब्रह्माण्ड संस्थान दिखाया। जिससे प्राचीन काल में जलराशि के मध्यस्थित ब्रह्माण्ड ने विकास को प्राप्त किया था ।।१।।

तन्मध्ये पद्मगर्भाभं ब्रह्माणञ्च जगत्पतिम् ।
ज्योतिरूपं प्रकाशार्थं सृष्ट्यर्थञ्च पृथग्गतम् ।।२।।

उसके मध्य में ज्योतिरूप से प्रकाशित किन्तु सृष्टि हेतु पृथक्‌रूप से कमलगर्भ के समान भासमान जगत्पति ब्रह्मा को दिखाया ।।२।।

शरीरिणञ्च ददृशे ब्रह्माण्डान्तर्गतं मुहुः ।
चतुर्भुजं प्रकाशान्तं ज्योतिर्भिः कमलासनम् ।।३।।

जो ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत पुनः शरीरधारी चार भुजाओं से युक्त अनेक ज्योतियों से प्रकाशित, कमलासन पर विराजमान थे ।।३।।

तत्रैव च त्रिधाभूतं वपुर्ब्राह्मयं ददर्श सः ।
ऊर्ध्वमध्यान्तभागैश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।।४।।

उस ब्रह्मशरीर में ऊपरी, मध्य एवं अन्त भागानुसार ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को तीन रूपों में देखा ।।४।।

यथोर्ध्वभागो वपुषो ब्रह्मत्वमगमत्तदा ।
मध्यं यथा विष्णुभूतं ददर्शान्तस्य शम्भुताम् ।।५।।

जिस प्रकार से शरीर का ऊपरी भाग ब्रह्मा के स्वरूप को, मध्यभाग विष्णु के रूप को तथा अन्तिम शिव के स्वरूप को प्राप्त था, ऐसा देखा ।।५।।

एकमेव शरीरन्तु त्रिधाभूतं मुहुर्मुहुः ।
हरो ददर्श स्वे गर्भे तथा सर्वमिदं जगत् ।।६।।

अपने ही अन्तर्गत इस सम्पूर्ण जगत को एक ही शरीर को बारबार तीन भागों में बँटते शिव ने देखा ।।६।।

कदाचिद्वैष्णवं कायं ब्राह्मे काये लयं व्रजेत् ।
ब्राह्मं तथा वैष्णवे च शाम्भवे वैष्णवं तथा ।।७।।
शाम्भवं वैष्णवे काये ब्राह्मं वाप्यथ शाम्भवे ।
गच्छन्तं लीनतां शम्भुरेकताञ्च मुहुर्मुहुः ।।८।।

उन्होंने (भगवान् शिव ने) कभी विष्णु के शरीर को ब्रह्मा के शरीर में तथा कभी ब्रह्मा के शरीर को, विष्णु के शरीर में, कभी विष्णु के शरीर को शिव के शरीर में, कभी शिव के शरीर को विष्णु के शरीर में अथवा ब्रह्मा के शरीर को शिव के शरीर में प्रवेश करते, लीन होते और एकात्मक होते, बार बार देखा ॥७-८॥

ददर्श वामदेवोऽपि भिन्नञ्चाप्यपृथग्गतम् ।
परमात्मनि गच्छन्तं लीनतां तद्वपुः स्वयम् ।।९।।

वामदेव ने भी स्वयं भिन्न और अलग होते हुए भी परमात्मा में अपने शरीर को लीन होते देखा ॥९॥

तन्मध्ये पृथिवीं शम्भुर्ददर्श विततां जले ।
महापर्वतसङ्घातैर्विरलं स्थगितन्ततः ।।१०।।

भगवान् शिव ने उस ब्रह्माण्ड के मध्य में जल पर फैली हुई, बड़े-बड़े पर्वत समूहों से, स्थिर की गई पृथ्वी को देखा ॥१०॥

पुनर्ददर्श ब्रह्माणं कुर्वन्तं स्वर्गमादितः ।
आत्मानञ्च पृथग्भूतं विष्णुञ्च गरुडासनम् ।।११।।

पुनः ब्रह्मा को प्रारम्भ से स्वर्गादि का निर्माण करते, गरुड़ासन पर विराजमान विष्णु को तथा स्वयं को भी अलग से देखा ॥११॥

दक्षं प्रजापतिं तत्र तथैव च निजान् गणान् ।
मरीच्यादीन् दश तथा वीरिणीञ्च तथा सतीम् ।।१२।।

वहाँ उसी रूप में उन्होंने दक्षप्रजापति, अपने गणों, मरीचि आदि दश मानसपुत्रों, वीरिणी तथा देवी सती को भी देखा ॥१२॥

सन्ध्यां रतिं च कन्दर्पं शृङ्गारं सवसन्तकम् ।
हावान् भावांस्तथा मारान् ऋषीन् देवान् मरुद्गणान् ।।१३।।

उन्होंने देवी सन्ध्या, रति तथा शृङ्गार एवं वसन्त के सहित कामदेव को, हाव-भाव तथा मारगणों, ऋषियों, देवताओं और मरुद्गणों को भी देखा ॥१३॥

मेघाँश्च चन्द्रं सूर्यञ्च वृक्षान् वल्लीस्तृणानि च ।
सिद्धान् विद्याधरान् यक्षान् राक्षसान् किन्नरांस्तथा ।।१४।।
मानुषांश्च भुजंगांश्च ग्राहान्मत्स्यांश्च कच्छपान् ।
उल्कानिर्घातकेतूंश्च कृमिकीटपतङ्गकान् ।।१५।।

उन्होंने मेघों, चन्द्रमा, सूर्य, वृक्षों, लताओं, तृणों तथा सिद्धों विद्याधरों, यक्षों, राक्षसों और किन्नरों, मनुष्यों, सर्पों, ग्रहों, मत्स्यों, कच्छपों, उल्काओं, पतनकारी धूमकेतुओं एवं कृमि कीट-पतङ्गों को भी देखा ॥१४-१५॥

काञ्चिद्ददर्श वनितां द्वन्द्वभावं प्रकुर्वतीम् ।
उत्पन्नमुत्पद्यन्तंच विपद्यन्तञ्च कञ्चन ॥१६॥

उन्होंने किसी स्त्री को द्वन्द्वभाव प्रकट करते हुये देखा। किसी को उत्पन्न तथा किसी को उत्पन्न होते और किसी को नष्ट होते देखा ॥१६॥

हसतो रमतः कांश्चित् कांश्चिद्विलपतस्तथा ।
धावतश्चापराञ्छम्भोर्ददर्श परमेश्वरः ॥१७॥

किसी को हँसते, किसी को रमण करते, किसी को विलाप करते तो दूसरी को दौड़ते हुए परमेश्वर शिव ने देखा ॥१७॥

दिव्यालङ्कारसंछन्ना माला चन्दनचर्च्चिताः ।
वीक्षाञ्च चक्रिरे केचिच्छम्भुना क्रीडिता मुहुः ॥१८॥

पुनः कोई दिव्य अलङ्कारों से ढकी हुई, कोई माला चन्दनादि धारण किये थी, तो कोई खेलती हुई शिव के द्वारा देखी गई ॥१८॥

स्तुवन्तः प्रस्तुवन्तश्च शम्भुं विष्णुं तथा विधिम् ।
केचिद्ददृशिरे तेन मुनयश्च तपोधनाः ॥१९॥
तपांसि चरतः केचिन्नदीतीरे तपोवने ।
स्वाध्यायवेदनिरताः पाठ्यन्तश्चैव केचन ॥२०॥

उनके द्वारा कुछ तपस्वी और मुनिगण शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा की स्तुति करते हुए कुछ उनकी विशिष्ट स्तुति करते देखे गये। कोई नदी तट पर या तपोवनों में तपस्या करते दिखाई दिये तो कोई वेद के स्वाध्याय में निरत थे, तो कोई पढ़ाते हुए देखे गये ॥१९-२०॥

तथैव सागराः सप्त नद्यो देवसरांसि च ।
तथैव पर्वतस्थोऽसौ ददृशे शम्भुना स्वयम् ॥२१॥

उसी प्रकार सात समुद्र, नदियाँ तथा देवताओं के सरोवरों तथा पर्वत पर स्थित स्वयं को भी शिव द्वारा देखा गया ॥२१॥

मायालक्ष्मीस्वरूपेण हरिं सन्मोहयत्यलम् ।
सतीरूपा तथात्मानं मोहयन्तीति शङ्करः ॥२२॥

माया को लक्ष्मी रूप से हरि को, सतीरूप से स्वयं को सम्मोहित करते शङ्कर ने देखा ॥२२॥

सत्या सार्धं स्वयं रेमे कैलासे मेरुपर्वते ।
मन्दरे देवविपिने शृङ्गाररससेविते ॥२३॥

स्वयं को सती के साथ कैलाश, मेरुपर्वत, मन्दराचल तथा नन्दनादि देववनों में शृङ्गार रसयुक्त हो रमण करते देखा ॥२३॥

सतीदेहं तथा त्यक्त्वा जाता हिमवतः सुता ।
यथा प्राप पुनस्तान्तु यथा चैवान्धको हतः ।।२४।।
कार्तिकेयः समुत्पन्नो यथाहंस्तारकाह्वयम् ।
तत्सर्वं विस्तरात् सम्यग् ददर्श वृषभध्वजः ।।२५।।

जिस प्रकार सती ने अपनी सतीदेह छोड़कर हिमालय की पुत्री के रूप में उत्पन्न हो पुनः शिव को पति रूप में प्राप्त किया और जिस प्रकार अन्धकासुर का वध हुआ। कार्तिकेय जिस प्रकार उत्पन्न हुए और जिस प्रकार उन्होंने तारकासुर का वध किया। वह सब वृषभध्वज शिव ने भलीभाँति विस्तार से देखा ॥२४-२५॥

हिरण्यकशिपुर्जघ्ने नरसिंहस्वरूपिणा ।
यथा हतः कालनेमिर्हिरण्याक्षो यथा हतः ।।२६।।
विष्णुना यादृशं युद्धं दानवौघैः पुराकृतम् ।
यथा ये ये च निहतास्तत्सर्वं दृष्टवान् हरः ।।२७।।

नरसिंह स्वरूपधारी विष्णु द्वारा हिरण्यकशिपु जैसे मारा गया, जिस प्रकार कालनेमि और हिरण्याक्ष मारे गये। प्राचीनकाल में दानव वीरों के साथ विष्णु द्वारा जिस प्रकार के युद्ध किये गये और जो-जो राक्षस मारे गये उन सबको शिव ने देखा ॥२६-२७॥

जगत्प्रपञ्चान् ब्रह्मादीन्नक्षत्रग्रहमानुषान् ।
सिद्धविद्याधरादींश्च दृष्ट्वा दृष्ट्वा पृथक् पृथक् ।।२८।।
आत्मानं तान् संहरन्तं ददृशे शम्भुरीश्वरः ।
संहारान्ते ददर्शासौ ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।।२९।।

ब्रह्मादि तथा नक्षत्र, ग्रह, मनुष्य, सिद्धविद्याधरादि जगत्प्रपञ्चों को अलग-अलग देखकर स्वयं को उनका संहार करते हुए शिव ने देखा तथा संहार के अन्त में उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और शिव को देखा ॥२८-२९॥

शून्यं समभवत्सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।।३०।।

तब यह सम्पूर्ण चराचर जगत् शून्य सम हो गया ॥३०॥

शून्ये जगति सर्वस्मिन् ब्रह्मा विष्णुशरीरगः ।
लीनः शम्भुश्च तस्यैव शरीरं प्रविवेश ह ।।३१।।

सम्पूर्ण जगत् के शून्य में लीन हो जाने पर ब्रह्मा, विष्णु के शरीर में लीन हो गये। तथा शिव भी उसी शरीर में प्रवेश कर गये ॥३१॥

एकमेवं ददर्शासौ विष्णुमव्यक्तरूपिणम् ।
नान्यत्किंचिद्ददर्शासौ तदा विष्णुमृते हरः ।।३२।।

उन्होंने अव्यक्त रूप में एकमात्र विष्णु को ही देखा तब शिव को विष्णु के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखाई दिया ॥३२॥

अथ विष्णुश्च ददृशे लयं तं परमात्मनि ।
भासमानं परं तत्त्वे ज्योतीरूपे सनातने ॥३३॥

इसके बाद विष्णु प्रकाशित, ज्योतिरूप, सनातन, परब्रह्म = तत्त्व उन परमात्मा में लीन होते दिखाई दिये ॥३३॥

ततो ज्ञानमयं नित्यमानन्दं ब्रह्मणः परम् ।
केवलं ज्ञानगम्यञ्च ददर्शान्यन्न किञ्चन ॥३४॥

तब केवल ज्ञान से जानने योग्य, ज्ञानमय, नित्य, आनन्दस्वरूप परब्रह्म दिखाई दिया अन्य कुछ नहीं दिखा ॥३४॥

एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च जगतः परमात्मनि ।
ददर्श स्वशरीरान्तः सर्गस्थित्यन्तसंयमान् ॥३५॥

संसार की परमात्मा से एकता और पृथकता को देखा तथा अपने शरीर में ही सृष्टि, स्थिति और अन्त्य की व्यवस्थाओं को देखा ॥३५॥

प्रकाशं परमात्मानं शान्तं नित्यमतीन्द्रियम् ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म ददर्शान्यन्न किञ्चन ॥३६॥

उन्होंने एकमात्र प्रकाशस्वरूप, अद्वितीय, शान्त, नित्य, अतीन्द्रिय, परमात्मरूप ब्रह्म को देखा, अन्य कुछ नहीं ॥३६॥

को वा विष्णुर्हरः को वा को ब्रह्मा किमिदं जगत् ।
इति भेदो न जगृहे शम्भुना परमात्मनः ॥३७॥

कौन विष्णु है? या कौन शिव है? या कौन ब्रह्मा है? यह जगत् क्या है? परमात्मा के इन भेदों को शिव ने ग्रहण नहीं किया ॥३७॥

एवं सम्पश्यतस्तस्य शरीराभ्यन्तराद्बहिः ।
निःससाराथ मायादि प्रविवेश वृषध्वजम् ॥३८॥

इस प्रकार जब शिव देख रहे थे तभी मायादि ने उन्हीं के शरीर से बाहर निकलकर वृषभध्वज (शिव) में ही प्रवेश किया ॥३८॥

अनन्यत्वं पृथक्त्वञ्च दर्शयित्वा जनार्दनः ।
शम्भवे तच्छरीरात्तु बहिर्भूतस्ततो द्रुतम् ॥३९॥

तब विष्णु शिव को त्रिदेवों की एकता और अनेकता दिखाकर शीघ्र ही उनके शरीर से बाहर निकल गये ॥३९॥

अथ त्यक्तसमाधेस्तु हरस्य चलितात्मनः ।
सतीं मनो जगामाशु मोहितस्य च मायया ॥४०॥

तब समाधि छोड़कर शिव की आत्मा विचलित हो उठी । माया से मोहित हो उनका मन शीघ्र ही सती की ओर आकर्षित हो गया ॥४०॥

ततो मुहुर्हरो वक्त्रं दाक्षायण्या मनोहरम् ।
प्रबुद्धकमलाकारं वीक्षांचक्रे द्विजोत्तमाः ।।४१।।

हे द्विजोत्तमों! तब शिव बारम्बार दाक्षायणी के खिले हुए कमल के आकार वाले, मनोहरमुख को देखने लगे ।।४१।।

ततो दक्षमरीच्यादीन् स्वगणान् कमलासनम् ।
विष्णुञ्च तत्र संवीक्ष्य शङ्करो विस्मितोऽभवत् ।।४२।।

तब दक्ष-मरीचि आदि को, अपने गणों को, ब्रह्मा और विष्णु को वहाँ देखकर शिव विस्मित हो गये ।।४२।।

अथ तं विस्मयाविष्टं महादेवं वृषभध्वजम् ।
स्मितप्रफुल्लवदनं हरमाह जनार्दनः ।।४३।।

इसके बाद उन विस्मय में पड़े हुए, मुस्कान से खिले हुए मुख मण्डल वाले वृषभध्वज महादेव शिव से जनार्दन बोले ।।४३।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

यद्यत् पृष्टं त्वयैकत्वे भिन्नतायाञ्च शङ्कर ।
त्रयाणामथ देवानां तज्ज्ञातमधुना त्वया ।।४४।।

श्रीभगवान् बोले– आपके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवताओं की एकता और अनेकता के सम्बन्ध में जो-जो पूछा गया, वह सब अब आपके द्वारा जान लिया गया है ।।४४।।

प्रकृतिः पुरुषश्चैव कालो माया निजान्तरे ।
त्वया ज्ञाता महादेव कीदृशास्ते च के पुनः ।।४५।।

हे महादेव! अपने अन्तर में ही, प्रकृति पुरुष, काल तथा माया आपसे जान ली गई हैं। पुनः ये कैसे हैं? इसको भी जाना जा चुका है ।।४५।।

एकं ब्रह्म सदा शान्तं नित्यञ्च परमं महत् ।
तत् कथं भिन्नतां जातं दृष्टं तत् कीदृशं त्वया ।।४६।।

सदैव शान्त, नित्य, महान् प्रकार से ब्रह्म कैसे भिन्नता को प्राप्त करता है, यह आपने देखा वह कैसा था? ।।४६।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति पृष्टो भगवता भगवान् वृषभध्वजः ।
जगाद हरये तथ्यमेतद्वाक्यं द्विजोत्तमाः ।।४७।।

मार्कण्डेय बोले– हे द्विजोत्तमों! भगवान् विष्णु द्वारा ऐसा पूछे जाने पर भगवान् शिव ने ये तथ्यपूर्ण वाक्य कहे ।।४७।।

।। ईश्वर उवाच ।।

एकं शिवं शान्तमनन्तमच्युतं
ब्रह्मास्ति तस्मान्नहि किञ्चिदीदृशम् ।
तस्मादभिन्नं सकलं जगद्धरेः
कालादिरूपाणि च सृष्टिहेतुः ।।४८।।

ईश्वर बोले– हे हरि! एक कल्याणकारी, शान्त, अन्तहीन, अच्युतब्रह्म ही है, उससे भिन्न कुछ भी उसके जैसा नहीं है। यह सारा संसार उससे अभिन्न है। वही सृष्टि के लिए कालादि रूप धारण करता है ।।४८।।

समस्तभूतप्रभवं निरञ्जनं
वयञ्च तस्यैव सदांशरूपिणः ।
सृष्टिस्थितिं संयमनं तदीरितं
रूपत्रयं तस्य विभाति भेदतः ।।४९।।

वह समस्त प्राणियों का जन्मदाता है, निरञ्जन है। हम उसके ही शाश्वत-अंश रूप हैं। सृष्टि स्थिति अन्त आदि के प्रेरक हमारे तीनों रूप उसी भेद से प्रकट होते हैं ।।४९।।

नाहं न च त्वं न हिरण्यगर्भो
न कालरूपं प्रकृतिं न चान्यत् ।
तत् प्रेरणां कर्तुमलं च किञ्चि-
द्विनापि रूपं सदपीह तस्य ।।५०।।

न मैं, न आप, न हिरण्यगर्भ, न काल, न प्रकृति या और कोई भी उसकी प्रेरणा के बिना कुछ नहीं कर सकता। यहाँ सभी उसी का रूप है ।।५०।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

इति तत्त्वं त्वया प्रोक्तं ज्ञातञ्च वृषभध्वज ।
तदंशभूतास्तु वयं ब्रह्मविष्णुपिनाकिनः ।।५१।।

श्रीभगवान विष्णु बोले– हे वृषभध्वज! यह जो तत्त्व आपके द्वारा जाना और बताया गया है। हम ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव उसी के अंशभूत हैं ।।५१।।

तस्मात् त्वया न वध्योऽयं विरिञ्चिस्तव चेद्भवेत् ।
एकता विदिता शम्भो ब्रह्मविष्णुपिनाकिनाम् ।।५२।।

हे शम्भु! ब्रह्मा-विष्णु और शिव की एकता यदि आपको ज्ञात हो गई है तो यह ब्रह्मा आपके द्वारा मारे जाने योग्य नहीं रहे ।।५२।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोरमिततेजसः ।
न जघान महादेवो विधिं दृष्ट्वाथ चैकताम् ।।५३।।

अमित तेजस्वी विष्णु के इस वचन को सुनकर और पारस्परिक एकता को देखकर महादेव ने विधाता को नहीं मारा ।।५३।।

इति वः कथितं विष्णुर्यथानन्यत्वमादिशत् ।
शम्भवे प्रस्तुतं तद्वः कथयामि पुनर्द्विजाः ।।५४।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे हरकोपोपशमनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

हे द्विजों! वह जैसे विष्णु ने शिव को अनन्यता का दिग्दर्शन कराया आप लोगों से मैंने कहा अब मैं आगे का प्रसङ्ग पुनः कहता हूँ ।।५४।।

।। श्रीकालिकापुराण में हरकोपोपशमन नामक तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।



चतुर्दशोऽध्यायः
शिवसतीविहारवर्णनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

जलदेष्वथ गर्जत्सु महादेवः सतीपतिः ।
विसृज्य विष्णुप्रभृतिं जगाम हिमवद्गिरिम् ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– सतीपति महादेव गर्जते हुए बादलों के बीच ही विष्णु आदि आगतों को विदाकर हिमालय के लिए चल पड़े ।।१।।

आरोप्य वृषभे तुङ्गे सतीमामोदशालिनीम् ।
जगाम हिमवत्प्रस्थं रम्यं कुञ्जसमन्वितम् ।।२।।

वे आमोद से युक्त सती को ऊँचे वृषभवाहन पर आरूढ़ करा, कुञ्ज से सुशोभित हिमालय के सुन्दर शिखर को चल पड़े ।।२।।

अथ सा शङ्कराभ्यासे सुदती चारुहासिनी ।
विरेजे वृषभस्थाति चन्द्रान्ते कालिकोपमा ।।३।।

शङ्कर के सानिध्य में वह सुन्दर दन्तपंक्ति तथा सुन्दर हँसी वाली, वृषभ पर स्थित सती, चन्द्रकान्त पर्वत पर कालिका की भाँति सुशोभित हो रही थीं ।।३।।

ब्रह्मादयश्च ते सर्वे मरीच्याद्याश्च मानसाः ।
दक्षोऽपि सर्वे मुदिता अभवन् ससुरासुराः ।।४।।

उस समय देवताओं तथा असुरों के सहित वे सब ब्रह्मा आदि देवगण तथा मरीचि आदि मानसपुत्र एवं स्वयं दक्ष प्रजापति भी प्रसन्न हो उठे ।।४।।

केचिच्छंखान् वादयन्तं केचित्तालान् सुमङ्गलाः ।
केचिद्धास्यं प्रकुर्वन्तो अनुजग्मुर्वृषध्वजम् ।।५।।

कोई शङ्ख बजाते, तो कोई मङ्गलमय ताल बजाते, कोई हँसी करते हुये शिव के पीछे चल पड़े ।।५।।

विसृष्टा अपि ब्रह्माद्याः शम्भुना पुनरेव ते ।
अनुजग्मुः कियद्दूरं मुदा परमया युताः ।।६।।

शिव के द्वारा विदा किये जाने पर भी ब्रह्मा आदि ने पुनः परमानंन्द से भर कर कुछ दूर तक शङ्कर का अनुगमन किया ।।६।।

ततः शम्भुं समाभाष्य ब्रह्माद्या मानसाश्च ते ।
स्वं स्वं स्थानं तदा जग्मुः स्यन्दनैराशुगामिभिः ।।७।।

तब शिव से वार्ता कर वे ब्रह्मादि देवगण तथा मरीचि आदि मानसपुत्र तीव्रगामी रथों द्वारा अपने अपने स्थानों को चले गये ।।७।।

देवाश्च सर्वे सिद्धाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ।
यक्षविद्याधराद्याश्च ये ये तत्र समागताः ।।८।।
ते हरेण विसृष्टास्तु गतवन्तो निजास्पदम् ।
वभूवुरामोदयुताः कृतदारे वृषध्वजे ।।९।।

सभी देवता, सिद्ध, अप्सराओं के समूह, यक्ष-विद्याधर जो-जो वहाँ आये थे, शिव के दारग्रहण के पश्चात् उनसे विदा हो, आनन्दपूर्वक अपने स्थान को चले गये ।।८-९।।

ततो हरः सस्वगणः संस्थानं प्राप्य मोदनम् ।
कैलासं तत्र वृषभादवतारयति प्रियाम् ।।१०।।

तब शिव ने अपने गणों के सहित कैलाश नामक आनन्ददायक स्थान पर पहुँच कर प्रिय पत्नी को वृषभ से उतारा ।।१०।।

ततो विरूपाक्ष इमां प्राप्य दाक्षायणीं गणान् ।
स्वीयान् विसर्जयामास नन्द्यादीन् गिरिकन्दरात् ।।११।।

तब विरूपाक्ष शिव ने इस दाक्षायणी को पाकर अपने नन्दी आदि गणों को पर्वत की उस गुफा से विदा कर दिया ।।११।।

उवाच शम्भुस्तान् सर्वान् नन्द्यादीनतिसुनृतम् ।
यदाहं वः स्मराम्यत्र स्मरणाच्चलमानसाः ।
समागमिष्यथ तदा मत्पार्श्वं भोस्तदा तदा ।।१२।।

शिव ने उन सभी नन्दी आदि अत्यन्त सत्यनिष्ठ गणों से कहा—जब मैं यहाँ तुम लोगों को स्मरण करूँगा तब-तब स्मरण मात्र से ही तुम सब मेरे पास आ जाना ।।१२।।

इत्युक्ते वामदेवेन ते नन्दिभैरवादयः ।
महाकौषी - प्रपाताय जग्मुस्ते हिमवद्गिरौ ।।१३।।

वामदेव शिव के द्वारा ऐसा कहे जाने पर वे नन्दी-भैरव आदि गण हिमालय के महाकौषी नामक प्रपात पर चले गये ।।१३।।

ईश्वरोऽपि तया सार्धं तेषु यातेषु मोहितः ।
दाक्षायण्या चिरं रेमे रहस्यनुदिनं भृशम् ।।१४।।

उनके चले जाने पर शिव ने मोहित हो दाक्षायणी के साथ एकान्त में निरन्तर बहुत अधिक रमण किया ।।१४।।

कदाचिद् वन्यपुष्पाणि समाहृत्य मनोहराम् ।
मालां विधाय सत्यास्तु हारस्थाने न्ययोजयत् ।।१५।।

कभी जङ्गली फूलों को लाकर उनकी सुन्दर माला बनाकर वे सती के हार के स्थान पर सजाते थे ॥१५॥

कदाचिद्दर्पणे वक्त्रं वीक्षन्तीमात्मनः सतीम् ।
अनुगम्य हरो वक्त्रं स्वीयमप्यवलोकयत् ।।१६।।

कभी जब सती दर्पण में अपना मुख देखती होतीं तो शिव पीछे से आकर अपना मुख भी उसी दर्पण में देखने लगते ॥१६॥

कदाचित् कुन्तलांस्तस्या उल्लास्योल्लासमागतः ।
बध्नाति मोचयत्येवं शश्वत्सन्मार्जयत्यपि ।।१७।।

कभी उल्लास से भरकर उनके केशों को बाँधते, कभी खोलते। इस तरह निरन्तर झाड़ते रहते ॥१७॥

सरागौ चरणावस्या यावकेनोज्ज्वलेन च ।
निसर्गरक्तौ कुरुते सरागो वृषभध्वजः ।।१८।।

वृषभध्वजशिव प्रेम से भरकर उसके स्वभाविक रूप से लाल चरणों को यावक (महावर) से और अधिक राग-मय करते थे ॥१८॥

उच्चैरपि यदाख्येयमन्येषां पुरतो मुहुः ।
तत् कर्णे कथयत्यस्या हरो स्प्रष्टुं तदाननम् ।।१९।।

दूसरों के सामने जो बात उच्च स्वर में कही गई होती पुनः उसे ही शिव उसके मुख के स्पर्शन की इच्छा से सती के कानों में कहते ॥१९॥

न दूरमपि गत्वासौ समागम्य प्रयत्नतः ।
अनुबध्नाति तामक्ष्णि पृष्ठदेशेऽन्यमानसाम् ।।२०।।

बिना दूर गये ही वे प्रयत्नपूर्वक वापस आकर कुछ सोचती और देखती हुई सती को पीछे से बाँध लेते थे ॥२०॥

अन्तर्हितस्तु तत्रैव मायया वृषभध्वजः ।
तामालिलिङ्ग भीत्या सा चकिता व्याकुलाभवत् ।।२१।।

वहीं शिव माया से अन्तर्हित होकर पुनः उसका आलिङ्गन करते थे, जिससे वे सती चकित और व्याकुल हो जाती थीं ॥२१॥

सौवर्णपद्मकलिकातुल्ये तस्याः कुचद्वये ।
चकार भ्रमराकारं मृगनाभिविशेषकम् ।।२२।।

वे सोने के कमल की कलि के समान उनके दोनों स्तनों पर मृगनाभि से उत्पन्न विशेष पदार्थ (कस्तूरी) से भ्रमर का आकार बनाते थे ॥२२॥

हारमस्याः कुचयुगाद्वियोज्य सहसा हरः ।
नियोजयति तत्रैव सकरस्पर्शनं मुहुः ।।२३।।

शिव अचानक उनके हार को स्तनद्वयों से हटाकर पुनः हाथ से स्पर्श की इच्छा से वहाँ ही पहुँचा देते थे ।।२३।।

अङ्गदान् वलयान् वर्मीं विश्लेष्य च पुनः पुनः ।
तत्स्थानात् पुनरेवासौ तत्स्थाने प्रयुयोज च ।।२४।।

बाजूबन्द, कङ्गन, वर्मि (कुण्डल) आदि को उनके स्थानों से बार-बार हटाते तथा पुनः उन्हीं स्थानों पर पहनाते थे ।।२४।।

कालिकेयं समायाति सवर्णा ते सखीति ताम् ।
पश्येत् यस्यास्तथेच्छन्त्याः प्रोक्त्वा जग्राह तत्कुचौ ।।२५।।

हे कालिके! ये देखो तुम्हारी तरह तुम्हारी सखी आ रही है, कहकर सती द्वारा देखे जाने पर वे उनके स्तन को पकड़ लेते थे ।।२५।।

कदाचिन्मदनोन्मादचेतनः प्रमथाधिपः ।
चकार नर्मकर्माणि तया हृत्प्रियया मुदा ।।२६।।

कदाचिद् कामोन्मत्त चित्त हो प्रमथों के स्वामी शिव उस हृदयहारिणी पत्नी से प्रसन्नतापूर्वक केलिकर्म करते ।।२६।।

आहृत्य पद्मपुष्पाणि वन्यपुष्पाणि शङ्करः ।
पुष्पाभरणसर्वाङ्गीं कुरुते स्म कदाचन ।।२७।।

कभी शङ्कर कमल के फूलों तथा जङ्गली फूलों को लाकर उन्हें पुष्प के आभूषणों से सर्वाङ्गरूप में सजाते थे ।।२७।।

गिरिकुंजेषु रम्येषु तया सह सतीपतिः ।
विजहार समस्तेषु वनेषु मुदितो हरः ।।२८।।

सतीपति शिव प्रसन्नतापूर्वक उस सती के साथ समस्त वनों में, पर्वतों पर स्थित सुन्दर कुञ्जों में विहार करते ।।२८।।

न याने नोपवेशे च न स्थितौ नापि चेष्टिते ।
तया विना क्षणमपि शर्म लेभे वृषध्वजः ।।२९।।

उस समय शिव को, न चलने में, न बैठने में, न खड़े होने में, न कार्य करने में किसी भी अवस्था में उस सती के बिना चैन नहीं मिलता था ।।२९।।

विहृत्य सुचिरं कालं कैलासगिरिकन्दरे ।
महाकौषीप्रपाताय जगाम हिमवद्गिरौ ।।३०।।

कैलाशपर्वत की कन्दराओं में बहुत समय तक विहार कर वे हिमालय पर्वत के महाकौषी प्रपात पर पहुँचे ।।३०।।

तस्मिन् प्रविष्टे हिमवत् पर्वते वृषभध्वजे ।
कामोऽपि सह मित्रेण रत्या च प्रजगाम ह ।।३१।।

उस हिमालय के उस प्रपात पर शिव के प्रवेश कर जाने पर कामदेव भी अपने मित्र (वसन्त) एवं पत्नी रति के साथ वहाँ आ पहुँचा ।।३१।।

तस्मिन् प्रविष्टे कामे तु वसन्तः शङ्करान्तिके ।
विततान निजाः श्रीश्च वृक्षे तोये तथा भुवि ।।३२।।

वहाँ कामदेव एवं वसन्त ने शिव के समीप प्रविष्ट होकर वृक्ष, जल और पृथ्वी पर अपनी शोभा का प्रसार किया ।।३२।।

सर्वे सुपुष्पिता वृक्षा लताश्चान्याः सुपुष्पिताः ।
अम्भांसि फुल्लपद्मानि पद्मेषु भ्रमरास्तथा ।।३३।।

सभी वृक्ष तथा लतायें सुन्दर पुष्पों से भर उठीं। जल में खिले हुए कमलों पर भौरें गुञ्जार करने लगे ।।३३।।

प्रविष्टे तत्र सुरतौ प्रववुर्मलयानिलाः ।
सुगन्धिपुष्पगन्धेन मोहिताश्च पुरन्ध्रयः ।।३४।।
मुनीनामपि चेतांसि प्रमथ्य सुरभिस्तदा ।
स्मरः सारं समुद्दध्रे तक्रौघादाज्यवत्कृती ।।३५।।

उनके सुरति भोग-विलास में प्रवेश करते ही मलयाचल की सुगन्धित वायु बहने लगी। सुगन्धित फूलों की गन्ध से विवाहित स्त्रियाँ विशेष मोहित हो गईं तथा उस सुगन्ध ने मुनियों के चित्त को मथ कर स्मर=सार (कामभाव) उत्पन्न कर दिया जैसे—कोई प्राणी मट्ठे से घी निकाल देता है ।।३४-३५।।

सन्ध्यार्द्धचन्द्रसंकाशाः पलाशाश्च विरेजिरे ।
कामास्त्रवत्सुमनसः प्रमोदायाभवन् सदा ।।३६।।

सन्ध्याकालीन अर्धचन्द्र के समान पलाश सुशोभित हो रहे थे। जिनके पुष्प कामदेव के अस्त्रों के समान सदैव आनन्ददायक प्रतीत हो रहे थे ।।३६।।

वभुः पङ्कजपुष्पाणि सरःसु सकलं जनान् ।
सम्मोहयितुमुद्युक्ता सुमुखीवाम्बुदेवता ।।३७।।

जलदेवता की प्रसन्न मुख आनन्दित सुन्दरियों की भाँति सरोवरों में खिले हुये कमल के फूल सभी लोगों के मन को मोहित करने लगें ।।३७।।

नागकेशरवृक्षाश्च स्वर्णवर्णप्रसूनकैः ।
वभुर्मदनकेत्वाभा मनोज्ञाः शङ्करान्तिके ।।३८।।

सुनहरे रङ्ग के फूलों वाले नागकेशर के वृक्ष शिव के समीप कामदेव की पताका के समान सुन्दर लगने लगे ।।३८।।

चम्पकास्तरवो हैमपुष्पत्वं प्रकटं मुहुः ।
कुर्वन्तः प्रचुरैः पुष्पैः सम्यग्रेजुस्तथास्फुटैः ।।३९।।

चम्पक के वृक्ष पुनः अपने खिले हुए बहुत अधिक सुनहरे पुष्पों से स्वर्णिम पुष्प होने की सार्थकता सिद्ध करते हुए शोभायमान होने लगे ।।३९।।

प्रफुल्लपाटलापुष्पैर्दिशः स्युः पाटलांशवः ।
यथा तथा पुष्पितास्ते पाटलाख्या महीरुहाः ।।४०।।

जब पाटल के वृक्षों पर पुष्प खिले तो उन खिले हुए पाटल के पुष्पों से दिशायें पाटल किरणों की आभा वाली हो गईं ।।४०।।

लवंगवल्लीसुरभिर्गन्धेनोद्वास्य मारुतम् ।
सम्मोहयति चेतांसि भृशं कामिजने पुरा ।।४१।।

लवङ्ग की लताओं के गन्ध से सुगन्धित हो वायु पहले ही कामीजनों के चित्त को अत्यधिक मोहित कर रहा था ।।४१।।

वासन्तीवासितास्तत्र वल्वजाः किल रेजिरे ।
तद्गन्धलुब्धभ्रमरा रतिमिश्रा मनोहराः ।।४२।।

वासन्ती वायु से सुशोभित वल्वज (एक प्रकार की घास) और उसके गन्ध के लोभी भ्रमर रतियुक्त, सुन्दर और शोभायमान हो रहे थे ।।४२।।

चारु जावकवर्च्चस्वि शिखराश्चूतशाखिनः ।
वभुर्मदनवाणौघ - पर्यंकवदनावृताः ।।४३।।

अग्नि की लौ के समान दिखाई देने वाले आम के वृक्ष, कामदेव के बाण, पुष्पसमूह से बने, खुले पलङ्ग के सामन सुशोभित हो उठे ।।४३।।

अम्भांसि मलहीनानि रेजु; फुल्लकुशेशयैः ।
मुनीनामिव चेतांसि प्रव्यक्तज्योतिरुद्गमात् ।।४४।।

प्रव्यक्त ज्योति आत्मबोध के उत्पन्न हो जाने पर जैसे मुनियों के चित्त निर्मल हो शोभायमान होते हैं, उसी प्रकार खिले कमलों से भरे निर्मल सरोवर भी शोभायमान होने लगे ।।४४।।

तुषाराः सूर्यरश्मीनां सङ्गमादगमन् क्षयम् ।
ममत्वानीव विज्ञानशालिनां हृदयात्तदा ।।४५।।

तब सूर्य की किरणों के संयोग से ओस-कण, विज्ञानी जनों के हृदय से ममत्व की तरह क्षय को प्राप्त होने लगे ।।४५।।

निःशङ्काः कोकिलाः शब्दं तन्वते स्म तदान्वहम् ।
प्राणिव्यधनपुष्पेषु पुष्पज्याशब्दवत् भृशम् ।।४६।।

उस समय कोयलें निःशङ्क हो इस प्रकार से निरन्तर शब्द कर रहीं थी मानों बारंबार प्राणियों के बींध देने वाले काम के पुष्प-धनुष की पुष्पों से बनी प्रत्यञ्चा के शब्द (टङ्कार) हों ।।४६।।

चुकूजुर्भ्रमरास्तत्र वनान्तर्गतपुष्पगाः ।
कान्तालीलावुभुक्षोस्तु स्मरव्याघ्रस्य शब्दवत् ।।४७।।

वहाँ वन में पुष्पों पर गूँजते हुये भौंरें, पत्नी-लीला (काम-क्रीड़ा) से भूखे कामीजन की भाँति शब्द कर रहे थे ।।४७।।

चन्द्रस्तुषारवद्भानुर्नचैताः सकलाः कलाः ।
कम्राद्बभार मोहाय जनानां कुशलं भुवि ।।४८।।

चन्द्रमा और तुषार ओस युक्त सूर्य की किरणें और चन्द्रमा की समस्त कलायें क्रमशः पृथ्वी पर लोगों को मोहित करने के लिए चातुरी को धारण कर रहीं थीं ।।४८।।

प्रसन्नाः सह चन्द्रेण निस्तुषारास्तदाभवन् ।
विभावर्यः प्रियेणैव कामिन्यः सुमनोहराः ।।४९।।

जिस प्रकार सुन्दरी स्त्रियाँ अपने प्रिय के साथ प्रसन्न होती हैं, उसी प्रकार रात्रि भी चन्द्रमा के साथ ओसों से विमुक्त हो सुशोभित हो गई ।।४९।।

तस्मिन् काले महादेवः सह सत्या भूधरोत्तमे ।
रेमे च सुचिरं छन्नो निकुञ्जेषु दरीषु च ।।५०।।

ऐसे समय में महादेव सती के साथ हिमालय पर्वत पर झाड़ियों और गुफाओं में गुप्त रूप से बहुत समय तक रमण किये ।।५०।।

सापि तेन समं रेमे तथा दाक्षायणी शुभा ।
यथा हरः क्षणमपि शान्तिं नावाप तां विना ।।५१।।

उस सुन्दरी दाक्षायणी ने भी उसी तरह उन शिव के साथ रमण किया, जिससे शिव उसके बिना क्षण भर भी शान्ति नहीं पाते थे ।।५१।।

संभोगविषये देवी सती तस्य मनःप्रिया ।
विशतीव हरस्याङ्गे पाययन्तीव तद्रसम् ।।५२।।

उनके मन को प्रिय लगने वाली देवी सती संभोगप्रसङ्ग में शिव के अङ्गों में प्रवेश करती हुई अपने आनन्द का पान करा रही थीं ।।५२।।

तस्याः कुसुममालाभिर्भूषयन् सकलां तनुम् ।
स्वहस्तरचिताभिश्च वरं नर्म चकार सः ।।५३।।

उन शिव ने भी अपने हाथ से बनाई गई फूल मालाओं से भली प्रकार उनके सम्पूर्ण शरीर को सजाते हुए केलि किया ।।५३।।

आलापैर्वीक्षणैर्हासैस्तथा सम्भाषणैर्हरः ।
तस्यां विवेश गिरिशः संयमीवात्मसंविदम् ।।५४।।

गिरीश शिव ने शब्दों से, देखने से, हँसी से, वार्तालाप से जैसे संयमी आत्मज्ञान में प्रवेश करता है उसी भाँति उनमें प्रवेश किया, अनुरक्त हुए ।।५४।।

तद्वक्त्रचन्द्रपीयूषपानस्थिरतनुर्हरः ।
नावाप शैषिकीं तन्वीमवस्थां स कदाचन ।।५५।।
तद्वक्त्राम्बुजवासेन तत्सौन्दर्यस्य नर्मभिः ।
गुणैरिव महादन्ती बद्धो नान्यद्विचेष्टते ।।५६।।

उनके मुख चन्द्र के अमृत का स्थिर तन से पान करने वाले शिव ने कभी की समाप्तप्राय थकी हुई शारीरिक अवस्था को प्राप्त नहीं किया । उनके मुख कमल की सुगन्ध से उनके सौन्दर्य के आकर्षण वश, रस्सी में बँधे हुए विशाल गजराज की भाँति उनका मन अन्यत्र चेष्टा नहीं करता था ।।५५-५६।।

इति हिमगिरिकुंजे प्रस्थभागे दरीषु
प्रतिदिनमधिरेमे दक्षपुत्र्या महेशः ।
क्रतुभुज - परिमाणैः क्रीडतस्तस्य जाता
नव दश च मुनीन्द्रा वत्सराः पञ्च चान्ये ।।५७।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे शिवसतीविहारवर्णननाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

हे मुनीन्द्रों ! इस प्रकार शिव ने हिमालय पर्वत की गुफाओं में, कुञ्जों में, मैदानों में प्रतिदिन दक्ष पुत्री के साथ अभिरमण किया । इस प्रकार काम-क्रीड़ा करते हुए उनके देवताओं के परिणाम से चौबीस वर्ष (८६०० मानव वर्ष) बीत गये ।।५७।।

।। श्रीकालिकापुराण में शिव-सतीविहारवर्णननामक चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।



पञ्चदशोऽध्यायः
हिमाद्रिनिवासगमनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

कदाचिदथ दक्षस्य तनया जलदागमे ।
जगादाद्रेः शिखरिणः प्रस्थस्थं वृषभध्वजम् ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– कभी दक्ष की पुत्री सती ने बादलों के घिर आने पर हिमालय पर्वत के शिखर पर स्थित शिव से कहा—॥१॥

।। सत्युवाच ।।

घनागमोऽयं सम्प्राप्तः कालः परमदुःसहः ।
अनेकवर्णमेघौघस्थगिताम्बरदिक्चयः ।।२।।

सती बोलीं– इस समय बादलों के आगमन का अत्यन्त कष्टकर समय आ गया है। अनेक रङ्गों के बादलों से आकाश और दिशायें स्थगित (स्तम्भित) हो गई हैं ॥२॥

विवान्ति वाता हृदयं दारयन्तोऽतिवेगिनः ।
कदम्बरजसाधौतपाथोलेशादिवर्षिणः ।।३।।

कदम्ब रजकणों से युक्त, जल बिन्दुओं की वर्षा करने वाली वायु हृदय को विदीर्ण करती हुई अत्यन्त वेग से बह रही हैं ॥३॥

मेघानां गर्जितैरुच्चैर्धारासारं विमुंचताम् ।
विद्युत्पताकिनान्तीव्रैः क्षुब्धं कस्य न मानसम् ।।४।।

धाराप्रवाह जल वर्षाते हुए, पताकाओं की भाँति विद्युत को धारण किये हुए मेघों की तेज और उच्च स्वर की गर्जना से किसका मन क्षुब्ध नहीं हो जाता?॥४॥

न सूर्यो दृश्यते नापि मेघाच्छन्नो निशापतिः ।
दिवापि रात्रिवद्भाति विरहिव्यत्ययाकरम् ।।५।।

मेघों से घिरा होने से न तो सूर्य दिखाई देता है और न चन्द्रमा, दिन भी विरहियों के कष्ट को बढ़ाने वाली रात्रि की भाँति प्रतीत होता है॥५॥

मेघा नैकत्र तिष्ठन्तो ध्वनन्तः पवनेरिताः ।
पतन्त इव लोकानां दृश्यन्ते मूर्ध्नि शङ्कर ।।६।।

हे शङ्कर ! गरजते हुए मेघ वायु से प्रेरित हो एक स्थान पर स्थित नहीं रहते, ऐसा लगता है मानों ये लोगों के शिर पर ही गिर जायेंगे ॥६॥

वाताहता महावृक्षा नृत्यन्त इव चाम्बरे ।
दृश्यन्ते हर भीरूणां त्रासकाः कामुकेप्सिताः ।।७।।

हे हर ! वायु के द्वारा प्रताड़ित ये विशाल वृक्ष आकाश में नाचते हुए दिखाई देते हैं। जो डरने वालों को डराने वाले तथा कामुकजनों को उनकी इच्छा के अनुरूप लगते हैं ।।७।।

स्निग्धनीलाञ्जनश्याममुदिरौघस्य पृष्ठतः ।
वलाकाराजिर्भात्युच्चैर्यमुनापृष्ठफेनवत् ।।८।।

चिकने नीले काजल के समान श्याम रंग के बादलों के पृष्ठभाग (ऊपरी हिस्से) पर शोभित बगुलों की कतार यमुना के पीठ पर उठते हुए ऊँचे-ऊँचे फेन की भाँति शोभायमान हो रही हैं ।।८।।

क्षणं क्षणं चञ्चलेयं दृश्यते कालिका गता ।
अम्बुधाविव सन्दीप्तः पावको वडवामुखः ।।९।।

काले बादलों के मध्य क्षण-क्षण चमकती हुई यह कालिका (बिजली) समुद्र में प्रज्ज्वलित बड़वामुख अग्नि के समान शोभित हो रही है ।।९।।

प्ररोहन्ति हि शस्यानि मन्दिरप्रांगणेष्वपि ।
किमन्यत्र विरूपाक्ष शस्योद्भूतिं वदाम्यहम् ।।१०।।

हे विरूपाक्ष शिव ! भवन के आंगनों में भी पौधे उग आये हैं। अन्यत्र के इनकी उत्पत्ति के विषय में मैं क्या कहूँ ? इस वर्षा ऋतु में मंदिर की भाँति पवित्रतम मन भी विकारग्रस्त हो रहे हैं तो सामान्य चित्त की क्या बात है? (यह व्यञ्जना संकेतित है।) ।।१०।।

श्यामलै राजतैः ऋक्षैर्विशदोऽयं हिमाचलः ।
मन्दराश्रमवृक्षौघपत्रैर्दुग्धाम्बुधिर्यथा ।।११।।

यह विशाल हिमालय श्यामल हरे-भरे वृक्षों से ऐसा शोभयमान हो रहा है जैसे मन्दराचल वृक्षों तथा उनके पत्रों से ढका हुआ क्षीरसागर में स्थित हो ।।११।।

कुसुमश्रीश्च कुटजं भेजे सास्याथ किंशुकान् ।
उच्चावचां कलौ लक्ष्मीर्यथा सन्त्यज्य सज्जनान् ।।१२।।

जैसे कलियुग में लक्ष्मी सज्जनों को छोड़कर ऊँचे दीखते नीच पुरुषों के पास चली जाती हैं, वैसे ही कुटज वृक्षों के पुष्पों ने वह शोभा धारण की है जो कभी किंशुकों की होती थी ।।१२।।

मयूराः स्तनयित्नूनां शब्देन हर्षिता मुहुः ।
केकायन्ते प्रतिवनं सततं वृष्टिसूचकाः ।।१३।।

वृष्टि की सूचना देने वाले मोर बादलों के शब्द से प्रसन्न हो प्रत्येक वन में निरन्तर ध्वनि कर रहे हैं ।।१३।।

मेघोन्मुखानां मधुरचातकानां स्वनो हर ।
श्रूयतामतिमत्तानां वृष्टिसन्निधिसूचकः ।।१४।।

हे हर ! मेघों की ओर मुँह किये, अत्यन्त मतवाले चातकों की वृष्टि की समीपता सूचक मधुर ध्वनि सुनिये ।।१४।।

गगने शक्रचापेन कृतं साम्प्रतमास्पदम् ।
धारासार-शरैस्तापं भेत्तुं प्रति यथोद्गतः ।।१५।।

आकाश में इन्द्र धनुष ने इस बादलों के बाण की तीव्रता को सहने के लिए उदित होकर अपना स्थान बना लिया है ।।१५।।

मेघानां पश्य भर्गेह दुर्नयं करकोत्करः ।
यत्ताडयन्त्यनुगतं मयूरं चातकं तथा ।।१६।।

हे भर्ग ! मेघों की इस दुर्नीति को देखो जो मयूर और चातकों का अनुगमन करते हुए ओलों से मुझको कष्ट पहुँचा रहे हैं ।।१६।।

शिखिसारंगयोर्दृष्ट्वा मित्रादपि पराभवम् ।
हंसा गच्छन्ति गिरिश विदूरमपि मानसम् ।।१७।।

हे गिरीश ! अपने मित्र बादलों द्वारा मयूर और मृगों के पराभव को देखकर हंस मानसरोवर से दूर चले जा रहे हैं । (आडम्बरों के मध्य वाक् और कर्म की दुर्गति देख, ज्ञान स्वयं साथ छोड़ देता है ।) ।।१७।।

एतस्मिन् विषमे काले नीडं काकाश्च कोरकाः ।
कुर्वन्ति त्वं विना गेहात् कथं शान्तिमवाप्स्यसि ।।१८।।

इस विषम समय में काक और कोरक जैसे छुद्र एवं अर्धविकसित जन्तु भी अपना आश्रय बना रहे हैं तो आप जैसे महादेव, बिना आवास के कैसे सुखी रह सकते हैं ? ।।१८।।

महती बाधते भीतिर्मा मेघोत्था पिनाकधृक् ।
यतस्व तस्माद्वासाय मा चिरं वचनान्मम ।।१९।।

हे पिनाकधारी ! मेघों के घिर आने से उत्पन्न भय मुझे बहुत कष्ट दे रहा है । इसलिए मेरे कथानुसार आप शीघ्र ही आवास निर्माण हेतु प्रयत्न कीजिए ।।१९।।

कैलासे वा हिमाद्रौ वा महाकौष्यामथ क्षितौ ।
तवोपयोग्यं त्वं वासं कुरुष्व वृषभध्वज ।।२०।।

हे वृषभध्वज ! कैलाश पर, हिमालय पर या महाकौषि प्रपात पर अथवा पृथ्वी पर काशी आदि क्षेत्रों में, जहाँ कहीं भी आपके योग्य हो, वहाँ आप अपना आवास कीजिये ।।२०।।

एवमुक्तस्तदा शम्भुर्दाक्षायण्या तया सकृत् ।
इषज्जहास शीर्षस्थचन्द्ररश्मिसितानन: ।।२१।।

अथोवाच सतीं देवीं स्मितभिन्नोष्ठसम्पुटः ।
महात्मा सर्वतत्त्वज्ञस्तोषयन् परमेश्वरीम् ।।२२।।

एक बार में ही उस अपनी प्रिया दाक्षायणी द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर, शिर पर स्थित चन्द्रमा की श्वेत किरणों की आभा से श्वेत-निर्मल हुए शंकर, थोड़ा हँसे तथा सभी तत्त्वों के जानने वाले महात्मा शिव ने मुस्कान से भिन्न हुए ओठों से परमेश्वरी सती देवी को सन्तुष्ट करते हुए कहा— ॥२१-२२॥

।। ईश्वर उवाच ।।

यत्र प्रीत्यै मया कार्यो वासस्तव मनोहरे ।
मेघास्तत्र न गन्तारः कदाचिदपि मत्प्रिये ।।२३।।
मेघा नितम्बपर्यन्तं सञ्चरन्ति महीभृतः ।
सदा प्रालेयधाम्नस्तु वर्षास्वपि मनोहरे ।।२४।।

ईश्वर बोले– हे मन का हरण-करने वाली, मेरी प्रिया ! इन मेघों से मत डरो । मैं प्रेम से तुम्हारा ऐसे जगह आवास बनाऊँगा, जहाँ बादल पहुँच ही नहीं सकते । मेघ तो सदैव वर्षा में भी हिमालय पर्वत के नितम्ब (कूल्हे) तक ही विचरण करते हैं । (दुष्ट जन तो नितम्ब सौन्दर्य के ही लोलुप होते हैं । मैं तुझे उसके ऊपर हृदय में बसाऊँगा ।) ॥२३-२४॥

कैलासस्य तथा देवी यावदामेखलं घनाः ।
सञ्चरन्ति न गच्छन्ति तस्मादूर्ध्वं कदाचन ।।२५।।

उसी प्रकार कैलाश के भी कटि प्रदेश तक ही बादल संचरण करते हैं । कभी उससे ऊपर नहीं जाते ॥२५॥

सुमेरोर्वारिधेरूर्ध्वं न गच्छन्ति वलाहकाः ।
जानुमूलं समासाद्य पुष्करावर्तकादयः ।।२६।।

सुमेरु पर्वत के ऊर्ध्व भाग में भी पुष्कर तथा आवर्तकादि बादल ऊपर नहीं जाते । ये घुटने तक ही रहते हैं ॥२६॥

एतेषु च गिरीन्द्रेषु यस्योपरि तवेहते ।
मनः प्रिये निवासाय तमाचक्ष्व द्रुतं मयि ।।२७।।

हे प्रिये ! इन उपर्युक्त पर्वतों में से जिस किसी पर भी तुम्हारा रहने का मन चाहे, मुझे शीघ्र बताओ ॥२७॥

स्वेच्छाविहारैस्तव कौतुकानि
सुवर्णपक्षानिलवृन्दवृन्दैः ।
शकुन्तवर्गैर्मधुरस्वनैस्ते
सदोपदेयानि गिरौ हिमोत्थे ।।२८।।

वायुवृन्द से चञ्चल, सुवर्णपक्षों से युक्त, अपनी इच्छा से विचरते पक्षीगण अपनी मधुर ध्वनि से हिमालय पर्वत पर तुम्हारे लिए कौतुक हेतु सदैव उपयोगी रहेंगे ॥२८॥

सिद्धांगनास्ते सखितां सनातनी-
मिच्छन्त्य एवोपकृतिं सकौतुकाम् ।
स्वेच्छाविहारैर्मणिकुट्टिमे गिरौ
कुर्वन्त्य एष्यन्ति फलादिदानकैः ॥२९॥

सिद्धों की पत्नियाँ उत्सुकतावश हिमालय के मणिमय फर्श पर इच्छानुसार विहार करती हुई, फलपुष्पादि प्रदान के द्वारा तुम्हारा उपकार कर तुम्हारे प्रति निरन्तर सखीभाव की लालसा रखेंगी ॥२८॥

या देवकन्या गिरिकन्यकाश्च
या नागकन्याश्चतुरङ्गमुख्यः ।
सर्वास्तु तास्ते सततं सहायतां
समाचरिष्यन्त्यनुमोदविभ्रमैः ॥३०॥

रंग कर्म में श्रेष्ठ जो भी देव कन्यायें, पर्वत कन्यायें तथा नाग कन्यायें हैं वे सभी तुम्हारे अनुमोदन में विभ्रम (यौवनवस्था के अनुराग युक्त) होकर तुम्हारी सदैव सहायता करेंगी ॥३०॥

रूपं तवेदमतुलं वदनं सुचारु
दृष्टवाङ्गना निजवपुर्निजकान्तिसङ्घम् ।
हेलां निजे वपुषि रूपगुणेषु नित्यं
कर्तार इत्यनिमिषेक्षणचारुरूपाः ॥३१॥

वे सुन्दर रूप वाली स्त्रियाँ तुम्हारे इस अतुलनीय रूप तथा सुन्दर मुख को अपलक देखती हुई नित्य अपने शरीर की रूप, गुण, कान्ति की दृष्टि से अपनी अवहेलना करेंगी ॥३१॥

या मेनका पर्वतराजजाया
रूपैर्गुणैः ख्यातवती त्रिलोके ।
सा चापि ते तत्र मनोनुमोदं
नित्यं करिष्यत्यथ सूचनाद्यैः ॥३२॥

जो पर्वतराज हिमालय की पत्नी मेनका हैं वे अपने रूप और गुणों के लिए तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं। वे भी नित्य सूचनादि के माध्यम से तुम्हारा वहाँ मनोविनोद करेंगी ॥३२॥

पुरन्ध्रिवर्गैर्गिरिराजवन्द्यैः
प्रीतिं वितन्वद्भिरुदाररूपाम् ।

शिक्षा सदा ते स्वकुलोचितापि
कार्याम्यहं प्रीतियुता गुणौघैः ।।३३।।

गिरिराज से वन्दित स्त्री वृन्दों से प्रेम प्रकट की जाती हुई, उदार रूप वाली तुम्हें मैं वहीं सदैव अपने कुल के अनुरूप गुणों द्वारा प्रेमपूर्वक शिक्षा प्रदान कराऊँगा ।।३३।।

विचित्रकोकिलालापमोदकुञ्जगणावृतम् ।
सदा वसन्तप्रभवं गन्तुमिच्छसि किं प्रिये ।।३४।।

हे प्रिये ! क्या तुम विचित्र कोकिल ध्वनि से आनन्दित कुञ्जों से घिरे हुए सदैव वसन्त के प्रभाव से युक्त उस स्थान पर जाना चाहोगी? ।।३४।।

सर्वकामप्रदैर्वृक्षैः शाद्वलैः कल्प - संज्ञकैः ।
सञ्छन्नं यस्य कुसुमान्युपयोक्ष्यसि तत्र वै ।।३५।।

वह सभी कामना प्रदायक कल्पवृक्ष नामक वृक्षों एवं हरी घासों से घिरा हुआ है, वहाँ तुम उसके पुष्पों का उपयोग कर सकोगी ।।३५।।

प्रशान्तश्वापदगणं मुनिभिर्यतिभिर्वृतम् ।
देवालयं महाभागे नानामृगगणैर्वृतम् ।।३६।।
स्फटिकस्वर्णवप्राद्यैः राजतैश्च विराजितम् ।
मानसादिसरोवर्गैरभितः परिशोभितम् ।।३७।।

हे महाभागे ! वहाँ शान्त, अहिंसक पशुओं, मुनियों एवं योगियों तथा अनेक मृगसमूहों से घिरा, स्फटिक और सोने चाँदी की चहारदीवारी से सुशोभित, मानसादि सरोवरों से घिरे होने के कारण विशेषरूप से सुसज्जित देवालय होगा ।।३६-३७।।

हिरण्मयैः रत्ननालैः पङ्कजैर्मुकुलैर्वृतम् ।
शिशुमारैस्तथा शङ्खैः कच्छपैर्मकरैर्झषैः ।
निषेवितैमंजुलैश्च तथानीलोत्पलादिभिः ।।३८।।
देवीशतस्नानसक्तसर्वगन्धैश्च कुंकुमैः ।
विचित्रस्रग्गन्धजलैरापूर्णैः स्वच्छकान्तिभिः ।।३९।।

जो खिले हुए स्वर्णमय रत्न-नालों वाले कमलों से भरे, शिशुमार (सूइंस), कच्छप, मकर, शंख तथा मछलियों से उपयोग में लाए, सुन्दर नीले कमलों से युक्त, सैकड़ों देवियों के स्नान के कारण चन्दन कुंकुमादि के विचित्र चन्दन मालादि से सुगन्धित स्वच्छ आभा वाले जलों से भरे हुये हैं ।।३८-३९।।

शाद्वलैस्तरुभिस्तुंगैस्तीरस्थैरुपशोभितैः ।
नृत्यद्भिरिव शाखौघैर्व्यजयन्तं स्वसम्भवम् ।।४०।।

वे अपने तट पर स्थित हरी घासों तथा ऊँचे वृक्षों से जिनकी स्वयम् उत्पन्न शाखायें नाचते हुए हवा कर रही थीं, से सुशोभित थे ।।४०।।

कादम्बैः सारसैर्मत्त - चक्रांगग्रामशोभितैः ।
मधुराराविभिर्मोदकारिभिर्भ्रमरादिभिः ।।४१।।

वे सरोवर, कलहंस, सारस, मत्त चक्रवाकों के समूह, तथा मधुर ध्वनि द्वारा आनन्दित करते भ्रमरों से सुशोभित हैं ।।४१।।

वासवस्य कुबेरस्य यमस्य वरुणस्य च ।
अग्नेः कौणपराजस्य मारुतस्य हरस्य च ।।४२।।
पुरीभिः शोभिशिखरं मेरुमुच्चैः सुरालयम् ।
रम्भाशचीमेनकादिरम्भोरुगणसेवितम् ।।
किंत्वमिच्छसि सर्वेषां सारभूतं महागिरिम् ।।४३।।

क्या तुम इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, कौणपराज (निर्ऋति), वायु, ईशानादिलोकपालों की पुरियों से घिरे हुए ऊँचे शिखरों से युक्त, रम्भा, शची, मेनका आदि सुन्दरियों के समूह से सेवित देवताओं के निवास-स्थान, सबके सारभूत मेरु नामक महागिरि को अपने आवास के रूप में चाहती हो ? ।।४२-४३।।

तत्र देवीशतयुता साप्सरोगण - सेविता ।
नित्यं चरिष्यति शची तव योग्यां सहायताम् ।।४४।।

वहाँ सैकड़ों देवियों तथा अप्सरागणों से सेवित देवी शची (इन्द्राणी) नित्य तुम्हारी उचित सहायता करेंगी ।।४४।।

अथवा मम कैलासमचलेन्द्रं सदाश्रयम् ।
स्थानमिच्छसि वित्तेशपुरीपरिविराजितम् ।।४५।।

अथवा वित्तेश कुबेर की अलकापुरी के समीप विराजमान, मेरे उत्तम आश्रय स्थान, कैलाश पर्वत को अपना वास-स्थान बनाना चाहती हो? ।।४५।।

गङ्गाजलौघप्रयतं पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।
दरीषु सानुषु सदा यक्षकन्याभिरीहितम् ।।४६।।

वह गंगा के जल समूह से पवित्र किया हुआ तथा पूर्ण चन्द्रमा के समान श्वेतआभा वाला है, उसकी गुफाओं पें और चोटियों पर सदैव यक्ष-कन्याएँ कामनाएँ (इच्छानुसार विहार) करती हैं ।।४६।।

नानामृगगणैर्जुष्टं पद्माकरशतावृतम् ।
सर्वैर्गुणैश्च सदृशं सुमेरोरिव सुन्दरि ।।४७।।

हे सुन्दरि ! वह अनेक मृग गणों से युक्त है, सैकड़ों कमल के सरोवरों से घिरा हुआ है । सभी गुणों में वह सुमेरु के समान ही है ।।४७।।

स्थानेष्वेतेषु यत्रास्ति तवान्तःकरणस्पृहा ।
तद्द्रुतं मे समाचक्ष्व वासं कर्तास्मि तत्र ते ।।४८।।

इन उपर्युक्त स्थानों में जहाँ तुम्हारे अन्तःकरण की लालसा हो, वह मुझे शीघ्र बताओ। मैं तुम्हारा आवास वहीं कर दूँगा ॥४८॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इतीरिते शङ्करेण तदा दाक्षायणी शनैः ।
इदमाह महादेवं श्लक्ष्णं स्वेच्छाप्रकाशकम् ।।४९।।

मार्कण्डेय बोले– तब दाक्षायणी ने शंकर द्वारा यह कहे जाने पर मुस्कुराते हुए धीरे से अपनी इच्छा प्रकट करते हुए महादेव से यह कहा ॥४९॥

।। सत्युवाच ।।

हिमाद्रावेव वसतिमहमिच्छे त्वया सह ।
नचिरात् कुरुवासं त्वं तस्मिन्नेव महागिरौ ।।५०।।

सती बोलीं– मैं आपके साथ हिमालय पर्वत पर निवास करने की इच्छा रखती हूँ। इसलिए शीघ्र ही उसी महान पर्वत पर वास कीजिए, आवास बनाइये ॥५०॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य हरः परममोदितः ।
हिमाद्रिशिखरं तुङ्गं दाक्षायण्या समं ययौ ।।५१।।
सिद्धाङ्गनागणैर्युक्तमगम्यं मेघपक्षिभिः ।
जगाम शिखरं तुङ्गं मरीचवनराजितम् ।।५२।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे हिमाद्रिनिवास-गमनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

मार्कण्डेय बोले– इसके बाद उनके वचन को सुनकर शिव परम प्रसन्न हुए तथा दाक्षायणी के साथ सिद्धजनों की स्त्रियों से युक्त, मेघ और पक्षियों से भी अगम्य, सूर्य किरणों से सुशोभित हिमालय पर्वत के उच्च शिखर पर चले गये ॥५१-५२॥

।। श्रीकालिका पुराण में हिमालय-निवास गमन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।



षोडशोऽध्यायः

सतीदेहत्यागवर्णनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

विचित्रं कनकैरूप्यैः शिखरं रत्नकर्बुरम् ।
बालार्कसदृशं तुङ्गमाससाद सतीसखः ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– सोने चाँदी से बने अद्भुत रत्नों से चित्रित, उदयकालीन सूर्य की आभावाले, विचित्र किन्तु ऊँचे शिखर पर सती के साथ भगवान शिव पहुँच गये ।।१।।

स्फटिकाश्मालये तस्मिन् फ़शाद्वलद्रुमराजिते ।
विचित्रपुष्पवल्लीभिः सरसीभिश्च संयुते ।
प्रफुल्लतरुशाखाग्रगुञ्जद्भ्रमरभूषिते ।।२।।

वह स्फटिक पत्थर का बना, हरी घास तथा हरे-भरे वृक्षों से सुशोभित, आकर्षक पुष्प लताओं तथा गुञ्जार करते हुए भौरों के गुञ्जार से जिनके अगले हिस्से (पुष्प) सुशोभित हो रहे थे, ऐसे वृक्षों और सरोवरों से युक्त था ।।२।।

पंकेरुहैः प्रफुल्लैश्च नीलोत्पलचयैस्तथा ।
शोभिते चक्रवाकौघैः कादम्बैर्हंसमद्गुभिः ।।३।।
प्रमत्तसारसैः क्रौञ्चैनीलकण्ठैश्च शब्दिते ।
पुंस्कोकिलकलस्वनैर्मधुरैर्मृगसेविते ।।४।।

वहाँ के सरोवर खिले हुये नीलकमल एवं कमलों के समूह से सुशोभित तथा चक्रवाकों, कल हंस और हंसों की वाणी तथा विशेष रूप से आनन्द विभोर सारस, क्रौञ्च और नीलकण्ठों के शब्दों से शब्दायमान हो रहे थे। वह स्थान नर कोयलों के कलरव की मधुर ध्वनि एवं अनेक पशुओं से सेवित था ।।३-४।।

तुरङ्गवदनैः सिद्धैरप्सरोभिः सगुह्यकैः ।
विद्याधरीभिर्देवीभिः किन्नरीभिर्विहारिते ।
पुरन्ध्रीभिः पार्वतीभिः कन्याभिश्च समन्विते ।।५।।

वह घोड़े के समान मुख वाले (गन्धर्वों), सिद्धजनों, गुह्यकों, अप्सराओं, विद्याधरियों, देवियों (देव पत्नियों), पहाड़ी विवाहिता स्त्रियों और कन्याओं से समन्वित था ।।५।।

विपञ्चीतन्त्रिकामन्द्र - मृदङ्गपटहस्वनैः ।
नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च कौतुकोत्थैः सुशोभिते ।।६।।

वह वीणा के तारों की मन्द्र तथा मृदंग और नगाड़ों की ध्वनियों एवं कौतुक पूर्ण नाचती हुई अप्सराओं से सुशोभित था ।।६।।

दैवीलताभिर्दिव्याभिर्गन्धिनीभिः समावृते ।
ऊर्द्धप्रफुल्लकुसुमैर्निकुञ्जैरुपशोभिते ।।७।।

दिव्यगन्धों से सुगन्धित दैवी लताओं से घिरा हुआ था और ऐसे कुञ्जों से शोभायमान था, जिनके ऊपरी भाग पर खिले हुये फूल विराजमान थे ।।७।।

शैलराजपुराभ्यासे शिखरे वृषभध्वजः ।
सह सत्या चिरं रेमे एवम्भूते सुशोभने ।।८।।

इस प्रकार के (उपर्युक्त) वर्णित हिमालय के सुन्दर शिखर पर वृषभध्वज शिव ने बहुत सगय तक सती के साथ रमण किया ।।८।।

तस्मिन् स्वर्गसमे स्थाने दिव्यमानेन शङ्करः ।
दश - वर्षसहस्राणि रेमे सत्या समं मुदा ।।९।।

उस स्वर्ग के समान सुन्दर स्थान पर शङ्कर ने प्रसन्नतापूर्वक सती देवी के साथ देवताओं के मान से दश हजार वर्ष (३६ लाख मानव वर्षों) तक रमण किया ।।९।।

स कदाचित्तु तत्स्थानात् कैलासं याति शङ्करः ।
कदाचिन्मेरुशिखरं देवदेवीवृतं पुरा ।।१०।।
दिक्पालानां तथोद्यानं वनानि वसुधातलम् ।
गत्वा गत्वा पुनस्तत्र रेमे तेभ्यः सतीसखः ।।११।।

वह सती-सखा शंकर उस स्थान से कभी कैलाश पर जाते तो कभी देवी-देवताओं से पहले से ही घिरे हुए मेरु पर्वत के शिखर पर चले जाते थे। दिक्पालों के नन्दनादि उद्यानों तथा पृथ्वी के अनेक वनों में जा-जाकर वह वहाँ स्थित देवी-देवताओं के बीच सती के साथ बार-बार रमण करते रहे ।।१०-११।।

न जज्ञौ स दिवारात्रं न ब्रह्म न तपः शमम् ।
सत्याहितमनाः शम्भुः प्रीतिमेव चकार ह ।।१२।।

इस अवधि में शिव ने रात-दिन, न ब्रह्मतत्त्व को जाना, न तपस्या को जाना और न शम वृत्ति को ही जाना। वे सती में ही मन लगाये हुये प्रेम व्यापार करते रहे ।।१२।।

एकं महादेवमुखं सती पश्यति सर्वशः ।
महादेवोऽपि सर्वत्र सदाद्राक्षीत् सतीमुखम् ।।१३।।

उस समय सब ओर से सती केवल शंकर का मुख देखती थीं, तो महादेव भी सब जगह और सदा सती का ही मुख देखते रहते थे ।।१३।।

एवमन्योन्यसंसर्गादनुरागमहीरुहम् ।
वर्धयामासतुः शम्भुसत्यौ भावाम्बुसेचनैः ।।१४।।

इस प्रकार से भावनाओं के जल की सिंचाई से शिव और सती का प्रेमरूपी वृक्ष एक-दूसरे के परस्पर संसर्ग से बढ़ता ही गया ।।१४।।

एतस्मिन्नन्तरे दक्षो जगतां हितकारकः ।
महायज्ञं समारेभे यष्टुं वै सर्वजीवनम् ।।१५।।

इसी बीच दक्ष प्रजापति ने संसार के हित के लिए और सब के जीवन-धन परमात्मा की आराधना के लिए एक महान यज्ञ आरम्भ किया ।।१५।।

अष्टाशीति-सहस्राणि यत्र जुह्वति ऋत्विजः ।
उद्गातारश्चतुःषष्टिसहस्राणि सुरर्षयः ।
अध्वर्यवोऽथ होतारस्तावन्तो नारदादयः ।।१६।।

जहाँ (उस यज्ञ में) अट्ठासी हजार ऋषिगण ऋत्विज के रूप में हवन कर रहे थे तथा चौसठ हजार उद्गाता और इतनी ही संख्या में नारदादि देवर्षि अध्वर्यु एवं होता बने थे ।।१६।।

अधिष्ठाता स्वयं विष्णुः सह सर्वमरुद्गणैः ।
स्वयं तत्राभवद् ब्रह्मा त्रयीविधिनिदर्शकः ।।१७।।

स्वयं विष्णु सभी मरुद्गणों के साथ उस यज्ञ के अधिष्ठाता और ब्रह्मा स्वयं वहाँ वेदत्रयी के अनुसार विधि निर्देश कर्ता ब्रह्मा नामक ऋत्विक हुये थे ।।१७।।

तथैव सर्वदिक्पाला द्वारपालाश्च रक्षकाः ।
उपतस्थे स्वयं यज्ञः स्वयं वेदी धराभवत् ।।१८।।

उसी प्रकार स्वेच्छा से ही सभी दिक्पालों ने उस यज्ञ की रक्षा हेतु द्वारपालों की भूमिका निभाई थी। स्वयं यज्ञ वहाँ साक्षात् उपस्थित हुये तथा पृथ्वी ही यज्ञ वेदी बनी थी ।।१८।।

तनूनपादपि निजं चक्रे रूपं सहस्रशः ।
हविषां ग्रहणायाशु तस्मिन् यज्ञमहोत्सवे ।।१९।।

उस यज्ञ महोत्सव में अग्निदेव शीघ्र ही हविष्य ग्रहण की लालसा से अपने हजारों रूप धारण किये हुये थे ।।१९।।

आमन्त्र्याशु मरीच्याद्याः पवित्रैकैकधारिणः ।
सर्वत्र सामिधेन्या ते ज्वालयामासुरर्च्चिषम् ।।२०।।
सप्तर्षयः सामगाथा कुर्वन्ति स्म पृथक् पृथक् ।
गान्दिशो विदिशः खञ्च पूरयन्तः श्रुतिस्वरैः ।।२१।।

उस समय पवित्रीधारी, समिधायुक्त मरीचि आदि सप्तर्षियों ने अलग-अलग सामगान करते हुए तथा पृथ्वी, आकाश, दिशाओं और विदिशाओं को वेद मन्त्रों से पूरित करते हुये सब जगह अग्नि को प्रज्वलित किया था ॥२०-२१॥

न वृतास्तत्र यागेषु दक्षेण सुमहात्मना ।
न केचिदृषयो देवा न मनुष्या न पक्षिणः ।
नोद्भिदो न तृणं वापि पशवो न मृगास्तथा ॥२२॥
गन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघा-
नादित्यसाध्यर्षिगणान् सयक्षान् ।
सस्थावरान्नागवरान् समस्तान्
वव्रे स दक्षः सुमहाध्वरेषु ॥२३॥

उस यज्ञ में कोई ऐसा ऋषि, देवता, मनुष्य, पक्षी, वृक्ष, तृण, पशु, मृग, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध, साध्य, आदित्य, यक्ष नहीं था जिसको महात्मा दक्ष ने वरण न किया हो। पर्वतादि स्थावरों के सहित दक्ष ने उस महान यज्ञ में सभी श्रेष्ठ नागों का भी वरण किया था ॥२२-२३॥

कल्प - मन्वन्तरयुग - वर्ष - मास-दिवा- निशाः ।
कला-काष्ठानिमेषाद्या वृतां: सर्वे समागताः ॥२४॥

कल्प, मन्वन्तर, युग, वर्ष, मास, दिन, रात्रि, कला, काष्ठा आदि कालमान वरण किये जाने के कारण सशरीर उस यज्ञ में उपस्थित हुये थे ॥२४॥

महर्षिराजर्षिसुरर्षिसङ्घा
नृपाः सपुत्राः सचिवैः ससैन्यैः ।
वसुप्रमुख्या गणदेवता याः
सर्वा वृतास्तेन गता मखं तम् ॥२५॥

उस यज्ञ में महर्षियों, राजर्षियों तथा देवर्षियों के समूह, अपने पुत्र, सचिव, सेना के सहित राजागण और वसु आदि गण देवता, सभी आमन्त्रित हो पधारे थे ॥२५॥

कीटाः पतङ्गा जलजाश्च सर्वे
सवानराः श्वापदविघ्नघोराः ।
मेघाः सशैलाः सनदीसमुद्राः
सरांसि वाप्यश्चागता वृतास्ते ॥२६॥

सभी कीट-पतङ्गें, जलचर, वानरों के सहित घोर बाधा पहुँचाने वाले जङ्गली जानवर, पर्वतों के सहित बादल, नदियों के सहित समुद्र, सरोवर एवं वापियाँ आमन्त्रित हो सशरीर आई थीं ॥२६॥

सर्वे स्वभागं हविषां जिघृक्षवः ।
क्रतुं प्रजग्मुर्दृढयज्विनस्ते ।
पातालवासा असुराः समागता
नागस्त्रियो देवसभाः समस्ताः ।।२७।।

वे सभी अपने-अपने अंश का हविष्य ग्रहण करने की इच्छा से दृढ़तापूर्वक यज्ञ में गये थे । उसमें पातालवासी असुर, नाग-स्त्रियाँ तथा समस्त देवसभाओं के सदस्य भी पधारे थे ।।२७।।

जगद्वर्त्यस्ति यत् किञ्चिच्चेतनाचेतनं पुनः ।
सर्वं वृत्वा समारेभे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम् ।।२८।।

पुनः (और क्या कहा जाय?) संसार में जो कुछ भी चेतन या अचेतन था, सभी को आमन्त्रित कर, सर्वस्व दक्षिणा रूप में दिये जाने वाले उस महायज्ञ का दक्ष प्रजापति ने आरम्भ किया ।।२८।।

तस्मिन् यज्ञे वृतः शम्भुर्न दक्षेण महात्मना ।
कपालीति विनिश्चित्य तस्य यज्ञार्हता न हि ।।२९।।

शिव कपाल धारण करने वाले हैं अतः यज्ञ में आमन्त्रित करने योग्य नहीं हैं। इसी विचार से महात्मा दक्ष ने उस यज्ञ में शिव को आमन्त्रित नहीं किया ।।२९।।

कपालिभार्येति सती दयितापि सुता निजा ।
नाहूता यज्ञविषये दक्षेण दोषदर्शिना ।।३०।।

यज्ञ के सम्बन्ध में दोष दृष्टि रखने वाले दक्ष ने कपाली (शिव) की प्रिय पत्नी होने के कारण अपनी पुत्री सती को भी उस यज्ञ में नहीं बुलाया[1] ।।३०।।

श्रुत्वा सती तथा यज्ञं तातेनारब्धमुत्तमम् ।
कपालिभार्येति वृता नाहमित्यपि तत्त्वतः ।।३१।।
उच्चैश्चुकोप दक्षाय रक्तनेत्रानना तदा ।
शापेन दक्षं दग्धुं च मनश्चक्रे तदा सती ।।३२।।

जब सती ने पिता द्वारा आरम्भ किये गये उस उत्तम यज्ञ का वृतान्त सुना तथा यह जाना कि कपाली (शिव) की भार्या होने के कारण मुझे भी नहीं बुलाया है तब दक्ष के प्रति सती बहुत क्रुद्ध हुईं । उस समय उनके मुख और नेत्र लाल हो गये और उन्हों ने दक्ष को शाप से जलाने का निश्चय कर लिया ।।३१-३२।।

कोपाविष्टापि सा पूर्वसमयं स्मृतवत्यमुम् ।
मनसेति विनिश्चित्य न शशाप तदा सती ।।३३।।

---

१. कापालिकों के प्रति द्वेष द्रष्टव्य है ।

क्रोध से भरी हुई उस देवी सती ने पहले के वचन का स्मरण करके, मन से शाप देने का निश्चय करके भी उस समय शाप नहीं दिया ।।३३।।

अलं शापेन मे पूर्वं सुदृढः समयः कृतः ।
अस्तीति मय्यवज्ञायां प्राणान् मोक्ष्ये ध्रुवं पुनः ।।३४।।

जब मैंने पहले ही दृढ़ अनुबन्ध कर लिया था कि ''जब मेरी अवज्ञा होगी तो मैं अपने प्राणों को निश्चय ही छोड़ दूँगी ।'' तब अब शाप देना उचित नहीं ।।३४।।

यदा स्तुताहं दक्षेण सुचिरं तनयार्थिना ।
तदैव समयो मेऽयं शापेनालङ्करोमि तम् ।।३५।।

जब पुत्री के निमित्त दक्ष प्रजापति द्वारा बहुत समय तक मेरी स्तुति की गई थी तभी मैंने यह अनुबन्ध किया था । मैं शाप द्वारा उसे व्यर्थ नहीं करूँगी ।।३५।।

इति सञ्चिन्त्य सा देवी नित्यरूपमथात्मनः ।
सस्मारातुलमत्युग्रं निष्कलं तु जगन्मयम् ।।३६।।

ऐसा निश्चय कर उस देवी ने अपने अत्यन्त उग्र, अतुलनीय, जगन्मय, अखण्ड, नित्यस्वरूप का स्मरण किया ।।३६।।

पूर्वरूपं स्मरन्ती सा योगनिद्राह्वयं हरेः ।
एवं संचिन्तयामास मनसा दक्षजा तदा ।।३७।।

हरि के द्वारा योगनिद्रा नाम से बोधित अपने पूर्व रूप का स्मरण करती हुई दक्ष- तनया सती देवी ने मन में यह विचार किया— ।।३७।।

ब्रह्मणोदितदक्षेण यदर्थमहमीडिता ।
तत् किञ्चिदपि नो ज्ञातं शङ्करोऽपि न पुत्रवान् ।।३८।।

ब्रह्मा द्वारा कहे जाने पर दक्ष प्रजापति द्वारा मैं जिस हेतु पूजी गई थी वह कुछ भी नहीं ज्ञात हुआ, तथा शंकर भी पुत्रवान नहीं हुये ।।३८।।

इदानीमेकमेवाभूत् कार्यं देवगणस्य च ।
यच्छंकरः सानुरागो मत्कृतेऽभूच्च योषिति ।।३९।।

इस समय तक देवताओं का मात्र एक कार्य यही हुआ है कि भगवान् शङ्कर मेरे प्रयत्नों से स्त्री के प्रति अनुराग युक्त हो गये हैं ।।३९।।

मत्तो नान्या पुनः शम्भो रागं वर्धयितुं पुनः ।
शक्ता न कापि भविता स नान्यां संग्रहीष्यति ।।४०।।

मेरे अतिरिक्त दूसरी स्त्री पुनः शिव का अनुराग बढ़ाने में समर्थ नहीं होगी और न वे ही किसी दूसरी स्त्री के संग्रहकर्ता होंगे ।।४०।।

तथाप्यहं तनुं त्यक्षे समयात् पूर्वयोजितात् ।
हिताय जगतां कुर्यां प्रादुर्भावं पुनर्गिरौ ।।४१।।

तथापि मैं अपने पूर्व योजित समय (अनुबन्ध) के अनुसार शरीर का त्याग करूँगी एवं संसार के कल्याण के लिए पर्वतराज हिमालय के यहाँ पुनः उत्पन्न होऊँगी ॥४१॥

पुरा हिमवतः प्रस्थे रम्ये देवगृहोपमे ।
शम्भुः सार्धं मया रन्तुं सुचिरं प्रीतिसंयुतः ॥४२॥
तत्र या मेनका देवी चार्वङ्गी चरितव्रता ।
सुशीला सा पुरस्त्रीणामुत्तमा पार्वतीगणे ॥४३॥
सा मां मातृवदाचष्ट सर्वकर्मसु नर्मकम् ।
तस्यां मेऽत्यनुरागोऽभूत् सा मे माता भविष्यति ॥४४॥

पहले जब देवगृह (सुमेरु) के समान हिमालय के सुन्दर शिखर पर मेरे साथ प्रेमपूर्वक लम्बे समय तक शिव ने रमण किया था। उस समय मेनका नाम की सुन्दर- अंग, चरित्र तथा नियमोंवाली, सुशील स्वभाव वाली, नागर और पर्वतीय स्त्रियों में उत्तम देवी ने सभी रहस्यमय कार्यों में मेरे साथ मातृवत् व्यवहार किया था। उनमें मेरा बहुत ही अनुराग हो गया है। वे ही अब मेरी माता होंगी ॥४२-४४॥

कन्याभिः पार्वतीभिश्च बाल्यक्रीडामहं चिरम् ।
कृत्वा कृत्वा मेनकायाः करिष्ये मोदमुत्तमम् ॥४५॥

मैं भी पर्वतीय कन्याओं के साथ बहुत समय तक बार-बार बालक्रीड़ा करके मेनका को भलीभाँति प्रसन्न करूँगी ॥४५॥

पुनश्चाहं भविष्यामि शम्भोर्जायातिवल्लभा ।
करिष्ये देवकार्याणि तदुपायादसंशयम् ॥४६॥

फिर मैं शम्भु की अति प्रिय पत्नी होऊँगी तथा उस उपाय से देवताओं का कार्य सम्पादन करूँगी। इसमें कोई संशय नहीं है ॥४६॥

इति संचिन्तयन्ती सा पुनः कोपसमावृता ।
जज्वाल दक्षतनया दक्षदारुणकर्मणा ॥४७॥
क्रोधरक्तेक्षणा तत्र तनुयष्टिस्तदा सती ।
स्फोटश्चकार द्वाराणि सर्वाण्यावृत्य योगतः ॥४८॥

ऐसा विचार करते हुये वे (सती देवी) पुनः क्रोध से भर गयीं। दक्ष के दारुण कर्म के कारण क्रोध से दक्ष पुत्री सती जल उठीं। उस समय क्रोध से उनकी आँखें लाल हो गईं। उन्होंने योग द्वारा अपने शरीर के सभी नव द्वारों को बन्द कर विस्फोट किया ॥४७-४८॥

तेन स्फोटेन महता तस्यास्तु प्राणवायवः ।
निर्भिद्य दशमद्वारमात्मनस्ते बहिर्ययुः ॥४९॥

उस महान् विस्फोट के कारण उनकी प्राण वायु शरीर के दसँवें द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) को भेद कर अपने आप बाहर निकल गयी[१] ॥४९॥

---

१. योग की एक विद्या, जिसमें योगी समस्त द्वारों को बन्द कर दसवें द्वार से प्राण (धनंजय वायु) को स्वयं निकालता है।

त्यक्तप्राणान्तु तां दृष्ट्वा देवाः सर्वेऽन्तरिक्षगाः ।
हाहाकारं तदा चक्रुः शोकव्याकुलितेक्षणाः ।।५०।।

तब उस प्राण छोड़ी हुई सती को देखकर अन्तरिक्ष में स्थित सभी देवता शोक से व्याकुल नेत्रों से युक्त हो हाहाकार करने लगे ।।५०।।

ततस्तु सत्या भगिनीसुता तां द्रष्टुमागता ।
चुक्रोश शोकाद्विजया मृतां दृष्ट्वा सतीं मुहुः ।।५१।।

तब सती के बहन की पुत्री (विजया) उसे देखने वहाँ आई । सती को मरा हुआ देखकर विजया ने बार-बार शोक व्यक्त किया— ।।५१।।

हा सती क्व गतासीति हा सती तव किन्विदम् ।
हा मातृष्वसरित्युच्चैस्तदा शब्दो महानभूत् ।।५२।।

उसके द्वारा हा सती ! तू कहाँ चली गई ? हा मातृस्वसा (मौसी) ये तुम्हारा क्या हो गया ? ऐसे महान शब्द उच्च स्वर से होने लगे ।।५२।।

विप्रियश्रवणादेव प्राणांस्त्यक्तास्त्वया सति ।
अहं कथन्तु जीवामि दृष्ट्वेदृग्विप्रियं दृढम् ।।५३।।

अप्रिय बात को सुनते ही तुम्हारे द्वारा प्राण छोड़ दिये गये हैं । फिर मैं नेत्रों को अत्यधिक अप्रिय लगने वाले इस दृश्य को देखकर कैसे जीवित रहूँगी ? ।।५३।।

पाणिना वदनं सत्या मार्जयन्ती मुहुर्मुहुः ।
करुणं विलपन्ती स्म मुखं जिघ्रति सा तदा ।।५४।।

तब वह बारम्बार हाथ से सती के मुख को पोंछती तथा करुण विलाप करती हुई उनके मुख को सूँघने लगी ।।५४।।

सिञ्चन्ती नेत्रजैस्तोयैः सत्याः सा हृदयं मुखम् ।
केशानुल्लास्य पाणिभ्यां वीक्षन्ती वदनं मुहुः ।।५५।।

वह विजया नेत्रों से उत्पन्न जल (आँसुओं) से सती के हृदय एवं मुख का सिञ्चन करती, हाथों से केशों को उठाकर बार-बार उनके मुख को देखती थी ।।५५।।

ऊर्द्ध्वाधःकम्पितशिरः शोकव्याकुलितेन्द्रिया ।
हृदयं पञ्चशाखाभ्यां विनिहन्ती तथा शिरः ।
इदं च वचनं साश्रुकण्ठा सा विजयाब्रवीत् ।।५६।।

शोक से व्याकुलित इन्द्रियों से तथा शिर को ऊपर नीचे कपाँते (उठा-उठा कर पटकते) हुए और हृदय एवं मस्तक को हाथों से पीटते हुए उस विजया ने अश्रु से युक्त कण्ठ से ये वचन कहे— ।।५६।।

विजया-विलाप

।। विजयोवाच ।।

श्रुत्वा ते मरणं माता वीरिणी शोककर्षिता ।
धारयन्ती कथं प्राणान् सद्यस्त्यक्ष्यति जीवितम् ।।५७।।

विजया बोली–तुम्हारा मरण सुनकर शोकाभिभूत माता वीरिणी कैसे अपने प्राणों को धारण करेंगी ? वे तो शीघ्र अपना प्राण छोड़ देंगी ।।५७।।

स तथा निरनुक्रोशः क्रूरकर्मा पिता तव ।
प्रमृतां भवतीं श्रुत्वा कथं धास्यति जीवितम् ।।५८।।

क्रूरकर्मा तुम्हारे पिता, आक्रोशरहित होने पर तुम्हें मरा हुआ सुनकर, कैसे अपना जीवन धारण करेंगे ? ।।५८।।

विचिन्त्य नूनं कर्माणि स्वीयानि भवतीं प्रति ।
कृतानि स नृशंसानि दक्षः शोकाकुलस्तदा ।।५९।।
यज्वा स च ज्ञानहीनः कथं यज्ञे प्रवर्तते ।
निःश्रद्धस्त्यक्तबुद्धिश्च कथं वा स भवेत् क्रतौ ।।६०।।

तब दक्ष आपके प्रति किये गये अपने क्रूर कर्मों को सोचकर शोकाकुल हो जाएँगे। वे ज्ञान (चेतना) हीन हो यज्ञ करते हुए कैसे यज्ञ में प्रवृत्त होंगे ? श्रद्धा के बिना, बुद्धि के अभाव में वह यज्ञ कैसे सम्पन्न होगा ? ।।५९-६०।।

हा मातर्देहि वचनं रुदन्त्या बालवन्मम ।
भवत्या निर्दया शोकाद्ध्रिये शल्यसमानसून् ।।६१।।

हा माता ! बच्चे की भाँति रोती हुई मुझे वचन (प्रत्युत्तर) दीजिये; क्योंकि आप दयाहीन अवस्था को प्राप्त हैं और मैं शोकवश अपने प्राणों को काँटों की भाँति धारण कर रही हूँ ।।६१।।

त्वं किं स्मरसि मे शम्भोर्विहितस्य कदाचन ।
तेनामर्षवशं प्राप्ता मातर्मा किन्न भाषसे ।।६२।।

या हे माता ! आप शिव के कभी कहे वचनों का स्मरण कर उन्हीं के आवेश में इस अवस्था को प्राप्त हुई हैं? आप मुझसे क्यों नहीं बताती? ।। ६२।।

तदेव वचनं चक्षुर्मुखं सा नासिका तव ।
एतेषां क्व गताः सर्वे विभ्रमा हसितं क्व च ।।६३।।

वही आपकी वाणी, नेत्र और मुख तथा नासिका थीं। ये सब कहाँ चले गये ? और वह चंचल हंसी कहाँ चली गई ? ।।६३।।

ननु ते विभ्रमैर्हीनं नेत्रयुग्मं सुनासिकम् ।
स्मितहीनं च वदनं दृष्ट्वा सोढा कथं हरः ।।६४।।

निश्चय ही आपके इन चंचलतारहित नेत्रद्वय तथा सुन्दर नासिका और मुसुकानरहित मुख देख कर शिव कैसे सहेंगे ? ।।६४।।

का सुधासम्मितं वाक्यं हराश्रमसमागतान् ।
सुनृतं त्वामृते मातर्वदिष्यति मुहुर्मुहुः ।।६५।।

हे माता ! आपके बिना अब कौन शिव के आश्रम (आवास) पर आने वालों से बार बार अमृतयुक्त सुन्दर सत्य वचन बोलेगा ? ।।६५।।

श्रद्धावती बान्धवेषु पत्युर्भावविवशानुगा ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णा त्वत्समा का भविष्यति ।।६६।।

पति के बन्धुजनों के प्रति श्रद्धायुक्त, पति की भावपूर्ण अनुगमन करने वाली, सभी लक्षणों से युक्त आपके समान कौन होंगी ? ।।६६।।

त्वदृते देवि देवेशः शोकोपहतचेतनः ।
दुःखितात्मा निरुत्साहो निश्चेष्टश्च भविष्यति ।।६७।।

हे देवि ! आपके अभाव में देवेश शिव शोक से चेतना रहित, दुःखित आत्मा वाले, उत्साह और चेष्टा से हीन हो जायेंगे ।।६७।।

एवं लपन्ती भृशदुःखिता सतीं
मृतां समीक्ष्यातिशयं शुचाहता ।
पपात भूमौ विजया विरावं
वितन्वती चोर्ध्वभुजा प्रवेपती ।।६८।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे सती-देह-त्यागो नाम षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

सती को मरी हुई देखकर, इस प्रकार बहुत अधिक दुःखी हो, विलाप करती हुई, अत्यधिक शोक से आहत विजया काँपती हुई बिना आवाज के दोनों भुजाओं को ऊपर की ओर फैलाये हुए भूमि पर गिर पड़ी ।।६८।।

।। श्रीकालिकापुराण में सती देहत्याग नामक सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।



सप्तदशोऽध्यायः

दक्षयज्ञध्वंसः

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एतस्मिन्नन्तरे शंभुः शोभने मानसे ह्रदे ।
समाप्य सन्ध्यामायातः स्वमाश्रमपदं प्रति ।।१।।

मार्कण्डेय बोले–इसी बीच भगवान शिव सुन्दर मानसरोवर पर सन्ध्या क्रिया सम्पन्न कर अपने आश्रम (निवास) की ओर चल पड़े ।।१।।

आगच्छन्नेव संरावं विजयायाः वृषध्वजः ।
शुश्राव दारुणं तीव्रं चकितश्च ततोऽभवत् ।।२।।

आते ही वृषभध्वज शिव ने विजया के तीव्र और भयानक कोलाहल को सुना तब वे चकित हो गये ।।२।।

तत उक्ष्णा बलवता मनोमारुतरंहसा ।
स्वमाश्रमपदं शर्व आससाद त्वरान्वितः ।।३।।

तब शिव मन और हवा के समान गति वाले बलवान वृषभ के द्वारा शीघ्रता से अपने निवास स्थान पर पहुँच गये ।।३।।

आसाद्य देवीं दयितां तदा दाक्षायणीं हरः ।
मृतां दृष्ट्वापि न जहौ मृतेऽतिप्रियभावतः ।।४।।

तब अपनी पत्नी दाक्षायणी देवी के पास पहुँचकर, उन्हें मरा हुआ देखते हुए भी अत्यन्त प्रेम के कारण उन्हें मरने पर भी नहीं छोड़ा ।।४।।

ततो निरीक्ष्य वदनमामृज्य च पुनः पुनः ।
पप्रच्छ कस्मात् सुप्तासीत्येवं दाक्षायणीं मुहुः ।।५।।

तब उनको देख, बार-बार उनके मुँह को पोछा, फिर पूछा ये दाक्षायणी क्यों सो रही हैं? ।।५।।

ततो भर्गवचः श्रुत्वा तदा तद्भगिनी सुता ।
विजया प्राह निधनं दाक्षायण्या यथा तथा ।।६।।

तब शिव के उन वचनों को सुनने के पश्चात् उस सती के बहन की पुत्री विजया ने जैसे-तैसे दाक्षायणी के निधन का समाचार कह सुनाया ।।६।।

।। विजयोवाच ।।

दक्षः कर्तुं क्रतुं शम्भो देवान् सर्वान् सवासवान् ।
आजुहाव तथा दैत्यान् राक्षसान् सिद्धगुह्यकान् ।।७।।
ब्राह्मणानथ गोविन्दमिन्द्रादीनपि दिक्पतीन् ।
देवयोनिंस्तथा सर्वान् साध्यविद्याधरादिकान् ।।८।।

विजया बोली–हे शम्भु ! दक्ष प्रजापति ने यज्ञ करने के लिये इन्द्र के सहित सभी देवताओं, राक्षसों, सिद्धों, गुह्यकों तथा ब्राह्मणों, विष्णु, इन्द्रादि दिक्पालों आदि देवयोनि तथा सभी विद्याधरादिकों को आमन्त्रित किया ।।७-८।।

नाहूतानि क्रतौ तेन यानि सत्त्वानि शङ्कर ।
तानि दक्षेण नो सन्ति समस्तभुवनेष्वपि ।।९।।

हे शङ्कर ! ऐसा समस्त भुवनों में कोई प्राणी नहीं था जो दक्ष के द्वारा यज्ञ में न बुलाया गया हो ।।९।।

एवं प्रविततं यज्ञं श्रुत्वैषा वचनान्मम ।
विमृष्यवत्यनाह्वाने हेतुं शम्भोरथात्मनः ।।१०।।

इस प्रकार के व्यापक यज्ञ के सम्बन्ध में मेरे वचनों को सुनकर अपने और शिव (आप) के न बुलाये जाने के कारण के सम्बन्ध में वे विचार करने लगीं ।।१०।।

चिन्तमानां तथाहं तां सतीं ज्ञात्वा यथाश्रुतम् ।
उक्तवत्यस्मि भूतेश यज्ञानाह्वानकारणम् ।।११।।

उस प्रकार विचार करती हुई सती के प्रति मैंने जैसा सुना था वैसा यज्ञ में न बुलाने का कारण बता दिया ।।११।।

शम्भुः कपाली तज्जाया तत् संसर्गाद्विगर्हिता ।
अतः शम्भुः सती चापि नाध्वरे मे मिलिष्यतः ।।१२।।

शिव कपाल धारण करते हैं (अतः निन्दनीय हैं)। उनकी पत्नी भी उन्हीं के संसर्ग से निन्दनीया हो गई हैं। अतः शिव तथा सती दोनों ही मेरे यज्ञ में सम्मिलित नहीं होंगे ।।१२।।

इत्यनाह्वानहेतुर्मे श्रुतपूर्वः पुरा मुखात् ।
दक्षस्य वीरिणीं श्लक्ष्णां गदतस्तस्य मन्दिरे ।।१३।।

यह न बुलाने का कारण मैंने सुन्दरी वीरिणी से कहते हुये, दक्ष के मुँह से उनके ही घर में सुना था ।।१३।।

एतच्छ्रुत्वा मम वचः सा विवर्णमुखी क्षितौ ।
उपविष्टा न मां किञ्चिदुक्त्वा कोपपरायणा ।।१४।।

मेरी यह बात सुनकर वे क्षुब्ध तथा क्रोधित हो जमीन पर बैठ गईं। उन्होंने मुझसे भी कुछ नहीं कहा ॥१४॥

बभूव वदनं तस्यास्तत्क्षणात् सरुषं हर ।
भ्रुकुटीकुटिलं श्यामं यथा खं धूमकेतुना ॥१५॥

हे हर ! उनका मुँह उसी समय क्रोधाविष्ट हो काला पड़ गया तथा भौंहे टेढ़ी पड़ गईं जैसा धूमकेतु के प्रभाव से आकाश काला पड़ जाता है ॥१५॥

सा मुहूर्तमिव ध्यात्वा स्फोटेन महता ततः ।
प्राणानुदसृजच्चैषा भित्त्वा मूर्द्धानमात्मनः ॥१६॥

उन्होंने मुहूर्त मात्र (क्षण भर) ध्यान किया फिर महान ध्वनि के साथ अपने ब्रह्मरन्ध्र को भेदकर प्राणों को त्याग दिया ॥१६॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्या विजयायाः वृषध्वजः ।
अतीव कोपादुत्तस्थौ दिधक्षुरिव पावकः ॥१७॥

मार्कण्डेय बोले– वृषभध्वज शिव विजया के उपर्युक्त वचनों को सुनकर अत्यन्त क्रोध से जलाने को उद्यत अग्नि की भाँति उठ खड़े हुये ॥१७॥

तस्य कोपपरीतस्य कर्णनासाक्षिवक्त्रतः ।
घोरा जलन्त्यः कणिकाः सृजन्त्योऽग्नेर्महारवम् ।
उल्का विनिःसृता बह्व्यः कल्पान्तादित्यवर्चसः ॥१८॥

उन क्रोधाविष्ट शिव के कान, नाक, आँख तथा मुँह से अत्यधिक ध्वनि के साथ बहुत-सी जलती हुई अग्नि की कणिकाएँ निकलने लगीं मानों कल्पान्त के समय सूर्य की किरणों से बहुत सी उल्कायें निकल रही हों ॥१८॥

॥ शिव द्वारा दक्ष यज्ञ दर्शन ॥

अथ तत्र जगामाशु दक्षो यत्र महातपाः ।
यज्ञश्चक्रे हरो गत्वा यज्ञशालाद्बहिःस्थितः ॥१९॥

तब वे वहाँ पहुँचे जहाँ महान् तपस्वी दक्ष यज्ञ कर रहे थे। शिव वहाँ जाकर यज्ञशाला के बाहर स्थित हो गये ॥१९॥

तं यज्ञं ददृशे भर्गः कोपेन महतावृतः ।
महाधनसमापन्नं पात्रयूपादिभिर्वृतम् ॥२०॥

अत्यधिक क्रोध से भरे हुये शिव ने उस दक्ष यज्ञ को देखा—जो बहुत अधिक धन, स्तम्भ, पात्र आदि से युक्त था ॥२०॥

हुताज्याहुतिसंवृद्धं दीप्तवह्निविराजितम् ।
यथास्थानस्थितान् सर्वान् दिक्पालान् सायुधध्वजान् ।।२१।।

जिसमें हवन की गई आहुति और घी से प्रज्ज्वलित अग्निदेव विराजमान थे तथा सभी दिक्पाल भी अपने अपने अस्त्र-शस्त्र एवं ध्वजादि चिह्नों के साथ यथा स्थान विराजमान थे ।।२१।।

विधातारं तथा विष्णुं यज्ञमध्ये व्यवस्थितम् ।
ददर्श कुपितः शम्भुस्तान् दृष्ट्वातीव कोपितः ।।२२।।

ब्रह्मा तथा विष्णु को भी यज्ञ में व्यवस्थितरूप से विराजमान देख क्रोध के मारे उन सब के प्रति शम्भु अत्यन्त क्रुद्ध हो गये ।।२२।।

भगं सूर्यं तथा सोमं भार्याभिः सह संवृतम् ।
सहस्राक्षं गौतमं च पूर्वे भागे व्यवस्थितम् ।।२३।।

वहाँ भग, सूर्य तथा सोम भी अपनी पत्नियों से घिरे हुए उपस्थित थे । हजार नेत्रों वाले इन्द्र एवं गौतम ऋषि उसके पूर्वी भाग में विराजमान थे ।।२३।।

सनत्कुमारमात्रेयं भार्गवं विनतासुतम् ।
मरुद्गणांस्तथा साध्यानाग्नेयं जातवेदसम् ।।२४।।

वहाँ उन्होंने सनत्कुमार, अत्रि-पुत्र चन्द्रमा, भार्गव, विनिता-पुत्र गरुण, मरुद्गण तथा साध्यगण, जातवेद को अग्निकोण में उपस्थित देखा ।।२४।।

कालं च चित्रगुप्तञ्च कुम्भयोनिं सगालवम् ।
विश्वेदेवांस्तथा सर्वान् कव्यवाहादिकान् पितॄन् ।।२५।।
अग्निष्वात्तादिकान् सर्वान् भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
भौमं प्रेतगणान् सिद्धान् दक्षिणाशां व्यवस्थितान् ।।२६।।

काल देवता (यम), चित्रगुप्त, गालव ऋषि सहित कुम्भज अगस्त्य, विश्वेदेव तथा कव्यवाह और अग्निष्वात्त आदि सभी पितरों, चारों प्रकार के प्राणियों, मङ्गल ग्रह, प्रेतगण और सिद्धों को दक्षिण दिशा में व्यवस्थित देखा ।।२५-२६।।

रक्षांसि च पिशाचांश्च भूतानि मृगपक्षिणः ।
क्रव्यादान् क्षुद्रजन्तूंश्च तथा पुण्यजनेश्वरम् ।
महर्षिं मौद्गलं राहुं नैर्ऋत्यां किन्नरांस्तथा ।।२७।।

राक्षस, भूत-पिशाच, मांसाहारी पशु-पक्षियों, छुद्र जन्तुओं, यक्षों, महर्षि मुद्गल, किन्नरों तथा छाया ग्रह राहु को नैर्ऋत्य दिशा में विराजमान देखा ।।२७।।

महोरगांस्तथा नक्रान् मत्स्यान् ग्राहांश्च कच्छपान् ।
समुद्रान् सप्तसिन्धूंश्च नदीस्तीर्थानि गुह्यकान् ।।२८।।
मानसादिह्रदान् सर्वान् गङ्गाजम्बूनदीं तथा ।

कामं मधुं वसन्तं च वरुणञ्च सहानुगम् ।
शनैश्चरं गिरीन् सर्वान् पश्चिमाशाव्यवस्थितान् ।।२९।।

महान सर्पों, घड़ियालों, मछलियों, मगरों, कछुओं, सातो समुद्रों, नदियों, तीर्थों गुह्यकों, मानसादि सभी सरोवरों तथा गंगा और जमुना नदियों, कामदेव, मधु, वसन्त अनुयायियों के सहित लोकपाल वरुण, शनिग्रह एवं सभी पर्वतों को पश्चिम दिशा में व्यवस्थित देखा ।।२८-२९।।

प्राणादिपञ्चवायूंश्च सगणञ्च समीरणम् ।
कल्पद्रुमान् हिमाद्रिञ्च कश्यपञ्च महामुनिम् ।।३०।।
वायव्यां कमलाव्रातं फलानि च कलानिधिम् ।
नानारत्नानि हैमानि मनुष्यान् पर्वतांस्तथा ।।३१।।
हिमाद्रिमुख्या यक्षाश्च स्थूणकर्णादयो बुधाः ।
नलकूबरेण सहितो यक्षराड्नरवाहनः ।।३२।।
ध्रुवो धरश्च सोमश्च विष्णुश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च कौवेरीं संस्थितानिमान् ।।३३।।

प्राणादि पंच प्राण वायुओं तथा गणों के सहित वायु को कल्पद्रुम, हिमालय पर्वत, महामुनि कश्यप, कमल समूह, चन्द्रमा तथा फलों को वायव्य कोण में विराजमान देखा। हिमालय में उत्पन्न अनेक प्रकार के रत्नों, मनुष्यों, हिमालय को प्रमुख मानने वाले पर्वतों, स्थूलकर्ण आदि विद्वान् और अपने नलकूबर नामक पुत्रद्वय सहित यक्षों के राजा कुबेर, ध्रुव, धर (कच्छप), सोम, विष्णु, अनिल (वायु), अग्नि, प्रभात, प्रभासतीर्थ आदि को कुबेर की उत्तर दिशा में स्थित देखा ।।३०-३३।।

वृषध्वजं विना सर्वान् रुद्रान् जीवं मनूंस्तथा ।
विविधान् बाहुजान् वैश्यान् शूद्रानपि समन्ततः ।
ऐशान्यां विविधान्नानि व्रीहीनपि तिलानपि ।।३४।।

शिव (स्वयं) को छोड़कर शेष रूद्रों, बृहस्पति, मनुओं, अनेक प्रकार के वैश्यों और सभी शूद्रों तथा भाँति-भाँति के अन्न, धान्य और तिलहन पदार्थों को ईशान कोण में देखा ।।३४।।

ऐषानीपूर्वयोर्मध्ये ब्रह्मर्षीन् संशितव्रतान् ।
महर्षींश्चतुरो वेदान् वेदाङ्गानि तथैव षट् ।।३५।।

ईशान कोण एवं पूर्व के मध्य में स्थित ब्रह्मा की दिशा में व्रतनिष्ठ महर्षियों, ब्रह्मर्षियों ऋग्, यजु, साम, अथर्व नामधारी चारो वेदों, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष, कल्प और शिक्षा नामक छः वेदाङ्गों को देखा ।।३५।।

नैर्ऋत्यपश्चिमान्तस्थमनन्तं श्वेतपर्वतम् ।
काद्रवेयसहस्रेण सहिता सप्तभोगिनः ।।३६।।
केतुं तत्रैव कूष्माण्डं डाकिनीगणसंयुक्तम् ।
तथा जलधरानन्यान्नानावर्णान् सविद्युतान् ।।३७।।
दिग्गजानपि तत्रस्थानैरावतमुखान् हरः ।
यथास्थानस्थितान् सर्वान् दिक्करिण्या च संयुतान् ।।३८।।

नैऋत्य कोण और पश्चिम दिशा के मध्य अनन्त देव, श्वेत पर्वत, कद्रु के हजार पुत्रों (सर्पों) के सहित तक्षकादि सात विशिष्ट सर्पों को देखा। वहीं केतु-ग्रह, डाकिनीगणों के सहित कूष्माण्डगण, अनेक रंगों के विद्युत से सुशोभित, विविध बादलों को दिग्गजों, अपनी पत्नियों से युक्त यथोचित स्थान पर स्थित शिव ने देखा ।।३६-३८।।

तमेवं दूरतो दृष्ट्वा यज्ञवाटं महाधनम् ।
वीरभद्राह्वयं तूर्णं प्रेषयामास तं प्रति ।।३९।।

उस मूल्यवान यज्ञ को दूर से ही देखकर शिव ने वीरभद्र का आह्वान किया और उन्हें तीव्रवेग से यज्ञशाला की ओर भेज दिया ।।३९।।

वीरभद्रोऽपि बहुभिः संवृतो विविधैर्गणैः ।
व्यध्वंसयत्ततो यज्ञं दक्षस्य सुमहात्मनः ।।४०।।

तब वीरभद्र ने भी अनेक प्रकार के बहुत से गणों से घिर कर महात्मा दक्ष के उस यज्ञ का विध्वंस कर दिया ।।४०।।

विकुर्वन्तं महायज्ञं वीरभद्रं समीक्ष्य वै ।
वारयामास वैकुण्ठः सर्वदेवगणावृतः ।।४१।।

वीरभद्र को उस महायज्ञ का विध्वंस करते हुए देख सभी देवताओं को साथ ले विष्णु ने उन्हें रोका ।।४१।।

तं वार्यमाणं दृष्ट्वैव क्रोधसंरक्तलोचनः ।
स्वयं विवेश तं यज्ञं ध्वंसयामास चेश्वरः ।।४२।।

उनको रोकते देख शिव ने, जिनके नेत्र क्रोध से लाल हो गये थे, स्वयं उस यज्ञशाला में प्रवेश किया तथा यज्ञ विध्वंस कर दिया ।।४२।।

विशन्तमेव तं यज्ञे प्रथमं पुरतो भगः ।
बाहू वितत्य भूतेशमाससाद त्वरान्वितः ।।४३।।

उनको यज्ञशाला में प्रवेश करता देख शीघ्रता से भग देवता अपनी दोनों बाहें फैलाकर भूतेश्वर शिव के समीप आये ।।४३।।

तमागतमभिप्रेक्ष्य भर्गोऽपि भृशरोषितः ।
अङ्गुल्यग्रप्रहारेण तस्य नेत्रे जघान ह ।।४४।।

उन (भग देवता) को आता हुआ देखकर बहुत ही क्रोध से भर्ग (शिव) ने नाखून के प्रहार से उनके नेत्रों को नष्ट कर दिया ।।४४।।

हीननेत्रं भगं दृष्ट्वा विरूपाक्षं दिवाकरः ।
स्पर्द्धमानस्ततः सर्वमाससाद त्वरान्वितः ।।४५।।

भग को नेत्ररहित देखकर सूर्य भी उनसे स्पर्धा करते हुये विरूपाक्ष सर्व (शिव) के समीप शीघ्र चले गये ।।४५।।

ततः सूर्यं महादेवः पाणौ धृत्वा करेण च ।
दूरीकृत्यातिकुपितो यज्ञमेवाभ्यधावत ।।४६।।

तब महादेव सूर्य के हाथों को अपने हाथों से पकड़कर उन्हें दूर हटा कर अत्यन्त क्रोधित हो यज्ञ की ओर दौड़ पड़े ।।४६।।

मार्तण्डश्च हसन् वेगाद्वितत्य विपुलौ भुजौ ।
एहि योत्स्ये त्वयेत्युक्त्वा तमग्रे प्रत्यवारयत् ।।४७।।

उसी समय सूर्य ने अपनी दोनों विशाल भुजाओं को वेग से फैलाकर हँसते हुए, आओ, मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा ऐसा कहकर उन (शिव) को सामने से रोका ।।४७।।

हसतस्तस्य सूर्यस्य क्रोधेन वृषभध्वजः ।
दन्तान् करप्रहारेण शातयामास वक्त्रतः ।।४८।।

तब हँसते हुए सूर्य के दाँतों को क्रोध के कारण वृषभध्वज ने अपने हाथों के प्रहार से उनके मुख से गिरा दिया ।।४८।।

विदन्तं मिहिरं दृष्ट्वा हीननेत्रं भगं तथा ।
सर्वे देवाश्च ऋषयो ये चान्ये तत्र दुद्रुवुः ।।४९।।

दाँतरहित सूर्य तथा नेत्रहीन भग देवता को देखकर, देवता, ऋषि और अन्य जो यज्ञ में पधारे थे, सभी भाग गये ।।४९।।

विद्राव्य सर्वान् देवादीन् हरः परमकोपनः ।
मृगरूपेणापयान्तं यज्ञमेवान्वपद्यत ।।५०।।

अत्यन्त क्रोधित शिव ने सभी देवता आदि को भगा कर स्वयं मृग का रूप धारण कर भागते हुए यज्ञ का व्याध रूप से पीछा किया ।।५०।।

यज्ञोऽप्याकाशमार्गेण ब्रह्मस्थानं विवेश ह ।
वृषध्वजोऽपि कुपितो ब्रह्मस्थानं जगाम ह ।।५१।।

तब यज्ञ भी आकाश मार्ग से ब्रह्मलोक में प्रवेश कर गया। क्रोधित वृषभध्वज भी पीछे-पीछे ब्रह्मलोक में पहुँच गये ॥५१॥

ब्रह्मणः सदनाद् यज्ञो भीतो भर्गादवातरत् ।
अवतीर्य सतीदेहं प्रविवेश स्वमायया ॥५२॥

शिव से भयभीत यज्ञ भी ब्रह्मलोक से उतर कर अपनी माया से सती के शरीर में प्रवेश कर गया ॥५२॥

भर्गोऽपि दक्षदुहितुर्मृताया निकटं गतः ।
अन्वगच्छत्तदा यज्ञं ददर्श च सतीशवम् ॥५३॥

तब शिव भी यज्ञ का पीछा करते हुये मरी हुई दक्षपुत्री सती के समीप पहुँचे तथा उन्होंने वहाँ सती के शव को देखा ॥५३॥

मृतां दृष्ट्वा तदा देवीं हरो दाक्षायणीं सतीम् ।
विस्मृत्य यज्ञं तत्प्रान्ते स्थितो वाढं शुशोच ताम् ॥५४॥

उस समय शिव ने मरी हुई दक्ष पुत्री सती को देखा और यज्ञ को भूलकर, उस सती के समीप स्थित हो, उसके प्रति बहुत शोक किया ॥५४॥

बहुविधगुणवृन्दं चिन्तयञ्छूलपाणि-
र्ललितदशनपंक्तिं वक्त्रब्जप्रकाशम् ।
अरुणदशनवस्त्रं भ्रूयुगं वीक्ष्य तस्याः
खरतरपृथुशोकव्याकुलोऽसौ रुरोद ॥५५॥

॥ श्रीकालिकापुराणे दक्षयज्ञध्वंस नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

शूलपाणि शिव सती के बहुत प्रकार के गुणों का स्मरण करने लगे वे उनके सुन्दर दाँत की पंक्तियों को, खिले हुए मुख कमल को, लाल मसूड़ों को, दोनों भौंहों को देखकर तीव्रतर शोक से व्याकुल हो रोने लगे ॥५५॥

॥ श्रीकालिकापुराण में दक्षयज्ञध्वंस नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥१७॥



अष्टादशोऽध्यायः

शिवविषादवर्णनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

दाक्षायणीगुणगणान् गणयन् गोरङ्गस्तदा ।
विललापातिदुःखार्तो मनुजः प्राकृतो यथा ।।१।।

मार्कण्डेय बोले–तब गोरङ्ग (दिगम्बर) शिव, दाक्षायणी (दक्ष-पुत्री) सती के गुणों की गणना करते हुये दुःख से भरकर सामान्य मनुष्य की भाँति विलाप करने लगे ॥ १ ॥

विलपन्तं तदा भर्गं विज्ञाय मकरध्वजः ।
रतीबसन्तसहित आससाद महेश्वरम् ।।२।।

तब शिव को विलाप करते हुए जानकर मकरध्वज कामदेव पत्नी रति एवं पुत्र बसन्त के सहित महेश्वर के समीप पहुँच गया ॥ २ ॥

तं शुचातिपरिभ्रष्टं युगपत् स रतिपतिः ।
जघान पञ्चभिर्बाणैः रुदन्तं भ्रष्टचेतनम् ।।३।।

उस कामदेव ने शोक से विदीर्ण हुये रोते हुए, चेतना भ्रष्ट हुये, शिव पर एक साथ अपने पाँचों बाणों से प्रहार किया ॥ ३ ॥

शोकाभिहतचित्तोऽपि स्मरबाण - समाकुलः ।
सङ्कीर्णभावमापन्नः शुशोच च मुमोह च ।।४।।

शोकग्रस्त चित्त होने पर भी कामदेव के बाणों से भलीभाँति व्याकुल हुये संकीर्ण भाव (जगत्पति की अपेक्षा सतीपति के भाव) को ग्रहण कर शोक और मोह प्रकट करने लगे ॥ ४ ॥

क्षणं भूमौ निपतति क्षणमुत्थाय धावति ।
क्षणं भ्रमति तत्रैव निमीलति विभुः पुनः ।।५।।

वे विभु किसी क्षण भूमि पर गिर जाते तो दूसरे क्षण दौड़ने लगते, किसी क्षण घूमने लगते तो वहीं पुनः आँख मूद लेते ॥ ५ ॥

ध्यायन् दाक्षायणीं देवीं हसमानः कदाचन ।
परिष्वजति भूमिष्ठां रसभावैरिव स्थिताम् ।।६।।

दाक्षायणी देवी का ध्यान करते हुए भूमि पर पड़ी हुई सती का रसभाव से हँसते हुए कभी आलिङ्ग करते ।। ६ ।।

सती सतीति सततं नाम व्याहृत्य शङ्करः ।
मानं त्यज वृथेत्येवमुक्त्वा स्पृशति पाणिना ।।७।।

शङ्कर हे सती ! हे सती ! ऐसा निरन्तर नाम पुकारते हुये यह व्यर्थ का रूठना छोड़ो ऐसा कहते हुए, सती का हाथों से स्पर्श करते ।। ७ ।।

पाणिनापरिमार्ज्यैनामलङ्कारान् यथास्थितान् ।
तस्या विश्लिष्य च पुनस्तत्रैवानुयुयोज च ।।८।।

उनके यथा स्थान स्थित अलंकारों को उन्हीं स्थानों पर हाथ से साफ करते, उन्हें वहाँ से अलग करते तथा पुनः उन्हीं स्थानों पर व्यवस्थित कर देते थे ।। ८ ।।

एवं कुर्वति भूतेशे मृता नोवाच किञ्चन ।
यदा सती तदा भर्गः शोकाद्गाढं रुरोद ह ।।९।।

इस प्रकार से किये जाने पर भी जब मरी हुई सती देवी कुछ नहीं बोलीं तब शिव बहुत अधिक रोने लगे ।। ९ ।।

रुदतस्तस्य पततो वाष्पान् वीक्ष्य तदा सुराः ।
ब्रह्मादयः परां चिन्तां जग्मुश्चिन्तापरायणाः ।।१०।।

तब रोने पर उनके गिरे हुये अश्रुविन्दुओं को देखकर चिन्तित ब्रह्मा आदि देवगण बहुत अधिक चिन्तित हो गये ।। १० ।।

वाष्पाः पतन्तो भूमौ चेद्दहेयुः पृथिवीमिमाम् ।
उपायस्तत्र कः कार्य इति हा हेति चुक्रुशुः ।।११।।

ये वाष्प (अश्रु) धरती पर पड़ेंगे तो इस पृथ्वी को जला देंगे । तब कौन-सा उपाय करना चाहिये, इस चिन्ता से वे हाहाकार करने लगे ।। ११ ।।

ततो विमृष्यते देवा ब्रह्माद्यास्तु शनैश्चरम् ।
तुष्टुवुर्मूढभर्गस्य वाष्पधारणकारणात् ।।१२।।

तब विचाररत ब्रह्मा आदि देवताओं ने मोहग्रस्त शिव के अश्रु-विन्दुओं को धारण करने हेतु शनि ग्रह की स्तुति की ।। १२ ।।

शनिस्तोत्र

।। देवा ऊचुः ।।

शनैश्चर महाभाग लोकानुग्रहकारक ।
मूलशक्तिसमुद्भूत नमस्ते सूर्यसम्भव ।।१३।।

देवगण बोले– हे महाभाग शनैश्चर ! आप लोकों पर अनुग्रह करने वाले हो, आप मूल शक्ति से उत्पन्न, सूर्य पुत्र हो । आपको नमस्कार है ।। १३ ।।

नमस्ते शूलहस्ताय पाशहस्ताय धन्विने ।
तथा वरदहस्ताय तमश्छायात्मजाय ते ।।१४।।

हे हाथों में शूल तथा पाश धारण करने वाले, धनुर्धर और वरद मुद्राधारी, छाया के पुत्र, तम ! आपको नमस्कार है ॥ १४ ॥

नीलमेघ - प्रतीकाश भिन्नाञ्जनचयोपम ।
नमस्ते सर्व - लोकानां प्राणधारणहेतवे ।।१५।।

हे नीले मेघ तथा अञ्जन के पहाड़ के टुकड़े के समान रंग रूप वाले, सभी लोकों के प्राणधारण के कारण-भूत देव ! आपको नमस्कार है ॥ १५ ॥

गृध्रध्वज नमस्तेऽस्तु प्रसीद भगवन् दृढम् ।
वाष्पेभ्यः शोकजेभ्यश्च पाहि भर्गस्य नः क्षितिम् ।।१६।।

हे गृध्रांकित ध्वजा धारण करने वाले भगवन् ! आप प्रसन्न होइये तथा शिव के शोक से उत्पन्न आँसुओं से हमारी और इस पृथ्वी की दृढ़तापूर्वक रक्षा कीजिए ॥ १६ ॥

यथा पुरा शतं वर्षानवजग्राह वर्षणम् ।
भवानेव तु मेघेभ्यस्तथा कुरु हराम्बुनि ।।१७।।

प्राचीन काल में सौ वर्षों तक चलने वाली मेघों की वर्षा को आपने ही जैसे रोक दिया था, उसी प्रकार शिव के नेत्रजल को भी दूर कीजिए ॥ १७ ॥

तव चापग्रहं दृष्ट्वा मेघास्ते पुष्करादयः ।
मुमुचुः सततं वर्षं महेन्द्रस्य किलाज्ञया ।।१८।।

उस समय आपको धनुष धारण किये हुये देख पुष्करादि मेघों ने महेन्द्र की आज्ञा से निरन्तर की जाती वर्षा को बन्द कर दिया था ॥ १८ ॥

आकाश एव वर्षाम्भस्तत्सर्वं भवता पुरा ।
विनाशितं यथा वाष्पं तथा नाशय शूलिनः ।।१९।।

प्राचीनकाल में आकाश में ही वर्षा के उस जल को तब आपने जिस प्रकार नष्ट कर दिया था । उसी प्रकार से अब शिव के आँसुओं को नष्ट कीजिये ॥ १९ ॥

न त्वामृतेऽन्यः शक्तोऽस्ति हरवाष्पनिवारणे ।
दहेत् सदेवगन्धर्वब्रह्मलोकान् सपर्वतान् ।
पृथिवीं पतितो वाष्पस्तस्माद्धारय मायया ।।२०।।

आपके अतिरिक्त अन्य कोई शिव के आँसुओं के निवारण में समर्थ नहीं है । गिरने पर ये देवलोक, गन्धर्वलोक, ब्रह्मलोक को तथा पर्वतों के सहित समस्त पृथ्वी को जला देंगे । इसलिए इन्हें अपनी माया से आप धारण करें[1] ॥ २० ॥

---

१. यह स्तोत्र अतिवृष्टि एवं बाढ़ के निवारण में सहायक है ।

।। मार्कण्डेय उवाच।।

इत्येवम्भाषमाणेषु देवेषु मिहिरात्मजः ।
प्रत्युवाच स तान् देवान्नातिहृष्टमना इव ।।२१।।

मार्कण्डेय बोले– देवताओं द्वारा ऐसा कहे जाने पर सूर्यपुत्र शनि देव ने बहुत प्रसन्न न होते हुए भी उनको उत्तर दिया ॥ २१ ॥

।। शनैश्चर उवाच ।।

करिष्ये भवतां कर्म यथाशक्ति सुरोत्तमाः ।
तथा किन्तु विदग्धं हि न मां वेत्ति यथा हरः ।।२२।।

*शनि ने कहा–*हे देवश्रेष्ठों ! मैं यथाशक्ति आपलोगों का कार्य करूँगा किन्तु शिव जिस प्रकार से मुझे जला हुआ न जाने (जला न दें) ऐसा कुछ कीजिए ॥ २२ ॥

दुःखशोकाकुलस्यास्य समीपे वाष्पधारिणः ।
कोपान्नश्येच्छरीरं मे नियतं नात्र संशयः ।।२३।।

क्योंकि दुःख और शोक से आकुल, अश्रुपूरित शिव के समीप पहुँचूँगा तो मेरा यह शरीर उनके क्रोध से नष्ट हो जायेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २३ ॥

तस्माद् यथा मां भूतेशो न जानाति सतीपतिः ।
तथा कुरुध्वं नेत्रेभ्यो हरलोतकधारिणम् ।।२४।।

इसलिए जिस प्रकार सतीपति शिव अपने नेत्रों के आँसुओं को धारण करने वाले मुझको न जान सकें, ऐसा आप लोग प्रयत्न करें ॥ २४ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच।।

ततो ब्रह्मादयो देवास्ते सर्वे शङ्करान्तिकम् ।
गत्वा हरं सम्मुमुहुः सांसार्या योगमायया ।।२५।।

मार्कण्डेय बोले– तब ब्रह्मादि सभी देवता शंकर के समीप जाकर उन्हें सांसारिक योग माया से सम्मोहित करने लगे ॥ २५ ॥

शनैश्चरोऽपि भूतेशमासाद्यान्तर्हितस्तदा ।
वाष्पवृष्टिं दुराधर्षामवजग्राह मायया ।।२६।।

तब अन्तर्हित रूप में शिव के समीप पहुँचकर शनैश्चर ने भी अपनी माया से दुधर्षअश्रु वर्षा को दूर कर दिया ॥ २६ ॥

यदा स नाशकद्वाष्पान् सन्धारयितुमर्कजः ।
तदा महागिरौ क्षिप्ता वाष्पास्ते जलधारके ।।२७।।

जब वे सूर्यपुत्र शनिदेव उन वाष्पों को धारण करने में समर्थ नहीं हुए तो उनको जलधारक नामक महान पर्वत पर छोड़ दिया ॥ २७ ॥

लोकालोकस्य निकटे जलधाराह्वयो गिरिः ।
पुष्करद्वीपपृष्ठस्थस्तोयसागर - पश्चिमे ।।२८।।

वो जलधार नामक पर्वत लोकालोक पर्वत के समीप पुष्कर द्वीप के पीछे स्थित तोयसागर के पश्चिम में स्थित था ।। २८ ।।

स तु सर्वप्रमाणेन मेरुपर्वतसन्निभः ।
तस्मिन् विन्यस्तवान् वाष्पांस्तदाशक्तः शनैश्चरः ।।२९।।

वह सभी प्रमाणों से मेरु पर्वत के समान था । असमर्थ शनि ने वाष्पों को उसी पर्वत पर डाल दिया ।।२९ ।।

स पर्वतोपि तान् वाष्पान्न धर्तुं क्षम ईशितुः ।
विदीर्णस्तैस्तु वाष्पौघैर्भग्नमध्योऽभवद्द्रुतम् ।।३०।।

वह पर्वत भी शिव के उन आँसुओं को धारण करने में सक्षम नहीं हुआ और उन अश्रु समूहों से शीघ्र ही मध्यभाग से विभक्त (दो फाड़) हो गया ।। ३० ।।

ते वाष्पाः पर्वतं भित्वा विविशुस्तोयसागरम् ।
सागरोऽपि ग्रहीतुं तन्न शशाक खरानति ।।३१।।

पर्वत को विदीर्ण कर वे अश्रु प्रवाह भी तोय सागर में प्रवेश कर गये । वह सागर भी अति तीक्ष्ण उन्हें ग्रहण करने में समर्थ नहीं हुआ ।। ३१ ।।

ततस्तु सागरं मध्ये भित्वा वाष्पाः समागताः ।
तोयधेः प्राग्भवां वेलां स्पर्शमात्राद्विभेद ताम् ।।३२।।

तब वे आँसु समुद्र को मध्य से भेदकर जलधि के पूर्वी किनारे को स्पर्श मात्र से ही तोड़ दिये ।। ३२ ।।

विभिद्य वेलां ते वाष्पाः पुष्करद्वीपमध्यगाः ।
नदी भूत्वा वैतरणी पूर्वसागरगाभवत् ।।३३।।

तट को तोड़ कर वे पुष्कर द्वीप के मध्यगामी हो पूर्वीसागर की ओर जाने वाली वैतरणी नदी हो गये ।। ३३ ।।

जलधारस्य भेदेन संसर्गात् सागरस्य च ।
अवाप्य सौम्यतां किञ्चिद्वाष्पास्ते नाभिन्दन् क्षितिम् ।।३४।।
वैवस्वतपुरद्वारे योजनद्वयविस्तृता ।
अद्यापि तिष्ठत्यपगा हरलोतकसम्भवा ।।३५।।

जलधार पर्वत के भेदन तथा सागर के संसर्ग से वे अश्रु, कुछ सौम्यता को प्राप्त हुए । पृथ्वी का विखण्डन नहीं करते हुए, शिव के आँसुओं से उत्पन्न नदी (वैतरणी) के रूप में आज भी यम नगरी के द्वार पर दो योजन तक चौड़ाई में स्थित हैं ।। ३४-३५ ।।

।। शक्ति पीठ स्थापन ।।

अथ शोकविमूढात्मा विलपन् वृषभध्वजः ।
जगाम प्राच्यदेशांस्तु स्कन्धे कृत्वा सतीशवम् ।।३६।।

इसके बाद शोक से विलाप करते हुए भगवान शङ्कर सती के शव को कंधे पर रख कर प्राच्य देश को चले गये ।। ३६ ।।

उन्मत्तवद्गच्छतोऽस्य दृष्ट्वा भावं दिवौकसः ।
ब्रह्माद्याश्चिन्तयामासुः शवभ्रंशनकर्मणि ।।३७।।

पागल की तरह जाते हुए शिव के भाव को देखकर ब्रह्मादि देवता (उनके कंधे पर स्थित) शव के नाश के सम्बन्ध में विचार करने लगे ।। ३७ ।।

हरगात्रस्य संस्पर्शाच्छवो नायं विशीर्णताम् ।
गमिष्यति कथं तस्मादस्य भ्रंशो भविष्यति ।।३८।।

शिव के शरीर के संस्पर्श से यह शव नाश को नहीं प्राप्त होगा तब इसका नाश कैसे होगा? ।। ३८ ।।

इति सञ्चिन्तयन्तस्ते ब्रह्मविष्णुशनैश्चराः ।
सतीशवान्तर्विविशुरदृश्या योगमायया ।।३९।।

ऐसा सोचते हुए उन ब्रह्मा, विष्णु और शनैश्चर देवता ने योग माया के कारण अदृश्य रूप से सती के शव में प्रवेश किया ।। ३९ ।।

प्रविश्याथ शवं देवाः खण्डशस्ते सतीशवम् ।
भूतले पातयामासुः स्थाने स्थाने विशेषतः ।।४०।।

सती के शव में प्रवेश करके देवताओं ने उसे टुकड़े-टुकड़े कर पृथ्वी के विशिष्ट स्थानों पर गिरा दिया ।। ४० ।।

देवीकूटे पादयुग्मं प्रथमं न्यपतत् क्षितौ ।
उड्डीयाने चोरुयुग्मं हिताय जगतां ततः ।।४१।।

सर्वप्रथम देवी के दोनों चरण देवी कूट में पृथ्वी पर गिरे तब संसार के कल्याण हेतु उनके दोनों जङ्घे उड्डीयान में गिरे ।। ४१ ।।

कामरूपे कामगिरौ न्यपतत्योनिमण्डलम् ।
तत्रैव न्यपतद्भूमौ पर्वते नाभिमण्डलम् ।।४२।।

उनका योनिमण्डल कामरूप कामगिरि (कामाक्षा) पर और वहीं पर्वतीभूमि पर उनका नाभिमण्डल गिरा ।। ४२ ।।

जालन्धरे स्तनयुगं स्वर्णहारविभूषितम् ।
अंशग्रीवं पूर्णगिरौ कामरूपात्ततः शिरः ।।४३।।

जालन्धर में स्वर्णहार से विभूषित उनके दोनों स्तन गिरे, पूर्णगिरि पर कंधे एवं गला तत्पश्चात् सिर कामरूप में गिरा ॥ ४३ ॥

यावद्ध्रुवं गतो भर्गः समादाय सतीशवम् ।
प्राच्येषु याज्ञिको देशस्तावदेव प्रकीर्तितः ॥४४॥

सती के शव को लेकर शिव पूर्व दिशा में जहाँ तक गये वही स्थान यज्ञभूमि कहा गया है ॥ ४४ ॥

अन्ये शरीरावयवा लवशः खण्डिताः सुरैः ।
आकाशगङ्गामगमन् पवनेन समीरिताः ॥४५॥

शरीर के अन्य अवयव देवताओं द्वारा खण्डित हो टुकड़ों के रूप में वायु से प्रेरित हो आकाश गङ्गा में चले गये ॥ ४५ ॥

यत्र यत्रापतन् सत्यास्तदापादादयो द्विजाः ।
तत्र तत्र महादेवः स्वयं लिङ्गस्वरूपधृक् ।
तस्थौ मोहसमायुक्तः सतीस्नेहवशानुगः ॥४६॥

हे द्विजों ! जहाँ-जहाँ सती के पैर आदि अङ्ग गिरे स्वयं महादेव वहीं-वहीं सती के स्नेहवशीभूत मोहित हो लिंग स्वरूप धारण कर स्थित हो गये ॥ ४६ ॥

ब्रह्मविष्णुशनिश्चापि सर्वे देवगणास्तथा ।
पूजयाञ्चक्रुरीशस्य प्रीत्या सत्याः पदादिकम् ॥४७॥

तब ब्रह्मा, विष्णु, शनि तथा सभी देवताओं ने प्रेमपूर्वक शिव की तथा सती के पादादिक अंगों की पूजा की ॥ ४७ ॥

देवीकूटे महादेवी महाभागेति गीयते ।
सतीपादयुगे लीना योगनिद्रा जगत् प्रभुः ॥४८॥

देवीकूट में महादेवी महाभागा नाम से गाई जाती हैं। वहाँ जगत के स्वामी सती के चरणद्वय में योगनिद्रा का आश्रय ले लीन रहते हैं ॥ ४८ ॥

कात्यायनी चोड्डीयाने कामाख्या कामरूपिणी ।
पूर्णेश्वरी पूर्णगिरौ चण्डी जालन्धरे गिरौ ॥४९॥
पूर्वान्ते कामरूपस्य देवी दिक्करवासिनी ।
तथा ललितकान्तेति योगनिद्रा प्रगीयते ॥५०॥

उड्डियान में महादेवी कात्यायनी, कामरूप में कामाख्या, पूर्णगिरि पर पूर्णेश्वरी, जालन्धर पर्वत पर चण्डीनाम से तथा कामरूप के पूर्वान्त में देवी दिक्करवासिनी तथा ललितकान्ता नाम से योगनिद्रा ही गाई जाती हैं ॥ ४९-५० ॥

यत्रैव पतितं सत्याः शिरस्तत्र वृषध्वजः ।
उपविष्टः शिरो वीक्ष्य श्वसञ्छोकपरायणः ॥५१॥

जहाँ सती का सिर गिरा वृषध्वज शिव उस गिरे हुए सिर को देखकर शोक परायण हो वहीं बैठकर लम्बी साँस लेने लगे ॥ ५१ ॥

उपविष्टे हरे तत्र ब्रह्माद्यास्ते दिवौकसः ।
समीपमगमंस्तस्य दूरतः सान्त्वयन् हरम् ।।५२।।

शिव के वहाँ बैठ जाने पर, वे ब्रह्मादि देवता दूर से ही उन्हें सान्त्वना देते हुए उनके समीप पहुँच गये ॥ ५२ ॥

देवानागच्छतो दृष्ट्वा शोक-लज्जासमन्वितः ।
गत्वा शिलात्वं तत्रैव लिङ्गत्वं गतवान् हरः ।।५३।।

देवताओं को आया हुआ देखकर शोक एवं लज्जा से युक्त हो शिव वहीं पत्थर और लिंगवत् हो गये ॥ ५३ ॥

हरे लिङ्गत्वमापन्ने ब्रह्माद्यास्तु दिवौकसः ।
तुष्टुवुस्त्र्यम्बकं तत्र लिङ्गरूपं जगद्‌गुरूम् ।।५४।।

शिव के लिङ्गत्व को प्राप्त हो जाने पर ब्रह्मादि देवता लिंगरूप जगद्‌गुरु त्र्यम्बक शिव की वहीं स्तुति करने लगे ॥ ५४ ॥

शिव-स्तुति

।। देवा ऊचुः ।।

महादेवं शिवं स्थाणुमुग्रं रूद्रं वृषध्वजम् ।
श्मशानवासिनं भर्गं सर्वान्तिकरणं परम् ।।५५।।
त्वां नमामो वयं भक्त्या शङ्करं नीललोहितम् ।
गिरीशं वरदं देवं भूतभावनमव्ययम् ।।५६।।

देवगण बोले–महादेव, शिव, स्थाणु, उग्र, रुद्र, वृषध्वज, श्मशानवासी, भर्ग, सर्वान्तकरण, परम (सर्वोत्कृष्ट, गिरीश, वरदायक, देव, भूतभावन, अव्यय, नीललोहित शंकर को हम भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं ॥ ५५-५६ ॥

अनादिमध्यसंसारयोगविद्याय शम्भवे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ।।५७।।

आदि, मध्य तथा संसार से रहित, योग के जाननेवाले, शम्भु, शान्त लिङ्गमूर्ति ब्रह्मस्वरूप शिव को नमस्कार है ॥ ५७ ॥

जटिलाय गिरीशाय विद्याशक्तिधराय ते ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ।।५८।।

जटिल, विद्याधर, शक्तिधर, गिरीश, शान्त लिङ्गमूर्ति ब्रह्मस्वरूप शिव को नमस्कार है ॥ ५८ ॥

ज्ञानामृतान्तसम्पूर्णशुद्धदेहान्तराय च ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ।।५९।।

ज्ञानरूप, अमृतस्वरूप, अन्त, सम्पूर्ण, शुद्ध, देहान्तर ब्रह्मस्वरूप, शान्त शिव को नमस्कार है ॥ ५९ ॥

आदिमध्यान्तभूताय स्वभावानलदीप्तये ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ॥६०॥

आदि, मध्यान्त, भूत, स्वभावानल के प्रदीप्त करने वाले ब्रह्मस्वरूप शान्त शिव को नमस्कार है ॥ ६० ॥

प्रलयार्णवसंस्थाय प्रलयस्थितिहेतवे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ॥६१॥

प्रलयसिन्धु के संस्थान, प्रलय तथा स्थिति के कारणभूत, ब्रह्मस्वरूप शान्त शंकर को नमस्कार है ॥ ६१ ॥

यः परेभ्यः परस्तस्मात् पराय परमात्मने ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ॥६२॥

जो पर (श्रेष्ठ) से भी पर है उस पर, परमात्मा ब्रह्मस्वरूप शान्त शिव को नमस्कार है ॥ ६२ ॥

ज्वालामालावृताङ्गाय नमस्ते विश्वरूपिणे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ॥६३॥

ज्वालासमूह से घिरे हुये विश्वरूप ब्रह्मस्वरूप शान्त शिव को नमस्कार है ॥ ६३ ॥

ॐ नमः परमार्थाय ज्ञानदीपाय वेधसे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ॥६४॥

परमार्थरूप, ज्ञानदीपरूप, विधाता ब्रह्मस्वरूप शान्त शिव को नमस्कार है ॥ ६४ ॥

नमो दाक्षायणीकान्त मृड शर्व महेश्वर ।
नमस्ते सर्वभूतेश प्रसीद भगवञ्छिव ॥६५॥

हे दाक्षायणी पति, मृड, शर्व, महेश्वर आपको नमस्कार है । सभी प्राणियों के स्वामी आपको नमस्कार है । हे भगवान शिव, आप प्रसन्न होइये ॥ ६५ ॥

सशोके त्वयि लोकेशे चेष्टमाने महेश्वर ।
सुराः समाकुलाः सर्वे तस्माच्छोकं परित्यज ॥६६॥

हे महेश्वर, हे लोकेश ! आपकी शोकग्रस्त चेष्टाओं को देखकर सभी देवगण व्याकुल हो गये हैं । अतः आप शोक का परित्याग करें ॥ ६६ ॥

नमो नमस्ते भूतेश सर्वकारणकारण ।
प्रसीद रक्ष नः सर्वांस्त्यज शोकं नमोऽस्तुते ॥६७॥

हे प्राणियों के स्वाभी भूतेश ! आप सभी कारणों के भी कारण हैं । आपको बारम्बार नमस्कार है। अपना शोक छोड़िये तथा हम सबकी रक्षा कीजिये । आपको नमस्कार है ॥ ६७ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति संस्तूयमानस्तु महादेवो जगत्पतिः ।
निजं रूपं समास्थाय प्रादुर्भूतः शुचाहतः ।।६८।।

मार्कण्डेय बोले–शोक से आहत हुये जगत के स्वामी महादेव इस प्रकार से भलीभाँति स्तुति किये जाने पर अपने यथार्थ रूप का आश्रय ले प्रकट हुये ॥ ६८ ॥

तं शुचा विह्वलं दृष्ट्वा प्रादुर्भूतं विचेतसम् ।
शोकापहं विधिं साम्ना तुष्टाव वृषभध्वजम् ।।६९।।

उन शोकविह्वल शिव को बिना चेतना के उत्पन्न हुआ देखकर उन्हें शोकरहित करने के लिए ब्रह्मा ने साममन्त्रों से उनकी स्तुति की ॥ ६९ ॥

ब्रह्मकृता शिवस्तुति

।। ब्रह्मोवाच ।।

हिरण्यबाहो ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं जगतः पतिः ।
सृष्टिस्थितिविनाशानां हेतुस्त्वं केवलं हर ।।७०।।

ब्रह्मा बोले– हे हिरण्यबाहु! आप ही ब्रह्मा हो। आप ही जगत के स्वामी विष्णु हो। हे हर ! केवल आप ही (संसार की) सृष्टि, स्थिति (पालन) तथा विनाश के कारण हो ॥ ७० ॥

त्वमष्टमूर्तिभिः सर्वं जगद्व्याप्य चराचरम् ।
उत्पादकः स्थापकश्च नाशकश्चापि विश्वकृत् ।।७१।।

हे विश्व के कर्त्ता ! आप अपनी आकाशादि अष्टमूर्तियों[1] द्वारा इस स्थिर एवं गतिमान सम्पूर्ण जगत में व्याप्त हो सृष्टि के उत्पन्नकर्ता, पालनकर्ता तथा विनाशकर्ता भी हो ॥ ७१ ॥

त्वामाराध्य महादेव मुक्तिं याता मुमुक्षवः ।
रागद्वेषादिभिस्त्यक्ताः संसारविमुखा बुधाः ।।७२।।

हे महादेव ! रागद्वेषों से मुक्त, संसार से विमुख, मुक्ति चाहने वाले विद्वद्वर्ग आपकी ही आराधना कर मुक्ति को प्राप्त किये हैं ॥ ७२ ॥

विभिन्नवाय्वग्निजलौघवर्जितं
न दूरसंस्थं रविचन्द्रसंयुतम् ।
त्रिमार्गमध्यस्थमनुप्रकाशकं
तत्त्वं परं शुद्धमयं महेश्वर ।।७३।।

हे महेश्वर ! आप नाना प्रकार के जल, अग्नि एवं वायु के समूह से **वर्जित अर्थात् अप्रभावी** आत्मरूप हैं। आप किसी से भी दूर नहीं हैं अपितु

१. आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा तथा यजमान ये शिव की अष्ट मूर्तियाँ हैं।

चन्द्र, इड़ा, पिङ्गला नाड़ियों के समीप ही ब्रह्मनाड़ी में निवास करने वाले हैं। आप इड़ा सुषुम्ना और पिङ्गला के मध्य में स्थित ब्रह्मनाड़ी के अनुप्रकाशक परम शुद्ध तत्त्व रूप हैं ॥ ७३ ॥

यदष्टशाखस्य तरोः प्रसूनं
चिदम्बुवृद्धस्य समीपजस्य ।
तपश्छदः संस्थगितस्य पीनं
सूक्ष्मोपगं ते वशगं सदैव ॥७४॥

१. आप मूलाधार, विशुद्ध, मणिपुर, स्वाधिष्ठान, अनाहत, आज्ञा, सहस्रार, सुरतिलय नामक आठ चक्र रूपी शाखाओं वाले सुषुम्ना रूपी वृक्ष के कुण्डलिनी रूपी पुष्प हो। यह वृक्ष चित् शक्तिरूपी जल से पोषित तथा परमात्मा का समीपवर्ती है। यह तपस्या रूपी पत्तों से भलीभाँति ढका हुआ तथा पुष्ट है। यह तुम्हारे सूक्ष्म तत्त्व के समीप तक जाने वाली तथा सदैव तुम्हारे वश (शरण) में ले जाने वाली है। अर्थात् आप योगगम्य हो।

२. आप तीन अन्तःकरण तथा पञ्चतन्त्रमात्ररूपी आठ शाखाओं वाले पुरुष की समीपवर्ती, चित्त शक्ति से पोषित प्रकृति रूपी, वृक्ष के चैतन्य रूप फल हो। (यह सांख्य परक अर्थ है) यह प्रकृतिरूपी वृक्ष के आलोक में सूर्यमुखी के समान घना एवं पुष्ट है। जो सदैव पुरुषार्थरूप पर तत्त्वमय तुम तक पहुँचाने वाला है और तुम्हीं को वशीभूत बनानेवाला है ॥ ७४ ॥

अधः समाधाय समीरणस्वनं
निरुद्ध्य चोर्द्ध्वं निशि हंसमध्यतः ।
हृत्पद्ममध्ये सुमुखीकृतं रजः
परन्तु तेजस्तव सर्वदेक्ष्यताम् ॥७५॥

वायु की ध्वनि को अन्तः में समाहित कर उसे रात्रि (साधना काल) में हंस मध्य अर्थात् सुरति स्थान में ऊपर की ओर निरुद्ध कर हृदय रूप कमल के बीच प्रस्फुटित रज कण के रूप में जो देखा जाता है परन्तु तुम्हारा तेज तो हमेशा दिखाई देने योग्य है। सहज अनुभवगम्य है ॥ ७५ ॥

प्राणायामैः पूरकैः स्तम्भकैर्वा
रिक्तैश्चित्रैश्चोदनं यत्पराख्यम् ।
दृश्यादृश्यं योगिभिस्ते प्रपञ्चाः
शुद्धं वृद्धं तत्त्वतस्तेऽस्ति लब्धम् ॥७६॥

तुम्हारा शुद्ध और विकसित जो परम तत्त्व है वह पूरक, कुम्भक, रेचक आदि विविध प्राणायामों से प्रेरित योगियों द्वारा दृष्ट और अदृष्ट दोनों ही प्रकार के प्रपञ्चों से परे प्राप्तव्य है ॥ ७६ ॥

सूक्ष्मं जगद्व्यापि गुणौघपीनं
मृग्यम्बुधेः साधनसाध्यरूपम् ।
चौरैरक्षैनोज्झितं नैव नीतं
वित्तं तवास्त्यर्थहीनं महेश ।।७७।।

हे महेश ! आप सूक्ष्म, गुणों की अधिकता से पुष्ट, जगदव्यापी, प्रार्थना के सागर की साधना का साध्य हो । आपका तत्त्वरूप वित्त, वित्त अर्थ में अर्थहीन हो जाता है; क्योंकि अन्य वित्तों (धन) की भाँति न तो यह चोरों तथा राक्षसों द्वारा नष्ट किया जा सकता है न हरण किया जा सकता है । तुम्हें चोर दृष्टि से गुप्त रूप में न तो क्षति पहुँचाया जा सकता है और न तुम्हें प्राप्त ही किया जा सकता है । आँख से आँख मिलाकर अर्थात् तुम्हारा साक्षात्कार करके ही तुम्हें पाया जा सकता है ॥ ७७ ॥

न कोपेन न शोकेन न मानेन न दम्भतः ।
उपयोज्य तु तद्वित्तमन्यथेव विवर्धते ।।७८।।

तुम्हारा ज्ञान रूप जो वित्त है वह क्रोध, शोक, मान या दम्भ से उपयोग में नहीं लाया जा सकता है । वह धन तो इनसे अन्यथा (विमुख) होने पर ही बढ़ता है ॥ ७८ ॥

मायया मोहितः शम्भो विस्मृतं ते हृदि स्थितम् ।
मायां भिन्नं परिज्ञाय धारयात्मानमात्मना ।।७९।।

हे शम्भो ! आपने अपने आत्म तत्त्व को जो आज भी आपके हृदयस्थित है महामाया से मोहित हो भुला दिया है । आप अपने को माया से अलग जानकर आत्मरूप से अपने में धारण कीजिए । आप अपने यथार्थ रूप को समझिये ॥ ७९ ॥

मायास्माभिः स्तुता पूर्वं जगदर्थे महेश्वर ।
तया ध्यानगतं चित्तं बहुयत्नैः प्रसाधितम् ।।८०।।

हे महेश्वर ! संसार के कल्याण हेतु प्राचीन काल में हम लोगों ने भी (योग) माया की स्तुति की थी तथा उसके ध्यान में अपने चित्त को बहुत प्रयत्न से लगाया था ॥ ८० ॥

शोकः क्रोधश्च लोभश्च कामो मोहः परात्मता ।
ईर्ष्यामानौ विचिकित्सा कृपासूया जुगुप्सता ।।८१।।
द्वादशैते बुद्धिनाशहेतवो मनसो मलाः ।
न त्वादृशैर्निषेव्यन्ते शोकं त्यज ततो हर ।।८२।।

हे हर ! (१) शोक, (२) क्रोध, (३) लोभ, (४) काम, (५) मोह, (६) परात्मता (दूसरे की चाह), (७) ईर्ष्या, (८) मान, (९) विचिकित्सा (कुतर्क), (१०) कृपा, (११) असूया (निन्दा), (१२) जुगुप्सता (घृणा) ये १२ मानसिक दोष (आणव मल) बताये गये हैं । ये बारहों बुद्धिनाश के कारण हैं । ये आप जैसे श्रेष्ठ

पुरुषों द्वारा सेवन करने योग्य नहीं हैं। इसलिए अब आप सतीवियोगजन्य शोक का त्याग कीजिए ॥८१-८२॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति शाम्ना स्तुतः शम्भुः संस्मृत्यपि स्ववाञ्छितम् ।
नावदध्रे तदात्मानं शोकात् सत्या विनाकृतः ।।८३।।

मार्कण्डेय बोले– इस शाम (स्तुति) से स्तुति किये जाने पर भगवान शिव ने अपनी वांछित योजना का स्मरण कर सती के अभाव में अपने शोक को धारण नहीं किया अर्थात् छोड़ दिया ॥ ८३ ॥

अधोमुखः स्थितं वीक्ष्य ब्रह्माणं सः शनैरिदम् ।
प्राह ब्रह्मन्नायतिगं वद किं करवाण्यहम् ।।८४।।

(तथा) शनि के साथ ही स्वयं नीचे मुँह किये, ब्रह्मा को खड़े देख वे बोले—हे ब्रह्मन् ! आप अधीनता को प्राप्त नहीं हैं। बतायें मैं (आप के लिए) क्या करूँ? ॥ ८४ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्तो वामदेवेन विधाता सर्वदेवतैः ।
इदमाह तदेशस्य शोकविध्वंसकं वचः ।।८५।।

मार्कण्डेय बोले– वामदेव (शिव) के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर सभी देवताओं के साथ ब्रह्मा ने उन ईश्वर (शिव) के शोक को नष्ट करने में सक्षम ये वचन कहे ॥ ८५ ॥

।। ब्रह्मोवाच ।।

त्यज शोकं महादेव संस्मृत्यात्मानमात्मना ।
न त्वं शोकस्य सदनं परं शोकात्तवान्तरम् ।।८६।।

ब्रह्मा बोले– हे महादेव ! अपने को अपने आप में ही स्मरण करके शोक का त्याग कर दीजिये। आप शोक के घर आश्रय नहीं हैं। शोक से आप में बहुत अन्तर (दूरी) है ॥ ८६ ॥

सशोके त्वयि भूतेश देवा भूताः ससाध्वसाः ।
भ्रंशयेज्जगतीं कोपः शोकः सर्वांश्च शोषयेत् ।।८७।।

हे भूतनाथ ! आपके शोकग्रस्त होने पर सभी देवता एवं प्राणी अस्त-व्यस्त हो गये हैं। आपका क्रोध पृथ्वी को नष्ट कर देता है तथा शोक सब को सोखने लगा है ॥ ८७ ॥

त्वद्वाष्पव्याकुला पृथ्वी विदीर्णा स्यान्न चेच्छनिः ।
अवजग्राह ते वाष्पं सोऽपि कृष्णोऽभवद् हठात् ।।८८।।

यदि शनिदेव न होते तो आप के आँसुओं से व्याकुल हो यह पृथ्वी विदीर्ण हो गई होती। उन्होंने आपके अश्रुओं को ग्रहण कर लिया फलतः वे न चाहते हुए भी काले पड़ गये ॥ ८८ ॥

यत्र देवाः सगन्धर्वाः सदा क्रीडन्ति सोत्सुकाः ।
सुमेरुसदृशो योऽसौ मानतः पर्वतोत्तमः ॥८९॥

जहाँ देवगण गन्धर्वों के सहित उत्सुकता (आनन्द) पूर्वक सदैव क्रीड़ा करते हैं, ऐसा यह सुमेरु के समान ऊँचाई में सर्वश्रेष्ठ पर्वत है ॥८९ ॥

यस्मिन् प्रविश्य शिशिरे पद्मनालनिभे घनाः ।
उत्पिबन्ति स्म तोयानि पुष्करावर्तकादयः ॥९०॥

जिसमें शिशिर ऋतु प्रवेश कर कमल के नाल के समान आभा वाले धवल पुष्कर, आवर्तक आदि महामेघ जल ग्रहण करते हैं ॥९० ॥

मन्दरात् सततं यत्र कुम्भयोनिर्महामुनिः ।
गत्वा गत्वा तपस्तेपे हिताय जगतो हरः ॥९१॥

हे हर ! जहाँ महामुनि अगस्त्य संसार के कल्याण हेतु मन्दराचल पर्वत से बार-बार जाकर तपस्या किये हैं ॥ ९१ ॥

यस्मिन् स्थित्वा गिरौ पूर्वमगस्त्यस्तोयसागरम् ।
पपौ तपोबलात् कृत्वा करमध्यगतं किल ॥९२॥

प्राचीनकाल में जिस पर्वत पर स्थित होकर उन्होंने अपने तपोबल से चुल्लू में लेकर तोय-सागर का पान किया था ॥ ९२ ॥

शनैश्चरेण ते वोढुमसमर्थेन लोतकैः ।
क्षिप्तैर्विदारितस्तेऽसौ जलधाराह्वयो गिरिः ॥९३॥

शनि द्वारा तुम्हारे आँसुओं के ढोने में असमर्थ हो उन्हें छोड़ देने पर, उन्हीं अश्रुओं द्वारा उपर्युक्त जलधारा नामक यह पर्वत विदीर्ण हो गया है ॥ ९३ ॥

विभिद्य पर्वतं शम्भो वाष्पास्ते सागरं ययुः ।
भित्त्वा तु सागरं शीघ्रं प्रभीताण्डजसंकुलम् ॥९४॥

हे शम्भु ! आपके वे अश्रु इस पर्वत को विदीर्ण कर सागर में चले गये और मछलियों से भरे हुए विक्षुब्ध समुद्र को भी भेद दिया ॥ ९४ ॥

जग्मुस्ते पूर्वपुलिनं तस्य तद्विभिदुश्च ते ।
भित्वा वेलां ततः पृथ्वीं यिभिद्याशु तरङ्गिणीम् ॥९५॥

तब वे उसके पूर्वी तट पर पहुँच गये तथा उसका भी भेदन कर तट को तोड़ते हुए पृथ्वी को विदीर्ण करके नदी रूप हो लिये ॥ ९५ ॥

चक्रुर्वैतरणीं नाम्ना पूर्वसागरगामिनीम् ।
न नावा न विमानेन न द्रोण्या स्यन्दनेन च ॥९६॥

तर्तुं शक्या सा तु नदी तप्ततोयातिभीषणा ।
दुःखेन तान्तु पृथिवी विभर्ति महताधुना ।।९७।।

वह वैतरणी नामक नदी जो पूर्व सागर की ओर बहती है न नाव से, न विमान से, न रथ से और न द्रोण (एक प्रकार का घड़ा) से पार की जा सकती है। अर्थात् अपार है। वह गर्म जल से भरी हुई तथा अत्यन्त भयानक है। आज भी उसे पृथ्वी अत्यन्त दु;ख से धारण किये हुए है ॥ ९६-९७ ॥

सदा चोर्द्धगतैर्वाष्पैर्विक्षिपन्ती नभश्चरान् ।
तस्यास्तूपरि नो यान्ति देवा अपि भयातुराः ।।९८।।

वह सदैव ऊपर की ओर वाष्पों को उछाली रहती है, जिससे आकाशगामी पक्षी आदि उसमें गिर जाते हैं। देवगण भी भयवश उसके ऊपर से नहीं जाते ॥ ९८ ॥

यमद्धारं परावृत्य योजनद्वयविस्तृता ।
निम्ना वहति सम्पूर्णा भीषयन्ती जगत्त्रयम् ।।९९।।

जो यमलोक के चारों ओर दो योजन (१६ मील) चौड़ाई में स्थित है। यह नदी तीनों लोकों को भयभीत करती हुई बह रही है ॥ ९९ ॥

त्वन्निःश्वासमरुज्जातैर्व्यस्ता पर्वतकाननाः ।
समाकुलद्वीपिनागा नाद्यापि प्रतिशेरते ।।१००।।

आपके नि:श्वास की वायु से वन और पर्वतों के व्यस्त हो जाने से व्याकुल हो बाघ और हाथी आज भी आश्रय नहीं ले पा रहे हैं ॥१०० ॥

तव निःश्वासजो वायुः पीडयन् जगतः सुखम् ।
नाद्यापि प्रशमं याति बाधाहीनः सनातनः ।।१०१।।

आपके नि:श्वास से उत्पन्न वायु संसार के सुख को पीड़ित कर रही है। यह सनातन जगत आज भी बाधारहित हो विश्राम को नहीं पा रहा है ॥ १०१ ॥

सतीशवं ते वहतः शीर्यमाणा पदे पदे ।
नाद्यापि व्याकुला पृथ्वी व्याकुलत्वं विमुञ्चति ।।१०२।।

जब आप सती देवी के शव को ढो रहे थे, उस समय पग-पग पर कुचली जाती हुई, व्याकुल पृथ्वी आज भी उस व्याकुलता को छोड़ नहीं पा रही है ॥ १०२ ॥

न स्वर्गे न च पाताले तत्सत्त्वं विद्यतेऽधुना ।
यत्ते क्रोधेन शोकेन नाकुलं वृषभध्वज ।।१०३।।

हे वृषभध्वज ! इस समय न स्वर्ग में और न पाताल में कोई ऐसा प्राणी है, जो आपके क्रोध और शोक से व्याकुल न हुआ हो अर्थात् सभी व्याकुल हैं ॥ १०३ ॥

तस्माच्छोकममर्षञ्च त यक्त्वा शान्तिं प्रयच्छ नः ।
आत्मानञ्चात्मना वेत्थ धारयात्मानमात्मना ।।१०४।।

इसीलिये शोक और क्रोध का त्याग कर आप हमें शान्ति प्रदान करें। आप अपने से आत्मस्वरूप को जानकर अपने आपको धारण करें (संयत करें) ॥ १०४ ॥

सती च दिव्यमानेन व्यतीते शरदां शते ।
सा च त्रेतायुगस्यादौ भार्या तव भविष्यति ॥१०५॥

और यह सती देवी भी देवताओं के मान से १०० वर्ष (मानव मान से ३६००० वर्ष) व्यतीत हो जाने पर त्रेता युग के प्रारम्भ में वही पुनः आपकी पत्नी होवेंगी ॥ १०५ ॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

इत्युक्तो वेधसा शम्भुस्तूष्णीं ध्यानपरायणः ।
अधोमुखस्तदा प्राह ब्रह्माणममितौजसम् ॥१०६॥

मार्कण्डेय बोले–ब्रह्मा द्वारा ऐसा कहे जाने पर शिव कुछ समय के लिए ध्यानस्थ हो मौन हो गये। तब अमित तेजस्वी, नीचे मुख किये हुये (विनम्र) ब्रह्मा से कहे—॥ १०६ ॥

॥ ईश्वर उवाच ॥

यावद् ब्रह्मन्नहं शोकादुत्तरामि सतीकृतान् ।
तावन्मम सखा भूत्वा कुरु शोकापनोदनम् ॥१०७॥

ईश्वर बोले–हे ब्रह्म देव ! जब तक मैं सतीवियोग से उत्पन्न शोक से पार नहीं पाता तब तक आप मेरे साथ रहकर शोक को दूर कीजिये ॥ १०७ ॥

तस्मिन्नवसरे यत्र यत्र गच्छाम्यहं विधे ।
तत्र तत्र भवान् गत्वा शोकहानिं करोतु मे ॥१०८॥

हे विधि ! उस अवसर पर मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ, वहाँ-वहाँ आप भी जाकर मेरे शोक का नाश कीजिये ॥ १०८ ॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

एवमस्त्विति लोकेश प्रोक्त्वा वृषभवाहनम् ।
हरेण सार्धं कैलासं गन्तुं चक्रे मनस्ततः ॥१०९॥

तब लोकेश ब्रह्मा ने वृषभवाहन शिव से ऐसा ही हो कह कर उनके साथ कैलास पर जाने का मन बनाया ॥ १०९ ॥

ब्रह्मणा सहितं शम्भुं कैलासगमनोत्सुकम् ।
समासेदुर्गणा दृष्ट्वा नन्दिभृंगिमुखाश्च ये ॥११०॥

जब शिव ब्रह्मा के सहित कैलास पर्वत पर जाने को उत्सुक हुए तो इसे देखकर नन्दि, भृंगी आदि जो उनके प्रमुख गण थे, वहाँ आ गये ॥ ११० ॥

ततः पर्वतसंकाशो वृषभः पुरतो विधेः ।
उपतस्थे सिताभ्रस्य सदृशो गैरिको यथा ।।१११।।

तब ब्रह्मा के सम्मुख वृषभ उसी भाँति स्थित हुआ जैसे गैरिक लाल पर्वत के समीप श्वेत बादल खड़ा हो ।। १११ ।।

वासुक्याद्याश्च ये सर्पा यथास्थानञ्च ते हरम् ।
भूषयांचक्रुरुद्रम्य शिरोबाह्वादिषु द्रुतम् ।।११२।।

तब वासुकी आदि जो सर्प थे, उन्होंने शिव के सिर एवं भुजा आदि स्थानों पर शीघ्र जाकर यथास्थान सुसज्जित किया ।। ११२ ।।

ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च महादेवः सतीपतिः ।
सर्वैः सुरगणैः सार्धं जग्मुः प्रालेयपर्वतम् ।।११३।।

तब ब्रह्मा, विष्णु तथा सती के पति महादेव शिव, सभी देवताओं के साथ हिमालय पर्वत पर गये ।। ११३ ।।

ततस्तानौषधिप्रस्थान् निःसृत्य नगराद्गिरिः ।
सर्वैरमात्यैः सहित उपतस्थे सुरोत्तमान् ।।११४।।

तब अपने सभी मन्त्रियों सहित नगर से बाहर आकर हिमालय ने अपने यहाँ औषधिप्रस्थ से पधारे श्रेष्ठ देवगणों का स्वागत किया ।। ११४ ।।

ततः सम्पूजितास्तेन सुरौघा गिरिणा सह ।
सचिवैः पौरवर्गैश्च मुमुदुस्ते सुरर्षभाः ।।११५।।

तब वह देव समूह, नागरिकों तथा सचिवों सहित हिमालय द्वारा पूजित हुआ और श्रेष्ठ देवगण भी पूजा प्राप्त कर प्रसन्न हो गये ।। ११५ ।।

ततो ददर्श तत्रैव गिरीन्द्रस्य पुरे हरः ।
विजयामौषधिप्रस्थे सखीभिर्गौतमात्मजाम् ।।११६।।

तत्पश्चात् वहीं हिमालय की नगरी में शिव ने औषधि शिखर पर गौतम ऋषि की पुत्री विजया को सखियों के साथ देखा ।। ११६ ।।

सापि सर्वान् सुरवरान् प्रणम्य हरमुक्तवान् ।
चुक्रोश मातृभगिनीं पृच्छन्तीं गिरिशं सतीम् ।।११७।।

उसने भी सभी श्रेष्ठ देवों को प्रणाम किया तथा आक्रोश वश शिव से अपनी मौसी सती के विषय में पूछते हुए कहा— ।। ११७ ।।

क्व सती ते महादेव शोभसे न तया विना ।
विस्मृतापि त्वया तात मद्हृदो नापसर्पति ।।११८।।

हे महादेव ! मेरी सती मौसी कहाँ है ? आप उनके बिना सुशोभित नहीं हो रहे हो । हे तात ! यद्यपि आपने उन्हें भुला दिया है फिर भी वे मेरे हृदय से दूर नहीं हटती।। ११८ ।।

ममाग्रे सा पुरा प्राणान् यदा त्यजति कोपतः ।
तदैवाहं शोकशल्यविद्धा नाप्नोमि वै सुखम् ।।११९।।

प्राचीनकाल में उसने जब क्रोध में आकर अपने प्राणों का परित्याग किया था तभी मैं शोकरूपी काँटे से विंध गई थी और आज भी सुख नहीं पा रही हूँ ।। ११९ ।।

इत्युक्त्वा वदनं वस्त्रप्रान्तेनाच्छाद्य सा भृशम् ।
रुदन्ती प्रापतद्भूमौ कश्मलञ्चाविशत्तदा ।।१२०।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे शिवविषादवर्णनम् नाम अष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

ऐसा कहते हुए आँचल से मुँह ढक कर वह बहुत रोई और रोते-रोते पृथ्वी पर गिरकर मूर्छित हो गयीं ।। १२०।।

।। श्रीकालिकापुराण में शिवविषादवर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। १८ ।।



एकोनविंशोऽध्यायः
सन्ध्यातपश्चरणम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततस्तां पतितां दृष्ट्वा तदा दाक्षायणीं स्मरन् ।
न शशाक हवै सोढुं शोकमुद्वेगसम्भवम् ।।१।।
भ्रष्टधैर्यस्ततः शम्भुर्बाष्पव्याकुललोचनः ।
पश्यतां सर्वदेवानां चिन्ताध्यानपरोऽभवत् ।।२।।

तब शिव ने उस मूर्छित हो भूमि पर गिरी हुई विजया को देखा और दक्ष-कन्या सती का स्मरण करते हुए शोक के उद्वेग को सह न सके। आँसुओं से उनके नेत्र भर गये तथा धैर्य नष्ट हो गया। तब वे देवताओं के देखते ही देखते चिन्ता या ध्यान में लीन हो गये ॥ १-२ ॥

अथाश्वास्य तदा धाता विजयां शोककर्षिताम् ।
हरमाश्वासयन् सान्त्वपूर्वमेतदुवाच ह ।।३।।

तब ब्रह्मा ने शोक पीड़ित विजया को आश्वस्त किया तथा शिव को सान्त्वना देते और आश्वस्त करते हुये कहा— ॥ ३ ॥

।। ब्रह्मोवाच ।।

पुराणयोगिन् भगवन्न शोकस्तव युज्यते ।
परधाम्नि तव ध्यानमासीत् कस्मात् स्त्रियामिह ।।४।।

ब्रह्मा बोले–हे भगवन्! आप पुराने योगी हो। इस प्रकार शोक करना आपके योग्य नहीं है। आप का ध्यान तो सदा परमधामवासी तत्त्व में रहता था। इस समय स्त्री में क्यों लगा है? ॥ ४ ॥

प्रभविष्णुः परः शान्तः सूक्ष्मः स्थूलतरः सदा ।
तव स्वभावश्च कथं शोकेन बहुधाकृतः ।।५।।

आप प्रभविष्णु (प्रकृष्ट पुण्यात्मा), सर्वश्रेष्ठ, शान्त, सूक्ष्म और सदैव स्थूल से भी स्थूल हैं। आज आपका यह स्वभाव शोक द्वारा क्यों छिन्न-भिन्न किया जा रहा है? ॥ ५ ॥

निरञ्जनं ध्यानगम्यं यतीनां
परात्परं निर्मलं सर्वगामि ।

मलैर्हीनं रागलोभादिभिर्यत्
तत् ते रूपं त्वद्भूयों तद् गृह्ण बुद्ध्या ।।६।।

आपका रूप निरञ्जन यतियों के द्वारा ध्यानपूर्वक जाननेवाला, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ, निर्मल, सर्वत्र गतिशील, राग लोभादि मलों से रहित है। वह आपसे उत्पन्न है, आप उसे बुद्धिपूर्वक ग्रहण करें ॥ ६ ॥

शोको लोभः क्रोधमोहौ च हिंसा
मानो दम्भो मदमोहप्रमोदाः ।
ईर्ष्यासूयाक्षान्तिरसत्यता च
चतुर्दश ज्ञाननाशा हि दोषाः ।।७।।

क्योंकि शोक, लोभ, क्रोध, मोह, हिंसा, मान, दम्भ, मद, मोह, प्रमोद, ईर्ष्या, निन्दा, अशान्ति (असहनशीलता), असत्यता ये चौदह ज्ञान का नाश करने वाले दोष बताये गये हैं ॥ ७ ॥

ध्यानेन त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति ।
त्वं विष्णुरूपी जगतां विधाता ।
या ते महामोहकरी सतीति
तवैव सा लोकमोहाय माया ।।८।।

योगीजन ध्यान मार्ग से आपका चिन्तन किया करते हैं। आप विष्णु रूप हो, सम्पूर्ण जगत के विधाता, निर्माता हो। ये जो आपको अत्यधिक मोह में डालने वाली सती देवी हैं, ये लोक को मोहनेवाली आपकी अपनी ही माया शक्ति हैं ॥ ८ ॥

या सर्वलोकाञ्जननेऽथ गर्भे
विमोहयन्ती पूर्वदेहस्य बुद्धिम् ।
विनाश्य बाल्यं कुरुते हि जन्तो-
र्विमोहयत्यद्य सा त्वं सशोकम् ।।९।।

जो जन्म के समय गर्भ में ही सभी प्राणियों की पूर्व सम्बन्धी बुद्धि को मोहग्रस्त कर लेती है, जो बाल्यावस्था का विनाश कर प्राणियों को मोहित करती है। वही आज आपको शोकाभिभूत कर रही है ॥ ९ ॥

सतीसहस्राणि पुरोज्झितानि
त्वया मृतानि प्रतिकल्पमेवम् ।
हिताय लोकस्य चराचरस्य
पुनर्गृहीता च तथा त्वयेयम् ।।१०।।

प्रत्येक कल्पों में आपके द्वारा इस प्रकार मरी हुई हजारों सतियाँ, इसी प्रकार से पूर्ववर्ती छोड़ी गई तथा चराचर जगत के कल्याण हेतु आपके द्वारा पुनः-पुनः ग्रहण की गई हैं ॥ १० ॥

भवान्तरे ध्यानयोगेन पश्य
सतीसहस्राणि मृतानि यानि ।
यथा तथा त्वं परिवर्जितश्च
यथास्ति सा वा वृषराजकेतो ।।११।।

जो हजारों सतियाँ मरी हैं उन्हें आप अपने अन्तर में ध्यान योग से देखिये। हे वृषराज को अपनी ध्वजा में धारण करने वाले ! जिस प्रकार आप अलग हुए या जैसी वह सती हैं, उसे भी आप ध्यानपूर्वक देखिये ॥ ११ ॥

यतः समुत्पद्य मुहुर्भवन्तं
सा प्राप्स्यतीश त्रिदशैदुरापम् ।
पुनश्चजाया यादृशी ते भवित्री
तत्तत् सर्वं ध्यानयोगेन पश्य ।।१२।।

हे ईश ! जिससे उत्पन्न हो वह आप जैसे देव दुर्लभ व्यक्तित्व को प्राप्त करेंगी। जिस प्रकार वे पुनः आपकी पत्नी होंगी। उन सबको आप ध्यान योग से देखिये ॥ १२ ॥

शिप्रा दर्शन

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एवं बहुविधं ब्रह्मा व्याहरत् साम शङ्करम् ।
गिरिराजपुरात्तस्माद्गमयामास निर्जनम् ।।१३।।

इस प्रकार बहुत विधियों से ब्रह्मा ने शिव को ढाँढ़स बँधाया। तदन्तर वे (शिव) गिरिराज हिमालय नगर से निर्जन वन में चले गये ॥ १३ ॥

ततो हिमवतः प्रस्थे प्रतीच्यां तत्पुरस्य च ।
शिप्रं नाम सरः पूर्णं ददृशुर्द्रुहिणादयः ।।१४।।

तब हिमालय के शिखर पर उनके नगर से पश्चिम की ओर शिप्र नामक परिपूर्ण सरोवर को ब्रह्मादि देवताओं ने देखा ॥ १४ ॥

तद्रहस्थानमासाद्य ब्रह्मशक्रादयः सुराः ।
उपविष्टा यथान्यायं पुरस्कृत्य महेश्वरम् ।।१५।।

उस एकान्त स्थान पर पहुँचकर, महेश्वर को आगे करके ब्रह्मा, इन्द्रादि देवता न्यायानुकूल यथाक्रम बैठ गये ॥ १५ ॥

तं शिप्रसंज्ञं कासारं मनोज्ञं सर्वदेहिनाम् ।
शीतामलजलं सर्वैर्गुणैर्मानससम्मितम् ।
दृष्ट्वा क्षणं हरस्तस्मिन् सोत्सुकोऽभूदवेक्षणे ।।१६।।

सभी प्राणियों को सुन्दर लगने वाले, शीतल-निर्मल जल आदि सभी गुणों के कारण मान-सरोवर के समान श्रेष्ठ शिप्र नामक सरोवर को देखकर शिव उसे देखने के लिए समुत्सुक हुये ॥१६॥

शिप्रां नाम नदीं तस्मान्निःसृतां दक्षिणोदधिम् ।
गच्छन्तीञ्च ददर्शासौ पावयन्तीं जगज्जनान् ।।१७।।

उन्होंने उससे निकल कर दक्षिण सागर को जाती हुई तथा संसार के लोगों को पवित्र करती हुई शिप्रा नामक नदी को भी देखा ।।१७ ।।

तत्सरः पूर्णमासाद्य चरतः शकुनान् बहून् ।
नानादेशागताञ्छम्भुर्वीक्षाञ्चक्रे मनोरमान् ।।१८।।

उस समय शिव ने अनेक देशों से आये हुए तथा उस भरे हुये सरोवर पर पहुँचकर विहार करते हुए बहुत से सुन्दर पक्षियों को देखा ।। १८ ।।

गम्भीरपवनोद्धुतिसम्पन्नेषु विराजितः ।
कोकद्वन्द्वांस्तरङ्गेषु ददर्श नृत्यतो यथा ।।१९।।

गम्भीर वायु द्वारा उछाल से युक्त तरंगों पर विराजमान हो चकवा-चकई के जोड़े जिस प्रकार नृत्य कर रहे थे, शिव ने देखा ।। १९ ।।

मद्गुचञ्चुषु सम्पृक्तांस्तरङ्गान् सः पृथक् पृथक् ।
वीक्षाञ्चक्रे यथा तोयादुत्पतत्पतगान् मुहुः ।।२०।।

जिस प्रकार वे पक्षी बार-बार जलकाकों के चोंचों से सम्पृक्त तरंगों पर अलग अलग उछल रहे थे, उन्होंने देखा ।। २० ।।

कादम्बैः सारसैर्हंसैः श्रेणीभूतैस्तटे तटे ।
भङ्गीकृतैर्यथा शङ्खैः सागरस्तादृशं सरः ।।२१।।

उन्होंने किनारे-किनारे शृङ्खलाबद्ध कलहंसो, हंसों, सारसों से सुशोभित सरोवर को टूटे हुए शङ्खों से युक्त सागर की भाँति देखा ।। २१ ।।

महामीनाहतिक्षुब्धैस्तोयशब्दोत्थसाध्वसैः ।
पक्षिभिर्विहितैः शब्दस्तत्र तत्र मनोहरम् ।।२२।।

वहाँ बड़ी-बड़ी मछलियों के मार से क्षुब्धजल की अस्त-व्यस्तता से उत्पन्न शब्द समूहों तथा पक्षियों द्वारा उच्चारित सुन्दर शब्द विराजमान थे ।। २२ ।।

प्रफुल्लैः पङ्कजैश्चैव क्वचिज्जालिर्मनोहरैः ।
सरो रेजे यथा स्वर्गो नक्षत्रैः स्थूलसूक्ष्मकैः ।।२३।।

वह सरोवर खिले हुए कमलों तथा कुछ सुन्दर कलियों से उसी प्रकार शोभायमान हो रहा था जैसे स्वर्ग (आकाश) छोटे बड़े नक्षत्रों से सुशोभित होता है ।। २३ ।।

महोत्पलानां मध्येषु विरलं नीलमुत्पलम् ।
रेजे नक्षत्रमध्येषु नीलनीरदखण्डवत् ।।२४।।

बड़े-बड़े कमल दलों के बीच कम मात्रा में पाये जाने वाले नीलकमल नक्षत्रों के बीच काले बादलों के समान सुशोभित हो रहे थे ।। २४ ।।

पद्मसङ्घात-मध्यस्था हंसाः कैश्चिन्न संस्तुताः ।
प्रफुल्लपङ्कजभ्रान्त्या निश्चलाः स्वर्गवासिभिः ।।२५।।

पद्मसमूहों के मध्य विचरते हंसों की कौन नहीं स्तुति करता अर्थात् सभी करते हैं। खिले हुए कमल निश्चल स्वर्गवासी दिव्यजनों का भ्रम पैदा करते थे ॥ २५ ॥

द्विधा दृष्ट्वा शोणशुक्ले पद्मे फुल्ले विधिः स्वके ।
कायेऽरुणत्वं फुल्लत्वं स्वासनाब्जे निनिन्द च ।।२६।।

ब्रह्मा ने लाल एवं सफेद दो प्रकार के खिले हुए कमलों को देखकर अपने शरीर की लालिमा की तथा अपने आसन के कमल की उत्फुल्लता की निन्दा की ॥ २६ ॥

फुल्लं महोत्पलं वीक्ष्य सरसस्तस्य शङ्करः ।
मौलीन्दुकान्तिमलिनं हस्तस्थं नोत्पलं ममे ।।२७।।

शिव ने उस सरोवर में खिले हुए विशाल नीलकमल को देख कर जटा में स्थित चन्द्रमा की कांति से फीके पड़े अपने हाथ में लिए नीलकमल को महत्त्व नहीं दिया ॥ २७ ॥

हरेः स्वचक्रसूर्यांशुफुल्लं हस्तगताम्बुजम् ।
सरः पद्मञ्च सदृशं मेने वीक्ष्य समन्ततः ।।२८।।

हरि ने अपने चक्ररूपी सूर्य की किरणों से खिले हुए, हाथ में धारण किये कमल और सरोवर के कमल को सब ओर से देखकर समान ही माना ॥ २८ ॥

तत्सरो वीक्ष्य सम्पूर्णं नानापक्षिसमाकुलम् ।
पद्मिनीशतसञ्छन्नं नीलोत्पलचयैर्वृतम् ।।२९।।
देवदारुतरूणाञ्च तटस्थानां प्रसूनजैः ।
परागैर्वासितजलं हृदयानन्दकारकम् ।।३०।।
तीरे तीरे महावृक्षैः शाद्वलैः परिवारितम् ।
दृष्ट्वा शम्भुः क्षणं तत्र सोत्सुकः शोकवर्जितः ।
शिप्रामालोकयामास निःसृतां सरसस्ततः ।। ३१ ।।

जल से भलीभाँति भरे, अनेक पक्षियों के समूह से सुशोभित, सैकड़ों कमलिनियों से ढँके, नीले कमल के समूह से घिरे हुए, किनारे पर स्थित देवदारु के वृक्षों के फूलों से उत्पन्न परागों से सुगन्धित, हृदय को आनन्दित करनेवाले, किनारे-किनारे बड़े वृक्षों, घासों से घिरे हुए उस सरोवर को देखकर शिव क्षण भर के लिए शोक से मुक्त हो, उत्सुकता पूर्वक उससे उत्पन्न शिप्रा नदी को देखने लगे ॥ २९-३१ ॥

यथेन्दुमण्डलाद् गङ्गा मेरोर्जाम्बुनदी यथा ।
तथा दृष्ट्वा महेशेन शिप्रा शिप्राद्विनिःसृता ।।३२।।

जैसी चन्द्र मण्डल से निकली गङ्गा तथा मेरु से निकली स्वर्ण नदी देखी जाती है वैसी ही शिप्रसरोवर से निकली शिप्रा नदी शिव द्वारा देखी गई ॥ ३२ ॥

शिप्राजन्म-कथा

।। ऋषय ऊचुः ।।

शिप्राह्वयः कः कासारः कथं शिप्रा ततः सृता ।
कीदृशोऽस्य प्रभावश्च तत् समाचक्ष्व विस्तरात् ।।३३।।

ऋषिगण बोले– शिप्रा नामक कौन-सा सरोवर है और उससे शिप्रा नदी कैसे उत्पन्न हुई? इसका कैसा प्रभाव है ? वह विस्तार से बताइये ॥ ३३॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे यथा शिप्रा नदी सृता ।
शिप्रस्य च महाभागाः प्रभावं गदतो मम ।।३४।।

मार्कण्डेय बोले– हे महाभाग मुनिगण ! शिप्रा नदी जैसे निकली तथा इसका जैसा प्रभाव है, यह मेरे द्वारा कहा हुआ, आप सभी सुनिये ॥ ३४ ॥

वसिष्ठेन यदा देवी परिणीता त्वरुन्धती ।
तदा वैवाहिकैस्तोयैः शिप्रासिन्धुरभूद्द्विजाः ।।३५।।

हे ब्राह्मणों ! जब महर्षि वशिष्ठ से देवी अरुन्धती का विवाह हुआ उस समय विवाह में प्रयुक्त जल से शिप्रा नदी उत्पन्न हुई ॥ ३५ ॥

सा समागत्य पतिता शिप्रे सरसि शासनात् ।
यथा मन्दाकिनी विष्णुपादादब्धौ शिवोदका ।।३६।।

वह पूर्व निर्देशानुसार शिप्र सरोवर में उसी प्रकार आ गिरी जिस प्रकार कल्याणकारी जलवाली मन्दाकिनी (गंगा) विष्णु के चरणों से उत्पन्न हो सागर में मिलती हैं ॥ ३६ ॥

ब्रह्मविष्णुमहादेवैस्तोयं सिक्तं तयोः पुरा ।
विवाहे शान्तिविहितं गायत्रीद्रुपदादिभिः ।।३७।।

प्राचीनकाल में वशिष्ठ और अरुन्धती के विवाह के समय ब्रह्मा-विष्णु तथा महेश ने गायत्री एवं दुप्रदादि छन्दों द्वारा इस जल से शान्ति कर्म के अन्तर्गत उन दोनों का अभिषेक किया था ॥ ३७ ॥

एकीभूतन्तु तत्तोयं मानसाचलकन्दरात् ।
तत् सर्वं पतितं शिप्रे कासारे सागरोपमे ।।३८।।

वही (तीनों द्वारा अभिषेक में प्रयुक्त जल) इकट्ठा होकर मानस पर्वत की कन्दराओं से निकलकर वह समस्त जल सागर के समान विस्तृत शिप्र नामक सरोवर में गिरा ॥ ३८ ॥

देवानामुपभोगार्थं पुरा धात्रा विनिर्मितम् ।
सरः शिप्राह्वयं सानौ प्रालेयस्य गिरेर्महत् ।।३९।।

शिप्र नामक यह सरोवर पहले ब्रह्मा द्वारा देवताओं के उपभोग हेतु हिमालय पर्वत की महान चोटी पर बनाया गया था ॥ ३९ ॥

तत्राद्यापि सुनासीरः सहितश्चाप्सरोगणैः ।
शचीसहायो रमते प्रसन्ने सलिले शुभे ।।४०।।

वहाँ आज भी इसके निर्मल, शुभ जल में देवराज इन्द्र अपनी अप्सराओं सहित शचीदेवी के साथ विहार करते हैं ॥ ४० ॥

तद्देवैः सर्वदा यत्नाद्रक्ष्यतेऽद्यापि रत्नवत् ।
न तत्र मानुषः कश्चिद् यातुं शक्नोति योऽमुनिः ।।४१।।

वह सरोवर सदैव रत्न की भाँति आज भी प्रयत्नपूर्वक रक्षा किया जाता है। वहाँ जो मुनि न हो, ऐसा कोई मनुष्य नहीं जा सकता ॥ ४१ ॥

तपः प्रभावान्मुनयः प्रयान्ति सरसीं शुभाम् ।
शिप्राख्यान्तु महायत्नात् स्नातुं पातुञ्च तज्जलम् ।।४२।।

मुनिगण तप के प्रभाव से अत्यधिक प्रयत्नपूर्वक उस शिप्र नामक सरोवर में स्नान करने एवं उसका जल पीने के लिए पहुँच जाते हैं ॥ ४२ ॥

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मनुष्याः दैवयोगतः ।
अवश्यममरत्वाय गच्छन्त्यविकलेन्द्रियाः ।।४३।।

दैवयोग से मनुष्य वहाँ स्नान कर, वहाँ का जल पीकर बिना किसी इन्द्रिय-विकार के अमरता को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है ॥ ४३ ॥

वृद्धिं गच्छति वर्षासु सरो नैतद्द्विजोत्तमाः ।
न ग्रीष्मे शोषतां याति सर्वदा तद्यथा तथा ।।४४।।

हे द्विजोत्तमों ! यह सरोवर न तो वर्षा में बढ़ता है और न गर्मी में सूखता है। हमेशा ज्यों का त्यों बना रहता है ॥ ४४ ॥

तत्र तत् पतितं तोयं वसिष्ठोद्वाहसम्भवम् ।
ब्रह्मविष्णुमहादेवकरपद्मैरुदीरितम् ।।४५।।
ववृधे शिप्रगर्भस्थमन्वहं द्विजसत्तमाः ।
तत्र वृद्धन्तु तत्तोयञ्चक्रेण च हरिः पुरा ।।४६।।
गिरेः शृङ्गं विनिर्भिद्य लोकानां हितकाम्यया ।
पृथिवीं प्रेरयामास कृत्वा पुण्यतमां नदीम् ।।४७।।

हे द्विजोत्तमों ! वहाँ वशिष्ठ के विवाह में उत्पन्न ब्रह्मा-विष्णु-महादेव के करकमलों से गिराया हुआ यह जल शिप्रसरोवर के गर्भ में प्रतिदिन बढ़ता रहा। तब प्राचीनकाल में विष्णु ने उस बढ़े हुए जल को अपने चक्र से पर्वत की चोटियों को भेदकर संसार के कल्याण की कामना से पुण्यतमा नदी के रूप में पृथ्वी की ओर प्रेरित किया ॥ ४५-४७ ॥

परिवृत्य महेन्द्रं सा पुनाना स्नानकारिणः ।
दक्षिणं सागरं याता फलदा जाह्नवी समा ॥४८॥

वह स्नान करने वालों को पवित्र करनेवाली नदी महेन्द्र पर्वत की परिक्रमा करती हुई दक्षिण में, सागर में चली गयी। वह गङ्गा के समान ही फल देने वाली थी ॥ ४८ ॥

शिप्राख्यात् सरसो यस्मान्निःसृता सा महानदी ।
अतः शिप्रेति तन्नाम पुरैव ब्रह्मणा कृतम् ॥४९॥

जिस सरोवर से यह महान नदी निकली थी, वह सरोवर शिप्र नामक था। अतः प्राचीनकाल में ब्रह्मा ने इस नदी का 'शिप्रा' यह नामकरण किया ॥ ४९ ॥

कार्तिक्यां पौर्णमास्यां तु तस्यां यः स्नाति मानवः ।
स याति विष्णुसदनं विमानेनातिदीप्यता ॥५०॥

कार्तिक पूर्णिमा में जो मनुष्य इसमें स्नान करता है, वह अत्यन्त प्रकाशित विमान से विष्णुलोक को जाता है ॥ ५० ॥

कार्तिकं सकलं मासं स्नात्वा शिप्राजले नरः ।
प्रयाति ब्रह्मसदनं पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥५१॥

सम्पूर्ण कार्तिक मास में शिप्रा के जल में स्नान कर मनुष्य ब्रह्मलोक को जाता है वहाँ सुखोपभोग के पश्चात् मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ ५१ ॥

॥ ऋषय ऊचुः ॥

वसिष्ठेन कथं देवी परिणीता त्वरुन्धती ।
कस्य सा तनया ब्रह्मन्नुत्पन्ना वा वदस्व नः ॥५२॥

ऋषिगण बोले– हे ब्रह्मन् ! देवी अरुन्धती वसिष्ठ से कैसे व्याही गईं? वे किसकी पुत्री थीं ? या वे उत्पन्न न होकर प्रकट हुई थीं, यह हमें बताइये ॥ ५२ ॥

पतिव्रतासु प्रथिता त्रिषु लोकेषु या वरा ।
भर्तृपादौ विनान्यत्र या न चक्षुः प्रदास्यति ॥५३॥
यस्याः स्मृत्वा कथामात्रं माहात्म्यसहितं स्त्रियः ।
प्रेत्येह च सतीत्वं वै प्राप्नुवन्त्यन्यजन्मनि ॥५४॥

जो श्रेष्ठ देवी तीनों लोकों में पतिव्रताओं में सिरमौर हैं, जो पति के चरणों को छोड़ कहीं दूसरी ओर अपने नेत्रों को नहीं डालतीं, माहात्म्य के सहित जिसकी कथामात्र का स्मरण कर स्त्रियां इस वर्तमान जन्म में सतीत्व को प्राप्त कर, अन्य जन्मों में भी प्राप्त करती हैं ॥ ५३-५४ ॥

आसन्नकालधर्मो यां न पश्यति तथा शुचिः ।
पुरुषः पापकारी च तस्या जन्म वदस्व नः ॥५५॥

जो इतनी पवित्र हैं कि काल धर्मों के रहते हुए भी पापी मनुष्य उसे नहीं देख सकता ऐसी श्रेष्ठतमा अरुन्धती देवी का चरित्र हमें बताइये ॥ ५५ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

शृणुध्वं सा यथा जाता यस्य वा तनया शुभा ।
यथावाप वसिष्ठं सा यथाभूता प्रतिव्रता ।।५६।।

मार्कण्डेय बोले– जिस प्रकार वे (अरुन्धती) उत्पन्न हुईं, जिसकी वे सुन्दरी कन्या थीं, जैसे वे वशिष्ठ को प्राप्त हुईं तथा जैसे वे प्रतिव्रता हुई इन प्रसङ्गों को आप लोग सुनिये ॥ ५६ ॥

या सा सन्ध्या ब्रह्मसुता मनोजाता पुराभवत् ।
तपस्तप्त्वा तनुं त्यक्त्वा सैव भूता त्वरुन्धती ।।५७।।

जो वह ब्रह्मा की पुत्री सन्ध्या पहले उनके मन से उत्पन्न हुई थी, वही तपस्या करके, अपने उस सन्ध्या शरीर को छोड़कर अरुन्धती के रूप में उत्पन्न हुई।।५७।।

मेधातिथेः सुता भूत्वा मुनिश्रेष्ठस्य सा सती ।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां वचनाच्चरितव्रता ।
वव्रे पतिं महात्मानं वसिष्ठं संशितव्रतम् ।।५८।।

उस सती ने मुनिश्रेष्ठ मेधातिथि की पुत्री हो ब्रह्मा, विष्णु और महेश के वचनों के अनुसार आचरण कर तीव्र-व्रती महात्मा वशिष्ठ का पति रूप में वरण किया ॥ ५८ ॥

।। ऋषय ऊचुः ।।

कथं तया तपस्तप्तं किमर्थं कुत्र सन्ध्यया ।
कथं शरीरं सा त्यक्त्वा भूता मेधातिथेः सुता ।।५९।।

ऋषिगण बोले–सन्ध्या द्वारा कहाँ और क्यों तपस्या की गई ? क्यों वह अपना शरीर छोड़ मेधातिथि की पुत्री हुई? ॥ ५९ ॥

कथं वा गदितं देवैर्ब्रह्मविष्णुशिवैः पतिम् ।
वसिष्ठं सुमहात्मानं सा वव्रे संशितव्रतम् ।।६०।।

कैसे उसने ब्रह्मा विष्णु शिव से कहे जाने पर संशित (तीव्र) व्रती महात्मा वशिष्ठ का पतिरूप में वरण किया ॥ ६० ॥

तन्नः सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण द्विजोत्तम ।
एतन्नः श्रोष्यमाणानां चरितं द्विजसत्तम ।
अरुन्धत्या महासत्याः परं कौतुहलं महत् ।।६१।।

हे द्विजोत्तम ! वह सब आप हमें विस्तार से सुनायें; क्योंकि महासती अरुन्धती के इस चरित को सुनने के लिए हमें अत्यन्त उत्सुकता है ॥ ६१ ।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ब्रह्मापि तनयां सन्ध्यां दृष्ट्वा पूर्वमथात्मनः ।
कामाय मानसञ्चक्रे त्यक्ता सा च सुतेति वै ।।६२।।

मार्कण्डेय बोले–प्राचीनकाल में ब्रह्मा ने अपनी पुत्री सन्ध्या को देखकर कामहेतु मन बनाया किन्तु सुता है, ऐसा ज्ञान होते ही उसे छोड़ दिया ।। ६२ ।।

तस्यांच चलितं चित्तं कामवाणविलोडितम् ।
ऋषीणां प्रेक्षतां तेषां मानसानां महात्मनाम् ।।६३।।
भर्गस्य वचनं श्रुत्वा सोपहासविधिं प्रति ।
आत्मनश्चलचित्तत्वममर्यादमृषीन् प्रति ।।६४।।
कामस्य तादृशं भावं मुनिमोहकरं मुहुः ।
दृष्ट्वा सन्ध्या स्वयं तत्र त्रपामायाति दुःखिता ।।६५।।

कामवाण से विक्षुब्ध हुये, अपने चंचलचित्त, देखने वाले महात्मा ऋषियों के मन को देख, ब्रह्मा का उपहास करते हुए शिव के कहे वचनों को सुन, अपने चित्त की चंचलता, ऋषियों के प्रति मर्यादाहीनता, बार-बार मुनियों को भी मोह में डालनेवाले काम के भाव को देखकर वहाँ सन्ध्या स्वयं लज्जावश दुःखी हो गई ।। ६३-६५ ।।

ततस्तु ब्रह्मा शप्ते मदने तदनन्तरम् ।
अन्तर्भूते विधौ शम्भौ गते चापि निजास्पदम् ।।६६।।
अमर्षवशमापन्ना सन्ध्या ध्यानपराभवत् ।
ध्यायन्ती क्षणमेवाशु पूर्ववृत्तं मनस्विनी ।।६७।।

वहीं सन्ध्या ब्रह्मा द्वारा कामदेव को शाप दिये जाने के बाद उनके अन्तर्हित हो जाने तथा शिव के अपने स्थान पर चले जाने के पश्चात् क्रोधवश ध्यानस्थ हो गई और क्षणभर में ही पूर्ववृत्तान्त का स्मरण करने लगी।। ६६-६७ ।।

इदं विममृशे सन्ध्या तस्मिन् काले यथोचितम् ।
उत्पन्नमात्रां मां दृष्ट्वा युवतीं मदनेरितः ।
अकार्षीत् सानुरागोऽयमभिलाषं पितामहः ।।६८।।
सर्वेषां मानसानाञ्च मुनीनां भावितात्मनाम् ।
दृष्टैव माममर्यादं सकाममभवन् मनः ।।६९।।

तब सन्ध्या ने उस समय के अनुरूप यह विचार किया—उत्पन्न होते ही मुझ युवती को देखकर काम से प्रेरित हो पितामह ब्रह्मा अनुरागवश मेरी अभिलाषा करने लगे । आत्मभाव में लीन रहने वाले सभी मुनियों का मन मुझे देखते ही मर्यादाहीन हो कामग्रस्त हो गया ।। ६८-६९ ।।

ममापि मथितं चित्तं मदनेन दुरात्मना ।
येन दृष्ट्वा मुनीन् सर्वान् चलितं मे मनोभृशम् ।।७०।।

दुरात्मा मदन ने मेरे भी चित्त को मथ दिया था, जिससे सभी मुनियों को देखकर मेरा भी मन बहुत अधिक चञ्चल हो उठा था ।। ७० ।।

फलमेतस्य पापस्य मदनः स्वयमाप्तवान् ।
स्वयं शशाप कुपितः शम्भोरग्रे पितामहः ।।७१।।

इस पाप का फल स्वयं कामदेव ने तभी प्राप्त कर लिया जब शिव के सामने ही पितामह ब्रह्मा ने कुपित हो उसे शाप दिया ।। ७१ ।।

ममोचितं फलं सर्वं प्राप्तुमिच्छामि साम्प्रतम् ।।७२।।
यन्मां पिता भ्रातरश्च सकामामपरोक्षतः ।
दृष्ट्वा चक्रुः स्पृहां तस्मान्न मत्तः काऽपि पापकृत् ।।७३।।

अब मैं भी अपने अनुरूप फल पाने की इच्छा करूँ; क्योंकि जिस मुझे देखकर अपरोक्ष रूप में मेरे पिता एवं भाई ही काम मोहित हो गये, उसे देखकर कोई भी मत्त पापी मेरी स्पृहा न कर सके ।। ७२-७३ ।।

ममापि कामभावोऽभूदमर्यादं समीक्ष्य तान् ।
पत्याविव स्वके ताते सर्वेषु सहजेष्वपि ।।७४।।

मेरे मन में भी उन्हें देखकर अपने ही पिता और भाइयों के प्रति पति की भाँति ही मर्यादाहीन कामभाव उत्पन्न हुआ ।। ७४ ।।

करिष्याम्यस्य पापस्य प्रायश्चित्तमहं स्वयम् ।
आत्मानमग्नौ होष्यामि वेदमार्गानुसारतः ।।७५।।
किन्त्वेकां स्थापयिष्यामि मर्यादामिह भूतले ।
उत्पन्नमात्रा न यथा सकामाः स्युः शरीरिणः ।।७६।।

मैं स्वयं वेदमार्ग के अनुसार इस पाप का प्रायश्चित करूँगी, अपने आपको अग्नि में होम कर दूँगी। किन्तु इस पृथ्वी पर एक मर्यादा भी स्थापित करूँगी जिससे शरीरधारी उत्पन्न होते ही मात्र कामासक्त न होवें ।। ७५-७६ ।।

एतदर्थमहं कृत्वा तपः परमदारुणम् ।
मर्यादां स्थापयित्वैव पश्चात्त्यक्ष्यामि जीवितम् ।।७७।।

इसलिए मैं परमदारुण तपस्या कर उपर्युक्त मर्यादा की स्थापना करूँगी। तत्पश्चात् अपने जीवन का परित्याग कर दूँगी ।। ७७ ।।

यस्मिञ्छरीरे पित्रा मे ह्यभिलाषः स्वयं कृतः ।
भ्रातृभिस्तेन कायेन किञ्चिन्नास्ति प्रयोजनम् ।।७८।।

क्योंकि जिस शरीर के प्रति मेरे पिता ने एवं भाइयों ने स्वयं अभिलाषा की अब उससे कोई प्रयोजन नहीं है ।। ७८ ।।

येन स्वेन शरीरेण ताते च सहजे स्वके ।
उद्भावितः कामभावो न तत्सुकृतसाधकम् ।।७९।।

जिस अपने शरीर से अपने ही पिता एवं भाई में कामभाव उत्पन्न हो गया वह अब पुण्य साधक नहीं हो सकता ।। ७९ ।।

इति सञ्चिन्त्य मनसा सन्ध्या शैलवरं ततः ।
जगाम चन्द्रभागाख्यं चन्द्रभागा यतः सृता ।।८०।।

तब मन में ऐसा विचार कर सन्ध्या उस श्रेष्ठ चन्द्रभाग नामक पर्वत पर चली गई, जहाँ से चन्द्रभागा नदी निकली है ।। ८० ।।

तया स शैलैः समधिष्ठितः तदा
सुवर्णगौर्या सुसमप्रभाभृता ।
सोमेन सन्ध्यासमयोदितेन
यथोदयाद्रिर्विरराज शश्वत् ।।८१।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे सन्ध्यातपश्चरणं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

तब उस स्वर्णिम गोरी सन्ध्या के साथ वह चन्द्रभाग ऐसी सुन्दर प्रभा से युक्त हुआ जैसा सन्ध्या समय उगते हुए चन्द्रमा की प्रभा से सदैव उदयाचल पर्वत सुशोभित होता है ।। ८१ ।।

।। श्रीकालिकापुराण में सन्ध्या-तपश्चरण नामक उन्नीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। १९।।



विंशोऽध्यायः

चन्द्रशापवर्णनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ तत्र गतां दृष्ट्वा सन्ध्यां गिरिवरं प्रति ।
तपसे नियतात्मानं ब्रह्मा प्राह स्वकं सुतम् ।।१।।
वसिष्ठं संशितात्मानं सर्वज्ञं ज्ञानियोगिनम् ।
समीपे सुसमासीनं वेदवेदाङ्गपारगम् ।।२।।

मार्कण्डेय बोले– सन्ध्या को तपस्या हेतु वहाँ चन्द्रभाग पर्वत पर गया देखकर ब्रह्मा ने नियतात्मा, संशितात्मा, सब कुछ जानने वाले, ज्ञानी, योगी, वेद वेदाङ्ग के पारङ्गत, अपने समीप सुखपूर्वक बैठे हुए, अपने पुत्र वशिष्ठ से कहा—।। १-२ ।।

।। ब्रह्मोवाच।।

वसिष्ठ गच्छ यत्रैषा सन्ध्या याता मनस्विनी ।
तपसे धृतकामा सा दीक्षस्वैनां यथाविधि ।।३।।

ब्रह्मा बोले– हे वसिष्ठ ! जहाँ यह मनस्विनी सन्ध्या तपस्या हेतु गई हुई है, वह कामग्रस्त है । अत: उसे विधिपूर्वक दीक्षा प्रदान करो ।। ३ ।।

मन्दाक्षमभवत् तस्याः पुरा दृष्ट्वेह कामुकान् ।
युष्मान् माञ्च तथात्मानं सकामान् मुनिसत्तम ।।४।।

हे मुनिसत्तम ! प्राचीनकाल में मुझे, अपने को तथा तुम लोगों को कामनावश यहाँ कामुक देखकर उसकी दृष्टि मन्द हो गई है (विचार बदल गये हैं) ।। ४ ।।

अयुक्तरूपं तत्कर्म पूर्ववृत्तं विमृश्य सा ।
अस्माकमात्मनश्चापि प्राणान् सन्त्यक्तुमिच्छति ।।५।।

वह कार्य अनुचित था । इस प्रकार अपने तथा हमारे पूर्व आचरण का विचार कर वह प्राणों का त्याग करने की इच्छा करती है ।। ५ ।।

अमर्यादेषु मर्यादां तपसा स्थापयिष्यति ।
तपः कर्तुं गता साध्वी चन्द्रभागाय साम्प्रतम् ।।६।।

वह अपनी तपस्या से अमर्यादाओं में भी मर्यादा स्थापित करेगी । इस निश्चय से वह साध्वी सन्ध्या इस समय तपस्या करने के लिए चन्द्रभाग पर्वत पर गई हुई है ।। ६ ।।

न भावं तपसस्तात सा तु जानाति कञ्चन ।
तस्माद्यथोपदेशं सा प्राप्नोति त्वं तथा कुरु ।।७।।

हे तात ! वह तपस्या का कोई भाव नहीं जानती। अतः जिस प्रकार वह उसके लिए उपदेश प्राप्त करे ऐसा ही तुम उपाय करो ॥ ७ ॥

इदं रुपं परित्यज्य रूपान्तरं परं भवान् ।
परिगृह्यान्तिके तस्यास्तपश्चर्यान्निदेशतु ।।८।।

तुम अपने इस रूप को छोड़कर दूसरा रूप धारण करके उसके समीप जाकर उसे तपश्चर्या का निर्देश करो ॥ ८ ॥

इदं स्वरूपं भवतो दृष्ट्वा पूर्वं यथा त्रपाम् ।
तथा प्राप्य न किञ्चित् सा त्वदग्रे व्याहरिष्यति ।।९।।

तुम्हारे इस रूप को देखकर पहले की भाँति ही वह लज्जा को प्राप्त कर तुम्हारे सामने कुछ भी नहीं कहेगी।

परित्यज्य स्वकं रूपं रूपान्तरधरो भवान् ।
तस्मात् सन्ध्यां महाभागामुपदेष्टुं प्रगच्छतु ।।१०।।

इसलिए तुम अपने इस रूप को छोड़कर दूसरा रूप धारण कर महाभाग सन्ध्या को उपदेश देने जाओ ॥ १० ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

तथेत्युक्त्वा वसिष्ठोऽपि वर्णी भूत्वा जटाधरः ।
तरुणश्चन्द्रभागाय ययौ सन्ध्यान्तिकं मुनिः ।।११।।

मार्कण्डेय बोले– ऐसा ही करूँगा कहकर वसिष्ठ मुनि भी जटाधारी तरुण ब्रह्मचारी का वेश धारण कर सन्ध्या के समीप चन्द्रभाग पर्वत पर गये ॥ ११ ॥

तत्र देवसरः पूर्णं गुणैर्मानससम्मितम् ।
ददर्श स वसिष्ठोऽथ सन्ध्यां तत्तीरगामिनीम् ।।१२।।

वहाँ उन वसिष्ठ मुनि ने गुणों से मानसरोवर के समान परिपूर्ण देवसर तथा उसके किनारे स्थित सन्ध्या को देखा ॥ १२ ॥

तीरस्थया तया रेजे तत्सरः कमलोज्ज्वलम् ।
उद्यदिन्दुसनक्षत्रं प्रदोषे गगनं यथा ।।१३।।

तीर पर स्थित सन्ध्या सहित कमलों से उज्ज्वल हुआ वह सरोवर प्रदोषकाल में तारों के सहित उगते हुए चन्द्रमा से सुशोभित आकाश की भाँति शोभायमान हो रहा था ॥ १३ ॥

तां तत्र दृष्ट्वाथ मुनिः समाभाष्य सकौतुकः ।
वीक्षाञ्चक्रे सरस्तत्र वृहल्लोहितसंज्ञकम् ।।१४।।

मुनि ने उसको वहाँ देख, उत्सुकता वश वार्तालाप कर, उस बृहत् लोहित नामक सरोवर को देखने की अभिलाषा की ।। १४ ।।

चन्द्रभागा नदी तस्मात् कासाराद्दक्षिणाम्बुधिम् ।
यान्तीं निर्भिद्य ददृशे तेन सानुगिरेर्महत् ।।१५।।

उनके द्वारा चन्द्रभागा नदी को उस सरोवर से महान पर्वत की चोटियों को भेदकर, दक्षिण सागर को जाती हुई देखा गया ।। १५ ।।

निर्भिद्य पश्चिमं सानुं चन्द्रभागस्य सा नदी ।
यथा हिमवतो गङ्गा तथा गच्छति सागरम् ।।१६।।

वह नदी चन्द्रभाग पर्वत की पश्चिमी चोटी को भेदकर उसी प्रकार सागर की ओर जा रही थी जैसे गंगा हिमालय से सागर की ओर जाती हैं ।। १६ ।।

।। ऋषय ऊचुः ।।

चन्द्रभागा कथं सिन्धुस्तत्रोत्पन्ना महागिरौ ।
कीदृक् सरस्तद्विप्रेन्द्र वृहल्लोहितसंज्ञकम् ।।१७।।

ऋषिगण बोले– उस महान पर्वत से चन्द्रभागा नदी कैसे उत्पन्न हुई? हे विप्रेन्द्र ! वह बृहत्लोहित नामक सरोवर किस प्रकार का है? ।। १७ ।।

कथं स पर्वतश्रेष्ठश्चन्द्रभागाह्वयोऽभवत् ।
चन्द्रभागाह्वया कस्मान्नदी जाता वृषोदका ।।१८।।

उस श्रेष्ठ पर्वत का नाम चन्द्रभाग कैसे हुआ? वह वृषोदका (पुण्य कर्मोपयोगी जल वाली) नदी चन्द्रभागा नाम वाली कैसे हुई ? ।। १८ ।।

एतन्नः श्रोष्यमाणानां जायते कौतुकं महत् ।
माहात्म्यं चन्द्रभागायाः कासारस्य गिरेस्तथा ।।१९।।

यह तथा चन्द्रभागा नदी, चन्द्रभाग पर्वत एवं बृहत् लोहित सरोवर का माहात्म्य जानने की हम श्रोताओं में बड़ी उत्सुकता है ? ।। १९ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

श्रूयताञ्चन्द्रभागायाः उत्पत्तिर्मुनिसत्तमाः ।
युष्माभिश्चन्द्रभागस्य माहात्म्यं नामकारणम् ।।२०।।

मार्कण्डेय बोले– हे मुनि सत्तमों ! आप लोग चन्द्रभागा नदी की उत्पत्ति, चन्द्रभाग पर्वत के माहात्म्य और नामकरण के विषय में सुनिये ।। २० ।।

हिमवद्गिरिसंसक्तः शतयोजनविस्तृतः ।
योजनत्रिंशदायामः कुन्देन्दुधवलो गिरिः ।।२१।।

हिमालय पर्वत से लगा हुआ सौ योजन चौड़ा एवं तीन सौ योजन लम्बा यह पर्वत कुन्द और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल है ।। २१ ।।

तस्मिन् गिरौ पुरा वेधाश्चन्द्रं शुद्धं सुधानिधिम् ।
विभज्य कल्पयामास देवान्नं स पितामहः ।।२२।।
पित्रर्थञ्च तथा तस्य तिथिवृद्धिक्षयात्मकम् ।
कल्पयामास जगतां हिताय कमलासनः ।।२३।।

प्राचीन काल में पितामह ब्रह्मा ने संसार के कल्याण के लिए उसी पर्वत पर सुधानिधि चन्द्रमा को शुद्ध किया एवं वहाँ देवान्न तथा पितरों के हितार्थ तिथि के अनुसार वृद्धि एवं क्षय की व्यवस्था के अनुरूप उनका विभाग किया था।। २२-२३।।

विभक्तश्चन्द्रमास्तस्मिन् जीमूते द्विजसत्तमाः ।
अतो देवाश्चन्द्रभागं नाम्ना चक्रुः पुरा गिरिम् ।।२४।।

हे द्विजसत्तमों ! उस जीमूत पर्वत पर प्राचीनकाल में चन्द्रमा बाँटे गये थे; इसीलिए देवताओं ने इस पर्वत का चन्द्रभाग नामकरण किया ।। २४ ।।

।। ऋषय ऊचुः ।।

यज्ञभागेषु तिष्ठत्सु तथा क्षीरोदजेऽमृते ।
किमर्थमकरोच्चन्द्रं देवान्नं कमलासनः ।।२५।।

ऋषिगण बोले–कमलासन ब्रह्मा ने क्षीर सागर से उत्पन्न अमृत तथा चन्द्रमा को यज्ञभाग हेतु बैठे हुए देवताओं के लिए अन्न हव्य क्यों बनाया? ।। २५ ।।

तथा कव्ये स्थिते कस्मात् पित्र्यर्थं समकल्पयत् ।
तिथिक्षये तथा वृद्धौ कथमिन्दुरभूद्गुरो ।।२६।।

कव्य के इच्छुक पितरों के लिए उसे क्यों कव्य के रूप में निर्धारित किया? तिथि क्षय में विभाजन वश हानि तथा तिथि वृद्ध के साथ ब्रह्मा गुरु (वृद्धि को प्राप्त) क्यों होता है ? ।। २६ ।।

एतन्नः संशयं ब्रह्मञ्छिन्धि सूर्यो यथा तमः ।
नान्योऽस्ति संशयस्यास्य छेत्ता त्वत्तो द्विजोत्तम ।।२७।।

हे ब्रह्मन् ! सूर्य जैसे अन्धकार को दूर कर देता है उसी प्रकार आप हमारे इस संशय को दूर कीजिए; क्योंकि हे द्विजोत्तम इस संशय को दूर करनेवाला आपके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है ।। २७ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

पुरा दक्षः स्वतनयाः अश्विन्याद्याः मनोरमाः ।
षड्विंशतिं तथैकाञ्च सोमायादात् प्रजापतिः ।।२८।।

मार्कण्डेय बोले– दक्ष प्रजापति ने प्राचीनकाल में अश्विनि आदि नक्षत्रनामा अपनी सत्ताईस सुन्दरी कन्यायें चन्द्रमा को प्रदान कीं ।। २८ ।।

समस्तास्तास्ततः सोम उपयेमे यथाविधि ।
निनाय च स्वकं स्थानं दक्षस्यानुमते तदा ।।२९।।

तब चन्द्रमा ने उन सबसे विधिपूर्वक विवाह किया तथा दक्ष प्रजापति की अनुमति से उन्हें अपने निवास-स्थान पर ले गये ॥ २९ ॥

अथ चन्द्रः समस्तासु तासु कन्यासु रागतः ।
रोहिण्या सार्धमवसद्रतोत्सवकलादिभिः ।।३०।।

इसके बाद चन्द्रमा उन सभी के साथ प्रेमपूर्वक किन्तु रतोत्सव कलाओं से रोहिणी के साथ निवास करता था ॥ ३० ॥

रोहिणीमेव भजते रोहिण्या सह मोदते ।
विनेन्दू रोहिणीं शान्तिं न काञ्चिल्लभते पुरा ।।३१।।

वह केवल रोहिणी के साथ रहता तथा उसी के साथ आनन्द करता था। चन्द्रमा रोहिणी के बिना कुछ भी शान्ति का अनुभव नहीं करता था ॥ ३१ ॥

रोहिणी तत्परं चन्द्रं वीक्ष्य ताः सर्वकन्यकाः ।
उपचारैर्बहुविधैर्भेजुश्चन्द्रमसं प्रति ।।३२।।

चन्द्रमा को उस रोहिणी के प्रति आसक्त देखकर उन सभी कन्याओं ने बहुत से उपायों द्वारा चन्द्रमा की सेवा की ॥ ३२ ॥

निषेव्यमाणोऽनुदिनं यदा नैवाकरोद्विधुः ।
तासु भावं तदा सर्वा अमर्षवशमागताः ।।३३।।

लगातार सेवा करने पर भी जब चन्द्रमा ने उनके प्रति उचित भाव नहीं किया तो सभी क्रोधित हो गईं ॥ ३३ ॥

अथोत्तराफाल्गुनीति नाम्ना या भरणी तथा ।
कृत्तिकार्द्रा मघा चैव विशाखोत्तरभाद्रपत् ।।३४।।
तथा ज्येष्ठोत्तराषाढे नवैताः कुपिताः भृशम् ।
हिमांशुमुपसंगम्य परिवव्रुः समन्ततः ।।३५।।

इसके बाद उत्तराफाल्गुनी, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, मघा, विशाखा, उत्तर-भाद्रप्रदा, ज्येष्ठा तथा उत्तराषाढा नाम की ये नौ पत्नियाँ बहुत अधिक कुपित हो गईं तथा एक साथ चन्द्रमा के समीप जाकर बोलीं ॥३४-३५॥

परिवार्य निशानाथं ददृशू रोहिणीं ततः ।
वामांकस्थां तस्य तेन रममाणां स्वमण्डले ।।३६।।

तब चन्द्रमा को घेरकर उन्होंने रोहिणी को देखा। वह उनकी बायीं गोद में बैठकर अपने मण्डल में रमण की जा रही थीं ॥ ३६ ॥

तां वीक्ष्य तादृशीं सर्वा रोहिणीं वरवर्णिनीम् ।
जज्वलुश्चातिकोपेन हविषेव हुताशनः ।।३७।।

सब उस सुन्दरी रोहिणी को उस अवस्था में देखकर जैसे आहुति पाकर अग्नि जल उठता है वैसे ही वे क्रोध से जल उठीं ।। ३७ ।।

ततो मघात्रिपूर्वाश्च भरणी कृत्तिका तथा ।
चन्द्रांकस्थां महाभागां रोहिणीं जगृहुर्हठात् ।।३८।।

तब मघा एवं तीन पूर्वाओं को छोड़ उत्तराफाल्गुनि, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा तथा भरणी, कृतिका ने चन्द्रमा की गोद में बैठी हुई रोहिणी को बलपूर्वक पकड़ लिया ।। ३८ ।।

ऊचुश्चातीव कुपिताः परुषं रोहिणीं प्रति ।
जीवन्त्यां त्वयि दुष्प्राज्ञे नास्मानिन्दुस्तु भावभाक् ।।३९।।
समुपैष्यति कस्मिंश्चित्समये सुरतोत्सुकः ।
वह्वीनां क्षेमवृद्ध्यर्थं तां हनिष्याम दुर्मतिम् ।।४०।।

हे मूर्खे ! तुम्हारे जीवित रहते किसी भी समय सुरति हेतु उत्सुक चन्द्रमा भावपूर्वक हमलोगों के पास नहीं आयेंगे अतः बहुतों के कल्याण हेतु हम इसी दुर्बुद्धि को मार डालेंगी ।। ३९-४० ।।

न त्वां हत्वा भवेत् पापमस्माकमपि किञ्चन ।
प्रजनघ्नीं बहुस्त्रीणामनृतौ पापकारिणीम् ।।४१।।

तुम्हारे जैसी बहुतों की प्रजनन क्षमता नष्ट करने वाली पापिनी, झूठी को मारकर कुछ भी पाप नहीं लगेगा ।। ४१ ।।

यस्मिन्नर्थे पुरा ब्रह्मा व्याजहार सुतं प्रति ।
नीतिशास्त्रोपदेशाय तन्नः संश्रुतमस्ति वै ।।४२।।

प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने अपने पुत्र से नीतिशास्त्र का उपदेश करते हुए जो कहा था उसे हमलोगों ने सुन रखा है ।। ४२ ।।

एकस्य यत्र निधने प्रवृत्ते दुष्टकारिणः ।
बहूनां भवति क्षेमं तस्य पुण्यप्रदो वधः ।।४३।।

एक दुष्ट कर्म करने वाले की मृत्यु से यदि बहुतों का कल्याण होता है तो उसका वध पुण्यदायक है ।। ४३ ।।

रुक्मस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
आत्मानं घातयेद्यस्तु तस्य पुण्यप्रदो वधः ।।४४।।

सोना चुराने वाला, मदिरा पीने वाला, ब्रह्म हत्यारा, गुरुपत्नीगामी, अपने को जो मारे, ऐसों का वध पुण्यदायक होता है ।। ४४ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

तासां तादृगभिप्रायं बुद्ध्वा दृष्ट्वा च कर्म च ।
भीतां च रोहिणीं दृष्ट्वा प्रियामतिमनोरमाम् ।।४५।।

आत्मानश्चापराधं च तदसम्भोगजं मुहुः ।
विचिन्त्य रोहिणीं भीतां तासां हस्तादमोचयत् ।।४६।।

मार्कण्डेय बोले– उनके उस प्रकार के अभिप्राय को जानकर तथा उनके कर्म को देख एवं अति मनोरम रोहिणी नामक प्रिय पत्नी को भयभीत देखकर चन्द्रमा ने उसके साथ सम्भोग सम्बन्धी अपने अपराध का विचार कर भयभीत हुई रोहिणी को उनके हाथों से छुड़ा लिया ।। ४५-४६ ।।

मोचयित्वा च बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य रोहिणीम् ।
वारयामास ताः सर्वाः कृत्तिकाद्याः स भामिनीः ।।४७।।

रोहिणी को छुड़ाकर और भुजाओं में बाँध लिया । और सब कृतिका आदि सबको पत्नी रोहिणी सहित चन्द्रमा ने रोका ।। ४७ ।।

तदेन्दुं वारयन्त्यस्ताः कृत्तिकाद्या मघान्तकाः ।
साम्यमूचुर्मनस्विन्यस्तां वीक्ष्यन्त्योऽथ रोहिणीम् ।।४८।।

तब रोकी जाती हुई उन कृतिका से मघा तक मनस्विनी पत्नियों ने रोहिणी को देखते हुए समझौते की बातें कहीं ।। ४८ ।।

न ते त्रपा वा भीतिर्वा पापतोऽस्मान्निरस्यतः ।
संजायते निशानाथ प्राकृतस्येव वर्ततः ।।४९।।

हे निशापति चन्द्रमा ! न तो तुम्हें पाप से लज्जा है, न भय । हमको इससे हटाकर आपने प्राकृत (सामान्य) मनुष्य-सा ही व्यवहार किया है ।। ४९ ।।

कथमस्मान्निराकृत्य चारित्रव्रतधारिणीः ।
सदा भक्तिमतीरेकां मूढवत्त्वं निषेवसे ।।५०।।

हमको तो आपने छोड़ दिया किन्तु अब आप इस चरित्र-व्रतधारिणी, भक्तिमान, एकमात्र रोहिणी का मूढ़ पुरुषों की भाँति क्यों सेवन कर रहे हो? ।। ५० ।।

किं ते नावगतो धर्मो वेदमूलः श्रुतः पुरा ।
यद्धर्महीनं कुरुषे कर्म सद्भिर्विगर्हितम् ।।५१।।

क्या आपको वेद का मूल, पहले का सुना हुआ, यह धर्म ज्ञात नहीं है कि सत्पुरुष धर्मविहीन किये गये कर्म की निन्दा करते हैं ।। ५१ ।।

धर्मशास्त्रार्थगं कर्म चरन्तीनां यथोचितम् ।
कथमुद्वाहितानां त्वं मुखमात्रं न वीक्षसे ।।५२।।

आप यथोचित रूप से धर्मशास्त्रानुरूप आचरण करती हुई, हम विवाहित, पत्नियों का मुख क्यों नहीं देखते हो? ।। ५२ ।।

गदतो यच्छ्रुतं पूर्वं नारदाय पितुर्मुखात् ।
दक्षस्य धर्मशास्त्रार्थं तच्छृणुष्व निशापते ।।५३।।

हे निशापति ! हमने जो दक्ष प्रजापति के धर्म सम्बन्धी शास्त्रार्थ में पिता ब्रह्मा द्वारा प्राचीन काल में नारद के प्रति कहा हुआ सुना है, उसे आप भी सुनो ॥ ५३ ॥

बहुदारः पुमान् यस्तु रागादेकां भजेत् स्त्रियम् ।
स पापभाक्स्त्रीजितश्च तस्याशौचं सनातनम् ।।५४।।

जो पुरुष बहुत-सी पत्नियों का स्वामी होकर भी किसी एक स्त्री का विशेष प्रेमपूर्वक उपभोग करता है, वह पाप का भागी और स्त्रैण होता है तथा उसको सनातन अशौच होता है ॥ ५४ ॥

यद्दुःखं जायते स्त्रीणां स्वाम्यसम्भोगजं विधो ।
न तस्य सदृशं दुःखं किञ्चिदन्यत्र विद्यते ।।५५।।

हे पिधो ! स्वामी के असंयोजन के कारण स्त्रियों को जो दुःख होता है, उसके समान अन्य कोई दुःख नहीं होता है ॥ ५५ ॥

सतीमृतुमतीं जायां यो नेयात्पुरुषाधमः ।
ऋतुधस्त्रेषु शुद्धेषु भ्रूणहा स च जायते ।।५६।।

जो नीच पुरुष ऋतुमती स्त्री का चौथे दिन शुद्ध होने पर भी उपभोग नहीं करता वह भ्रूणघाती कहा जाता है ॥ ५६ ॥

भार्या स्याद्यावदात्रेयी तावत्कालं विबोधनम् ।
तस्यास्तु सङ्गमे किञ्चिद्विहितञ्चापि नाचरेत् ।।५७।।

जब तक स्त्री (आत्रेर्या ऋतुमती) हो तब तक विशेष सावधानी रखनी चाहिए, उसके संगम में इच्छित होने पर भी आचरण नहीं करना चाहिये ॥ ५७ ॥

बहुभार्यस्य भार्याणामृतुमैथुननाशनम् ।
न किञ्चिद्विद्यते कर्म शास्त्रेणापि यदीरितम् ।।५८।।

शास्त्र में बहुतपत्नी वालों की पत्नियों के लिए ऋतुकाल जैसा मैथुन नाशक कोई कर्म भी नहीं है ऐसा बताया गया है ॥ ५८ ॥

तोषयेत् सततं भार्याविधिवत्पाणिपीडिताः ।
तासां तुष्ट्या तु कल्याणमकल्याणमतोऽन्यथा ।।५९।।

विधिपूर्वक पाणिगृहीता भार्याओं को निरन्तर सन्तुष्ट करना चाहिये । उनके सन्तुष्ट होने से कल्याण होता है अन्यथा अकल्याण ही होता है ॥ ५९ ॥

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेतत्कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ।।६०।।

जिस कुल में पत्नी से पति तथा पति से पत्नी सन्तुष्ट रहती है, निश्चय ही वहाँ नित्य कल्याण ही होता है ॥ ६० ॥

यया विरुध्यते स्वामी सौभाग्यमददृप्तया ।
सपत्नीसङ्गमं कर्तुं सा स्याद्वेश्या भवान्तरे ।।६१।।

जिस सौभाग्यवती द्वारा सौतों के सेवन से पति का विरोध किया जाता है, वह अगले जन्म में वेश्या होती है ।। ६१ ।।

इहापि लोके वाच्यत्वमधर्मञ्चापि विन्दति ।
न पितुश्च कुलं स्वामिकुलं तस्याः प्रमोदते ।।६२।।

इस लोक में भी आलोचना तथा अधर्म को प्राप्त करती है । न उसके पिता का कुल आनन्दित होता है न पति का ।। ६२ ।।

विरुध्यमाने पत्यौ यत्सपत्न्या वा प्रवर्तते ।
अतीव दुःखं भवति तदकल्याणकृत्तयोः ।।६३।।

सपत्नी के द्वारा पति के विरुद्ध हो जाने पर जो अत्यधिक दुःख होता है वह उन दोनों के लिए अकल्याणकारी होता है ।। ६३ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्येवं भाषमाणासु तासु चातीव निष्ठुरम् ।
चुकोप चन्द्रमा दृष्ट्वा मलिनं रोहिणीमुखम् ।।६४।।

मार्कण्डेय बोले– रोहिणी का मलिन मुख देखकर अत्यन्त निष्ठुर चन्द्रमा, इस प्रकार कहती हुई उन स्त्रियों पर अत्यधिक कुपित हो गया ।। ६४ ।।

रोहिणी च तदा तासामवलोक्योग्रतां मुहुः ।
न किञ्चित् सापि प्रोवाच भयशोकत्रपाकुला ।।६५।।

तब उनकी उग्रता को देखकर भय, शोक एवं लज्जा से व्याकुल होकर प्रत्युत्तर में रोहिणी कुछ भी न बोली ।। ६५ ।।

अथापि कुपितश्चन्द्रस्ताः शशाप तदा स्त्रियः ।
यस्मान्मम पुरश्चोग्रास्तीक्ष्णा वाचः समीरिताः ।।६६।।
भवतीभिश्च तिसृभिर्लोकेऽस्मिन् कृत्तिकादिभिः ।
ऊग्रास्तीक्ष्णा इति ख्यातिः प्राप्तव्या त्रिदशेष्वपि ।।६७।।

तब चन्द्रमा ने भी क्रुद्ध हो उन स्त्रियों को शाप दिया—जिन कृतिकादि के द्वारा आप तीनों ने मेरे सम्मुख उग्र एवं तीखे वचन कहे हैं, वे इस लोक में तथा स्वर्ग में भी उग्र और तीक्ष्ण संज्ञा को प्राप्त करेंगी ।।६६-६७ ।।

तस्मादेवंविधानेन नवैताः कृत्तिकादयः ।
यात्रायां नोपयुक्ता हि भविष्यध्वं दिने दिने ।।६८।।

इसी विधान से ये कृत्तिकादि नौ (नक्षत्र) यात्रा में अनुदिन उपयोगी नहीं होवेंगी ।। ६८ ।।

युष्मान् पश्यन्ति देवाद्या मनुष्याद्या च ये क्षितौ ।
यात्रायां तेन दोषेण तेषां यात्रा न चेष्टदा ।।६९।।

तुम लोगों के देखते हुए पृथ्वी पर जो भी मनुष्य या देवता यात्रा करेंगे। उसी (उपर्युक्त) दोष से उनकी यात्रा अभीष्टदायी नहीं होगी ॥ ६९ ॥

अथ सर्वास्तदा शापं तस्य श्रुत्वातिदारुणम् ।
चन्द्रस्य हृदयं ज्ञात्वा शापाच्चातीव निष्ठुरम् ॥७०॥
जग्मुः सर्वास्तदा दक्षभवनं प्रत्यमर्षिताः ।
ऊचुश्च दक्षं पितरमश्विन्याद्याः सगद्गदम् ॥७१॥

तब उनके अत्यन्त दारुण शाप को सुनकर तथा चन्द्रमा के अत्यन्त निष्ठुर हृदय को जानकर वे सभी क्रोध से भरकर, अपने पिता दक्ष के भवन में चली गईं और अश्विनी आदि ने दुःख से विचलित वाणी से पिता दक्ष से ये वचन कहे— ॥ ७०-७१ ॥

सोमो वसति नास्मासु रोहिणीं भजते सदा ।
सेवमाना न भजते सोऽस्मान् परबधूरिव ॥७२॥

चन्द्रमा हमारे साथ नहीं रहते। वे सदा रोहिणी का ही उपभोग करते हैं। हमारे द्वारा सेवा किये जाने पर भी ये हमारा साथ नहीं देते, मानो हम उनके लिए दूसरे की स्त्रियाँ हों ॥ ७२ ॥

नावस्थाने नावसाने भोजने श्रवणे तथा ।
विनेन्दू रोहिणीं शान्तिं लभते नहि काञ्चन ॥७३॥

न खड़े रहने में, न विश्राम में, न सुनने में रोहिणी के बिना इन्हें किसी प्रकार की शान्ति प्राप्त नहीं होती है अर्थात् कहीं भी नहीं प्राप्त होती ॥ ७३ ॥

रोहिण्या वसतस्तस्य समीपं वीक्ष्य ते सुताः ।
यान्तीः सोऽन्यत्र नयनमाधाय नहि वीक्षते ॥७४॥

रोहिणी के समीप रहने पर आपकी लड़कियों को आती हुई देखकर वे अपने नेत्र दूसरी ओर घुमाकर, उन्हें नहीं देखते ॥ ७४ ॥

मास्त्वन्यः स्वामिसद्भावो मुखमात्रं न वीक्षते ।
अस्मिन् वस्तुनि यत्कार्यं तदस्माभिर्निगद्यताम् ॥७५॥

स्वामी सम्बन्धी उनका अन्य सद्भाव भले ही न हो किन्तु वे हमारा मुख मात्र भी नहीं देखते। इस सम्बन्ध में हमें जो करना उचित हो, वह बताइये ॥ ७५ ॥

अस्माभिरेतत्समयेऽनुरुद्धश्च चन्द्रमाः ।
स तत्कृते ततश्चास्मच्छापं तीव्रं तदाकरोत् ॥७६॥

इस सम्बन्ध में हम लोगों द्वारा जब चन्द्रमा से अनुरोध किया गया तब वैसा करने के कारण उन्होंने हमें तीव्र शाप दिया ॥ ७६ ॥

दारुणाश्चातितीक्ष्णाश्च लोके वाच्यत्वमाप्य च ।
अयात्रिका भविष्यध्वं यूयमित्युक्तवान् विधुः ॥७७॥

चन्द्रमा ने कहा कि तुम लोग संसार में दारुण और तीक्ष्ण नाम को प्राप्त होओ तथा यात्रा के अनुपयुक्त हो जाओ ।। ७७ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

श्रुत्वा वाक्यं स पुत्रीणां ताभिः सार्धं प्रजापतिः ।
जगाम यत्र सोमोऽभूद्रोहिण्या सहितस्तदा ।।७८।।

मार्कण्डेय बोले–तब पुत्रियों की बात सुन कर दक्ष प्रजापति उनके साथ वहाँ गये जहाँ चन्द्रमा रोहिणी के साथ स्थित थे ।। ७८ ।।

दूरादेव विधुर्दृष्ट्वा दक्षमायान्तमासनात् ।
उत्तस्थावन्तिके प्राप्य ववन्दे च महामुनिम् ।।७९।।

चन्द्रमा दूर से ही दक्ष को आता हुआ देखकर अपने आसन से उठकर उन महामुनि के पास पहुँचे एवं उनकी वन्दना की ।। ७९ ।।

अथ दक्षस्तदोवाच कृतासनपरिग्रहः ।
सामपूर्वं चन्द्रमसं कृत-संवन्दनं तथा ।।८०।।

तब दक्ष प्रजापति ने आसन ग्रहण करने के बाद वन्दना करते हुए चन्द्रमा को समझाते हुए कहा ।। ८० ।।

।। दक्ष उवाच ।।

समं वर्तस्व भार्यासु वैषम्यं त्वं परित्यज ।
वैषम्ये बहवो दोषा ब्रह्मणा परिकीर्तिताः ।।८१।।

दक्ष बोले– तुम अपनी पत्नियों के प्रति विषमता छोड़कर समानता का व्यवहार करो; क्योंकि ब्रह्मा ने विषमता में बहुत से दोष बताये हैं ।। ८१ ।।

रतिपुत्रफला दारास्तासु कामानुबन्धनात् ।
कामानुबन्धः संसर्गात् संसर्गः सङ्गमाद्भवेत् ।।८२।।

पत्नियाँ रति सम्बन्धों से पुत्ररूपी फल देने वाली होती हैं। उनसे काम-सम्बन्धी अनुबन्ध होता है। यह काम-सम्बन्धी अनुबन्ध संसर्ग से तथा संसर्ग, संगम (संयोग) से होता है ।। ८२ ।।

सङ्गमश्चाप्यभिध्यानाद्वीक्षणादभिजायते ।
तस्माद् भार्यास्वभिध्यानं कुरु त्वं वीक्षणादिकम् ।।८३।।

संयोग परस्पर ध्यानपूर्वक देखने से होता है। इसलिए तुम अपनी पत्नियों में दृष्टि आदि के द्वारा ध्यान केन्द्रित करो ।। ८३ ।।

यद्येवं नैव कुरुषे मद्वचो धर्मयन्त्रितम् ।
तदा लोकवचोदुष्टः पापवांस्त्वं भविष्यसि ।।८४।।

यदि इस प्रकार के मेरे धर्मयुक्त वचनों का पालन नहीं करोगे तो तुम लोक में वाणी से दुष्ट और पापवान् होओगे ॥ ८४ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दक्षस्य सुमहात्मनः ।
एवमस्त्विति चन्द्रोऽपि न्यगदद्दक्षशङ्कया ।।८५।।

महात्मा दक्ष की इस प्रकार की बातें सुनकर दक्ष के डर से चन्द्रमा ने भी ऐसा ही होगा, यह कहा ॥ ८५ ॥

अथानुमन्त्र्य तनयाश्चन्द्रं जामातरं तथा ।
ययौ दक्षो निजं स्थानं कृतकृत्यस्तदा मुनिः ।।८६।।

इसके बाद मुनिवर दक्ष प्रजापति अपनी कन्याओं तथा दामाद चन्द्रमा के प्रति विचार-विमर्श के बाद कृत-कृत्य हो अपने स्थान को चले गये ॥ ८६ ॥

गते दक्षे ततश्चन्द्रस्तां समासाद्य रोहिणीम् ।
जग्राह पूर्ववद्भावं तासु तस्यां च रागतः ।।८७।।

तब दक्ष प्रजापति के चले जाने पर चन्द्रमा पूर्ववत् रोहिणी के पास जाकर उसके प्रति प्रेम का तथा अन्यों के प्रति उपेक्षा का भाव रखने लगा ॥ ८७ ॥

तत्रैव रोहिणीं प्राप्य न काश्चिदपि वीक्षते ।
रोहिण्यामेव वसते ततस्ताः कुपिताः पुनः ।।८८।।
गत्वा ताः पितरं प्राहुर्दौर्भाग्योद्विग्नमानसाः ।
सोमो वसति नास्मासु रोहिणीं भजते सदा ।।८९।।
तवापि नाकरोद्वाक्यं तस्मान्नः शरणं भव ।।९०।।

वहाँ ही रोहिणी को पाकर वह किन्हीं की ओर भी नहीं देखता था। रोहिणी के यहाँ ही रहता था। इसलिये वे सब पुनः क्रुद्ध होकर दुःखी मन से पिता के यहाँ जाकर उनसे अपना दुर्भाग्य कहीं कि चन्द्रमा हमारे साथ नहीं रहते वे सैदव रोहिणी का ही उपभोग करते हैं। वे आपके भी वाक्यों को नहीं मानते अतः आप मेरे आश्रयदाता होइये ॥ ८८-९० ॥

उद्वेगकोपसंयुक्त उत्तस्थौ तत्क्षणान्मुनिः ।
जगाम मनसा ध्यायन् कर्तव्यं निकटं विधोः ।।९१।।

उसी समय मुनिवर दक्ष प्रजापति व्यग्रता एवं क्रोध से युक्त हो उठ खड़े हुए तथा अपने कर्त्तव्य का ध्यान करते हुए चन्द्रमा के समीप गये ॥ ९१ ॥

उपगम्य तदा प्राह वचश्चन्द्रं प्रजापतिः ।
समं वर्तस्व भार्यासु वैषम्यं त्वं परित्यज ।।९२।।

तब प्रजापति दक्ष ने चन्द्रमा के समीप जाकर यह वचन कहा—तुम विषमता छोड़ कर पत्नियों के साथ समता का व्यवहार करो ॥ ९२ ॥

न चेदिदं वचोऽस्माकं मौर्ख्यात् त्वं मावबुध्यसे ।
धर्मशास्त्रातिगायाहं शप्स्ये तुभ्यं निशापते ।।९३।।

हे निशापति ! यदि मूर्खतावश तुम मेरे इस वचन का पालन नहीं करोगे तब, धर्मशास्त्र के अतिक्रमणकर्ता तुझे मैं शाप दूँगा ॥ ९३ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततो दक्षभयाच्चन्द्रस्तत्कर्तुं प्रति तत्पुरः ।
अङ्गीचकारातिभयात् कार्यमेव मुहुस्त्विति ।।९४।।

मार्कण्डेय बोले– तब चन्द्रमा ने दक्ष के भय से बहुत डरकर उनके सामने वैसा करना पुनः स्वीकार कर लिया ॥ ९४ ॥

समं प्रवर्तनं कर्तुं भार्यास्वङ्गीकृते ततः ।
विधुना प्रययौ दक्षः स्वस्थानं चन्द्रसम्मतः ।।९५।।

तब चन्द्रमा द्वारा अपनी पत्नियों के साथ समान व्यवहार करने की बात पुनः स्वीकार कर लिये जाने पर उनसे सम्मति ले, दक्ष पुनः अपने स्थान को लौट गये ॥ ९५ ॥

गते दक्षे निशानाथो रोहिण्यासहितो भृशम् ।
रममाणो विसस्मार दक्षस्य वचनन्तु सः ।।९६।।
सेवमानाश्च ताः सर्वा अश्विन्याद्या मनोरमाः ।
नाभजच्चन्द्रमास्तासु अवज्ञामेव चाकरोत् ।।९७।।

तब दक्ष प्रजापति के वापस चले जाने पर चन्द्रमा पुनः उनके वचनों को भुलाकर रोहिणी के साथ अत्यधिक रमण करने लगा तथा सेवा में लगी हुई अश्विनी आदि उन सभी सुन्दरियों का वह साथ नहीं देता था अपितु अवज्ञा ही करता था ॥ ९६-९७ ॥

अवज्ञातास्तु ताः सर्वाश्चन्द्रेण पितुरन्तिकम् ।
गत्वैवार्तस्वराश्चार्ता रुदन्त्यश्चेदमब्रुवन् ।।९८।।

तब चन्द्रमा से उपेक्षित होकर उन सबों ने पिता के समीप पुनः जाकर आर्त स्वर से रोते हुए ये वचन कहे— ॥ ९८ ॥

नाकरोद्वचनं सोमस्तवापि मुनिसत्तम ।
अवज्ञां कुरुतेऽस्मासु पूर्वतोऽप्यधिकं स च ।।९९।।
तस्मात् सोमेन नः कार्यं न किञ्चिदपि विद्यते ।
तपस्विन्यो भविष्यामस्तपश्चर्यां निदेशय ।।१००।।

हे मुनि सत्तम! चन्द्रमा अब भी आपके वचन को न मानते हुए और पहले से भी अधिक हमारी अवज्ञा करते हैं। इसलिए अब उनसे हमें कुछ नहीं करना है, हम अब तपस्विनी बन जाएँगी, आप हमें तपस्या करने का निर्देश दीजिए ॥ ९९-१०० ॥

तपसा शोधितात्मानः परित्यक्ष्याम जीवितम् ।
किमस्माकं जीवितेन दुर्भगानां द्विजोत्तम ॥१०१॥

हे द्विजोत्तम ! हम तपस्या से अपनी आत्मा का शोधन कर अपना जीवन छोड़ देंगी । हम भाग्य हीनों के जीवन से क्या लाभ है ? ॥ १०१ ॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

इत्युक्त्वा तास्ततः सर्वा दक्षजाः कृत्तिकादयः ।
कपोलमालम्ब्य करैरुरुदुर्विविशुः क्षितौ ॥१०२॥

मार्कण्डेय बोले– तब ऐसा (उपर्युक्त) वचन कहकर वे सभी कृत्तिकादि दक्ष की कन्याएँ अपने-अपने गालों को हाथ से पकड़कर रोती हुई धरती पर बैठ गयीं ॥ १०२ ॥

तास्तु दृष्ट्वा तथाभूता दुःखव्याकुलितेन्द्रियाः ।
अतिदीनमुखो दक्षः कोपाज्जज्वाल वह्निवत् ॥१०३॥

उनको इस प्रकार दुःख से व्याकुल इन्द्रिय तथा अत्यन्त दीन मुखवाली देखकर दक्ष क्रोधवश अग्नि की भाँति जल उठे ॥ १०३ ॥

यक्ष्मा उत्पत्ति

अथ कोपपरीतस्य दक्षस्य सुमहात्मनः ।
निश्चक्राम तदा यक्ष्मा नासिकाग्राद्विभीषणः ॥१०४॥

तब कोपाविष्ट, सुन्दर, महात्मा दक्ष की नासिका के अग्रभाग से अत्यन्त भयानक यक्ष्मा नामक रोग निकला ॥ १०४ ॥

यक्ष्मा रूप वर्णन

दंष्ट्राकरालवदनः कृष्णांगारसमप्रभः ।
अतिदीर्घः स्वल्पकेशः कृशो धमनिसन्ततः ॥१०५॥
अधोमुखो दण्डहस्तः कासं विश्रम्य सन्ततम् ।
कुर्वाणो निम्ननेत्रश्च योषासम्भोगलोलुपः ॥१०६॥

वह दाँतों के कारण भयंकर मुँह वाला, कोयले के समान काला, अत्यधिक लम्बा, कम बालों वाला, धमनियों से युक्त दुर्बल, नीचे मुँह किये, हाथ में दण्ड लिए हुए, स्वास को निरन्तर विश्राम देता हुआ, नीचे नेत्र किये हुए, स्त्रियों के संभोग हेतु लालायित दिखाई दे रहा था ॥ १०५-१०६ ॥

स चोवाच तदा दक्षं कस्मिंस्थास्याम्यहं मुने ।
किं वा चाहं करिष्यामि तन्मे वद महामते ॥१०७॥

तब उसने दक्ष से कहा— हे मुनि ! मैं कहाँ निवास करूँ? अथवा मैं क्या करूँ? आप मुझे बतायें क्योंकि आप महान बुद्धिशाली हैं ॥ १०७ ॥

ततो दक्षस्तु तं प्राह सोमं यातु द्रुतं भवान् ।
सोममत्तु भवान्नित्यं सोमे त्वं तिष्ठ स्वेच्छया ॥१०८॥

तब दक्ष ने उससे कहा—तुम शीघ्र चन्द्रमा के समीप जाओ। तुम अपनी इच्छानुसार चन्द्रमा में निवास करो तथा नित्य चन्द्रमा का भक्षण करने वाले होओ ॥ १०८ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य दक्षस्याथ महामुनेः ।
शनैः शनैस्ततः सोममाससाद गदः स च ।।१०९।।

मार्कण्डेय बोले– वह यक्ष्मा नामक रोग तब उन महामुनि दक्ष के वचनों को सुनकर धीरे-धीरे सोम के पास पहुँच गया ॥ १०९ ॥

आसाद्य स तदा सोमं वल्मीकं पन्नगो यथा ।
प्रविवेशेन्दुहृदयं छिद्रं प्राप्य महागदः ।।११०।।

तब वह महान रोग, जैसे साँप वाल्मीकी में घुसता है, वैसे ही चन्द्रमा के पास पहुँच कर तथा उनमें छिद्र अर्थात् दोष पाकर, उनके हृदय में प्रवेश कर गया ॥ ११० ॥

तस्मिन् प्रविष्टे हृदये दारुणे राजयक्ष्मणि ।
मुमोह चन्द्रस्तन्द्रांच विषमां प्राप्तवांश्च सः ।।१११।।

उस भयानक राजयक्ष्मा के हृदय में प्रविष्ट हो जाने पर चन्द्रमा मूर्छित हो गया तथा उसने असह्य तन्द्रा को प्राप्त किया ॥ १११ ॥

उत्पद्य प्रथमं यस्माल्लीनो राजन्यसौ गदः ।
राजयक्ष्मेति लोकेऽस्मिन्तस्य ख्यातिरभूद्द्विजाः ।।११२।।

हे द्विजों ! उत्पन्न होते ही उस रोग ने सर्वप्रथम द्विजराज चन्द्रमा में प्रवेश कर लिया। इसीलिए लोक में उसकी राजयक्ष्मा नाम से प्रसिद्धि हुई ॥ ११२ ॥

ततस्तेनाभिभूतः स यक्ष्मणा रोहिणीपतिः ।
क्षयं जगामानुदिनं ग्रीष्मे क्षुद्रा नदी यथा ।।११३।।

तब जिस प्रकार गर्मी में छोटी नदी क्षय को प्राप्त होती है, उसी प्रकार रोहिणीपति चन्द्रमा भी उस यक्ष्मा रोग से ग्रस्त हो, दिनोंदिन क्षय को प्राप्त होने लगे ॥ ११३ ॥

अथ चन्द्रे क्षीयमाणे सर्वौषध्यो गताः क्षयम् ।
क्षयं यातास्वौषधिषु न यज्ञः समवर्तत ।।११४।।

इसके बाद चन्द्रमा के क्षय होने पर सभी औषधियाँ नष्ट हो गईं। औषधियों के नष्ट हो जाने से यज्ञ नहीं हो सकते थे ॥ ११४ ॥

यज्ञाभावात्तु देवानामन्नं सर्वं क्षयं गतम् ।
पर्जन्याश्च ततो नष्टास्ततो वृष्टिर्नचाभवत् ।।११५।।

यज्ञ के अभाव से देवताओं का अन्न (हविष्य) पूर्णतः नष्ट हो गया, जिससे मेघ नष्ट हुए और उससे वर्षा नहीं हुई ॥ ११५ ॥

वृष्ट्यभावे तु लोकानामाहाराः क्षीणतां गताः ।
दुर्भिक्षव्यसनोपेते सर्वलोके द्विजोत्तमाः ।।११६।।

हे द्विजोत्तमों ! वृष्टि के अभाव में प्राणियों का भोजन नष्ट हो गया तथा समस्त लोक अकाल की विपत्ति में पड़ गये ।। ११६ ।।

दानधर्मादिकं किञ्चिन्न लोकस्य प्रवर्तते ।
सत्त्वहीनाः प्रजाः सर्वा लोभेनोपहतेन्द्रियाः ।
पापमेव तदा चक्रुः कुकर्मरतयश्च ताः ।।११७।।

दुर्भिक्ष की विपत्तिवश प्राणियों के दान धर्मादि कुछ भी नहीं होते थे। तब सारी प्रजा सत्व से हीन हो लोभग्रस्त चित्तवाली हो गई। वे कुकर्मरत हो पाप मात्र ही करने लगे ।। ११७ ।।

एतान् दृष्ट्वा तदा भावान् दिक्पालाः सपुरन्दराः ।
जग्मुः क्षोभं परं देवाः सागराश्च ग्रहास्तथा ।।११८।।

तब इन भावों को देखकर इन्द्र के सहित दसों दिक्पाल, अन्य देवगण, सागर, और ग्रह सभी, अत्यधिक क्षुब्ध हो उठे ।। ११८ ।।

ततो दृष्टवा जगत्सर्वं व्याकुलं दस्युपीडितम् ।
ब्रह्माणमगमन् देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ।।११९।।

तब सम्पूर्ण जगत को दस्युओं से पीड़ित देखकर, इन्द्र को आगे कर सभी देवता ब्रह्मा के समीप गये ।। ११९ ।।

उपसङ्गम्य देवेशं स्रष्टारं जगतां पतिम् ।
प्रणम्याथ यथायोग्यमुपविष्टास्तदा सुराः ।।१२०।।

तब देवगण देवाधिदेव, लोकपति, स्रष्टा, ब्रह्मा के निकट पहुँचकर उन्हें यथायोग्य प्रणाम कर बैठ गये ।। १२० ।।

तान् म्लानवदनान् सर्वान्वीक्ष्य लोकपितामहः ।
अभिभूतान् परेणेव हृतस्वविषयानिव ।
पप्रच्छ सम्मुखीकृत्य गुरुमिन्द्रं हुताशनम् ।।१२१।।

अपने राज्य का शत्रुओं द्वारा हरण कर लिये जाने से पराजित हुए की भाँति मलिन मुख (उदास) उन सब देवों को देखकर लोक पितामह ब्रह्मा ने गुरु (वृहस्पति), इन्द्र और अग्निदेव को सम्मुख लक्ष्य को सम्बोधित कर पूछा—।। १२१ ।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

स्वागतं भो सुरगणाः किमर्थं यूयमागताः ।
दुःखोपहतदेहांश्च युष्मान् म्लानांश्च लक्षये ।।१२२।।

ब्रह्मा बोले– हे देवगण ! तुम सबका स्वागत है । तुम सब किस हेतु पधारे हो? मैं तुम्हें दुःख से पीड़ित और मलीन देख रहा हूँ ॥ १२२ ॥

निराबाधान्निरातंकान् युष्मान् सर्वांश्च कामगान् ।
कृत्वा स्वविषये न्यस्तान् कथं पश्यामि दुःखितान् ।।१२३।।

तुम सब बिना किसी बाधा और भय के सर्वत्र इच्छानुसार गमन करने वाले हो । तुम्हें अपने-अपने क्षेत्र में नियोजित करने के बाद भी मैं आज क्यों दुःखी देख रहा हूँ? ॥ १२३ ॥

यद्वोऽभवद्दुःखबीजं युष्मान् वा यस्तु बाधते ।
तत्कथ्यतामशेषेण सिद्धञ्चाप्यवधार्यताम् ।।१२४।।

जो भी तुम्हारे दुःख का बीज उत्पन्न हुआ हो या जो भी बाधा पहुँचा रहा हो वह सब विस्तार से बताओ तथा उसका समाधान भी सुनो ॥ १२४ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततो वृद्धश्रवा जीवः कृष्णवर्त्मा च लोकभृत् ।
उवाचात्मभुवे तस्मै सुराणां दुःखकारणम् ।।१२५।।

मार्कण्डेय बोले–तब वृद्धश्रवा इन्द्र, देव गुरु तथा लोकपाल अग्नि ने उन आत्मभू ब्रह्मा से देवताओं के दुःख का कारण कहा—॥१२५ ॥

।। देवा ऊचुः ।।

शृणु सर्वं जगत्कर्तस्त्वां येन वयमागताः ।
यद्वास्माकं दुःखबीजं यतो म्लानश्रियो वयम् ।।१२६।।

देवगण बोले–हे जगत्कर्ता ! जिस हेतु हम सब आपके यहाँ आये हैं या हमारे दुःख का जो बीज है जिससे हम मलिन शोभा वाले हो रहे हैं, वह सब सुनिये ॥ १२६ ॥

न क्वचित् सम्प्रवर्तन्ते यज्ञा लोके पितामह ।
निराधारा निरातंकाः प्रजाः सर्वा क्षयं गताः ।।१२७।।

हे पितामह ! अब संसार में कहीं यज्ञ नहीं होते । निर्भय रहने वाली प्रजा भी आधारहीन हो, क्षय को प्राप्त हो गई है ॥ १२७ ॥

न च दानादिधर्माश्च न तपांसि क्षितौ क्वचित् ।
नैव वर्षति पर्जन्यः क्षीणतोयाभवत् क्षितिः ।।१२८।।

पृथ्वी पर कहीं न तो दान धर्मादि होता है और न तपस्या ही होती है । बादल वर्षा नहीं करते हैं, जिससे पृथ्वी जलहीन हो गई है ॥ १२८ ॥

क्षीणाः सर्वास्तथौषध्यः शस्या लोकाः समाकुलाः ।
दस्युभिः पीडिता विप्रा वेदवादं न कुर्वते ।।१२९।।

सभी औषधियों एवं वनस्पतियों के नष्ट हो जाने पर संसार व्याकुल और दस्युपीड़ित हो गया है। अब विप्रगण वेदवाद भी नहीं करते ॥ १२९ ॥

अन्नवैकल्यमासाद्य म्रियन्ते बहवः प्रजाः ।
क्षीणेषु यज्ञभागेषु भोग्यहीनास्तथा वयम् ॥१३०॥
दुर्बलास्तु श्रियाहीना नैव शान्तिं लभामहे ॥१३१॥

अन्न के अभाव से बहुत-सी प्रजा मर गयी है तथा यज्ञभाग (हविष्य) न प्राप्त होने से हम लोग भी क्षीण, दुर्बल, शोभारहित हो, शान्ति नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं ॥ १३०-१३१ ॥

रोहिण्या मन्दिरे चन्द्रो वक्रगत्या चिरं स्थितः ।
वृषराशौ स च क्षीणो ज्योत्स्नाहीनश्च वर्तते ॥१३२॥

वक्रगति (दुराचरण) से चन्द्रमा सदैव रोहिणी के भवन में निवास कर रहा है। वह वृषराशि में उच्च का होते हुए भी क्षीण एवं चाँदनी से रहित हो गया है ॥ १३२ ॥

यदैवान्विष्यते देवैश्चन्द्रो नैषां पुरःसरः ।
कदाचिदपि देवानां समाजे वा भवद्विधे ॥१३३॥

हे विधि ! जब देवताओं द्वारा खोजा जाता है तो कभी भी चन्द्रमा सामने देवताओं के समाज में नहीं आता ॥ १३३ ॥

कदाचिद्रोहिणीं त्यक्त्वा नैव क्वचन गच्छति ।
यद्यन्यः कोऽपि न भवेत्तदा चन्द्रो बहिर्भवेत् ॥१३४॥

वह रोहिणी को छोड़कर कभी भी, कहीं भी नहीं जाता। जब दूसरा कोई नहीं होता तभी चन्द्रमा बाहर निकलता है ॥ १३४ ॥

दृश्यते स कलाहीनः कलामात्रावशेषकः ।
इति सर्वत्र लोकेश वृत्तः कर्मविपर्ययः ॥१३५॥

हे लोकेश ! वह अपनी कलाओं से हीन हो कलामात्र ही अवशिष्ट रह गया है। हे लोकेश ! इससे सर्वत्र ही कर्मों का उलटा परिणाम दिखाई दे रहा है ॥ १३५ ॥

तं दृष्ट्वा कान्दिशीकास्तु वयं त्वां शरणं गताः ।
पातालाद्यावदुत्थाय कालकञ्जादयोऽसुराः ।
नास्मान् लोकेश बाधन्ते तावन्नस्त्राहि साध्वसात् ॥१३६॥
अयं प्रवर्तते कस्माज्जगतां वा व्यतिक्रमः ।
न जानीमस्तु तत्सर्वं विप्लवे वापि काणम् ॥१३७॥

उसे ही दख कर हम सब कान्तिशीक् (दिशाहीन) हो आपकी शरण में आये हैं। कालकन्जादि असुर जब तक पाताल से उठकर हमलोगों को बाधा न पहुँचायें

तब तक आप विपत्ति से हमारी रक्षा कीजिये। संसार में ऐसा व्यतिक्रम क्यों हुआ? या इस विप्लव का क्या कारण है? वह सब हम नहीं जानते ॥ १३६-१३७ ॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

एतत् सुराणां वचनं दिव्यदर्शी पितामहः ।
श्रुत्वा क्षणमभिध्यायन् निजगाद सुरोत्तमान् ॥१३८॥

मार्कण्डेय बोले– दिव्यदर्शी पितामह ब्रह्मा देवताओं के इन वचनों को सुनकर क्षण भर ध्यान किये तत्पश्चात् देवश्रेष्ठों से बोले— ॥ १३८ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

शृण्वन्तु देवताः सर्वा यदर्थं लोकविप्लवः ।
प्रवर्त्ततेऽधुना येन शान्तिस्तस्य भविष्यति ॥१३९॥

ब्रह्मा बोले– जिसलिए इस समय लोक में विप्लव हो रहा है और जिस उपाय से इसकी शान्ति होगी, उसे सभी देवता सुनें ॥ १३९ ॥

सोमो दाक्षायणीः कन्याः सप्तविंशतिसङ्ख्यकाः ।
अश्विन्याद्या वरबधूर्भार्यार्थे परिणीतवान् ॥१४०॥

सोम (चन्द्रमा) ने दक्ष की प्रजापति की अश्विनी आदि सत्ताइस कन्याओं से वर-वधू सम्बन्ध से पत्नी के रूप में परिणय किया ॥ १४० ॥

परिणीय स ताः सर्वा रोहिण्यां सततं विधुः ।
प्रावर्ततानुरागेण न समस्तासु वर्तते ॥१४१॥

उन सबसे विवाह करके भी निरन्तर वह चन्द्रमा रोहिणी के ही साथ अनुराग से प्रवर्तन करता है, सबके साथ नहीं करता ॥ १४१ ॥

अश्विन्याद्यास्तु ताः सर्वा दौर्भाग्यज्वरपीडिताः ।
षड्विंशतिर्वरारोहाः पितरं प्रस्थिताः स्वकम् ॥१४२॥
प्रवर्तते निशानाथो रोहिण्यां रागतो यथा ।
तथा न तासु भजते तद्दक्षाय न्यवेदयन् ॥१४३॥

उस समय अश्विनी आदि छब्बीस सुन्दरियाँ, दुर्भाग्य के ज्वर से पीड़ित हो अपने पिता दक्ष के पास पहुँची। उनसे निवेदन किया कि चन्द्रमा रोहिणी ही के साथ रागपूर्ण व्यवहार करते हैं, उनका उपभोग नहीं करते ॥ १४२-१४३ ॥

ततो दक्षो महाबुद्धिः साम्ना संस्तूय विट्पतिम् ।
बहुसुनृतमाभाष्य पुत्र्यर्थे चान्वरोधत ॥१४४॥

तब महाबुद्धिमान् दक्ष प्रजापति ने सामनीति द्वारा अपने दामाद चन्द्रमा की स्तुति करते हुए बहुत-सी उपयुक्त बातें करके अपनी कन्याओं के लिए उनसे अनुरोध किया ॥ १४४ ॥

अनुरुद्धो यथाकामं दक्षेण सुमहात्मना ।
समं प्रवर्तितुं तासु समयं कृतवान् विधुः ।।१४५।।

चन्द्रमा ने महात्मा दक्ष द्वारा उन कन्याओं के साथ समान व्यवहार करने के लिए यथेच्छ अनुरोध किये जाने पर, वैसा करने का वचन दिया ।। १४५ ।।

सममङ्गीकृते भावं तासु कर्तुं हिमांशुना ।
स्वं जगाम ततः स्थानं दक्षोऽपि मुनिसत्तमः ।।१४६।।

तब मुनियों में श्रेष्ठ दक्ष भी चन्द्रमा द्वारा उन कन्याओं के प्रति उचित व्यवहार स्वीकार कर लेने पर अपने स्थान को चले गये ।। १४६ ।।

गते दक्षे मुनिश्रेष्ठे वैषम्यं तासु चन्द्रमाः ।
जहौ न भावं ताः शश्वत् कुपिताः पितरं गताः ।।१४७।।

मुनि श्रेष्ठ दक्ष के चले जाने पर चन्द्रमा ने उन पत्नियों के प्रति विषमता का भाव नहीं छोड़ा । तब वे सदा के लिए क्रोधित होकर पिता के पास चली गयीं ।। १४७ ।।

ततो दक्षः पुनश्चन्द्रमनुरुध्य सुतान्तरे ।
समां वृत्तिं प्रतिश्राव्य वचनं चेदमब्रवीत् ।।१४८।।

तब दक्ष ने कन्याओं के प्रति समान व्यवहार की आशा में चन्द्रमा से पुनः अनुरोध करते हुए ध्यान देने योग्य ये वचन कहे— ।। १४८ ।।

न समं वर्तते चन्द्र सर्वास्वासु भवान् यदि ।
तदा शप्स्ये त्वहं तुभ्यं तस्मात् कुरु समंजसम् ।।१४९।।

हे चन्द्र ! यदि आप सबों के प्रति समान व्यवहार नहीं करोगे, तब मैं तुम्हें शाप दूँगा । इसलिए तुम समानता का व्यवहार करो ।। १४९ ।।

ततो गते पुनर्दक्षे न समं वर्तते यदा ।
तासु चन्द्रस्तदा दक्षं पुनर्गत्वाब्रुवन् रुषा ।।१५०।।

दक्ष के चले जाने के बाद जब चन्द्रमा ने पुनः उनके प्रति समान व्यवहार नहीं किया तब उन्होंने क्रोधपूर्वक दक्ष से पुनः कहा— ।। १५० ।।

न ते वचः सत्कुरुते नैवास्मासु प्रवर्तते ।
वयं तपश्चरिष्यामः स्थास्यामश्च तवान्तिके ।।१५१।।

न वे आपके वचनों का सम्मान करते हैं न हमारे साथ प्रवृत्त होते हैं । इसलिए हम सब आपके ही पास रहकर तपस्या करेंगी ।। १५१ ।।

तासामिति वचः श्रुत्वा कुपितः स महामुनिः ।
क्षयाय चन्द्रस्य पुनः शापायोत्सुकतां गतः ।।१५२।।

उन कन्याओं के इस वचन को सुनकर वे महामुनि दक्ष क्रोधित हो, चन्द्रमा को क्षय हेतु शाप देने को उद्यत हो गये ।। १५२ ।।

शापायोद्युक्तमनसः कुपितस्य महामुने ।
क्षयो नाम महारोगो नासिकाग्राद्विनिर्गतः ।।१५३।।

शाप के लिए उद्यत मन वाले क्रोधित उस महामुनि की नासिका से उस समय क्षय नामक महान रोग निकला ।। १५३ ।।

प्रेषितः स च चन्द्राय दक्षेण मुनिना ततः ।
प्रविष्टश्च ततो देहे क्षयितस्तेन चन्द्रमाः ।।१५४।।

तब मुनिवर दक्ष द्वारा वह चन्द्रमा के लिए भेज दिया गया और उसके शरीर में प्रविष्ट हो जाने पर उसके कारण चन्द्रमा क्षय को प्राप्त हुए ।। १५४ ।।

क्षीणे चन्द्रे क्षयं याता ज्योत्स्नास्तस्य महात्मनः ।
क्षीणासु सर्वज्योत्स्नासु सर्वौषध्यः क्षयं गताः ।।१५५।।

चन्द्रमा के क्षीण होने पर उस महात्मा की चाँदनी भी क्षय को प्राप्त हुई । सम्पूर्ण ज्योत्स्ना के क्षीण हो जाने पर सभी औषधियाँ (वनस्पतियाँ) भी क्षय को प्राप्त हुईं ।। १५५ ।।

औषध्यभावाल्लोकेऽस्मिन् न यज्ञः सम्प्रवर्तते ।
यज्ञाभावादनावृष्टिस्ततः सर्वप्रजाक्षयः ।।१५६।।

औषधि के अभाव में इस लोक में यज्ञ नहीं हो रहा है । यज्ञ के अभाव से अनावृष्टि हो गई है । जिससे सारी प्रजा का नाश हो गया ।। १५६ ।।

यज्ञभागोपभोगेन हीनानां भवतां तथा ।
दुर्बलत्वं समुत्पन्नं विकारश्च स्वगोचरे ।।१५७।।

यज्ञभाग (हविष्य) के उपभोग की हीनता से आपलोगों में दुर्बलता तथा इन्द्रिय विकार उत्पन्न हुए ।। १५७ ।।

इति वः कथितं सर्वं यथाभूल्लोकविप्लवः ।
येनोपायेन तच्छान्तिस्तच्छ्रृण्वन्तु सुरोत्तमाः ।।१५८।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे चन्द्रस्यशापवर्णनन्नाम विंशोऽध्यायः ।।२०।।

जिस प्रकार लोक में उलटफेर हुआ था, वह सब मैंने आप लोगों से कहा । हे देव श्रेष्ठों ! जिस उपाय से उसकी शान्ति होगी, उसे सुनो ।। १५८ ।।

।। चन्द्रशापवर्णन नामक बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। २० ।।



एकविंशोऽध्यायः

चन्द्रशापमोक्षणम्

।। ब्रह्मोवाच ।।

गच्छन्तु भोः सुरगणा दक्षस्य सदनं प्रति ।
प्रसादयत चन्द्रार्थे स च पूर्णो भवेद्यथा ।।१।।

ब्रह्मा बोले– हे देवगण ! आप दक्ष प्रजापति के घर जाएँ एवं उन्हें चन्द्रमा के (कल्याण) हेतु प्रसन्न करें, जिससे वह पूर्ण हो जाय ॥ १ ॥

पूर्णे चन्द्रे जगत्सर्वं प्रकृतिस्थं भविष्यति ।
युष्मा कंच भवेच्छान्तिरोषधीनाञ्च सम्भवः ।।२।।

चन्द्रमा के पूर्ण होते ही सम्पूर्ण जगत् स्वस्थ हो जायेगा, आपको भी शान्ति प्राप्त होगी तथा ओषधियों की उत्पत्ति होवेगी ॥ २ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ।
प्रययुर्हृष्टमनसस्तदा दक्षनिवेशनम् ।।३।।

मार्कण्डेय बोले– तब ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर प्रसन्न मन से इन्द्र के नेतृत्व में देवगण दक्ष के निवास पर गये ॥ ३ ॥

यथान्यायमुपस्थाय सर्वे मुनिवरं सुराः ।
प्रोचुः प्रजापतिं दक्षं प्रणम्य श्लक्ष्णया गिरा ।।४।।

वे सभी देवता मुनिवर दक्ष प्रजापति के सम्मुख यथोचित क्रम से उपस्थित हुए, उन्हें प्रणाम किया और मधुर वाणी में बोले ॥ ४ ॥

देवकृतादक्षस्तुति

।। देवा ऊचुः ।।

प्रसीद सीदतां ब्रह्मन्नस्माकं बहुदुःखिनाम् ।
उद्धरस्व महाबुद्धे त्राहि नः शोकसागरात् ।।५।।

देवगण बोले– हे ब्रह्मन् ! अत्यन्त दुःखी तथा पीड़ित हम सब पर आप प्रसन्न होइये। हे महान बुद्धिवाले ! इस समुपस्थित शोक-सागर से हमारा उद्धार कीजिए ॥ ५ ॥

यद्रूपं ब्रह्मसंज्ञन्तु सृष्टिकृत् परमात्मनः ।
तदंशस्त्वं परं ज्योतिर्विप्ररूप नमोऽस्तुते ।।६।।

हे विप्ररूप ! परमात्मा का सृष्टि करने वाला जो ब्रह्मा नामक रूप है, आप उसी के अंशभूत, परं ज्योति हो, आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥

रक्षणात् सर्वजगतां प्रजापालनकारणात् ।
दक्षः प्रजापतिश्चेति योगेशस्त्वं नुमो वयम् ।।७।।

सम्पूर्ण जगत की रक्षा तथा प्रजा का पालन करने के कारण आप दक्ष प्रजापति कहे जाते हैं। आप योगेश भी हैं; हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥

दक्षाय सर्वजगतां दक्षाय कुशलात्मनाम् ।
दक्षायात्महितायाशु नमस्तुभ्यं महात्मने ।।८।।

सम्पूर्ण जगत में दक्ष, कुशलात्माओं में दक्ष, आत्मा के हित-साधन में तेज महात्मा दक्ष तुम्हें नमस्कार है ॥ ८ ॥

सततं चिन्त्यमानस्य योगिभिर्नियतेन्द्रियैः ।
सारस्य सारभूतस्त्वं दक्षाय परमात्मने ।।९।।
योगिवृत्तिरनाधृष्य पारगाणां परायणः ।
आद्यन्तमुक्तः सहसा तस्मै नित्यं नमो नमः ।।१०।।

नियन्त्रित इन्द्रिय वाले योगीजन निरन्तर जिसका चिन्तन करते रहते हैं, जो सार तत्त्व के भी सारभूत अर्थात् परमसार तत्त्व हैं, जो योगियों के भी आचरण पर विजय प्राप्त कर पारंगतों (ऊपर उठे हुये लोगों) के भी परमस्थान (लक्ष्य) हैं उन आदि और अन्त से रहित, शाश्वत, सामर्थ्यवान, परमात्मा दक्ष को बारम्बार नमस्कार है ॥ ९-१० ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति तेषां वचः श्रुत्वा दक्षो यज्ञभुजां तथा ।
प्राह प्रसन्नवदनः शक्रमाभाष्य मुख्यतः ।।११।।

मार्कण्डेय बोलें– उन यज्ञभोगी देवताओं के ये वचन सुनकर, प्रसन्न-मुख, दक्ष प्रजापति से इन्द्र को मुख्य रूप से सम्बोधित कर बोले— ॥ ११ ॥

।। दक्ष उवाच ।।

कुतः शक्र महाबाहो भवतां दुःखमागतम् ।
दुःखहेतुं वद विभो श्रोतुमिच्छाम्यहन्तु तम् ।।१२।।

दक्ष प्रजापति बोले– हे महाबाहु इन्द्र ! आप लोगों पर दुःख कहाँ से आ गया ? हे विभु ! आप अपने दुःख का कारण बताइये, मैं उसे सुनना चाहता हूँ ॥ १२ ॥

ममास्ति वा किं कर्तव्यं भवतां दुःखहानये ।
तदहं यदि शक्नोमि करिष्यामि हितं समम् ।।१३।।

या आप लोगों का दुःख दूर करने के लिए मुझे क्या करना है? यदि मैं कर सकूँगा तो वही करूँगा जो आपके लिए हितकर हो ॥ १३ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य ब्रह्मसूनोर्महात्मनः ।
जगाद वाक्पतिः शक्रो वीतिहोत्रोऽथ तं मुनिम् ।।१४।।

मार्कण्डेय बोले– उस ब्रह्मपुत्र महात्मा दक्ष के वचनों को सुनकर वाक्पति (वृहस्पति), देवराज इन्द्र तथा अग्निदेव ने उन मुनिवर से कहा— ॥ १४ ॥

।। त ऊचुः ।।

क्षयी जातो निशानाथस्तस्मिन् क्षीणे क्षयं गताः ।
सर्वौषध्यो द्विजश्रेष्ठ तद्धानिर्यज्ञहानिकृत् ।।१५।।

वे (वृहस्पति, इन्द्र और अग्निदेव) बोले– हे द्विजश्रेष्ठ ! आज निशापति चन्द्रमा क्षीण हो गया है। उसके क्षीण होने से सभी ओषधियाँ नष्ट हो गई हैं और उनकी हानि, यज्ञ की हानि का कारण हो रही है ॥ १५ ॥

यज्ञे विनष्टे सकलाः प्रजाः क्षुद्भयकातराः ।
वृष्ट्यभावान्महद्दुःखं प्राप्य नष्टाश्च काश्चन ।।१६।।

यज्ञ के नष्ट होने से वृष्टि के अभाव में सारी प्रजा किसी महान दुःख को प्राप्त कर भूख एवं भय से भयभीत हो, नष्ट हो गई है ॥ १६ ॥

क्षयोऽयं रात्रिनाथस्य यस्ते कोपात् प्रवर्तते ।
स सर्वजगतो ब्रह्मन्नभावार्थमुपस्थितः ।।१७।।

हे ब्रह्मन्! यह रात्रिपति चन्द्रमा का क्षय जो आप के क्रोध के कारण हुआ है। वह इस समय सम्पूर्ण जगत के अभाव (नाश) का कारण हो रहा है ॥ १७ ॥

नाधुना तत् त्रिभुवने यन्न क्षुब्धं नु किञ्चन ।
विप्लुतं वास्ति विप्रेन्द्र स्थावराः पतगाश्च वा ।।१८।।
न यज्ञाः सम्प्रवर्तन्ते न तपस्यन्ति तापसाः ।
आहारदुःखान्निश्रीकाः प्रजा क्षीणा भयातुराः ।।१९।।

हे विप्रों में श्रेष्ठ ! आज तीनों लोकों में कोई भी ऐसा नहीं है जो दुःखी या विनष्ट न हो भले ही वह स्थावर या गगनचर पक्षी आदि ही क्यों न हो अर्थात् सभी दुःखी हैं। आज न यज्ञ हो रहे हैं और न तपस्वीजन तपस्या कर रहे हैं। भोजन के दुःख से शोभारहित तथा भयभीत सम्पूर्ण प्रजा नष्ट हो रही है ॥ १८-१९ ॥

एवं प्रवृत्ते विप्रेन्द्र विप्लवेऽस्मात् रसातलात् ।
दैत्या न यावदुत्थाय बाधन्ते तावदुद्धर ।।२०।।

हे विप्रेन्द्र ! इस प्रकार के विपल्व की दशा के कारण जब तक रसातल से ऊपर आकर दैत्य हमें बाधा न पहुँचाये तब तक आप हमारा उद्धार कीजिए ॥ २० ॥

प्रसीद दक्ष चन्द्रस्य तं पूरय तपोबलात् ।
पूर्णे चन्द्रे जगत्सर्वं प्रकृतिस्थं भविष्यति ।।२१।।

हे दक्ष ! आप प्रसन्न होइए तथा तपस्या के बल से चन्द्रमा को पूर्ण कर दीजिये। चन्द्रमा के पूर्ण होने पर सम्पूर्ण जगत अपने स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त कर लेगा ॥ २१ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रजापतिसुतस्तदा ।
उवाच तान् सुरगणान् हृदयाच्छल्यमुद्धरन् ।।२२।।

तब प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र दक्ष, उन देवताओं के वचनों को सुनकर उनके हृदयों से उनके कष्ट दूर करते हुए उनसे बोले— ॥ २२ ॥

।। दक्ष उवाच ।।

यन्मे वचो निशानाथे प्रवृत्तं शापकारणम् ।
न केनापि निदानेन मिथ्या कर्तुं तदुत्सहे ।।२३।।

दक्ष बोले– निशापति चन्द्रमा के शाप के कारण जो मेरा यह वचन हुआ है, वह किसी भी उपाय से झुठलाया नहीं जा सकता ॥ २३ ॥

किन्तु मद्वचनं यस्मान्नैकान्तेन मृषा भवेत् ।
चन्द्रोऽपि वर्धते यस्मात्तदुपायमुदेक्षत ।।२४।।

किन्तु मेरा वचन जिस उपाय से भी पूर्णतः झूठा न हो, चन्द्रमा भी वृद्धि को प्राप्त हो वैसा उपाय देखा जाय, विचारा जाय ॥ २४ ॥

तत्राप्ययमुपायोऽस्ति मासार्धं यातु चन्द्रमाः ।
क्षयं वृद्धिञ्च मासार्धं समं भार्यासु वर्तताम् ।।२५।।

यहाँ यह उपाय दीखता है कि आधे महीने (एक पक्ष में) चन्द्रमा क्षय को प्राप्त हो तथा आधे महीने स्वकीय पत्नियों के साथ समान वर्ताव करते हुए वृद्धि को प्राप्त हो ॥ २५ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तं प्रसाद्य प्रजापतिम् ।
सर्वे सुरगणास्तत्र गता यत्रास्ति चन्द्रमाः ।।२६।।

उन प्रजापति के उस वचन को सुन, उन्हें प्रसन्न कर, सभी देवगण वहाँ गये जहाँ उस समय चन्द्रमा थे ॥ २६ ॥

एवमुक्ते तु वचने दक्षेण मुनिना द्विजाः ।
अथ चन्द्रं समादाय भार्याभिः सहितं तदा ।
जग्मुस्ते ब्रह्मभवनं मुदिताः सुरसत्तमाः ।।२७।।

हे द्विजों ! मुनिवर दक्ष द्वारा इस प्रकार के वचन कहे जाने पर वे देवगण प्रसन्नतापूर्वक पत्नियों के सहित चन्द्रमा को साथ लेकर ब्रह्मा के भवन को गये ॥ २७ ॥

तत्र गत्वा महाभागाः यथा दक्षेण भाषितम् ।
तत्सर्वं कथयामासुर्ब्रह्मणे परमात्मने ।।२८।।

वहाँ जाकर उन महापुरुषों ने जो कुछ दक्ष प्रजापति द्वारा कहा गया था वही सब परमात्मा ब्रह्मा से कहा ॥ २८ ॥

ब्रह्मा दक्षवचः श्रुत्वा देवानां वचनात्तदा ।
चन्द्रभागं महाशैलं जगाम सहितः सुरैः ।।२९।।

तब देवताओं के मुँह से दक्ष की कही हुई बात सुनकर उन्हीं देवताओं के साथ ब्रह्मा चन्द्रभाग नामक विशाल पर्वत पर गये ॥ २९ ॥

तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठः प्रजानां हितकाम्यया ।
स्नापयामास शुभ्रांशुं वृहल्लोहितपुष्करे ।।३०।।

वहाँ जाकर देवताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा ने प्रजा के हित की कामना से श्वेत किरणों वाले चन्द्रमा को बृहल्लोहित सरोवर में स्नान कराया ॥ ३० ॥

भूतभव्यभवज्ज्ञानः पूर्वमेव पितामहः ।
एतदर्थञ्चकारात्र सरःपूर्णं जगद्गुरुः ।।३१।।

भूत, भविष्य एवं वर्तमान तीनों काल का ज्ञान रखने वाले, जगद्गुरु पितामह ब्रह्मा ने इस कार्य हेतु उपर्युक्त परिपूर्ण सरोवर का पहले ही निर्माण कर लिया था ॥ ३१ ॥

तत्र स्नातस्य जन्तोस्तु नीरोगत्वं प्रजायते ।
चिरायुष्यञ्च सततं वृहल्लोहितसंज्ञके ।।३२।।

उस बृहल्लोहित नामक सरोवर में स्नान किये प्राणियों को सदैव आरोग्य एवं दीर्घायुष्य प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

तत्र स्नातस्य चन्द्रस्य शरीरात्तत्क्षणं गदः ।
राजयक्ष्मा निःससार पूर्वरूपो यथोदितः ।।३३।।

वहाँ स्नान किये हुए चन्द्रमा के शरीर से पूर्व में वर्णित रूप में राजयक्ष्मा नामक रोग तत्काल बाहर निकला ॥ ३३ ॥

निःसृत्य राजयक्ष्मापि ब्रह्माणञ्च जगत्पतिम् ।
प्रणम्याहं किं करिष्ये क्व गच्छामीत्युवाच तम् ।।३४।।

चन्द्रमा के शरीर से निकलते ही राजयक्ष्मा ने जगत्पति ब्रह्मा को प्रणाम किया और उनसे पूछा—"मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ?" ॥ ३४ ॥

स्थानं पत्नीञ्च लोकेश कृत्यं मम सनातनम् ।
निदेशयानुरूपे मे स्रष्टा त्वं जगतां यतः ।।३५।।

हे लोकेश ! मेरे अनुरूप स्थान, पत्नी तथा सनातन कार्यों का आप निर्देश कीजिए क्योंकि आप संसार के रचयिता हैं ॥ ३५ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततो ब्रह्मापि तं पुष्टं निरीक्ष्येन्दुं शरीरगैः ।
अमृतैस्तेनातियुक्तैः क्षीणञ्चापि निशापतिम् ।।३६।।
दोर्भिः हस्तैः तं गृहीत्वा गिरौ निष्पीड्य वै मुहुः ।
अमृतं गालयामास शरीराद्राजयक्ष्मणः ।।३७।।

मार्कण्डेय बोले– तब ब्रह्मा ने चन्द्रमा के शरीर से निकले अमृत से युक्त होने के कारण पुष्ट शरीर वाले उस राजयक्ष्मा को तथा (अमृत के अभाव से) क्षीण चन्द्रमा को देखकर उसे दोनों हाथों से पकड़ा तत्पश्चात् उसे पर्वत पर निचोड़ कर, राजयक्ष्मा के शरीर से अर्क की भाँति अमृत निकाल लिया ॥ ३६-३७ ॥

अमृतानि च यान्याशु गालितानि तदा जले ।
क्षीरोदस्य च चिक्षेप मध्ये रहसि लोकभृत् ।।३८।।

तब जो निचुड़े अमृतविन्दु थे उन्हें ब्रह्मा ने शीघ्र ही क्षीर सागर के मध्यवर्ती जल के एकान्त स्थान में डाल दिया ॥ ३८ ॥

तस्मादस्यामृतादिन्दोः कलाः क्षीणास्तु याः पुरा ।
तासां जग्राह लवशश्चूर्णान् क्षीरोदसागरात् ।।३९।।

चन्द्रमा की जो कलायें पहले क्षीण हो गई थीं उन्होंने उस क्षीर सागर में पड़े हुए अमृत की बूँद-बूँद से उन कलाओं के चूर्णों को ग्रहण किया ॥ ३९ ॥

कलामात्रावशेषष्य संसर्गाद्राजयक्ष्मणः ।
क्षीणाः कलाः पञ्चदश याः पूर्वममृतात्मिकाः ।
ता राजयक्ष्मगर्भस्थाश्चूर्णीभूतास्तु पीडया ।।४०।।

चन्द्रमा एक कलामात्र ही अवशिष्ट रह गये थे। पहले उनकी जो पन्द्रह अमृतयुक्त कलायें थीं, राजयक्ष्मा के संसर्ग से वे क्षीण हो गई थीं। वे पीड़ा के कारण राजयक्ष्मा के गर्भ में चूर्णीभूत हो गई थीं ॥ ४० ॥

तेजोज्योत्स्ना सुधाभिस्तु निबद्धं यत् कलापतेः ।।४१।।
शरीरं तत् त्रिधा भूतं गर्भस्थं राजयक्ष्मणः ।।४२।।

चन्द्रमा का तेज, ज्योत्स्ना तथा अमृत निबद्ध (सुगठित) जो शरीर था वह तीन भागों में बँटकर राजयक्ष्मा के गर्भ में स्थित हो गया था ॥ ४१-४२ ॥

ज्योतिश्चूर्णमभूत् ज्योत्स्ना लीना राजादियक्ष्मणि ।
द्रवीभूताः सुधाः सर्वाः गर्भे रोगस्य च स्थिताः ।।४३।।

ज्योति अर्थात् तेज राजयक्ष्मा के गर्भ में चूर्ण रूप हो गई तथा ज्योत्स्ना उसी में लीन हो गई तथा समस्त सुधा द्रवरूप में यक्ष्मा रोग के गर्भ में स्थित हो गई थी ॥ ४३ ॥

यदा निर्गालयामास सुधां ब्रह्मा क्षमान्तरात् ।
तदा ज्योत्स्नासुधाज्योतिः सर्वं तस्माद्बहिर्गतम् ।।४४।।

जब ब्रह्मा ने यक्ष्मा के भीतर से अमृत को निचोड़ा तब ज्योत्स्ना (चंद्रिका), अमृत एवं ज्योति तीनों ही उसके अन्दर से बाहर आ गये ।। ४४ ।।

क्षीरोदसागरे क्षिप्तं तत् सर्वं विधिना तदा ।
देवान् गिरौ परित्यज्य स्वयं गत्वा द्रुतं ततः ।।४५।।

तब विधाता ने उन सभी को क्षीर सागर में डाल दिया । तत्पश्चात् सभी देवता पर्वत को छोड़कर स्वयं तेजी से वहाँ गये ।। ४५ ।।

ततोऽमृतानि प्रक्षाल्य कलाचूर्णानि वारिभिः ।
ज्योत्स्नाञ्चाप्याजगामाशु गृहीत्वा तत्त्रयं गिरिम् ।।४६।।

अमृतकला के चूर्ण तथा ज्योत्स्ना को भी क्षीर सागर के जल में धोकर वे शीघ्र ही उन तीनों को लेकर पर्वत पर (लौटकर) आ गये ।। ४६ ।।

क्षीरोदाद्गिरिमासाद्य चन्द्रभागं तदा विधिः ।
देवमध्ये कलाचूर्णं सुधाज्योत्स्ना न्यवीविशत् ।।४७।।

तब ब्रह्मा ने क्षीर-सागर से चन्द्रभाग पर्वत पर पहुँचकर कलाओं के चूर्ण, ज्योत्स्ना और अमृत को देवताओं के मध्यस्थान में निवेशित किया ।। ४७ ।।

संस्थाप्य तत्त्रयं ब्रह्मा देवानां मध्यतः स्थितः ।
जगाद राजयक्ष्माणं तत् स्थानादि निदेशयन् ।।४८।।

उन देवताओं के मध्य में स्थित ब्रह्मा उन तीनों को स्थापित कर राज यक्ष्मा को स्थान आदि का निर्देश करते हुए बोले— ।। ४८ ।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

सर्वदा यो दिवारात्रं सन्ध्यायां वनितारतः ।
सेवते सुरतं तस्मिन् राजयक्ष्मन् वसिष्यसि ।।४९।।

ब्रह्मा बोले– हे राजयक्ष्मा ! जो व्यक्ति सदैव रात, दिन या सायंकाल स्त्रियों में आसक्त हो सुरत (सम्भोग) का सेवन करता हो, तुम उसमें निवास करो ।। ४७ ।।

प्रतिशाय-श्वासकास-संयुक्तो मैथुनं चरेत् ।
स ते प्रवेश्यः सततं श्लेष्मणश्च तथाविधः ।।५०।।

जो सर्दी, जुकाम, श्वास-कास से युक्त होने पर भी निरन्तर मैथुन कर्म करे वही तुम्हारे प्रवेश करने योग्य है । श्लेष्मा से युक्त उस प्रकार का व्यक्ति भी तुम्हारे प्रवेश के योग्य है[1] ।। ५० ।।

कृष्णाख्या मृत्युपुत्री या भवतः सदृशी गुणैः ।
सा तेऽस्तु भार्या सततं भवन्तमनुयास्यति ।।५१।।

---

१. ४९-५० श्लोकों में अति और अनियंत्रित संभोग यक्ष्मा रोग का आधार बताया गया है।

तुम्हारे ही समान गुणोंवाली मृत्यु की जो कृष्णा नामक पुत्री है, वह तुम्हारी पत्नी होकर निरन्तर तुम्हारा अनुगमन करेगी ॥ ५१ ॥

क्षीणत्वं भवतः कृत्यं ततस्त्वं विषयं कुरु ।
द्रुतं गच्छ यथाकामं चन्द्रात् त्वं विमुखो भव ॥५२॥

क्षीण करना आपका मुख्य कर्म होगा उसे तुम अपना उद्दिष्ट कर्त्तव्य बना लो। तुम चन्द्रमा को छोड़कर शीघ्र ही जहाँ चाहो चले जाओ ॥ ५२ ॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

एवं विसृष्टो विधिना राजयक्ष्मा महागदः ।
पश्यतां सर्वदेवानामन्तर्धानं जगाम ह ॥५३॥

मार्कण्डेय बोले–ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार विदा किया हुआ राजयक्ष्मा नामक महान् रोग देवताओं के देखते ही देखते अन्तर्धान हो गया ॥ ५३ ॥

अन्तर्हिते महारोगे ब्रह्मा लोकपितामहः ।
चन्द्रं समग्रयामास कलापञ्चदशैधितम् ॥५४॥

उस महारोग के अन्तर्धान हो जाने पर लोक पितामह ब्रह्मा ने चन्द्रमा को पन्द्रह कलाओं से बढ़ाकर उसे सम्पूर्ण कर दिया ॥ ५४ ॥

तेन क्षीरोदधौतेन सुधापूतेन चात्मभूः ।
सज्योत्स्नैस्तु कलाचूर्णैः पूर्ववच्चाकरोद्विधुम् ॥५५॥

आत्मभू ब्रह्मा ने उन क्षीर-सागर से धुले हुए अमृत से पवित्र ज्योत्स्ना और कला के चूर्णों से चन्द्रमा को पहले के समान कर दिया ॥ ५५ ॥

स षोडशकलापूर्णः पूर्ववद्विबभौ यदा ।
चन्द्रस्तदा सर्वदेवा मुमुदुस्तस्य दर्शनात् ॥५६॥

जब वह चन्द्रमा सोलह कलाओं से पहले की भाँति हो गया तब उसके दर्शन से सभी देवता प्रसन्न हो गये ॥ ५६ ॥

अथ चन्द्रस्तदा पूर्णः प्रणिपत्य पितामहम् ।
उवाचेदं सुरसदोमध्यगो नाति हर्षितः ॥५७॥

तब देवताओं के मध्य स्थित पूर्ण किन्तु बहुत प्रसन्न न हो चन्द्रमा, पितामह ब्रह्मा को प्रणाम कर यह बोले ॥ ५७ ॥

॥ सोम उवाच ॥

न श्याम पूर्ववद् ब्रह्मञ्छशरीरे मम वर्तते ।
न वीर्यं वा तथोत्साहो निषीदन्त्यंगसन्धयः ॥५८॥

चन्द्रमा बोले–हे ब्रह्मन् ! मेरे शरीर में पहले की भाँति आनन्द नहीं है और न उस प्रकार का पराक्रम या उत्साह ही है। अंगों की सन्धियाँ दुःख रहीं हैं ॥ ५८ ॥

नोत्सहे पूर्ववच्चेष्टां विधातुं सुतरामहम् ।
चेष्टाहीनस्त्वनुदिनं वर्तेयं केन लोककृत् ।।५९।।

हे लोककर्त्ता ! मैं अब पहले की भाँति कार्य करने का जरा भी साहस नहीं रखता ऐसी दशा में निश्चेष्ट होकर मैं कैसे यह जीवन-यात्रा चला सकूँगा? ॥ ५९ ॥

।। ब्रह्मोवाच ।।

ग्रस्तस्य यक्ष्मणा सोम यदभूदंगसन्धयः ।
पूर्वं विशीर्णा भवतस्तत्पूर्णमभवन्नहि ।।६०।।

ब्रह्मा बोले– हे चन्द्रदेव ! यक्ष्मा से ग्रस्त हो जाने से जो तुम्हारे अंगों की संधिया अर्थात् हड्डियों के जोड़ पहले नष्ट हो गये थे वे अभी भी पूर्ण नहीं हुई हैं ॥ ६० ॥

अधुना भवतो देहचूर्णं निःसारितं मया ।
शरीरात् सामृतज्योत्स्नमञ्जसा राजयक्ष्मणः ।।६१।।

इस समय मैंने राजयक्ष्मा के शरीर से अमृत तथा ज्योत्स्ना के सहित तुम्हारा देह चूर्ण, जो उसने हरण कर लिया था, निकाल लिया है ॥ ६१ ॥

तेषां प्रक्षालनविधौ लवशो यत्स्थितं जले ।
ज्योत्स्नायाश्च सुधायाश्च तेन हीनो भवान् यतः ।।६२।।

उनके जल में प्रक्षालन करते समय अमृत, ज्योत्स्ना तथा देहचूर्ण को जो अंश मात्र जल में अवशिष्ट रह गया उन्हीं के अभाव में तुम यह हीनता का अनुभव कर रहे हो ॥ ६२ ॥

ततोऽङ्गसन्धयो राजंस्तव सीदन्ति साम्प्रतम् ।
तस्योपायं विधास्यामि यथा नार्तिं लभेद्भवान् ।।६३।।

हे द्विजराज ! इसीलिए तुम्हारी अंगसंधिया इस समय व्यथित हैं । मैं उसका उपाय करूँगा, जिससे तुम्हें कष्ट न हो ॥ ६३ ॥

प्राजापत्यः पुरोडाशो हवनीयः पुरोऽध्वरे ।
ऐन्द्रस्ततोऽनु चाग्नेयः प्रदेयः सर्वतः क्रतौ ।।६४।।
ततो नु भवतो भागः पुरोडाशो मया कृतः ।
तेन भागेन भुक्तेन नित्यं यज्ञकृतेन हि ।
पूर्ववत् ते समुत्साहः श्यामवीर्यं भविष्यति ।।६५।।

प्राचीनकाल में प्रजापति के यज्ञ के समय हवनीय पुरोडाश[1] (आहुति विशेष) की इन्द्र, तत्पश्चात् अग्नि हेतु सभी यज्ञों में व्यवस्था है । उसी में मैंने आपके भी

१. यक्ष्मा के मरीज को यदि खीर खिलाया जाय तथा वह यज्ञ शाला में स्वतः यज्ञ करे तो अग्नि, हविष्य गंध के प्रभाव से वह रोग मुक्त हो सकता है ।

अंशभाग की व्यवस्था कर दी है। उस अपने अंशभाग के भोग तथा स्वयं भी नित्य यज्ञ करने से तुम्हारा उत्साह, कल्याण एवं शक्ति पूर्ववत् हो जाएगी ॥ ६४-६५ ॥

ये चामृतकणास्तोये क्षीरोदस्य स्थितास्तव ।
शरीरचूर्णं वा यत्ते ज्योत्स्नायाश्चापि ये लवाः ।।६६।।
तत् सर्वं भवतो ज्योत्स्नायोगादनुदिनं विधो ।
वृद्धिं यास्यति सततं क्षीरसागरगर्भगम् ।।६७।।

हे चन्द्र ! जो तुम्हारे अमृत के कण, शरीर का चूर्ण, ज्योत्स्ना की बूँदे क्षीर सागर के जल में रह गई हैं। वही सभी आपके चाँदनी के संयोग से क्षीर-सागर के गर्भ में दिनों दिन निरन्तर बढ़ेंगी ॥ ६६-६७ ॥

स्वारोचिषेऽन्तरे प्राप्ते द्वितीये शङ्करांशजः ।
दुर्वासा भविता विप्रः प्रचण्डश्चण्डभानुवत् ।।६८।।

स्वारोचिष नामक द्वितीय मन्वन्तर में भगवान् शंकर के अंश से (तीक्ष्ण) सूर्य के समान प्रचण्ड दुर्वासा नामक एक ब्राह्मण होंगे ॥ ६८ ॥

स देवेन्द्रस्याविनयाच्छापं दत्वा सुदारुणम् ।
करिष्यति त्रिभुवनं निःश्रीकं ससुरासुरम् ।।६९।।

वह देवराज इन्द्र की उदण्डता से क्रुद्ध होकर भयानक शाप देकर देवता तथा राक्षसों के सहित तीनों लोकों को शोभारहित, श्रीहीन कर देंगे ॥ ६९ ॥

श्रिया हीने ततो लोके भविता लोकविप्लवः ।
यथा तव क्षयात् सोम प्रवृत्तः सर्वविप्लवः ।।७०।।

हे सोम ! तब उस समय भी लोक के श्रीहीन हो जाने पर जैसा तुम्हारे क्षय ग्रस्त हो जाने से सब जगह उथल-पुथल मच गई थी वैसे ही लोक में उथल-पुथल मच जाएगी ॥ ७० ॥

तन्मानुषप्रमाणेन तृतीये तु कृते युगे ।
भविष्यति स्थास्यति च यावद् युगचतुष्टयम् ।।७१।।

यह स्थिति मनुष्य के कालमान के तीसरे सत्युग में होवेगी तथा चौथे युग तक रहेगी ॥ ७१ ॥

ततश्चतुर्थे सम्प्राप्ते सह देवैः कृते युगे ।
क्षीरोदं निर्मथिष्यामः शम्भुर्विष्णुरहं तथा ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकीम् ।।७२।।

तब चौथे चतुर्युग के प्राप्त होने पर सत्ययुग में सभी देवताओं के सहित शिव, विष्णु तथा मैं मन्दराचल को मथानी तथा वासुकी को उसे चलाने हेतु नेत्र (डोर विशेष) बना कर क्षीर-सागर का मन्थन करेंगे ॥ ७२ ॥

यज्ञभागेषु लीनेषु देवान्नार्थं वयं ततः ।
मथिष्यामः समं देवैः क्षीरोदं सह दानवैः ।।७३।।

क्षीर-सागर में लुप्त हुए देवताओं के उस यज्ञभाग के लिए देवताओं तथा दानवों के सहित क्षीर सागर को मथेंगे ।। ७३ ।।

त्वच्छरीरामृतमिदं यत्स्थितं क्षीरसागरे ।
तत् प्रमथ्य ग्रहीष्यामो राशीभूतं तथा क्षयम् ।।७४।।

क्षीर सागर में तुम्हारे शरीर से निकल कर जो अमृत नष्ट हो, इकट्ठा हो स्थित है, उसे मथकर हम वह ग्रहण करेंगे ।। ७४ ।।

सर्वौषध्यन्तरे कृत्वा त्वच्छरीरं तदा वयम् ।
क्षेप्स्यामः सागरजले शरीरार्थं विधो तव ।।७५।।

हे विधु ! तब हम तुम्हारे शरीर को सभी औषधियों से संयुक्त कर उसके कल्याण हेतु उसे क्षीर सागर के जल में फेंक देंगे ।। ७५ ।।

निर्मथ्य सागरं पश्चात् समुद्धार्य यदामृतम् ।
तदा तव वपुस्तस्मिन् पूर्ववत् सम्भवविष्यति ।।७६।।

उसके बाद पुनः समुद्र का मन्थन कर जब अमृत का उद्धार करेंगे तब उस समय तुम्हारा शरीर पूर्ववत् हो जायेगा ।। ७६ ।।

ओजोवीर्याद्धुतं कान्तमक्षयंच सुधात्मकम् ।
दृढाङ्गसन्धिकं चारु भविष्यति वपुस्तव ।।७७।।

उस समय तुम्हारा शरीर ओज, वीर्य, अद्भुत कांति से युक्त, अक्षय, अमृतमय, दृढ़ अङ्गसंधि (जोड़ों) वाला तथा सुन्दर हो जायेगा ।। ७७ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

सुधांशुमेवमाभाष्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
विधोः क्षयाय मासार्धं वृद्धये यत्नवानभूत् ।।७८।।

मार्कण्डेय बोले– चन्द्रमा से इस प्रकार कह कर लोकपितामह ब्रह्मा उसके एक मासार्ध (पक्ष) तक क्षय तथा दूसरे पक्ष तक वृद्धि हेतु प्रयत्न करने लगे ।। ७८ ।।

यथा दक्षेण गदितं मासार्धं यातु चन्द्रमाः ।
क्षयं वृद्धिं च मासार्धं यत्नं तत्राकरोद्विधिः ।।७९।।

वही प्रयत्न ब्रह्मा ने किया, जिसरो दक्ष का यह कथन सफल हो कि चन्द्रमा एक पक्ष में क्षय तथा दूसरे पक्ष में वृद्धि को प्राप्त करे ।। ७९ ।।

ततः षोडशधा चन्द्रं सुरज्येष्ठो विभक्तवान् ।
विभज्य च सुरान् सर्वान् समुवाचेदमुत्तमम् ।।८०।।

तब सुरज्येष्ठ ब्रह्मा ने चन्द्रमा का सोलह भागों में विभाजन किया और विभाजन कर वहाँ उपस्थित देवगणों से यह उत्तम वचन कहा— ॥ ८० ॥

कलाः षोडश चन्द्रस्य तत्रैका शम्भुमूर्धनि ।
तिष्ठत्वद्यावधि परा क्षयं यान्तु क्षयं विना ।।८१।।

जो चन्द्रमा की सोलह कलाएँ हैं उनमें से एक आज से शिव के मस्तक पर विराजमान रहे, तथा अन्य १५ बिना क्षय के ही क्षय को प्राप्त होवें ॥ ८१ ॥

क्षयेण यदि रोगेण मासार्धं दक्षवाक्यतः ।
क्षयाय पीड्यते चन्द्रो नोपशान्तिस्तदा भवेत् ।।८२।।

दक्ष के वचनानुसार चन्द्रमा क्षय रोग से पीड़ित हो क्षय (ह्रास) को प्राप्त होता है तो शान्ति नहीं मिलेगी ॥ ८२ ॥

किंत्वस्य या कला शम्भौ ज्योत्स्ना गच्छतु तां प्रति ।
चतुर्दशकलासंस्थाः प्रतिमासं सुरोत्तमाः ।।८३।।

किन्तु हे सुरोत्तमों ! इसकी जो कला शिव के शिर पर रहेगी, चौदह कलाओं में स्थित ज्योत्स्ना प्रतिमाह वही ले जाया करेगी ॥ ८३ ॥

चतुर्दशकलासंस्थान्यमृतानि पिबन्तु वै ।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य भवन्तस्तां चतुर्दशीम् ।।८४।।

प्रतिपद् तिथि से आरम्भ कर चतुर्दशी तिथि तक चौदह कलाओं में स्थित अमृत का पान भी आप सब करेंगे ॥ ८४ ॥

तेजोभोगाः सूर्य्यबिम्बं चतुर्दशतिथौ क्रमात् ।
प्रविशन्तु क्षयं त्वेवं कृष्णपक्षे विधोर्भवेत् ।।८५।।

चन्द्रमा का तेज भाग भी चौदह तिथियों में क्रमशः सूर्यबिम्ब में प्रवेश कर जायेगा। इस प्रकार कृष्णपक्ष में चन्द्रमा क्षय को प्राप्त होगा ॥ ८५ ॥

यातु शेष कला दर्शे हरित्पत्रे पलायिता ।
तिष्ठतु प्रथमे भागे तिथौ तस्यां निशापतेः ।।८६।।

चन्द्रमा की शेष पन्द्रहवीं कला जो अमावस्या को भागकर हरितपत्र (हरित कुशा) में छिप गई थी वह तिथि के पहले भाग में वहीं निवास करे ॥ ८६ ॥

द्वितीये दर्शभागे तु रोहिण्या यातु मन्दिरम् ।
तृतीये तु सरस्वत्यां स्नात्वा समुत्थितो विधुः ।।८७।।
चतुर्थे बलसम्पूर्णस्तिथिभागे विभावसोः ।
मण्डलं यातु चन्द्रोऽयं सविम्बस्थघोटकः ।।८८।।

अमावस्या के द्वितीय भाग में रोहिणी के भवन तथा तृतीय भाग में सरस्वती में स्नान कर चन्द्रमा पुनः उठे एवं चौथे भाग में बल से युक्त होकर बिम्ब और वाहन से युक्त सूर्यमण्डल में जाय ॥ ८७-८८ ॥

यावत् कालेन हि कला प्रथमा क्षयमाप्नुयात् ।
एवमेवं कृष्णपक्षे तावत् सा प्रतिपद् भवेत् ॥८९॥

कृष्ण पक्ष में जितने समय में चन्द्रमा की प्रथम कला क्षय को प्राप्त हो वह समय प्रतिपद् तिथि होवेगी ॥ ८९ ॥

द्वितीयादौ कृष्णपक्षे वृद्धि-ह्रासस्तथाविधः ।
तिथीनां वृद्धिहेतुश्च शुक्ले कृष्णे तथा भवेत् ॥९०॥

शुक्ल पक्ष की द्वितीया से वृद्धि तथा कृष्ण पक्ष की द्वितीया से ह्रास उसी प्रकार होता है। यही शुक्ल पक्ष में तिथि-वृद्धि तथा कृष्ण पक्ष में तिथि-ह्रास का कारण होता है ॥ ९० ॥

ततः पुनः शुक्लपक्षे यावत् पूर्वकलोदिता ।
वृद्धिं नैति भवेत्तावत् प्रतिपत्तिथिरादितः ॥९१॥

पुनः शुक्ल पक्ष में पहले कही हुई अमावस्या की कला तब तक वृद्धि को प्राप्त नहीं होती जब तक प्रारम्भ से प्रतिपद् तिथि रहती है ॥ ९१ ॥

ततो द्वितीयभागस्य या ज्योत्स्ना हरमूर्धनि ।
स्थिता या वै कला यातु गता सा पुनरेष्यति ॥९२॥

तब द्वितीय भाग की ज्योत्स्ना जो शिव के मस्तक पर स्थित कला में चली गई थी वह पुनः वापस आयेगी ॥ ९२ ॥

युष्माभिस्तु भवेत् पेयममृतं यद्दिने दिने ।
तद्द्वितीयादितिथिभिः पूर्णान्ताभिः सदैव हि ।
स्वयमुत्पत्स्यते चन्द्रो ज्योत्स्नायोगात् सुरोत्तमाः ॥९३॥

हे सुरोत्तमों ! आप लोगों ने जो भी अमृत प्रतिदिन पान किया था वही द्वितीया से पूर्णिमा पर्यन्त सदैव चन्द्रमा ज्योत्स्ना के संयोग से उत्पन्न करेगा ॥ ९३ ॥

यथा दिने दिने भागाः क्षयं यान्ति तथा विधोः ।
वृद्धिं गच्छन्त्यनुदिनं शुक्लपक्षेऽन्वहं सुराः ॥९४॥

हे देवगण ! कृष्ण पक्ष में जैसे-जैसे चन्द्रमा के अंश दिन-दिन क्षय को प्राप्त होते हैं वैसे ही शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त करते हैं ॥ ९४ ॥

तेजोभागः सूर्यबिम्बात् पुनरेव समेष्यति ।
प्रयास्यति कृष्णपक्षे यथा भागक्रमं तथा ॥९५॥

सूर्यबिम्ब से तेज भाग वैसे ही पुनः आ जाएगा जैसे कृष्ण पक्ष में क्रमशः गया होगा ।। ९५ ।।

ज्योत्स्ना हरशिरश्चन्द्रात् प्रत्यहं पुनरेष्यति ।
तेजोभागः सूर्यबिम्बादमृतं वर्षति स्वयम् ।।९६।।

शिव के मस्तक पर स्थित चन्द्रमा से ज्योत्स्ना प्रतिदिन वापस आयेगी। सूर्यबिम्ब से तेज भाग स्वयं अमृत वर्षायेगा ।। ९६ ।।

एवं वृद्धिः शुक्लपक्षे सुधांशोः सम्भविष्यति ।
पक्षयोः शुक्लकृष्णत्वं चन्द्रवृद्धिक्षयाद्भवेत् ।।९७।।

इस प्रकार शुक्ल पक्ष में सुधांशु चन्द्र की वृद्धि होवेगी तथा पक्ष की शुक्लता एवं कृष्णता उसकी वृद्धि एवं क्षय के कारण होंगे ।। ९७ ।।

यावत् कालेन यो भागः क्षयं वृद्धिंच यास्यति ।
तावत् कालमभिव्याप्य तिथिः स्थास्यति सा पुनः ।।९८।।

जितने समय तक जो हिस्सा क्षय या वृद्धि को प्राप्त करेगा उतने समय तक वह तिथि व्याप्त होकर बार-बार स्थित रहेगी ।। ९८ ।।

चिरेण वृद्धिर्यदि वा क्षयो वा
द्रुतेन वृद्धिर्यदिवा क्षयो वा ।
द्रुतात्तिथीनान्तु सदा क्षयः स्या-
च्चिरातु वृद्धिस्तिथिषु प्रवेशे ।।९९।।

यह वृद्धि या क्षय धीरे-धीरे भी होता है अथवा शीघ्रता से भी होता है। जिन तिथियों में शीघ्रता से यह होता है वे क्षय तिथियाँ तथा जिनमें धीरे-धीरे होता है वे वृद्धि युक्त तिथियाँ कही जाती हैं ।। ९९ ।।

हव्यं कव्यञ्च चन्द्रेण विना न सम्भविष्यति ।
तस्मात्तयोः प्रवृद्ध्यर्थं चन्द्रं रक्षन्तु देवताः ।।१००।।

चन्द्रमा के बिना न हव्य (देवान्न) और न कव्य (पितृ भाग के अन्न) उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिए उनकी वृद्धि हेतु देवता चन्द्रमा की रक्षा करें ।। १०० ।।

आस्वादनीयः शुभ्रांशुः कलाशेषोऽनुमासतः ।
अमावास्यापरार्धे तु पितृभी रोहिणीगृहे ।।१०१।।
तस्यैवास्वादनात् कव्यं वृद्धिं यास्यति चान्वहम् ।
तेन कव्येन पितरस्तृप्तिं यास्यन्ति वै पराम् ।।१०२।।

चन्द्रमा अमावस्या के अगले मासांश में देवताओं द्वारा आस्वादनीय हैं अर्थात् देवकार्य साधक हैं तथा अमावस्या के अपर (पूर्ववर्ती) पक्ष में रोहिणी के घर में स्थित हो पितरों द्वारा सेवनीय है। उसके ही आस्वादन से कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन कव्य की वृद्धि होवेगी, तथा उसी कव्य में पितृगण परम संतुष्टि को प्राप्त करेंगे ।। १०१-१०२ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततः सुरगणाः सर्वे यथोक्तं विधिना तथा ।
चक्रुर्लोकहितार्थाय चन्द्रस्य क्षय-वृद्धये ।।१०३।।

मार्कण्डेय बोले– तब लोक के कल्याण के लिए तथा चन्द्रमा की क्षय-वृद्धि के सम्बन्ध में ब्रह्मा ने जैसा कहा था वैसा ही सभी देवताओं ने किया ॥ १०३ ॥

महादेवोऽपि चन्द्रार्धं स्वरूपं परमात्मनः ।
जग्राह देवैर्विधिना शिरसा गदितो भृशम् ।।१०४।।

महादेव ने भी देवताओं एवं ब्रह्मा के बहुत अधिक कहे जाने पर परमात्मा के चन्द्रार्ध रूप को शिर पर धारण कर लिया ॥ १०४ ॥

यत्तेजः परमं नित्यमजमव्ययमक्षयम् ।
तत्स्वरूपा चन्द्रकला शापतस्तु क्षयं गता ।।१०५।।

परमात्मा का जो तेज परम, नित्य, अज, अव्यय और अक्षय था वही दक्षशाप के कारण चन्द्रकला के रूप में क्षय को प्राप्त हुआ ॥ १०५ ॥

प्रविशति यदा ज्योतिरानन्दमजरं परम् ।
योगिनस्तु तदा तेषां चिन्तनं लीनमेष्यति ।।१०६।।

यही ज्योति जब अजर, परमआनन्द रूप, शिव के सिर स्थित चन्द्र कला मे प्रवेश करेगी तब योगीजन उनके चिन्तन में लीन होवेंगे ॥ १०६ ॥

महादेवशिरःसंस्थे लीने चित्ते सुधानिधौ ।
चन्द्रद्वारा भवेन्मुक्तिरित्येवं वैदिकी श्रुतिः ।।१०७।।

महादेव के शिर पर स्थित चन्द्रमा में चित्त लीन होने की दशा के ही विषय में यह वैदिक कथन है कि चन्द्रमा द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है ॥ १०७ ॥

एतज् ज्ञात्वा महादेवः क्षयवृद्ध्यविनाकृतम् ।
हिताय सर्वलोकानां जग्राह शिरसा विधुम् ।।१०८।।

यह जानकर ही महादेव ने क्षय और वृद्धि से रहित चन्द्रमा को सभी लोकों के कल्याण हेतु अपने शिर पर धारण कर लिया ॥ १०८ ॥

चन्द्रज्योत्स्नासमायोगादौषध्यो यान्ति वृद्धये ।
सर्वौषधिषु वृद्धासु प्रवर्तन्ते ततोऽध्वराः ।।१०९।।

तब चन्द्रमा और उसकी ज्योत्स्ना के संयोग से औषधियाँ बढ़ने लगीं। उन औषधियों के बढ़ जाने पर यज्ञ भी होने लगे ॥ १०९ ॥

अध्वरेषु प्रवृत्तेषु स्वान् स्वान् भागांस्तु देवताः ।
परिगृह्णन्ति पितरस्तथा कव्यानि भूरिशः ।।११०।।

यज्ञों के होने पर देवगण अपना-अपना भाग तथा पितृगण बहुत अधिक मात्रा में कव्य ग्रहण करते हैं ॥ ११० ॥

अमृतं ब्रह्मणा सृष्टं यद् देवेभ्यः पुरातनम् ।
तेन तृप्यन्ति हीना ये हव्यभागेन देवताः ॥१११॥

प्राचीनकाल में देवताओं के लिए ब्रह्मा ने जिस अमृत की सृष्टि की थी, हव्य भाग से हीन देवता उसी से (कृष्ण पक्ष) में तृप्ति को प्राप्त करते हैं ॥ १११ ॥

यज्ञेनाप्यायितं तच्च ज्योत्स्नाभिर्वृद्धिमेति वै ।
यज्ञज्योत्स्ना विनाभूतं तच्च स्यात् क्षीणमन्यथा ॥११२॥

वह भी यज्ञ से ही हृष्ट-पुष्ट होता तथा ज्योत्स्ना से वृद्धि को प्राप्त करता है। अन्यथा यज्ञ और ज्योत्स्ना के अभाव में वह भी क्षीण हो जावे ॥ ११२ ॥

अतोऽमृतस्य यज्ञस्य चन्द्रमाः कारणं स्वयम् ।
अतो दक्षस्य शापात्तु रक्षायै तच्चिकीर्षितम् ॥११३॥

अतः अमृत एवं यज्ञ दोनों की ही रक्षा का कारण स्वयं चन्द्रमा है अतः उसकी दक्ष शाप से रक्षा करनी चाहिये ॥ ११३ ॥

अद्यापि कृष्णपक्षे तु सुधांशुः पीयते सुरैः ।
तेजः सूर्यं याति शम्भुं चन्द्रार्धं ज्योत्स्निका यथा ॥११४॥

आज भी कृष्ण पक्ष में उसके अमृत का पान देवगण करते हैं, तेज सूर्य को चला जाता है तथा शिव के मस्तक पर स्थित चन्द्रार्ध ज्योत्स्ना को ग्रहण कर लेता है ॥ ११४ ॥

पुनश्च शुक्लपक्षे तु शेषोदेति कला ततः ।
ज्योत्स्नाद्वितीयो भागस्तु तेजोभागो द्वितीयकः ॥११५॥

पुनः शुक्ल पक्ष में जब चन्द्रकला का उदय होता है तो ज्योत्स्ना एवं तेज का दूसरा भाग तथा अन्य भी उग्र (शिव) के शिर पर स्थित चन्द्रमा तथा सूर्यबिम्ब से क्रमशः आती है ॥ ११५ ॥

अन्येऽत्युग्रशिरश्चन्द्रात् सूर्यविम्बाद् यथाक्रमम् ।
कलाः षोडश चन्द्रस्य तत्रैका शम्भुशेखरे ॥११६॥

चन्द्रमा की एक सोलहवीं कला शिव के शिखर पर स्थित है यही शुक्ल और कृष्ण पक्ष में शेष कलाओं के उदय एवं क्षय में सहायक है ॥ ११६ ॥

सितासितावुभौ पक्षौ शेषाणामुदयक्षयौ ।
इति वः सर्वमाख्यातं विभक्तश्चन्द्रमा यथा ।
ब्रह्मणा पर्वतश्रेष्ठे यथो तच्चन्द्रभागतः ॥११७॥
यज्ञभागे स्थिते यस्माद्देवान्नमकरोद्विधुम् ।
कव्ये स्थितेऽपि पित्रन्नं तिथिवृद्धि-क्षयो यथा ॥११८॥

यह ब्रह्मा ने उस चन्द्रभाग पर्वत पर जिस प्रकार चन्द्रमा का विभाजन किया था तथा जिस प्रकार चन्द्रमा को यज्ञ भाग मिला, देवताओं को यज्ञभाग के रूप में हव्य तथा पितरों को कव्य में स्थित पित्रान्न प्राप्त हुआ तथा तिथियों के क्षय एवं वृद्धि की व्यवस्था हुई, वह सब मैंने आप लोगों को कह सुनाया है ॥ ११७-११८ ॥

इदं पुण्यतमाख्यानं यः शृणोति सकृन्नरः ।
राजयक्ष्मा तस्य कुले न कदाचिद् भविष्यति ।।११९।।
यक्ष्मणा परिभूतो यः शृणोति वचनं विधेः ।।१२०।।

ब्रह्मा द्वारा कहे इस अत्यन्त पुण्यमय, कल्याणकारी आख्यान को यक्ष्माग्रस्त जो पुरुष एक बार भी सुनता है, कभी भी उसके कुल में राज यक्ष्मा का रोग नहीं होता ॥ ११९-१२० ॥

इदं स्वस्त्ययनं पुण्यं गुह्याद्गुह्यतमं शुभम् ।
यः शृणोत्येकचित्तः सन् स महापुण्यभाग्भवेत् ।।१२१।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे चन्द्रशाप-मोक्षणं नाम एकविंशोऽध्याय: ।।२१।।

जो एकाग्रचित्त होकर इस पवित्र, कल्याणकारी, शुभ, गुप्त से गुप्त, आख्यान को सुनता है वह महान् पुण्यवान् होता है ॥ १२१ ॥

।। श्री कालिकापुराण में चन्द्रशापमोक्षण नामक इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। २१ ।।



द्वाविंशोऽध्यायः

अरुन्धतीजन्मकथनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

यत्र देवसभा भूता सानौ तस्य महागिरेः ।
तत्र जाता देवनदी सीताख्या वचनाद्विधेः ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– उस महान पर्वत की जिस चोटी पर देव सभा हुई थी वहीं ब्रह्मा के कथनानुसार सीता नामकी देव नदी उत्पन्न हुई ॥ १ ॥

स्नापयित्वा यदा चन्द्रं सीतातोयैर्मनोहरैः ।
चन्द्रं पपुर्ब्रह्मवाक्यात् सर्वे ते त्रिदिवौकसः ।।२।।

ब्रह्मा के कथनानुसार जब सभी देवताओं ने चन्द्रमा को सीता नदी के सुन्दर जल में स्नान कराकर चन्द्रमा का पोषण किया ॥ २ ॥

तदा सीताजलं चन्द्रस्नानयोगाच्च सामृतम् ।
भूत्वा निपतितं तस्मिन् बृहल्लोहितसंज्ञके ।।३।।

तब वह सीता का जल चन्द्रमा के स्नान के कारण अमृत रूप होकर उस बृहल्लोहित नामक सरोवर में गिरा ॥ ३ ॥

तद्विवृद्धं तदा तोयं तस्मिन् सरसि नो ममौ ।
तद्ददर्श स्वयं ब्रह्मा विवृद्धं सामृतं जलम् ।।४।।

उस समय तब वह बढ़ा हुआ जल उस सरोवर में समा नहीं सका। स्वयं ब्रह्मा ने उस बढ़े हुए अमृतयुक्त जल को देखा ॥ ४ ॥

तद्दर्शनाज्जलात् तस्मादुत्थिता कन्यकोत्तमा ।
चन्द्रभागेति तन्नाम विधिश्चक्रे स्वयं ततः ।।५।।
भार्यार्थे सागरस्तां तु जग्राह ब्रह्मसन्मते ।।६।।

तब उनके देखने से उस जल से एक उत्तम कन्या प्रकट हुई तथा स्वयं ब्रह्मा ने उसका चन्द्रभागा नामकरण किया और ब्रह्मा की सम्मति से सागर ने पत्नी के रूप में उसे ग्रहण कर लिया। ।।५-६ ।।

तयैवाधिष्ठितं तोयं गदाग्रेण निशापतिः ।
निर्भिद्य पश्चिमे पार्श्वे गिरिं तं समवाहयत् ।।७।।

उस प्रकार से भरे हुए जल को अपने गदा के अग्र भाग से चन्द्रमा ने तोड़कर पर्वत के पश्चिमी किनारे से प्रवाहित किया ७ ॥

तस्यामृतजलं भित्त्वा बृहल्लोहितनामकम् ।
कासारं सागरं याता चन्द्रभागा नदी तु सा ।।८।।

उस अमृतमय जल से बृहल्लोहित नामक सरोवर के तोड़े जाने पर वह चन्द्रभागा नदी समुद्र में चली गयी ॥ ८ ॥

सागरोऽपि तदा भार्यां चन्द्रभागां महानदीम् ।
तेन तोयप्रवाहेण निनाय भवनं स्वकम् ।।९।।

तब सागर भी चन्द्रभागा नाम की उस महानदी रूपी भार्या को उसके जल के तीव्र प्रवाह के माध्यम से अपने घर को ले गया ॥ ९ ॥

एवं तस्मिन् समुत्पन्ना चन्द्रभागाह्वया नदी ।
चन्द्रभागे महाशैले गुणैर्गंगासमा सदा ।।१०।।

इस प्रकार उस चन्द्रभाग नामक महापर्वत पर सदैव गंगा के समान गुणवाली चन्द्रभागा नामक नदी उत्पन्न हुई ॥ १० ॥

नद्यश्च पर्वताः सर्वे द्विरूपाश्च स्वभावतः ।
तोयं नदीनां रूपन्तु शरीरमपरं तथा ।।११।।
स्थावरः पर्वतानां तु रूपं कायः तथापरः ।
शुक्तीनामथ कम्बूनां यथैवान्तर्गता तनुः ।।१२।।

सभी नदियाँ और पर्वत स्वभावतः दो रूपों वाले होते हैं। नदियों का एक जलरूप होता है तथा दूसरा शरीरवान्। इसी प्रकार पर्वतों का भी एक स्थावर जड़ रूप होता है दूसरा शरीरधारी। जैसे सीपी और शंख के बाह्य रूप के भीतर छिपा हुआ एक अन्य शरीर होता है, उनका यह शरीरी रूप वैसे ही अपने जल एवं पर्वतरूप बाह्य रूप के अन्तर्गत छिपा रहता है ॥ ११-१२ ॥

बहिरस्ति स्वरूपन्तु सर्वदैव प्रवर्तते ।
एवं जलं स्थावरस्तु नदीपर्वतयोस्तदा ।।१३।।
अन्तर्वसति कायस्तु सततं नोपपद्यते ।।१४।।

इनका जल एवं पर्वत रूप बाह्य स्वरूप ही सर्वदा नदी एवं पर्वत के रूप में दिखाई देता है। इनका अन्तवर्ति शरीर सदैव नहीं दिखाई देता ॥ १३-१४ ॥

आप्याय्यते स्थावरेण शरीरं पर्वतस्य तु ।
तथा नदीनां कायस्तु तोयेनाप्याय्यते सदा ।।१५।।

सदा पर्वतों का शरीर पहाड़ के रूप में एवं नदियों का शरीर उनके जल के बढ़ने से बढ़ता है ॥ १५ ॥

नदीनां कामरूपित्वं पर्वतानां तथैव च ।
जगत्स्थित्यै पुरा विष्णुः कल्पयामास यत्नतः ।।१६।

प्राचीनकाल में भगवान् विष्णु ने संसार के पालन की दृष्टि से नदियों एवं पर्वतों के इच्छानुसार रूप धारण करने की यत्नपूर्वक योजना की ॥ १६ ॥

तोयहानौ नदीदुःखं जायते सततं सुराः ।
विशीर्णे स्थावरे दुःखं जायते गिरिकायजम् ।।१७।।

हे देवताओं ! जल की हानि से नदियों को तथा पहाड़ के नष्ट होने से पर्वतों को सदैव दुःख होता है[1] ॥ १७ ॥

तस्मिन् गिरौ चन्द्रभागे बृहल्लोहिततीरगाम् ।
सन्ध्यां दृष्टाथ पप्रच्छ वसिष्ठः सादरं तदा ।।१८।।

तब वसिष्ठ मुनि ने उस चन्द्रभाग पर्वत पर बृहल्लोहित नामक सरोवर के तट पर सन्ध्या को देखकर उससे आदरपूर्वक पूछा— ॥ १८ ॥

।। वसिष्ठ उवाच ।।

किमर्थमागता भद्रे निर्जनं तु महीधरम् ।
कस्य वा तनया गौरि किं वा तव चिकीर्षितम् ।।१९।।

वसिष्ठ बोले– हे भद्रे ! तुम किसलिए इस निर्जन पर्वत पर आई हो? हे गौरवदना ! तुम किसकी पुत्री हो ? या तुम क्या करना चाहती हो? ॥ १९ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं यदि गुह्यं न ते भवेत् ।
वदनं पूर्णचन्द्राभं निःश्रीकं वा कथं तव ।।२०।।

तुम्हारा यह पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख शोभारहित क्यों हो रहा है? यदि तुम इसे गुप्त न रखना चाहो तो यह सब मैं सुनना चाहता हूँ ॥ २० ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः ।
दृष्ट्वा च तं महात्मानं ज्वलन्तमिव पावकम् ।।२१।।
शरीरधृग्ब्रह्मचर्य-सदृशं तं जटाधरम् ।
सादरं प्रणिपत्याथ सन्ध्योवाच तपोधनम् ।।२२।।

महात्मा वशिष्ठ के इस प्रकार के वचनों को सुनकर तथा अग्नि के समान प्रज्ज्वलित (तेज सम्पन्न), स्वयं शरीरधारी ब्रह्मचर्य के समान तपस्वी, जटाधारी, उस मुनि को देखकर आदरसहित उन्हें प्रणाम कर, सन्ध्या ने कहा— ॥२१-२२ ॥

।। सन्ध्योवाच ।।

यदर्थमागता शैलं सिद्धं तन्मे द्विजोत्तम ।
तव दर्शनमात्रेण तन्मे सेत्स्यति वा विभो ।।२३।।

सन्ध्या बोली– हे विभु ! हे द्विजोत्तम ! जिसलिये मैं इस पर्वत पर आई हूँ वह सिद्ध हो गया या तुम्हारे दर्शनमात्र से हीं वह सिद्ध हो जायेगा ॥ २३ ॥

---

१. सत्रहवें श्लोक में पर्यावरण का महत्व बतलाया गया है।

तपः कर्तुमहं ब्रह्मन्निर्जनं शैलमागता ।
ब्रह्मणोऽहं मनोजाता सन्ध्या नाम्ना च विश्रुता ।।२४।।

हे ब्रह्मन् ! मैं ब्रह्मा के मन से उत्पन्न हुई हूँ, सन्ध्या नाम से पुकारी जाती हूँ तथा इस निर्जन पर्वत पर तपस्या करने आई हुई हूँ ॥ २४ ॥

नोपदेशमहं जाने तपसो मुनिसत्तम ।
यदि ते युज्यते गुह्यं मां त्वं समुपदेशय ।
एतच्चिकीर्षितं गुह्यं नान्यत्किञ्चन विद्यते ।।२५।।

हे मुनि सत्तम ! तपस्या सम्बन्धी कोई उपदेश मैं नहीं जानती । यदि यह आप को उचित लगता है तो आप मुझे इस रहस्य का उपदेश करें । यही मेरा इच्छित कार्य है और कहीं कोई दूसरी गुप्त बात नहीं है ॥ २५ ॥

अज्ञात्वा तपसो भावं तपोवनमुपाश्रिता ।
चिन्तया परिशुष्येऽहं वेपते च मनः सदा ।।२६।।

बिना तपस्या के भाव (विधि) के जाने मैं इस तपोवन में आ गई हूँ । अतः सदैव मैं सूख रही हूँ तथा मेरा मन काँपता रहता है ॥ २६ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

आकर्ण्य तस्याः वचनं वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः ।
स्वयं स सर्वतत्त्वज्ञो नान्यत्किञ्चन पृष्टवान् ।।२७।।

मार्कण्डेय बोले– ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ ने उसकी बातें सुनीं और कुछ नहीं पूछा । वे स्वयं सभी तत्त्वों को जानने वाले थे ॥ २७ ॥

अथ तां नियतात्मानं तपसेऽतिधृतोद्यमाम् ।
वसिष्ठो मन्त्रयाञ्चके गुरुवच्छिष्यवत्तदा ।।२८।।

तब जिस प्रकार गुरु शिष्य को मन्त्र देता है, उसी प्रकार वसिष्ठ मुनि ने तपस्या के लिए उद्यत, नियतआत्मा वाली उस सन्ध्या को मन्त्र दिया ॥ २८ ॥

।। वसिष्ठ उवाच ।।

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ।
परमो यः समाराध्यो विष्णुर्मनसि धीयताम् ।।२९।।

वसिष्ठ मुनि बोले– जो महान् तेजस्वी, महान् तपपूर्ण, भलीभाँति आराधना करने योग्य, परम तत्त्व, भगवान विष्णु हैं, तुम उन्हीं का मन में ध्यान करो ॥ २९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां य एकस्त्वादिकारणम् ।
तमेकं जगतामाद्यं भजस्व पुरुषोत्तमम् ।।३०।।

जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थों के एकमात्र कारण हैं उस संसार के आदि कारण, एक पुरुषोत्तम, विष्णु का तुम भजन करो ॥ ३० ॥

विष्णु-ध्यानवर्णनम्

शङ्खचक्रगदापद्मधरं कमललोचनम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं क्वचिन्नीलाम्बुदच्छविम् ।।३१।।

वे शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करने वाले हैं। उनके नेत्र कमल के समान हैं। वे शुद्ध स्फटिक के समान उज्ज्वल हैं तो कभी नीले बादल के सामन शोभा वाले हैं ।। ३१ ।।

गरुड़ोपरि शुक्लाब्जे पद्मासनगतं हरिम् ।
श्रीवत्सवक्षसं शान्तं वनमालाधरं परम् ।।३२।।

वे हरि, गरुड़ के ऊपर श्वेत कमल के आसन पर विराजमान, वक्षस्थल में श्रीवत्स मणि और वनमाला धारण किए हुये हैं। वे परम तत्त्व हैं ।। ३२ ।।

केयूरकुण्डलधरं किरीटमुकुटोज्वलम् ।
निराकारं ज्ञानगम्यं साकारं देहधारिणम् ।।३३।।

वे भुजाओं में केयूर (बाजूबन्द) तथा कानों में कुण्डल धारण करने वाले हैं। उनका मुकुट किरीट से सुशोभित है। वे निराकार, ज्ञान से ही जानने योग्य हैं किन्तु समय-समय पर साकार शरीर भी धारण करते हैं ।। ३३ ।।

नित्यानन्दं निरालम्बं सूर्यमण्डलमध्यगम् ।
मन्त्रेणानेन देवेशं विष्णुं भज शुभानने ।।३४।।

हे शुभमुखवाली ! वे नित्य आनन्दरूप, आलम्बनरहित हो सूर्यमण्डल में स्थित रहते हैं। तुम इस मन्त्र (निर्देश) के अनुसार देवाधिदेव भगवान विष्णु का स्मरण करो ।। ३४ ।।

।। विष्णु उपासना मन्त्र ।।

ओं नमो वासुदेवाय ओमित्यन्तेन सन्ततम् ।
तपस्यामारभेन्मौनीं तत्रैतान्नियमान् शृणु ।।३५।।

"ॐ नमो वासुदेवाय ॐ" इस मन्त्र से निरन्तर मौन रहकर स्मरण करना चाहिए। इस सम्बन्ध में इन नियमों को सुनो ।। ३५ ।।

स्नानं मौनेन कर्तव्यं मौनेनैव तु पूजनम् ।
द्वयोः पर्णजलाहारं प्रथमं षष्ठकालयोः ।
तृतीये षष्ठकाले तु उपवासपरो भवेत् ।।३६।।

मौन रहकर ही स्नान करना चाहिए, मौन रहकर ही पूजा करना चाहिये। पहले और दूसरे षट्काल (छः दिन के काल-खण्ड) में पत्ते और जल खाकर तीसरे षट्काल से उपवास का आचरण करे ।। ३६ ।।

एवं तपः समाप्तौ तु षष्ठे काले क्रिया भवेत् ।
वृक्षवल्कलवासाश्च काले भूमिशयस्तथा ।
एवं मौनी तपस्याख्या व्रतचर्या फलप्रदा ।।३७।।

इस प्रकार छः अवधि तपस्या के व्यतीत करने के बाद (३६ दिन उपावास जलाहार विहीन उपवास से) क्रिया पूर्ण होती है। उस अवधि में वृक्षों की छाल वस्त्र के रूप में धारण करे, भूमि पर सोये । इस प्रकार मौन रहकर तपस्या व्रत का आचरण फलदायक होता है ।। ३७ ।।

एवं तपः समुद्दिश्य कामं चिन्तय माधवम् ।
स ते प्रसन्न इष्टार्थं नचिरादेव दास्यति ।।३८।।

इस प्रकार तपस्या करते हुए अभीष्ट, माधव (विष्णु) का चिन्तन करो । वे शीघ्र ही प्रसन्न होकर तुम्हें इच्छित वर प्रदान करेंगे ।। ३८ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

उपदिश्य वसिष्ठोऽथ सन्ध्यायै तपसः क्रियाम् ।
तामाभाष्य यथान्यायं तत्रैवान्तर्दधे मुनिः ।।३९।।

मार्कण्डेय बोले– इस प्रकार सन्ध्या के लिए तपस्या की पद्धति का उसे उपदेश दे, उससे यथोचित वार्ता कर वसिष्ठ मुनि वहीं अन्तर्धान हो गये ।। ३९ ।।

सन्ध्यापि तपसो भावं ज्ञात्वा मोदमवाप्य च ।
तपः कर्तुं समारेभे बृहल्लोहिततीरगा ।।४०।।

तब तपस्या के भाव (विधि) जानकर एवं प्रसन्न हो सन्ध्या भी बृहल्लोहित सरोवर के किनारे जाकर तपस्या करना प्रारम्भ की ।। ४० ।।

यथोक्तन्तु वसिष्ठेन मन्त्रं तपसि साधनम् ।
व्रतेन तेन गोविन्दं पूजयामास भक्तितः ।।४१।।

वसिष्ठ द्वारा जैसा मन्त्र कहा गया था, वैसा ही तप-साधन करते हुए उसी व्रत के आचरण से उसने भक्तिपूर्वक गोविन्द का पूजन किया ।। ४१ ।।

एकान्तमनसस्तस्या कुर्वन्त्याः सुमहत्तपः ।
विष्णौ विन्यस्तमनसो गतमेकं चतुर्युगम् ।।४२।।

एकान्त (एकाग्र) मन से विष्णु में मन लगाकर महान तप करते हुए उसके एक चतुर्युग (४३२०००० मानव वर्ष) व्यतीत हो गये ।। ४२ ।।

न कोऽपि विस्मयं नाप तस्या दृष्ट्वा तपोऽद्भुतम् ।
न तादृशी तपश्चर्या भविष्यति च कस्यचित् ।।४३।।

उसके उस अद्भुत तपस्या को देखकर किसी को आश्चर्य नहीं हुआ और न किसी की भी वैसी तपस्या भविष्य में होगी ।। ४३ ।।

मानुषेणाथ मानेन गते त्वेकचतुर्युगे ।
अन्तर्बहिस्तथाकाशे दर्शयित्वा निजं वपुः ।।४४।।
प्रसन्नस्तेन रूपेण यद्रूपं चिन्तितं तया ।
पुरः प्रत्यक्षतां यातस्तस्या विष्णुर्जगत्पतिः ।।४५।।

इस प्रकार मनुष्य के मान से एक चतुर्युग बीत जाने पर उस अन्तः आकाश (हृदय) की ही भाँति बाह्य आकाश में सामने, जिस रूप का वह चिन्तन कर रही थी उसी रूप को दिखाते हुए जगत् के स्वामी भगवान विष्णु, उसके सामने प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हो गये ॥ ४४-४५ ॥

अथ सा पुरतो दृष्ट्वा मनसा चिन्तितं हरिम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं पद्मलोचनम् ।।४६।।
केयूरकुण्डलधरं किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ।
तार्क्ष्यस्थं पुण्डरीकाक्षं नीलोत्पलदलच्छविम् ।।४७।।

जो शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये थे, जिनके नेत्र कमल के समान थे, और जो केयूर, कुण्डल धारण किये थे, जिनका मुकुट किरीट से उज्ज्वल था, जो पुण्डरीकाक्ष गरुड़ की पीठ पर बैठे हुए थे, जिनकी कांति नीले कमल की भाँति थी ॥ ४६-४७ ॥

ससाध्वसमहं वक्ष्ये किं कथं स्तौमि वा हरिम् ।
इति चिन्तापरा भूत्वा न्यमीलयत चक्षुषी ।।४८।।

भय मिश्रित अस्त-व्यस्तता वश वह, मैं भगवान विष्णु से क्या कहूँ ? या इनकी स्तुति कैसे करूँ इसी चिन्ता में पड़ गई और उसने अपनी आँखे मूँद ली ॥ ४८ ॥

निमीलिताक्ष्यास्तस्यास्तु प्रविश्य हृदयं हरिः ।
दिव्यं ज्ञानं ददौ तस्यै वाचं दिव्ये च चक्षुषी ।।४९।।

उसके आँखें मूँद लेने पर भगवान विष्णु ने स्वयं उसके हृदय में प्रवेश कर उसे दिव्य ज्ञान, दिव्य वाणी तथा दिव्य दृष्टि प्रदान की ॥ ४९ ॥

दिव्यं ज्ञानं दिव्यचक्षुर्दिव्यां वाचमवाप सा ।
प्रत्यक्षं वीक्ष्य गोविन्दं तुष्टाव जगतां पतिम् ।।५०।।

उसने हरि प्रदत्त दिव्य ज्ञान, दिव्य दृष्टि तथा दिव्य वाणी प्राप्त कर पहले संसार के स्वामी गोविन्द का प्रत्यक्ष दर्शन किया तत्पश्चात् स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥ ५० ॥

विष्णु स्तवन

।। सन्ध्योवाच ।।

निराकारं ज्ञानगम्यं परं य-
न्नैव स्थूलं नापि सूक्ष्मं न चोच्चैः ।

अन्तश्चिन्त्यं योगिभिर्यस्य रूपं
तस्मै तुभ्यं हरये मे नमोऽस्तु ।।५१।।

जो निराकार ज्ञान से ही जानने योग्य है, परमतत्त्व है, जो न स्थूल, न सूक्ष्म, न ऊँचा है। अपने अन्तःकरण में जिसके रुप का योगीजन चिन्तन किया करते हैं। उस आप हरि को मेरा नमस्कार है ॥ ५१ ॥

शिवं शान्तं निर्मलं निर्विकारं
ज्ञानात्परं सुप्रकाशं विसारि ।
रविप्रख्यं ध्वान्तभागात् परस्ताद्
रूपं यस्य त्वां नमामि प्रसन्नम् ।।५२।।

जो कल्याणकारी शान्त, निर्मल, विकाररहित, ज्ञान से भी परे, सुन्दर ढंग से प्रकाशित, प्रसार करने वाले, दोष रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए जिसका रूप सूर्य के समान है, ऐसे आप प्रसन्नमूर्ति को मैं नमस्कार करती हूँ ॥ ५२ ॥

एकं शुद्धं दीप्यमानं विनोदं
चित्तानन्दं सत्वजं पापहारि ।
नित्यानन्दं सत्य भूरिप्रसन्नं
यस्य श्रीदं रूपमस्मै नमोऽस्तु ।।५३।।

एकमेव शुद्ध, दीप्यमान, उत्कण्ठायुक्त चित्त को आनन्द देने वाले, सत्त्व से उत्पन्न, सात्त्विक, पाप का हरण करने वाले, नित्य आनन्दयुक्त, सत्य (यथार्थ), अत्यन्त प्रसन्न, लक्ष्मीदायक जिसका रूप है, उस हरि को नमस्कार है ॥ ५३ ॥

विद्याकारोद्भावनीयं प्रभिन्नं
सत्वच्छन्नं ध्येयमात्मस्वरूपम् ।
सारं पारं पावनानां पवित्रं
तस्मै रूपं यस्य चेदं नमस्ते ।।५४।।

विद्वानों द्वारा ही उद्भावना योग्य (चिन्तनीय), विकसित, सत्त्व से आच्छादित, ध्यान करने योग्य, आत्मस्वरूप, सारतत्त्व एवं परमतत्त्व, पवित्रों से भी पवित्र अर्थात् अति पवित्र यह जिसका रूप है, ऐसे हरि आपको नमस्कार है ॥ ५४ ॥

नित्यार्जवं व्ययहीनं गुणौघै-
रष्टाङ्गैर्यश्चिन्त्यये योगयुक्तैः ।
तत्त्वं व्यापि प्राप्य यज्ज्ञानयोगे
परं याता योगिनस्तं नमस्ते ।।५५।।

नित्य सरलता से युक्त, नाशहीन हो, गुणों के समूह, योगयुक्त योगीजन योग के यमादि आठ अङ्ग द्वारा जिसका चिन्तन करते रहते हैं, व्यापक, ज्ञान

योग द्वारा जिस तत्त्व को जानकर योगी जिस परमतत्त्व को जाते हैं, उस आपको नमस्कार है ॥ ५५ ॥

यत्साकारं शुद्धरूपं मनोज्ञं
गरुत्मस्थं नीलमेघप्रकाशम् ।
शङ्खं चक्रं पद्मगदे दधानं
तस्मै नमो योगयुक्ताय तुभ्यम् ॥५६॥

जो अपने साकार रूप में शुद्ध रूप, मन को सुन्दर लगने वाले, गरुड़ पर विराजमान, नीले मेघ के समान प्रकाशित, शंख, चक्र, पद्म एवं गदा धारण करने वाले हैं उस योग युक्त आपको नमस्कार है ॥ ५६ ॥

गगनं भूर्दिशश्चैव सलिलं ज्योतिरेव च ।
वायुः कालश्च रूपाणि यस्य तस्मै नमोऽस्तु ते ॥५७॥

यह आकाश, पृथ्वी, दिशाएँ, जल, अग्नि, वायु तथा काल जिसके रूप हैं उस आपको नमस्कार है ॥ ५७ ॥

प्रधानपुरुषौ यस्य कार्याङ्गत्वे निवत्स्यतः ।
तस्मादव्यक्तरूपाय गोविन्दाय नमोऽस्तु ते ॥५८॥

प्रधान और पुरुष कार्य हेतु जिसके अङ्गों में निवास करते हैं, ऐसे अव्यक्त रूप गोविन्द, आप को नमस्कार है ॥ ५८ ॥

यः स्वयं यश्च भूतानि यः स्वयं तद्गुणः परः ।
यः स्वयं जगदाधारस्तस्मै तुभ्यं नमोनमः ॥५९॥

जो स्वयं है, प्राणीमात्र जिसके हैं, जो उनके गुणों से परे है तथा जो स्वयं जगत् का आधार है उस आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ५९ ॥

परः पुराणः पुरुषः परमात्मा जगन्मयः ।
अक्षयो योऽव्ययो देवस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः ॥६०॥

जो परम (श्रेष्ठ) है, प्राचीन है, पुरुष तत्त्व है, परमात्मा है, सारा जगत् जिसका स्वरूप है, जो नष्ट नहीं होने वाला, अविनाशी देव है उस आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ६० ॥

यो ब्रह्मा कुरुते सृष्टिं यो विष्णुः कुरुते स्थितिम् ।
संहरिष्यति यो रुद्रस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः ॥६१॥

जो ब्रह्मा के रूप में सृष्टि, विष्णु के रूप में पालन तथा रुद्र रूप से संहार करता है, उस आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ६१ ॥

नमो नमः कारणकारणाय
दिव्यामृतज्ञानविभूतिदाय ।

समस्त लोकान्तर - मोहदाय
प्रकाशरूपाय परात्पराय ।।६२।।

कारण के अधिकारण, अमर ज्ञान रूपी दिव्य विभूति देने वाले, सभी लोकों को मोह में डालने वाले, प्रकाश स्वरूप, पर से परे श्रेष्ठतम विष्णु, आपको बारम्बार नमस्कार है ।। ६२ ।।

यस्य प्रपञ्चो जगदुच्यते महान् ।
क्षितिर्दिशः सूर्य इन्दुर्मनोजवः ।
वह्निर्मुखान्नाभितश्चान्तरीक्षं
तस्मै तुभ्यं हरये ते नमोऽस्तु ।।६३।।

जिसके प्रपञ्च रूप यह महान जगत्, पृथ्वी, दिशायें, सूर्य, चन्द्रमा और कामदेव, वायु हैं। अग्नि जिसके मुख से तथा अन्तरिक्ष जिसकी नाभि से उत्पन्न हुआ है; वैसे हरि आपको बारम्बार नमस्कार है ।। ६३ ।।

त्वं परः परमात्मा च त्वं विद्या विविधा हरे ।
शब्दब्रह्म परंब्रह्म विचारणपरात्परः ।।६४।।

तुम पर (श्रेष्ठ), परमात्मा हो। हे हरि ! तुम ही भाँति-भाँति की विद्या हो, शब्द- ब्रह्म, परमब्रह्म, दर्शनशास्त्र के परात्पर तत्त्व भी तुम्हीं हो ।। ६४ ।।

यस्य नादिर्नमध्यञ्च नान्तमस्ति जगत्पतेः ।
कथं स्तोष्यामि तं देवं वाङ्मनोगोचराद्बहिः ।।६५।।

हे जगत्पति ! जिसका न आदि है, न मध्य है, न अन्त है, जो वाणी मन और इन्द्रियों की पहुँच के बाहर है, उस आप जैसे देव की मैं कैसे स्तुति करूँगी ।। ६५ ।।

यस्य ब्रह्मादयो देवा मुनयश्च तपोधनाः ।
न विवृण्वन्ति रूपाणि वर्णनीयः कथं स मे ।।६६।।

जिसके रूपों का ब्रह्मादि देवता तथा तपस्वी मुनिगण भी वर्णन नहीं कर पाते वह मेरे द्वारा कैसे वर्णनीय हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता ।। ६६ ।।

स्त्रिया मया ते किं ज्ञेया निर्गुणस्य गुणाः प्रभोः ।
नैव जानन्ति यद्रूपं सेन्द्रा अपि सुरासुराः ।।६७।।

हे प्रभो ! जिसके रूप को इन्द्र के सहित देव और दैत्य भी नहीं जानते उस निर्गुण के गुण मुझ स्त्री द्वारा कैसे जाने जा सकते हैं ।। ६७ ।।

नमस्तुभ्यं जगन्नाथ नमस्तुभ्यं तपोमय ।
प्रसीद भगवंस्तुभ्यं भूयोभूयो नमोनमः ।।६८।।

हे जगन्नाथ ! आपको नमस्कार है। हे तपोमय ! आपको नमस्कार है। हे भगवन् ! आप प्रसन्न होओ। आपको बारम्बार नमस्कार है ।। ६८ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ तस्याः शरीरन्तु वल्कलाजिनसंवृतम् ।
परिक्षीणं जटाव्रातैः पवित्रैर्मूर्ध्नि राजितम् ।।६९।।
हिमानी तर्जिताम्भोजसदृशवदनं तथा ।
निरीक्ष्य कृपयाविष्टो हरिः प्रोवाच तामिदम् ।।७०।।

मार्कण्डेय बोले–इसके बाद वल्कल, मृग चर्मादि से ढके हुए, विशेष दुर्बल, जिसका सिर पवित्र जटाओं के समूह से सुशोभित था, ऐसे उसके शरीर तथा बर्फ के समूह से पीड़ित कमल के सदृश मुख को देखकर कृपा से पूर्ण भगवान विष्णु ने सन्ध्या से यह कहा—॥ ६९-७० ॥

।। श्रीभगवानुवाच ।।

प्रीतोऽस्मि तपसा भद्रे भवत्याः परमेण वै ।
स्तवेन च शुभप्रज्ञे वरं वरय साम्प्रतम् ।।७१।।

भगवान् (विष्णु) बोले– हे भद्रे ! तुम्हारी परम श्रेष्ठ तपस्या तथा स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ। हे शुभ बुद्धिवाली ! अब तुम वर माँगों ॥ ७१ ॥

येन ते विद्यते कार्यं वरेणास्ति मनोगतम् ।
तत् करिष्यामि भद्रन्ते प्रसन्नोऽहं तव व्रतैः ।।७२।।

जिस वर से तुम्हारा मनोवांछित कार्य पूर्ण हो, तुंम्हारा वह वर मैं पूरा करूँगा; क्योंकि मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ॥ ७१ ॥

।। सन्ध्योवाच ।।

यदि देव प्रसन्नोऽसि तपसा मम साम्प्रतम् ।
वृतस्तदायं प्रथमो वरो मम विधीयताम् ।।७३।।
उत्पन्नमात्रा देवेश प्राणिनोऽस्मिन्नभस्तले ।
न भवन्तु क्रमेणैव सकामाः सम्भवन्तु वै ।।७४।।

सन्ध्या बोली–हे देव ! इस समय आप मेरी तपस्या से प्रसन्न हैं तो मेरे द्वारा माँगे गये इस पहले वर का विधान कीजिये कि—

हे देवेश ! इस आकाश के नीचे प्राणी उत्पन्न होते ही कामभावना से ग्रस्त न हों, वे क्रमशः ही सकाम होंवे ॥ ७३-७४ ॥

पतिव्रताहं लोकेषु त्रिष्वपि प्रथिता यथा ।
भविष्यामि तथा नान्या वर एको वृतो मम ।।७५।।

मेरे द्वारा माँगा एक यह भी वर दीजिए कि मैं जैसी विख्यात पतिव्रता होऊँ वैसी तीनों लाकों में दूसरी कोई न हो ॥ ७५ ॥

सकामा मम दृष्टिस्तु कुत्रचिन्न पतिष्यति ।
ऋते पतिं जगन्नाथ सोऽपि मेऽति सुकृत्तरः ।।७६।।

हे जगन्नाथ ! मेरी कामयुक्त दृष्टि पति के अतिरिक्त कहीं भी न पड़े, यह भी मेरे हित में पुण्यमय कार्य होगा ॥ ७६ ॥

यो द्रक्ष्यति सकामो मां पुरुषस्तस्य पौरुषम् ।
नाशं गमिष्यति तदा स तु क्लीवो भविष्यति ।।७७।।

जो भी पुरुष मुझे सकाम भाव से देखेगा उसका पौरुष नष्ट हो जायगा और वह नपुंसक हो जायगा ॥ ७७ ॥

।। श्रीभगवानुवाच ।।

प्रथमः शैशवो भावः कौमाराख्यो द्वितीयकः ।
तृतीयो यौवनो भावश्चतुर्थो वार्द्धकस्तथा ।।७८।।
तृतीये त्वथ सम्प्राप्ते वयोभागे शरीरिणः ।
सकामाः स्युर्द्वितीयान्ते भविष्यन्ति क्वचित् क्वचित् ।।७९।।

भगवान् बोले– पहला शैशव भाव (बचपन), दूसरा कौमार भाव (कुमारावस्था), तीसरा यौवन (युवावस्था), चौथा वार्द्धक्य (वृद्धावस्था) होगा । अब तृतीय अवस्था युवावस्था भाग प्राप्त होन पर ही शरीरधारी कामभाव युक्त हुआ करेंगे । किन्तु कहीं-कहीं द्वितीय अवस्था कौमारावस्था के अन्त में भी यह हो सकेगा ॥ ७८-७९ ॥

तपसा तव मर्यादा जगति स्थापिता मया ।
उत्पन्नमात्रा न यथा सकामाः स्युः शरीरिणः ।।८०।।

तुम्हारी तपस्या से सन्तुष्ट हो ही मैंने संसार में यह मर्यादा स्थापित की है। जिससे प्राणी उत्पन्न होते ही कामासक्त न होवें ॥ ८० ॥

त्वञ्च लोके सतीभावं तादृशं समवाप्स्यसि ।
त्रिषु लोकेषु नान्यास्या यादृशं सम्भविष्यति ।।८१।।

तथा तुम संसार में इस प्रकार के सती भाव को प्राप्त करोगी जैसा तीनों लोकों में किसी दूसरी का नहीं होगा ॥ ८१ ॥

यः पश्यति सकामस्त्वां पाणिग्रहमृते तव ।
स सद्यः क्लीवतां प्राप्य दुर्बलत्वं गमिष्यति ।।८२।।

जो बिना तुम्हारा पाणिग्रहण किये तुम्हें कामभाव से देखेगा वह तत्काल ही नपुंसकता को प्राप्त कर दुर्बल हो जायगा ॥ ८२ ॥

पतिस्तव महाभागस्तपोरूपसमन्वितः ।
सप्तकल्पान्तजीवी च भविष्यति सह त्वया ।।८३।।

तुम्हारा पति महान भाग्यशाली, तपस्या एवं रूप से युक्त, सात कल्पों (३०२४०००००००० मानव वर्षों) तक तुम्हारे साथ जीने वाला होगा ॥ ८३ ॥

इति ये ते वरा मत्तः प्रार्थितास्ते कृता मया ।
अन्यच्च ते वदिष्यामि पूर्वं यन्मनसि स्थितम् ॥८४॥
अग्नौ शरीरत्यागस्ते पूर्वमेव प्रतिश्रुतः ॥८५॥

यह तो मैंने तुम्हें वे वर दिये हैं जो तुमने मुझसे माँगा था। अब मैं अन्य बातें करूँगा जो पहले से तुम्हारे मन में थी। तुमने पहले ही वचन दिया था कि अग्नि में अपने शरीर का त्याग कर दोगी ॥ ८४ -८५॥

स च मेधातिथेर्यज्ञे मुनेर्द्वादशवार्षिके ।
हुतप्रज्वलिते वह्नौ न चिरात् क्रियतां त्वया ॥८६॥

यह कार्य मेधा तिथि मुनि के बारह वर्षीय यज्ञ की प्रज्ज्वलित अग्नि में अपनी आहुति देकर करो। इसमें तुम्हारे द्वारा देरी नहीं हो ॥ ८६ ॥

एतच्छैलोपत्यकायां चन्द्रभागानदीतटे ।
मेधातिथिर्महायज्ञं कुरुते तापसाश्रमे ॥८७॥

इस पर्वत की घाटी में चन्द्रभागा नदी के तट पर तपस्वियों के आश्रम में मेधातिथि एक महान् यज्ञ कर रहे हैं ॥ ८७ ॥

तत्र गत्वा स्वयं छन्ना मुनिभिर्नोपलक्षिता ।
मत्प्रसादाद्वह्निजाता तस्य पुत्री भविष्यसि ॥८८॥

स्वयं छिपकर मुनियों द्वारा न देखी जाती हुई, वहाँ गुप्त रूप से जाकर, तुम अग्नि से उत्पन्न उनकी पुत्री होगी ॥ ८८ ॥

यस्त्वया वाञ्छनीयोऽस्ति स्वामी मनसि कश्चन ।
तं निधाय निजस्वान्ते त्यज वह्नौ वपुः स्वकम् ॥८९॥

जो भी कोई तुम्हारा मनोवांछित पति हो, उसको अपने हृदय में धारण कर तुम अपने शरीर को अग्नि में छोड़ दो ॥ ८९ ॥

यदा त्वं दारुणे सन्ध्ये तपश्चरसि पर्वते ।
यावच्चतुर्युगं तस्य व्यतीते तु कृते युगे ॥९०॥
त्रेतायाः प्रथमे भागे जाता दक्षस्य कन्यकाः ।
स ददौ कन्यका सप्तविंशतिञ्च सुधांशवे ॥९१॥

हे सन्ध्या ! जब तुम चन्द्रभाग पर्वत पर चतुर्युग पर्यन्त तपस्या कर रही थी तो उसके कृत अर्थात् सत्ययुग के बीतने पर त्रेता के प्रथम भाग में दक्ष प्रजापति की बहुत-सी कन्यायें उत्पन्न हुईं। उन्होंने सत्ताईस कन्याएँ सुधांशु चन्द्रमा को दे दीं ॥ ९०-९१ ॥

तासां हेतोर्यदा शप्तश्चन्द्रो दक्षेण कोपिना ।
तदा भवत्या निकटे सर्वे देवाः समागताः ।।९२।।

क्रुद्ध दक्ष ने उन कन्याओं के कल्याण के लिए जब चन्द्रमा को शाप दिया तब सभीदेवता मिलकर तुम्हारे पास आये ॥ ९२ ॥

न दृष्टाश्च तया सन्ध्ये देवाश्च ब्रह्मणा सह ।
मयि विन्यस्तमनसा त्वञ्च दृष्टा न तैः पुनः ।।९३।।

हे सन्ध्या ! तुम्हारा मन मेरे में लग चुका था इसीलिए ब्रह्मा के सहित वे देवगण तुम्हारे द्वारा नहीं देखे गये और न उनके द्वारा तुम्हीं देखी गयी ॥ ९३ ॥

चन्द्रस्य शापमोक्षार्थं चन्द्रभागा नदी यथा ।
सृष्टा धात्रा तदैवात्र मेधातिथिरुपस्थितः ।।९४।।
तपसा तत्समो नास्ति न भूतो न भविष्यति ।।९५।।

चन्द्र के शाप मुक्ति के लिए जब ब्रह्मा ने चन्द्रभागा नदी की सृष्टि की तभी यहाँ मेधा तिथि ऋषि पधारे । तपस्या में उनके समान न कोई है और न कोई भविष्य में ही होगा ॥ ९४-९५ ॥

तेन यज्ञः समारब्धो ज्योतिष्टोमो महाविधिः ।
तत्र प्रज्वलितो वह्निस्तस्मिंस्त्यज वपु; स्वकम् ।।९६।।

उन्होंने महान विधि से सम्पन्न होने वाला ज्योतिष्टोम यज्ञ प्रारम्भ किया है। वहाँ अग्नि प्रज्वलित हो रही है । तुम उसीमें अपने शरीर का त्याग करो ॥ ९६ ॥

एतन्मया स्थापितं ते कार्यार्थं भोस्तपस्विनि ।
तत् कुरुष्व महाभागे याहि यज्ञं महामुनेः ।।९७।।

ओ तपस्विनी ! यह मैंने तुम्हारे कार्य हेतु स्थापित (निर्धारित) किया है। हे महाभागे ! तुम महामुनि मेधा तिथि के यज्ञ में जाओ और इसे सम्पन्न करो ॥ ९७ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

नारायणः स्वयं सन्ध्यां पस्पर्शाथाग्रपाणिना ।
ततः पुरोडाशमयं तच्छरीरमभूत् क्षणात् ।।९८।।

मार्कण्डेय बोले—नारायण ने स्वयं हाथ के अग्रभाग से सन्ध्या का स्पर्श किया तब क्षण भर में ही उसका शरीर पुरोडाश से युक्त हो गया ॥ ९८ ॥

महामुनेर्महायज्ञे तस्मिन् विश्वोपकारिणि ।
नाग्निः कव्यादतां याति त्वेतदर्थं तथा कृतम् ।।९९।।

महामुनि के विश्व उपकार हेतु आयोजित उस महायज्ञ में अग्नि कव्य बिना खाये न रहें इसीलिए ऐसा किया गया था ॥ ९९ ॥

एवं कृत्वा जगन्नाथस्तत्रैवान्तरधीयत ।
सन्ध्याप्यगच्छत्तत्सत्रे यत्र मेधातिथिर्मुनिः ।।१००।।

ऐसा करके जगन्नाथ विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। सन्ध्या भी वहीं चली गई जहाँ मेधातिथि मुनि यज्ञ कर रहे थे ।। १०० ।।

अथ विष्णोः प्रसादेन केनाप्यनुपलक्षिता ।
प्रविवेश यदा यज्ञं सन्ध्या मेधातिथेर्मुनेः ।।१०१।।

इसके बाद सन्ध्या ने जब मेधा तिथि के यज्ञ में प्रवेश किया तो उस समय विष्णु भगवान् की कृपा से उसे किसी ने भी नहीं देखा ।। १०१ ।।

वसिष्ठेन पुरा सा तु वर्णीभूत्वा तपस्विनी ।
उपदिष्टातपश्चर्तुं वचनात् परमेष्ठिनः ।।१०२।।

परमेष्ठी ब्रह्मा के वचन से वह तपस्विनी पहले ब्रह्मचारी बन कर वसिष्ठ द्वारा तपस्या हेतु उपदेशित हुई थी ।। १०२ ।।

तमेव कृत्वा मनसि तपश्चर्योपदेशकम् ।
पतित्वेन तदा सन्ध्या ब्राह्मणं ब्रह्मचारिणम् ।।१०३।।
समिद्धेऽग्नौ महायज्ञे मुनिभिर्नोपलक्षिता ।
तदा विष्णोः प्रसादेन साविवेश विधेः सुता ।।१०४।।

तब उसी तपस्या का उपदेश देने वाले ब्रह्मचारी ब्राह्मण को पति के रूप में मन में धारण कर वह ब्रह्मा की पुत्री सन्ध्या, विष्णु की कृपा से मुनियों द्वारा न देखी जाती हुई ही उस महायज्ञ की प्रज्ज्वलित अग्नि में प्रवेश कर गई ।। १०३-१०४ ।।

तस्याः पुरोडाशमयं शरीरं तत्क्षणात्ततः ।
दग्धं पुरोडाशगन्धं व्यस्तारयदलक्षितम् ।।१०५।।

तब उसका न दिखने वाला पुरोडाशयुक्त शरीर जल कर उसी समय पुरोडाश की गन्ध फैलाने लगा ।। १०५ ।।

वह्निस्तस्याः शरीरन्तु दग्ध्वा सूर्यस्य मण्डले ।
शुद्धं प्रवेशयामास विष्णोरेवाज्ञया पुनः ।।१०६।।

अग्निदेव ने विष्णु की ही आज्ञा से उसके शरीर को जलाकर शुद्ध होने पर सूर्य के मण्डल में प्रवेश कराया ।। १०६ ।।

सूर्यो द्विधा विभज्याथ तच्छरीरं तदा रथे ।
स्वके संस्थापयामास प्रीतये पितृदेवयोः ।।१०७।।

सूर्य ने भी उस शरीर को दो भागों में बाँटकर और देवताओं और पितरों की प्रसन्नता के लिए अपने रथ पर स्थापित किया ।। १०७ ।।

यदूर्धभागस्तस्यास्तु शरीरस्य द्विजोत्तमाः ।
प्रातःसन्ध्याभवत् सा तु अहोरात्रादिमध्यगा ।।१०८।।

हे द्विजोत्तमों ! जो उसके शरीर का ऊपरी भाग था वह रात्रि और दिन के प्रारम्भिक मध्य भाग में स्थित प्रात: सन्ध्या हुआ ॥ १०८ ॥

यच्छेषभागस्तस्यास्तु अहोरात्रान्तमध्यगा ।
सा सायमभवत् सन्ध्या पितृप्रीतिप्रदा सदा ।।१०९।।

उसके शरीर का जो शेष भाग रात्रि और दिन के अन्तिम मध्य भाग में स्थित पितरों को प्रसन्नता देने वाली सायं सन्ध्या हुआ ॥ १०९ ॥

सूर्योदयात्तु प्रथमं यदा स्यादरुणोदयः ।
प्रातःसन्ध्या तदोदेति देवानां प्रीतिकारिणी ।।११०।।

सूर्योदय से पहले जब अरुणोदय होता है तब देवताओं को प्रसन्नता देने वाली प्रात: सन्ध्या उदित होती है ॥ ११० ॥

अस्तं गते ततः सूर्ये शोणपद्मनिभा सदा ।
उदेति सायंसन्ध्यापि पितृणां मोदकारिणी ।।१११।।

सूर्य के अस्त होने पर लाल कमल की आभावली, सदैव पितरों को आनन्द देने वाली सायं सन्ध्या भी उदित होती है ॥ १११ ॥

तस्याः प्राणास्तु मनसा विष्णुना प्रभविष्णुना ।
दिव्येन तु शरीरेण चक्रिरेऽथ शरीरिणः ।।११२।।

उसके प्राणों को भगवान् विष्णु द्वारा मानसिक रूप से दिव्य शरीर वाली शरीरधारिणी बना दिया गया ॥ ११२ ॥

मुनेर्यज्ञावसाने तु सम्प्राप्ते मुनिना तु सा ।
प्राप्ता पुत्री वह्निमध्ये तप्तकाञ्चन सप्रभा ।।११३।।

मुनि के यज्ञ की समाप्ति के बाद वह उन्हें तपे हुए सोने की आभावाली पुत्री के रूप में अग्नि के बीच से प्राप्त हुई ॥ ११३ ॥

तां जग्राह तदा पुत्रीं मुनिरामोदसंयुतः ।
यज्ञार्थतोयैः संस्नाप्य निजक्रोडे कृपायुतः ।।११४।।

तब मुनि ने उस पुत्री को यज्ञ हेतु एकत्रित जल से कृपापूर्वक स्नान कराकर बड़ी प्रसन्नता से अपनी गोद में धारण किया ॥ ११४ ॥

अरुन्धतीति तस्यास्तु नाम चक्रे महामुनिः ।
शिष्यैः परिवृतस्तत्र महामोदमवाप च ।।११५।।

वहाँ शिष्यों से घिरे हुए उस महामुनि ने उसका अरुन्धती यह नाम रखा तथा महान आनन्द का अनुभव किया ॥ ११५ ॥

न रुणद्धि यतो धर्मं सा केनापि च कारणात् ।
अतस्त्रिलोकविदितं नाम सा प्राप सान्वयम् ।।११६।।

किसी भी कारण से उसके द्वारा धर्म नहीं रोका जाता इसीलिए उसने तीनों लोकों में ख्यात अपने गुण के अनुरूप अरुन्धती नाम प्राप्त किया ॥ ११६ ॥

यज्ञं समाप्य स मुनिः कृतकृत्यभाव-
मासाद्य सम्मदयुतस्तनयाप्रलम्भात् ।
तस्मिन् निजाश्रमपदे सहशिष्यवर्गै-
स्तामेव सन्ततमसौ दयते महर्षिः ।।११७।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे अरुन्धती-जन्मकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

यज्ञ को सम्पन्न कर वह महामुनि तनया को प्राप्त करने के कारण प्रसन्नता से युक्त हो कृतकृत्य भाव को प्राप्त हुए तथा महर्षि उस अपने आश्रम में वहाँ उसी की रक्षा करते हुए शिष्य वर्गों के सहित रहने लगे ॥ ११७ ॥

।। श्रीकालिका पुराण में अरुन्धतीजन्मकथन नामक बाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।



त्रयोविंशोऽध्यायः

अरुन्धतीविवाहवर्णनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ सा ववृधे देवी तस्मिन् मुनिवराश्रमे ।
चन्द्रभागानदीतीरे तापसारण्यसंज्ञके ।।१।।

मार्कण्डेय बाले– वह देवी उस मुनिवर के चन्द्रभागा नदी के तट पर स्थित तापसारण्य नामक आश्रम में बढ़ने लगी ॥ १ ॥

यथा चन्द्रकला शुक्लपक्षे नित्यं विवर्धते ।
यथा ज्योत्स्ना तथा सापि प्राप वृद्धिमरुन्धती ।।२।।

जैसे चन्द्रमा की कला शुक्ल पक्ष में नित्य बढ़ती है, जैसे उसकी ज्योत्स्ना बढ़ती है, वैसे ही वह अरुन्धती भी वृद्धि को प्राप्त हुई ॥ २ ॥

सम्प्राप्ते पञ्चमे वर्षे चन्द्रभागां तदा गुणैः ।
तापसारण्यमपि सा पवित्रमकरोत् सती ।।३।।

तब उस सती ने पाँच वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर चन्द्रभाग नदी तथा तापसारण्य को भी पवित्र किया ॥ ३ ॥

तत्र तीर्थं महापुण्यं मेधातिथिनिषेवितम् ।
क्रीडास्थानमरुन्धत्याः पूतं बाल्योचितं कृतम् ।।४।।

बाल्यावस्था के उपयुक्त कार्यों से अरुन्धती की क्रीड़ास्थली बना वह मेधातिथि से निषेवित, महान् पुण्यशाली, तीर्थ पवित्र हो गया ॥ ४ ॥

अद्यापि तापसारण्ये चन्द्रभागानदीजले ।
अरुन्धतीतीर्थतोये स्नात्वा याति हरिं नरः ।।५।।

आज भी तापसारण्य में चन्द्रभागा नदी के जल, अरुन्धती तीर्थ के जल में स्नान कर, मनुष्य विष्णुलोक को जाता है ॥ ५ ॥

कार्तिकं सकलं मासं चन्द्रभागानदीजले ।
स्नात्वा विष्णुगृहं गत्वा ह्यन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ।।६।।

क्योंकि सम्पूर्ण कार्त्तिक मास भर चन्द्रभागा नदी में स्नान करके मनुष्य विष्णुधाम को जाता है तथा अन्त में मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

माघे मासि पौर्णमास्याममायां वा तथैव च ।
चन्द्रभागाजले स्नानं यस्तु कुर्यात् सकृत् सकृत् ।।७।।
तस्य वंशे राजयक्ष्मा न कदाचिद् भविष्यति ।
देहान्ते चन्द्रभवनं गत्वा याति हरेर्गृहम् ।।८।।

माध मास की अमावस्या या पूर्णिमा को चन्द्रभागा नदी के जल में जो एक-एक बार भी स्नान करेगा उसके वंश में कभी राज-यक्ष्मा का रोग नहीं होगा। तथा देहान्त के पश्चात् वह चन्द्रलोक को जाकर विष्णुलोक को जाता है ।।७-८।।

पुण्यक्षयादिहागत्य वेदज्ञो ब्राह्मणो भवेत् ।
चन्द्रभागाजलं पीत्वा चन्द्रलोकमवाप्नुयात् ।।९।।
सकृत् स्नात्वा तु विधिवद्वाजिमेधायुतं लभेत् ।।१०।।

चन्द्रभागा का जल पीकर मनुष्य चन्द्रलोक को प्राप्त करता है तथा पुण्यक्षय होने पर इस लोक में पुनः वेद को जानने वाला ब्राह्मण होता है और उसमें एक बार विधिपूर्वक स्नान से दस हजार अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ।। ९-१० ।।

चन्द्रभागाजले स्नात्वा क्रीडन्ती बाल्यलीलया ।
पितुः समीपे तत्तीरे कदाचित्तामरुन्धतीम् ।
गच्छन्नाकाशमार्गेण ददर्श कमलासनः ।।११।।

चन्द्रभागा नदी के जल में स्नान कर, उसी के तट पर पिता के समीप बाललीला के माध्यम से क्रीड़ा करती हुई अरुन्धती को कभी आकाश मार्ग से जाते हुए, ब्रह्माजी ने देखा ।। ११ ।।

अथावतीर्य भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
अरुन्धत्यास्तदा कालमुपदेशे ददर्श ह ।।१२।।

इसके बाद लोक के पितामह भगवान ब्रह्मा उस समय उतरे तथा अरुन्धती को उपदेश की दृष्टि से देखा ।। १२ ।।

अथोवाच तदा ब्रह्मा मुनिभिः परिपूजितः ।
मेधातिथिप्रभृतिभिरुचितं तं महामुनिम् ।।१३।।

तब ब्रह्मा मेधातिथि आदि मुनियों द्वारा उचित रूप से पूजित हो उस महामुनि से बोले— ।। १३ ।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

उपदेशस्य कालोऽयमरुन्धत्या महामुने ।
तस्मादेनां सतीनान्तु स्त्रीणां त्वं कुरु सन्निधिम् ।।१४।।

ब्रह्मा बोले– हे महामुनि ! यह अरुन्धती के उपदेश का समय है । अतः इसे तुम सती-स्त्रियों के सम्पर्क मे ले जाओ ।। १४ ।।

स्त्रिभिस्त्रियश्चोपदेश्याः काचिदन्यत्र विद्यते ।
बहुलायाश्च सावित्र्याः पुत्रीं त्वं स्थापयान्तिके ॥१५॥

स्त्रियाँ किन्हीं अन्य स्त्रियों द्वारा ही उपदेश्य होती हैं। इसलिए तुम अपनी इस पुत्री को बहुला और सावित्री के समीप ले जाओ ॥ १५ ॥

तयोः संसर्गमासाद्य पुत्री तव महामुने ।
महागुणैश्वर्ययुता माचिरात् तु भविष्यति ॥१६॥

हे महामुनि ! उन दोनों का संसर्ग प्राप्त कर तुम्हारी पुत्री शीघ्र ही महान गुणों और ऐश्वर्य से युक्त होगी ॥ १६ ॥

मेधातिथिर्वचः श्रुत्वा ब्रह्मणः परमात्मनः ।
एवमेषेति प्रोवाच तं तदा मुनिसत्तमः ॥१७॥

तब परमात्मा ब्रह्मा के वचन को सुनकर मुनिश्रेष्ठ मेधातिथि ने उनसे कहा कि ऐसा ही होगा ॥ १७ ॥

ततो गते सुरश्रेष्ठे पुत्रीं मेधातिथिर्मुनिः ।
समादाय ययौ सूर्यभवनं प्रति तत्क्षणात् ॥१८॥

तब सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा के चले जाने के पश्चात् तत्काल मेधातिथि मुनि पुत्री अरुन्धती को साथ ले, सूर्य के भवन को गये ॥ १८ ॥

ददर्श तत्र सावित्रीं सूर्यमण्डलमध्यगाम् ।
पद्मासनगतां देवीमक्षमालाधरां सिताम् ॥१९॥

वहाँ उन्होंने सूर्यमण्डल के मध्य में विराजमान श्वेतवर्णों वाली, पद्मासन पर बैठी हुई, रुद्राक्ष की माला धारण की हुई, सावित्री देवी को देखा ॥ १९ ॥

दृष्टा सा तेन मुनिना निःसृत्य रविमण्डलात् ।
बहुलां सा गता तूर्णं प्रस्थं मानसभूभृतः ॥२०॥

देखी गयी वह सावित्री, उन मुनि के साथ सूर्यमण्डल से निकलकर मानस पर्वत के शिखर पर तेजी से बहुला के पास गयी ॥ २० ॥

प्रत्यहं तत्र सावित्री गायत्री बहुला तथा ।
सरस्वती च द्रुपदा पञ्चैता मानसाचले ॥२१॥
धर्माख्यानैस्तथा साध्वीः कथाः कृत्वा परस्परम् ।
स्वं स्वं स्थानं पुनर्यान्ति लोकानां हितकाम्यया ॥२२॥

वहाँ मानस पर्वत पर प्रतिदिन सावित्री, गायत्री, बहुला, सरस्वती तथा द्रुपदा ये पाँच देवियाँ संसार के कल्याण की कामना से आपस में धर्म सम्बन्धी आख्यान तथा साध्वी स्त्रियों का चरित्र कथन करके, अपने-अपने स्थानों पर पुनः लौट जाती हैं ॥ २१-२२ ॥

मेधातिथिस्तु ताः सर्वा दृष्ट्वैकत्र तपोधनः ।
मातृः सर्वस्य लोकस्य प्रणनाम पृथक् पृथक् ।।२३।।
उवाच च स ताः सर्वा ऋषिः श्लक्ष्णं तपोधनः ।
ससाध्वसो विस्मितश्च तासामेकत्र दर्शनात् ।।२४।।

तपस्वी मेधातिथि ने उन सभी, सब लोकों की माताओं को इकट्ठा देखकर उन्हें अलग-अलग प्रणाम किया और उन सबको एक जगह देखकर भयभीत और आश्चर्यचकित हो, तपस्वी, श्लक्षण, मेधातिथि ऋषि ने उन सबसे कहा—॥२३-२४॥

।। मेधातिथिरुवाच ।।

मातः सावित्रि बहुले मत्पुत्रीयं महायशाः ।
कालोऽयमुपदेशेऽस्यास्तदर्थमहमागतः ।।२५।।

मेधातिथि बोले– हे माता सावित्री एवं माता बहुला ! यह मेरी महायशस्विनी कन्या है । यह इसके उपदेश का समय है, इसीलिए मैं आप लोगों के पास आया हुआ हूँ ॥ २५ ॥

जगत्स्रष्ट्रा समादिष्टा प्रयातु तव शिष्यताम् ।
एषा तेन भवत्पार्श्वमानीता पुत्रिका मम ।।२६।।

जगत के सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने आदेश दिया, यह तुम्हारी शिष्यता को प्राप्त करे । यह मेरी पुत्री, इसी निमित्त तुम दोनो के समीप लाई गयी है ॥ २६ ॥

सौचारित्र्यं यथास्याः स्यात्तथैनां बालिकां मम ।
युवां विनयतं देव्यौ मातर्मातर्नमोऽस्तु वाम् ।।२७।।

हे माताओं ! आप दोनों ऐसा निर्देश दीजिए जिससे मेरी इस लड़की में सुचरित्रता होवे । हे माताओं आप दोनों को नमस्कार है ॥ २७ ॥

अथोवाच तदा देवी सावित्री मुनिसत्तमम् ।
स्मितपूर्वं बहुलया सहिता ताञ्च बालिकाम् ।।२८।।

तब देवी सावित्री ने बहुला के सहित मुस्कुराते हुए, मुनिश्रेष्ठ मेधातिथि तथा उस बालिका अरुन्धती से कहा— ॥ २८ ॥

।। ते ऊचतुः ।।

ब्रह्मन् विष्णोः प्रसादेन सुचरित्रा भवत्सुता ।
पूर्वमेव मुने भूता तदुद्देशेन किं पुनः ।।२९।।

वे सावित्री एवं बहुला बोलीं– हे ब्रह्मन् ! हे मुनि ! भगवान विष्णु की कृपा से उत्पन्न हुई आपकी पुत्री पहले ही सुचरित्रवती है । अब उसे पुनः उपदेश देने का क्या (प्रयोजन)? ॥ २९ ॥

किं त्वहं ब्रह्मवाक्येण बहुला च महासती ।
विनेष्यावस्तव सुतां धीरा स्यान्नचिराद् यथा ।।३०।।

किन्तु ब्रह्मा के कथनानुसार मैं एवं महासती बहुला उसे शीघ्र ही उपदेश प्रदान करेंगी, जिससे तुम्हारी पुत्री धैर्यशालिनी होवे ॥ ३० ॥

ब्रह्मणः पूर्वदुहिता भवतस्तु तपोवलात् ।
तथा विष्णोः प्रसादेन सुता तेऽभूदरुन्धती ॥३१॥

ब्रह्मा की पहले की पुत्री सन्ध्या ही आपकी तपस्या के बल से तथा विष्णु की कृपा से अरुन्धती नाम की आपकी कन्या हुई है ॥ ३१ ॥

कुलं पुनाति भवतः सत्यसौ वर्धयिष्यति ।
लोकानामथ देवानां शिवमेषा करिष्यति ॥३२॥

यह सती आपके कुल को पवित्र करेगी, आगे बढ़ाएगी तथा यह देवताओं तथा लोकों का भी कल्याण करेगी ॥ ३२ ॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

अथ ताभिर्विसृष्टः स मुनिर्मेधातिथिः सुताम् ।
आश्वास्यारुन्धतीं नत्वा ताः स्वस्थानं जगाम ह ॥३३॥

मार्कण्डेय बोले– उन देवियों द्वारा विदा किये जाने पर वे मेधातिथि मुनि अपनी पुत्री अरुन्धती को आश्वस्त कर तथा उन सब देवियों को प्रणाम कर अपने स्थान पर चले गये ॥ ३३ ॥

गते तस्मिन् मुनिवरे सह ताभ्यामरुन्धती ।
मातृभ्यामिव निर्भीता पालिता मोदमाप सा ॥३४॥

उन मुनिश्रेष्ठ के चले जाने पर उन दोनों माताओं के साथ, माताओं की ही भाँति निर्भय बनाई एवं पाली हुई उस अरुन्धती ने आनन्द को प्राप्त किया ॥ ३४ ॥

कदाचित् सह सावित्र्या रात्रौ याति रवेर्गृहम् ।
तथा बहुलया याति शक्रगेहं कदाचन ॥३५॥

वह कभी सावित्री के साथ रात्रि में सूर्य के घर जाती तो कभी बहुला के साथ इन्द्र के घर जाती ॥ ३५ ॥

एवं ताभ्यां समं देवी विहरन्ती सुरालये ।
निनाय दिव्यमानेन सा सप्त परिवत्सरान् ॥३६॥

इस प्रकार उन दोनों के साथ देवलोक में विहार करती उस देवी ने देवताओं के मान से सात परिवत्सर (मानव मान से २५२० वर्ष) व्यतीत किया ॥३६॥

ताभ्यां तथोपविष्टा सा स्त्रीधर्ममचिरात् सती ।
सर्वं ज्ञातवती भूता सावित्री-बहुलाधिका ॥३७॥

उन दोनो के द्वारा स्त्री धर्म का उपदेश दी गई वह सती शीघ्र ही सावित्री और बहुला दोनों प्रमविष्णुसे भी अधिक सब कुछ जानने वाली हो गयी ॥ ३७ ॥

अथ तस्यास्तदा काले सम्प्राप्ते उचितेऽभवत् ।
शोभनो यौवनोद्भेदः पद्मिनीनां रुचिर्यथा ॥३८॥

इसके बाद उचित समय प्राप्त होने पर पद्मिनी[1] स्त्रियों की रुचि के अनुरूप उसमें सुन्दर यौवन का प्रकटीकरण हुआ ॥ ३८ ॥

उद्भूत-यौवना सा तु वसिष्ठं मानसाचले ।
विहरन्ती ददर्शैकं चारुतेजस्विनं मुनिम् ।।३९।।

यौवन जिसमें उत्पन्न हो गया था ऐसी उस अरुन्धती ने मानस पर्वत पर विहार करते हुए एक सुन्दर, तेजस्वी, वसिष्ठ नामक मुनि को देखा ॥ ३९ ॥

दृष्ट्वा तमिच्छयाञ्चक्रे कामभावेन सा सती ।
बालसूर्यप्रभं चारुरूपं ब्रह्मश्रिया युतम् ।।४०।।

उस बाल-सूर्य की प्रभा वाले, सुन्दर रूपधारी, ब्रह्मशोभा से युक्त मुनि को देखकर उस सती ने काम भावना से उनके प्रति इच्छा किया ॥ ४० ॥

अथ सोऽपि महातेजा वसिष्ठो वरवर्णिनीम् ।
दृष्टैवोद्भूतमदनो वीक्षाञ्चक्रे त्वरुन्धतीम् ।।४१।।

इसके बाद वह महातेजस्वी वसिष्ठ भी उस उत्तम और सुन्दर रंग-रूप वाली अरुन्धती को देखकर मदन के उत्पन्न हो जाने के कारण उसे चाहने लगे ॥ ४१ ॥

तयोः परस्परं दृष्ट्वा ववृधे हृच्छयो महान् ।
अमर्यादं द्विजश्रेष्ठाः प्राकृते मदनो यथा ।।४२।।

हे द्विजश्रेष्ठों ! उन दोनों में आपस में एक दूसरे को देखकर वैसे ही महान् हृच्छय (हार्दिक राग) बढ़ने लगा जैंसे प्राकृत (सामान्य) लोगों में काम का वेग बढ़ता है ॥ ४२ ॥

अथ धैर्यं समालम्व्य तथा मेधातिथेः सुता ।
आत्मानं धारयामास मनश्च मदनेरितम् ।।४३।।

इसके बाद मेधातिथि की पुत्री अरुन्धती ने धैर्य का आलम्बन ले उस प्रकार से काम प्रेरित हुए अपने मन को धारण किया (नियंत्रित किया) ॥ ४३ ॥

वसिष्ठोऽपि महातेजा धैर्यमालम्व्य चात्मनः ।
मनः संस्तम्भयामास मदनोन्मथितं ततः ।।४४।।

तब महा तेजस्वी वसिष्ठ ने भी मदन से विशेष प्रकार मथे गए अपने मन को धैर्य का अवलम्बन लेकर भलीभाँति स्तम्भित किया, रोका ॥ ४४ ॥

अरुन्धती ततो देवी विहाय मुनिसन्निधिम् ।
जगाम यत्र सावित्री निन्दन्ती स्वं मनोरथम् ।।४५।।

तब देवी अरुन्धती मुनि वसिष्ठ का सानिध्य छोड़कर अपने मनोभावों की निन्दा करती हुई जहाँ सावित्री थीं, वहाँ पहुँची ॥ ४५ ॥

---

१. पद्मिनी काम-शास्त्रीय दृष्टि से एक नायिका भेद।

बाध्यमानातिदु:खेन मानसेन महासती ।
सतीभाव: परित्यक्तश्चिन्तयन्ती मयेति वै ।।४६।।

वह महासती, मन से यह सोचकर बहुत दु:खी थी कि उसके द्वारा सतीभाव का परित्याग कर दिया गया ।। ४६ ।।

तस्या मनोजदु:खेन विवर्णमभवन्मुखम् ।
शरीरं सकलं म्लानं गतिश्च वलिताभवत् ।।४७।।

मन में दु:ख के कारण उसका मुँह रंगहीन हो गया था, सारा शरीर मलीन हो गया था और गति भी घुमावदार (अव्यवस्थित) हो गयी थी ।। ४७ ।।

इदं विममृषे सा च गर्हयन्ती स्वकं मन: ।
मृणालतन्तुवत् सूक्ष्मा छिन्ना च तत्क्षणादपि ।।४८।।
स्थिति: सतीनामल्पेन चापल्येनैव नश्यति ।
इति स्त्रीधर्ममध्याप्य मामाह चरितव्रता ।
सावित्री सारमेतद् हि सतीधर्मस्य चोद्धृतम् ।।४९।।

उसने अपने मन की निन्दा करते हुए यह सोचा, चरितव्रता सावित्री ने स्त्री धर्म की शिक्षा देते हुए, सती धर्म का सारतत्त्व बताया था कि सतियों की स्थिति कमलनाल के तन्तु के समान सूक्ष्म होती है जो थोड़ी सी चंचलता से छिन्न-भिन्न हो जाती है ।। ४८-४९ ।।

तदद्य नाशितं पुंसि परकीये मनोरथम् ।
वर्द्धयन्त्या तदा किं मे परत्रेह भविष्यति ।।५०।।

उस बढ़ती हुई सतीत्व की स्थिति को आज मैंने पराये पुरुष की कामना से नष्ट कर दिया तब ऐसी स्थिति में मेरे इस लोक और परलोक का क्या होगा?।। ५० ।।

इति सञ्चिन्तयन्ती सा पुत्री मेधातिथेस्तदा ।
दु:खार्ता बहुलां देवी सावित्रीं चाससाद ह ।। ५१ ।।

तब मेधातिथि ऋषि की वह पुत्री अरुन्धती, ऐसा सोचकर दु:ख से पीड़ित हो, देवी बहुला एवं सावित्री के समीप पहुँच गई ।। ५१ ।।

तथाविधान्तु तां दृष्ट्वा विवर्णवदनां सतीम् ।
ध्यानचिन्तापरा भूत्वा सावित्री विममर्ष ह ।।५२।।

उस सती को उस प्रकार रंगहीन उदास मुख देखकर सावित्री ने ध्यान परायण होकर विचार किया ।। ५२ ।।

विमृष्य दिव्यज्ञानेन सर्वं ज्ञातवती सती ।
वसिष्ठेन त्वरुन्धत्या यथाभूद्दर्शनं तथा ।।

यथा तयोः सम्प्रवृद्धो मनोजश्चातिदुःसहः ।
मुखवैवर्ण्यहेतुश्च सावित्री दिव्यदर्शिनी ।। ५४ ।।

विचार करके दिव्य-दर्शन करने वाली सावित्री ने वसिष्ठ और अरुन्धती का जिस प्रकार परस्पर दर्शन हुआ था तथा उन दोनों में जिस प्रकार दुःसह कामभाव की वृद्धि हुई थी, जिस कारण से अरुन्धती के मुख का रंग उड़ा था, वह सब अपने दिव्य ज्ञान से जान लिया ॥ ५३-५४ ॥

अथ मेधातिथेः पुत्र्या मूर्ध्नि हस्तं निवेश्य सा ।
इदमाह महादेवी सावित्री चरितव्रता ।। ५५।।

इसके बाद उस चरितव्रता महादेवी सावित्री ने मेधातिथि मुनि की पुत्री, अरुन्धती के मस्तक पर हाथ रखकर यह कहा— ॥ ५५ ॥

वत्से तव मुखं कस्माद्भिन्नवर्णमभूदिदम् ।
छिन्ननालं यथापद्मं सूर्यांशुपरितापितम् ।।५६।।

बेटी ! तुम्हारा यह मुख सूर्य की किरणों से तप्त तथा अपने नाल से बिछुड़े हुए कमल की भाँति भिन्नवर्ण (रङ्गहीन) क्यों हो गया है? ॥ ५६ ॥

कथं शरीरमभवत् म्लानं ते गुणवत्तमे ।
यथा निशापतेर्विम्बं तनुकृष्णाभ्रसंवृतम् ।।५७।।

हे गुणवतियों में श्रेष्ठ ! तुम्हारा शरीर भी क़ाले बादलों से ढँके हुए चन्द्रमा की भाँति मलीन क्यों हो गया है? ॥ ५७ ॥

अन्तर्मनश्च ते भद्रे सचिन्तमिव लक्ष्यते ।
तन्मे कथय ते गुह्यं नैतच्चेद्दुःखकारणम् ।।५८।।

हे भद्रे ! किस कारण से तुम्हारा अन्तर्मन चिन्ताग्रस्त दिखाई दे रहा है ? यदि तुम्हारे दुःख कारण गोपनीय न हो तो वह मुझे बताओ ॥ ५८ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ साधोमुखी भूत्वा किञ्चिन्नोवाच लज्जया ।
सावित्रीं मातरं गुर्वीं तथा पृष्टाप्यरुन्धती ।।५९।।

मार्कण्डेय बोले– गुरुतुल्य माता सावित्री द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर भी उस अरुन्धती ने लज्जावश कुछ भी नहीं कहा। वह केवल नीचे मुँह किये रही ॥ ५९ ॥

यदा नोक्तवती किञ्चित्तदा मेधातिथेः सुता ।
स्वयं प्रकाश्य सावित्री तामुवाच तपस्विनी ।।६०।।

जब मेधातिथि की पुत्री ने अपने द्वारा प्रकाशित करने योग्य कुछ नहीं कहा तब तपस्विनी सावित्री ने उससे कहा— ॥ ६० ॥

वत्से योऽसौ त्वया दृष्टो मुनिर्भास्करसन्निभः ।
स वसिष्ठो ब्रह्मसुतस्तव स्वामी भविष्यति ।
तव तस्य च दाम्पत्यं पुरा धात्रैव निर्मितम् ।।६१।।

सावित्री बोली– बेटी! तुमने जिस सूर्य के समान तेजस्वी मुनि को देखा है, वही ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ तुम्हारे पति होंगे। पहले ही विधाता ने तुम्हारा तथा उनका दाम्पत्य जीवन निर्मित कर दिया है ॥ ६१ ॥

अतस्तव सतीभावो न हीनस्तस्य दर्शनात् ।
यद्वा तवाभूद्धृदयं सकामं तस्य दर्शनात् ।
न तद्दोषकरं पुत्रि मनोदुःखं ततस्त्यज ।।६२।।

अतः हे पुत्री ! यदि उन्हें देखते ही तुम्हारा हृदय सकाम हो गया तो भी तुम्हारा सतीभाव नष्ट नहीं हुआ। वह दोषकर नहीं है। इसलिए तुम मानसिक दुःख छोड़ दो ॥ ६२ ॥

त्वया परं तपः कृत्वा पूर्वजन्मनि शोभने ।
वृतः स एव दयितः सकामस्तेन स त्वयि ।। ६३।।

हे सुन्दरि ! तुमने पूर्व जन्म में परम तपस्या करके उन्हें ही पति के रूप में वरण किया था। इसीलिए वे तुम्हारे सकाम पति हुए ॥ ६३ ॥

शृणु पूर्वं त्वया वत्से वसिष्ठोऽयं वृतः पतिः ।
यथा तपः कृतं तत्र येन भावेन सन्ततम् ।।६४।।

हे वत्से ! पूर्व जन्म में तुमने वहाँ जिस भाव से निरन्तर तपस्या करके इन वसिष्ठ मुनि का पति रूप में वरण किया था, उसे सुनो ॥ ६४ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा सा च सावित्री यथा सन्ध्याभवत् पुरा ।
कृतं तपो यदर्थन्तु चन्द्रभागाह्वये गिरौ ।।६५।।
वसिष्ठेन तथा पूर्वं वर्णिरूपेण वेधसः ।
वचनादुपदिष्टा सा तपश्चर्यां दुरत्ययाम् ।।६६।।
यथा प्रसन्नो भगवान् विष्णुः प्रत्यक्षतां गतः ।
वरं यथा ददौ तस्यै मर्यादा स्थापिता यथा ।।६७।।
यथा वा वाञ्छितः स्वामी वसिष्ठः स तया मुनिः ।
मेधातिथेर्यथा यज्ञे वह्नौ त्यक्तं तया वपुः ।।६८।।
यथा तत्तनया जाता तस्यैतद्विस्तरात् तदा ।
सावित्री कथयामास क्रमाद् बहुलया सह ।।६९।।

मार्कण्डेय बोले– ऐसा कहकर सावित्री ने जिस प्रकार वह अरुन्धती पहले सन्ध्या हुई थी। जिसलिए उसने चन्द्र भाग नामक पर्वत पर तपस्या किया

था। जिस प्रकार ब्रह्मा के वचनानुसार ब्रह्मचारी रूपधारी वसिष्ठ द्वारा उपदिष्ट हो, उसने कठिन तपस्या की थी। जैसे भगवान विष्णु प्रसन्न हो प्रत्यक्ष हुए तथा उसे वर दिये थे। जिस प्रकार उनके द्वारा मर्यादा स्थापित की गई थी। या जिस प्रकार वे वसिष्ठ मुनि उसके द्वारा स्वामी के रूप में वांछित हुए थे तथा जिस प्रकार उसने मेधातिथि के यज्ञ में अग्नि में अपने शरीर का त्याग किया था। जिस प्रकार वह उनकी कन्या हुई, तब उसका यह वृत्तान्त क्रमशः विस्तार से बहुला के साथ सावित्री ने कह दिया॥ ६५-६९॥

अथ तस्याः वचः श्रुत्वा यदभूत् पूर्वजन्मनि ॥७०॥
तच्छ्रुत्वा वै तदा ज्ञातं मम सर्वं मनोगतम् ॥७१॥
इत्यतीवत्रपां प्राप्य सातीवाभूदधोमुखी ।
सावित्रीवचनाद्भूता पूर्वजन्मस्मरा च सा ॥७२॥

इसके बाद अपने पूर्वजन्म में जो हुआ था, उनके वचनों द्वारा सुनकर तथा इन्होंने मेरे मन की बात जान ली है, इससे उसने अत्यन्त लज्जा का अनुभव किया और वह बहुत अधिक नीचे मुखवाली हो गयी और वह सावित्री के वचनों के अनुसार पूर्व जन्म का स्मरण करने वाली हो गई॥ ७०-७२॥

तथैवाधोमुखी भूत्वा यद्वृत्तं पूर्वजन्मनि ।
तस्य सर्वस्य सस्मार दिव्यज्ञारुन्धती तदा ॥७३॥

तब उसी प्रकार नीचे मुख किए हुए दिव्य ज्ञानवाली अरुन्धती ने पूर्व जन्म में जो वृत्तान्त हुआ उसे भलीभाँति स्मरण किया॥ ७३॥

पूर्वं विष्णुप्रसादेन सा भूत्वा दिव्यदर्शिनी ।
अधुना बाल्यभावेन प्रच्छन्ना दिव्यदर्शना ॥७४॥

वह पहले ही विष्णु की कृपा से दिव्य-दर्शन वाली हो गई थी किन्तु बाल्य भाव से इस समय उसके दिव्य-दर्शन की शक्ति प्रच्छन्न हो गयी थी॥ ७४॥

सावित्रीवचनाच्छ्रुत्वा वृत्तान्तं पूर्वजन्मनः ।
प्रत्यक्षमिव तत् सर्वं पूर्वज्ञानमवाप सा ॥७५॥

सावित्री के मुख से पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनकर वह समस्त पूर्वज्ञान उसे प्रत्यक्ष की भाँति प्राप्त हुआ॥ ७५॥

अवाप्य पूर्वं ज्ञानं तद्यद्दत्तं विष्णुना पुरा ।
वसिष्ठोऽयं वृतः स्वामी मया वै पूर्वजन्मनि ॥७६॥

प्राचीनकाल में विष्णु ने जो उसे पूर्व ज्ञान दिया था, उसे प्राप्त कर उसने यह जान लिया कि उसने पहले ही वसिष्ठ को पूर्वजन्म में ही अपने स्वामी के रूप में वरण कर लिया था॥ ७६॥

इति ज्ञातवती देवी सामोदारुन्धती स्वयम् ।
वसिष्ठदर्शनोद्भूते पूर्वं तस्यास्तु हृच्छये ।।७७।।

यह जान लेने के बाद देवी अरुन्धती ने पूर्व में वसिष्ठदर्शन के कारण अपने मन में उत्पन्न हुए भावों के लिए आनन्द का अनुभव किया ।। ७७ ।।

यथातंकः समुत्पन्नः सतीत्वस्य निवारणे ।
तञ्च स्वयं सा तत्याज तदा मेधातिथेः सुता ।।७८।।

तब मेधातिथि की उस पुत्री ने उसके मन में सतीत्व के निवारण का जो भय पहले समा गया था उसे स्वयं ही छोड़ दिया ।। ७८ ।।

त्यक्तचिन्तां ततस्तान्तु विज्ञायारुंधती सतीम् ।
सावित्री सूर्यभवनं तया सार्धं जगाम ह ।।७९।।

तब सती अरुन्धती को चिन्ता मुक्त हुई जानकर, उसे साथ ले सावित्री, सूर्य के निवास स्थान को चली गईं ।। ७९ ।।

अरुन्धतीं निवेश्याथ सावित्रीं सूर्यमन्दिरे ।
जगाम ब्रह्मभवनं सर्वज्ञा सा सतीवरा ।।८०।।

तब सब कुछ जानने वाली, श्रेष्ठ सती सावित्री, अरुन्धती को सूर्य मन्दिर के निवास स्थान पर पहुँचाकर स्वयं ब्रह्मलोक को चली गईं ।। ८० ।।

अथ प्रणम्य ब्रह्माणं पृष्टा तेनैव तत्क्षणात् ।
इदं जगाद सावित्री ब्रह्माणममितौजसम् ।।८१।।

इसके बाद ब्रह्मा को प्रणाम कर, उनके द्वारा पूछे जाने पर तत्काल सावित्री ने अमित तेजस्वी ब्रह्मा से यह कहा— ।। ८१ ।।

।। सावित्र्युवाच ।।

भगवन् जगतां नाथ वसिष्ठं भवतः सुतम् ।
मानसस्य गिरेः सानौ ददर्शारुन्धती सती ।।८२।।

सावित्री बोली– हे भगवन्! हे संसार के स्वामी ! मानस पर्वत के शिखर पर सती अरुन्धती ने आपके पुत्र वसिष्ठ को देखा ।। ८२ ।।

तयोर्दर्शनमात्रेण ववृधे हृच्छयो महान् ।
परस्परं तौ स्पृहयाञ्चक्रतुश्च प्रजापते ।।८३।।

हे प्रजापति ! उन दोनों में एक दूसरे को देखने मात्र से ही महान काम वेग (राग) बढ़ने लगा। तथा उन दोनों ने आपस में एक दूसरे की अभिलाषा की ।। ८३ ।।

ततो धैर्यात्तु संस्तभ्य मनोजं तौ सुदुःखितौ ।
विमनस्कौ गतौ स्थानं लज्जितौ तौ स्वकं स्वकम् ।।८४।।

तब उन दोनों ने धैर्यपूर्वक अपने कामभाव को नियंत्रित किया तथा दुःखी, लज्जित एवं अनमनस्क होकर अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ ८४ ॥

एवम्प्रवृत्ते यद्योग्यं तदा त्वेतद्विधीयताम् ।
आयत्याञ्च सुरश्रेष्ठ लोकानां हितकाम्यया ॥८५॥

हे देवश्रेष्ठ ! ऐसा होने पर संसार के हित और आश्रय हेतु जो उचित हो, आप वही कीजिए ॥ ८५ ॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः ब्रह्मा सर्वजगद्गुरुः ।
ददर्श दिव्यज्ञानेन प्रवृत्तिं भाविकर्मणः ॥८६॥

मार्कण्डेय बोले– समस्त संसार के गुरु ब्रह्मा ने सावित्री के वचन को सुनकर अपने दिव्य ज्ञान से भविष्य में होने वाले कार्यों को देख लिया ॥ ८६ ॥

इदञ्च स्वागतं प्रोचे तदा लोकपितामहः ।
तयोर्दाम्पत्यभावस्य कालोऽयं समुपस्थितः ।
अतो लोकहितार्थाय यास्येऽहं तत्प्रवृत्तये ॥८७॥

तब लोक के पितामह ब्रह्मा ने अपने मन में ही कहा कि दोनों के दाम्पत्य भाव का यह समय आ गया है । अतः लोक-कल्याण के लिए मैं उसके प्रवृत्ति हेतु जाऊँगा ॥ ८७ ॥

इति निश्चत्य मनसा सावित्रीसहितो विधिः ।
जगाम मानसप्रस्थं यत्राभूद्दर्शनं तयोः ॥८८॥

ऐसा मन में निश्चय करके ब्रह्मा, सावित्री के सहित उस मानस शिखर पर गये जहाँ उन दोनों का आपस में दर्शन (देखा-देखी) हुआ था ॥ ८८ ॥

पितामहे तत्र याते शर्वः सुरगणैर्युतः ।
नन्दिभृंगिप्रभृतिभिः समायातो वृषध्वजः ॥८९॥

पितामह के वहाँ जाते ही देवताओं तथा नन्दि-भृंगी आदि गणों के सहित वृषभध्वज शर्व (शिव) स्वयं वहाँ आ पहुँचे ॥ ८९ ॥

भगवान् वासुदेवोऽपि ब्रह्मणा परिचिन्तितः ।
भक्त्या सोऽपि जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः ।
स्थितौ ब्रह्महरौ यत्र तत्रैव स्वयमागतः ॥९०॥

ब्रह्मा के द्वारा भक्तिपूर्वक स्मरण किये जाने पर जगत् के स्वामी भगवान वासुदेव भी शंख, चक्र, गदा धारण किये हुए वहाँ स्वयं आ गये जहाँ ब्रह्मा और शिव पहले से ही उपस्थित थे ॥ ९० ॥

अथ ते जगतां नाथाः ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
नारदं प्रेषयामासुर्दूतं मेधातिथिं प्रति ।।९१।।

इसके बाद उन संसार के स्वामियों ब्रह्मा, विष्ण, महेश ने नारद मुनि को अपना दूत बनाकर मेधातिथि मुनि के पास भेजा ॥ ९१ ॥

याहि द्रुतं नारद त्वं चन्द्रभागाह्वयं गिरिम् ।
मुनिस्तस्योपत्यकायामास्ते मेधातिथिः परः ।।९२।।

हे नारद ! तुम शीघ्र ही चन्द्रभाग नामक पर्वत पर जाओ । वहाँ मेधातिथि नामक एक श्रेष्ठ मुनि, उसकी घाटी में निवास करते हैं ॥ ९२ ॥

तमानय यथाकाममस्माकं वचनात् स्वयम् ।
मेधातिथिं समादाय भवानागच्छतु द्रुतम् ।।९३।।

आप उन मेधातिथि मुनि को हमारी कामना तथा अपने वचन के अनुसार लेकर शीघ्र यहाँ आओ ॥ ९३ ॥

ब्रह्मादीनां वचः श्रुत्वा नारदोऽपि द्रुतं ययौ ।
मेधातिथिं समानेतुं महाकार्यस्य सिद्धये ।।९४।।

ब्रह्मादि के वचनों को सुनकर, उस महान कार्य की सिद्धि के लिए तथा मेधातिथि मुनि को लाने हेतु, नारद भी शीघ्रता से गये ॥ ९४ ॥

मेधातिथिं समादाय ययौ मानसपर्वतम् ।।९५।।

तब वे देवताओं के कथन को मेधातिथि को सुनाकर, उन्हें साथ लेकर मानस पर्वत पर चले गये ॥ ९५ ॥

सेन्द्रा देवगणाः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ।
साध्या विद्याधरा यक्षा गन्धर्वाश्च समागताः ।।९६।।

इन्द्र के सहित देवगण, सभी तपस्वी मुनिगण, साध्य, विद्याधर, यक्ष और गन्धर्व वहाँ आ गये ॥ ९६ ॥

देवाश्च सर्वे देव्यश्च ये देवानुचरास्तथा ।
ते सर्वे मानसप्रस्थं याताश्चान्ये च जन्तवः ।।९७।।

सभी देवता, देवियाँ तथा उनके जो अनुचर थे वे सब और अन्य प्राणी भी मानस पर्वत के शिखर पर पहुँचे ॥ ९७ ॥

अथ भूते समाजे तु देवानां कमलासनः ।
मेधातिथिं मुनिं वाक्यमिदमाहातिदेशयन् ।।९८।।

इस प्रकार के देव सम्मेलन के बाद, कमलासन ब्रह्मा ने आदेश-सा देते हुए मेधातिथि मुनि से यह वचन कहा— ॥९८ ॥

।। ब्रह्मोवाच ।।

मेधातिथे वसिष्ठाय पुत्रीं ते चरितव्रताम् ।
देहि ब्राह्मेण विधिना समाजे त्रिदिवौकसाम् ।।९९।।

ब्रह्मा बोले–हे मेधातिथि ! तुम अपनी चरितव्रता पुत्री को महर्षि वसिष्ठ के लिए देवताओं के इस समाज में ही ब्रह्म-विवाह विधि से प्रदान करो ॥ ९९ ॥

बधूवरत्वमनयोः पूर्वं सृष्टं मयैव हि ।
हरिणा चाप्यनुज्ञातं कर्म चैतत् समञ्जसम् ।।१००।।

इनके वर-वधू होने का विधान मैंने पहले से ही कर दिया था। इस समञ्जन कर्म हेतु विष्णु की भी आज्ञा ले ली गई है ॥ १०० ॥

एवं कृते तव कुले भविष्यति महद्यशः ।
हितं च सर्वभूतानां देहि त्वं मा चिरं कृथाः ।।१०१।।

ऐसा करने से तुम्हारे कुल में महान कीर्ति होगी तथा सभी प्राणियों का कल्याण होगा। इसलिए तुम शीघ्र ही अपनी कन्या का दान करो। विलम्ब मत करो ॥ १०१ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततो ब्रह्मवचः श्रुत्वा ह्यतिप्रमोदितो मुनिः ।
एवमस्त्विति चोवाच नत्वा तान् सुरपुङ्गवान् ।।१०२।।

मार्कण्डेय बोले– तब ब्रह्मा के कथन को सुनकर मेधातिथि मुनि अत्यन्त प्रमुदित हुए तथा उन देवगणों को प्रणाम कर उन्होंने ऐसा ही होवे, ऐसा कहा ॥ १०२ ॥

एषां तु वचनात् पुत्रीमादायारुन्धतीं मुनिः ।
ध्यानस्थस्य वसिष्ठस्य देवैः सह जगाम ह ।।१०३।।

उन देवताओं के वचनों के अनुसार वे अपनी पुत्री अरुन्धती को लेकर जहाँ वसिष्ठ मुनि ध्यानस्थ थे, देवताओं के साथ वहाँ गये ॥ १०३ ॥

गत्वा वसिष्ठनिकटं देवैः परिवृतो मुनिः ।
ब्राह्मश्रिया दीप्यमानं ज्वलन्तमिव पावकम् ।।१०४।।
धर्मार्थकाममोक्षेषु धृतबुद्धिं पृथक् पृथक् ।
ददर्श मुनिमासीनं मानसाचलकन्दरे ।
वसिष्ठमोजस्विवरं बालसूर्यमिवोदितम् ।।१०५।।

देवताओं से घिरे हुए मुनिवर मेधातिथि ने वसिष्ठ मुनि के निकट जाकर ब्रह्मश्री से चमकते, अग्नि के समान प्रज्ज्वलित, अलग-अलग धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पुरुषार्थों में बुद्धि रखने वाले उन मुनि को मानस पर्वत की कन्दरा में बैठे हुए देखा ॥ १०४-१०५ ॥

अथ पुत्रीमग्रगतां कृत्वा मेधातिथिर्मुनिः ।
वसिष्ठं नियतात्मानमुवाचारुन्धतीपिता ।।१०६।।

इसके बाद पुत्री को आगे कर अरुन्धती के पिता मेधातिथि मुनि ने ओजस्वियों में श्रेष्ठ, बालसूर्य के समान उदीयमान नियतात्मा वसिष्ठ मुनि से कहा— ॥ १०६ ॥

।। ऋषिरुवाच ।।

भगवन् ब्रह्मणः पुत्र पुत्रीं मे चरितव्रताम् ।
दत्तां प्रतिगृहाणैनां मया ब्राह्मेण धर्मतः ।।१०७।।

ऋषि (मेधातिथि) बोले– हे ब्रह्मा के पुत्र ! मेरे द्वारा ब्राह्मविधि से प्रदान की जाती हुई, मेरी इस पुत्री को स्वीकार कीजिये ॥ १०७ ॥

यत्र यत्राश्रमे ब्रह्मन् स्वेच्छया निवसिष्यसि ।
त्वद्भक्त्येषा भवित्री च च्छायेवानुगता तव ।।१०८।।

हे ब्रह्मन् ! आप स्वेच्छा से जहाँ-जहाँ आश्रम बनाकर निवास करेंगे यह आपकी भक्ति के कारण छाया के समान आपका अनुगमन करनेवाली होगी ॥ १०८ ॥

तत्र तत्रैव मे पुत्री समानव्रतधारिणी ।
पतिव्रता वरारोहा शुश्रूषां ते करिष्यति ।।१०९।।

वहीं वहीं आपके समान नियमों को पालन करने वाली, पतिव्रताओं में श्रेष्ठ, मेरी यह पुत्री आपकी सेवा करेगी ॥१०९ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति श्रुत्वा वसिष्ठस्तु मुनेर्मेधातिथेर्वचः ।
दृष्ट्वा समागतान् देवान् ब्रह्मविष्णुशिवादिकान् ।
अवश्यमेतद्भावीति निश्चित्य दिव्यचक्षुषा ।।११०।।

मार्कण्डेय बोले– मेधातिथि के वचन को सुनकर तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओं को आया हुआ देखकर, वसिष्ठ ने दिव्य दृष्टि से यह निश्चय किया कि यह अवश्यम्भावी ही है ॥ ११० ॥

ब्रह्मणः सम्मते पुत्रीं तदा मेधातिथेर्मुनेः ।
वसिष्ठः प्रतिजग्राह वाढमित्युक्तवांश्च ह ।।१११।।

तब वसिष्ठ ने ठीक है ऐसा कहकर, ब्रह्मा की सम्मति से मेधातिथि मुनि की पुत्री का प्रतिग्रह कर लिया ॥ १११ ॥

गृहीतपाणिः सा देवी वसिष्ठेन महात्मना ।
पत्युः पादयुगे चक्षुर्युगं न्यस्तवती सती ।।११२।।

उस सती देवी अरुन्धती ने महात्मा वसिष्ठ द्वारा अपना पाणिग्रहण किये जाने के बाद पति के दोनों चरणों में ही अपने नेत्रों को लगा दिया ॥ ११२ ॥

ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चान्ये तथामराः ।
विवाहविधिना तौ तु मोदयाञ्चक्रुरुत्सवैः ।।११३।।

तब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा अन्य देवगण, उन दोनों के विधिवत विवाह पर प्रसन्नता के कारण उत्सव मनाने लगे ॥ ११३ ॥

सावित्री प्रमुखा देव्यो देवाश्चेन्द्रादयस्तथा ।
दक्षाद्याः कश्यपाद्यास्तु मुनयोऽतितपोधनाः ॥११४॥
उन्मुच्य ब्रह्मवचनाद्वल्कलञ्चाजिनं जटाः ।
मन्दाकिनीजलेनाशु स्नापयित्वा सुतं विधेः ॥११५॥
जाम्बुनदैस्तथा दिव्यैर्भूषणैश्च मनोहरैः ।
वसिष्ठं भूषयांचक्रुस्तथैवारुन्धतीं सतीम् ॥११६॥

तब सावित्री आदि प्रमुख देवियों, इन्द्रादि देवगण, दक्षादि तथा कश्यपादि अत्यधिक तपस्वी मुनिगणों ने ब्रह्मा के कथनानुसार ब्रह्मा के पुत्र महर्षि वसिष्ठ के वल्कल, मृगचर्म तथा जटाओं को खोलकर शीघ्र ही उन्हें मन्दाकिनी के जल से स्नान कराया और जम्बुनद के स्वर्ण निर्मित दिव्य और सुन्दर आभूषणों से वसिष्ठ को विभूषित किया। उसी प्रकार सती अरुन्धती के साथ भी किया गया ॥ ११४-११६ ॥

भूषयित्वाथ तौ तत्र समाप्य मुनिभिर्विधिम् ।
विवाहावभृथंचक्रुस्तयोर्विधि - हरीश्वराः ॥११७॥

इसके बाद उन दोनों को सजाने के पश्चात् मुनियों द्वारा विवाह की विधि सम्पन्न की गई तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश ने विवाह में उनका अवभृथ स्नान कराया ॥ ११७ ॥

निधाय सर्वतीर्थानां तोयं जाम्बुनदे घटे ।
आशीर्वादकरैर्मन्त्रैर्गायत्र्या द्रुपदादिभिः ॥११८॥
स्वयं तौ स्नापयाञ्चक्रुर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
ततो महर्षयश्चान्ये तथा देवर्षयश्च ये ॥११९॥

इस हेतु सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव ने जम्बुनद से बने घट में रखे सभी तीर्थों के जल से, गायत्री-द्रुपदादि छन्दों के मन्त्रों का पाठ करते हुए आशीर्वादयुक्त हाथों से उन दोनों को स्वयं स्नान कराया। तब जो अन्य देवता या महर्षि वहाँ उपस्थित थे उन लोगों ने भी स्नान कराया ॥ ११८-११९ ॥

ते सर्वे ऋग्यजुःसामवेदभागैर्महास्वरैः ।
गङ्गादि सरितां तोयैश्चक्रुः शान्तिं तयोर्मुहुः ॥१२०॥

पुनः उन सबने ऋग्, यजुः तथा सामवेद के अंशों के उच्च स्वर से किये गये पाठ द्वारा तथा गङ्गादि नदियों के जल से उनका शान्तिपूजन किया ॥ १२० ॥

भुवनत्रयसञ्चारि विमानं सूर्यवर्चसम् ।
अव्याहतगतिं ब्रह्मा सतोयञ्च कमण्डलुम् ॥१२१॥

ब्रह्मा ने उन दोनों को तीनों लोकों में निर्बाध रूप से संचरण करने वाला, सूर्य के समान तेजस्वी एक विमान तथा दिव्य जल से युक्त एक कमण्डल प्रदान किया ॥ १२१ ॥

ताभ्यां दायं ददौ विष्णुर्दुप्रापं स्थानमुत्तमम् ।
यदूर्ध्वसर्वदेवानां मरीच्यादेः समीपतः ।
सप्तकल्पान्तजीवित्वं रुद्रः प्रादात्तयोर्वरम् ॥१२२॥

उन दोनों के लिए विष्णु ने दहेज रूप में सभी देवों के ऊपर मरीचि आदि ऋषियों के समीप स्थित, कठिनाई से प्राप्त होने वाला, उत्तम स्थान, सप्तर्षिलोक प्रदान किया तथा रुद्र ने उन दोनों को सात कल्पों (३०२४००००००० मानव वर्षों तक) जीवित होने का वर दिया ॥ १२२ ॥

अदितिः कुण्डलयुगं ब्रह्मणा निर्मितं स्वकम् ।
ददौ स्वकर्णादाकृष्य पुत्र्यै मेधातिथेस्तदा ॥१२३॥

उस समय अदिति ने ब्रह्मा द्वारा बनाये हुए दोनों कुण्डलों को अपने कानों से उतारकर स्वयं मेधातिथि की पुत्री अरुन्धती को दिया ॥ १२३ ॥

पतिव्रतात्वं सावित्री बहुला बहुपुत्रताम् ।
देवेन्द्रो बहुरत्नानि धनेशेन समं ददौ ॥१२४॥

सावित्री ने पातिव्रत्य, बहुला ने बहुत से पुत्र प्राप्ति की क्षमता, देवराज इन्द्र ने कुबेर के समान बहुत से रत्न प्रदान किया ॥ १२४ ॥

एवं देवाश्च मुनयो देव्यश्चान्ये च ये स्थिताः ।
ददुस्तत्र यथायोग्यं दायं ताभ्यां पृथक् पृथक् ॥१२५॥

इसी प्रकार वहाँ उपस्थित देवताओं, देवियों, मुनियों तथा अन्यों ने भी उन दोनों को अलग-अलग यथा योग्य दहेज दिये ॥ १२५ ॥

एवं विवाह्य विधिवत् सौवर्णे मानसाचले ।
अरुन्धतीं वसिष्ठस्तु मोदमाप तया सह ॥१२६॥

इस प्रकार उस स्वर्णिम मानस पर्वत पर अरुन्धती से विधिपूर्वक विवाह कर वसिष्ठ ने उसके साथ आनन्द प्राप्त किया ॥ १२६ ॥

तत्र यत् पतितं तोयं मानसाचलकन्दरे ।
विवाहावभृथार्थाय शान्तये च सुराहृतम् ॥१२७॥
ब्रह्मविष्णुमहादेवपाणिभिः समुदीरितम् ।
तत्तोयं सप्तधा भूत्वा पतितं मानसाचलात् ।
हिमाद्रेः कन्दरे सानौ सरस्याञ्च पृथक् पृथक् ॥१२८॥

वहाँ विवाह के अवभृथस्नान तथा शान्ति हेतु देवताओं द्वारा लाया गया और ब्रह्मा, विष्णु एवं महादेव के हाथों से छोड़ा हुआ जो जल, मानस पर्वत की कन्दरा

में गिरा, वह सात भागों में बँटकर, मानस पर्वत से नीचे की ओर हिमालय की कन्दरा, चोटियों पर तथा सरोवरों में अलग-अलग बहा ॥ १२७-१२८ ॥

तत्तोयं पतितं शिप्रे देवभोग्ये सरोवरे ।
तेन शिप्रानदीजाता विष्णुना प्रेरिता क्षितौ ॥ १२९ ॥

वही जल देवताओं के भोगयोग्य शिप्र सरोवर में गिरा तो उससे विष्णु की प्रेरणावश पृथ्वी पर शिप्रा नदी उत्पन्न हो गयी ॥ १२९ ॥

महाकौषी प्रपाते तु यद्वारि पतितं तु वै ।
कौषिकी नाम सा जाता विश्वामित्रावतारिता ॥ १३० ॥

विश्वामित्र ऋषि द्वारा अवतरण कराने से जो जल महाकौषी प्रपात पर गिरा उससे कौषिकी नाम्नी नदी उत्पन्न हो गयी ॥ १३० ॥

उमा क्षेत्रे यत् पतितं तोयं तेन महानदी ॥ १३१ ॥
कावेरी नाम सा जाता महाकालसरः सृता ।
महाकाले सरःश्रेष्ठे पतितं तज्जलं गिरेः ॥ १३२ ॥

उमा क्षेत्र में जो जल गिरा उससे महाकाल सरोवर से निकली हुई कावेरी नामक महानदी उत्पन्न हुई । यह उस पर्वत पर स्थित महाकाल नाम के श्रेष्ठ सरोवर के गिरे जल से निकली हुई थी ॥ १३१-१३२ ॥

हिमाद्रेः पार्श्वभागे तु दक्षिणे शंभुसन्निधौ ।
गोमती नाम तैर्जाता नदी गोमदुदीरिता ॥ १३३ ॥

हिमालय पर्वत के दाहिने बगल में शिव के समीप जो जल गोमद ऋषि की प्रेरणा से गिरा उसी से गोमती नदी का प्रादुर्भाव हुआ ॥ १३३ ॥

मैनाको नाम यः पुत्रः शैलराजस्य तत्समः ।
तस्मिन् सानौ समुत्पन्नो मेनकोदरतः पुरा ॥ १३४ ॥
यत्तत्र पतितं तोयं तेन जाता महानदी ।
देविकाख्या महादेवप्रेरितो सागरं प्रति ॥ १३५ ॥

प्राचीन काल में मेनका के गर्भ से जो शैलराज हिमालय का उन्हीं के समान श्रेष्ठ मैनाक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था, उसकी चोटी पर जो जल गिरा वही देविका नामक महानदी होकर महादेव की प्रेरणा से समुद्र की ओर बह चला ॥ १३४-१३५ ॥

यत्तोयं सङ्गतं दर्यां हंसावतारसन्निधौ ।
तेनाभूत् सरयूर्नाम्ना नदी पुण्यतमा स्मृता ॥ १३६ ॥

जो जल हंसावतार के पास कन्दरा में गिरा उससे सरयू नाम से स्मरण की जाने वाली पवित्र नदी उत्पन्न हुई ॥ १३६ ॥

यान्यम्भांसि महापार्श्वे खाण्डवारण्यसन्निधौ ।
हिमवत्कन्दरे याम्ये इराया ह्रदमध्यतः ।
इरावती नाम नदी तैर्जाता च सरिद्वरा ।।१३७।।

जो जल राशि खाण्डववन के निकट हिमालय के दक्षिणी विशाल भाग में स्थित इरा नामक विशाल सरोवर में गिरी उससे इरावती नामक श्रेष्ठ नदी उत्पन्न हुई ।। १३७ ।।

एताः सर्वाः स्नानपानसेवनैर्जाह्नवी यथा ।
फलं ददति मर्त्यानां दक्षिणोदधिगाः सदा ।।१३८ ।।

ये सभी नदियाँ प्राणियों को नहाने, पीने और सेवन करने पर गंगा के समान फल देती हैं तथा सदैव दक्षिण सागर में गिरती हैं ।। १३८ ।।

धर्मार्थकाममोक्षाणां बीजभूताः सनातनाः ।
महानद्यस्तु सप्तैताः सर्वदा देवभोगदाः ।।१३९।।

ये सात महानदियाँ, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चार पुरुषार्थों को निरन्तर उत्पन्न करने वाली तथा सदैव देव तुल्य भोग प्रदान करने वाली हैं ।। १३९।।

एवं नद्यः सप्तजाताः सदापुण्यतमोदकाः ।
अरुन्धत्या वसिष्ठस्य विवाहे देवसन्निधौ ।।१४०।।

इस प्रकार देवताओं के सानिध्य में हुये अरुन्धती और वसिष्ठ के विवाह के अवसर पर सदैव पवित्र जल वाली सात नदियाँ उत्पन्न हुईं ।। १४० ।।

एवं विवाह्य स तदा वसिष्ठस्तामरुन्धतीम् ।
देवैर्दत्तं तदा स्थानं विमानेन जगाम ह ।।१४१।।

तब वसिष्ठ मुनि इस प्रकार अरुन्धती के साथ विवाह कर, विमान से देवताओं द्वारा प्रदत्त स्थान को चले गये ।। १४१ ।।

ब्रह्म - विष्णु - महेशानां वचनान्मुनिसत्तमः ।
हिताय सर्वजगतां त्रिषुलोकेषु सर्वदा ।।१४२।।
यस्मिन् यस्मिन् युगे यादृक् स्त्रीणां भवति तादृशम् ।।१४३।।
वेशं भावं शरीरं च कृत्वा धर्मे नियोजनम् ।
विचरत्येष लोकांस्त्रीनप्रमत्तः प्रसन्नधीः ।।१४४।।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव के वचनों के अनुसार वे मुनि श्रेष्ठ सदैव तीनों लोकों में प्राणियों के कल्याण के लिए जिस-जिस युग में स्त्रियों को धर्म में नियोजन हेतु जिस प्रकार के वेश, भाव या शरीर की आवश्यकता होती है वैसा ही धारण कर अप्रमत्त (सावधान) तथा प्रसन्न बुद्धि वसिष्ठ मुनि तीनों लोकों में विचरते हैं।।१४२-१४४ ।।

एवं पुरा वसिष्ठेन परिणीतात्वरुन्धती ।।१४५।।
सा हितार्थाय जगतां देवानां वचनात् पुरा ।।१४६।।

इस प्रकार प्राचीन काल में देवताओं द्वारा पूर्व में निर्दिष्ट वचनों के आधार पर संसार के कल्याण के लिए वह अरुन्धती, वसिष्ठ से व्याही गयी ।। १४५-१४६ ।।

य इदं शृणुयान्नित्यमाख्यानं धर्मसाधनम् ।
सर्वकल्याणसंयुक्तं चिरायुर्वित्तवान् भवेत् ।।१४७।।

जो इस धर्म के साधन रूप आख्यान को नित्य सुनेगा वह सब प्रकार के कल्याण से युक्त, चिरायु एवं धनवान होगा ।। १४७ ।।

या स्त्री शृणोति सततमरुन्धत्याः कथामिमाम् ।
पतिव्रता सा भूत्वेह परत्र स्वर्गमाप्नुयात् ।।१४८।।

जो स्त्री अरुन्धती की इस कथा को निरन्तर सुनेगी, वह इस लोक में पतिव्रता होगी तथा परलोक में स्वर्ग प्राप्त करेगी ।। १४८ ।।

इदं परं स्वस्त्ययनमिदं धर्मप्रदं परम् ।
आख्यानं सर्वदा कीर्तिर्यशःपुण्यविवर्धनम् ।।१४९।।

यह आख्यान परम कल्याणकारक, परम धर्म को देने वाला, कीर्ति, यश तथा पुण्य को बढ़ाने वाला है ।। १४९ ।।

विवाहे पुंसि यात्रायां यः श्राद्धे श्रावयेत्तथा ।
स्थैर्यं पुंसवनं सिद्धिः पितृप्रीतिश्च जायते ।।१५०।।

जो विवाह, पुंस्वन, यात्रा तथा श्राद्ध में इसे सुनायेगा तो क्रमशः स्थायित्व, पुंसवन (पुत्रत्व), सिद्धि तथा पितरों की प्रसन्नता (विवाह में स्थायित्व, पुंसवन में संतान का पुरुषत्व, यात्रा में सिद्धि सफलता, श्राद्ध में पितरों की प्रसन्नता) प्राप्त होगी ।। १५० ।।

इति वः कथितं सर्वं वसिष्ठस्य महात्मनः ।
अरुन्धती यथाभूता भार्या वापि पतिव्रता ।।१५१।।
यस्य वा तनया जाता यथोत्पन्ना च यत्र च ।
यथा ब्रह्महरीशानां वचनात् स वृतः पतिः ।।१५२।।

इस प्रकार महात्मा वसिष्ठ एवं देवी अरुन्धती के विषय में, जिसकी वे पुत्री हुईं, जिस प्रकार और जहाँ वे उत्पन्न हुईं तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के वचनानुसार वसिष्ठ उनके पति के रूप में चुने गये, वह सब मैंने आप लोगों से कह दिया है ।।१५१-१५२ ।।

एतत् वः सर्वमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं परम् ।
पुण्यदं पापहरणमायुरारोग्यवर्धनम् ।।१५३।।

यह सब आप लोगों से कहा गया जो अत्यधिक गुप्त से गुप्त, पुण्यदायक, पाप हरने वाला, आयु और आरोग्य बढ़ाने वाला है ॥ १५३ ॥

इति विपुलवृषौघक्षेमकारीतिहासं
सदसि सकृदपीह श्रावयेद्यो द्विजानाम् ।
स भवति कलुषौघैर्हीनदेहः समेतो
मुनिवरसहचर्या प्रेत्य गीर्वाण एव ।।१५४।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे वसिष्ठारुन्धतीविवाहो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

इस विपुल पुण्य के समूह तथा कल्याणकारी इतिहास को सभा में एक बार भी जो द्विजों को सुनायेगा वह पाप से हीन हो इस लोक में मुनिवरों का साहचर्य प्राप्त करेगा तथा परलोक में स्वर्ग को ही प्राप्त करेगा ॥ १५४ ॥

॥ श्रीकालिकापुराण में वसिष्ठअरुन्धतीविवाह नामक तेईसवाँ अध्याय सम्पन्न हुआ ॥ २३ ॥



चतुर्विंशोऽध्यायः

संहारकथनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततो हिमवतः प्रस्थे गिरेः शिप्रसरस्तटे ।
उपविष्टो महादेवस्तत्सरोऽपश्यदन्तिके ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– तब हिमालय पर्वत के शिखर पर शिप्रसरोवर के किनारे बैठे हुए महादेव ने उस सरोवर को निकट से देखा ॥ १ ॥

पुनः पुनः प्रेष्यमाणो ब्रह्मणा हरिणा च सः ।
ध्यानं कर्तुं तत्र मनः स्थिरं कृत्वा दृढात्मवान् ।।२।।

बार-बार ब्रह्मा और विष्णु द्वारा प्रेरित किये जाने पर उन दृढ़ आत्मा वाले शिव ने वहीं ध्यान करने के लिए अपना मन स्थिर किया ॥ २ ॥

आत्मानमात्मना द्रष्टुमात्मन्येव विशेषतः ।
परमं यत्नमकरोद् ध्यानेन स्मरशासनः ।।३।।

कामदेव को दण्डित करने वाले भगवान शिव ने ध्यान-मार्ग द्वारा अपने में ही अपने द्वारा अपने को विशेष रूप से देखने के लिए अत्यधिक प्रयत्न किया ॥ ३ ॥

ध्याने प्रविष्टचित्तन्तु तं दृष्ट्वा द्रुहिणादयः ।
हरे प्रविष्टां मायाख्यां तुष्टुवुर्यतमानसाः ।।४।।

उनको ध्यान में अपने चित्त को प्रविष्ट किये अर्थात् ध्यानस्थ देखकर, नियन्त्रित मन वाले ब्रह्मादि देवताओं ने शिव में प्रविष्ट माया नामक शक्ति की स्तुति करना आरम्भ किया ॥ ४ ॥

मायया मोहितो भर्गः सतीशोकाकुलो भृशम् ।
विलपत्येव तां तस्मिन् मोहहेतुं जगत्प्रसूम् ।।५।।
स्तुत्वा शम्भुशरीरात्तु निःसार्यैनां निराकुलम् ।
शम्भुचित्तं करिष्यामो ध्यानासक्तं निरञ्जनम् ।।६।।

जिस माया से मोहित होने ही के कारण शिव सती के शोक में बहुत अधिक व्याकुल हो विलाप कर रहे हैं। उनमें स्थित, जगत् को उत्पन्न करने वाले (शिव) के भी मोह के कारणभूत उस स्थिर माया की स्तुति कर उसे,

शिव के शरीर से निकाल कर, ध्यान में स्थित, निरञ्जन शम्भु के चित्त को हम व्याकुलता से रहित करेंगे ॥ ५-६ ॥

यावत् सती पुनर्देहं गृहीत्वा हरभामिनी ।
भवित्री तावदेवेष विशोको ध्यातु निष्कलम् ॥७॥

जब तक सती पुनः शरीर धारण कर शिव की पत्नी होवेंगी तब तक ये शोकरहित हो इसी प्रकार अव्यक्त तत्त्व का ध्यान करते रहें ॥ ७ ॥

इति संचित्य मनसा ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ।
योगनिद्रां महामायां स्तोतुमेवं समारभन् ॥८॥

ब्रह्मा आदि देवताओं ने मन में ऐसा सोचकर महामाया योगनिद्रा की इस प्रकार से स्तुति करना प्रारम्भ किया॥ ८ ॥

अन्तर्मायास्तुतिः

॥ देवा ऊचुः ॥

श्रीशक्तिं पावनीं तान्तु पुष्टिं परमनिष्कलाम् ।
वयं स्तुमो महाभक्त्या महदव्यक्तरूपिणीम् ॥९॥
शिवां शिवकरीं शुद्धां स्थूलां सूक्ष्मां परावराम् ।
अन्तर्विद्यामविद्याख्यां प्रीतिमेकाग्रयोगिनीम् ॥१०॥

देवगण बोले– हम सब अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करते हैं, जो श्रीशक्ति, सबको पवित्र करने वाली, पुष्टि स्वरूपा, परम अव्यक्तरूपा, महान और अव्यक्त तत्त्वों के स्वरूप वाली, शिव की परमशक्ति, कल्याण करने वाली, शुद्ध, स्थूल, सूक्ष्म, श्रेष्ठ और सामान्य, अन्तर्विद्या और अविद्या नामवाली एकाग्र भाव से प्रेमयोगिनी हैं ॥ ९-१० ॥

त्वं मेधा त्वं धृतिस्त्वं ह्रीस्त्वमेका सर्वगोचरा ।
त्वं दीधितिः सूर्यगता सुप्रपञ्चप्रकाशिनी ॥११॥

आप बुद्धि, धृति तथा ह्री (लज्जा) हो । आप एक, सभी को दिखाई देने वाली हो । आप सूर्य में स्थित प्रकाश की किरण हो जिससे प्रपञ्च का सुन्दर प्रकाशन होता है ॥ ११ ॥

या तु ब्रह्माण्डसंस्थानं जगद्बीजेषु या जगत् ।
आप्ययति ब्रह्मादीन्स्तम्बान्तान् या त्वमापगा ॥१२॥

जो ब्रह्माण्ड का स्वरूप है, जो संसार के उत्पन्न करने वाले तत्त्वों में निहित संसार है । आप ऐसी नदी हो, जो ब्रह्मा से तृण पर्यन्त प्राणिमात्र को तृप्त करती है ॥ १२ ॥

य एकः सर्वजगतां प्राणभूतः सदागतिः ।
देवानाञ्च य आधारः स नभस्वांस्तवांशकः ॥१३॥

सदा गतिशील, सभी जीवों का एकमात्र प्राणरूप, देवताओं का आधार यह जो वायु है, वह भी आपका ही अंश है ॥ १३ ॥

एवं विसारि यत्तेजः सर्वत्रैव समिध्यते ।
तत्ते रूपं जगद्बीजं बहुधा यच्च दृश्यते ।।१४।।

इसी प्रकार यह जो प्रसरणशील तेज (अग्नि) तत्त्व सर्वत्र प्रज्ज्वलित हो उठता है तथा बहुधा संसार के उत्पत्ति के कारण रूप में दिखाई देता है, वह आपका ही रूप है ॥ १४ ॥

या ब्रह्मलोकपातालसान्तरालगता सदा ।
सा त्वं वियन्मध्यवहिर्ब्रह्माण्डस्य च सर्वतः ।।१५।।

जो ब्रह्मलोक से पाताल पर्यन्त, ब्रह्माण्ड के अन्दर और बाहर सदा सब ओर स्थित आकाश तत्त्व है, वह भी आप ही हो ॥ १५ ॥

अचलाचलचक्रेण यन्त्रिता या प्रपञ्चभूः ।
जगद्धात्री लोकमाता सा च त्वं माधवी क्षितिः ।।१६।।

अचल (पर्वतों) के समूह से नियन्त्रित की गई अचला, जगत्प्रपञ्च को जन्म देने वाली, जगत् का पालन करने वाली, लोक की माता, माधव की पत्नी (विष्णु पत्नी), जो पृथ्वी है, वह आप ही हो ॥ १६ ॥

त्वं बुद्धिस्त्वं तद्विषया त्वं माता च्छन्दसां गतिः ।
गायत्री त्वं वेदमाता त्वं सावित्री सरस्वती ।।१७।।

आप बुद्धि हो तथा उसका विषय भी आप ही हो, आप छन्दों की माता, गति हो, आप वेदमाता गायत्री हो, सावित्री और सरस्वती भी आप ही हो ॥ १७ ॥

त्वं वार्ता सर्वजगतां त्वं त्रयी कामरूपिणी ।
त्वं हि निद्रास्वरूपेण प्राणिनो निर्जरादयः ।
ये स्वर्गाद्योकसः सर्वान् सुखयन्ती प्रमोहसि ।।१८।।

आप सम्पूर्ण जगत् की वृत्ति हो, आप इच्छानुसार रूप धारण करने वाली तीनों वेदों की समष्टि हो, आप स्वर्गादि में निवास करने वाले देवादि सभी प्राणियों को निद्रारूप से मोहित करती हो तथा सुख पहुँचाती हो ॥ १८ ॥

त्वं लक्ष्मीः पुण्यकर्त्रीणां पापिनां त्वं हि यातना ।
तथा नीतिभृतां श्रीश्च सुखदानैशिकी धृतिः ।।१९।।

आप पुण्य कर्त्ताओं के लिए लक्ष्मी हो तथा पापियों के लिए यातना भी आप ही हो। आप नीतिवानों के लिए श्री (शोभा) तथा सुखदान की सर्वोपरि साधन, धृति भी आप ही हो ॥ १९ ॥

त्वं शान्तिः सर्वजगतां त्वं कान्तिश्चन्द्रगोचरा ।
त्वं धात्री सर्वभूतानां लक्ष्मीस्त्वं विष्णुमोहिनी ।।२०।।

आप समस्त जगत् की शान्ति तथा चन्द्रमा में दिखायी देने वाली कान्ति हो, आप सभी प्राणियों की पालन कर्त्री और विष्णु को मोहनेवाली लक्ष्मी हो ॥ २० ॥

त्वं तत्त्वरूपा भूतानां पञ्चानामपि सारकृत् ।
त्वं त्रिलोकी महामाया त्वं नीतिर्मोहकारिणी ।।२१।।

आप पाँच महाभूतों की भी सारतत्त्व रूप हो, आप तीनों लोकों की महामाया और मोहित करने वाली नीति हो ॥ २१ ॥

संसारचक्रेष्वारोप्य सर्वभूतं महेश्वरः ।
भ्रामयन्नस्ति च यथा सा त्वं माया महेश्वरि ।।२२।।

हे महेश्वरी! महेश्वर जिसके द्वारा सभी प्राणियों को संसार चक्र में घुमाते हैं, आप वही महेश्वर की शक्ति, माया हो ॥ २२ ॥

जयन्ती जययुक्तानां ह्रीर्विद्या नीतिरुत्तमा ।
गीतिस्त्वं सामवेदस्य ग्रन्थिस्त्वं यजुषां हुतिः ।।२३।।

आप जयशालियों की जयन्ती शक्ति, ह्री, विद्या तथा उत्तमा नीति हो । आप सामवेद की गीति तथा यजुषों के आह्वान की ग्रन्थि हो ॥ २३ ॥

समस्तगीर्वाणगणस्य शक्ति-
स्तमोमयी सत्त्वगुणैकदृश्या ।
रजः प्रपञ्चानुभवैककारिणी
या न स्तुता भव्यकरीह सास्तु ।।२४।।

जो सात्त्विक दृष्टि से सभी देवगणों की तमोमयी शक्ति तथा रजो गुणों के कारण इस जगत्प्रपञ्च का एकमात्र अनुभव करने वाली हैं, वे हम लोगों के द्वारा स्तुति किये जाने पर इस लोक में हमारा कल्याण करने वाली हों ॥ २४ ॥

संसारसागरकरालतरङ्गदुःख-
निस्तारकारितरणिश्च्छितिरीतिहीना ।
याष्टाङ्गरूपपरपावनकेलिगीत-
विक्षेपकारिणी गिरौ प्रणनाम तां वै ।।२५।।

आप संसार सागर की कराल तरङ्गों के कारण उत्पन्न दुःख से उद्धार करने वाली, ज्ञानेन्द्रियों की रीति से रहित तरणी (नौका) हो । आप अष्टचक्रों की स्थिति पार कर पवित्र केलिगीत (कुण्डलिनी एवं सहस्त्रार के मिलन के अवसर पर उत्पन्न नाद) में विक्षेप करने वाली अनहद नाद रूपा परा वाणी हो, हम उस आपको प्रणाम करते हैं ॥ २५ ॥

नासाक्षिवक्त्रभुजवक्षसि मानसे च
धृत्वा सुखानि विदधाति सदैव जन्तोः ।
निद्रेति यातिसुभगा जगतीभवानां
सा नः प्रसीदतु धृतिस्मृतिवृत्तिरूपा ।।२६।।

जो नाक, आँख, मुख, भुजाओं, वक्षस्थल तथा मन में सुखों को धारण करके सदैव प्राणियों को धारण करती हैं। जो निद्रा इस नाम से संसार में उत्पन्न लोगों की सौन्दर्य प्राप्त कराती है वह धृति, स्मृति एवं वृत्ति रूपा देवी, हम पर प्रसन्न होवे ॥ २६ ॥

सृष्टिस्थित्यन्तरूपा या सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।
सृष्टिस्थित्यन्तशक्तिर्या सा माया नः प्रसीदतु ।।२७।।

सृष्टि, स्थिति और अन्तरूप वाली, सृष्टि, स्थिति, अन्त करने वाली जो सृष्टि, स्थिति और अन्त की शक्ति माया हैं वे हमलोगों पर प्रसन्न होवें ॥ २७ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

योगनिद्रा महामाया संस्तुतेयं तदा सुरैः ।
हरस्य हृदयात् क्षिप्रं निःससार तदाञ्जसा ।।२८।।

मार्कण्डेय बोले– देवताओं द्वारा उस समय इस प्रकार स्तुति किये जाने पर महामाया योगनिद्रा तुरन्त शिव के हृदय से तेजी से बाहर निकल गयीं ॥ २८ ॥

विनिःसृतायां तु तस्यां विवेश मधुसूदनः ।
शम्भोरन्तः स्वयं तस्य शान्त्यर्थं विश्वरूपधृक् ।।२९।।

उस योगमाया के निकल जाने पर स्वयं विश्वरूपधारी, मधुसूदन, विष्णु ने उन (शिव) के अन्तःकरण में, उनकी शान्ति हेतु, स्वयं प्रवेश किया ॥ २९ ॥

प्रविश्य हृदयं तस्य कल्पे कल्पे यथाभवत् ।
सृष्टिः स्थितिस्तथैवान्तस्तथादर्शयदच्युतः ।।३०।।

भगवान विष्णु ने उनके हृदय में प्रवेश कर प्रत्येक कल्पों में जिस प्रकार सृष्टि- स्थिति एवं विनाश का क्रम चला था उसे दिखाया ॥ ३० ॥

यथा सती तस्य जाया भूता सा या च यत्सुता ।
तत् सर्वं दयामास मुक्तदेहा च सा यथा ।।३१।।

जिस प्रकार सती उनकी पत्नी बनीं थी, वे जो थीं, वे जिसकी पुत्री थीं, जैसे वे शरीर छोड़ी थीं वह सब उन्हें उन्होंने दिखा दिया ॥ ३१ ॥

वहिर्व्यक्तं तु निःसारं प्रपञ्चं रजसं बहु ।
दर्शयित्वा परं ज्योतिर्गतचित्तं तदाकरोत् ।।३२।।

इस प्रकार बाहर दिखने वाले रजोगुण की अधिकता से फैले प्रपञ्च को निःसार दिखाकर उनके चित्त को परमात्मा के दिव्यज्ञान से प्रकाशित कर दिया ॥ ३२ ॥

ततो हरोऽपि तान् सर्वान् प्रपञ्चान् वीक्ष्य चासकृत् ।
निःसारांश्च तदा मत्वा सारे चित्तं न्यवेशयत् ।।३३।।

तब शिव ने भी उन सभी प्रपञ्चों को बारम्बार देख कर, उन्हें निःसार मानकर, अपने चित्त को सारतत्त्व परमात्मा में लगाया ।। ३३ ।।

ब्रह्मादीनां तदा माया देवानां तैः परिष्टुता ।
प्रतिश्रुत्य च कर्तव्यं तत्रैवान्तर्दधे द्रुतम् ।।३४।।

तब माया भगवती भी उन ब्रह्मादि देवताओं द्वारा स्तुति किये जाने के बाद उन्हें कर्त्तव्य का वचन दे, शीघ्र ही वहीं अन्तर्धान हो गईं ।। ३४ ।

भगवानपि वैकुण्ठः शम्भोश्चित्तं पदे पदे ।
संयम्य निःसृतः कायाद्राजेव रविमण्डलात् ।।३५।।

भगवान विष्णु भी शिव के चित्त को पद-पद पर संयमित कर उनके शरीर से बाहर निकल कर, अपने मण्डल से बाहर निकले सूर्यदेव की भाँति सुशोभित हुये ।। ३५ ।।

कृतकृत्यास्तदा देवा ब्रह्मनारायणादयः ।
स्वं स्वं स्थानं ययुः प्रीतियुतास्त्यक्त्वा हरं गिरौ ।।३६।।

तब उस पर्वत पर शिव को छोड़कर तथा स्वयं कृतकृत्य हो ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता, प्रसन्नता पूर्वक अपने-अपने स्थानों को चले गये ।। ३६ ।

ध्यानासक्तं महादेवं प्रणम्येन्द्रादयः सुराः ।
विज्ञाप्य मौनिनं देवं जग्मुः स्थानं स्वकं स्वकम् ।।३७।।

ध्यान में आसक्त महादेव शिव को मौनी जानकर इन्द्रादि देवगण भी उन्हें प्रणाम कर अपने-अपने स्थानों को चले गये ।। ३७ ।।

यातेषु तेषु देवेषु कपर्दी वृषवाहनः ।
सहस्रं दिव्यमानेन दध्यौ ज्योतिः परं समाः ।।३८।।

उन देवताओं के चले जाने पर कपर्दी, वृषवाहन, शिव, देवताओं के मान से एक हजार (मानव मान से ३६००००) वर्षों तक परम ज्योति का ध्यान करते हुये तपस्यारत रहे ।। ३८ ।।

।। ऋषय ऊचुः ।।

कथं मधुरिपुः शम्भोः प्रविश्य हृदयेऽञ्जसा ।
कल्पे कल्पे स्थितिं सृष्टिं संयमञ्चाप्यदर्शयत् ।।३९।।

(यह सुनकर) ***ऋषिगण बोले–*** मधु नामक दैत्य के शत्रु विष्णु ने शीघ्रता से शिव के हृदय में कैसे प्रवेश कर उन्हें भिन्न-भिन्न कल्पों में होने वाले सृष्टि-स्थिति और संयम (नाश) के क्रम को दिखाया? ।। ३९ ।।

यथा जगत्प्रपञ्चाय रजसा जगतीं गताः ।
निःसारता कथं तेषां दर्शिता कैटभारिणा ।।४०।।

जगत् के प्रपञ्च हेतु पृथ्वी पर जो रजोगुण की गति है उसकी निःसारता को कैटभ नामक दैत्य के शत्रु विष्णु ने कैसे दिखाया? ।। ४० ।।

किन्नु सारतरं गुह्यं परं ज्योतिः सनातनम् ।
दर्शितं तेन तत् सत्यमाचक्ष्व द्विजसत्तम ।।४१।।

हे द्विजश्रेष्ठ ! सार से सार, अत्यन्त सारतत्त्व रूप, गोपनीय, निरन्तर, परम ज्योति स्वरूप, किस सत्य का उन विष्णु द्वारा दर्शन कराया गया? वह हमसे कहिये ।। ४१ ।।

श्रोतुमिच्छाम इति ते मुनीन्द्राद्भुतमुत्तमम् ।
विस्तरादिदमाख्याहि धर्मं निःश्रेयसं परम् ।।४२।।

मुनियों में इन्द्र के समान श्रेष्ठ मुनिजन के लिए आश्चर्यजनक तथा उत्तम, आप के द्वारा वर्णित इस रहस्य को हम सुनना चाहते हैं कृपया इस परम निःश्रेय प्रदान करने वाले धर्म (रहस्य) को विस्तारपूर्वक बताइयें ।। ४२ ।।

सृष्टिरचना वर्णन

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

आदिसर्गमहं वक्ष्ये वाराहं द्विजसत्तमाः ।
कल्पे कल्पे यथा सृष्टिर्वाराहे यादृशी भवेत् ।।४३।।

मार्कण्डेय बोले– हे द्विजसत्तमों ! विभिन्न वाराह कल्पों में जिस प्रकार की सृष्टि हुई है, मैं उस वाराह नामक आदि सर्ग का वर्णन करता हूँ ।। ४३ ।।

आदिसृष्टिं दर्शयित्वा प्रतिसर्गं तथा हरिः ।
शम्भवे दर्शयामास प्रलयादीन् निबोधत ।।४४।।

विष्णु भगवान ने शिव को प्रतिसर्ग प्रलय दिखाकर आदि सृष्टि दिखाया था इसलिए आप भी पहले प्रलय आदि को जानिये ।। ४४ ।

प्रलयं प्रथमं वक्ष्ये सर्गमादिं ततः परम् ।
प्रतिसर्गं ततो विप्रा वाराहं विनिबोधत ।।४५।।

हे विप्रगण ! मैं पहले प्रलय की कथा सुनाता हूँ, उसके बाद आदि सर्ग की तत्पश्चात् प्रतिसर्ग की वाराह कल्प सम्बन्धी कथा कहूँगा, आप सब उसे विशेष रूप से जान लीजिये[1] ।। ४५ ।।

१— सांख्य शास्त्रानुसार गुणों की साम्यावस्था तथा वेदान्तानुसार क्षेत्रज्ञ में क्षेत्र का अधिष्ठान ही प्रलय है। सृष्टि की इच्छा से संक्षोभ होने पर यह स्थिति बदल जाती है।

प्रलयकथन

निमेषो नाम कालांशो नेत्रोन्मेषविलक्षितः ।
तैरष्टादशभिः काष्ठा काष्ठानां त्रिंशता कला ।।४६।।

नेत्र के उन्मेष से आने-जाने वाले समय का भाग निमेष है । अठारह निमेषों की एक काष्ठा तथा तीस काष्ठाओं की एक कला होती है ॥ ४६ ॥

कलाभिस्तावतीभिस्तु क्षणाख्यं परिकीर्तितः ।
क्षणैर्द्वादशभिः प्रोक्तो मुहूर्तस्तैस्तु त्रिंशता ।।४७।।
मानुषः स्यादहोरात्रः पक्षस्ते दश पञ्च च ।
पक्षाभ्यां मानुषो मासः पितॄणां तदहर्निशम् ।।४८।।

उतनी ही (तीस) कलाओं को 'क्षण' कहा जाता है । बारह क्षणों को मुहूर्त तथा उन्हीं तीस मुहूर्तों से मनुष्यों का एक अहोरात्र (रात-दिन अर्थात् दिन) होता है । इन दिनों की पन्द्रह संख्या होने पर एक पक्ष होता है । मनुष्यों के दो पक्षों से एक मास होता है जो पितरों का एक रात दिन होता है ॥ ४७-४८ ॥

कृष्णपक्षः पितॄणां तु कर्मार्थं दिवसो मतः ।
स्वप्नार्थं शुक्लपक्षस्तु रजनी परिकीर्तिता ।।४९।।

पितरों के कर्म हेतु कृष्ण पक्ष दिन तथा सोने हेतु शुक्ल पक्ष रात्रि कही गयी है ॥ ४९ ॥

मासैर्द्वादशभिर्वर्षो देवानां तदहर्निशम् ।
देवानां तु दिनं प्रोक्तं षण्मासा उत्तरायणम् ।
रात्रिः स्वप्नाय देवानां षण्मासा दक्षिणायनम् ।। ५० ।।

मनुष्यों को बारह मासों का एक वर्ष होता है । यह देवताओं एक अहोरात्र है, जिसके उत्तरायण के छः मास देवताओं के दिन तथा दक्षिणायन के छः मास देवताओं के सोने हेतु रात्रि होते हैं ॥ ५० ॥

द्वाभ्यां द्वाभ्यान्तु मासाभ्यामर्कजाभ्यामृतुः स्मृतः ।
ऋतुभिश्चायनं प्रोक्तं त्रिभिस्तन्मानुषं मतम् ।।५१।।

दो-दो सूर्य सम्बन्धी सौरमासों की एक ऋतु बतायी गई है । मनुष्य के मान से इन तीन ऋतुओं का एक अयन होता है ॥ ५१ ॥

ऋतुभिर्वत्सरः षड्भिस्तांश्च शृणु पृथक् पृथक् ।
चैत्रादि-मासयुगलैः संज्ञाभेदाद् द्विजोत्तमाः ।।५२।।

हे द्विजोत्तमों ! उनके चैत्र आदि मासों के जोड़ों के अनुसार अलग-अलग नाम होते हैं । इस नाम भेद से छः ऋतुओं का एक वर्ष होता है । अब उनके विषय में आप लोग सुनें ॥ ५२ ॥

वसन्तश्चैत्रवैशाखो ग्रीष्मो ज्येष्ठः शुचिस्तथा ।
प्रावृट् नभोनभस्यौ तु शरत् स्यादिष-कार्तिके ।।५३।।
सहः पौषौ च हेमन्तः शिशिरो माघफाल्गुनौ ।
षडिमे ऋतवः प्रोक्ता यज्ञादौ विहिताः पृथक् ।। ५४।।

चैत्र-वैशाख-बसन्त, ज्येष्ठ-शुचि (आषाढ़) ग्रीष्म, नभ-नभस्य (श्रावण-भाद्रपद) प्रावृट् (वर्षा), ईष (आश्विन) तथा कार्तिक से शरद ऋतु होती है। सह (अगहन) तथा पौष से हेमन्त, माघ-फाल्गुन से शिशिर ये अलग-अलग छः ऋतुएँ यज्ञादि कार्यों के लिए निर्धारित की गयी हैं ।। ५३-५४ ।।

नृणां मानेन दशभिर्लक्षैः सप्तभिरुत्तरैः ।
अष्टाविंशतिसाहस्रैर्मानं कृतयुगस्य तु ।।५५।।

मनुष्यों के मान से सात अधिक दश अर्थात् सत्रह लाख, अट्ठाईस हजार वर्ष मान का कृतयुग (सतयुग) होता है ।। ५५ ।

सन्ध्या चतुःशतानीह वर्षाणामन्तरालतः ।
सन्ध्यांशस्तावता प्रोक्तस्तदन्तर्गत ईप्सितः ।।५६।।

अन्तराल में चार सौ वर्षों की सन्ध्या तथा उतने ही वर्षमान का सन्ध्यांश भी उसी के अन्तर्गत समाहित होता है ।। ५६ ।

त्रेता द्वादशभिर्लक्षैर्मानुषैर्वत्सरैर्भवेत् ।
षण्णवत्या सहस्रैश्च सन्ध्या चास्य शतत्रयम् ।
शतत्रयं तु सन्ध्यांशस्तदन्तः परिकीर्तितः ।।५७।।

इसी प्रकार १२ लाख ९६ हजार वर्षों का त्रेता युग होता है। इसकी ३०० वर्षों की सन्ध्या तथा अन्त में तीन सौ वर्षों का सन्ध्यांश कहा गया है ।। ५७ ।।

चतुःषष्टिसहस्राणि लक्ष्याण्यष्टौ प्रमाणतः ।।५८।।
भवेद्‌युगं द्वापराख्यं तेषु सन्ध्या शतद्वयम् ।
शतद्वयं तु सन्ध्यांशस्तदन्तर्गत इष्यते ।।५९।।

आठ लाख, चौंसठ हजार वर्ष के इसी मान से द्वापर नामक युग और उसमें दो सौ वर्षों की सन्ध्या, अन्त में दो सौ वर्षों का सन्ध्यांश भी अभीष्ट होता है ।। ५८-५९ ।।

द्वात्रिंशत्तु सहस्राणि चतुर्लक्षाणि वै कलेः ।।६०।।
संवत्सरैर्भवेन्मानं सन्ध्यैकं प्रोच्यते शतम् ।
वत्सराणामेकशतं सन्ध्यांशश्च तदन्तरे ।।६१।।

उसी मान से चार लाख बत्तीस हजार वर्षों का कलियुग का मान होता है, जिसकी एक सौ वर्ष की सन्ध्या तथा अन्त में एक सौ वर्ष का ही सन्ध्यांश होता है ।। ६०-६१ ।।

एवं कृतश्च त्रेता च द्वापरश्च तथा कलिः ।
मानुषेण प्रमाणेन भवेद् युगचतुष्टयम् ।।६२।।

इस प्रकार मनुष्य के मान से कृत, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग का एक चतुर्युग होता है ॥ ६२ ॥

त्रिचत्वारिंशता लक्षैर्मानञ्चातुर्युगं भवेत् ।
सहस्त्रैरपि विंशत्या सन्ध्या संध्यांशसंयुतम् ।।६३।।

सन्ध्या और सन्ध्यांश के सहित तिरालीस लाख बीस हजार वर्षमान का एक चतुर्युग होता है ॥ ६३ ॥

दैवं दिनं वत्सरेण मानुषेण सरात्रकम् ।
एवं क्रमं गणित्वा तु मानुषीयैश्चतुर्युगैः ।
दैवं द्वादशसाहस्त्रं वत्सराणां प्रकीर्तिम् ।।६४।।

रात के साथ देवताओं का दिन, मनुष्यों के एक वर्ष के समान होता है इसी क्रम से उपर्युक्त गणना मानवी मान के अनुसार एक चतुर्युग की है जो बारह हजार दैव वर्ष के तुल्य होती है ॥ ६४ ।

देवैर्द्वादशसाहस्त्रैर्वत्सरैर्दैविकं युगम् ।
तद्वै चतुर्युगं नृणां सन्ध्या सन्ध्यांशसंयुतम् ।।६५।।

देवताओं के बारह हजार वर्षों का एक दैवी युग (देव युग) होता है वही सन्ध्या और सन्ध्यांश के सहित मनुष्यों का एक चतुर्युग होता है ॥ ६५ ॥

देवानां तु कृते त्रेताद्वापरदिव्यवस्थया ।
न युगव्यवहारोऽस्ति न च धर्मादिभिन्नता ।।६६।।

देवताओं के लिए न तो कृतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलि आदि की व्यवस्था से युग व्यवस्था है और न तो धर्म सम्बन्धी भिन्नता ही है ॥ ६६ ॥

किन्तु चातुर्युगं नारं भवेद्दैवयुगं सदा ।
दैविकैरेकसप्तत्या युगैर्मन्वन्तरं भवेत् ।।६७।।

किन्तु मानवीय चतुर्युग सदैव एक दैवयुग के बराबर होता है। एकहत्तर दैवयुगों का एक मन्वन्तर होता है ॥ ६७ ॥

दैवयुगसहस्त्रे द्वे ब्रह्मणः स्यादहर्निशम् ।
चतुर्युगसहस्त्रे द्वे नृणां मानेन तद्भवेत् ।।६८।।

दो हजार दैवयुगों से ब्रह्मा का एक रात-दिन होता है, वह मनुष्यों के मान से दो हजार चतुयुर्गों का होता है ॥ ६८ ॥

एकस्मिन् ब्राह्मदिवसे मनवः स्युश्चतुर्दश ।
एवं ब्राह्मेण मानेन दिवसैस्तु त्रिभिः शतैः ।
स-षष्टिभिर्वत्सरः स्याद् ब्राह्मो वर्षो नृणां यथा ।।६९।।

ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होते हैं। मनुष्यों की ही भाँति इस प्रकार के ब्राह्ममान के तीन सौ साठ दिनों का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है ॥ ६९ ।

ब्राह्मैः पञ्चशता वर्षैः परार्धः परिकीर्तितः ।
तदीश्वरस्य दिवसस्तावती रात्रीरीड्यते ।।७०।।

ब्रह्मा के पचास वर्षों को एक परार्ध कहा जाता है। वही परार्ध शिव का एक दिन होता है तथा उतने ही कालमान की उनकी रात्रि भी होती है ॥ ७० ॥

शतेन ब्रह्मणो वर्षो कालः स्याद्द्विपरार्धकः ।
परार्धद्वितयेऽतीते ब्रह्मणः प्रलयोभवेत् ।
प्रलीने ब्रह्मणि परे जगतां प्राकृतो लयः ।।७१।।

ब्रह्मा के सौ वर्षों का समय द्विपरार्ध का होता है। दो परार्ध बीतने पर ब्रह्मा का प्रलय अर्थात् अन्त हो जाता है। ब्रह्मा के परब्रह्म में लीन होने पर संसार का प्राकृत लय होता है ॥ ७१ ॥

समस्तजगदाधारमव्ययं यत् परात्परम् ।
तस्य ब्रह्मस्वरूपस्य दिवारात्रस्य यद् भवेत् ।
तत्परं नाम तस्यार्धं परार्धमभिधीयते ।।७२।।

समस्त जगत् का आधार, कभी नष्ट न होने वाला जो पर से परे अर्थात् अत्यन्त श्रेष्ठ ब्रह्म स्वरूप है, उसका जो एक दिन रात होता है, उसका नाम पर है, उसके आर्ध (आधे-भाग) को परार्ध कहते हैं ॥ ७२ ।

जगत्स्वरूपी भगवान् परमात्माक्षयोऽव्ययः ।
स्थूलात् स्थूलतमः सूक्ष्माद् यस्तु सूक्ष्मतमो मतः ।। ७३।।
न तस्यास्ति दिवारात्रिव्यवहारो न वत्सरः ।।७४।।
किन्तु पौराणिकैः पूर्वैरस्माभिरपि तादृशैः ।
सृष्टिप्रलयबोधार्थं कल्प्यते तदहर्निशम् ।।७५।।

जगत् स्वरूप जो भगवान है, वह परम आत्मा, कभी कम न होने या नष्ट न होने वाला है, वह स्थूल से भी स्थूलतम तथा सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम है। (यहाँ "अणोरणीयान् महतो महीयान्" वेदान्त वाक्य की प्रतिध्वनि भासित होती है)। उस परमात्मा के लिए दिन-रात का कोई व्यवहार नहीं होता और न कोई वत्सर अर्थात् वर्ष ही है। पूर्ववर्ती पौराणिकों द्वारा तथा उसी तरह के हमारे द्वारा भी सृष्टि प्रलय का बोध कराने के लिए उस परमात्मा के भी दिन-रात की कल्पना की गयी है ॥ ७३-७५ ॥

स एव रात्रिः स दिवा स वर्षः
स वै क्षितिः सृष्टिकरो हरश्च ।

स विष्णुरूपी पुरुषः पुराण-
स्तस्मिन् समस्तञ्च विभाति तद्वत् ।।७६।।

वास्तव में वही रात्रि, दिन, वर्ष है। वही पृथ्वी है। वही सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा और वही (संहार कर्ता) शिव है। वही विष्णु रूप में प्राचीन पुरुष है। उसी में तथा उसी की भाँति यह सब कुछ भासित होता है ।। ७६ ।।

ततो ब्रह्मणि लीने तु परमात्मनि शाश्वते ।
जगत् सर्वं क्रमेणैव तद्रूपत्वाय गच्छति ।।७७।।

तब ब्रह्मा के शाश्वत परमात्मा में लीन हो जाने पर समस्त संसार क्रमशः उसी परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ।। ७७ ।।

ब्रह्मणः शतवर्षान्ते रुद्ररूपी जनार्दनः ।
जगदन्तं स्वयं कृत्वा परमे लीनमेति वै ।।७८।।

ब्रह्मा के सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर रुद्ररूपधारी भगवान् जनार्दन (विष्णु) जगत् का अन्त करके स्वयं परमतत्त्व में लीन हो जाते हैं ।। ७८ ।।

प्रथमं सविता सर्वं स्थावरं जङ्गमं तथा ।
तीव्रैः करैः शोषयित्वा जलं सर्वं ग्रहीष्यति ।।७९।।

उस समय सर्वप्रथम सूर्य समस्त स्थावर एवं जङ्गम प्राणियों को अपनी तीव्र किरणों द्वारा सोखकर समस्त जलतत्त्व का ग्रहण कर लेंगे ।। ७९ ।।

शुष्का वृक्षास्तृणगणाः प्राणिनः पर्वतास्तथा ।
चूर्णीकृत्वा विशीर्णाः स्युर्दिव्यवर्षशतेन तु ।।८०।।

देवताओं के सौ (मनुष्य के ३६००० वर्षों में सूखे हुए वृक्ष, तृण, समूह, प्राणी) तथा पर्वत चूर्ण होकर छिन्न-भिन्न हो जायेंगे ।। ८० ।।

ततो द्वादशसूर्यस्य रश्मयः प्रबला भृशम् ।
अभवन् द्वादशादित्या जगद्भोग्योपबृंहिताः ।।८१।।
रश्मिद्वारेण सकलास्सूर्यास्ते भुवनानि च ।
अदहन् पृथिवी द्यौश्च मेदिनी चोष्णतां गता ।।८२।।

तब जगत् को भोगने वाली बारह सूर्यों की अत्यधिक बलशाली किरणों के बढ़ने से बारह सूर्य बन जाएँगे और वे सभी सूर्य अपनी किरणों के द्वारा चौदहों भुवनों को जलायेंगे जिससे पृथ्वी, आकाश एवं धरती उष्णता को प्राप्त होवेगी ।। ८१-८२ ।।

ततो विनष्टे सकले स्थावरे जङ्गमे तथा ।
आदित्यरश्मितो देवो रुद्ररूपी जनार्दनः ।।८३।।
निःसृत्य प्रथमं यातः पातालतलमुन्नतः ।।८४।।

तब समस्त स्थावर तथा जङ्गम प्राणियों के नष्ट हो जाने पर रुद्रदेव का रूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु, सूर्य की किरणों से निकल कर, ऊपर से नीचे पाताल नामक पहले तल में गये ॥ ८३-८४ ॥

सप्तपातालसंस्थांस्तु नागगन्धर्वराक्षसान् ।
देवानृषींश्च शेषञ्च जघान वरशूलधृक् ।।८५।।

वहाँ जाकर श्रेष्ठ शूल धारण करने वाले रुद्र देव ने सातों पातालों में रहने वाले नाग, गन्धर्व, राक्षस, देवता, ऋषि तथा शेष को भी मार दिया ॥ ८५ ॥

एवं स्वर्गे च पाताले पृथिव्यां सागरेषु च ।
ये प्राणिनस्तान् समस्तान् जघान स जनार्दनः ।।८६।।

इस प्रकार उस जनार्दन विष्णु ने स्वर्ग, पाताल, पृथ्वी और सागरों में जो भी प्राणी थे, उन सभी को मार दिया ॥ ८६ ॥

ततो मुखान्महावायुं रुद्रश्च सृष्टवान् स्वयम् ।
सोऽव्याहतगतिर्गाढं ससार भुवनत्रये ।।८७।।

तब रुद्रदेव ने स्वयं अपने मुख से महान् वायु की सृष्टि की, वह महावायु निर्वाध गति तथा प्रचण्डता से तीनों लोकों में फैल गया ॥ ८७ ॥

यावद्वर्षशतं वायुर्भ्रमन् भुवनगर्भगः ।
सर्वमुत्सारयामास यत् किञ्चित्तूलराशिवत् ।।८८।।

वह वायु सौ (दिव्य) वर्षों तक भुवनों के बीच घूमता रहा तथा जो कुछ था, उसे उसने रूई के ढेर की भाँति उड़ा दिया ॥ ८८ ॥

समस्तं तत् समुत्सार्य जगद्वर्ति समन्ततः ।
विवेश द्वादशादित्यान् स वायुर्जवनाधिकः ।।८९।।

जगत् में सब ओर जो कुछ भी था उस सबको उड़ाकर वह वायु अत्यधिक वेग से द्वादश आदित्यों में प्रवेश कर गया ॥ ८९ ॥

प्रविश्य मण्डलं तेषां तेजोभिः सह मारुतः ।
महामेघान् समारेभे रुद्रेण प्रतियोजितः ।।९०।।

तब वायु ने उन बारह आदित्यों के मण्डल में प्रवेश कर उनके तेज के साथ रुद्र द्वारा जोड़े जाने पर महान मेघों को आरम्भ (उत्पन्न) किया ॥ ९० ॥

ततस्ते प्रेरिता मेघास्तेन वातेन वेगिना ।
रुद्रेणाप्यतिरौद्रेण पर्यावव्रुर्नभस्तलम् ।।९१।।

तब उस वेगवान तथा रुद्र से भी अधिक भयानक वायु से प्रेरित वे मेघ, आकाश में घूमने लगे ॥ ९१ ॥

संवर्ताख्या महामेघा भिन्नाञ्जनचयोपमाः ।
केचिद्धूम्राःशोणवर्णाःशुक्लाश्चित्राश्च भीषणाः ।।९२।।

ये संवर्त नामक बादल अञ्जन के समूह के टुकड़े की भाँति काले, कोई धूम्रवर्ण, कोई लाल, कोई सफेद, कोई रंग-बिरंगे और भयानक थे ॥ ९२ ॥

केचिच्च पर्वताकाराः केचिन्नागसमप्रभाः ।
प्रासादसदृशाः केचित् क्रौञ्चवर्णा विभीषणाः ।।९३।।

उनमें से कोई पर्वत के आकर के थे, कोई हाथियों के समान थे, कोई महलों के समान थे तो कोई क्रौञ्च पर्वत के रंग के समान भीषण थे ॥ ९३ ॥

गर्जन्तस्ते महामेघा वर्षाणामधिकं शतम् ।
ववृषुस्त्रीनथो लोकान् प्लावयन्तो महास्वनाः ।।९४।।
अथ स्तम्भप्रमाणेन धारापातेन वै दृढम् ।
धारासारेण महता पूरितं भुवनत्रयम् ।।९५।।

उन महान ध्वनि करने वाले महान मेघों ने सौ वर्षों से अधिक समय तक तीनों लोकों को डुबाते हुए, खम्भे के समान सुदृढ़ धाराओं के पतन से गिरे हुए बहुत अधिक जल से तीनों लोकों को पूर्ण कर दिया ॥ ९४-९५ ॥

आध्रुवस्थानमासाद्य तोयराशौ स्थिते ततः ।
स मुखादसृजद्वायुं रुद्ररूपी जनार्दनः ।।९६।।

ध्रुवस्थान तक जलराशि के स्थित हो जाने पर उस रुद्र रूपी भगवान विष्णु ने मुख से वायु का सृजन किया ॥ ९६ ॥

तेनौघवायुनाक्षिप्ता मेघाः संवत्सराञ्छतम् ।
अव्याहतगतेनाशु विध्वस्ता अभवंस्ततः ।।९७।।

तब उस जलमिश्रित वायु के द्वारा प्रेरित मेघ, सौ वर्षों तक निर्बाध गति से संचरण करने के पश्चात् स्वयं ध्वस्त हो गये ॥ ९७ ।

नष्टेषु तेषु मेघेषु जनलोकादिकं पुनः ।
रुद्रस्त्वाब्रह्मभुवनं ध्वंसयामास निर्दयः ।।९८।।

उन बादलों के नष्ट हो जाने के बाद निर्दयी रुद्र ने जनलोक से ब्रह्मलोक तक के भुवनों को ध्वस्त कर दिया ॥ ९८ ॥

विध्वस्तेषु समस्तेषु भुवनेषु विशेषतः ।
विनष्टे ब्रह्मलोके च रुद्रोऽगाद् द्वादशारुणान् ।।९९।।

सभी लोकों, विशेष कर ब्रह्मलोक के नष्ट हो जाने पर रुद्र देव द्वादश आदित्यों की ओर गये ॥ ९९ ॥

स गत्वा द्वादशादित्यान् वेगेन महता हरिः ।
अग्रसच्चातिजज्वाल तैर्गर्भस्थैर्दिवाकरैः ।।१००।।

उस रुद्र रूपधारी विष्णु ने अतीव वेग से जाकर सूर्यो को ग्रस लिया और अपने गर्भ में स्थित सूर्यों के द्वारा अत्यधिक प्रज्ज्वलित हो उठे ॥ १०० ॥

ततो ब्रह्माण्डमासाद्य रुद्रः कालान्तकोपमः ।
चूर्णीचकार सकलं मुष्टिपेषं महाबलाः ।।१०१।।

तब महाबलशाली यमराज के समान रुद्र ने मुट्ठी में आये पदार्थ की भाँति सबको चूर्ण कर दिया ॥ १०१ ॥

चूर्णीकुर्वन्तु ब्रह्माण्डं पृथिव्यपि विचूर्णिता ।
तोयानि च समस्तानि स दध्रे योगतो हरिः ।।१०२।।

उन भगवान विष्णु द्वारा ब्रह्माण्ड को चूर करते समय पृथ्वी भी चूर-चूर हो गयी तब समस्त जल को स्वयं उन्होंने योग द्वारा धारण कर लिया ॥ १०२ ॥

यद् ब्रह्माण्डाद्बहिस्तोयं स्थितं पूर्वं समन्ततः ।
यद्वाभ्यन्तर्गतं तोयं तत् सर्वञ्चैकतां गतम् ।।१०३।।

जो जल ब्रह्माण्ड के चारों ओर पहले फैला हुआ था या जो ब्रह्माण्ड के अन्दर का जल था, वह सब एकरूपता को प्राप्त हो गया ॥ १०३ ॥

एकीभूतेषु तोयेषु सर्वव्यापिषु सर्वतः ।
ब्रह्माण्डखण्डपूर्णौघः प्लवन्नासीत् स नौरिव ।।१०४।।

सब ओर से सर्वव्यापी जल के एक हो जाने पर उस पूर्ण जलाराशि पर ब्रह्माण्ड के वे टुकड़े नाव की भाँति तैर रहे थे ॥ १०४ ॥

ततः पृथिव्याः सारन्तु गन्धं तन्मात्रकं क्रमात् ।
अम्भो जग्राह सकलं विनष्टा पृथिवी ततः ।।१०५।।

तब पृथ्वी के समस्त सारतत्त्व गन्ध नामक तन्मात्रा को क्रमशः जल ने ग्रहण कर लिया। इससे पृथ्वी नष्ट हो गई ॥ १०५ ॥

पुनः स रुद्रस्तेजांसि गर्भस्थानि स्वकायतः ।
निःसारयामास पुनः पुंजीभूतानि भीषणः ।।१०६।।
तानि तेजांसि सकलं जगृहुः सर्वतः स्थितम् ।
अन्तर्बहिश्च ब्रह्माण्डात्तेजो यच्चान्यतो गतम् ।।१०७।।

उस भयानक रुद्र ने पुनः अपने शरीर से अपने में निहित तेजराशि को बाहर निकाला। एकत्र हो उन तेजों ने सब ओर स्थित तथा ब्रह्माण्ड के अन्दर और बाहर जो भी (अग्नि तत्त्व) था, या जो कुछ बाहर गया था, वह सब ग्रहण कर लिया ॥ १०६-१०७ ॥

जगद्गतं सर्वतेजो गृहीत्वा चैकतो ज्वलन् ।
रौद्रब्रह्माण्डखण्डानि तेजोऽथ न्यदहज्जले ।।१०८।।

जगत् में स्थित समस्त तेज एक साथ ग्रहण कर जलते हुए रौद्र तेज ने उस जलराशि में तैरते हुए उन ब्रह्माण्डखण्डों को जला दिया ॥ १०८ ॥

दग्ध्वा ब्रह्माण्डचूर्णानि तेजांस्युज्ज्वलितानि च ।
जलेभ्यो रसतन्मात्रं सारभूतं ततोऽग्रहीत् ।
गृहीतसारास्ता आपः प्रनष्टास्तेजसा ततः ।।१०९।।

तब तेज के कारण उज्ज्वल हुये ब्रह्माण्ड खण्डों को जलाकर, जल से उसका सारतत्त्व, रस, तन्मात्रा ग्रहण कर लिया। सार, रस, तन्मात्रा के ग्रहण कर लिये जाने पर तेज (अग्नि) द्वारा जलतत्त्व नष्ट हो गया ॥ १०९ ॥

अप्सु नष्टासु तत्तेजः प्रविश्याथ सदागतिः ।
एकीभूतो महाभागो रूपं तन्मात्रमग्रहीत् ।।११०।।

जल तत्त्व के नष्ट हो जाने पर वह तेज द्रव्य ही सदा गतिशील वायु तत्त्व में प्रवेश कर गया। तब उस महाभाग ने रूप तन्मात्रा को ग्रहण कर लिया ॥ ११० ॥

गृहीते रूपतन्मात्रे तेजांसि सकलान्यथ ।
विनष्टानि ततो वायुः प्रबलोऽभूदवारितः ।।१११।।

उसके बाद रूपतन्मात्रा के ग्रहण कर लिये जाने के कारण सभी तेजतत्त्व जब नष्ट हो गये तब निर्बाध वायु अत्यधिक प्रबल हो उठा ॥ १११ ॥

महास्वनं ततो वायुमासाद्याग्निरिवज्वलन् ।
रुद्रः संक्षोभयामास तदाकाशं स्वयं ततः ।।११२।।

तब अत्यन्त शब्द वाले वायु को प्राप्त हो अग्नि के समान जलते हुए रुद्रदेव ने स्वयं आकाशतत्त्व को क्षुब्ध कर दिया ॥ ११२ ॥

तेन संक्षुब्धमाकाशमग्रहीन्मरुतस्ततः ।
तद्गतं स्पर्शतन्मात्रं ततो नष्टः प्रभञ्जनः ।।११३।।

उनसे क्षुब्ध आकाशतत्त्व को वायु ने ग्रहण कर लिया। पहले उस वायु में स्थित स्पर्शतन्मात्रा नष्ट हुई तत्पश्चात् वायु स्वयं नष्ट हो गया ॥ ११३ ॥

नष्टे वायौ ततो रुद्र आकाशात् रासमग्रहीत् ।
शब्दतन्मात्रकं तस्मिन् गृहीते विगतं वियत् ।।११४।।

वायु के नष्ट हो जाने पर रुद्र ने आकाशतत्त्व से उसका शब्दगुण छीन लिया। शब्दतन्मात्रा के ग्रहण किये जाते ही आकाशतत्त्व भी नष्ट हो गया ॥ ११४ ॥

नष्टे नभसि रुद्रोऽसौ काये ब्राह्मे तदाविशत् ।
ब्राह्मं तदाकुलं कायं निराधारं निराकुलम् ।
विवेश वैष्णवे काये शङ्खचक्रगदाधरे ।।११५।।

आकाशतत्त्व के नष्ट हो जाने पर उन रुद्रदेव ने तब ब्रह्मा के शरीर में प्रवेश किया। उस समय ब्रह्मा की वह व्याकुल काया शङ्ख, चक्र, गदा धारण करने वाले व्याकुलतारहित, आधारहीन भगवान विष्णु के शरीर में प्रवेश कर गई ॥ ११५ ॥

ततः शौरिर्महातेजाः कायं तत् पाञ्चभौतिकम् ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवरासिधरमच्युतम् ।
स्वशक्त्या संजाहाराशु सारमादाय सर्वतः ।।११६।।

तब उस महातेजस्वी विष्णु ने अपनी शक्ति द्वारा शंख, चक्र, गदा तथा तलवार धारण करने वाले उस पाँच भूतों वाले अपने शरीर को शीघ्र ही नष्ट कर दिया ॥ ११६ ॥

निराधारं निराकारं निःसत्तं निरवग्रहम् ।
आनन्दमयमद्वैतं द्वैतहीनाविशेषणम् ।।११७।।
न स्थूलं न च सूक्ष्मं यज्ज्ञानं नित्यं निरञ्जनम् ।
एकमासीत् परं ब्रह्म स्वप्रकाशं समन्ततः ।।११८।।

तब आधार-आकार, सत्ता और बाधा से रहित द्वैतहीन (अद्वैत) सब प्रकार की भेदकारी विशेषताओं से रहित आनन्दमय, न स्थूल, न सूक्ष्म सब ओर से स्वयं प्रकाशित यज्ञ से जानने योग्य, नित्य और मिथ्या तत्त्व से रहित, एकमात्र परब्रह्म ही था ॥ ११७-११८ ॥

नाहो न रात्रिर्न वियन्न पृथ्वी
नासीत्तमो ज्योतिरभून्नचान्यत् ।
श्रोत्रादिबुद्ध्याद्युपलभ्यमेकं
प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत् ।।११९।।

उस समय न दिन था, न रात्रि थी, न आकाश था, न पृथिवी थी, न अन्धकार था न प्रकाश और न दूसरा ही कुछ श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों तथा बुद्धि आदि अन्तःकरणों द्वारा उपलब्ध था। उस समय तो एकमात्र प्रधान से सम्बद्ध ब्रह्मरूप पुरुष ही था ॥ ११९ ॥

एवं यावत्स्थिता सृष्टिस्तावत् कालमसृष्टिकम् ।
आसीदेकं परं तत्त्वं ततः सृष्टिः प्रवर्तते ।।१२०।।

इस प्रकार की स्थिति में जब तक सृष्टि थी तब तक का समय असृष्टि का अर्थात् प्रलय का था। उस समय मात्र एक परमतत्त्व ही स्थित था, जिससे सृष्टि पुनः प्रवर्तित होती है ॥ १२० ॥

प्रकृतौ संस्थितो यस्मात् सर्वतन्मात्रसञ्चयः ।
अहङ्कारं महत्तत्वं गतो यत् प्राकृतो लयः ।।१२१।।

जिस प्रकार सभी तन्मात्राओं का प्रकृति में संचय हो जाता है, अहंकार का भी महत् तत्त्व में लय हो जाता है, इसीलिए इसे प्राकृत लय कहते हैं ।। १२१ ।।

प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीयप्रलयन्तु तत् ।
तस्मात् प्राकृतसंज्ञोऽयमुच्यते प्रतिसञ्चरः ।।१२२।।

व्यक्त, अतीतकालिकप्रलय तक प्रकृति में ही स्थिर रहता है । इसीलिए इस प्रतिसर्ग के प्रलय का नाम प्राकृत प्रलय कहा गया है ।। १२२ ।।

अयं वः कथितो विप्राः प्राकृताख्यो महालयः ।
आदिसृष्टिं शृणुष्वेमां कथ्यमानां मया पुनः ।।१२३।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे संहारकथनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

हे विप्रों ! मेरे द्वारा आप लोगों से यह प्राकृत नामक महालय कहा गया । अब पुनः मेरे द्वारा कही जाने वाली आदि सृष्टि का वर्णन आप लोग सुनें ।। १२३ ।।

।। श्रीकालिकापुराण में संहारकथन नामक चौबीसवाँ अध्याय सम्पन्न हुआ ।।२४।।



पञ्चविंशोऽध्यायः
वाराहसर्गः

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

कालो नाम स्वयं देवः सृष्टिस्थित्यन्तकारकः ।
अविच्छिन्नः स प्रलयस्तेन भागेन केनचित् ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– काल नामक देव, परमात्मा, जगत की सृष्टि-स्थिति और अन्त का करने वाला है। वह (उपर्युक्त) प्राकृत प्रलय भी उसी के किसी भाग से सम्बद्ध है ॥ १ ॥

लयभागे व्यतीते तु सिसृक्षा समजायत ।
ज्ञानरूपस्य च तदा परमब्रह्मणो विभोः ।।२।।

तब लय भाग व्यतीत हो जाने पर कालरूप एवं ज्ञानरूप तथा व्यापक परब्रह्म में सृष्टि की इच्छा उत्पन्न हुई ॥ २ ॥

ततोऽस्य प्रकृतिस्तेन सम्यक्संक्षोभिता धिया ।
संक्षुब्धा सर्वकार्यार्थमभूत् सा त्रिगुणात्मिका ।।३।।

उसकी प्रकृति उसके बुद्धि के माध्यम से भलीभाँति संक्षोभित की गई तब वह संक्षुब्ध होकर सब कार्यों में सक्षम हो, तीनों गुणों से युक्त हो गयी ॥ ३ ॥

यथा सन्निधिमात्रेण गन्धः क्षोभाय जायते ।
मनसो लोककर्तृत्वात्तथासौ परमेश्वरः ।।४।।

जिस प्रकार गन्ध की निकटता मात्र से ही मन में क्षोभ उत्पन्न होता है, उसी प्रकार यह परमेश्वर भी लोक का कर्ता होने के कारण प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न करता है ॥ ४ ॥

स एव क्षोभको ब्रह्मन् क्षोभ्यश्च परमेश्वरः ।
स सङ्कोचविकाशाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः ।।५।।

हे ब्राह्मणों ! वह ही क्षोभ पैदा करने वाला है तथा वही क्षुब्ध होने योग्य है। वही अपनी संकोच (लय) तथा विकास (सृष्टि) प्रक्रिया द्वारा प्रधानता से या प्रधान के रूप में भी स्थित है ॥ ५ ॥

इच्छामात्रेण पुरुषः श्रृष्ट्यर्थं परमेश्वरः ।
ततः संक्षोभयामास पुनरेव जगत्पतिः ।।६।।

इच्छामात्र से ही वह परमेश्वर पुरुष सृष्टि में प्रवृत्त हुआ तब उस जगत के स्वामी ने पुनः (पहले ही की भाँति) संक्षुब्ध किया ॥ ६ ॥

गुणसाम्यात्ततस्तस्मात् क्षेत्रज्ञाधिष्ठितात् ततः ।
गुणव्यञ्जनसंभूतिः सर्गकाले वभूव ह ।।७।।

तब (प्रलयकालिक) गुणों की साम्यावस्था, क्षेत्रज्ञ में क्षेत्र के अधिष्ठान की अवस्था से सृष्टि के समय गुणों के भिन्नता की अनुभूति हुई ॥ ७ ॥

प्रधानतत्त्वादुद्भूतमीश्वरेच्छासमीरितात् ।
महत्तत्वं प्रथमतस्तत् प्रधानं समावृणोत् ।।८।।

तब पहले ईश्वर की इच्छा से भलीभाँति प्रेरित हुये प्रधान तत्त्व से महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही उसे प्रधान ने भलीभाँति ढंक लिया ॥ ८ ॥

प्रधानेनावृतात्तस्मादहङ्कारो व्यजायत ।
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ।।९।।

प्रधान से घिरे हुए उस महत् तत्त्व से वैकारिक, तैजस, तामस तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न हुआ जो स्वयं ही भूत, इन्द्रिय आदि को उत्पन्न करने वाला है ॥ ९ ॥

त्रिविधोऽयमहङ्कारो यो जातो महतोऽग्रतः ।
भूतानामिन्द्रियाणाञ्च स वै हेतुः सनातनः ।।१०।।

यह तीन प्रकार का अहंकार ही जो सबसे पहले महत्तत्त्व से उत्पन्न हुआ। यही पञ्चमहाभूत तथा एकादश इन्द्रियों की उत्पत्ति का शाश्वत कारण है ॥ १० ॥

स महांस्तमहङ्कारं जातमात्रं समावृणोत् ।
तन्मात्राणि ततः पञ्च जज्ञिरेऽस्मात् समावृतात् ।।११।।

ज्योंही अहंकार पैदा हुआ त्योंही उस महत्तत्त्व ने अहंकार को भलीभाँति ढँक लिया। तब उस आवरणग्रस्त अहंकार से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, नामक पाँच तन्मात्रएँ उत्पन्न हुई ॥ ११ ॥

प्रथमं शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रमन्तरम् ।
तृतीयं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रमेव च ।।१२।।
पञ्चमं गन्धतन्मात्रमेतानि क्रमशोऽभवन् ।
प्रत्येकं सर्वतन्मात्रमहङ्कारः समावृणोत् ।।१३।।

पहला शब्दतन्मात्र, उसके बाद स्पर्शतन्मात्र, तीसरा रूपतन्मात्र, चौथा रसतन्मात्र, पाँचवा गन्धतन्त्रमात्र ये पाँच तन्मात्र क्रमशः उत्पन्न हुए। उनमें से एक-एक कर सबको अहङ्कार ने आवृत कर लिया ॥ १२-१३ ॥

ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् ।
शब्दमात्रं तथाकाशं भूतादिः स समावृणोत् ।।१४।।

उस परमात्मा ने शब्दतन्मात्र से शब्दलक्षण से युक्त आकाशतत्त्व (महाभूत) की सृष्टि की। उस भूतों के आदि अहंकार ने शब्दतन्मात्र और आकाशतत्त्व को भलीभाँति ढक लिया ॥ १४ ॥

शब्दतन्मात्रसहितात् स्पर्शतन्मात्रतन्ततः ।
वायुः समभवत् स्पर्शगुणः शब्दसमन्वितः ।।१५।।

शब्दतन्त्रमात्र युक्त आकाश महाभूत से स्पर्शतन्मात्र, तत्पश्चात् उस स्पर्शतन्मात्र से स्पर्शगुण से युक्त वायु महाभूत उत्पन्न हुआ ॥ १५ ॥

आकाशवायुसंयुक्ताद्रूपतन्मात्रतस्ततः ।
तेजः समभवद्दीप्तं सर्वतस्तदवर्धत ।।१६।।

आकाश और वायु के सम्मिलित रूप से रूप तन्मात्र और उससे प्रकाशमान तेज (अग्नि) नामक तत्त्व उत्पन्न हुआ तथा वह सब ओर से बढ़ गया ॥ १६ ॥

तच्छब्दवत् स्पर्शवच्च रूपवच्च व्यजायत ।
ततो वियद्वायुतेजोयुक्तात्तोयं ससर्ज ह ।
रसतन्मात्रतः सम्यक् तेन व्याप्तं समन्ततः ।।१७।।

उसने आकाश, वायु, तेज, से शब्द, स्पर्श, रूपतन्मात्र की ही भाँति रस तन्मात्र को प्रकट किया तथा उससे जल तत्त्व की सृष्टि की और उससे सब ओर व्याप्त हो गया ॥ १७ ॥

तोयान्याधारशक्तिर्या विष्णोरमिततेजसः ।
सा दध्रेऽथ निराधाराण्यनिलान्दोलितानि वै ।।१८।।

अमित तेजस्वी विष्णु की पृथ्वी रूप जो शाक्ति है, उसी ने उस निराधार, वायु से आन्दोलित जलराशि का आधार बनकर उसे धारण किया ॥ १८ ॥

तेषु बीजं प्रथमतः ससर्ज परमेश्वरः ।
तदण्डमभवद्हैमं सहस्त्रांशुसमप्रभम् ।।१९।।

परमेश्वर ने पहले उनमें बीज की सृष्टि की, वह बीज सूर्य के समान प्रभा से युक्त स्वर्णिम अण्ड हो गया ॥ १९ ॥

महदादिविशेषान्तैरारव्धं सर्वतो वृतम् ।
वारिवह्न्यनिलाकाशैस्तमोभूतादिना बहिः ।
वृतं दशगुणैरण्डं भूतादिर्महता तथा ।।२०।।

महत् आदि से आरम्भ हो विशेष अर्थात् ब्रह्माण्ड तक अपने पूर्ववर्ती जल, अग्नि, वायु एवं आकाश, तामस अहंकारादि तथा महत्तत्त्वादि दश बन्धनों से वह ब्रह्माण्ड बाहर से घिरा हुआ था ॥ २० ॥

बीजं यथा बाह्यदलैर्व्याप्तमण्डं तथा पुनः ।
तोयादिभिस्तथा व्याप्त ब्रह्माण्डमतुलं द्विजाः ।।२१।।

हे द्विजों ! जिस प्रकार बीज बाह्य दलों से व्याप्त होता है उसी प्रकार वह अतुलनीय ब्रह्माण्ड भी जल आदि महाभूतों से व्याप्त था ।। २१ ।।

तदण्डमध्ये स्वयमेव विष्णु-
र्ब्रह्मस्वरूपं विनिधाय कायम् ।
दिव्येन मानेन स वर्षमेकं
स्थितोऽग्रहीद्बीजगणं स्वबुद्ध्या ।।२२।।
ध्यानेन चाण्डं स्वयमेव कृत्वा
द्विधा स तस्थौ क्षणमात्रमस्मिन् ।
तदैव तन्मात्रगणैः समस्तै-
र्गन्धोत्तरैर्भूर[illegible]व सृष्टा ।।२३।।

उस ब्रह्मा[illegible] के भीतर भगवान विष्णु स्वयं ही ब्रह्मा के रूप में शरीर धारण कर देवताओं के मान से एक (मानव मान से ३६०) वर्ष तक स्थित होकर अपनी बुद्धि से उन तत्त्वों के बीज को धारण किये रहे और अपने ध्यान बल से क्षण मात्र में ही उस अण्डे को दो भागों में बाँटकर स्वयम् ही उमें स्थित हो गये । तभी गन्ध और उससे उत्तरवर्ती, रस, रूप, स्पर्श और शब्द आदि सभी तन्मात्रों द्वारा इस पृथ्वी की सृष्टि किया ।। २२-२३ ।।

स्पर्शस्य शब्दस्य समस्तरूप-
गुणस्य गन्धस्य रसस्य चैषा ।
आधारभूता सकलैः कृता य-
त्तन्मात्रवर्गैरखिला धरित्री ।।२४।।

यह पृथ्वी समस्त स्पर्श, शब्द, रूप, रस, गन्ध आदि गुणों के आधार रूप में सभी तन्मात्रों द्वारा क्षण भर में ही [illegible]नाई गई ।। २४ ।।

जातस्तदुत्थैः कनकाचलोऽसौ
जरायुभिः पर्वतसंचयोऽभूत् ।
गर्भोदकैः सप्तपयोधयस्तु
स्कन्धद्वयेन त्रिदशालयोऽभूत् ।।२५।।

उसके पैदा होते हुए उसके उठे हुए जरायु द्वारा पर्वतों के समूह रूप में यह कनकाचल सुमेरु पर्वत उत्पन्न हुआ तथा उस हिरण्यमय अण्ड के गर्भगत जलादि से सप्त सागरों की उत्पत्ति हुई । दो शाखाओं से देवलोक उत्पन्न हुआ ।। २५ ।।

स्कन्धद्वयेनापरदेशजेन
सप्ताभवन्नागगृहाणि तानि ।
पातालसंज्ञानि महासुखानि
यत्र स्वयं स्यात् परतो महेशः ।।२६।।

स्कन्धद्वयात्मक भुवन वृक्ष के निचले भाग से पाताल नामक अत्यन्त सुख देने वाले नागों के सात निवास स्थान हुए जहाँ ऊपर की ओर स्वयं भगवान शिव निवास करते हैं ॥ २६ ॥

तेजोगणात्तस्य बभूव लोको
योऽसौ महर्लोक इति श्रुतोऽभूत् ।
जनाह्वयोऽभून्मरुतोऽथ गर्भाद्
ध्यानात्तपोलोकवरो बभूव ॥२७॥

उसके मज्जा रूप भाग से जिस लोक का निर्माण हुआ उसे महर्लोक नाम से सुना जाता है। 'जन' नामक लोक उस गर्भगत वायु से उत्पन्न हुआ तथा 'तप' नामक श्रेष्ठ लोक ध्यान से उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥

अण्डोर्धगत्यामभवत्तु सत्यं
ब्रह्माण्डखण्डोपरि विष्णुरच्युतः ।
परं पदं यन्निगदन्ति धीरा
यज्ज्ञानगम्यं परिनिष्ठरूपम् ॥२८॥

अण्ड के आधे भाग की गति के कारण सत्यलोक उत्पन्न हुआ जो, ब्रह्माण्ड का ऊपरी भाग, विष्णु का अच्युत स्थान है। जिसे धीर पुरुष ज्ञान से प्राप्त होने वाला, सुनिश्चित रूप, परमपद के नाम से पुकारते हैं ॥ २८ ॥

एवं विधाय प्रथमं बभूव
विष्णुस्वरूपी स्थितये स एव ।
स्वयं समुद्भूततनुर्यतोऽयं
स्वयंभूरिति ख्यातिरवाप विष्णुः ॥२९॥

इस प्रकार से पहले निर्माण कर वे स्वयं संसार की स्थिति के लिए विष्णुरूप धारण किये। उनका यह शरीर स्वयं उत्पन्न हुआ इसीलिए विष्णु ने स्वयम्भू इस ख्याति को प्राप्त किया ॥ २९ ॥

ततोऽभवत् यज्ञवराहरूपी
विष्णुर्भुवः प्रोद्धरणाय पीनः ।
निमज्जमानां पृथिवीं स मध्ये
भित्वा गतो धर्तुमधोतिऽवेगात् ॥३०॥

तब भगवान विष्णु ने भूमि के उद्धार हेतु बलशाली यज्ञवराह रूप धारण किया तथा डूबती हुइ पृथ्वी को धारण करने के लिए अत्यन्त वेग से मध्य में छेदकर वे उसके निचले भाग में गये ॥ ३० ॥

दंष्ट्राग्रदेशे विनिधाय पृथ्वीं
स उद्गतः सर्वमतीत्य तोयम्।
ततोऽभवत् सप्तफणान्वितोऽय-
मनन्तमूर्तिः पृथिवीं विधर्तुम् ।।३१।।

जब इस पृथ्वी को अपनी दाँतों के अगले भाग पर धारण कर सम्पूर्ण जलराशि से ऊपर उठकर वे बाहर आये तब पृथ्वी को धारण करने के लिए वे सात फणों से युक्त अनन्त रूपधारी हुए ॥ ३१ ॥

प्रसार्य शेषोऽपि फणाः स वैष
मध्ये निधायैकफणां धरित्रीम्।
दधार तोयोपरि तोयसंस्थित-
स्ततोऽत्यजद् यज्ञवराह उर्व्वीम् ।।३२।।

उन्होंने शेष रूप से भी अपने फणों को फैलाकर उनमें से बीच के फण पर पृथ्वी को रखा, तब यज्ञवराह ने स्वयं जल पर स्थित होकर उस पृथ्वी को जल पर ही छोड़ दिया ॥ ३२ ॥

प्रसारिताः फणाः सर्वास्तासामेका तु पूर्वतः।
अपरा पश्चिमायां तु दक्षिणोत्तरयोः परे ।।३३।।
एका गता फणैशान्यामाग्नेय्यामपरा दिशि।
पृथ्वीमध्ये स्थिता चैका नैर्ऋत्यां तस्य वै तनुः।
शून्या दिग्वायवी तत्र ततो नम्रा स्थिता क्षितिः ।।३४।।

जब अनन्त रूपधारी शेष ने अपने सभी फणों को फैलाया तो उनमें से एक पूर्व की ओर दूसरा पश्चिम की ओर, अन्य दक्षिण और उत्तर की ओर फैले। एक ईशान कोण में तथा दूसरा अग्निकोण में, एक फन पृथ्वी के मध्य भाग में रहा तथा उनका शरीर नैर्ऋत्य कोण में स्थित हुआ। वायव्य कोण की दिशा शून्य रह गई। अतः उस ओर पृथ्वी झुक गयी ॥ ३३-३४ ॥

स तु दीर्घतनुस्तोये यदानन्तो न चाशकत्।
कूर्मरूपी तदा भूत्वानन्तं कायमधाद्धरिः ।।३५।।

जब अनन्त अपने दीर्घ शरीर को जल में धारण न कर सके तो विष्णु ने स्वयं कच्छप स्वरूप हो अनन्त के विशाल शरीर को धारण किया ॥ ३५ ॥

अधो ब्रह्माण्डखण्डं स पद्भिराक्रम्य कच्छपः।
ग्रीवान्वितस्य वायव्यां पृष्ठेऽनन्तमधारयत् ।।३६।।

उस कच्छप भगवान ने निचले ब्रह्माण्डखण्ड को अपने पैरों से दबाकर, वायव्य दिशा में अपनी गर्दन फैलाकर पीठ पर अनन्त को धारण किया ॥ ३६ ॥

अनन्तः कूर्मपृष्ठे तु नवभिर्वेष्टनैस्तनुम् ।
निधाय पृथिवीं दध्रे सुखेनैव महातनुः ।।३७।।

विशाल शरीर वाले अनन्त ने नव फेरे में अपने शरीर को मोड़कर कूर्म भगवान के पीठ पर स्थित हो पृथ्वी को सुखपूर्वक धारण किया ।। ३७ ।।

ततः फणास्वनन्तस्य चलन्ती पृथिवी स्थिता ।
वराहः कर्तुमचलामचलामकरोद्दृढाम् ।।३८।।
मेरुं खुरप्रहारेण प्रहृत्य पृथिवीतलम् ।
न्यखनत् स विवेशाथ पृथ्वीं भित्वान्तरं ततः ।।३९।।

अनन्त के फणों पर स्थित चंचल पृथ्वी को अचल और दृढ़ करने के लिए सुमेरु पर खुर से प्रहार कर वराह भगवान ने धरती को खोदा । तब वह मेरु पर्वत पृथ्वी को भेदकर भीतर प्रवेश कर गया ।। ३८-३९ ।।

योजनानां सहस्राणि षोडशैव रसातलम् ।
प्रविवेश महाशैलो वराहांघ्रिप्रहारतः ।।४०।।

वह मेरु नामक विशाल पर्वत वराह के चरणों के प्रहार से सोलह हजार योजन तक रसातल में प्रवेश कर गया ।। ४० ।।

द्वात्रिंशत्तु सहस्राणि योजनानां तु विस्तृणंम् ।
मेरोः शिरोऽभवत्तेन प्रहारेण दिजोत्तमाः ।।४१।।

हे द्विजोत्तमों ! उसी प्रहार से मेरु पर्वत का शीर्षभाग तीस हजार योजन चौड़ा हो गया ।। ४१ ।।

मर्यादा शैलनाथस्य पार्श्वे पोत्री तदाकरोत् ।
यदा चलति नैवैष पर्वतः पृथिवीधरः ।।४२।।
हिमवत्प्रभृतीनांच भागं भागं सपंचकम् ।
पदा क्षित्यन्तरं चक्रे तदुच्छ्रायप्रमाणतः ।।४३।।

वराह प्रभु ने उसके आस-पास पर्वतराज हिमालय आदि के द्वारा उसकी ऐसी मर्यादा निर्धारित कर दी । जिससे वह पृथ्वी को धारण करने वाला मेरु पर्वत आज भी विचलित नहीं होता (उन्होंने अलग-अलग पाँच स्थानों पर हिमालय आदि को उनकी ऊँचाई के बराबर धरती में स्थापित कर दिया ।) ।। ४२-४३ ।।

ततो ब्रह्मा वराहाय नमस्कृत्य महौजसे ।
अर्धनारीश्वरं कायाद् देवदेवं व्यजायत ।।४४।।

तब ब्रह्मा ने महान् ओजस्वी वराह को नमस्कार करके अपने शरीर से अर्धनारीश्वर शरीर में देवाधिदेव महादेव को प्रकट किया ।। ४४ ।।

प्रथमं जातमात्रः स प्ररुरोद महास्वनः ।
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाच ह ।।४५।।

वह सर्वप्रथम पैदा होते ही बहुत तेज आवाज में रोने लगा। तब ब्रह्मा ने उस रोते हुए महादेव से पूछा, क्यों रो रहे हो? ॥ ४५ ॥

रुद्र के सात नाम

नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच महेश्वरः।
रुद्रनामा रोदनात्तं मा रोदीस्त्वं महाशय ॥४६॥
एवमुक्तः पुनः सोऽथ सप्तवारान् रुरोद सः।
ततोऽपराणि नामानि सप्त ब्रह्माकरोत् पुनः ॥४७॥
शर्वं भवं च भीमञ्च महादेवं चतुर्थकम्।
पञ्चमं चोग्रमीशानं षष्ठं पशुपतिं परम् ॥४८॥

महेश्वर ने तब कहा—मेरा नाम बताइये। "हे महान आशय वाले तुम मत रोओ, रोने के कारण ही तुम्हारा नाम रुद्र होगा।" ब्रह्मा द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह रुद्र बार-बार सात बार रोया। तब ब्रह्मा ने उनके सात अन्य नाम शर्व, भव, भीम, चौथा महादेव, पाँचवाँ उग्र, छठां ईशान तथा अन्तिम पशुपति भी पुनः निर्धारित किया॥ ४६-४८ ॥

मया यथा विभक्तस्त्वं तथात्मा स्वो विभज्यताम्।
त्वयापि भूरिसृष्ट्यर्थं भवांश्चापि प्रजापतिः ॥४९॥

तब उन रुद्र ने कहा—हे प्रजापति ! जिस प्रकार से आपने मुझे बाँट दिया है उसी प्रकार सृष्टि की अधिकता के लिए आप भी अपने ही को विभाजित कीजिये क्योंकि आप भी प्रजापति हैं॥ ४९ ॥

ततो ब्रह्मा द्विधा भूत्वा पुरुषोऽर्धेन सोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां तु विराजमसृजत् प्रभुः ॥५०॥

तब प्रभु ब्रह्मा दो भागों में विभक्त हो आधे भाग से विराट् नामक पुरुष हुए तथा आधे भाग से उसकी पत्नी की सृष्टि किए॥ ५० ॥

तमाह भगवान् ब्रह्मा कुरु सृष्टिं प्रजापते।
तपस्तप्त्वा विराट् सोऽपि मनुं स्वायम्भुवं ततः ॥५१॥
ससर्ज सोऽपि तपसा ब्रह्माणं पर्यतोषयत्।
तोषितस्तेन मनसा दक्षं सृष्ट्यै ससर्ज सः ॥५२॥

उस विराट पुरुष से ब्रह्मा ने कहा कि हे प्रजापति ! तुम सृष्टि करो। तब तपस्या करके उस विराट पुरुष ने स्वायम्भुव मनु की सृष्टि की। उसने भी तपस्या द्वारा ब्रह्मा को सन्तुष्ट किया। तब सन्तुष्ट हुए उन ब्रह्मा ने सृष्टि हेतु मन से दक्ष प्रजापति की सृष्टि की॥ ५१-५२ ॥

सृष्टे दक्षेऽथ दशधा प्रणतो मनुना विधिः।
पुनरेव सुतानन्यान् ससर्ज दश मानसान् ॥५३॥

मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वसिष्ठञ्च भृगुं नारदमेव च ।।५४।।

दक्ष की सृष्टि करने के बाद मनु द्वारा दश बार विशेष निवेदन किये जाने पर ब्रह्मा ने पुनः मरीचि[१], अत्रि[२], अंगिरस्[३], पुलस्त्य[४], पुलह[५] क्रतु[६], प्रचेतस[७], वसिष्ठ[८], भृगु[९] तथा नारद[१०] इन दश मानस पुत्रों की सृष्टि की ॥ ५३-५४ ॥

एतानुत्पाद्य मनसा मनुं स्वायम्भुवं पुनः ।
यूयं सृजध्वमित्युक्त्वा लोकेशोऽन्तर्दधे पुनः ।।५५।।

इनको मन से उत्पन्न कर उनसे तथा स्वायम्भुव मनु से "तुम सब भी सृष्टि करो" ऐसा कहकर लोकेश (ब्रह्मा) अन्तर्धान हो गये ॥ ५५ ॥

वराहोऽप्यथ पोत्रेण खनित्वा सप्तसागरान् ।
पृथिव्यां वलयाकारान् ससर्ज परमेश्वरः ।।५६।।

इसके बाद परमेश्वर वराह ने भी अपनी थूथन से खोदकर पृथ्वी पर वलयाकार सात समुद्रों की रचना की ॥ ५६ ॥

सप्तधा भ्रमणेनासौ सृष्ट्वा सप्ताथ सागरान् ।
सप्तद्वीपानवच्छिद्य पृथिव्यन्तं ततो गतः ।।५७।।

सप्त सागरों की सृष्टि करने के बाद पृथ्वी के अन्त तक सात बार भ्रमण करके, उसे बाँटकर सात द्वीपों की सृष्टि किया ॥ ५७ ॥

लोकालोकाह्वयं शैलं कृत्वा पृथ्व्यास्तु वेष्ठनम् ।
लक्षद्वयोच्छ्रितं मानाद् योजनानां समन्ततः ।
सुदृढं स्थापयामास भित्तिप्रान्ते यथा गृहम् ।।५८।।

जिस प्रकार घर के चारों ओर दीवार की स्थापना की जाती है, उसी प्रकार उन्होंने पृथ्वी के चारों ओर, सभी ओर दो लाख योजन ऊँचे लोकालोक नामक सुदृढ़ पर्वत को स्थापित किया ॥ ५८ ॥

आदिसृष्टिरियं विप्राः कथिता भवतां मया ।
प्रतिसर्गमहं वक्ष्ये तच्छृण्वन्तु महर्षयः ।।५९।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे वाराहसर्गो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

हे विप्रों ! मेरे द्वारा आप लोगों से यह आदिसृष्टि कही गयी । अब मैं प्रतिसर्ग, (अन्य गौण सृष्टि) का वर्णन करता हूँ । हे महर्षि गण ! आप सब सुनें ॥ ५९ ॥

॥ श्रीकालिकापुराण का वाराहसर्ग नामक पच्चीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५ ॥



षड्विंशोऽध्यायः

सृष्टि-कथनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

वाराहोयं श्रुतः सर्गो वराहाधिष्ठितो यतः ।
प्रतिसर्गः श्रुतः सर्वैर्दक्षाद्यैर्यः कृतः पृथक् ।।१।।

मार्कण्डेय **बोले–** आपलोगों ने वराह से संचालित वाराह-सर्गवर्णन सुना तथा दक्षादि ने जो पश्चात्वर्ती सृष्टि की उसे भी सुना ॥ १ ॥

रुद्रो विराण्मनुर्दक्षो मरीच्याद्यास्तु मानसाः ।
यं यं सर्गं पृथक् चक्रुः प्रतिसर्गश्च स स्मृतः ।।२।।

रुद्र, विराट्, स्वायंभुवमनु, दक्ष, मरीचि आदि मानस पुत्रों ने अलग-अलग जो भी सृष्टि कार्य किये उसे प्रतिसर्ग के रूप में स्मरण किया जाता है ॥ २ ॥

विराट् सुतोऽसृजद्वंश्यान्मनून् यैर्विततं जगत् ।
मनुः सप्त मनून् सृष्ट्वा चकार बहुशः प्रजाः ।।३।।

विराट पुत्र स्वायम्भुवमनु ने अपने वंशज मनुओं की सृष्टि की जिनसे यह जगत निष्पन्न है । उस मनु ने सात मनुओं की सृष्टि कर बहुत-सी प्रजा की सृष्टि की ॥ ३ ॥

प्रजाः सिसृक्षुः स मनुर्योऽसौ स्वायम्भुवाह्वयः ।
असृजत् प्रथमं षड् वै मनून् सोऽथ परान् सुतान् ।।४।।
स्वारोचिषश्चौत्तमिश्च तामसो रैवतस्तथा ।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वानपरस्तथा ।।५।।

प्रजा की सृष्टि के इच्छुक मनु जिन्हें स्वायम्भुव नाम दिया जाता है, ने पहले स्वारोचिष, औत्तमि, तामस, रैवत, चाक्षुष तथा दूसरे महातेजस्वी विवस्वान नाम छः श्रेष्ठ पुत्रों, अन्य मनुओं की सृष्टि की ॥ ४-५ ॥

यक्षरक्षःपिशाचांश्च नागगन्धर्वकिन्नरान् ।
विद्याधरानप्सरसः सिद्धान् भूतगणान् बहून् ।।६।।
मेघान् सविद्युतो वृक्षान् लतागुल्मतृणादिकान् ।
मत्स्यान् पशूंश्च कीटांश्च जलजान् स्थलजांस्तथा ।।७।।
एतादृशानि सर्वाणि मनुः स्वायम्भुवः सुतैः ।
सहितः ससृजे सोन्यः प्रतिसर्गः प्रकीर्तितः ।।८।।

यक्षों, राक्षसों, पिशाचों, नागों, गन्धर्वों, किन्नरों, विद्याधरों, अप्सराओं, सिद्धों और बहुत से प्राणियों के समूह, बिजली के सहित बादलों की, वृक्षों, लताओं, पौधों, झाड़ियों, मछलियों, जल तथा स्थल में उत्पन्न होने वाले पशुओं एवं कीटों आदि सभी की स्वायम्भुव मनु ने पुत्रों सहित जो सृष्टि की उसे ही अन्य सृष्टि या प्रतिसर्ग सृष्टि कहते हैं ।। ६-८ ।।

अन्ये षणमनवो ये वै तेऽपि स्वे स्वेऽन्तरेऽन्तरे ।
प्रतिसर्गं स्वयं कृत्वा प्राप्नुवन्ति चराचरम् ।।९।।

अन्य जो छः मनु हैं, वे भी अपने-अपने अन्तर (मन्वन्तर) में प्रतिसर्ग करके चराचर को प्राप्त करते हैं ।। ९ ।।

यज्ञस्य सम्भूतं यज्ञं यूपं प्राग्वंशमेव च ।
धर्माधर्मैं गुणान् सर्वान् वराह इव सृष्टवान् ।।१०।।

यज्ञ से उत्पन्न यज्ञ, यूप, प्राग्वंश तथा धर्माधर्म आदि सभी गुणों की सृष्टि वराह की ही भाँति हुई थी ।। १० ।।

सुतान् बहून् समुत्पाद्य दक्षो देवर्षिसत्तमान् ।
महर्षीन् सोमपादींश्च बहून् पितृगणांस्तथा ।
सृष्टिं प्रवर्त्तयामास प्रतिसर्गोऽस्य सः स्मृतः ।।११।।

दक्ष ने बहुत से पुत्रों, देवर्षिसत्तमों, महर्षियों, सोमपा आदि बहुत से पितरों को उत्पन्न कर जो सृष्टि प्रवर्तित की उनको प्रतिसर्ग कहा जाता है ।। ११ ।।

अजायन्त मुखाद्विप्राः क्षत्रिया बाहुयुग्मतः ।।१२।।
ऊर्वोर्वैश्याः पदोः शूद्राश्चतुर्वेदाश्चतुर्मुखात् ।
ब्रह्मणः प्रतिसर्गोऽयं ब्राह्मः सर्गः स्मृतस्ततः ।।१३।।

ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, दोनों बाहुओं से क्षत्रिय, जंघों से वैश्य तथा पैरों से शूद्र, चारों मुखों से ऋग्, यजु, साम, अथर्व नामक चारों वेद उत्पन्न हुए। ब्रह्मा से उत्पन्न होने से यह प्रतिसृष्टि ब्राह्मसर्ग कही जाती है ।। १२-१३ ।।

मरीचेः कश्यपो जातः कश्यपात् सकलं जगत् ।
देवा दैत्या दानवाश्च तस्य सर्गः प्रकीर्तितः ।।१४।।

मरीचि से कश्यप और उनसे सारा संसार उत्पन्न हुआ। देव, दानव और दैत्य सब उन्हीं की सृष्टि कहे जाते हैं ।। १४ ।।

अत्रेर्नेत्रादभूच्चन्द्रश्चन्द्रवंशस्ततोऽभवत् ।
तेन व्याप्तं जगत् सर्वं सोऽस्य सर्गः प्रकीर्तितः ।।१५।।

अत्रि ऋषि के नेत्रों से चन्द्रमा उत्पन्न हुए तथा चन्द्रमा से चन्द्रवंश उत्पन्न हुआ, उससे संसार व्याप्त हुआ। यही अत्रि की सृष्टि कही जाती है ।। १५ ।।

अथर्वांगिरसाः पुत्राः पौत्राश्च बहुशोऽपरे ।
मन्त्रयन्त्रादयो ये वै ते सर्वेऽङ्गिरसः स्मृताः ।।१६।।

अथर्वा, अङ्गिरा ऋषि के पुत्र और पौत्र तथा अन्य भी बहुत से मन्त्र यन्त्रादि उत्पन्न हुए वे सभी अंगिरस कहे जाते हैं ॥ १६ ॥

आज्यपाख्याः पुलस्त्यस्य पुत्राश्चान्ये च राक्षसाः ।
प्रतिसर्गः पुलस्त्यस्य बलवेगसमन्विताः ।।१७।।

आज्यपा नामक पितर तथा बलवेग से युक्त राक्षस जो पुलस्त्य के पुत्र हुए वे पुलस्त्य की प्रति सृष्टि हैं ॥ १७ ॥

काद्रवेया गजा अश्वाः प्रजा बहुतरास्तथा ।
ससृजे पुलहेनैष सर्गस्तस्य प्रकीर्तितः ।।१८।।

पुलह के द्वारा कद्रू की संतति के रूप में उत्पन्न नाग, हाथी, घोड़े आदि बहुत-सी प्रजा (सन्तानों) की सृष्टि हुई । उनकी यह सृष्टि उन्हीं की कही गयी है ॥ १८ ॥

क्रतोः पुत्राः बालखिल्याः सर्वज्ञा भूरितेजसः ।
अष्टाशीति-सहस्राणि ज्वलद्भास्करसन्निभाः ।।१९।।

क्रतु के जलते हुए सूर्य के समान आभा वाले, अत्यधिक तेजस्वी, सब कुछ के ज्ञाता, अस्सी हजार बालखिल्य नामक ऋषिगण हुए ॥ १९ ॥

प्रचेतसः सुताः सर्वे ये वै प्राचेतसाः स्मृताः ।
षडशीतिसहस्राणि पावकोपमतेजसः ।।२०।।

प्रचेता के जो सभी पुत्र थे वे प्राचेतस स्मरण किये जाते हैं । ये संख्या में छियासी हजार हैं तथा अग्नि के समान तेजस्वी हैं ॥ २० ॥

सुकालिनो वसिष्ठस्य पुत्राश्चान्ये च योगिनः ।
आरुन्धतेयाः पञ्चाशद्वासिष्ठः सर्ग उच्यते ।।२१।।

सुकालिन पितर तथा वसिष्ठ से अरुन्धती के पचास अन्य योगी पुत्र, ये वासिष्ठी सृष्टि कहे जाते हैं ॥ २१ ॥

भृगोश्च भार्गवा जाता ये वै दैत्यपुरोधसः ।
कवयस्ते महाप्राज्ञास्तैर्व्याप्तमखिलं जगत् ।।२२।।

भृगु से भार्गव उत्पन्न हुए, जो दैत्यों के पुरोहित थे । वे महान बुद्धिमान तथा विचारक थे, जिनसे सारा संसार भरा हुआ है ॥ २२ ॥

नारदात्तारका जाता विमानानि तथैव च ।
प्रश्नोत्तरास्तथैवान्ये नृत्यगीतं च कौतुकम् ।।२३।।

नारद से तारागण तथा उसी प्रकार विमान, प्रश्नोत्तर और अन्य नृत्यगीतादि कौतुक भी उत्पन्न हुए ॥ २३ ॥

एते दक्षमरीच्याद्याः कृतदारान् बहून् सुतान् ।
उत्पाद्योत्पाद्य पृथिवीं दिवं च समपूरयन् ।।२४।।

इन दक्ष मरीचि आदि ने विवाह कर बहुत-से पुत्रों को उत्पन्न करके पृथ्वी एवं आकाश को अपनी सन्तानों से भर दिया ॥ २४ ॥

तेषां सुतेभ्यश्च सुतास्तत्पुत्रेभ्यः परे सुताः ।
समुत्पन्नाः प्रवर्तन्ते ह्यद्यापि भुवनेषु वै ।।२५।।

उन्हीं के पुत्रों के पुत्र, उनके पुत्रों के भी पुत्र उत्पन्न हो, आज भी लोकों में उत्पन्न हो रहे हैं ॥ २५ ॥

विष्णोस्तु चक्षुषोः सूर्यो मनसश्चन्द्रमाः स्मृतः ।
श्रोत्राद्वायुः समुद्भूतो मुखादग्निरजायत ।।२६।।

विष्णु के नेत्र से सूर्य, मन से चन्द्रमा, कर्ण से वायु तथा मुख से अग्नि उत्पन्न हुए ऐसा कहा गया है ॥ २६ ॥

प्रतिसर्गोह्ययं विष्णोस्तथा चापि दिशो दश ।
सृष्ट्यर्थं चन्द्रमाः पश्चादत्रिनेत्रादवातरत् ।
भास्करः कश्यपाज्जातो भार्यया च समन्वितः ।।२७।।

क्योंकि यह तथा दशों दिशायें विष्णु का प्रतिसर्ग हैं । बाद में सृष्टि कार्य हेतु चन्द्रमा अत्रि मुनि के नेत्रों से प्रकट हुआ तथा सूर्य कश्यप ऋषि की पत्नी के संयोग वश उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥

रुद्राश्च बहवो जाता भूतग्रामाश्चतुर्विधाः ।
श्ववराहोष्ट्ररूपाश्च प्लवगोमायूगोमुखाः ।।२८।।
ऋक्षमार्जारवदनाः सिंहव्याघ्रमुखाः परे ।
नानाशस्त्रधराः सर्वे नानारूपाः महाबलाः ।।२९।।

बहुत से रुद्रगण तथा चार प्रकार के भूतों के समुदाय उत्पन्न हुए—उनमें कोई कुत्ते, सुअर तथा ऊँट के रूप वाले थे, कुछ बन्दर, गीदड़ और गौ के मुँह वाले, कुछ भालू तथा बिल्ली के समान मुख वाले तो दूसरे सिंह, व्याघ्र के मुख वाले थे । वे अनेक शस्त्र धारण करने तथा अनेक रूपों वाले महाबलशाली थे ॥ २८-२९ ॥

एष वः प्रतिसर्गोऽपि कथितो द्विजसत्तमाः ।
दैनन्दिनं च प्रलयं शृणुध्वं कल्पशेषतः ।।३०।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे सृष्टिकथने षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

हे द्विजसत्तमों ! यह आप लोगों से प्रतिसर्ग कहा गया । अब दैनन्दिन और कल्पान्त में होने वाले प्रलय के विषय में सुनिये ॥ ३० ॥

॥ श्रीकालिकापुराण में सृष्टि-कथन सम्बन्धी छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६ ॥



सप्तविंशोऽध्यायः

सृष्टि-कथनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

मन्वन्तरं मनोः कालो यावत् पालयते प्रजाः ।
एको मनुः स कालस्तु मन्वन्तरमितिश्रुतम् ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– मन्वन्तर मनु का वह समय है, जितने में वह प्रजा का पालन करता है। एक मनु का वह समय उसका मन्वन्तर सुना जाता है ॥ १ ॥

तदेकसप्ततियुगैर्देवानामिह जायते ।
तैश्चतुर्दशभिः कल्पो दिनमेकं तु वेधसः ।।२।।

वह देवताओं के एकहत्तर युग तथा मनुष्यों के २८४ युग के मान का होता है। उन चौदह मन्वन्तरों का एक कल्प होता है जो ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है ॥ २ ॥

दिनान्ते बह्मणो जाते सुषुप्सा तस्य जायते ।
योगनिद्रा महामाया समायाति पितामहम् ।।३।।

ब्रह्मा का दिन समाप्त होने पर उनकी सोने की इच्छा उत्पन्न होती है उस समय योगनिद्रा महामाया पितामह के निकट आती है ॥ ३ ॥

नाभिपद्मं प्रविश्याथ विष्णोरमिततेजसः ।
सुखं शेते स भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।।४।।

तब वह लोक के पितामह भगवान् ब्रह्मा अमित तेजस्वी विष्णु के नाभि कमल में प्रवेश कर सुखपूर्वक सोते हैं ॥ ४ ॥

ततो विष्णुः स्वयं भूत्वा रुद्ररूपी जनार्दनः ।
पूर्ववन्नाशयामास स सर्वं भुवनत्रयम् ।।५।।
वायुना वह्निना सार्धं दाहयामास वै यथा ।
महाप्रलयकालेषु तथा सर्वं जगत् त्रयम् ।।६।।

तब जनार्दन विष्णु ने स्वयं रुद्र रूपी होकर महाप्रलय काल में पहले जैसे वायु और अग्नि के सहयोग से जलाकर समस्त तीनों लोकों को नष्ट किया था वैसे ही वे तीनों लोकों को नष्ट करते हैं ॥ ५-६ ॥

जनं यान्ति प्रतापार्ता महर्लोकनिवासिनः ।
त्रैलोक्यदाहसमये पीडिता दारुणाग्निना ।।७।।

त्रैलोक्य के दाह के समय महर्लोक के निवासी प्रचण्ड ताप से दुःखी तथा भयानक अग्नि से पीड़ित हो जन लोक को चले जाते हैं ॥ ७ ॥

ततः कालान्तकैर्मेघैर्नानावर्णैर्महास्वनैः ।
समुत्पाद्य महावृष्टिमापूर्य भुवनत्रयम् ।।८।।
चलत्तरंगैस्तोयोघैराध्रुवस्थानसंगतैः ।
निधाय जठरे लोकानिमांस्त्रीन् स जनार्दनः ।
नागपर्यंकशयने शेते स परमेश्वरः ।।९।।

तब काल एवं यमराज के समान अनेक रङ्गों तथा महान ध्वनि वाले बादलों द्वारा महावृष्टि उत्पन्न कर, चञ्चल तरङ्गों तथा ध्रुव स्थान तक पहुँचने वाली जलराशि से तीनों लोकों को पूर्णकर वह जनार्दन उन्हें अपने पेट में रख लेते हैं और वह परमेश्वर नाग के पलंग पर सोते हैं ॥ ८-९ ॥

शयानं नाभिकमले ब्रह्माणं स जगप्रभुः ।
संस्थाप्य त्रीनिमाँल्लोकान् दग्ध्वा जगध्वा सर्वश्रियासह ।।१०।।
शेते स भोगिशय्यायां ब्रह्मा नारायणात्मकः ।
योगनिद्रावशं जातस्त्रैलोक्यग्रासबृंहितः ।।११।।

ब्रह्मा को अपने नाभि कमल में शयन कराये हुए, इन तीनों लोकों को जलाकर और अपने जठर में स्थापित कर नारायण रूपधारी ब्रह्मा, जगद्प्रभु विष्णु, लक्ष्मी के साथ तीनों लोकों को ग्रसित करते हुए शेषनाग की शय्या पर शयन करते हैं ।।१०-११।।

त्रैलोक्यमखिलं दग्धं यदा कालाग्निना तदा ।
अनन्तः पृथिवीं त्यक्त्वा विष्णोरन्तिकमागतः ।।१२।।

जब समस्त तीनों लोक कालाग्नि से जल जाता है तब अनन्त पृथ्वी को छोड़कर विष्णु के समीप आ जाते हैं ॥ १२ ॥

तेन त्यक्ता तु पृथिवी क्षणमात्रादधोगता ।
पतिता कूर्मपृष्ठे च विशीर्णेव तदाभवत् ।।१३।।

तब उनके द्वारा छोड़ी गई यह पृथ्वी क्षण भर में नीचे जाकर कच्छप भगवान के पीठ पर गिरकर नष्ट प्राय हो जाती हैं ॥ १३ ॥

कूर्मोऽपि महतो यत्नाच्चलन्तीं पृथिवीं जले ।
ब्रह्माण्डं पद्भिराक्रम्य पृष्ठे दध्रे धरां तदा ।।१४।।

तब कूर्म भी ब्रह्माण्ड को अपने पैरों से आक्रान्त करते हुए बड़े यत्न से जल में चलती हुई इस पृथ्वी को धारण करते हैं ॥ १४ ॥

ब्रह्माण्डखण्डसंयोगाच्चूर्णिता पृथिवी भवेत् ।
इति तां परिजग्राह कूर्मरूपी जनार्दनः ।।१५।।
चलज्जलौघसंसर्गाच्चलन्त्या धरया तदा ।
कूर्मपृष्ठं बहुतरैर्वरण्डैर्विततीकृतम् ।।१६।।

ब्रह्माण्ड के टुकड़े से टकरा कर यह पृथ्वी चूर्ण हो जाएगी, इसीलिए कूर्म रूपधारी जनार्दन विष्णु तब अपने बहुत से उठे हुए ढूहों से युक्त विशाल कूर्मपीठ पर, जलराशि पर चलती हुई पृथ्वी को धारण करते हुए विचरण करते रहे ॥ १५-१६ ॥

अनन्तस्तत्र गत्वा तु यत्र क्षीरोदसागरः ।
तत्र स्वयं श्रिया युक्तं सुषुप्सन्तं जनार्दनम् ।।१७।।
फणया मध्यया दध्रे त्रैलोक्यग्रासबृंहितम् ।
पूर्णं फणाः वितत्योर्धं पद्मं कृत्वा महाबलः ।
विष्णुमाच्छादयामास शेषाख्यः परमेश्वरम् ।।१८।।

तब महाबलशाली शेष नामक अनन्त भी, वहाँ क्षीर सागर में गये जहाँ तीनों लोकों को निगल कर वृद्धिगत हो स्वयं लक्ष्मी के साथ परमेश्वर जनार्दन विष्णु सो रहे थे। वहाँ जाकर उन्होंने पहले अपने पूर्वी फणों को अर्धपद्म के आकार में फैलाया फिर उन्हें (विष्णु को) उन फणों के बीच धारण कर ढक लिया ॥ १७-१८ ॥

तस्योपधानमकरोदनन्तो दक्षिणां फणाम् ।
उत्तरां पादयोश्चक्रे उपधानं महाबलः ।।१९।।

उस महाबलशाली अनन्त ने अपने दक्षिणी फण को सिर की ओर का उपधान बनाया तो उत्तरी फण को दोनों पैरों की ओर का उपधान (तकिया) बनाया ॥ १९ ॥

तालवृन्तं तदा चक्रे सशेषः पश्चिमां फणाम् ।
स्वपन्तं बीजयामास शेषरूपी जनार्दनम् ।।२०।।

तब उस शेष ने अपने पश्चिमी फन को ताड़ का पंखा बनाकर सोते हुए शेष रूपधारी जनार्दन विष्णु पर हवा करते रहे ॥ २० ॥

शङ्खं चक्रं नन्दकासिमिषुधी द्वे महाबलः ।
ऐशान्ययाथ फणया स दध्रे गरुडं तथा ।।२१।।
गदां पद्मं च शार्ङ्गश्च तथैव विविधायुधम् ।
यानि चान्यानि तस्यासन्नाग्नेय्या फणया दधौ ।।२२।।

शङ्ख, चक्र, नन्दक नामक तलवार, दो तरकसों और गरुड़ को उस महाबली ने अपने ईशान कोण वाले फण पर धारण किया तो गदा, पद्म, शार्ङ्ग धनुष तथा अन्य भी जो उन (विष्णु) के भाँति-भाँति के अस्त्र-शस्त्र थे, उन्हें अपने आग्नेय दिशा वाले फण पर धारण किया ॥ २१-२२ ॥

एवं कृत्वा स्वकं कायं शयनीयं तदा हरेः ।
पृथ्वीमधरकायेन मग्नामाक्रम्य चाम्भसि ।।२३।।
त्रैलोक्यं ब्रह्मसहितं सलक्ष्मीकं जनार्दनम् ।
सोपासङ्गं जगद्बीजं जगत्कारणकारणम् ।।२४।।

इस प्रकार अपने शरीर को विष्णु के लिए शैय्या का रूप देकर जल में डूबी हुई पृथ्वी को अपने शरीर के निचले भाग से पकड़कर तीनों लोकों, ब्रह्मा तथा लक्ष्मी एवं सेवकों के सहित जनार्दन को जो जगत के बीज रूप में जगत के कारण के भी कारण हैं, धारण किया ॥ २३-२४ ॥

नित्यानन्दं वेदमयं ब्रह्मण्यं परमेश्वरम् ।
जगत्कारणकर्तारं जगत्कारणकारणम् ।।२५।।
भूतभव्यभवन्नाथं परावरगतिं हरिम् ।
दधार शिरसा तन्तु स्वयमेव स्वकां तनुम् ।।२६।।

उन नित्य आनन्दमय, ज्ञानमय, ब्राह्मणभक्त, परम ईश्वर, संसार के कारण को भी करने वाले, जगत के कारण के भी कारण, भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में विराजमान (शाश्वत) जो उच्च और नीच दोनों ही गतियों के सञ्चालक भगवान विष्णु को जो स्वयं ही उनके ही एक रूप हैं, अनन्त देव ने शिर पर धारण किया ॥ २५-२६ ॥

एवं ब्रह्मदिनस्यैव प्रमाणेन निशां हरिः ।
सन्ध्यां च समभिव्याप्य शेते नारायणोऽव्ययः ।।२७।।

इस प्रकार ब्रह्मा के दिन के ही समान मान वाली रात्रि और सन्ध्या को समाहित कर अविनाशी नारायण शयन करते रहते हैं ॥ २७ ॥

यस्मादयन्तु प्रलयो ब्रह्मणः स्याद् दिने दिने ।
तस्माद् दैनिन्दिनमिति ख्यापयन्ति पुराविदः ।।२८।।

इस प्रकार का प्रलय ब्रह्मा के प्रतिदिन होता है, इसीलिए इसे पुराविद् (प्राचीन ज्ञान के जानने वाले) दैनन्दिन प्रलय नाम देते हैं ॥ २८ ॥

व्यतीतायां निशायां तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
त्यक्त्वा निद्रां समुत्तस्थौ स पुनः सृष्टये हितः ।।२९।।

उपर्युक्त रात्रि के बीत जाने पर लोक पितामह ब्रह्मा पुनः सृष्टि के लिए नींद से उठ गये ॥ २९ ॥

त्रैलोक्यं तोयसम्पूर्णं शयानं पुरुषोत्तमम् ।
निरीक्ष्य वैष्णवीं मायां महामायां जगन्मयीम् ।
योगनिद्रां स तुष्टाव हरेरंगेषु संस्थिताम् ।।३०।।

उस समय जल से पूर्ण तीनों लोकों को तथा सोये हुए पुरुषोत्तम विष्णु को देखकर उन्होंने विष्णु के ही अङ्गों में स्थित जगन्मयी, महामाया, विष्णुमाया, योगनिद्रा की स्तुति किया ॥ ३० ॥

।। ब्रह्मोवाच ।।

चितिशक्तिं निर्विकारां परब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
प्रणमामि महामायां योगनिद्रां सनातनीम् ।।३१।।

ब्रह्मा बोले– मैं चितिशक्तिस्वरूपा, विकारों से शून्य, परब्रह्मस्वरूप वाली सनातन रहने वाली महामायायोगनिद्रा को प्रणाम करता हूँ ॥ ३१ ॥

विशेष– यहाँ चिति शक्ति कहकर मार्कण्डेय पुराण सङ्केतित ''चिति रूपेण या कृत्स्नं एतद् व्याप्य स्थिता जगत'' चैतन्यरूपा भगवती की स्तुति ही अभीष्ट है।

त्वं विद्या योगिनां देवि त्वं गतिस्त्वं मतिः स्तुतिः ।
त्वं सृष्टिस्त्वं स्थितिः स्वाहा स्वधा त्वमिह गीतिका ।।३२।।

हे देवि ! आप योगियों की विद्या है, आप ही गति, मति एवं स्तुति हैं। आप ही सृष्टि, स्थिति, स्वाहा, स्वधा और इस लोक में गीत भी हैं ॥३२॥

त्वं सामगीतिस्त्वं नीतिस्त्वं ह्रीः श्रीस्त्वं सरस्वती ।
योगनिद्रा महामाया मोहनिद्रा त्वमीश्वरी ।।३३।।

आप सामवेद गान, नीति, लज्जा, लक्ष्मीं, सरस्वती, योगनिद्रा हैं। आप ही महामाया मोहनिद्रा हैं, ईश्वरी भी आप ही हैं ॥ ३३ ॥

त्वं कान्तिः सर्वशक्तिस्त्वं त्वं तनुर्वैष्णवी शिवा ।
त्वं धात्री सर्वलोकानामविद्या त्वं शरीरिणाम् ।।३४।।

आप कान्ति तथा सबकी शक्ति हैं किंवा सभी शक्ति आप ही हैं। आप विष्णुशक्ति शरीरधारिणी वैष्णवी हैं, शिवशक्ति रूप शिवा भी आप ही हैं। आप समस्त लोकों को धारण करने वाली हैं और शरीरधारियों में व्याप्त अविद्या भी आप ही हैं ॥ ३४ ॥

आधारशक्तिस्त्वं देवी त्वं हि ब्रह्माण्डधारिणी ।
त्वमेव सर्वजगतां प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ।।३५।।

हे देवि ! आप ब्रह्माण्ड को धारण करने वाली आधारशक्ति हैं, आप ही सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाली त्रिगुणात्मिका प्रकृति हैं ॥ ३५ ॥

त्वं सावित्री च गायत्री सौम्यासौम्यातिशोभना ।
त्वं सिसृक्षा हरेर्नित्या सुषुप्सा त्वं सुषुप्तिका ।।३६।।

आप सावित्री और गायत्री हैं, आप सौम्य में सौम्य अथवा सौम्य और असौम्य दोनों ही हैं तथापि अतिशोभना हैं, बहुत ही सुन्दर लगने वाली हैं, आप विष्णु की सृष्टि की इच्छा हैं, उनके शयन की इच्छा भी आप ही हैं तथा सुखपूर्वक सोने वाली भी आप ही हैं ॥ ३६ ॥

पुष्टिर्लज्जा क्षमा शान्तिस्त्वं धृतिः परमेश्वरी ।
त्वयैव क्षितिरूपेण ध्रियते सचराचरम् ।।३७।।

हे परमेश्वरी ! आप पुष्टि, लज्जा, क्षमा, शान्ति और धृति हैं, आप ही पृथ्वी रूप से इस चराचर को धारण करती हैं ॥ ३७ ॥

त्वमापस्त्वमपां माता सर्वान्तर्गतचारिणी ।
स्तुतिः स्तुत्या च स्तोत्री च स्तुतिशक्तिस्त्वमेव च ।।३८।।

हे माता ! आप सबके अन्तर्गत सञ्चरण करने वाली, जल तत्त्व का भी सूक्ष्म कारण सूक्ष्म जल तन्मात्र रूप आप ही हैं। आप ही स्तुति, स्तुति योग्य, स्तुति करने वाली तथा स्तुतिशक्ति भी आप ही हैं ॥ ३८ ॥

त्वामहं किन्नु स्तोष्यामि प्रसीद परमेश्वरि ।
नमस्तुभ्यं जगन्मातः प्रबोधय जनार्दनम् ।।३९।।

हे परमेश्वरी ! मैं आपकी क्या स्तुति करूँगा (कर सकता हूँ) अर्थात् नहीं कर सकता। हे जगन्माता ! आपको नमस्कार है। आप प्रसन्न होइये तथा इन सोये हुए जनार्दन को प्रबुद्ध कीजिए, जगाइये ॥ ३९ ॥

एवं स्तुता महामाया ब्रह्मणा लोककारिणा ।
नेत्रास्यनासिका - बाहु - हृदयान्निर्गता हरे ।
राजसीं मूर्तिमाश्रित्य सा तस्थौ ब्रह्मदर्शने ।।४०।।

इस प्रकार लोककर्त्ता ब्रह्मा द्वारा स्तुति किये जाने पर महामाया, भगवान विष्णु के नेत्र, बाहु एवं हृदय से बाहर निकल आयीं तथा उनको दर्शन देने के लिए रजोगुणयुक्त रूप धारण कर उपस्थित हुईं ॥ ४० ॥

ततो जनार्दनो भोगिशयनान्निद्रया क्षणात् ।
परित्यक्तः समुत्तस्थौ सृष्टये चाकरोन्मतिम् ।।४१।।

तब निद्रा द्वारा छोड़े जाने पर जनार्दन विष्णु शीघ्र ही उस नाग शैय्या से उठ खड़े हुए और सृष्टि हेतु विचार किये ॥ ४१ ॥

ततो वराहरूपेण निमग्नां पृथिवीं जले ।
मग्नां समुद्धधाराशु न्यधाच्च सलिलोपरि ।।४२।।

तब वे शीघ्र ही वराह रूप द्वारा जल में डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार किये और उस डूबी हुई पृथ्वी को जल के ऊपर स्थापित किये ॥ ४२ ॥

तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता ।
विततत्वाच्च देहस्य न मही याति संप्लवम् ।।४३।।

उस विशाल जलराशि पर एक बड़ी नौका के समान स्थित यह पृथ्वी अपने शरीर के विस्तार के कारण आज भी नहीं डूबती ।। ४३ ।।

ततो हरिः क्षितिं गत्वा तोयराशिं स्वमायया ।
संहृत्य जन्तुस्थितये प्रवृत्तः स्वयमेव हि ।।४४।।

तब विष्णु पृथ्वी तल पर गये और अपनी माया से उस जलराशि का संहार (समापन) कर प्राणियों के पालन में प्रवृत्त हो गये ।। ४४ ।।

अनन्तोऽपि यथापूर्वं तथा गत्वा क्षितेस्तलम् ।
पृथिवीं धारयामास कूर्मस्योपरि संस्थितः ।।४५।।

अनन्त ने भी पहले की भाँति ही पृथ्वी के निचले भाग में जाकर कूर्म पर स्थित हो पृथ्वी को धारण किया ।। ४५ ।।

ततो ब्रह्मा समुत्पाद्य सर्वानेव प्रजापतीन् ।
जगदुत्पादयामास सर्वलोकपितामहः ।।४६।।

तब सभी लोकों के पितामह ब्रह्मा ने सभी प्रजापतियों को उत्पन्न करके संसार को उत्पन्न किया ।। ४६ ।।

ब्रह्मा वा कुरुते सृष्टिं यदान्ये वापि कुर्वते ।
दक्षाद्यास्तु प्रजापालाः स्वयमेव तदिच्छया ।।४७।।

ब्रह्मा स्वयं जो सृष्टि करते हैं या दक्षादि अन्य प्रजापति जो सृष्टि करते हैं सब उन्हीं की इच्छा से होता है ।। ४७ ।।

परब्रह्मस्वरूपी यः सोऽनुगृहणाति सन्ततम् ।
प्रकृतिश्चानुगृहणाति महाभूतानि पञ्च वै ।।४८।।
पुरुषश्चानुगृहणाति तथैव महदादयः ।
ईश्वरेच्छान्वधिष्ठानात् पुरुषादष्टसंचयात् ।।४९।।

इस हेतु जो परब्रह्म रूपी परमात्मा है वही निरन्तर अनुग्रह करता है। इसी भाँति प्रकृति तथा पञ्चमहाभूत भी अनुग्रह करते हैं। ईश्वरेच्छा पर आधारित होने तथा पुरुष से उत्पन्न आठ महदादिपदार्थों का एक सञ्चय होने से पुरुष तथा महदादि भी अनुग्रह करते हैं ।। ४८-४९ ।।

पुरुषाणामधिष्ठानान्महाभूतगणस्य च ।
तथैव महदादीनां कालस्य च महात्मनः ।
अधिष्ठानात् प्रधानस्य यच्च किञ्चन जायते ।।५०।।

पुरुषों पर आधारित होने के कारण महाभूतों की उत्पत्ति होती है वैसे ही महात्मा काल तथा प्रधान पर आधारित होने से महदादि का जो कुछ होता है सो होता है ।। ५० ।।

स्थावरं जङ्गमं वापि स्थिरं वाप्यथवोम्भूतम् ।
सर्वमेतदधिष्ठानाज्जायते द्विजसत्तमाः ।।५१।।

हे द्विजसत्तमों ! स्थावर या जङ्गम, स्थिर या उद्भूत जो भी कुछ होता है, वह सब उसी के अधिष्ठान से होता है ।। ५१ ।।

इति वः कथितं सर्वं यथैवादर्शयत् पुरा ।
हराय सृष्टिसंहार-कल्पास्तान् भगवान् हरिः ।।५२।।

यह सब मैंने आपलोगों से वैसा ही कहा जैसा प्राचीन काल में सृष्टि और संहार का रूप भगवान् विष्णु ने भगवान शिव को दिखाया था ।। ५२ ।।

यथा जगत् प्रपञ्चस्यासारता दर्शिता परा ।
यच्च सारं दर्शितं तन्मत्तः शृण्वन्तु वै द्विजाः ।।५३।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे सृष्टिकथने सप्तविंशोऽध्यायः ।।२७।।

हे द्विजों ! जैसी जगत-प्रपञ्च की परम असारता तथा सारता शिव को दिखायी गयी थी, उसे मुझसे सुनें ।। ५३ ।।

।। श्रीकालिकापुराण में सृष्टि-कथन सम्बन्धी सत्ताईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। २७ ।।



अष्टाविंशोऽध्यायः

सारासारनिरूपणम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

जगत् सर्वं तु निःसारमनित्यं दुःखभाजनम् ।
उत्पद्यते क्षणादेतत् क्षणादेतद्विपद्यते ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– यह सम्पूर्ण जगत तत्त्वहीन, अनित्य तथा दुःखपूर्ण है। यह क्षण भर में ही उत्पन्न होता है और एक ही क्षण में नष्ट भी हो जाता है ॥ १ ॥

तथैवोत्पद्यते सारान्निःसारं जगदञ्जसा ।
पुनस्तस्मिन् विलीयन्ते महाप्रलयसङ्गमे ।।२।।

यह सारहीन जगत् जिस प्रकार सार (परम) तत्त्व से शीघ्रतापूर्वक उत्पन्न होता है वैसे ही महा प्रलयकाल में पुनः उसी में विलीन हो जाता है ॥ २ ॥

उत्पत्तिप्रलयाभ्यां तु जगन्निःसारतां हरिः ।
शम्भवे दर्शयामास भावेन जगतां पतिः ।।३।।

संसार के स्वामी भगवान् विष्णु ने शिव को भाव जगत में ही उत्पत्ति और प्रलय के माध्यम से संसार की असारता दिखायी ॥ ३ ॥

एकं शिवं शान्तमनन्तमच्युतं
परात्परं ज्ञानमयं विशेषम् ।
अद्वैतमव्यक्तमचिन्त्यरूपं
सारं त्वेकं नास्ति सारं तदन्यत् ।।४।।

एकमात्र शिव ही शान्त, अन्तहीन, अच्युत, पर से भी पर, ज्ञान मय, विशेष, अद्वैत (भेदरहित), अव्यक्त, अचिन्त्यरूप, एवं सार तत्त्व हैं। उनसे भिन्न अन्य कोई सार तत्त्व नहीं है ॥ ४ ॥

यस्मादेतज्जायते विश्वमग्र्यं
यस्माल्लीनं स्यात्तु पश्चात् स्थितञ्च ।
आकाशवन्मेघजालस्य वृत्त्या
यद्विश्वं वै ध्रियते तत्त्वसारम् ।।५।।

सर्वप्रथम यह विश्व जिससे उत्पन्न होता है और स्थित होता है तथा अन्त में जिसमें लीन होता है। मेघसमूह को आकाश जिस प्रकार धारण करता है, उसी प्रकार जो विश्व को धारण करता है, वही सारतत्त्व है ॥ ५ ॥

अष्टाङ्गयोगैर्यदवाप्तुमिच्छन्।
योगी पुनात्यात्मरूपं सदैव।
निवर्तते प्राप्य यं नेह लोके
तद्वै सारं सारमन्यन्न चास्ति ।।६।।

योगीवृन्द यमनियमादि अष्टाङ्ग योग द्वारा जिसके प्राप्ति की इच्छा रखते हुए सदैव अपने को पवित्र करते हैं तथा जिसको एक बार प्राप्त करके पुनः इस लोक, संसार में नहीं लौटते, वही सारतत्त्व है। उसके अतिरिक्त कोई दूसरा सार तत्त्व नहीं है ॥ ६ ॥

सारो द्वितीयो धर्मस्तु यो नित्यप्राप्तये भवेत्।
यो वै निवर्तको नाम तत्रासारः प्रवर्तकः ।।७।।

दूसरा सार धर्म है जो पूर्व वर्णित नित्य परमसार प्राप्ति का साधन है। एकमात्र जो निवृत्ति (बन्धन से मुक्ति) दिलाने वाला है, वही असार तत्त्व प्रवृत्ति के बन्धन में डालने वाला है ॥ ७ ॥

धर्मं शनैः सञ्चिनुयाद्वल्मीको मृत्तिकां यथा।
सहायार्थं परे लोके पूर्वपापविमुक्तये ।।८।।

जिस प्रकार वल्मीकि (बाँबी) में रहने वाली दीमक धीरे-धीरे मिट्टी का संग्रह करती है, उसी प्रकार धीरे-धीरे परलोक में सहायता हेतु तथा पूर्व के पापों से छुटकारा पाने के लिये धर्म का सञ्चय करना चाहिये ॥ ८ ॥

एको धर्मः परं श्रेयः सर्वसंसारकर्मसु।
इतरे तु त्रयो धर्माज्जायन्तेऽर्थादयोऽपरे ।।९।।

संसार के सभी कर्मों में एकमात्र धर्म, परम कल्याणकर है—अर्थ, काम, मोक्षादि तीन अन्य धर्म से ही उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥

वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वाथ कर्तनम्।
न तु धर्मपरित्यागो लोके वेदे च गर्हितः ।।१०।।

प्राण का परित्याग कर देना अथवा शिर को कटवा देना उत्तम है, किन्तु धर्म का परित्याग उचित नहीं है। यह लोक और वेद दोनों में ही निन्दित है ॥ १० ॥

धर्मेण ध्रियते लोको धर्मेण ध्रियते जगत्।
धर्मेणैव सुराः सर्वे सुरत्वमगमन् पुरा ।।११।।

धर्म से लोक को धारण किया जाता है तथा धर्म से ही संसार को धारण किया जाता है। प्राचीनकाल में देवताओं ने धर्म के द्वारा ही देवत्व को प्राप्त किया है ॥ ११ ॥

धर्मश्चतुस्पाद्भगवान् जगत् पालयतेऽनिशम् ।
स एव मूलं पुरुषो धर्म इत्यभिधीयते ।।१२।।

भगवान धर्म स्वयं अपने सत्य, तप, दया, और दान इन चारों चरणों से युक्त हो निरन्तर जगत का पालन करते हैं। वस्तुतः वह मूल पुरुष परमात्मा ही धर्म कहा जाता है ॥ १२ ॥

सर्वं क्षरति लोकेऽस्मिन् धर्मो नैव च्युतो भवेत् ।
धर्माद् यो न विचलति स एवाक्षर उच्यते ।।१३।।

इस लोक में सब कुछ नष्ट होता किन्तु धर्म कभी विचलित नहीं होता। जो धर्म से विचलित नहीं होता है वही अक्षर कहा जाता है ॥ १३ ॥

एतद्वः कथितं सारं निःसारं सकलं जगत् ।
यथा स्वयं ददर्शासौ शम्भुर्ज्ञानेन स्वेऽन्तरे ।।१४।।

यह मैंने आपलोगों से वह सारतत्त्व बताया तथा सारहीन समस्त जगत् का वर्णन किया, जिसे स्वयं भगवान् शिव ने अपने अन्तर में ही ज्ञान के द्वारा देखा था ॥ १४ ॥

एतद्वै दर्शयामास स विष्णुर्जगतां पतिः ।
स्वयं जग्राह मनसा ध्यानेनात्मनि शङ्करः ।।१५।।

इस प्रकार का संसार के स्वामी विष्णु ने दिखाया तथा शंकर ने अपने में मानसिक ध्यान द्वारा उसे स्वयं ग्रहण किया ॥ १५ ॥

सारं तत्त्वं परमं निष्कलं य-
न्मूर्त्याहीनं मूर्तिमान् धर्म एषः ।
सारोऽन्त्योऽसौ सारहीनं तदन्यज्-
ज्ञात्वैवेत्थं याति नित्यं महाधीः ।।१६।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे सारासारनिरूपणं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

जो सारतत्त्व अपने मूर्तिहीन रूप में परम और सम्पूर्ण है, किन्तु मूर्तरूप में यही धर्म ही सार है। इससे भिन्न जो कुछ है वह सारहीन है, जिसे जानकर महान बुद्धि वाले ज्ञानीजन नित्य तत्त्व को प्राप्त करते हैं ॥ १६ ॥

॥ श्रीकालिकापुराण में सारासारनिरूपण नामक अट्ठाइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८ ॥



एकोनत्रिंशोऽध्यायः

वाराहशङ्करसंवादः

।। ऋषयः ऊचुः ।।

ये सृष्टाः शम्भुना पूर्वं भूतग्रामाश्चतुर्विधाः ।
किमर्थं ते समुत्पन्नाः कथं वानेकरूपता ।।१।।

ऋषिगण बोले– शिव के द्वारा पहले चार प्रकार के जिन भूतों की सृष्टि की गई वे किस हेतु उत्पन्न हुए तथा उनमें अनेकरूपता क्यों थी?।। १ ।।

शरीरमर्द्धं वाराहमर्द्धं दन्ताबलं तथा ।
सिंहव्याघ्रशरीराच्च केचिद्केचिद्गणाधिपाः ।।२।।

किन्हीं गणों का आधा शरीर शूकर का था तो आधा हाथी का, कोई गणों के स्वामी सिंह के समान शरीर वाले थे तो कोई बाघ के शरीर वाले ।। २ ।।

कथं ते वा गणाः क्रूराः किं भोगास्ते महौजसः ।
एतत् सर्वं वयं श्रोतुमिच्छामो द्विजसत्तम ।।३।।

हे द्विज श्रेष्ठ ! वे क्रूरगण कैसे थे ? उन महान ओजस्वी गणों का भोग क्या था ? यह सब हम सुनना चाहते हैं ।। ३ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे यथा शम्भुगणाभवन् ।
यदर्थं ते समुत्पन्ना यस्मात्ते नैकरूपिणः ।।४।।

मार्कण्डेय बोले– समस्त मुनिगण ! जिस प्रकार शिव के गण उत्पन्न हुए, जिस लिये वे उत्पन्न हुए तथा जिस कारण से उनमें अनेकता आई, उसे सुनिये ।। ४ ।।

एतद्वः परमं गुह्यमिदं धर्मार्थकामदम् ।
एतद् हि परमं तेजः सततं परमं तपः ।।५।।

यह प्रसंग अत्यन्त गुप्त तथा धर्म, अर्थ और काम जैसे पुरुषार्थों को देने वाला है। यह ज्ञान ही परम तेज है, यही निरन्तर रहने वाला श्रेष्ठ तप है ।। ५ ।।

इदं श्रुत्वा महाख्यानं परत्रेह न सीदति ।
यशस्यं धर्म्यमायुष्यं तुष्टिपुष्टिप्रदं परम् ।।६।।

परम यश को करने वाले, धर्म तथा आयुष्य, तुष्टि-पुष्टि प्रदान करने वाले इस महान आख्यान को सुनकर इसे सुनने वाला इस लोक या परलोक में कहीं भी दुःखी नहीं होता अर्थात् सर्वत्र सुखी होता है ।। ६ ।।

आदिसर्गेऽथ वाराहे सम्पूर्णे मुनिसत्तमाः ।
शङ्करः प्राह सर्वेशं वाराहं जगतां पतिम् ।।७।।

हे मुनिसत्तमों ! सम्पूर्ण आदिवाराहसर्ग के इस आख्यान को शिव ने संसार के स्वामी, सबके ईश्वर वाराह भगवान से स्वयं कहा था ।। ७ ।।

।। ईश्वर उवाच ।।

यदर्थं भवता रूपं वाराहं कल्पितं विभो ।
तत्ते पूर्णं कृतं पृथ्वी यथावत् स्थापिता त्वया ।।८।।

शिव बोले– हे विप्र ! जिस निमित्त आपके द्वारा वाराह रूप धारण किया गया था वह आपके द्वारा पूर्ण कर दिया गया है। आप द्वारा पृथ्वी ज्यों की त्यों स्थापित हो गई है ।। ८ ।।

सागराणां च संस्थानं नदीनां च तथा क्षितेः ।
सृष्टिर्ब्रह्मकृता चापि संजाता त्वत्प्रसादतः ।।९।।

आपकी कृपा से पृथ्वी पर समुद्रों और नदियों की संरचना तथा ब्रह्मा द्वारा की गई सृष्टि भी हो गई ।। ९ ।।

त्वं हि सर्वमयो यज्ञमयस्तेजोमयस्तथा ।
गुरूणामथ सर्वेषां त्वं गुरुस्त्वं परात्परः ।।१०।।

क्योंकि आप सर्वमय, यज्ञमय, तेजमय तथा सभी गुरुओं के भी गुरु हैं। आप श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ हैं ।। १० ।।

त्वां वोढुं न क्षमा पृथ्वी विशीर्णेव जगत्पते ।
यन्त्रिता शैलसङ्घातैर्भवता स्थापितैः पुरा ।।११।।

हे जगत के स्वामी ! यह नष्टप्राय पृथ्वी आपको ढोने में समर्थ नहीं थी; इसीलिए प्राचीन काल में आप द्वारा यह पर्वतों के समूह से नियन्त्रित करके स्थापित की गयी ।। ११ ।।

तस्मात्त्वं त्यज वाराहं शरीरं जगतां पतेः ।
जगन्मयं जगद्रूपं जगत्कारणकारणम् ।।१२।।

इसलिए हे जगत् के स्वामी ! आप इस वाराह के शरीर को छोड़ दें; क्योंकि आप जगत के कारण के भी कारण हैं, जगत के स्वरूप हैं और जगन्मय हैं ।। १२ ।।

कस्त्वां चान्यः क्षमो वोढुं वाराहं ते वपुर्विभो ।
विशेषतस्त्वया पृथ्वी सकामा धार्षिता जले ।
स्त्रीधर्मिणी त्वत्तेजोभिः साधाद्गर्भं च दारुणम् ।।१३।।

हे विभु ! आपके इस वाराह शरीर को धारण करने में दूसरा कौन समर्थ हो सकता है अर्थात् कोई नहीं हो सकता। विशेषकर जब तुमने कामभावयुक्त स्त्री धर्म

(रजो धर्म) वती पृथ्वी से जल में ही सम्पर्क किया जिससे उसने आपके वीर्य से भयानक गर्भ धारण किया है ।। १३ ।।

रजस्वला क्षमा गर्भं यमाधत्त जगत्पते ।
तस्माद्यस्तनयो भावी सोऽप्यादास्यति दुर्यशः ।।१४।।
एष प्राप्यासुरं भावं देवगन्धर्वहिंसकः ।
भविष्यतीति लोकेशः प्राह मां दक्षसन्निधौ ।।१५।।

हे जगत्पति ! रजस्वला अवस्था में पृथ्वी देवी ने जो गर्भ धारण किया है उससे भविष्य में उत्पन्न होने वाला बालक उसे अपयश प्रदान करेगा। वह असुर भाव को प्राप्त करेगा तथा देवताओं और गन्धर्वों की हिंसा करने वाला होगा। ऐसा लोकेश ब्रह्मा ने मुझसे दक्ष प्रजापति के समीप कहा था ।। १४-१५ ।।

मलिनीरतिसंजातं दुष्टन्तेऽनिष्टकारकम् ।
कामुकं त्यज लोकेश वाराहं कायमीदृशम् ।।१६।।

हे लोकेश्वर ! इस प्रकार से मलिन अवस्था में रतिकार्य सम्पादित करने के कारण दूषित हुए, अनिष्टकारी भावग्रस्त अपने इस वाराह के शरीर को आप छोड़ दें ।। १६ ।।

त्वमेव शृष्टिस्थित्यन्तकारको लोकभावनः ।
काले प्राप्ते स्थितिं सृष्टिं संहारं च करिष्यसि ।।१७।।

हे लोकों को उत्पन्न करने वाले ! आप ही सृष्टि पालन तथा अन्त के करने वाले हैं। समय आने पर आप पुनः सृष्टि, पालन और संहार का कार्य करेंगे ।। १७ ।।

तस्माल्लोकहितार्थाय त्यक्त्वा कायं महाबल ।
काले प्राप्ते पुनस्त्वन्यं कायं पोत्रं करिष्यसि ।।१८।।

इसलिए हे महाबली ! लोक के कल्याण के लिए इस शरीर को छोड़ दें, समय आने पर आप दूसरे वाराह शरीर को पुनः धारण करेंगे ।। १८ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा शङ्करस्य महात्मनः ।
वाराहमूर्तिर्भगवान् महादेवमुवाच ह ।।१९।।

मार्कण्डेय बोले– महात्मा शङ्कर की इस वाणी को सुनकर वाराह वेशधारी भगवान ने महादेव से यह वचन कहा— ।। १९ ।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

करिष्येऽहं तव वचस्त्वं यथात्थमहेश्वर ।
इमं तु यज्ञवाराहं कायं त्यक्ष्ये न संशयः ।।२०।।

श्री भगवान् वराह बोले– हे महेश्वर ! मैं तुम्हारे वचन ज्यों का त्यों पालन करूँगा और इस यज्ञवाराह के शरीर को छोड़ दूँगा। इसमें कोई संशय नहीं है ।। २० ।।

काले प्राप्ते पुनस्त्वन्यं कायं वाराहमद्भुतम् ।
करिष्येऽहं दुराधर्षं लोकानां भावनाय वै ।।२१।।

समय आने पर मैं अन्य और अद्भुत वाराह शरीर को धारण कर संसार की उत्पत्ति के लिए अत्यन्त कठिन कार्य करूँगा ॥ २१ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा स महाकायस्तत्रैवान्तरधीयत ।
जगत्गुरुर्जगत्स्त्रष्टा जगद्धाता जगत्पतिः ।।२२।।

मार्कण्डेय बोले– ऐसा कहकर महान शरीर वाले संसार के गुरु, संसार की सृष्टि तथा उसका पालन एवं संहार करने वाले, संसार के स्वामी वाराह भगवान वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ २२ ॥

तस्मिन्नन्तर्हिते देवे देवदेवो महेश्वरः ।
निजं स्थानं देवगणैः स्वगणैश्च जगाम ह ।।२३।।

उन वाराह देव के अन्तर्हित हो जाने पर देवों के देव महेश्वर, शिव भी देवगणों तथा अपने गणों सहित अपने वासस्थान को चले गये ॥ २३ ॥

वाराहोऽपि स्वयं गत्वा लोकालोकाह्वयं गिरिम् ।
वाराह्या सह रेमे स पृथिव्या चारुरूपया ।।२४।।

स्वयं वाराह ने भी लोकालोक नामक पर्वत पर जाकर सुन्दर रूपवाली पृथ्वी, जो वाराह की पत्नी के रूप में थी, उसके साथ रमण किया ॥ २४ ॥

स तया रममाणस्तु सुचिरं पर्वतोत्तमे ।
नावाप तोषं लोकेशः पोत्री परमकामुकः ।।२५।।

अत्यन्त कामासक्त, लोकों के स्वामी, वाराह रूपधारी उन वाराह भगवान ने उस उत्तम पर्वत पर, उस वाराह वेशधारिणी पृथ्वी के साथ बहुत समय तक रमण करने के बाद भी संतोष का अनुभव नहीं किया ॥ २५ ॥

पृथिव्याः पोत्रीरूपाया रमयन्त्यास्ततः सुताः ।
त्रयो जाता द्विजश्रेष्ठास्तेषां नामानि मे शृणु ।।२६।।
सुवृत्तः कनको घोरः सर्व एव महाबलाः ।।२७।।

हे द्विजश्रेष्ठों ! तब सूकरी के रूप वाली तथा उनके साथ रमण करती हुई पृथ्वी के तीन पुत्र उत्पन्न हुए । उनके नाम मुझसे सुनिये— जो क्रमशः (१) सुवृत्त, (२) कनक, (३) घोर थे । वे सभी महाबलशाली थे ॥ २६-२७ ॥

शिशवस्ते मेरुपृष्ठे काञ्चने वप्रसंस्तरे ।
रेमिरेऽन्योन्यसंसक्ता गह्वरेषु सरःसु च ।।२८।।

वे बच्चे भी स्वर्णिम मेरु पृष्ठ के शिखर की शय्या पर, गुफाओं में तथा सरोवरों में एक दूसरे से मिलकर विहार करते रहे ॥ २८ ॥

स तैः पुत्रैः परिवृतो वाराहो भार्यया स्वया ।
रममाणस्तदा कायत्यागं नैवागणद्विजाः ।।२९।।

हे द्विजों ! उस वाराह ने उन पुत्रों से घिर कर अपनी पत्नी के साथ उस समय रमण करते हुए शरीरत्याग की भी चिन्ता नहीं की ॥ २९ ॥

कदाचिच्छिशुभिस्तैस्तु संश्लिष्टः कर्दमान्तरे ।
चकार कर्दमक्रीडां भार्यया च महाबलः ।।३०।।

कभी उस महाबलशाली ने उन बच्चों तथा पत्नी के साथ कीचड़ में लोटपोट कर कीचड़ सम्बन्धी खेल खेला ॥ ३० ॥

सपंकलेपः शुशुभे वराहो मधुपिंगलः ।
सन्ध्याघनो यथातोयं क्षरंस्तोयं तथाविधः ।।३१।।

पंक (कीचड़) के लेप सहित जल बरसाता हुआ वह मधु पिंगल वराह अपने शरीर से सन्ध्याकालीन जल बरसाते बादल के समान सुशोभित हुआ ॥ ३१ ॥

स पुत्रैः परमप्रीतो भार्यया च पृथिव्यया ।
विरुजं धरणीं रेमे मध्यनिम्नाथ साभवत् ।।३२।।

उसने पुत्रों तथा पत्नी पृथ्वी के सहित स्वयं धरणी पर रमण किया इससे वह पृथ्वी मध्यभाग में नीची हो गयी ॥ ३२ ॥

अनन्तोऽपि समाक्रम्य कूर्मं स पृथिवीतले ।
हरिं वहन् भग्नशिराः सातंकोऽभूत्प्रपीडया ।।३३।।

पृथ्वी के नीचे अनन्त भी उस समय भगवान के ढोने की पीड़ावश भयभीत हो, कूर्म को कुचल कर अपने क्षत-विक्षत शिर सहित पृथ्वी के नीचे हो गये ॥ ३३ ॥

सुवृत्तेन स्वर्णवप्रं घोरेण कनकेन च ।
विदारितं पोत्रघातैः स्वर्णभग्नात् कृतं समम् ।।३४।।

सुवृत्त, घोर तथा कनक के द्वारा मिलकर थूथनों के प्रहार से स्वर्ण शिखर तोड़ कर समतल कर दिया गया ॥ ३४ ॥

मेरुपृष्ठे यानि यानि सौवर्णानि द्विजोत्तमाः ।
रचितानि सुरैर्यत्नात्तानि भग्नानि तत्सुतैः ।।३५।।

हे द्विजोत्तमों ! मेरुपृष्ठ पर देवताओं ने प्रयत्नपूर्वक जो भी स्वर्णमय आवास बनाये थे उन्हें उन वराह पुत्रों ने भंग कर दिया ॥ ३५ ॥

मानसादीनि देवानां सरांसि शिशवोऽथ ते ।
आविलानि तदा चक्रुः पोत्रधातैः समन्ततः ।।३६।।

तब देवताओं के मानसादि सरोवरों को भी उन बच्चों ने मिलकर अपने थूथनों के प्रहार से अपवित्र कर दिया ॥ ३६ ॥

पृथिवीवनितारूपा रमयामास पोत्रिणम् ।
स्थावरेण तु रूपेण दुःखमाप्नोति वै दृढम् ।।३७।।

पृथ्वी वनिता रूप में वराह के साथ रमण करते हुए भी अपने स्थावर रूप में अपार दुःख का अनुभव करने लगी ॥ ३७ ॥

सागराश्च सुवृत्ताद्यैरवगाह्य समन्ततः ।
विकीर्णरत्नः पोत्रौघैः सर्व एवाकुलीकृताः ।।३८।।

सभी समुद्र भी उन सुवृत्तादि द्वारा स्नान कर सम्मिलित रूप से किये गये थूथन के प्रहारों से बिखरे रत्नों वाले तथा व्याकुल कर दिये गये ॥ ३८ ॥

इतस्ततश्च शिशुभिः क्रीडद्भिः पोत्रिभिस्तदा ।
जगन्ति तत्र भग्नानि नद्यः कल्पद्रुमास्तथा ।।३९।।

उस समय उन पृथ्वी पर इधर-उधर खेलते हुए वराह पुत्रों द्वारा नदियाँ एवं कल्पद्रुम आदि नष्ट कर दिये गये ॥ ३९ ॥

जानन्नपि जगद्भर्ता वराहः स्वयमेव हि ।
जगत्पीड़ां सुतस्नेहाद्वारयामास नैव तान् ।।४०।।

संसार की इस पीड़ा को जानते हुए भी पुत्र स्नेह के कारण जगत्स्वामी वराह भगवान ने उन्हें स्वयं नहीं रोका ॥ ४० ॥

सुवृत्तः कनको घोरो यदागच्छति वै दिवम् ।
तदा देवगणाः भीताः प्राद्रवन्ति दिशो दश ।।४१।।

सुवृत, कनक, घोर जब स्वर्ग में जाते थे तो देवगण भयभीत हो दशों दिशाओं में भाग जाते थे ॥ ४१ ॥

एवं सुतैर्भार्यया यज्ञपोत्री
क्रीडंस्तुष्टिं नाप काञ्चित् कदाचित् ।
नित्यं नित्यं वर्धते तस्य कामः
कायं त्यक्तुं नैच्छदेष प्रदिष्टः ।।४२।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे वाराहशङ्कर संवादे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

इस प्रकार बच्चों तथा पत्नी के साथ क्रीड़ा से कभी भी किसी प्रकार की सन्तुष्टि की उस वराह ने अनुभूति नहीं की । उनका काम नित्य ही बढ़ता गया । शिव द्वारा कहे जाने पर भी उन्होंने अपने शरीरत्याग की इच्छा नहीं की ॥ ४२ ॥

॥ श्रीकालिकापुराण में वाराहशङ्करसंवाद का उन्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २९ ॥



त्रिंशोऽध्यायः

शरभवाराहयुद्धः

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततो देवागणाः सर्वे सहिता देवयोनिभिः ।
शक्रेण सहिता मन्त्रं चक्रुः सम्यग्जगद्धितम् ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– तब सभी देवतागण, गन्धर्वादि देव योनियों तथा इन्द्र के सहित संसार के कल्याण के लिए भलीभाँति मन्त्रणा किये ॥ १ ॥

ततो निश्चित्य ते सर्वे शक्राद्या मुनिभिः सह ।
शरण्यं शरणं जग्मुर्नारायणमजं विभुम् ।।२।।

तब सभी इन्द्रादि देवता निश्चय करके, मुनियों के साथ, शरण लेने योग्य, शरण स्थान, अजन्मा, व्यापक, नारायण के निकट गये ॥ २ ॥

तं समासाद्य गोविन्दं वासुदेवं जगत्पतिम् ।
प्रणम्य सर्वे त्रिदशास्तुस्टुवुर्गरुडध्वजम् ।।३।।

उन जगत् के स्वामी, गोविन्द, वासुदेव के समीप जाकर, उन्हें प्रणाम कर सभी देवताओं ने उन गरुड़ध्वज की स्तुति की ॥ ३ ॥

।। देवा ऊचुः ।।

नमस्ते देव देवेश जगत्कारण कारक ।
कालस्वरूपिन् भगवन् प्रधानपुरुषात्मक ।।४।।
स्थूल सूक्ष्म जगद्व्यापिन् परेश पुरुषोत्तम ।।५।।

देवगण बोले– हे देवों के देवेश, जगत के कारण (मूल तत्त्व), काल स्वरूप वाले, जगत्कर्त्ता, प्रधान और पुरुषमय, स्थूल तथा सूक्ष्म, जगत्व्यापी, परके भी ईश, पुरुषोत्तम भगवन् ! आपको नमस्कार है ॥ ४ ॥

त्वं कर्ता सर्व भूतानां त्वं पाता त्वं विनाशकृत् ।
त्वं हि मायास्वरूपेण सम्मोहयसि वै जगत् ।।५।।

आप सब प्राणियों के कर्त्ता हो, पालनकर्त्ता तथा विनाशकर्त्ता भी आप ही हो। आप ही माया रूप से संसार को मोहित करते हो ॥ ५ ॥

यद्भूतं यच्च वै भाव्यं यदिदानीं प्रवर्तते ।
तत् सर्वं परमेशत्वं स्थावरं जङ्गमं तथा ।।६।।

जो हुआ है, जो होने वाला है या जो इस समय हो रहा है। हे परम ईश! वह सब तथा स्थावर (अचर) और जंगम (चर) आप ही हो ॥ ६ ॥

अर्थार्थिनां त्वमर्थस्तु कामः कामार्थिनां तथा ।
त्वं हि धर्मार्थिनां धर्मो मोक्षो निर्वाणमिच्छताम् ।।७।।
त्वं कामुकस्त्वमेवार्थी धार्मिकस्त्वं सदागतिः ।।८।।

आप अर्थ चाहने वालों के लिए अर्थ, काम चाहने वालों के लिए काम, धर्म चाहने वालों के लिए धर्म तथा निर्वाण चाहने वालों के लिए मोक्ष आप ही हो, आप ही कामुक, अर्थातुर, धार्मिक और शाश्वत गति भी आप ही हो अर्थात् उपास्य और उपासक दोनों आप ही हो ॥ ७-८ ॥

त्वद्वक्त्राद् ब्राह्मणा जाता बाहुजाः क्षत्रियास्तव ।
ऊर्वो वैश्यास्तथा शूद्राः पादाभ्यां तव निर्गताः ।।९।।

आपके मुँह से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, जङ्घे से वैश्य तथा पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं ॥ ९ ॥

सूर्यो नेत्रात्तव विभो मनोजश्चन्द्रमास्तव ।
श्रवणात् पवनो जातो दश प्राणास्तथापरे ।।१०।।

हे विभु ! सूर्य आपके नेत्र से तथा चन्द्रमा आपके मन से वायु तथा अन्य प्राणअपानदि दश प्राण, आपके कान से उत्पन्न हुए हैं ॥ १० ॥

ऊर्ध्वं स्वर्गादिभुवनं तव शीर्षादजायत ।
तव नाभेस्तथाकाशं क्षितिः पादतलादभूत् ।।११।।

ऊपरी स्वर्गादि भुवन आपके शिर से, आकाश आपकी नाभि से तथा पृथ्वी आपके पैर से उत्पन्न हुई है ॥ ११ ॥

कर्णाभ्यां ते दिशो जाता जठरात् सकलं जगत् ।
त्वं हि मायास्वरूपेण सम्मोहयसि वै जगत् ।।१२।।

दिशायें आपके दोनों कानों से तथा सम्पूर्ण संसार आपके उदर से उत्पन्न हुआ है। आप ही माया स्वरूप से सम्पूर्ण संसार को मोहित करते हो ॥ १२ ॥

निर्गुणो गुणवांस्त्वं हि शुद्ध एकः परात्परः ।
उत्पत्तिस्थितिहीनस्त्वं त्वमच्युतगुणाधिकः ।।१३।।

आप ही निर्गुण (गुणों के बन्धन मुक्त) किन्तु गुणवान हो, आप शुद्ध, एक (अद्वितीय), श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ, उत्पत्ति तथा स्थिति से रहित हो, आप अच्युत और गुणों में अधिक हो ॥ १३ ॥

आदित्यैर्वसुभिर्देवैः साध्यैर्यक्षैर्मरुद्गणैः ।
त्वं चिन्त्यसे जगन्नाथ मुनिभिश्च मुमुक्षुभिः ।।१४।।

हे जगत् के स्वामी ! आप आदित्य, वसु आदि देवताओं, यक्षों, साध्यों, मरुद्गणों एवं मोक्ष चाहने वाले मुनियों द्वारा चिन्तन किये जाते हो ॥ १४ ॥

त्वां वै चिदानन्दमयं विदन्ति
विशेषविज्ञा मुनयो विभोगाः ।
त्वमेव संसार महीरुहस्य
बीजं जलं स्थानमथो फलं च ।।१५।।

विशेष विज्ञान वाले, भोग रहित (तपस्वी) मुनिजन आपको ही चित् और आनन्दमय जानते हैं। आप ही संसार रूपी वृक्ष के बीज, जल का स्थान (जड़) तथा फल हो ॥ १५ ॥

त्वं पद्मया पद्माकरो विभासि
वरासिचक्राब्जधनुर्धरस्त्वम् ।
त्वमेव तार्क्ष्ये प्रतिभासि नित्यं
स्वर्णाचले तोययुतो यथाब्दः ।।१६।।

आप लक्ष्मी के साथ पद्माकर (कमल के सरोवर) के समान शोभायमान होते हो। आप श्रेष्ठ तलवार, चक्र, कमल, धनुष धारण करने वाले हो। आप सदैव गरुड़ पर उसी प्रकार शोभायमान होते हो जैसे स्वर्णाचल मेरुपर्वत पर जल से भरा बादल सुशोभित होता है ॥ १६ ॥

त्वमेव पीताम्बरशङ्कराब्जजा-
स्त्वं सर्वमेतन्न च किञ्चिदन्यत् ।
न ते गुणा नः परिचिन्तनीया
विधेर्हरस्यापि दिशां पतीनाम् ।
भीतेन भक्त्या शरणं प्रपन्ना
गता वयं नः परिरक्ष विष्णो ।।१७।।

आप ही पीताम्बरधारी विष्णु, शङ्कर तथा कमल से उत्पन्न ब्रह्मा हो, आप ही सब कुछ हो, आप से अतिरिक्त कुछ नहीं है। आपके गुणों का चिन्तन हम ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्रादि दिग्पालों द्वारा भी नहीं किया जा सकता। हम सब भय वश किन्तु भक्तिपूर्वक आपकी शरण में आये हैं। हे विष्णु ! आप सब ओर से हमारी रक्षा करो ॥ १७ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति स्तुतो देवदेवो भूतभावनभावनः ।
सेन्द्रैर्देवगणैरूचे तान् सर्वान्मेघनिस्वनः ।।१८।।

मार्कण्डेय बोले–ऐसी स्तुति किये जाने पर देवों के भी देव, भूतभावन शिव को भी भाने वाले, भगवान विष्णु उन सभी इन्द्रादि सहित देवगणों से मेघ के समान गम्भीर ध्वनि में बोले—॥ १८ ॥

।। श्रीभगवानुवाच ।।

यदर्थमागता यूयं यद्वा भयमुपस्थितम् ।
तत्र यद्वा मया कार्यं तद् देवास्तूर्णमुच्यताम् ।।१९।।

श्रीभगवान बोले–हे देवगण ! तुम लोग जिसलिये यहाँ आये हो अथवा जो भय उपस्थित हो गया है या वहाँ जो भी मुझे करना हो, उसे शीघ्र बताओ ॥ १९ ॥

।। देवा ऊचुः ।।

शीर्यते वसुधा नित्यं क्रीडया यज्ञपोत्रिणः ।
लोकाश्च सर्वे संक्षुब्धा नाप्नुवन्त्युपशान्त्वनम् ।।२०।।

देवगण बोले– यज्ञवाराह की क्रीड़ा से धरती नित्य पीड़ित हो रही है। सभी लोक संक्षुब्ध हो, शान्त्वना को नहीं प्राप्त कर रहे हैं ॥ २० ॥

शुष्कं तुम्वीफलं घातैर्यथा जर्जरतां गतम् ।
वाराहक्षुरघातेन तथा जर्जरिता क्षितिः ।।२१।।

जिस प्रकार सूखा हुआ लौकी का फल मारने से जर्जर हो जाता है, उसी प्रकार वाराह के तीव्र घात से पृथ्वी भी जर्जर हो गयी है ॥ २१ ॥

तस्य ये वा त्रयः पुत्राः कालाग्निसमतेजसः ।
सुवृत्तः कनको घोरस्तैश्चाप्याघातितं जगत् ।।२२।।

उसके जो काल के समय की अग्नि के समान तेज वाले, सुवृत्त, कनक और घोर नाम वाले तीन पुत्र हैं, उनके द्वारा भी पृथ्वी को आघात पहुँचाया जा रहा है ॥ २२ ॥

तेषां कर्दमलीलाभिः सरांसि जगतां पते ।
मानसादीनि भग्नानि प्रकृतिं यान्ति नाधुना ।।२३।।

हे जगत् के स्वामी ! इस समय उनकी कीचड़ लीला से मानसादि सरोवर नष्ट हो गये हैं। वे स्वभाविक स्थिति में नहीं हैं ॥ २३ ॥

भग्नास्तैर्देवतरवो मन्दाराद्या महाबलैः ।
देव नाद्यापि रोहन्ति फलं पुष्पं दलं च वा ।।२४।।

उन महान बलशालियों के द्वारा मन्दरादि पर्वत एवं कल्पवृक्ष तोड़ दिये गये हैं। हे देव ! आज भी फल, पुष्प या तुलसी आदि पत्र वृद्धि को प्राप्त नहीं कर रहे हैं ॥ २४ ॥

यदा त्रिकूटमारुह्य ते सुवृत्तादयस्त्रयः ।
प्लुतं कृत्वा महाबाहो पतन्ति लवणार्णवे ।।२५।।

तदा तत् क्षुब्धतोयौघैः प्लाव्यते सकला मही ।
उत्प्लवन्ति जनाः सर्वे प्रयान्ति च दिशो दश ।
जीवितं रक्षमाणास्ते प्रयान्ति च दिशो दश ।।२६।।

वे सुवृत्तादि तीनों वाराहपुत्र जब त्रिकूटपर्वत पर चढ़कर, छलांग लगाकर, लवण समुद्र में कूदते हैं तो उससे क्षुब्ध जलराशि से सम्पूर्ण पृथ्वी डूब जाती है। उस समय सभी जन अपने जीवन की रक्षा के प्रयत्न में उछल-कूद करते हुए दशों दिशाओं में चले जाते हैं ।। २५-२६ ।।

यदा त्रिविष्टपं यान्ति यज्ञवाराह-पुत्रकाः ।
इतस्ततस्तदा भग्ना देवाः शान्तिं न लेभिरे ।।२७।

जब वे यज्ञवाराह के पुत्रगण स्वर्ग को जाते हैं तो पराजित देवगण इधर-उधर कहीं भी शान्ति प्राप्त नहीं करते ।। २७ ।।

सर्वे तैः पर्वताः पुत्रैर्वाराहस्य जगत्पते ।
क्रीडद्भिः शिखरे नीतार्भूरिभागमधोगतिम् ।।२८।।

हे जगत्पति ! वे पर्वत उन वाराहपुत्रों की अपने शिखरों पर की जाती हुई क्रीड़ाओं से बहुत अधिक मात्रा में अधोगति को प्राप्त हो गये हैं (रह गये हैं) ।। २८ ।।

एवं विक्रीडतां तेषां क्रीडाभिः सकलं जगत् ।
नाशमायाति वैकुण्ठ तस्माद्रक्ष जगत्प्रभो ।।२९।।

हे जगत् के स्वामी ! हे वैकुण्ठ ! इस प्रकार खेलते हुए उन सबकी क्रीड़ा से सारा संसार नष्ट हो रहा है। उससे हमारी रक्षा कीजिए।। २९ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति तेषां निगदतां श्रुत्वा वाक्यं जनार्दनः ।
उवाच शङ्करं देवं ब्रह्माणं च विशेषतः ।।३०।।

मार्कण्डेय बोले– उन सब (देवों) की कही हुई उपर्युक्त बातों को सुनकर विष्णु ने विशेषकर शङ्कर एवं ब्रह्मा को लक्ष्य कर देवताओं से कहा— ।। ३० ।।

यत्कृते देवताः सर्वाः प्रजाश्च सकला इमाः ।
प्राप्नुवन्ति महद्दुःखं शीर्यते सकलं जगत् ।।३१।।
वाराहं तदहं कायं त्यक्तुमिच्छामि शङ्कर ।
निर्वेशशक्तं तं त्यक्तुं स्वेच्छया न हि शक्यते ।
त्वं त्याजयस्व तं कायं यत्नाद्वा शङ्कराधुना ।।३२।।

हे शङ्कर ! जिसके कारण सभी देवता और यह सृष्टि महान दुःख को प्राप्त कर रही है तथा सम्पूर्ण संसार नष्ट हो रहा है। मैं उस वाराह शरीर को छोड़ना चाहता हूँ किन्तु उससे अत्यधिक आशक्ति होने से मैं उसे अपनी इच्छा से छोड़ नहीं पा रहा हूँ। इस समय तुम अपने प्रयत्नों द्वारा उस शरीर को छुड़ा दो ।। ३१-३२ ।।

त्वमाप्यायस्व तेजोभिर्ब्रह्मन् स्मरहरं मुहुः ।
आप्यायन्तु तथा देवाः शङ्करो हन्तु पोत्रिणम् ।।३३।।

हे ब्रह्मा ! आप कामारि शिव को तेज से पुष्ट करें तथा देवगण भी शिव को तेज से पुष्ट करें जिससे वे वाराह को मार डालें ॥ ३३ ॥

रजस्वलायाः संसर्गाद्विप्राणां मारणात्तथा ।
कायः पापकरो भूतस्तं त्यक्तुं युज्यतेऽधुना ।।३४।।

रजस्वला के सम्पर्क तथा ब्राह्मणों को मारने के कारण यह शरीर पापयुक्त हो गया है । उसे अब छोड़ना ही उचित है ॥ ३४ ॥

प्रायश्चित्तैरपैत्येनः प्रायश्चित्तमहं ततः ।
चरिष्यामि तदर्थं मे तनुर्यत्नेन शाम्यताम् ।।३५।।

इस बुरे शरीर को प्रायश्चित से छोड़ने हेतु मैं प्रायश्चित करूँगा । इसीलिए मेरे इस शरीर को यत्नपूर्वक शमन (नाश) करो ॥ ३५ ॥

प्रजापाल्या मम सदा सा हि सीदति नित्यशः ।
मत्कृते प्रत्यहं तस्मात् त्यक्ष्ये कायं प्रजाकृते ।।३६।।

मेरे द्वारा सदैव पाली जाने वाली प्रजा ही अब मेरे कारण नित्य, प्रतिदिन कष्ट पा रही है अतः मैं प्रजा के हित के लिए अपने (वाराह) शरीर को छोड़ना चाहता हूँ॥३६॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्तौ वासुदेवेन तदा तौ ब्रह्मशङ्करौ ।
त्वया तथोक्तं तत्कार्यमिति गोविन्दमूचतुः ।।३७।।

मार्कण्डेय बोले– तब वासुदेव द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर ब्रह्मा और शंकर ने गोविन्द से कहा ''आपने जैसा कहा है वैसा ही किया जायेगा'' ॥ ३७ ॥

वासुदेवोऽपि तान् सर्वान् विसृज्य त्रिदशांस्तथा ।
वाराहं तेज आहर्तुं स्वयं ध्यानपरोऽभवत् ।।३८।।

वासुदेव भी उन सब देवताओं को विदा किये और स्वयं अपने वाराह शरीर के तेज को हरण करनेके लिए ध्यानस्थ हो गये ॥ ३८ ॥

शनैः शनैर्यदा तेजो आहरत्येष माधवः ।
तदा देहं तु वाराहं सत्त्वहीनमजायत ।।३९।।

धीरे-धीरे उन माधव ने जब तेज का हरण लिया तब वाराह का वह शरीर सत्त्व (बल) हीन हो गया ॥ ३९ ॥

तेजोहीनं यदा देहं ज्ञातं सर्वैस्तदामरैः ।
आससाद तदा देवो यज्ञवाराहमद्भुतम् ।।४०।।

ब्रह्माद्यास्त्रिदशाः सर्वे महादेवमुमापतिम् ।
अनुजग्मुस्तदा तेज आधातुं स्मरशासने ।।४१।।

जब देवताओं को यह ज्ञात हो गया कि वह शरीर तेजरहित हो गया है तब शिव को तेज से युक्त करने के लिए वे सभी ब्रह्मा आदि देवगण, महादेव उमापति शिव का अनुगमन करते हुए उस यज्ञवाराह के समीप पहुँच गये ॥ ४०-४१ ॥

ततः सर्वैर्देवगणैः स्वं स्वं तेजो वृषध्वजे ।
आदधे तेन बलवान् सोऽतीव समजायत ।।४२।।

तब सभी देवताओं ने अपने अपने तेज वृषभध्वज शिव को धारण कराया जिससे वे अत्यन्त बलवान हो गये ॥ ४२ ॥

ततः शरभरूपी स तत्क्षणात् गिरिशोऽभवत् ।।४३।।

तब वे शिव तत्काल शरभ रूप में हो गये ॥ ४३ ॥

ऊर्ध्वाधोभागतश्चाष्टपादयुक्तः सुभैरवः ।
द्विलक्षयोजनोच्छ्रायः सार्धलक्षैकविस्तृतः ।।४४।।
ऊर्ध्वं वाराहकायस्तु लक्षयोजनविस्तृतः ।
लक्षार्धविस्तृतः पार्श्वे वर्धमानस्तदाभवत् ।।४५।।

उस समय उनका वह रूप ऊपर और नीचे की ओर आठ पैरों से युक्त होने के कारण सुन्दर किन्तु भयानक था। वह दो लाख योजन (१६ लाख मील) ऊँचा (लम्बा) तथा डेढ़ लाख योजन चौड़ा था जो वाराह के शरीर से एक लाख योजन ऊँचाई तथा आधा लाख (पचास हजार) योजन अगल-बगल बढ़ा हुआ हो गया ॥ ४४-४५ ॥

शरभरूप वर्णन

ततः शरभरूपं तं महादेवमुमापतिम् ।
ददर्श यज्ञपोत्री सः स्पृशन्तं शिरसा विधुम् ।
सुदीर्घनासानखरं कृष्णांगारसमप्रभम् ।।४६।।
दीर्घवक्त्रं महाकायमष्टदंष्ट्रासमन्वितम् ।
विभ्रतं स-सटं पुच्छं दीर्घकर्णं भयानकम् ।।४७।।

तब यज्ञवाराह ने महादेव उमापति के उस शरभरूप को देखा, जो मस्तक से चन्द्रमा को स्पर्श कर रहा था, जिसकी नाक लम्बी थी, जिसके पंजे कोयले के समान काले थे, बड़े-बड़े आठ दाँतों से युक्त जिसका लम्बा मुख था, जिसकी पूँछ अयाल से शोभायनामान थी एवं जिसके कान भयानक थे ॥ ४६-४७ ॥

चतुरं पृष्ठतः पादानधरे चतुरस्तथा ।
कुर्वन्तं घोरमारावमुत्पतन्तं पुनः पुनः ।।४८।।

वह बार-बार भयानक आवाज करता हुआ अपने चार पैरों को पीछे तथा चार पैरों को ऊपर की ओर उछाल रहा था ॥ ४८ ॥

तमायान्तं ततो दृष्ट्वा क्रोधाद्धावन्तमञ्जसा ।
सुवृत्तः कनको घोर आसेदुः क्रोधमूर्च्छिताः ॥४९॥
तमासाद्य महाकायं शरभं भ्रातरस्त्रयः ।
उच्चिक्षिपुस्ते युगपत् पोत्रघातैर्महाबलाः ॥५०॥

उस शरभरूपधारी शिव को क्रोधवश तेजी से दौड़कर आता हुआ देखकर सुवृत्त, कनक, घोर तीनों महाबली क्रोधातिरेक से मूर्छित से हो गये । उन सबों ने मिलकर अपने थूथनों के सम्मिलित प्रहार से उस महाकाय शरभ को उछाल दिया ॥ ४९-५० ॥

यावत् प्रमाणः शरभस्तत्प्रमाणास्तदाभवन् ।
शरभोत्क्षेपसमये मायया पोत्रिणस्त्रयः ॥५१॥

शरभ को उछालते समय वे तीनों सूकर जितना बड़ा शरभ था, माया से उतने ही बड़े हो गये ॥ ५१ ॥

तेषां पोत्रप्रहारेण प्रोत्क्षिप्तः शरभस्तदा ।
पपात पृथिवीप्रान्ते गम्भीरे तोयसागरे ॥५२॥

तब उनके थूथन के प्रहार से फेंका गया वह शरभ पृथ्वी के छोर पर गम्भीर तोय सागर में जा गिरा ॥ ५२ ॥

तस्मिन् निपतिते तत्र सागरे मकरालये ।
उत्पत्य ते त्रयः पेतु; क्रोधात्तस्मिन् महोदधौ ॥५३॥

वहाँ उसके मकरादि जल-जन्तुओं के वासस्थान, सागर में गिरने पर वे तीनों भी क्रोधवश उछल कर उस सागर में कूद पड़े ॥ ५३ ॥

सुवृत्ते कनके घोरे पतिते सागराम्भसि ।
वाराहोऽपि सुतस्नेहात् क्रोधाच्च द्विजसत्तमाः ।
उत्पत्य सहसा तस्मिंस्तोयराशौ पपात ह ॥५४॥

हे द्विजसत्तमों ! सुवृत्त, कनक और घोर नामक पुत्रों के सागर के जल में गिरने पर क्रोध एवं पुत्र-स्नेह के कारण वराह भी उछल कर एकाएक उसी जलराशि में कूद गया ॥ ५४ ॥

उत्पतन्तस्तदा ते वै वाराहाः शरभस्तथा ।
वभञ्जुर्दिवि देवांस्तु नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ॥५५॥

उस समय उछलते हुए उन चारो वाराहों तथा शरभ ने स्वर्ग एवं वहाँ निवास करने वाले देवता, नक्षत्र एवं ग्रहों को भी भंग (तोड़-फोड़) कर दिया ॥ ५५ ॥

केचित्तु निहता देवा भूमौ पेतुश्च केचन ।
केचिच्च ज्ञानिनो देवा महर्लोकमुपाश्रिताः ।।५६।।

उसमें कुछ देवगण मारे गये, कुछ पृथ्वी पर गिर गये, इनमें से जो कुछ ज्ञानी देवगण थे, उन्होंने महर्लोक में आश्रय ग्रहण किया ।। ५६ ।।

नक्षत्राणि विमानात्तु पतितानि महीतले ।
अदृश्यन्त द्विजश्रेष्ठा ज्वालामालाकुलानि वै ।।५७।।

हे द्विजश्रेष्ठों ! अपने विमानों से पृथ्वी पर गिरते हुए वे ज्वाला समूहों से घिरे हुये नक्षत्र दिखायी दे रहे थे ।। ५७ ।।

तेषामुत्पतने वेगो योऽभूत् परमदारुणः ।
तेनातिवेगो जनितो वायुः परमदारुणः ।।५८।।

उनके छलांग लगाने के समय जो भयानक वेग उत्पन्न हुआ उससे बहुत ही वेगवान एवं भयानक वायु उत्पन्न हुआ ।। ५८ ।।

वायुना तेन संत्रस्ता पर्वताः पृथिवीतले ।
केचिच्छैलाः पर्वतेषु पतिताः पुनरेव ते ।।५९।।
विमृद्य वृक्षान् जन्तूँश्च निपेतुश्च पुनः पुनः ।
केचित्तु पर्वताघातैर्नृत्यमाना महीतले ।
वभञ्जुरचलाश्चापि व्रजन्तो बहुशः प्रजाः ।।६०।।

उस वायु द्वारा भयभीत कुछ पर्वत पृथ्वी पर ढकेल दिये गये, कुछ दूसरे पर्वतों पर जा गिरे कुछ पर्वत नाचते हुए अपने आघात से पृथ्वी तल पर स्थित वृक्षों और जन्तुओं को कुचलते हुए बार-बार गिरे । उन चलते हुए पर्वतों ने बहुत-सी प्रजा को नष्ट कर दिया ।। ५९-६० ।।

पर्वता समदृश्यन्त वातवेगेन भूतले ।
सङ्घट्टमानास्तेभ्योऽन्ये व्रजन्त इव तेऽचलाः ।।६१।।
अम्भोनिधौ पतद्भिस्तैर्वाराहैः शरभेण च ।
पर्वतैश्च महातुङ्गैरुत्क्षिप्तास्तोयराशयः ।।६२।।

वे वायु के वेग के कारण पृथ्वी पर परस्पर टकराते और चलते हुए ऊँचे पर्वत के समान दिखाई दे रहे थे तथा समुद्र में शरभ और वाराह के गिरने पर उन पर्वतों के समान उठती हुई जलराशियाँ दिखायी दे रही थीं ।। ६१-६२ ।।

तेषां प्रपातवेगेन क्षिप्तेषु जलराशिषु ।
निस्तोया इव संजाताः क्षणं वै सर्वसागराः ।।६३।।

उनके गिरने से उत्पन्न वेगवश अपनी जलराशि के उछाल दिये जाने पर क्षण भर में वे सभी समुद्र जलहीन से हो गये ।। ६३ ।।

तैः सर्वैरुदकैः क्षिप्तैः पृथिवीतलमागतैः ।
उत्प्लाविताः प्रजाः सर्वाः क्षणाज्जग्मुः क्षयं ततः ।।६४।।

उन सब फेके हुए जलराशि के धरती पर आ जाने से डूबती हुई समस्त प्रजा क्षणभर में नाश को प्राप्त हुई ।। ६४ ।।

प्लवमानाः प्रजास्तोये म्रियमाणाः समन्ततः ।।६५।।
हा पितस्त्वथ हा तात हा मातर्हा सुतेति च ।
विलपन्ति स्म करुणं भीताश्चार्ता मुमूर्षवः ।।६६।।

उस समय जल में सब तरफ से डूबती, मरती, मरने वाली प्रजा भयभीत तथा दुखी हो हा ! पिता, हा ! माता कहकर करुण विलाप कर रही थी ।। ६५-६६ ।।

यस्मिन् देशे निपतितो वाराहैः शरभः सह ।
तत्रैवाधोगता भूमिः पादवेगेन दारिता ।।६७।।

जिस स्थान पर उन वाराहों के साथ शरभ गिरा था वहाँ की भूमि, पैर के वेग से फटकर नीचे चली गयी ।। ६७ ।।

अपरः पृथिवीप्रान्त उत्थितः पर्वतैः सह ।
ससर्ज जनलोकेषु चलां तेषां प्रभञ्जनैः ।।६८।।

पृथ्वी का दूसरा भाग उठकर पर्वतों तथा उस समय उठे हुए आंधी के साथ जनलोक को भी चञ्चल कर दिया ।। ६८ ।।

जनलोकेषु संयुक्तां पृथिवीं शरभस्तदा ।
निःश्रेणीमिव सम्बद्धामचलामपि पोत्रिभिः ।
ददर्श विस्मयाविष्टः स भीतः श्रान्तपीडितः ।।६९।।

तब उस भयभीत, आश्चर्यचकित, पीड़ित और थके हुए शरभ ने वाराहों के साथ सम्बद्ध जनलोक तक पहुँची उस पृथ्वी को क्रमविहीन (अस्त-व्यस्त) देखा ।। ६९ ।।

ततस्ते युयुधुः सर्वे पोत्राघातेन पोत्रिणः ।
खुरप्रहारैर्दंष्ट्राभिर्गात्रक्षेपैश्च दारुणैः ।।७०।।
शरभोऽप्यथ दंष्ट्राग्रैर्नखैस्तीक्ष्णैः खुरैस्तथा ।
लाङ्गुलस्य प्रहारैस्तु तुण्डघातैर्महास्वनैः ।।७१।।

तब उन सब वाराहों ने दाढ़ों, खुरों, थूथनों के भयानक आघात तथा शरीरों के उछाल से एवं शरभ ने भी अपने दांढ़ों, तीखे नाखूनों, खुरों, थूथन और पूँछ के तीव्रध्वनित प्रहार से युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया ।। ७०-७१ ।।

चतुर्भिः पोत्रिभिस्तैस्तु स एकः शरभो महान् ।
एकान्तं योधयामास सहस्त्रं परिवत्सरान् ।।७२।।

एक मात्र महान् शरभ रूपधारी शिव ने, अकेले ही उन चारों वाराहों के साथ हजारों वर्षों तक युद्ध किया ।। ७२ ।।

तेषां प्रहारैर्वेगैश्च भ्रमणैश्च गतागतैः ।
आस्फोटितैस्तथारावैर्देहपातैः पृथक् पृथक् ।
पाताले पन्नगाः सर्वे विनेशुः कद्रुजैः सह ।।७३।।

उनके प्रहार से वेग, भ्रमण, आने-जाने, टकराने, आवाज तथा अलग-अलग गिरने से सभी नाग, कद्रु के पुत्र नागों सहित पाताल में प्रवेश कर गये ॥ ७३ ॥

ततस्ते सागरं त्यक्त्वा पृथिवीमध्यमागताः ।
परस्परं युध्यमाना ततोऽभूत् पृथिवी समा ।।७४।।

तब वे परस्पर युद्ध करते हुए समुद्र को छोड़कर पृथ्वी पर आ गये, जिससे पृथ्वी समतल हो गयी ॥ ७४ ॥

शेषोऽपि महता यत्नाद्बलेनाष्टभ्यकच्छपम् ।
दधार पृथिवीं दुःखैर्भग्नशीर्षः प्रतापितः ।।७५।।

उस समय क्षत-विक्षत शिर वाले शेष ने भी बड़े यत्न से बलपूर्वक कच्छप को पकड़ कर दुःख से परितप्त पृथ्वी को धारण किये रखा ॥ ७५ ॥

अनन्ते वामनीभूते समत्वं पृथिवीतले ।
गतेऽम्भोभिश्चलद्भिश्च पर्वतैः सर्वजन्तुषु ।।७६।।
नष्टेषु युध्यमानेषु त्रिपोत्रिशरभेषु च ।
सागरैराप्लुते सर्वजगत्यापोमये हरिम् ।
चिन्ताविष्टः सुरज्येष्ठः उवाचाथ पितामहः ।।७७।।

इस प्रकार तीन पुत्रों सहित वाराह तथा शरभ के युद्ध में अनन्त के दबकर वामन होने, पृथ्वी के समतल हो जाने और चलते हुए पर्वतों के कारण प्राणियों के नष्ट होने तथा उछले हुए समुद्र की जलराशि से समस्त जगत के जलमग्न हो जाने पर चिन्तित हो देवताओं में ज्येष्ठ, पितामह ब्रह्मा ने विष्णु से यह कहा—॥ ७६-७७ ॥

।। ब्रह्मोवाच ।।

भगवन् भुवनं सर्वं ससुरासुरमानुषम् ।
विध्वस्तं पृथिवी शीर्णा नष्टाः स्थावरजङ्गमाः ।।७८।।
देवदानवगन्धर्वा दैत्याश्चापि सरीसृपाः ।
विध्वस्ता जगतां नाथ मुनयश्च तपोधनाः ।।७९।।

ब्रह्मा बोले– हे भगवन् ! देवताओं, असुरों और मनुष्यों के सहित यह समस्त भुवन ध्वस्त हो गया है, पृथ्वी क्षतिग्रस्त हो गयी है, स्थावर-जङ्गम प्राणी नष्ट हो गये हैं । हे जगत के स्वामी ! देवता, दानव, गन्धर्व, दैत्य, सरीसृप (नाग) तथा तपस्वी मुनिगण भी नष्ट हो गये हैं ॥ ७८-७९ ॥

त्वं पालकोऽसि सर्वेषां त्वमेव जगतः प्रभुः ।
तस्मात् पालय नः सर्वान् पृथिवीं च जगत्पते ।।८०।।

हे जगत्पति ! आप ही सबके पालनकर्त्ता एवं जगत के स्वामी हो, इसलिए हम सबकी तथा पृथ्वी की आप रक्षा करो ॥ ८० ॥

त्वमेव कायं वाराहं स्वयमेवोपसंहर ।
संस्थापय महाबाहो पृथिवीं च चराचरैः ॥८१॥

हे महाबाहु ! आप स्वयं ही अपनी इस वाराहकाया का उपसंहार करो तथा इस चराचर जगत एवं पृथ्वी की व्यवस्थित स्थापना करो ॥ ८१ ॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणोऽथ जनार्दनः ।
यत्नं चक्रे तदा सर्वं संस्थापयितुमच्युतः ॥८२॥

मार्कण्डेय बोले– तब उन अच्युत, जनार्दन, विष्णु ने ब्रह्मा के उन वचनों को सुनकर, सबकी स्थापना के लिए यत्न आरम्भ किया ॥ ८२ ॥

ततो हरी रोहितमत्स्यरूपी
भूत्वा मुनीन् सप्त तदा सवेदान् ।
अधोच्छ्रुते रक्षणतत्परो जगद्-
हिताय सर्वश्रुतिकोविदां वरान् ॥८३॥
वसिष्ठमत्रिं त्वथ कश्यपं च
विश्वादिमित्रं च सगौतमं मुनिम् ।
महातपस्थं जमदग्निमुख्यं
तथा भरद्वाजमुनिं तपोनिधिम् ॥८४॥
निधाय पृष्ठे स हि तोयमध्ये
स्थितो महानौप्रवरे मुनीन्द्रान् ।
ततः शिवं सान्त्वयितुं जनार्दनो
जगाम यस्मिन् युयुधे स पोत्रिभिः ॥८५॥

तब भगवान विष्णु रोहित मछली का रूप धारण कर संसार के कल्याण के लिए नीचे से वेदों तथा सभी वेदों के जानने वाले सप्त ऋषियों की रक्षा में तत्पर हुये। इस हेतु उन्होंने जलराशि में एक महान और श्रेष्ठ नौका में विराजमान महान, तपस्वी जमदग्नि तथा तपस्या ही जिनका धन है, ऐसे भरद्वाज मुनि आदि सात मुनियों को वेदों के सहित, वसिष्ठ, कश्यप, विश्वामित्र, गौतम आदि मुनियों की पीठ पर धारण किया। तत्पश्चात् शरभ वेशधारी शिव को सान्त्वना देने के लिए विष्णु भगवान, जहाँ वह शूकरों के साथ युद्ध कर रहे थे वहाँ गये ॥ ८३-८५ ॥

श्रान्तं वाराहैरतिपौत्रघट्टनै-
र्निपिडीतं व्यात्तमुखं श्वशन्तम् ।

अथागतं वीक्ष्य हरिं वाराहः
सस्मार पूर्वां नरसिंहमूर्तिम् ।।८६।।

वे शिव वाराहों के थूथन के तीव्रचोट से पूरी तरह पीड़ित हो, मुँह खोलकर साँस ले रहे थे। इसके बाद, विष्णु को आया हुआ देखकर उन वाराह भगवान ने अपने पहले के नृसिंह रूप का स्मरण किया ॥ ८६ ॥

स्मृतस्तदा तेन समाजगाम
सखा वराहस्य हिते नृसिंहः ।
तमागतं वीक्ष्य तदा नृसिंहं
तदीयकायान् निजतेज आदात् ।।८७।।

तब उनके द्वारा स्मरण किये जाते ही वाराह के हित के लिए, उसके मित्र नृसिंह आ पहुँचे। उस समय नृसिंह को आया हुआ देखकर उनके शरीर से विष्णु ने अपने तेज का हरण कर लिया ॥ ८७ ॥

दृष्टं वराहैः शरभेण तेजो
यत् सूर्यतुल्यं प्रविवेश विष्णौ ।
विज्ञाय तेजोरहितं नृसिंहं
ससर्ज निश्वासचयं वराहः ।।८८।।

उस समय वाराहों एवं शरभ ने यह देखा कि सूर्य के समान तेज निकल कर विष्णु के शरीर में प्रवेश कर गया। तब नृसिंह को तेजरहित जानकर वाराह ने निश्वासों का समूह निर्माण किया (निःश्वास छोड़ा) ॥ ८८ ॥

ततस्तु जाता बहवो वराहा
बहुप्रमाणाद्भुततीक्ष्णदंष्ट्राः ।
ते वै वराहाः शरभं गिरीशं
मायाविनो वीतभयास्तुदन्तः ।।८९।।
समं नृसिंहेन तदापि युद्धं
चक्रुर्मर्मदुश्च भृशं गिरीशम् ।
क्षणं महापक्षिसमानरूपाः
क्षणं तु गावस्तुरगा नराश्च ।।९०।।

तब बहुत से वाराह उत्पन्न हो गये। वे बहुत बड़े और तीक्ष्ण दाँतों वाले थे। उन मायावी, निर्भय, दाँत वाले वराहों ने नृसिंह के साथ, शरभ वेशधारी शिव से युद्ध किया तथा गिरीश शिव का बहुत अधिक मर्दन किया। वे किसी क्षण विशाल पक्षी का रूप धारण कर लेते थे तो किसी क्षण गाय, घोड़े, मनुष्यों का रूप भी धारण कर लेते थे ॥ ८९-९० ॥

क्षणं नृसिंहाश्च वराहरूपा
गोमायवो वैकृतिकाः क्षणं ते ।
अनेकरूपाणि भयङ्कराणि
वितन्यमानाति रणे वराहैः ।।९१।।

उन वाराहों द्वारा युद्ध में अनेक भयंकर रूप धारण किये गये। वे किसी क्षण नृसिंहों, किसी क्षण वाराहों, किसी क्षण शृगालों के विकृत रूप धारण कर लेते थे ॥ ९१ ॥

निरीक्ष्य भर्गं च निपीडितं तै-
रथासदन्माधवस्तं गिरीशम् ।
पस्पर्श विष्णुर्गिरिशं करेण
तेजो न्यधात्तत्र निजं पुनः सः ।।९२।।

इस प्रकार भर्ग शिव को उन सबों के द्वारा पीड़ित देखकर विष्णु उन शिव के पास पहुँचे तथा उन्होंने शिव को अपने हाथों से स्पर्श किया तथा उनमें अपने तेज को पुनः स्थापित किया ॥ ९२ ॥

शारभेय(रुद्र)गण वर्णन

अथ संस्पृष्टमात्रः स विष्णुना प्रभविष्णुना ।
अतीव मुदितो हृष्टो बलवान् समजायत ।।९३।।

इसके बाद प्रभावशाली विष्णु द्वारा स्पर्श किये जाने पर वे शरभ वेशधारी शिव, अत्यन्त प्रसन्न, हर्षित तथा बलवान हो गये ॥ ९३ ॥

अथोच्चैः शरभो नादं ननाद बलवद् दृढम् ।
आपूरितानि येनैतद्भुवनानि चतुर्दश ।।९४।।

तब शरभ ने बलयुक्त, दृढ़ तथा उच्चध्वनि से गर्जन किया, जिससे चौदहों भुवन भर गये ॥ ९४ ॥

नदतस्तस्य वदनाच्छीकरा ये विनिःसृताः ।
ततो गणाः समभवन् महाकाया महौजसः ।।९५।।
यथा वराहनिश्वासान्नानारूपधरा गणाः ।
वराहास्तादृशा एते ततोऽप्यतिबलाः पुनः ।।९६।।

गर्जना करते समय उसके मुख से निकले हुए जलकणों से विशाल शरीर एवं महान बल वाले अनेक गण उत्पन्न हुए, जैसा कि वाराह के निश्वास से अनेक रूपधारी गण उत्पन्न हुए थे। जो उन वाराहों के समान तो थे ही अपितु उनसे भी अधिक बलवान थे ॥ ९५-९६ ॥

श्ववराहोष्ट्ररूपाश्च प्लवगोमायुगोमुखाः ।
ऋक्षमार्जारमातंगशिशुमारस्वरूपिणः ।।९७।।
सिंहव्याघ्रमुखाः केचित् केचित् सर्पाखुमूर्तयः ।
हयग्रीवा हयमुखा महिषाकृतयः परे ।।९८।।

वे कुत्ते, सुअर, ऊँट, बन्दर, सियार, गौ, भालू, बिल्ली, हाथी, सुंईस के समान स्वरूप वाले थे । उनमें कोई सिंह-बाघ के समान मुख वाले तो कोई सर्प व चूहे के समान मुख वाले, तो अन्य घोड़े के समान गले या मुख वाले और कोई भैंसे के समान आकृति वाले थे ।। ९७-९८ ।।

अन्ये तु मनुजाकारा मृगमेषमुखाः पुनः ।
कबन्धा हीनपादाश्च विहस्ता बहुपाणयः ।।९९।।
केचित्तु शरभाकाराः कृकलासमुखाः परे ।
मत्स्यवक्त्रा ग्राहवक्त्रा ह्रस्वा दीर्घाबलाः कृशाः ।।१००।।

उनमें ही अन्य मनुष्य के आकर वाले तो दूसरे भेड़ और मृग के मुख वाले भी थे । कोई धड़मात्र थे, किन्हीं के पैर ही नहीं थे, कोई बिना हाथ का था, तो किसी के बहुत हाथ थे । कोई शरभ के आकार का था, तो दूसरा गिरगिट के समान मुख वाला, कोई मछली, ग्राह्र के मुख वाले भी थे । वे छोटे, लम्बे, दुर्बल और बलहीन थे ।। ९९-१०० ।।

चतुःपादाष्टपादाश्च त्रिपादाः द्विपदाः परे ।
एकपादा भूरिहस्ता यक्षकिंपुरुषोपमाः ।।१०१।।
पश्वाकाराः पक्षयुक्ताः लम्बोदरमहोदराः ।
दीर्घोदराः स्थूलकेशा बहुकर्णा विकर्णकाः ।
स्थूलाधरा दीर्घदन्ता दीर्घश्मश्रुधराः परे ।।१०२।।

वे चार पैर वाले, आठ पैर वाले, तीन पैर, दो पैर वाले तो दूसरे एक पैर और बहुत से हाथ वाले थे । यक्ष और किन्नर के समान, पशुओं के आकार के, पंखों वाले, लम्बे पेट, बड़े पेट, बहुत लम्बे पेट, मोटे बाल, बहुत से कान वाले या बिना कान वाले थे । मोटे होंठ वाले, लम्बी दाँत वाले तो अन्य लम्बी दाढ़ी धारण करने वाले थे ।। १०१-१०२।।

ये सन्ति प्राणिनो विप्रा भुवनेषु समन्ततः ।
चतुर्दशसु ते तेषां रूपेण समतां गताः ।।१०३।।
नेहास्ति भुवने जन्तुः स्थावरो वा जगत् पुनः ।
यत्तुल्यरूपेण गणो न जातः शङ्करस्य च ।।१०४।।

हे विप्रों ! सम्पूर्ण चौदहों भुवन में जो भी प्राणी थे, वे उनकी समता करने वाले थे। संसार में कोई भी ऐसा प्राणी नहीं था, चाहे वह स्थावर हो या गतिमान जिसके समान शिव के गण उत्पन्न न हुए हों ॥ १०३-१०४ ॥

ते भिन्दिपालैः खड्गैश्च परिघैस्तोमरैस्तथा ।
शङ्कुलासिगदाभिश्च पाशैः शङ्कुभिरेव च ।।१०५।।
खट्वाङ्गैश्च त्रिशूलैश्च कपालैः शक्तिभिस्तथा ।
दात्रैः सृणिभिरीषाग्रैर्यष्टिभिश्च त्रिकण्टकैः ।।१०६।।

वे भिन्दिपाल, खड्ग, परिघ, तोमर (दो धारी चाकू), शंकुल, तलवार, गदा, पाश, शंकु (बरछी), खटवाङ्ग, त्रिशूल, कपाल, शक्ति, आरे, अङ्कुश, बाण की फाल, लाठी, तथा त्रिकण्टक (कोंचों) से युक्त थे ॥ १०५-१०६ ॥

प्रासैः परशुभिर्बाणैः कोदण्डैरतिभीषणाः ।
जटाचन्द्रकलायुक्ताः सर्व एव महाबलाः ।।१०७।।

वे भाला, परशु, धनुष-बाण धारण किये थे। वे सभी अत्यन्त भयानक, महाबलशाली, तथा जटा एवं चन्द्रकला से (शिव की भाँति ही) सुशोभित थे ॥ १०७ ॥

केचिद्भर्गस्य रूपेण वाहनेनाथ भूषणैः ।
तुल्या जटार्धशुभ्रांशु शुभ्रशीर्षा महाबलाः ।।१०८।।
अर्धनारीश्वराः केचिद् यथारुद्रस्तथैव ते ।।१०९।।

कुछ शिव के समान वाहन, आभूषण, जटा, अर्धचन्द्रमा से सुशोभित, धवलशीर्ष वाले महाबलवान थे तो कुछ रुद्र की भाँति अर्धनारीश्वर रूप में थे ॥ १०८-१०९ ॥

केचित्तु चारुरूपेण मोहनेन मनोभुवः ।
तुल्येन वनितासंघैः समं जाता रतोत्सुकाः ।।११०।।

कोई कामदेव के समान आकर्षक रूप से सुन्दर तथा अपने ही समान युवती समूह के रतिकर्म के प्रति उत्सुक से थे ॥ ११० ॥

आकाशचारिणः सर्वे सर्वे स्वच्छन्दगामिनः ।।१११।।

वे सभी आकाश में विचरण करने तथा स्वच्छन्द रूप से गमन करने वाले थे ॥ १११॥

नीलोत्पलदलश्यामाः शुक्लाः केचन लोहिताः ।
रक्ताः पीतास्तथा चित्रा हरिताः कपिलाः परे ।
अर्धपीता ह्यर्धरक्ता नीलार्धा धवलाः परे ।।११२।।

कोई नीलकमल की पङ्खुड़ियों के समान साँवले, कोई श्वेत, लाल, रक्त, पीत, चितकबरे, हरे तथा अन्य भूरे, आधे लाल, आधे पीले, आधे नीले तो दूसरे सफेद रंग के थे ॥ ११२ ॥

सकृष्णपीताः शुक्लेन कृष्णेनार्धेन रञ्जिताः ।
एकवर्णा द्विवर्णाश्च त्रिवर्णाश्च तथापरे ।
चतुःषट्पञ्चवर्णाश्च केचिद् दशवर्णाः द्विजाः ।।११३।।

हे द्विजों ! कोई कालापन लिये हुए पीले रंग, कोई आधे सफेद और आधे काले रंग से सुशोभित थे। वे एक रंग, दो रंग, तीन रंग दूसरे चार-पाँच और छः रंगों वाले थे। कोई दश वर्णों वाले थे॥ ११३ ॥

डिण्डिमान् पटहान् शङ्खान् भेर्यानकसकाहलान् ।।११४।।
मण्डूकान् झर्झरांश्चैव झर्झरीश्च समर्दलाः ।
वीणास्तन्त्रीः पञ्चतन्त्रीः शकटान् दर्दरांस्तथा ।।११५।।
गोमुखानानकान् कुण्डान् सतालकरतालिकान् ।
वादयन्तो गणाः सर्वे हसन्तश्च मुहुर्मुहुः ।।११६।।

वे रुद्रगण, डिण्डिम, पटह (नगाड़े), शङ्ख, भेरी (सैनिक नगाड़े) काहल (बड़े सैनिक नगाड़े), झांझर, मण्डूक, झांझरी, मर्दल (ढोल विशेष), वीणा, तन्त्री (एकतारा) पंचतन्त्री (पंच तारा), शकर, दुर्दुर (बंशी विशेष), गोमुख, आनक, कूँड़, करताल और हाथ की तालियों को बजा रहे थे तथा बारम्बार हँस रहे थे॥ ११४-११६ ॥

वराहाभिमुखा भूत्वा तस्थुस्ते हृष्टमानसाः ।
तान् सर्वानाह शरभो भगवान् वृषभध्वजः ।।११७।।

वे सब प्रसन्नता से वाराहों के सामने खड़े हो गये। तब शरभ वेशधारी भगवान वृषभध्वज शङ्कर ने उनसे कहा—॥ ११७ ॥

निघ्नतैतान् वराहस्य गणान् वै क्रूरकर्मभिः ।
क्रूरदृष्ट्या क्रूरयुद्धैः क्रूरा भूत्वा महाबलाः ।।११८।।

हे महाबलिओं! तुम सब क्रूर होकर, क्रूरकर्म, क्रूरदृष्टि, क्रूर युद्ध के द्वारा वाराह के इन गणों को मार डालो॥ ११८ ॥

ततस्ते वै गणाः सर्वे नानाकारवरायुधाः ।
सार्धं वराहस्य गणैर्युयुधुः क्रूरदर्शनाः ।।११९।।

तब वे सब अनेक आकर और श्रेष्ठ शस्त्र धारण करने वाले क्रूर दिखाई देने वाले शारभेय रुद्र गण वराह के गणों के साथ युद्ध करने लगे॥ ११९ ॥

आकाशचारिणः सर्वे जलपूर्णं जगत्त्रयम् ।
ते परित्यज्य युयुधुर्वियत्येवोभये गणाः ।।१२०।।

वे सब दोनों पक्षों के गण प्रलयकालीन जल में डूबे हुये त्रिलोकी को छोड़कर आकाश में ही संचरण करते हुए, आकाश में ही युद्ध किये॥ १२० ॥

ततः क्षणाद् वराहास्य गणान् सर्वान् महाबलान् ।
हरस्य प्रमथा जध्नुर्महावाता इवाम्बुदान् ।।१२१।।

तब जिस प्रकार महान् आँधी बादलों को क्षण भर में नष्ट कर देती है, उसी प्रकार शिव के गणों ने महाबलशाली उन वाराहगणों को क्षणभर में मार दिया ॥ १२१ ॥

हतेषु तेषु वीरेषु वाराहेषु गणेष्वथ ।
दध्यौ वराहः किमिति प्राक् पश्चाद्वृत्तमास्थितम् ।।१२२।।

उन वीर वाराहगणों के मारे जाने पर समुद्र में पूर्व-पश्चिम फैला हुआ वाराह, यह क्या ? ऐसा सोचने लगा ॥ १२२ ॥

अथ चिन्तयतस्तस्य स्वान्तं गत्वा जनार्दनः ।
तत् सर्वं ज्ञापयामास वराहवपुषो हितम् ।
ततो देह-परित्यागं कर्तुं समयतस्तदा ।।१२३।।

इस प्रकार सोचते हुए उसके अपने ही अन्तर में जाकर जनार्दन विष्णु ने उस वराह शरीर के हित में, देह-त्याग करने सम्बन्धी सभी बातों का ज्ञान करा दिया ॥ १२३ ॥

ततो दंष्ट्राग्रघातेन नरसिंहं महाबलः ।
शरभो भगवान् भर्गो द्विधा मध्ये चकार ह ।।१२४।।

तब महाबलशाली शरभरूप भगवान शिव ने अपने दाँतों के अगले भाग से नरसिंह को कमर से दो भागों में बाँट दिया ॥ १२४ ॥

नरसिंहे द्विधाभूते नरभागेण तस्य च ।
नर एव समुत्पन्नो दिव्यरूपी महानृषिः ।।१२५।।
तस्य पञ्चास्यभागेन नारायण इतिश्रुतः ।
अभवत् सुमहातेजा मुनिरूपी जनार्दनः ।।१२६।।

नरसिंह के दो भागों में बँट जाने पर उनके मनुष्य वाले भाग से दिव्यरूप वाले नर नामक महान ऋषि उत्पन्न हुए तथा सिंह वाले भाग से नारायण नाम के ख्यात महान तेजस्वी मुनि के रूप में जनार्दन हो गये ॥ १२५-१२६ ॥

नरो नारायणश्चोभौ सृष्टिहेतू महामती ।
द्वयोः प्रभावो दुर्धर्षः शास्त्रे वेदे तपःसु च ।। १२७।।

नर-नारायण दोनों ही सृष्टि के लिए उत्पन्न हुए ये दोनों ही महान बुद्धिशाली थे। दोनों ही का शास्त्र, वेद और तपस्या में अद्वितीय प्रभाव था ॥ १२७ ॥

तौ नावि विनिधायाथ मत्स्यमूर्त्यवितात्मनि ।
आससाद पुनर्देवो वाराहः शरभं हरिः ।।१२८।।

उन दोनों को अपने मत्स्यरूप आश्रित नौका में रखकर वाराह वेशधारी विष्णु पुनः शरभ के समीप पहुँच गये ॥ १२८ ॥

वपुस्त्यागो मयावश्यं कर्तव्यो जगतां हिते ।।१२९।।
इति पूर्वं प्रतिज्ञातं तदर्थोऽयं समुद्यमः ।
क्रियते हरिणा सार्धं शम्भुना ब्रह्मणापि च ।।१३०।।
इति संचिन्त्य स तदा शूकरः परमेश्वरः ।
जगाद शरभं देवं महादेवं महाबलम् ।।१३१।।

"संसार के कल्याण हेतु मैं अवश्य शरीरत्याग कर दूँगा।" मेरी इस प्रतिज्ञा को जो मैंने पहले किया था, उसी (पूर्णता) के लिए ही यह उद्यम ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने सम्मिलित रूप से किया है। तब उस सूकर शरीरधारी परमेश्वर ने ऐसा सोचकर शरभ रूपधारी देवाधिदेव महाबली शिव से कहा—॥१२९-१३१॥

।। वाराह उवाच ।।

जहि मां त्वं महादेव त्यक्ष्ये कायमसंशयम् ।
हिताय सर्वजगतां देवानामपि ऋत्विजान् ।।१३२।।
मम देहप्रतीकौधैर्यज्ञं यूपं प्रकल्प्य च ।
पृथक् पृथक् महाभागा सशामित्रं श्रुवादिकम् ।।१३३।।

वाराह बोले- हे महादेव! तुम मुझे मार दो, इस शरीर को मैं निःसन्देह देवताओं, ऋत्विजों एवं जगत के कल्याण के लिए छोड़ दूँगा। हे महाभाग! मेरे अङ्गों के समूह से अलग-अलग यज्ञ, यूप, श्रुवादि यज्ञपात्रों का निर्माण करो॥ १३२-१३३॥

ततस्ते तान् त्रिभिः पुत्रैर्विधध्वं जगतां हिते ।
कनकेन सुवृत्तेन घोरेण च जगन्मयीम् ।।१३४।।

तब संसार के कल्याण के लिए इन कनक, सुवृत्त, और घोर नामक तीनों से जगन्मयी पृथ्वी का कल्याण करो॥ १३४॥

यज्ञाद् देवाः प्रजाश्चैव यज्ञादन्नान् नियोगिनः ।
सर्वं यज्ञात् सदा भावि सर्वं यज्ञमयं जगत् ।।१३५।।
यमिमं पृथिवीगर्भमाधत्त मलिनी पुनः ।
तमुत्पन्नं स्वयं देवीं चिरं संगोपयिष्यति ।।१३६।।

यज्ञ से ही देवता तथा अन्न का उपयोग करने वाली प्रजा, सबकुछ यज्ञ से ही सदा उत्पन्न होने वाला है, क्या सारा जगत ही यज्ञमय है। इस पृथ्वी ने अपनी मलिनावस्था में जिसे गर्भ में धारण किया था उससे उत्पन्न हुए को स्वयं यह देवी बहुत समय तक छिपाये रखेगी॥ १३५-१३६॥

प्राप्ते काले यदा देवी तदायुष्मान् सुभाषते ।
वधस्तस्यातिमारार्ता तदैवेनं हनिष्यथ ।।१३७।।

हे आयुष्मान् ! समय पर जब दुःखी होकर वह स्वयं तुमसे इसके वध के लिए कहेगी उस समय तुम सब इसे मारोगे ॥ १३७ ॥

भारतीं पृथिवीं मग्नां यदाधः शतयोजनम् ।
शृङ्गिवराहरूपेण प्रोद्धरिष्ये तदात्विमाम् ।।१३८।।

जब यह भारती, पृथ्वी सौ योजन (आठ सौ मील) तक नीचे समुद्र में डूब जायेगी तब शृङ्गी-वाराह रूप से इसका पुनः उद्धार करूँगा ॥ १३८ ॥

कृतकृत्यं तु तं कायं त्याजयिष्यति ते सुतः ।
यो भावी देवसेनानी रुद्रात् षाण्मातुराह्वयः ।।१३९।।

कार्य हो जाने पर तुम्हारा पुत्र उस शरीर को छोड़ देगा, और रुद्र से उत्पन्न हो षाणमातुर नाम से देवताओं का सेनापति बनेगा ॥ १३९ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एवं यज्ञवराहे तु भाषमाणे महाबले ।
निःसृत्य सुमहत्तेजो ज्वालामालातिदीपितम् ।।१४०।।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं वराहवपुषस्तदा ।
हरेर्भगवतो देहे विवेश महद्द्भुतम् ।।१४१।।

मार्कण्डेय बोले– तब महाबली यज्ञवाराह द्वारा ऐसा कहने पर, ज्वालासमूह से अत्यन्त प्रज्वलित, करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशित, एक महान आश्चर्यजनक तेज वाराह के शरीर से निकलकर भगवान विष्णु के शरीर में प्रवेश कर गया ॥ १४०-१४१ ॥

तस्मिन् विष्णौ प्रविष्टे तु वाराहे तेजसि द्विजाः ।
सुवृत्तात् कनकाद्घोरात्तेज आदात् स्वयं हरिः ।।१४२।।

हे द्विजों ! वाराह के उस तेज के विष्णु में प्रवेश हो जाने पर स्वयं विष्णु ने सुवृत्त, कनक और घोर से तेज का हरण कर लिया ॥ १४२ ॥

तेषामपि शरीरेभ्यस्तेजोभागः पृथक् पृथक् ।
विनिःसृत्य विनिःसृत्य ज्वालामालातिदीपितः ।
प्रविवेश हरेः काये यथा तेषां पितुस्तथा ।।१४३।।

उनके भी शरीर से ज्वालासमूह सा प्रज्ज्वलित तेज अलग-अलग निकल कर उनके पिता की ही भाँति ही विष्णु में प्रवेश कर गया ॥ १४३ ॥

ततो हरिश्च ब्रह्मा च महादेवश्च तद्वचः ।
वाराहस्य प्रतिश्रुत्य ओमित्युक्त्वा पुनः पुनः ।।१४४।।
तेषां कायपरित्यागे अकार्षुर्यत्नमुत्तमम् ।।१४५।।

तब हरि, ब्रह्मा और महादेव ने वाराह के उपर्युक्त वचनों को सुनकर उत्तर में हाँ ऐसा कहकर उनके शरीर त्याग के लिए उत्तम प्रयत्न किया ॥ १४४-१४५ ॥

ततस्तुण्डप्रहारेण शरभः कण्ठमध्यतः ।
भित्वा वपुर्वराहस्य पातयामास तज्जले ।।१४६।।

तब शरभ ने अपने थूथन के प्रहार से कण्ठ के मध्य प्रहार करके, उसे काट कर, वाराह के शरीर को उस जल में गिरा दिया ॥ १४६ ॥

तं पातयित्वा प्रथमं सुवृत्तं कनकं तथा ।
घोरं च कण्ठदेशेषु भित्वा भित्वा जघान ह ।।१४७।।

उसको पहले मार कर सुवृत्त, कनक एवं घोर का भी गला काट कर उन्हें मार दिया ॥ १४७ ॥

त्यक्तप्राणास्तु ते सर्वे पेतुस्तोये महार्णवे ।
जले शब्दं वितन्वानाः कालानलसमत्विषः ।।१४८।।

उस महासमुद्र के जल में प्राण छोड़े हुए वे सब कालानल के समान शब्द करते हुए गिर गये ॥ १४८ ॥

पतितेषु वराहेषु ब्रह्माविष्णुर्हरस्तथा ।
सृष्ट्यर्थं चिन्तयामासुः पुनरेव समागताः ।।१४९।।

उन वाराहों के जल में गिर जाने पर पुनः ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश एकत्रित हो, सृष्टि के सम्बन्ध में विचार करने लगे ॥ १४९ ॥

हरस्य तु गणाः सर्वे तदा भर्गं समागताः ।
उपतस्थुर्महाभागाश्चतुर्भागेन भाजिताः ।।१५०।।

तब हर के सभी गण, शिव के समीप आ गये। वे महाभाग वहाँ चार भागों में विभक्त हो उनके निकट उपस्थित हुए ॥ १५० ॥

षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि प्रमथा द्विजसत्तमाः ।
तत्रैकत्र सहस्राणि भागे षोडश संस्थिताः ।।१५१।।

हे द्विजसत्तमों ! वे प्रमथ छत्तीस हजार की संख्या में थे, जिसमें एक भाग में सोलह हजार गण उपस्थित थे ॥ १५१ ॥

नानारूपधरा ते वै जटाचन्द्रार्धमण्डिताः ।
ते सर्वे सकलैश्वर्ययुक्ता ध्यानपरायणाः ।।१५२।।
योगिनो मदमात्सर्यदम्भाहङ्कार - वर्जिताः ।
क्षीणपापा महाभागाः शम्भोः प्रीतिकराः पराः ।।१५३।।

वे अनेक रूप धारण करने वाले जटा-जूट तथा अर्धचन्द्र से सुशोभित थे। वे सभी, सब प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त, ध्याननिरत, मद-मत्सर (दम्भ, अहंकार आदि

दोषों से) मुक्त थे जिनके पाप क्षीण हो गये थे ऐसे वे महाभाग शिव से अत्यधिक प्रीति करने वाले श्रेष्ठ योगीजन थे ॥ १५२-१५३ ॥

न ते परिग्रहं रागं कांक्षन्ति स्म कदाचन ।
संसार-विमुखाः सर्वे यतयो योगतत्पराः ॥१५४॥
ध्यानावस्थं महादेवं परिवार्य धृतव्रताः ।
कृत्वा परिषदं रुच्या तिष्ठन्ति विगतक्लमाः ॥१५५॥

वे न तो कभी विशेष संचय करते थे, न किसीके प्रेम-बन्धन में बँधते थे। वे सब यति, संसार से विमुख एवं योग में निरत थे। वे व्रतधारी, निर्दोष, ध्यानावस्थित महादेव को घेरकर, परिषद् करके रुचिपूर्वक रह रहे थे ॥ १५४-१५५ ॥

यदैव परमं ज्योतिश्चिन्तयत्यम्बिकापतिः ।
तदैव ते पारिषदाः सर्वे संवेष्टयन्ति तम् ॥१५६॥

ज्योंही अम्बिकापति शिव, परम ज्योति के रूप का चिन्तन करते है, त्यों ही वे सब शिव के पार्षद उन्हें घेर लेते हैं ॥ १५६ ॥

ते षोडश समाख्याताः कोटयो ये यतव्रताः ।
सिंहव्याघ्रादि - सारूप्या अणिमादिसमायुताः ॥१५७॥

वे सोलह करोड़ गण, यति व्रत को धारण करने वाले, सिंह-बाघ के समान रूप वाले तथा अणिमादि सिद्धियों से युक्त होते हैं ॥ १५७ ॥

अपरे कामिनः शम्भोः सुनर्मसचिवाः स्मृताः ।
विचित्ररूपाभरणा जटाचन्द्रार्धमण्डिताः ॥१५८॥
हरस्य तुल्यरूपेण विशदा वृषभध्वजाः ।
उमासदृशरूपाभिः प्रमदाभिः समागताः ॥१५९॥

दूसरे शिव की कामना करने वाले तथा उनके मनोविनोद में सहयोगी बताये गये हैं। वे सब विचित्ररूप, विचित्रआभूषणधारी और जटा तथा अर्धचन्द्र से सुशोभित, शिव के समान रूप वाले, विशालकाय, वृषभ की चिन्ह वाली ध्वजा धारण किये, पार्वती के रूप वाली स्त्रियों के साथ वहाँ आये ॥ १५८-१५९ ॥

विचित्रमाल्याभरणा दिव्यस्रग्गन्धभूषिताः ।
उमासहायं क्रीडन्तमनुगच्छन्ति भूषिताः ।
शृङ्गारवेषाभरणा अष्टौ ते कोटयो गणाः ॥१६०॥

वे विचित्र मालाओं तथा आभूषणों को धारण किये दिव्य चन्दन के गन्ध से सुशोभित थे। वे सुसज्जित हो क्रीड़ा करते शिव के पीछे चल रहे थे। शृङ्गारयुक्त वेष तथा आभूषण से युक्त ये गण आठ करोड़ थे ॥ १६० ॥

अर्धनारीश्वराश्चान्ये ह्यर्धनारीश्वरं हरम् ।
ध्यानस्थं प्रविविशुस्ते तुल्यरूपा हरस्य ये ।। १६१।।
उमासहायो हि यदा रमते ससुखं हरः ।
अर्धनारीशरीरास्तु द्वारपाला भवन्ति ते ।।१६२।।
आकाशमार्गे गच्छन्तमनुगच्छन्ति नित्यशः ।
ध्यानस्थं परिचर्यन्ति सलिलादिभिरीश्वरम् ।।१६३।।

वे अर्धनारीश्वर होते हैं क्योंकि भगवान शिव स्वयं अर्धनारीश्वर हैं। वे जो हर के समान हैं और ध्यानवस्था में प्रवेश करते हैं। जब शिव, उमा के साथ सुखपूर्वक रमण करते रहते हैं उस समय ये अर्धनारीश्वरगण उनके द्वारपाल होते हैं। जब वे आकाशमार्ग से जाते रहते हैं उस समय वे उनका अनुगमन करते हैं तथा ध्यान में स्थित शिव की जलादि से नित्य सेवा करते हैं ॥ १६१-१६३ ॥

नानाशस्त्रधराः शम्भोर्गणास्ते प्रमथाः स्मृताः ।।१६४।।
प्रमथ्नन्ति च युद्धेषु युध्यमानान् महाबलान् ।
ते वै महाबलाः शूराः सङ्ख्यया नव कोटयः ।।१६५।।

अनेक शस्त्रों को धारण करने वाले शिव के गण प्रमथ कहे जाते हैं। ये युद्ध में लड़ने वाले महान बलशालियों का भी वध कर डालते हैं। वे महाबली वीर संख्या में नौ करोड़ हैं ॥ १६४-१६५ ॥

अपरे गायनास्तालमृदङ्गपणवादिभिः ।
नृत्यन्ति वाद्यं कुर्वन्ति गायन्ति मधुरस्वरम् ।।१६६।।

शिव के दूसरे गण, ताल, मृदङ्ग, पणव आदि के बाजे बजाते तथा मधुर स्वर में गान गाते और नृत्य करते हैं ॥ १६६ ॥

नानारूपधरास्ते वै सङ्ख्यया कोटयस्त्रयः ।
सततं चानुगच्छन्ति विचरन्तं महेश्वरम् ।।१६७।।

वे संख्या में तीन करोड़ शिवगण, अनेक रूप धारण कर महेश्वर शिव के विचरण करते समय निरन्तर उनका अनुगमन करते हैं ॥ १६७ ॥

सर्वे मायाविनः शूराः सर्वे शास्त्रार्थपारगाः ।
सर्वे सर्वत्र सर्वज्ञाः सर्वे सर्वत्रगाः सदा ।।१६८।।

वे सभी मायावी, वीर, शास्त्रार्थ में निपुण, सब जगह सब कुछ जानने वाले तथा सदैव सब जगह गमन करने वाले हैं ॥ १६८ ॥

मुहूर्तात् सर्वभुवनं गत्या यान्ति पुनर्भवम् ।
अणिमाद्यष्टकैश्वर्ययुक्तास्ते वै महाबला: ।।१६९।।

वे क्षणभर में अपनी गति से सभी भुवनों में बार-बार जाते हैं वे अणिमादि आठ ऐश्वर्यों से युक्त तथा महान बलशाली हैं ।। १६९ ।।

अपरे रुद्रनामानो जटाचन्द्रार्धमण्डिता: ।
देवेन्द्रस्य नियोगेन वर्तन्ते त्रिदिवे सदा ।
तेषां सङ्ख्या चैककोटिस्ते सर्वे बलवत्तरा: ।।१७०।।

दूसरे रुद्र नामक गण हैं, जो जटा और अर्धचन्द्र से सुशोभित हो देवराज इन्द्र की सेवा में सदैव स्वर्ग में रहते हैं । इनकी संख्या एक करोड़ है और वे सभी अधिक बलवान हैं ।। १७० ।।

कुर्वन्ति हि सदा सेवां हरस्य सततं गणा: ।
विस्मयन्ति च पापिष्ठान् धर्मिष्ठान् पालयन्ति च ।।१७१।।
अनुगृहणन्ति सततं धृतपाशुपतव्रतान् ।
विघ्नांश्च सततं घ्नन्ति योगिनां प्रयतात्मनाम् ।।१७२।।

ये गण निरन्तर शिव की सेवा किया करते हैं, पापियों को मोहित करते हैं, धार्मिकों का पालन तथा पाशुपत व्रतधारी शिव भक्तों पर कृपा किया करते हैं । ये निरन्तर प्रयतआत्मा (समर्पित) योगियों के विघ्नों का नाश करते हैं ।। १७१-१७२ ।।

षट्त्रिंशत् कोटयश्चैते हरस्य सकला गणा: ।
वराहगणनाशार्थं हिताय जगतां तथा ।।१७३।।
शङ्करस्याथ सेवायै समुत्पन्ना इमे गणा: ।।१७४।।

ये शिव के सभी गण छत्तीस करोड़[1] हैं । ये वाराह गणों के नाश के लिए तथा संसार के कल्याण के लिए एवं शङ्कर की सेवा के लिए उत्पन्न हुये थे ।।१७३-१७४।।

वराहस्य गणान् दृष्ट्वा नरसिंहं तथा हरिम् ।
स्वयं शरभरूप: सन् ध्यायन्नादं तदाकरोत् ।
तच्छीत्कराद्यतो जातास्तत्तेषां बहुरूपता ।। १७५।।

---

१. यहाँ गणों की संख्या ३७ करोड़ है किन्तु छत्तीस करोड़ ही बताया है । सम्भवत: १ करोड़ स्वर्गस्थ रुद्र गणों की गणना नहीं है । १. पारिषद् २. नर्म सचिव, ३. प्रमथ, ४. शायका: शिव गणों के भाग हैं ।

वाराह के गणों, तथा नरसिंह को देखकर हरि का ध्यान करते हुए जब स्वयं शरभ रूपधारी शिव ने ध्वनि किया था उस समय उनके सीकर बिन्दुओं से उत्पन्न होने के कारण इनमें ऐसी भिन्नता पाई जाती है ॥ १७५ ॥

क्रूरदृष्ट्या क्रूरयुद्धैः क्रूरकृत्यैरिमान् गणान् ।
वराहस्य घ्नतेत्येवं यतः प्रोक्तं कपर्दिना ।
अतस्ते क्रूरकर्माणः प्रजाताश्च भयङ्कराः ।।१७६।।

क्रूरदृष्टि, क्रूरकर्म तथा क्रूरयुद्ध से इन वाराहगणों को मार डालो । ऐसा शिव के कहने के कारण ही ये क्रूरकर्म वाले तथा भयंकर रूप में उत्पन्न हुये ॥ १७६ ॥

न सदा क्रूरकर्माणि ते कुर्वन्ति महौजसः ।
दृष्टिमात्रस्य ते क्रूराः क्रूरास्ते न तु कार्यतः ।।१७७।।

ये महान् ओजस्वी रुद्रगण सदैव क्रूर कर्म नहीं करते । वे देखने में ही क्रूर होते हैं कार्य से नहीं ॥ १७७ ॥

फलं जलं तथा पुष्पं पत्रं मूलं तथैव च ।।१७८।।
निवेदितानि भुञ्जन्ति वनपर्वतसानुषु ।
आहृत्यापि च भुञ्जन्ति पत्रं पुष्पादिकं च यत् ।।१७९।।

इन्हें जो कुछ फल, जल, पुष्प, पत्र, जड़ (मूल) निवेदन किया जाता है उसका तथा वनों और पर्वतों के शिखरों आदि से ये जो कुछ पत्र-पुष्पादि ले आते हैं, ये उसी का भोग करते हैं ॥ १७८-१७९ ॥

भवेद्भर्गस्य यद्भोग्यं तद्भोगास्ते महौजसः ।
आमिषाणि च नाश्नन्ति हित्वा चैत्रचतुर्दशीम् ।।१८०।।

शिव का जो भोग पदार्थ होता है वही इन महाबलियों का भी होता है । चैत्र की चतुर्दशी को छोड़कर कभी भी ये मांस नहीं खाते ॥ १८० ॥

तत्रामिषं हरो भुंक्ते चतुर्दश्या मधौ सदा ।
ततः सर्वे गणास्तत्र भुंजते पललान्यपि ।।१८१।।

वे शिव सदैव मधु (चैत्र) मास की चतुर्दशी को मांसभक्षण करते हैं। इसीलिए सभी गण भी उस दिन मांसभक्षण करते हैं ॥ १८१ ॥

हते वराहस्य गणे भर्गमासाद्य ते गणाः ।
चतुर्भागाः स्वयं भूत्वा भूतकर्मेति वै जगुः ।
भूतत्वमभवत्तेषां चतुर्भागवतां तदा ।
वचनात् पद्मयोनेस्तु भूतग्रामस्ततो मतः ।।१८२।।

वाराह के गणों के मारे जाने पर वे स्वयं शिव के पास गये तथा स्वयं चार भागों में बँट गये और वे भूतकर्मा कहे जाने लगे। तब ब्रह्मा के वचनों के अनुसार उन चार भाग वाले शिव गणों में भूततत्त्व आ गया और वे भूतग्राम (भूतसमूह) माने जाने लगे ॥ १८२ ॥

यो लोकविदितः पूर्वं भूतग्रामश्चतुर्विधः ।
यतस्तेभ्योऽधिको यत्तद्भूतग्रामः स उच्यते ।।१८३।।

जो लोक में पहले ही अण्डज, पिण्डज, स्वेदज् और उद्भिज नामक चार प्राणिसमूह बताये गये हैं उनसे अतिरिक्त होने के कारण से ही इन्हें भी भूतग्राम (भूत समुदाय) कहा जाता है ॥ १८३ ॥

इति वः कथितं सर्वं भूताः शम्भुगणाः यथा ।
यदाहारा यदाकारा यत्कृत्यास्ते महौजसः ।।१८४।।

इस प्रकार जैसे शिव गण हुए जो इन महाबलियों का भोजन, आकार या कार्य था, वह सब मैंने आप लोगों से कह दिया ॥ १८४ ॥

य इदं शृणुयान्नित्यमाख्यानं महदद्भुतम् ।
स दीर्घायुः सदोत्साही योगयुक्तश्च जायते ।।१८५।।

इति श्रीकालिकापुराणे शरभवाराहयुद्धो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

जो इस महान् अद्भुत आख्यान को नित्य सुनता है, वह दीर्घायु, सदा उत्साही, और योगयुक्त होता है ॥ १८५ ॥

श्रीकालिकापुराण में शरभवाराहयुद्ध नामक तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३० ॥



एकत्रिंशोऽध्यायः
वाराहतनौयज्ञोत्पत्तिः

।। ऋषय ऊचुः ।।

कथं यज्ञवराहस्य देहो यज्ञत्वमाप्तवान् ।
त्रेतात्वमगमन् पुत्रा वराहस्य कथं त्रयः ।।१।।

ऋषिगण बोले– यज्ञवाराह के शरीर ने किस प्रकार यज्ञत्व को प्राप्त किया? तथा वाराह के तीन पुत्र कैसे त्रेतात्व (तीन अग्नियों सामूहिक रूप) को प्राप्त हुए ? ॥ १ ॥

आकालिकोऽयं प्रलयः कस्माद् भगवता कृतः ।
जनक्षयो महाघोरो वराहेण महात्मना ।।२।।

महात्मा वाराह के द्वारा अत्यन्त भयानक तथा जनसमूह का विनाशक यह असामयिक महाप्रलय क्यों किया गया? ॥ २ ॥

कथं वा मत्स्यरूपेण वेदास्त्राताश्च शार्ङ्गिणा ।
कथं पुनरभूत् सृष्टिः केन चोर्वी समुद्धृता ।।३।।

या शार्ङ्गधर विष्णु ने मत्स्यरूप धारण कर वेदों का उद्धार कैसे किया ? पुनः सृष्टि कैसे हुई ? तथा किसने पृथिवी का उद्धार किया ? ॥ ३ ॥

ईश्वरः शारभं कायं त्यक्तवान् वा कथं गुरो ।
कीदृक् प्रवृत्तं तद्देहं तन्नो वद महामते ।।४।।

हे महामतिमान गुरुदेव ! शिव ने अपना शरभ शरीर कैसे छोड़ा ? उस शरीर की क्या गति हुई ? यह सब हमें बताइये ॥ ४ ॥

एतेषां द्विजशार्दूल भवान् प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
तन्नोऽद्य श्रोष्यमाणानां कथयस्व महामते ।।५।।

हे द्विजों में सिंह के समान श्रेष्ठ, महामति ! आप उन सबके प्रत्यक्ष द्रष्टा हो, अतः उस रहस्य को आज हम से कहिये। हम सब सुनने को उत्सुक हैं ॥ ५ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

शृणुध्वं द्विजशार्दूला यत्पृष्टोऽहमिहाद्भुतम् ।
शृण्वन्त्ववहिताः सर्वे सर्ववेदफलप्रदम् ।।६।।

मार्कण्डेय बोले– हे द्विजों में सिंहवत् श्रेष्ठ ऋषियों ! आपने जो मुझसे पूछा है। उस अद्भुत तथा सभी वेदों के श्रवण का फल देने वाले, इस वृत्तान्त को एकाग्र हो आप सब सुनें ॥ ६ ॥

यज्ञेषु देवास्तुष्यन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
यज्ञेन ध्रियते पृथ्वी यज्ञस्तारयति प्रजाः ।।७।।

यज्ञों के होने पर देवगण सन्तुष्ट होते हैं। यज्ञ में ही सबकी प्रतिष्ठा है। यज्ञ से ही पृथ्वी का धारण होता है। यज्ञ प्रजा का उद्धार करता है।

अन्नेन भूता जीवन्ति पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
पर्जन्यो जायते यज्ञात् सर्वं यज्ञमयं ततः ।।८।।

अन्न से प्राणी जीवित रहते हैं। बादलों के ही कारण अन्न उत्पन्न होते हैं। वह बादल यज्ञ से ही उत्पन्न होता है। इसीलिए सब कुछ यज्ञमय है ॥ ८ ॥

स यज्ञोऽभूद्वराहस्य कायाच्छम्भुविदारितात् ।
यथाहं कथये तद्वः शृण्वन्त्ववहिता द्विजाः ।।९।।

हे द्विजों ! जिस प्रकार वह यज्ञ शम्भु के द्वारा विदीर्ण किये हुए वाराह के शरीर से उत्पन्न हुआ, वह प्रसङ्ग मैं आप लोगों से कहता हूँ, आप उसे ध्यान से सुनें ॥ ९ ॥

विदारिते वराहस्य काये भर्गेण तत्क्षणात् ।
ब्रह्मविष्णुशिवा देवाः सर्वैश्च प्रमथैः सह ।।१०।।
निन्युर्जलात् समुद्धृत्य तच्छरीरं नभः प्रति ।
तद्बिदुः शरीरं तत् विष्णोश्चक्रेण खण्डशः ।।११।।

शिव द्वारा वाराह के शरीर के काटे जाने पर तत्क्षण ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सभी देवता प्रमथों के साथ मिलकर उसके शरीर को जल से उठाकर आकाश की ओर ऊपर ले आये। तब विष्णु ने उस शरीर को अपने चक्र से टुकड़े-टुकड़े कर काट दिया ॥ १०-११ ॥

तस्यांगसन्धयो यज्ञा जाताश्च वै पृथक् पृथक् ।
यस्मादङ्गाच्च ये जातास्तच्छृण्वन्तु महर्षयः ।।१२।।

उसके अङ्ग की अलग-अलग संधियों से अलग-अलग यज्ञ उत्पन्न हुए। हे महर्षियों ! जिस अङ्ग से जो यज्ञ उत्पन्न हुआ, उसे सुनो ॥ १२ ॥

भ्रूनासासन्धितो जातो ज्योतिष्टोमो महाध्वरः ।
हनुश्रवणसन्ध्योस्तु वह्निष्टोमो व्यजायत ।।१३।।

उसके भौंह और नाक के संधिस्थान से ज्योतिष्टोम नामक महान यज्ञ तथा ठुड्डी एवं श्रवण संधि के जोड़ से अग्निष्टोम उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥

चक्षूर्भ्रुवो सन्धिना तु व्रात्यष्टोमो व्यजायत ।
जातः पौनर्भवष्टोमस्तस्य पोत्रौष्ठसन्धितः ।।१४।।

नेत्र एवं भौंहों की सन्धि से व्रात्यष्टोम और उसके थूथन और होंठ की संधि से पुनर्भवष्टोम उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥

वृद्धष्टोमवृहत्स्टोमौ जिह्वामूलादजायताम् ।
अतिरात्रं सवैराजमधोजिह्वान्तरादभूत् ॥१५॥

वृद्धष्टोम और बृहत्ष्टोम उसके जिह्वा के जड़ से तथा विराट के सहित अतिरात्र नामक यज्ञ जिह्वा के निचले भाग से उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवोबलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥१६॥
स्नानं तर्पणपर्यतं नित्ययज्ञाश्च सर्वशः ।
कण्ठसंध्येः समुत्पन्नाः जिह्वातो विधयस्तथा ॥१७॥

अध्यापन (पढ़ाना) रूपी ब्रह्मयज्ञ, तर्पणरूपी पितृयज्ञ, होमरूपी देव और भूतबलि, अतिथि पूजनरूपी मनुष्ययज्ञ, स्नान से तर्पण पर्यन्त सब प्रकार के नित्य यज्ञ उसके कण्ठ के जोड़ों से उत्पन्न हुए तथा उनकी विधियाँ जिह्वा से उत्पन्न हुईं॥१६-१७ ॥

वाजिमेध-महामेधौ नरमेधस्तथैव च ।
प्राणिहिंसाकरा येऽन्ते ते जाताः पादसन्धितः ॥१८॥

अश्वमेध, महामेध तथा नरमेध एवं प्राणि हिंसा सम्बन्धी अन्य जो यज्ञ थे, वे सब उसके पैरों की सन्धियों से उत्पन्न हुए ॥ १८ ॥

राजसूयोऽर्थकारी च वाजपेयस्तथैव च ।
पृष्टसन्धौ समुत्पन्ना ग्रहयज्ञास्तथैव च ॥१९॥

अर्थप्रद राजसूययज्ञ, वाजपेययज्ञ तथा ग्रह सम्बन्धी अन्य यज्ञ उसके पीठ के जोड़ों से उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥

प्रतिष्ठोत्सर्गयज्ञाश्च दानश्राद्धादयस्तथा ।
हृत्सन्धितः समुत्पन्नाः सावित्रीयज्ञ एव च ॥२०॥

प्रतिष्ठा, दानश्राद्धादि उत्सर्गयज्ञ तथा सावित्रीयज्ञ उसके हृदय की संधियों से उत्पन्न हुए ॥ २० ॥

सर्वे सांस्कारिका यज्ञाः प्रायश्चित्तकराश्च ये ।
ते मेढ्रसन्धितो जाता यज्ञास्तस्य महात्मनः ॥२१॥

सभी संस्कारों से सम्बन्धित्त प्रायश्चित कारक जो यज्ञ थे वे उस महात्मा वाराह के मेढ़्र (जननांग) की संधि से उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥

रक्षःसत्रं सर्पसत्रं सर्वं चैवाभिचारिकम् ।
गोमेधो वृक्षयागश्च खुरेभ्यो ह्यभवन्निमे ॥२२॥

राक्षसों से सम्बन्धित यज्ञ तथा सर्पो से सम्बन्धित यज्ञ, सभी प्रकार के अभिचार सम्बन्धी यज्ञ, गोमेध, वृक्ष-याग आदि यज्ञ उसके खुरों से उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥

मायेष्टिः परमेष्टिश्च गीष्पतिर्भोगसम्भवः ।
लाङ्गुलसन्धौ संजाता अग्निष्टोमस्तथैव च ।।२३।।
नैमित्तिकाश्च ये यज्ञाः संक्रान्त्यादौ प्रकीर्तिताः ।
लाङ्गुलसन्धौ ते जातास्तथा द्वादशवार्षिकम् ।।२४।।

मायेष्टि, परमेष्टि, भोग से सम्बन्धित गीष्पति (वाक्पति) तथा अग्निष्टोम यज्ञ, संक्रान्ति आदि नैमित्तिक यज्ञ एवं बारह वर्षों तक चलने वाले विशिष्ट यज्ञ उसकी पूँछ की संधियों से उत्पन्न हुए ॥ २३-२४ ॥

तीर्थप्रयोगसामौजः यज्ञः संकर्षणस्तथा ।
आर्कमाथर्वणश्चैव नाडीसन्धेः समुद्गताः ।।२५।।

तीर्थप्रयोग, साम, ओज, संकर्षण तथा सूर्यसम्बन्धी एवं अथर्ववेद सम्बन्धी विविध प्रयोग उसकी नाड़ियों के सन्धि से उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥

ऋचोत्कर्षः क्षेत्रयज्ञाः पञ्चसर्गातियोजनः ।
लिङ्गसंस्थानहेरम्बयज्ञा जाताश्च जानूनि ।।२६।।

ऋचोत्कर्ष आदि क्षेत्रयज्ञ, अत्यन्त अधिक आयोजन वाले पंच यज्ञ, लिङ्ग संस्थान से तथा हेरम्ब नामक यज्ञ उसके जानुओं (घुटनों) से उत्पन्न हुए ॥ २६ ॥

एवमष्टाधिकं जातं सहस्रं द्विजसत्तमाः ।
यज्ञानां सततं लोका यैर्भाव्यन्तेऽधुनापि च ।।२७।।

हे द्विजसत्तमों ! इस प्रकार एक हजार आठ यज्ञ उत्पन्न हुए तथा लोक में आज भी निरन्तर जो अनेक यज्ञ (कर्म) प्रचलित हैं । वे सभी उसी से उत्पन्न हुए हैं ॥ २७ ॥

स्रुगस्य पोत्रात् संजाता नासिकायाः स्रुवोऽभवत् ।
अन्ये स्रुक्स्रुवभेदा ये ते जाता पोत्रनासयोः ।।२८।।

यज्ञों की उत्पत्ति के बाद यज्ञ सम्बन्धी उपकरणों की उत्पत्ति बताते हैं—स्रुक् उसके थूथन से तथा स्रुवा उसकी नाक से और स्रुक्-स्रुवा के जो अन्य प्रकार थे वे भी थूथन और नाक की संधियों से उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥

ग्रीवाभागेण तस्याभूत् प्राग्वंशो मुनिसत्तमाः ।
इष्टापूर्तिर्यजुर्धर्मो जाताः श्रवणरन्ध्रतः ।।२९।।

हे मुनिसत्तमों ! उसके गले के हिस्से से प्राग्वंश उत्पन्न हुआ तथा इष्टापूर्ति यजुर्वेद वर्णितधर्म उसके कान के छिद्रों से उत्पन्न हुए ॥ २९ ॥

दंष्ट्राभ्यो ह्यभवन् यूपाः कुशा रोमाणि चाभवन् ।
उद्गाता च तथाध्वर्युर्होता शामित्रमेव च ।।३०।।
अग्रदक्षिणवामांग - पश्चात् - पादेषु सङ्गताः ।
पुरोडाशाः सचरवो जाता मस्तिष्कसंचयात् ।।३१।।

दाँतों से यूप हुए तथा रोमों से कुशाएँ उत्पन्न हुईं। उद्गाता, अध्वर्यु, होता और शामित्र क्रमशः उसके अगले-पिछले दायें एवं बाएँ पैरों से तथा चरुओं सहित पुरोडाश उसके मस्तिष्क से उत्पन्न हुए॥ ३०-३१॥

कर्सूर्नेत्रद्वयाज्जाता यज्ञकेतुस्तथा खुरात्।
मध्यभागोऽभवद्वेदी मेढ्रात् कुण्डमजायत॥३२॥

कर्सु (कण्डों) की आग उसके नेत्रों से तथा यज्ञ पताकाएँ उसके खुरों से उत्पन्न हुईं। उसका मध्यभाग वेदी हुआ तथा मेढ्र (जननाङ्ग) से यज्ञकुण्ड उत्पन्न हुआ॥ ३२॥

रेतोभागात्तथैवाज्यं स्वधामन्त्राः समुद्गताः।
यज्ञालयः पृष्ठभागाद्हृत्पद्माद्यज्ञ एव च।
तदात्मा यज्ञपुरुषो मुंजाः कक्षात्समुद्गताः॥३३॥

उसके रेतस् (वीर्यभाग) से घी, पृष्ठ भाग से स्वधामन्त्र और यज्ञशाला एवं उस वाराह के हृदयकमल से स्वयं यज्ञ उत्पन्न हुआ॥ ३३॥

एवं यावन्ति यज्ञानां भाण्डानि च हवींषि च।
तानि यज्ञवराहस्य शरीरादेव चाभवन्॥३४॥

इस प्रकार यज्ञसम्बन्धी जितने भी पात्र या हविष्य थे वे सब उस यज्ञ वाराह के शरीर से ही उत्पन्न हुए॥ ३४॥

एवं यज्ञवराहस्य शरीरं यज्ञतामगात्।
यज्ञरूपेण सकलमाप्यायितुमिदं जगत्॥३५॥

इस प्रकार इस सम्पूर्ण संसार को यज्ञरूप से व्याप्त करने के लिए यज्ञवाराह का शरीर ही यज्ञता को प्राप्त हुआ॥ ३५॥

एवं विधाय यज्ञं तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
सुवृत्तं कनकं घोरमासेदुर्यत्नतत्पराः॥३६॥

इस प्रकार यज्ञ का निर्माण कर यज्ञ के प्रयत्न में जुटे हुए वे ब्रह्मा, विष्णु, महेश सुवृत्त, कनक, घोर नामक यज्ञवाराह के पुत्रों को प्राप्त किए॥ ३६॥

ततस्तेषां शरीराणि पिण्डीकृत्य पृथक् पृथक्।
त्रिदेवास्त्रिशरीराणि व्यधमन्मुखवायुभिः॥३७॥

तब तीनों देवताओं ने उन तीनों के शरीरों को पिण्ड की तरह गोला बनाकर अपने मुख की वायु से अलग-अलग उन्हें तपाया (फूँका)॥ ३७॥

सुवृत्तस्य शरीरं तु व्यधमन्मुखवायुना।
स्वयमेव जगत्स्रष्टा दक्षिणाग्निस्ततोऽभवत्॥३८॥

सुवृत्त के शरीर को अपने मुख की वायु से स्वयं जगत्स्रष्टा ब्रह्मा ने तपाया (फूँका) तो उससे दक्षिणाग्नि उत्पन्न हुए॥ ३८॥

कनकस्य शरीरं तु ध्मापयामास केशवः।
ततोऽभूद्गार्हपत्याग्निः पञ्चवैतानभोजनः॥३९॥

कनक के शरीर को विष्णु ने तपाया तो उससे पञ्चाहुति ग्रहण करने वाले गार्हस्पत्य अग्नि उत्पन्न हुए ।। ३९ ।।

घोरस्य तु वपुः शम्भुर्ध्मापयामास वै स्वयम् ।
तत आहवनीयोऽग्निस्तत्क्षणात् समजायत ।।४०।।

घोर के शरीर को स्वयं शङ्कर ने जब तपाया तो उसी समय उससे आवहनीय अग्नि उत्पन्न हुए ।। ४० ।।

एतैस्त्रिभिर्जगद्व्याप्तं त्रिमूलं सकलं जगत् ।
एतद् यत्र त्रयं नित्यं तिष्ठन्ति द्विजसत्तमाः ।
समस्ता देवतास्तत्र वसन्त्यनुचरैः सह ।। ४१।।

हे द्विजसत्तमों ! इन्हीं तीन अग्नियों से तीन गुणों के कारण उत्पन्न यह समस्त संसार व्याप्त है । तीनों का यह समूह जहाँ नित्य रहता है वहाँ सभी देवता अपने अनुचरों सहित निवास करते हैं ।। ४१ ।।

एतद्भद्रपदं नित्यमेतदेव त्रयात्मकम् ।
एतत्त्रयीविधिस्थानमेतत् पुण्यकरं परम् ।।४२ ।।

यही नित्य का मङ्गलमय आसन है, यही त्रयी अर्थात् तीनों वेदों या तीनों देवों का सम्मिलित रूप है । यहीं तीनों विधियों का स्थान तथा सब प्रकार से पुण्यप्रद है ।। ४२ ।।

यस्मिन् जनपदे चैते हूयन्ते वह्नयस्त्रयः ।
तस्मिन् जनपदे नित्यं चतुर्वर्गो विवर्धते ।।४३।।

जिस जनपद में इन तीनों अग्नियों में हवन किया जाता है उस जनपद (क्षेत्र) में अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थों की अभिवृद्धि होती है ।। ४३ ।।

एतद्वः कथितं सर्वं यत् पृष्टोऽहं द्विजोत्तमाः ।।४४।।
यथा यज्ञवराहस्य देहो यज्ञत्वमाप्तवान् ।
यथा च तस्य पुत्राणां देहतो वह्नयोऽभवन् ।।४५।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे वाराहतनौ यज्ञोत्पत्तिर्नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ।।३१।।

हे द्विजसत्तमों ! जिस प्रकार यज्ञवाराह का शरीर यज्ञत्व को प्राप्त हुआ तथा उसके पुत्रों के शरीर अग्नि रूप हुए, आप लोगों द्वारा पूछा गया यह वृत्तान्त मैंने आप लोगों से कह दिया ।। ४४-४५ ।।

।। श्रीकालिकापुराण में वाराह तन से यज्ञोत्पत्ति नामक एकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। ३१ ।।



द्वात्रिंशोऽध्यायः

मत्स्यावतारवर्णनम्

।। ऋषय ऊचुः ।।

आकालिकोऽयं प्रलयो यतो भगवता कृतः ।
तच्छृण्वन्तु महाभागा वाराहं लोकसंक्षयम् ।।१।।

ऋषि बोले– हे महाभाग ! वाराह ने जो लोकसंहार किया वह अकालसम्बन्धी प्रलय, भगवान द्वारा जिस लिये हुआ, उसके सम्बन्ध में आप सब सुनिये ॥ १ ॥

यथा वा मत्स्यरूपेण वेदास्त्राताश्च शार्ङ्गिणा ।
तदहं संप्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ।।२।।

या जिस प्रकार शार्ङ्गधारण करने वाले भगवान विष्णु ने मत्स्यरूप धारण कर वेदों का उद्धार किया, सभी पापों का नाश करने वाला वह वृतान्त मैं कहूँगा ॥ २ ॥

पुरा महामुनिः सिद्धः कपिलो विष्णुरीश्वरः ।
साक्षात् स्वयं हरिर्योऽसौ सिद्धानामुत्तमो मुनिः ।।३।।

प्राचीन काल में भगवान विष्णु, कपिल नाम के सिद्ध महामुनि हुए। स्वयं साक्षात् हरि ही सिद्धों में उत्तम वह मुनिरूप धारण किये थे ॥ ३ ॥

ध्यायतः सिद्धमित्येवं सर्वं जगदिदं स्वतः ।
यतो जातो हरेः कायात् कपिलस्तेन स स्मृतः ।।४।।

यह सम्पूर्ण जगत् ध्यानमात्र से ही उन्हें स्वयं सिद्ध था। हरि के शरीर से उत्पन्न होने के कारण वह कपिल के रूप में स्मरण किये जाते थे ॥ ४ ॥

स एकदा पुरा भूत्वा मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
स्वायम्भुवं मनुं वाक्यं मुनिवर्योऽब्रवीदिदम् ।।५।।

उन मुनिश्रेष्ठ ने प्राचीन काल में स्वायम्भुव मन्वन्तर में अवतार लेकर स्वायंभुव मनु से ये वाक्य कहे— ॥ ५ ॥

।। कपिल उवाच ।।

स्वायम्भुव मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मरूप महामते ।
ममैवमीप्सितार्थं त्वं देहि प्रार्थयतोऽधुना ।।६।।

कपिल बोले–हे मुनियों में श्रेष्ठ स्वायंभुव मनु, आप ब्रह्मा के स्वरूप और महान् मति वाले हो। अब आप मेरी प्रार्थना के अनुसार मेरा अभिलषित मुझे प्रदान करें॥ ६॥

जगत्सर्वं तवैवेदं त्वया च परिपालितम्।
त्वया सर्वं जगत् सृष्टं त्वमेव जगतां पतिः॥७॥

यह समस्त जगत् आपका ही है और आप द्वारा ही परिपालित है, आप ही द्वारा यह समस्त जगत् रचा गया है तथा आप ही इस जगत् के स्वामी हैं॥ ७॥

स्वर्गे पृथिव्यां पाताले देवमानुषजन्तुषु।
त्वं प्रभुर्वरदो गोप्ता त्वमेवैकः सनातनः॥८॥

स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल में देव, मनुष्य और प्राणियों में आप ही एक मात्र सनातन तत्त्व हो, आप ही स्वामी हो, वर देने वाले तथा उनके रक्षक भी आप ही हो॥ ८॥

त्वं वै धाता विधाता च त्वं हि सर्वेश्वरेश्वरः।
त्वयि प्रतिष्ठितं सर्वं सततं भुवनत्रयम्॥९॥

आप ही पालन करने वाले तथा बनाने वाले हो, आप सभी ईश्वरों के भी ईश्वर हो, आप में ही यह समस्त तीनों भुवन प्रतिष्ठित हैं॥ ९॥

तपस्यतो तव समं प्रतिभास्यति सोऽनुगम्।
कार्यकारणतत्त्वाघ - सहितानि जगन्ति वै॥१०॥

कार्यकारण तत्त्वों के समूह के सहित यह गतिशीलजगत् आपका अनुगमन करते हुए, तप के ही कारण आपके समान प्रतिभाषित होता है॥ १०॥

तन्मे देहि रहः स्थानं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।
पुण्यं पापहरं रम्यं ज्ञानप्रभवमुत्तमम्॥११॥

इस जगत में आप मुझे तीनों लोकों में दुर्लभ, पवित्र, पापनाशक, सुन्दर, उत्तमज्ञान उत्पन्न करने वाला, एकान्त स्थान प्रदान करो॥ ११॥

अहं हि सर्वभूतानां भूत्वा प्रत्यक्षदर्शिवान्।
उद्धरिष्ये जगज्जातं निर्माय ज्ञानदीपिकाम्॥१२॥

क्योंकि मैं ही ज्ञानदीपिका का निर्माण कर संसार में उत्पन्न सभी प्राणियों को प्रत्यक्ष दिखाने वाला होऊँगा तथा तब उनका उद्धार करूँगा॥ १२॥

अज्ञानसागरे मग्नमधुना सकलं जगत्।
ज्ञानप्लवं प्रदायाहं तारयिष्ये जगत्त्रयम्॥१३॥

इस समय सारा संसार अज्ञानसागर में डूबा हुआ है। मैं ज्ञान रूपी नौका प्रदान कर तीनों लोकों का उद्धार करूँगा॥ १३॥

एतस्मिन्मां भवान् सम्यगुपपन्नमिहेच्छति ।
त्वन्नो नाथश्च पूज्यश्च पालकश्च जगत्प्रभो ।।१४।।

हे जगत् के स्वामी ! आप हमारे राजा हो, पूज्य हो, पालनकर्त्ता हो, इस संसार में मुझे भलीभाँति उपयुक्त चाहते हो ॥ १४ ॥

इत्येवमुक्तः स मनुः कपिलेन महात्मना ।
प्रत्युवाच महात्मानं कपिलं संशितव्रतम् ।।१५।।

महात्मा कपिल के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वे मनु उन नियतव्रती महात्मा कपिल से उत्तर देते हुए बोले— ॥ १५ ॥

।। मनुरुवाच ।।

यदि त्वयाखिलजगद्धितार्थं ज्ञानदीपिकाम् ।
चिकीर्षूणा यतः कार्यं किं स्थानार्थनया तव ।।१६।।

मनु बोले– यदि तुम समस्त जगत् के हित के लिए ज्ञानदीपिका का निर्माण करने की इच्छा रखते हो तो मुझसे तुम्हारे द्वारा स्थान की याचना क्यों की जा रही है ? क्योंकि लोककल्याण तो कहीं भी किया जा सकता है, उसके लिए स्थान माँगने की कोई आवश्यकता नहीं होती ॥ १६ ॥

हिरण्यगर्भः सुमहत् तपस्तेपे पुराद्भुतम् ।
स मे ययाचे तपसे स्थानं कस्मै न च द्विज ।।१७।।

हे द्विज ! प्राचीन काल में हिरण्यगर्भ ब्रह्मा ने अद्भुत रूप से महान तपस्या की और उन्होंने मुझसे तपस्या हेतु किसी भी स्थान की याचना नहीं की ॥ १७ ॥

शम्भुः सम्भोगरहितो देवमानेन वत्सरान् ।
अयुतानि तपस्तेपे सोऽपि स्थानं न चैक्षत ।।१८।।

शिव ने सम्भोग से रहित हो ब्रह्मचर्यपूर्वक देवताओं के मान से दश हजार वर्षों (३६०००००० मानव वर्षों) तक तपस्या किया किन्तु उन्होंने भी स्थान की इच्छा नहीं की ॥ १८ ॥

देवेन्द्रो वीतिहोत्रश्च शमनो रक्षसां पतिः ।
यादःपतिर्मातरिश्वा धनाध्यक्षस्तथैव च ।।१९।।
एते तेपुस्तपस्तीव्रं दिक्पालत्वमभीप्सवः ।
स्थानं न मार्गयामासुः किञ्चनापि महामुने ।।२०।।

हे महामुनि ! देवराज इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षसों के स्वामी निऋति, जल-जन्तुओं के स्वामी वरुण, वायु, धनाध्यक्षकुबेर इन लोगों ने दिक्पाल पद पाने की लालसा से तीव्र तपस्या की, किन्तु इनमें से कोई भी स्थान नहीं माँगा ॥ १९-२० ॥

देवागाराणि तीर्थानि क्षेत्राणि सरितस्तथा ।
बहूनि पुण्यभाग्यत्र तिष्ठन्ति कपिल क्षितौ ।।२१।।

तेषामेकतमं त्वं चेदासाद्य कुरुषे तपः ।
स्थानं ब्रह्मंस्तपःसिद्धिर्न भविष्यति तत्र किम् ।।२२।।

हे कपिल मुनि ! पृथ्वी पर बहुत से ऐसे क्षेत्र, नदियाँ, तीर्थ तथा देवालय हैं, जहाँ पुण्यात्मा जन निवास करते हैं उनमें से किसी एक स्थान को प्राप्त कर यदि तुम तपस्या करो, तो हे ब्रह्मन्! क्या वहाँ आपको सिद्धि नहीं प्राप्त होगी ? ॥ २१-२२ ॥

मत्तः स्थानार्थना तावत् केवलं ते विकत्थनम् ।
अयं विकत्थनो धर्मो युज्यते न तपस्विनाम् ।।२३।।

ऐसी परिस्थिति में तुम्हारे द्वारा स्थान की याचना करना तो मात्र गर्वोक्ति ही है। तपस्वी जनों के लिए गर्वोक्ति, धर्मयुक्त नहीं लगती ॥ २३ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एतचछ्रुत्वा वचस्तस्य मनोः स्वायम्भुवस्य तु ।
चुकोप कपिलः सिद्धः प्रोवाच च तदा मनुम् ।।२४।।

मार्कण्डेय बोले– उन स्वायम्भुव मनु के इन वचनों को सुनकर सिद्ध कपिल मुनि क्रोधित हो गये और मनु से बोले ॥ ४ ॥

।। कपिल उवाच ।।

त्वयि विश्रम्भमाधाय तपसः सिद्धयेऽचिरात् ।
स्थानं मया प्रार्थितं ते तन्मां क्षिपसि हेतुभिः ।।२५।।

कपिल बोले– मैंने तुम्हारे पर भरोसा कर तपस्या से शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करने के लिए उपयुक्त स्थान की याचना की, जिससे तुम मुझे इस प्रकार आक्षेप लगा रहे हो ॥ २५ ॥

अनेनात्युग्रवचसा तवैवाहं न चक्षमे ।
स्वयं त्रिभुवनाध्यक्ष इति ते गर्व ईदृशः ।।२६।।

तुम्हारे इस प्रकार के उग्रवचनों को मैं सहने में असमर्थ हूँ। तुम स्वयं त्रिभुवन के स्वामी हो ऐसा तुम्हें गर्व हो गया है ॥ २६ ॥

अक्षम्यं ते वचो मेऽद्य प्रार्थनायां विकत्थनम् ।
यत् त्वं वदसि तस्य त्वं फलमेतदवाप्नुहि ।।२७।।

आज तुमने मेरे निवेदन को जो गर्वोक्ति कह दिया यह वचन अक्षम्य है। उसका तुम शीघ्र ही फल प्राप्त करो ॥ २७ ॥

इदं त्रिभुवनं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।
हतप्रहतविध्वस्तमचिरेण भविष्यति ।।२८।।

यह देवता असुर और मनुष्यों सहित समस्त त्रिलोकी शीघ्र ही हत-प्रहत और ध्वस्त हो जायगी ॥ २८ ॥

येनेयमुद्धता पृथ्वी येन वा स्थापिता पुनः ।
यो वास्या अन्नकर्ता स्याद्यो वास्याः परिरक्षकः ।
त एव सर्वे हिंसन्तु सकलं सचराचरम् ।।२९।।

जिनके द्वारा इस पृथ्वी का उद्धार किया गया, जिसने इसे पुनः स्थापित किया जो इस पर अन्नादि उत्पन्न करने वाले हैं अथवा जो इसके रक्षक हैं, वही सब सकल चराचर जगत् का नाश करेंगे ॥ २९ ॥

नचिराद्द्रक्ष्यसि मनोजलपूर्णं जगत्त्रयम् ।
हतप्रहतविध्वस्तं तव गर्वविशातनम् ।।३०।।

हे मनु ! तुम्हारे गर्व का आधार यह तीनों लोक शीघ्र ही जलपूर्ण तथा क्षत-विक्षत हो, ध्वस्त हो जायेगा ॥ ३० ॥

एवमुक्त्वा मुनीन्द्रोऽसौ कपिलस्तपसां निधिः ।
अन्तर्दधे जगामापि तदा ब्रह्मसदो मुनिः ।।३१।।

ऐसा कहकर तपस्वियों की निधि, वे कपिल मुनि अन्तर्ध्यान हो गये तथा ब्रह्मलोक को चले गये ॥ ३१ ॥

कपिलस्य वचः श्रुत्वा विषण्णवदनो मनुः ।
भावीति प्रतिपद्याशु मनुर्नोवाच किञ्चन ।।३२।।

कपिल के वचनों को सुनकर मनु दुःखीमुख तो हुए किन्तु शीघ्र ही यही भावी है ऐसा विश्वास क़र, वे कुछ नहीं बोले ॥ ३२ ॥

ततः स्वायम्भुवो धीमांस्तपसे धृतमानसः ।
हिताय सर्वजगतां दिदृक्षुर्गरुडध्वजम् ।
विशालां बदरीं यातो गङ्गाद्वारान्तिकं खलु ।।३३।।

तब बुद्धिमान् स्वायंभुवमनु भी सब प्राणियों के कल्याण के लिए तपस्या का निश्चय कर गरुड़ध्वज, भगवान विष्णु के दर्शन की लालसा से गंगाद्वार (हरिद्वार) के निकट विशाल, बदरी (बदरी वन) को गये ॥ ३३ ॥

तत्र गत्वा जगद्धर्ता मनुः स्वायम्भुवः स्वयम् ।
ददर्श बदरीं तत्र पुण्यां पापप्रणाशिनीम् ।।३४।।

वहाँ जाकर जगत के पालक स्वायम्भुवमनु ने स्वयं उस पुण्यदायी, पापों का नाश करने वाले बदरीवन को देखा ॥ ३४ ॥

सदा फलवतीं नित्यं मृदुशाद्वलमंजरीम् ।
सुच्छायां मसृणां शीर्णशुष्कपत्रविवर्जिताम् ।।३५।।

वह सदैव फलवान्, नित्य मुलायम, हरी-भरी घास और मञ्जरियों से युक्त था। वहाँ सुन्दर छाया थी। सूखे तथा सड़े गले पत्तों से रहित, वह कोमल पत्तों से युक्त था ॥ ३५ ॥

गङ्गातोयौधसंसिक्त - शिखामूलान्तराखिलाम् ।
उपास्यमानां सततं नानामुनितपोधनैः ।।३६।।

वह जड़ से लेकर शिखर तक पूर्णरूप से गङ्गा के जलसमूह से सिंचित थी तथा अनेक तपस्वी मुनिजन निरन्तर वहाँ निवास करते थे ।

तत्स्थानं सर्वतो भद्रं नानाभृङ्गगणान्वितम् ।
फुल्लारविन्दसलिलं रमणीयं वृषप्रदम् ।।३७।।
प्रविश्य तपसे यत्नमकरोल्लोकभावनः ।
स भूत्वा नियताहारः परमेण समाधिना ।।३८।।

उस सब ओर से मङ्गलमय, अनेक भौरों के समूह से सुशोभित, खिले हुए कमलों वाले जल से युक्त, सुन्दर, वरदायक, स्थान में प्रवेश कर लोक को प्रिय लगने वाले स्वायम्भुव मनु ने तपस्या हेतु नियत आहारव्रती होकर परम समाधि के द्वारा यत्न प्रारम्भ किया ।। ३७-३८ ।।

आराधयामास हरिं जगत्कारणकारणम् ।
सर्वेषां जगतां नाथं नीलमेघाजनप्रभम् ।।३९।।
शङ्खचक्रगदापद्मधरं कमललोचनम् ।
पीताम्बरधरं देवं गरुडोपरिसंस्थितम् ।।४०।।

उन्होंने उपर्युक्त तपस्या से संसार के कारण के भी कारण, सम्पूर्ण जगत के स्वामी, नीलमेघ के समान श्याम प्रभा वाले, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म तथा पीताम्बरधारी, कमलवत् नेत्र वाले, गरुड़ पर स्थित, उस भगवान विष्णु की आराधना की ।। ३९-४० ।।

जगन्मयं लोकनाथं व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणम् ।
जगद्बीजं सहस्राक्षं सहस्रशिरसं प्रभुम् ।
सर्वव्यापिनमाधारं नारायणमजं विभुम् ।।४१।।

जो जगन्मय, लोकों के स्वामी, व्यक्त और अव्यक्त दोनों ही स्वरूपों वाले संसार के बीज स्वरूप, हजार नेत्र तथा हजार शिरों वाले, सर्वव्यापी, सबके आधारभूत, अजन्मा, स्वामी, व्यापक, नारायण नाम वाले हैं (उन विष्णु की आराधना की ।) ।। ४१ ।।

जपन्नेतत्परं मन्त्रं सर्ववेदमयं मनुः ।।४२।।
हिरण्यगर्भपुरुषप्रधानाव्यक्तरूपिणे ।
ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे ।।४३।।

''ॐ नमो हिरण्यगर्भपुरुषप्रधानाव्यक्तरूपिणे शुद्धज्ञान स्वरूपिणे वासुदेवाय ।'' सभी वेदों के स्वरूप इस श्रेष्ठ मन्त्ररूप का जप करते हुए मनु ने विष्णु की आराधना की ।। ४२-४३ ।।

मन्त्रार्थ– हिरण्यगर्भ, पुरुष, प्रधान तथा अव्यक्त रूप वाले शुद्धज्ञान स्वरूप वासुदेव को नमस्कार है।

इति जप्यं प्रजपतो मनोः स्वायम्भुवस्य तु।
प्रससाद जगन्नाथः केशवो नचिरादथ ।।४४।।

उपर्युक्त जपनीय मन्त्र को जपकर स्वायम्भुव मनु ने शीघ्र ही जगन्नाथ भगवान केशव को प्रसन्न कर लिया ॥ ४४ ॥

ततः क्षुद्रझषो भूत्वा दुर्वादलसमप्रभः।
कर्पूरकलिकायुग्म - तुल्यनेत्रयुगोज्ज्वलः ।।४५।।

तब वे भगवान नये दूब के पत्तों के समान साँवले वर्ण तथा कपूर के कलिका के जोड़ों के समान उज्ज्वल नेत्रों वाली छोटी मछली बन गये ॥ ४५ ॥

तपस्यन्तं महात्मानं मनुं स्वायम्भुवं मुनिम्।
आससाद तदा क्षुद्रमत्स्यरूपी जनार्दनः ।।४६।।
उवाच तं महात्मानं मनुं स्वायम्भुवं तदा।
ससन्त्रस्तं स कारुण्ययुक्तं भीतिसगद्गदम् ।।४७।।

तब क्षुद्रमत्स्य का रूप धारण कर, भगवानविष्णु मौनव्रती, तपस्यारत, महात्मा, स्वायभुव मनु के समीप गये और भयभीत, करुणायुक्त, भय से गद्गद् हो उन्होंने उनसे कहा— ॥ ४६-४७ ॥

।। मत्स्य उवाच ।।

तपोनिधे महाभाग भीतं मां त्रातुमर्हसि।
नित्यमुद्वेजितं मत्स्यैर्विशालैर्भक्षितुं प्रति ।।४८।।

मत्स्य (रूपधारी जनार्दन) बोले–हे तपोनिधि! हे महाभाग! विशाल मछलियाँ मुझे खाने को तत्पर हैं, उनसे मैं नित्य उद्विग्न हूँ, ऐसे मुझ डरे हुए व्यथित की आप रक्षा कीजिए ॥ ४८ ॥

प्रत्यहं मां महाभाग मीना धावन्ति भक्षितुम्।
समन्ततोऽधिकाहन्तुं त्वं नाथ गोपितुं क्षमः ।।४९।।

हे महाभाग! प्रतिदिन बहुत-सी मछलियाँ इकट्ठी हो मुझे खाने को दौड़ती हैं। हे नाथ! आप ही उनसे मुझे बचाने में समर्थ हैं ॥ ४९ ॥

अद्य प्रभूतैर्विपुलैर्दारितः पृथुरोमभिः।
विश्रान्तोऽहं क्षुद्रतरो न च शक्तः पलायने ।।५०।।
प्राणाकांक्षी महात्मानं भवन्तं शरणं मुनिम्।
प्राप्तोऽहञ्छेदनुक्रोशस्तेऽस्ति मां प्रतिपालय ।।५१।।

आज बहुत-सी बड़ी मछलियों द्वारा सताया हुआ उनसे छोटा, मैं थक गया हूँ और अब भागने में समर्थ नहीं हूँ। प्राण रक्षा की आकांक्षा लेकर आप जैसे महात्मा मुनि की शरण में आया हूँ। यदि आपकी कृपा हो तो आप मेरी रक्षा करें ॥ ५०-५१ ॥

भयोद्भ्रान्तमनाश्चाहं वृक्षच्छायां च चञ्चलाम् ।
दृष्ट्वा चलतरङ्गांश्च मत्स्यादिव विभेम्यहम् ।।५२।।

भयवश भ्रमितचित्त होने से वृक्षों की चञ्चलछाया और चञ्चल लहरों को देखकर मछलियों की भाँति ही मैं उनसे डर रहा हूँ॥ ५२ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा मनुः स्वायम्भुवस्ततः ।
कृपया परयायुक्तः प्रोचेऽहं रक्षिता तव ।।५३।।

मार्कण्डेय बोले– तब स्वायम्भुवमनु उसकी इस वाणी को सुनकर परम कृपा से युक्त होकर बोले—मैं तुम्हारा रक्षक हूँ॥ ५३ ॥

ततः करोदरे तोयमादायाधाय तत्र तम् ।
समक्षं क्षुद्रमत्स्यस्य विहारं समलोकयत् ।।५४।।

तब हाथ की अंजलि में जल लेकर, उसमें उसे रखकर, सामने उस छोटी सी मछली का जल विहार देखने लगे॥ ५४ ॥

ततो दयालुः स मनुस्तं मत्स्यं चारुरूपिणम् ।
अलिञ्जरे तोयपूर्णे न्यधाद्विपुलभोगिनि ।।५५।।

तब उस दयालु मनु ने उस सुन्दर रूपवाली मछली को एक बड़े जलपूर्ण अलिञ्जर (जलपात्र) में रखा॥ ५५ ॥

स तस्मिन् मणिके मत्स्यो वर्धमानो दिने दिने ।
सामान्यरोहितप्राय - देहोऽभून्नचिरादथ ।।५६।।

वह मत्स्य उस मणिक (जलकलश) में दिनोंदिन बढ़ता हुआ शीघ्र ही सामान्य रोहित (रोहू) मछली के आकार का हो गया॥ ५६ ॥

दशघटजलपूर्णं प्रत्यहं स महात्मा
मणिकवसमतिकुर्वन् वर्धयामास मत्स्यम् ।
स च सुविशदनेत्रो मत्स्यबालोऽचिरेण
मणिकसलिलमध्ये लोमशः पीनदेहः ।।५७।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे मत्स्यावतारवर्णने द्वात्रिंशोऽध्याय: ॥३२॥

वह महात्मा प्रतिदिन दश घड़े जलक्षमता के अनुपात में उस जलपात्र को बड़ा करते हुए, उसमें मछली को बढ़ाते रहे। इस प्रकार शीघ्र ही वह बाल मत्स्य उस जलपात्र के जल में बड़े-बड़े नेत्रों वाला, पुष्ट शरीर वाला, रोयेंदार हो गया॥ ५७ ॥

॥ श्रीकालिकापुराण में मत्स्यरूपवर्णन सम्बन्धी बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३२ ॥



त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

अकालप्रलय-कथनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

तं तथा पीवरतनुं दृष्ट्वा मात्स्यं मनुः स्वयम् ।
गृहीत्वा पाणिना फुल्लनलिनीं सरसीं ययौ ।।१।।

मार्कण्डेय बोले–उस मछली को उस प्रकार मोटा शरीर वाला देखकर स्वयं स्वायम्भुव मनु उसे हाथ में लेकर खिले हुए कमलिनियों से युक्त सरोवर पर गये ॥ १ ॥

तत्सरस्तत्र विपुलं पुण्ये नारायणाश्रमे ।
एकयोजनविस्तीर्णं सार्धयोजनमायतम् ।
नानामीनगणोपेतं शीतामलजलोत्करम् ।।२।।

वह सरोवर, वहाँ पवित्र नारायणआश्रम में एक योजन चौड़ा तथा डेढ़ योजन लम्बा फैला हुआ था । वह अनेक मछलियों के समूह से युक्त, शीतल, निर्मल, जल से भरा हुआ था ॥ २ ॥

तदासाद्य सरो मत्स्यं विनिधाय मनुस्तदा ।
पालयामास सुतवत् कृपया परया युतः ।।३।।

तब मनु ने उस सरोवर पर पहुँचकर मछली को उसमें रखकर अत्यधिक कृपापूर्वक पुत्र की तरह पाला ॥ ३ ॥

सोऽचिरेणैव कालेन पीनो वैसारिणोऽभवत् ।
न ममौ तत्र सरसि बृहत्त्वात् द्विजसत्तमाः ।।४।।

हे द्विजसत्तमों ! थोड़े ही समय में ही वह मछली मोटी हो गई तथा अपने बड़े होने के कारण उस सरोवर में नहीं समायी ॥ ४ ॥

स एकदा महामत्स्यः पूर्वापरतरद्वये ।।५।।
शिरः पुच्छे निधायाशु तुङ्गदेहः समुच्छ्रितः ।
स्वायम्भुवं महात्मानं चुक्रोश त्राहि मामिति ।।६।।

एक बार उस महामत्स्य ने अपने अगले और पिछले दोनों भागों, शिर और पूँछ को शीघ्र ही एक साथ करके शरीर को ऊँचा उठाकर, महात्मा स्वायंभुव मनु से ''मेरी रक्षा कीजिये'' यह कहा—॥ ५-६ ॥

तं तथा च मनुर्ज्ञात्वा क्रोशन्तं स्थूलपुच्छकम् ।
आससाद तदा मत्स्यं जग्राह च करेण तम् ।।७।।
न शक्नोम्यहमुद्धर्तुं पृथरोमाणमद्भुतम् ।
इति संचिन्तयन्नेव प्रोद्दधार करेण तम् ।।८।।

मनु ने उस प्रकार से पुकारती हुई उस मोटी पूँछ वाले को जानकर और उसके निकट जाकर उसे हाथ से पकड़ लिया। 'मैं इस अद्भुत मत्स्य को उठा नहीं सकूँगा' यह सोचकर उसे अपने हाथ पर धारण किया ॥ ७-८ ॥

भगवानपि विश्वात्मा मत्स्यरूपी जनार्दनः ।
स्वायम्भुवकरं प्राप्य लघिमानमुपाश्रयत् ।।९।।

मत्स्य रूप धारण किये हुए विश्वात्मा भगवान विष्णु ने स्वायंभुव मनु के हाथ को प्राप्त कर हल्केपन का आश्रय लिया ॥ ९ ॥

ततः कराभ्यामुद्धृत्य स्कन्धे कृत्वा द्रुतं मनुः ।
निनाय सागरं तत्र तोये च निदधे ततः ।।१०।।

तब दोनों हाथों से उसे उठाकर कन्धे पर रखकर, मनु तेजी से उसे समुद्र में ले गये, और वहाँ उसे जल में रखा ॥ १० ॥

यथेच्छमत्र वर्धस्व न कोऽपि त्वां वधिष्यति ।
अचिरेणैव सम्पूर्णदेहं त्वं समवाप्नुहि ।।११।।
इत्युक्त्वा स महाभागः सर्वप्राणभृतां वरः ।
लघुत्वं चिन्तयंस्तस्य विस्मयं परमं गतः ।।१२।।

अपनी इच्छानुसार बढ़ो, यहाँ तुम्हें कोई नहीं मारेगा, शीघ्र ही तुम अपने शरीर की पूर्णता को प्राप्त करो। ऐसा कहकर सभी प्राणियों में श्रेष्ठ, महाभाग, स्वायम्भुव मनु उसके हल्केपन के सम्बन्ध में विचार करते हुए अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त हुये ॥ ११-१२ ॥

मत्स्योऽपि नचिरादेव पूर्णकायस्तदा महान् ।
सर्वतः पूरयामास देहाभोगेन सागरम् ।।१३।।

तब वह मत्स्य भी शीघ्र ही पूर्ण एवं महान शरीर को धारण कर अपने शरीर के विस्तार से सब ओर से समुद्र को भर लिया ॥ १३ ॥

तं पूर्णकायमालोक्य व्यतीत्याम्भः समुच्छ्रितम् ।
शिलाभिर्निचितं स्फीतं मानसाचलसंनिभम् ।।१४।।
रुन्धन्तं सागरं सर्वं देहाभोगाचलीकृतम् ।
स्वायम्भुवो मनुर्धीमान् मेने मात्स्यं न तं तदा ।।१५।।

जल की उछलती तरङ्गों से मिले हुए उस पूर्णविकसित महामत्स्य को मनु ने शिलाओं से घिरे हुए मानसपर्वत की भाँति देखा जो अपने पर्वत के समान शरीर

के विस्तार से सम्पूर्ण सागर को घेरे हुए था। तब बुद्धिमान् स्वायम्भुव मनु ने उसे सामान्य मत्स्य नहीं माना ॥ १४-१५ ॥

ततः पप्रच्छ तं साम्ना मत्स्यं स्वाय्भुवो मनुः ।
विचिन्त्य लघिमानं च पश्यन् मूर्तिं तदाद्भुतम् ।।१६।।

तब स्वायम्भुव मनु ने उसकी लघुता का विचार कर तथा उसके अद्भुत (पर्वताकार) स्वरूप को देखकर, स्तुतिपूर्वक उस मत्स्य से पूछा ॥ १६ ॥

।। मनुरुवाच ।।

न त्वां मत्स्यमहं मन्ये कस्त्वं मे वद सत्तम ।
महत्वं लघिमानं ते चिन्तयन् सुमहत्तर ।।१७।।

मनु बोले– हे श्रेष्ठ ! आप कौन हो? मुझे बताओ? क्योंकि आपकी लघुता और विशालता दोनों ही एक दूसरे से महान हैं, इनका विचार करते हुए मैं आपको सामान्य मछली नहीं मानता ॥ १७ ॥

त्वं ब्रह्माप्यथवा विष्णुः शम्भुर्वा मीनरूपधृक् ।
न चेद्गुह्यं महाभाग तन्मे वद महामते ।।१८।।

हे महान बुद्धि वाले, हे महाभाग ! आप मछली का रूप धारण किये हुए ब्रह्मा, विष्णु अथवा शिव हो ? यदि यह गुप्त बात न हो तो मुझे बताइये ॥ १८ ॥

।। मत्स्य उवाच ।।

आराध्योऽहं त्वयानित्यं यो हरिः सः सनातनः ।
तवेष्टकामसिद्ध्यर्थं प्रादुर्भूतः समाहितः ।।१९।।

मत्स्यरूप विष्णु बोले– तुम नित्य जिस सनातनविष्णु की आराधना करते हो, मैं वही हूँ और तुम्हारी इष्टकामना की पूर्तिहेतु एकाग्र हो, यहाँ प्रकट हुआ हूँ ॥ १९ ॥

यत् त्वमिच्छसि भूतेश मत्तस्त्वं मीनमूर्तितः ।
तत् करिष्येऽद्य तां मूर्तिमिमां विद्धि मनो मम ।।२०।।

हे प्राणियों के स्वामी ! मुझसे तुम जो भी चाहते हो वह मैं अपने इस मत्स्यरूप से ही करूँगा। हे मनु ! जिसकी तुमने आराधना की उस हरि का स्वरूप, मेरे इसी मत्स्यरूप को जानो ॥ २० ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोरमिततेजसः ।
ज्ञात्वा प्रत्यक्षतो विष्णुं मनुस्तुष्टाव केशवम् ।।२१।।

मार्कण्डेय बोले–उस अमित तेजस्वी विष्णु के इस प्रकार के वचनों को सुनकर उसे साक्षात् विष्णु जानकर उस मनु ने मत्स्यरूपधारी केशव से कहा—॥ २१ ॥

।। मनुरुवाच ।।

नमस्ते जगदव्यक्तपरापरपते हरे ।
पावकादित्यशीतांशु नेत्रत्रयधराव्यय ।।२२।।

मनु बोले–हे हरि ! आप जगत् के अव्यक्त तथा पर और अपर सभी रूपों के स्वामी हो, आप अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा के रूप में तीन नेत्रधारी एवं कभी नष्ट न होने वाले हो, आपको नमस्कार है ।। २२ ।।

जगत्कारण सर्वज्ञ जगद्धाम हरे पर ।
परापरात्मरूपात्मन् पारिणां पारकारण ।।२३।।

हे हरि ! आप जगत् के कारण, सब कुछ जानने वाले, जगत के आश्रय, श्रेष्ठ, पर और अपर, आत्मस्वरूप वाले परमात्मा हो, आप पार हो गये (भक्तजनों) के भी पारकर्त्ता हो ।। २३ ।।

आत्मानमात्मना धृत्वा धरारूपधरो हरे ।
विभर्षि सकलान् लोकानाधारात्मंस्त्रिविक्रम ।।२४।।

हे त्रिविक्रम ! हे हरि ! आप अपने को ही पृथ्वी रूप धारण कर सभी लोकों के आधार के रूप में शोभायमान होते हो ।। २४ ।।

सर्ववेदमयश्रेष्ठ धामधारणकारण ।
सुरौधपरमेशान नारायण सुरेश्वर ।।२५।।

हे देवों के देव ! हे नारायण ! आप सब वेदमंय हैं, श्रेष्ठ हैं, सर्वआश्रय, आधार और उत्पत्ति के कारण आप ही हैं । आप देवताओं के समूह और परमेश्वर हो ।। २५ ।।

अयोनिस्त्वं जगद्योनिरपादस्त्वं सदागतिः ।
त्वं तेजः स्पर्शहीनश्च सर्वेशस्त्वमनीश्वर ।।२६।।

हे सबके स्वामी ! आप उत्पत्ति रहित हो, किन्तु आपही जगत को उत्पन्न करने वाले हो । आप पद से हीन होते हुए भी सदैव गतिशील रहने वाले हो । आप अग्निरूप हो, आप स्पर्श से रहित हो, आप सबके ईश्वर हो किन्तु कोई आपका ईश्वर नहीं है ।। २६ ।।

त्वमनादिः समस्तादिस्त्वं नित्यानन्तरोऽन्तरः ।
यद्धैममण्डं जगतां बीजं ब्रह्माण्डसंज्ञितम् ।।२७।।
तद्बीजं भवतस्तेजस्त्वयोक्तं सलिलेषु च ।
सर्वाधारो निराधारो निर्हेतुः सर्वकारणम् ।।२८।।

आप अनादि हो, किन्तु सबके मूल भी आप ही हो, आप नित्य हो, अन्तररहित एवं अन्तरयुक्त भी हो । जो ब्रह्माण्ड के नाम से जगत का आदि बीज हिरण्यमय अण्ड के रूप में है । वह बीज भी आपका वही तेज है जिसे आपने जल

से युक्त किया था। आप स्वयं निराधार हो किन्तु सबके आधार भी आप ही हो। आप हेतु रहित होते हुए भी सबके कारण हो ॥ २७-२८ ॥

नमो नमस्ते विश्वेश लोकानां प्रभव प्रभो ।
सृष्टिस्थित्यन्तहेतुस्त्वं विधिविष्णुहरात्मधृक् ॥२९॥

उपर्युक्त विशेषताओं के साथ ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवात्मकरूप धारण कर आप ही सृष्टि, पालन और नाश कर्म के हेतु हो। ऐसे लोकों के उत्पत्तिकर्त्ता एवं स्वामी ! विश्व के स्वामी आपको बार-बार नमस्कार है ॥ २९ ॥

यस्य ते दशधा मूर्तिरूर्मिषट्कादिवर्जिता ।
ज्योतिः पतिस्त्वमम्भोधिस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः ॥३०॥

यह जो उर्मिषटकादि भेदों से रहित दश प्रकार की आपकी ही मूर्त्तियाँ हैं। आप ज्योति (अग्नि) के स्वामी तथा जल के भी स्वामी हो ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ३० ॥

कस्ते भावं वक्तुमीशः परेश
स्थूलात्स्थूलो योऽणुरूपोर्थवर्गात् ।
तस्मै नित्यं मे नमोऽस्त्वद्य योऽभू-
दादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥३१॥

हे ईश्वर ! हे परमेश्वर ! आप स्थूल से भी स्थूल, अर्थवर्ग की दृष्टि से अणुरूप हैं, जो अन्धकार से भी परे सूर्य के समान प्रकाश रूप उत्पन्न हुआ था। उस नित्य तत्त्व को आज मेरा नमस्कार है ॥ ३१ ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्रपात्
सहस्रचक्षुः पृथिवीं समन्ततः ।
दशाङ्गुलं यो हि समत्यतिष्ठत्
स मे प्रसीदत्विह विष्णुरुग्रः ॥३२॥

हजार मस्तक, हजार पैर, हजार नेत्रों से युक्त दश अङ्गुल विस्तार में जो पृथ्वी के सब ओर स्थित हैं, ऐसे विराट पुरुष तेजस्वी विष्णु, अब मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ ३२ ॥

नमस्ते मीनमूर्ते हे नमस्ते भगवन् हरे ।
नमस्ते जगदानन्द नमस्ते भक्तवत्सल ॥३३॥

हे मीन रूपधारी ! भगवान विष्णु, जगत के आनन्दरूप, भक्तों से प्रेम करने वाले, आपको नमस्कार है ॥ ३३ ॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

स्वायम्भुवेन मनुना संस्तुतो मत्स्यरूपधृक् ।
वासुदेवस्तदा प्राह मेघगम्भीरनिःस्वनः ॥३४॥

मार्कण्डेय बोले–तब मत्स्यरूप धारण किये हुए वासुदेव ने स्वायम्भुव मनु के द्वारा स्तुति किये जाने के बाद, मेघ के समान गम्भीर ध्वनि में कहा—॥ ३४ ॥

।। श्रीभगवानुवाच ।।

तुष्टोऽस्मि तपसा तेऽद्य भक्त्या चापि स्तुतो मुहुः ।
सपर्यया च दानेन वरं वरय सुव्रत ।।३५।।

भगवान बोले–हे सुन्दर व्रतों वाले ! मैं तुम्हारी तपस्या, सेवा, दान, भक्ति तथा आज की गयी, बार-बार की स्तुति से मैं सन्तुष्ट हूँ। तुम वर माँगो ॥ ३५ ॥

इष्टार्थं सम्प्रदास्यामि तुभ्यं नात्र विचारणा ।
वरयस्वेप्सितान् कामान् लोकानां वा हितं च यत् ।।३६।।

तुम्हारा जो भी इच्छित है, उसे मैं प्रदान करूँगा। इस समय कोई सोच-विचार करने की आवश्यकता नहीं है। संसार के हितार्थ या अपनी इच्छानुसार कामनाओं के अनुरूप वर माँगों ॥ ३६ ॥

।। मनुरुवाच ।।

यदि देयो वरोमेऽद्य लोकानां यो हितो भवेत् ।
तन्मे देहि वरं विष्णो तं वक्ष्यामि शृणुष्व मे ।।३७।।

मनु बोले– यदि आप आज मुझे वर देना चाहते हैं जिससे लोक का कल्याण हो, तो हे विष्णु ! आप मुझे वर दीजिए। उसे मैं आप से कहता हूँ, आप ध्यान से सुनिये ॥ ३७ ॥

शशाप कपिलः पूर्वं मदर्थे भुवनत्रयम् ।
हतप्रहतविध्वस्तं सकलं ते भवेदिति ।।३८।।

पूर्वकाल में मेरे कारण से तीनों लोकों को कपिल मुनि ने 'तुम्हारा सब कुछ क्षत-विक्षत तथा ध्वस्त हो जाय' ऐसा शाप दे दिया था ॥ ३८ ॥

येनेयमुद्धृता पृथ्वी येनेयं प्रतिपालिता ।
संहरिष्यति यस्त्वेनां तेऽधुना प्लावयन्त्विमाम् ।।३९।।

जिसके द्वारा इस पृथ्वी का उद्धार एवं पालन किया गया है, जो इसका संहार करेंगे वही आप इस समय पृथ्वी का उद्धार करें ॥ ३९ ॥

ततोऽहं दीनहृदयस्त्वामेव शरणं गतः ।
न यथेदं त्रिभुवनं भविष्यति जलप्लुतम् ।
हतप्रहतविध्वस्तं तथा त्वं देहि मे वरम् ।।४०।।

इसीलिए मैं दीन हृदय होकर आपकी शरण में आया हूँ। जिस प्रकार से इस त्रिलोकी का जलप्लावन होने पर यह हत-प्रहत, ध्वस्त न होवे, ऐसा आप मुझे वर प्रदान करें ॥ ४० ॥

।। श्रीभगवानुवाच ।।

न मत्तः कपिलो भिन्नस्तथा न कपिलादहम् ।
यदुक्तं तेन मुनिना मयोक्तं विद्धि तन्मनो ।।४१।।

श्रीभगवान् बोले– हे मनु ! न तो मैं कपिल से भिन्न हूँ और न कपिल मुझसे भिन्न हैं। इसलिए उन मुनिवर की कही बातों को मेरे ही द्वारा कहा समझो ।। ४१ ।।

तस्माद् यदुदितं तेन तत्सत्यं नान्यथा भवेत् ।
करिष्ये तत्र साहाय्यं स्वायम्भुव निबोध तत् ।।४२।।

इसलिए उन्होंने जो कहा है उसे सच ही समझो। वह अन्यथा नहीं हो सकता। किन्तु उस समय मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। हे स्वायम्भुव मनु ! वह कैसे होगी, यह मुझसे सुनो ।। ४२ ।।

हतप्रहतविध्वस्ते तोयमग्ने जगत्त्रये ।
श्यामलेनाथ शृङ्गेण त्वं मां ज्ञास्यसि वै तदा ।।४३।।

तीनों लोकों के क्षत विक्षत ध्वस्त हो जल में डूब जाने के बाद तुम मुझे उस समय मेरे श्यामल सींग से पहचानोगे ।। ४३ ।।

यावज्जलप्लवस्तावद्यथा कार्यं त्वया मनो ।
तन्मे निगदतः पथ्यं शृणुष्वावहितोऽधुना ।।४४।।

हे मनु ! जब तक जलप्लावन रहेगा तब तक जो आपके लिए करना उचित होगा, उसे मैं कहता हूँ। अब उसे ध्यानपूर्वक सुनो ।। ४४ ।।

सर्वयज्ञियकाष्ठौघैरेका नौका विधीयताम् ।
तामहं द्रढ़यिष्यामि यथा नो भिद्यते जलैः ।।४५।।

सब प्रकार के यज्ञीय काष्ठों के समूह से एक नौका बनाइये। मैं उसे ऐसा दृढ़ कर दूँगा, जिससे वह जल के प्रहार से न टूटे ।। ४५ ।।

दशयोजनविस्तीर्णां त्रिंशद्योजनमायताम् ।
धारिणीं सर्वबीजानां भुवनत्रयवर्धिनीम् ।।४६।।

वह दश योजन (८० मील) चौड़ी तथा तीस योजन (२४० मील) लम्बी होगी। तीनों लाकों को वृद्धि प्रदान करने वाली तथा सब बीजों को धारण करने वाली होगी ।। ४६ ।।

सर्वयज्ञियवृक्षाणां भूरिवल्वलतन्तुभिः ।
नवयोजनदीर्घां तु व्यामत्रय-सुविस्तृताम् ।।४७।।
कुरुष्व त्वं मनो तूर्णं बृहतीमीरिकां वटीम् ।
जगद्धात्री जगन्माया लोकमाता जगन्मयी ।
द्रढयिष्यति तां रज्जुं न त्रुट्यति यथा तथा ।।४८।।

हे मनु तुम शीघ्र सभी यज्ञीय वृक्षों की छाल के तन्तुओं से उस नौका को चलाने के लिए एक नव योजन (६२ मील) लम्बी तथा तीन व्याम (क्षैतीज फैलाए दोनों हाथों की सम्मिलित लम्बाई के बराबर नाप विशेष) मोटी बड़ी रस्सी का शीघ्र ही निर्माण करो। जगत का पालन करने वाली जगत्माया[१] लोकों की माता, जगत्स्वरूपा भगवती ही उस रस्सी को वैसा दृढ़ करेंगी, जिससे व टूटने न पाये ॥ ४७-४८ ॥

सर्वाणि बीजान्यादाय सवेदान् सप्त वै ऋषीन् ।
तस्यां नावि निषण्णस्त्वं वर्तमाने जलप्लवे ।
दक्षेण सह संगम्य स्मरिष्यसि मनो मम ।।४९।।

हे मनु ! जलप्लावन के समय तुम उस नाव पर सारे ऋषियों के सहित चारो वेद और सभी प्रकार के बीजों को लेकर दक्ष प्रजापति के साथ मिलकर मेरा स्मरण करोगे ॥ ४९ ॥

स्मृतोऽहं तूर्णमायास्ये भवतो निकटं प्रति ।
श्यामलेनाथ शृङ्गेण त्वं मां ज्ञास्यसि वै तदा ।।५०।।

तब मैं स्मरण किये जाने पर शीघ्र ही तुम्हारे निकट आऊँगा। उस समय तुम साँवले सींग से मुझे जानोगे ॥ ५० ॥

यावत् प्रहतविध्वस्त-हतं स्याद्भुवनत्रयम् ।
तावत् पृष्ठेन तां नावं वोढाहं नात्र संशयः ।।५१।।

जब तक यह तीनों लोक क्षत-विक्षत और ध्वस्त रहेगा। तब तक मैं उस नाव को पीठ पर ढोता रहूँगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ५१ ॥

जलप्लुते तु सम्पूर्णे शृङ्गे मम च तां तरीम् ।
त्वं तदा वटीरिकया सन्धानिष्यसि वै दृढम् ।।५२।।

तब मेरे सम्पूर्ण शृङ्ग के जल में डूब जाने पर भी तुम उस मजबूत संचालन करने वाले रस्सी की सहायता से उस नौका को खोज लोगे ॥ ५२ ॥

बद्धायां नावि मे शृङ्गे देवमानेन वत्सरान् ।
सहस्रं प्रेरयिष्यामि तां नावं शोषयन् जलम् ।।५३।।

अपनी सींग से बँधी हुई उस नाव को मैं जल का शोषण करते हुए देवताओं के मान से एक हजार वर्षो (मानव मान से ३६०००० वर्षो) तक खींचता रहूँगा ॥ ५३ ॥

ततः शुष्केषु तोयेषु प्रोत्तुङ्गे शिखरे गिरेः ।
हिमाचलस्य बद्धाहं तस्मिन्नावमहं मनो ।।५४।।

हे मनु ! तब जलराशि के सूख जाने पर मैं उस नाव को हिमाचल पर्वत के सबसे ऊँचे शिखर में बाँध दूँगा ॥ ५४ ॥

अहमाराधितो येन जप्येन भवता मनो ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य यस्तोषयति तेन माम् ।।५५।।

हे मनु ! आप द्वारा जिस जपनीय मन्त्र से मेरी आराधना की गई है । उससे जो मुझे सन्तुष्ट करेगा उसकी सब प्रकार की कार्य सिद्धि होगी ॥ ५५ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति दत्त्वा वरं तस्मै मत्स्यस्तेन नमस्कृतः ।
अन्तर्दधे जगन्नाथो लोकानुग्रहकारकः ।।५६।।

मार्कण्डेय बोले– लोक पर कृपा करने वाले, मत्स्यवेशधारी, जगत् के स्वामी, विष्णु, उन मनु द्वारा नमस्कार किये जाने पर उनको इस प्रकार का वरदान देकर, अर्न्तधान हो गये ॥ ५६ ॥

स्वायम्भुवोऽपि भगवानन्तर्धानं गते हरौ ।
यथोक्तं हरिणा पूर्वं नावं रज्जुं तथाकरोत् ।।५७।।

भगवान् विष्णु के अन्तर्धान हो जाने पर स्वायम्भुव मनु ने जैसा कि भगवान ने पहले कहा था वैसी ही नौका एवं रस्सी की व्यवस्था की ॥ ५७ ॥

सर्वयज्ञियवृक्षौघा छित्वा स्वायम्भुवस्तदा ।
उद्धृत्य कारयामास वास्यादिभिरसौ तरिम् ।।५८।।
तेषां वल्कसमुद्भूतसूत्रसङ्घैर्वटीरिकाम् ।
पूर्वोक्तेन प्रमाणेन कारयामास वै मनुः ।।५९।।

तब स्वायम्भुवमनु ने सभी यज्ञीय वृक्षों के समूहों को वासि (कुल्हाड़ी) आदि से काट कर तथा उनको गढ़कर, उस नौका का निर्माण एवं उन वृक्षों के छाल के तन्तुओं से उत्पन्न डोरों के समूह से नौका के संचालन हेतु पूर्व वर्णित लम्बाई और मुटायी की रस्सी का भी निर्माण किया ॥ ५८-५९ ॥

ततः कालेन महता वृत्तं युद्धं महाद्भुतम् ।
विष्णोर्यज्ञवराहस्य शरभस्य हरस्य च ।।६०।।

तब समय आने पर वाराहवेशधारी, भगवान विष्णु एवं शरभवेशधारी भगवान शिव के बीच, महान् आश्चर्यजनक, वह महान् युद्ध सम्पन्न हुआ ॥ ६० ॥

ततो जलप्लवे जाते विध्वस्ते भुवनत्रये ।
तथा रज्ज्वा तरिं बध्वा बीजान्यादाय सर्वशः ।।६१।।
वेदानृषींस्तदा सप्तदशञ्चादाय वै मनुः ।
तस्यां नावि समाधाय तोयमग्ने चराचरे ।
स्वायम्भुवस्तदा मत्स्यं हरिं सस्मार नौगतः ।।६२।।

तब जलप्लावन हो, तीनों लोकों के विध्वस्त हो जाने पर तथा चराचर जगत के जलमग्न हो जाने पर नौका को रस्सी में बाँध तथा सभी बीजों, वेदों, सप्तऋषियों

और दशप्रजापतियों को मनु ने उस नौका में रखा। तब स्वयं नौका में बैठकर उन्होंने मत्स्यवेशधारी भगवान् विष्णु का स्मरण किया ॥ ६१-६२ ॥

ततो जलानामुपरि सश्रृङ्ग इव पर्वतः ॥६३॥
उदितश्चैकश्रृङ्गेण विष्णुर्मत्स्यस्वरूपधृक् ।
आगतस्तत्र नचिराद्यत्रास्ते तरिणा मनुः ॥६४॥

तब एक सींग सहित मत्स्यरूप धारण किये हुए भगवान् विष्णु शिखर युक्त पर्वत की भाँति जलराशि के ऊपर उठकर प्रकट हुए और जहाँ नौका के सहित मनु उस भयङ्कर, विशाल जलराशि में नौका पर विराजमान हो उपस्थित थे, वहीं शीघ्र आ गये ॥ ६३-६४ ॥

तरिमारुह्य विपुले तोयराशौ भयङ्करे ।
यावच्चलाचलं तोयं तावत् पृष्ठे तरिं न्यधात् ॥६५॥
जले प्रकृतिमापन्ने श्रृङ्गे बध्वा वटीरिकाम् ।
तां नावं नोदयामास सहस्रं दैववत्सरान् ॥६६॥

तथा जब तक जलप्लावन रहा तब तक उस नौका को अपनी पीठ पर धारण किये रहे। जल में निमग्न होने पर भी अपने सींग में रस्सी बाँधकर उससे एक हजार दैव वर्षों तक उस नाव का सञ्चालन करते रहे ॥ ६५-६६ ॥

स्वं नावं च अवष्टभ्य दधार परमेश्वरः ।
योगनिद्रा जगद्धात्री समासीदतद्वटीरिकाम् ॥६७॥

स्वयं को तथा उस नौका को परमेश्वर संचालन कर्त्री उस रज्जु रूपिणी योगनिद्रा, जगत्पालिनी भगवती के सहारे धारण किये रहे[1] ॥ ६७ ॥

ततः शनैः शनैस्तोये शोषं गच्छति वै चिरात् ।
पश्चिमं हिमवच्छृङ्गं सुमग्नं तोयमध्यतः ॥६८॥
द्वे सहस्रे योजनानामुच्छ्रितस्य हिमप्रभोः ।
पञ्चाशत्तु सहस्राणि श्रृङ्गं तत्तस्य चोच्छ्रितम् ॥६९॥

तब बहुत समय में जल के धीरे-धीरे सूख जाने के पश्चात्, जल के मध्य से डूबा हुआ हिमालय का पश्चिमी शिखर, जो दो हजार योजन ऊँचा था और जिसमें पचास हजार अन्य शिखर भी शाखा रूप में निकले हुए थे, प्रकट हुआ॥ ६९-६९ ॥

तस्मिन् श्रृङ्गे ततो नावं बध्वा मत्स्यात्मधृग् हरिः ।
जगाम शोषणायाशु जलानां जगतां पतिः ॥७०॥

इस हिमालय के शिखर में नाव को बाँधकर मत्स्य रूपधारी जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु शीघ्र ही जलराशि के शोषण हेतु प्रवृत्त हुए ॥ ७० ॥

---

१. यहाँ रज्जुरूपी जगन्माया की महत्ता दिखाई गई है।

एवं हि मत्स्यरूपेण वेदास्त्राताश्च शार्ङ्गिणा ।।७१।।

इस प्रकार शार्ङ्गधनुष धारण करने वाले भगवान् विष्णु द्वारा मत्स्यरूप धारण कर वेदों की रक्षा की गयी ॥ ७१ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

कपिलस्य तु शापेन कृत आकालिको लयः ।।७२।।

मार्कण्डेय बोले–यह असामयिक प्रलय कपिल मुनि के शाप के कारण हुआ था ॥ ७२ ॥

अकालिकोऽयं प्रलयो यतो भगवता कृतः ।
इति वः कथितं सर्वं यथावद् द्विजसत्तमाः ।।७३।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे अकालप्रलयकथने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

हे द्विजसत्तमों ! यह अकालिक प्रलय जिस प्रकार से भगवान् द्वारा किया गया वह सब मैंने आपलोगों से ज्यों का त्यों कह दिया है ॥ ७३ ॥

॥ श्रीकालिकापुराण में अकालप्रलयकथन नामक तैतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३३ ॥



चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

पुनर्सृष्टिवर्णनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

यथा पुनरभूत् सृष्टिरकालप्रलये गते ।
येन चैवोद्धृता पृथ्वी तच्छृणवन्तु द्विजोत्तमाः ।।१।।

हे द्विजोत्तमों ! उस अकालप्रलयकाल के बीत जानेपर जिस प्रकार से सृष्टि पुनः उत्पन्न हुई तथा जिसके द्वारा पृथ्वी का उद्धार किया गया, उसे आप सब सुनें ।। १ ।।

व्यतीते प्रलये विष्णुः कूर्मरूपी महाबलः ।
पृष्ठे निधाय पृथिवीमुद्धृत्याथ सपर्वताम् ।
समांचकार सकलां पूर्ववत्परमेश्वरः ।।२।।

उस अकालप्रलय के बीत जाने पर महाबली परमेश्वर भगवान् विष्णु ने कछुए का रूप धारण कर पृथ्वी को पर्वतों के सहित उठाकर अपनी पीठ पर धारण कर लिया तथा उसे पहले की ही भाँति समतल कर दिया ।। २ ।।

शरभस्य वराहस्य तत्पुत्राणां पदक्रमैः ।
यत्र भूमिर्विशीर्णाभूत्तां तां समां कमठोऽकरोत् ।।३।।

शरभ, वराह तथा उसके तीनों पुत्रों को पैरों के चलने से पृथ्वी जहाँ-जहाँ क्षत-विक्षत हो गयी थी, कच्छप वेशधारी भगवान् विष्णु ने उसे समतल कर दिया ।। ३ ।।

कृत्वा समां ततो भूमिं पूर्ववत् परमेश्वरः ।
अनन्तं धारयामास पृथिवीतलसंश्रितम् ।।४।।

तब पहले की भाँति पृथ्वी को समतल करके परमेश्वर ने पृथ्वी तल में आश्रय के लिए अनन्त को धारण किया ।। ४ ।।

ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च हरश्च परमेश्वरः ।
नावोदरस्थितान् सप्तमुनीन्मनुं स्वायम्भुवं तदा ।
नरनारायणौ चोभौ दक्षञ्चोचुः समागताः ।।५।।

तब परमेश्वर ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने आकर उस नौका के उदर में स्थित स्वायम्भुवमनु, सप्त ऋषियों, प्रजापति दक्ष तथा नर नारायण से कहा ।। ५ ।।

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे ब्रूमोधुना च यत् ।।६।।

हे मुनिगण, नर-नारायण एवं स्वायम्भुव मनु तथा दक्ष प्रजापति ! इस समय हम लोग जो कह रहे हैं, उसे आप सुनें ।। ६ ।।

सृष्टिर्नष्टा वराहस्य शरभस्य च सङ्गरात् ।
अतोऽस्माकं यथाकार्या सृष्टिराकर्णयन्तु तत् ।।७।।

वराह और शरभ के युद्ध के कारण यह सृष्टि नष्ट हो गयी है अतः यह कैसे पुनः की जाएगी, वह हमलोगों से सुनें ।। ७ ।।

नरनारायणावेतौ सृष्ट्यर्थं समुपस्थितौ ।
संस्थापनाय देवानां परमं तप्यतां तपः ।।८।।

यहाँ जो नर-नारायण नामक दो ऋषि उपस्थित हैं, ये सृष्टि कर्म तथा देवताओं की स्थापना के लिए परमश्रेष्ठ तपस्या करें ।। ८ ।।

आप्याय तपसा चोभौ जनलोकगतान् सुरान् ।
आनयन्त्वपराञ्छश्वत् संसृजन्तु गणान् बहून् ।।९।।

तपस्या में लीन हो, ये दोनों प्रलय काल में जनलोक में चले गये देवताओं तथा अन्यों को वापस लायें और अन्य बहुत से गणों की सृष्टि करें ।। ९ ।।

नक्षत्राणि ग्रहांश्चैव तेषां स्थानानि वै मुने ।
एतयोस्तपसा यान्तु स्थिरतां पूर्ववन्मनो ।।१०।।

हे मनु ! इनकी तपस्या से ही नक्षत्रों तथा ग्रहों को एवं सप्तर्षियों को पहले की भाँति स्थिरता प्राप्त होवे ।। १० ।।

सूर्यस्य रथसंस्थानं तथा चन्द्ररथस्थितिम् ।
करोत्वयं महाभागः स्वयमेव जनार्दनः ।।११।।

सूर्य के रथसंस्थान तथा चन्द्रमा के रथ की स्थापना और व्यवस्था स्वयं महाभाग विष्णु करें ।। ११ ।।

पृथिव्यां सर्वबीजानि स्वायम्भुवमनो त्वया ।
उप्यन्तां सर्वतः शस्यपूर्णा भवतु मेदिनी ।।१२।।

हे स्वायम्भुवमनु ! पृथ्वी पर तुम्हारे द्वारा सभी बीज बोये जायें जिससे यह पृथ्वी पुनः सब ओर से हरी-भरी हो जावे ।। १२ ।।

प्ररोहयौषधीवृक्षान् लतावल्लीश्च सर्वतः ।
स्वायम्भुव महान्त्येतत् प्राप्तान्यृतुफलानि च ।।१३।।

वे स्वायाम्भुव मनु सब ओर ओषधि (वनस्पति), वृक्ष, लता, वल्लियों को उत्पन्न कर बढ़ायें तथा इनसे प्राप्त होने वाले उत्तम ऋतुफलों को भी विकसित करें ।। १३ ।।

दक्षः सप्तमुनीन्द्रैस्तु यज्ञेन यजतां हरिम् ।
वराहपुत्रदेहोत्थमग्नित्रयमिदं यजन् ।।१४।।

दक्ष प्रजापति सप्तर्षियों के साथ वाराह के पुत्रों के शरीर से उत्पन्न इन तीन प्रकार की अग्नियों में यज्ञ करते हुए यज्ञ के द्वारा भगवान विष्णु का पूजन करें ॥ १४ ॥

असौ यज्ञो वराहस्य देहाज्जातस्तु सृष्टये ।
अनेनैव तु यज्ञेन दक्षः सृष्टिं तनोत्विमाम् ॥१५॥

ये यज्ञदेव स्वयं वराह के शरीर से सृष्टि के लिए ही उत्पन्न हुए हैं। अतः दक्षप्रजापति इस सृष्टि का विस्तार इन यज्ञ के ही माध्यम से करें ॥ १५ ॥

नरनारायणाभ्यां तु मुनिभिः सप्तभिस्तथा ।
दक्षेण भवता चापि यज्ञैनैभिस्तथाग्निभिः ।
सम्पूर्यतामियं सृष्टिः स्वर्गे भुवि रसातले ॥१६॥

इस प्रकार यह सृष्टि नर-नारायण, सप्तर्षि, यज्ञ, अग्निगण, दक्ष तथा आप स्वायम्भुव मनु के सम्मिलित प्रयास से स्वर्ग लोक, पृथ्वी लाके एवं रसातल को परिपूर्ण करे ॥ १६ ॥

वयं च सृष्टिमाप्याय्य यथा सम्पद्यते त्वियम् ।
यतिष्यामस्तथा नित्यं यूयं कुरुत सर्जनम् ॥१७॥

तुम सब सृष्टि करो हम भी इसी में प्रवेश कर ऐसा यत्न करेंगे, जिससे यह नित्यता को प्राप्त हो ॥ १७ ॥

ततः सम्पद्यतां सृष्टिर्यथा पूर्वं तथैव च ।
प्रथमं त्वन्तु बीजानि प्ररोहय मनोऽधुना ॥१८॥

इसलिए आप सब पहले की भाँति ही सृष्टि का काम करें। सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु इस समय पृथ्वी पर बीजों को उगायें तथा उन्हें बढ़ायें ॥ १८ ॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

इत्यादिश्य महाभागा विधिविष्णुवृषध्वजाः ।
यथास्थानं स्थापयितुं पर्वतान् प्रययुस्ततः ॥१९॥
मेरुमन्दरकैलासहिमवत्प्रभृतिष्वथ ।
पुराणि सर्वदेवानां ते वै चक्रुः पृथक् पृथक् ॥२०॥

मार्कण्डेय बोले– तब उपर्युक्त आदेश दे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव जैसे महाभाग पर्वतों को यथा-स्थान स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हुए। उन्होंने मेरु, मन्दराचल, कैलाश तथा हिमालय आदि पर्वतों पर सभी देवताओं के अलग-अलग निवासस्थान (नगर) बनाये ॥ १९-२० ॥

परित्यज्य ततो नावमवधृत्य वसुन्धराम् ।
स्वायम्भुवः क्षितौ बीजान्यवपत् सर्वसम्पदे ॥२१॥

तब स्वायम्भुमनु ने नौका को छोड़कर तथा पृथ्वी पर उतर कर सभी सम्पत्तियों की प्राप्ति हेतु पृथ्वी पर बीजों को बोया ॥ २१ ॥

ततो वृक्षलतावल्लीगुल्मानि च वनानि च ।
बालशस्यानि धान्यानि तथैवौषधयः समाः ।।२२।।
बीजकाण्डप्ररोहाश्च प्रताना जलजानि च ।
प्रफुल्लानि विकोशानि फलकन्ददलानि च ।
बभुवुः शाद्वलान्येव सर्वेषां प्राणवृद्धये ।।२३।।

तब सभी के प्राणवृद्धिहेतु वृक्ष, लता, वल्ली, झाड़ी, वन, छोटे हरे पौधे, अनाज, वनस्पतियाँ तथा औषधियाँ, बीज, पोर, तथा खिले हुए कमल, बिना फली वाले फल, कन्द और पत्ते, हरी घासें उत्पन्न हुईं ॥ २२-२३ ॥

पृथिवी शस्यसम्पन्ना वृक्षास्ते शाद्वलाः शुभाः ।
दृष्टाः पूर्वं यथा तस्मान्मनुना चित्तहर्षिणा ।।२४।।

तब प्रसन्न मनवाले मनु द्वारा पहले की ही भाँति हरियाली सम्पन्न पृथ्वी तथा सुन्दर हरे-भरे वृक्ष देखे गये ॥ २४ ॥

ततो नरो महायोगी तपस्तेपे महत्तमम् ।
नारायणश्च देवानां भावनाय महामतिः ।।२५।।

तब महान बुद्धिमान नारायण तथा महान्योगी नर ने देवताओं के आह्वान हेतु महती तपस्या की ॥ २५ ॥

नारायणो नरश्चोभौ परमावृषिसत्तमौ ।
तपसाराध्य परमं तेजोमयमनामयम् ।।२६।।
आनित्याते जनगणान् देवान् देवर्षिसत्तमान् ।
ये मृता अमराः पूर्वं गणशस्तान् पृथक् पृथक् ।।२७।।

उन नर-नारायण नामक श्रेष्ठ महान ऋषियों ने तपस्या द्वारा तेजोमय, रोगरहित परम तत्त्व की आराधना की और उन जनों, देवताओं, देवर्षियों मे श्रेष्ठ देवर्षियों को जो पहले मर गये थे या अमरावस्था में जन आदि अन्य लोकों में चले गये थे, उन्हें अलग-अलग लाया ॥ २६-२७ ॥

तपोबलेन महता सर्जयामासतुर्मुनी ।
सूर्याचन्द्रमसौ देवौ दिक्पालांश्च तथा दश ।
जनार्दनः स्वयं चक्रे पातालतलवासिनः ।।२८।।

उन दोनों मुनियों ने अपनी महती तपस्या के बल से सूर्य-चन्द्रमा तथा दसों दिक्पालों की सृष्टि की तथा जनार्दन विष्णु ने स्वयं पाताल लोक में रहने वाले नागादि वर्गों की सृष्टि की ॥ २८ ॥

सूर्याचन्द्रमसोश्चक्रे यथासंस्थानमच्युतः ।
पूर्ववद् योजयामास दिवारात्रस्थितौ च तौ ।।२९।।

भगवान विष्णु ने उन दोनों सूर्य और चन्द्रमा को पहले की ही भाँति दिन-रात्रि की व्यस्था के लिए यथास्थान नियोजित किया ॥ २९ ॥

ओषधिषु च जातासु यज्ञवृक्षेषु सत्तमाः ।
शस्यबीजेषु जातेषु देवेषु च पृथक् पृथक् ।
दक्षः कर्तुं समारेभे ज्योतिष्टोमं महाध्वरम् ।।३०।।

हे मुनिसत्तमों ! उन ओषधियों, यज्ञीयवृक्षों, अन्न के बीजों तथा देवताओं आदि की अलग-अलग उत्पत्ति हो जाने पर दक्षप्रजापति ने ज्योतिष्टोम नामक महान् यज्ञ करना आरम्भ किया ॥ ३० ॥

कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः ।
जमदग्निर्भरद्वाज एते सप्तर्षयोऽमलाः ।।३१।।
एतैः सप्तमुनीन्द्रैस्तु दक्षो ब्रह्मसुतः स्वयम् ।
महायज्ञं ततश्चक्रे यावद्द्वादशवत्सरान् ।।३२।।

तब कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज ये जो निर्मल चित्तवाले सप्तर्षि हैं, इन सात श्रेष्ठ ऋषियों के द्वारा तथा ब्रह्मा के पुत्र, दक्षप्रजापति ने स्वयं बारह वर्षों तक उस महान यज्ञ का सम्पादन किया ॥ ३१-३२ ॥

हूयमानेषु तत्रैव त्रिष्वग्निषु पुनः पुनः ।
इज्यमाने वराहे तु यज्ञरूपे तदा द्विजैः ।
चतुर्विधाः प्रजा जाता यज्ञादेव द्विजोत्तमा ।।३३।।

हे द्विजोत्तमों ! तब इस प्रकार से वहाँ वाराहपुत्रों के शरीर से उत्पन्न तीनों अग्नियों में उन ब्राह्मणों द्वारा बारम्बार आहुति दे, यज्ञरूप वराह का यजन किये जाने पर उसी यज्ञ से चार प्रकार की प्रजा उत्पन्न हुई ॥ ३३ ॥

ततो दक्षस्य संजाताः पुत्र्यः पुण्यास्त्रयोदश ।
स्वरूपगुणसम्पन्नाः सृष्ट्यर्थममितप्रजाः ।।३४।।

तब दक्षप्रजापति को सृष्टि हेतु अत्यधिक सन्तान उत्पन्न करने वाली, रूप गुण सम्पन्न, तेरह पवित्र कन्याएँ उत्पन्न हुईं ॥ ३४ ॥

ताः पुत्रीः प्रददौ दक्षः कश्यपाय महात्मने ।
ताभ्यो जाताश्च बहवस्तैर्व्याप्तं सकलं जगत् ।।३५।।

दक्षप्रजापति ने उन कन्याओं को महात्मा कश्यप को प्रदान कर दिया । उनसे बहुत सी सन्तानें उत्पन्न हुईं । उनसे ही सम्पूर्ण जगत व्याप्त हो गया ॥ ३५ ॥

स सर्वासां प्रजानां तु कश्यपो जनको ह्यभूत् ।
निःसृतं द्विजशार्दूलाः कश्यपात् सकलं जगत् ।।३६।।

हे द्विजशार्दूलों ! वह कश्यप ही उन सभी प्रजाओं के पिता हुए। यह सम्पूर्ण जगत कश्यप से उत्पन्न हुआ है ॥ ३६ ॥

तासां नामानि तज्जाताःप्रजाः सर्वाः पृथक् पृथक् ।
शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सम्यक् कथयतो मम ।।३७।।

हे मुनिगण ! उन कन्याओं के नाम तथा उनसे उत्पन्न सभी सन्तानों के नाम मेरे द्वारा अलग-अलग भलीभाँति बताये जा रहे हैं। उन्हें आप सब सुनिये ॥ ३७ ॥

अदितिर्दितिर्दनु; काला दनायूः सिंहिका मुनिः ।
क्रोधा प्रधा वरिष्ठा च विनता कपिला तथा ।
कद्रूस्त्रयोदशसुता एता दक्षस्य कीर्तिताः ।।३८।।

हे मुनि ! (१) अदिति, (२) दिति, (३) दनु, (४) काला, (५) दनायू, (६) सिंहिका, (७) मुनि, (८) क्रोधा, (९) प्रधा, (१०) वरिष्ठा, (११) विनता, (१२) कपिला, (१३) कद्रू ये दक्ष प्रजापति की तेरह पुत्रियाँ कही गयी हैं ॥ ३८ ॥

संजातो दक्षिणाङ्गुष्ठान्मनसा ध्यायतो विधेः ।
तेन देवमनुष्येषु दक्ष इत्येव कथ्यते ।।३९।।

दक्षप्रजापति मन से ध्यान करते समय ब्रह्मा के दाहिने अँगूठे से वे उत्पन्न हुए थे। इसीलिए वे देवताओं एवं मनुष्यों में दक्षप्रजापति के नाम से कहे जाते हैं ॥ ३९ ॥

ब्रह्मणो मानसाःपुत्रा दश पूर्वं प्रकीर्तिताः ।
तेषां षट्सृष्टिकर्तारो व्यतीतेऽस्मिन् जनक्षये ।
मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।।४०।।

पहले ब्रह्मा के जिन दश मानसपुत्रों का वर्णन किया गया है, उनमें से इस जनप्रलय के समाप्त हो जाने पर (१) मरीचि, (२) अत्रि, (३) अंगिरस, (४) पुलस्त्य, (५) पुलह, (६) क्रतु ये छः सृष्टिकर्त्ता होंगे ॥ ४० ॥

मरीचेस्तनयो जातः कश्यपो लोकभावनः ।
अस्यैव दक्षकन्याभ्यः प्रजा जज्ञेऽथ भूरिशः ।।४१।।

उनमें से मरीचि के पुत्र लोक के उत्पत्तिकर्त्ता प्रजापति कश्यप उत्पन्न हुये। इनकी दक्ष की कन्याओं से बहुत-सी सन्तानें उत्पन्न हुई। उनकी पत्नियों से उत्पन्न सन्तानों के नाम जानिये ॥ ४१-४२ ॥

अस्य जायाप्रजातानां नामतो विनिबोधत ।
धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो वरुणः सोम एव च ।।४२।।

भर्गो विवस्वान् पूषा च सवितृत्वष्टृविष्णवः ।
अदितेर्द्वादशसुता आदित्यास्ते प्रकीर्तिताः ।।४३।।

(१) धाता, (२) मित्र, (३) अर्यमा, (४) शक्र, (५) वरुण, (६) सोम, (७) भर्ग, (८) विवश्वान्, (९) पूषा, (१०) सविता, (११) त्वष्टा, (१२) विष्णु ये अदिति के बारह पुत्र, आदित्य कहे जाते हैं ।। ४३ ।।

एषां कनीयान् गुणवान् सदा यस्तपति प्रजाः ।
स वै वंशकरो मुख्यो गद्यते वो दिवाकरः ।।४४।।

इनमें से सबसे छोटे, गुणवान, सदा तपने वाली सन्तान, विष्णु हैं, उन्हें दिवाकर कहा जाता है तथा वही वंश प्रवर्तक हैं ।। ४४ ।।

एक एव दितेः पुत्रो हिरण्यकशिपुर्बली ।।४५।।
चत्वारस्तस्य तनया हृष्टा मदबलान्विताः ।
प्रह्लादो ह्यथ संह्लादो वाष्कलः शिविरेव च ।।४६।।

दिति का हिरण्यकशिपु नामक एक ही बलशाली पुत्र हुआ, जिसके प्रसन्न एवं मद तथा बल से युक्त प्रह्लाद, संह्लाद, वाष्कल और शिवि नाम के चार पुत्र उत्पन्न हुए ।। ४५-४६ ।।

प्रह्लादस्य त्रयः पुत्रास्तेषामाद्यो विरोचनः ।
कुम्भो निकुम्भो बलवांस्त्रयः प्राह्लादयः स्मृताः ।।४७।।

प्रह्लाद के विरोचन, कुम्भ, निकुम्भ ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें विरोचन सबसे बड़ा था। ये तीनों बलवान थे और प्राह्लाद के नाम से स्मरण किये जाते हैं ।। ४७ ।।

विरोचनसुतो जातो दानशौण्डो बलिर्महान् ।
बलेश्च पुत्रो विदितो बाणो नाम महाबली ।।४८।।
शम्भोरनुचरः श्रीमान् महाकालाह्वयश्च सः ।
बाणस्य च शतं पुत्राः कुसुम्भमकरादयः ।।४९।।

दान में निपुण महान् बली विरोचन के पुत्र हुए। बली का पुत्र अत्यन्त बलवान् विख्यात बाण नामक पुत्र हुआ। महाकाल नामक वह शिव का अनुचर था तथा धन सम्पन्न था। उस बाण के कुसुम्भ, मकर आदि एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए ।। ४८-४९ ।।

चत्वारिंशद्दनोः पुत्राः विप्रचित्तिपुरःसराः ।
शम्बरो नमुचिश्चैव पुलोमा च तथैव च ।।५०।।
असिलोमा तथा केशी दुर्जयोऽयःशिरास्तथा ।
अश्वशीर्षो क्षयः शङ्कुर्वियन्मूर्धा महाबलः ।।५१।।
वेगवान् केतुमांश्चैव स्वयं स्वर्भानुरेव च ।
अश्वो ह्यश्वपतिः कुण्डो वृषपर्वाजकस्तथा ।।५२।।

अश्वग्रीवश्च सूक्ष्मश्च तुरुण्डुर्माण्डलस्तथा ।
ऊर्धबाहुश्चैकचक्रो विरूपाक्षो हराहरौ ।।५३।।
नियन्त्रश्च निकुम्भश्च कुपटश्चपटुस्तथा ।
सरभः सुलभश्चैव सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।।५४।।

दनु के विप्रचित्ति को ज्येष्ठ मान कर चालीस पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके नाम निम्नलिखित हैं—(१) विप्रचित्ति, (२) शम्बर, (३) नमुचि, (४) पुलोमा, (५) असिलोमा, (६) केशी, (७) दुर्जय, (८) अय, (९) शिराः, (१०) अश्वशीर्ष, (११) क्षय, (१२) शंकु, (१३) वियन्मूर्धा, (१४) महाबल, (१५) वेगवान, (१६) केतुमान्, (१७) स्वयं, (१८) स्वर्भानु, (१९) अश्व, (२०) अश्वपति, (२१) कुण्ड, (२२) वृषपर्वा, (२३) अजक, (२४) अश्वपति, (२५) सूक्ष्म, (२६) तुरुण्डुः, (२७) माण्डलः, (२८) ऊर्ध्वबाहु, (२९) एकचक्र, (३०) विरूपाक्ष, (३१) हर, (३२) आहर, (३३) नियन्त्र, (३४) निकुम्भ, (३५) कुपट, (३६) पटु, (३७) सरभ, (३८) सुलभ, (३९) सूर्य, (४०) चन्द्रमा ॥ ५०-५४ ॥

अन्यावेतौ दनोः पुत्रौ सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।
दिवाकर-निशानाथौ तावन्यौ देवपुङ्गवौ ।।५५।।

दनु के उपर्युक्त सूर्य चन्द्रमा नामक पुत्र दिवाकर, सूर्य तथा निशापति चन्द्रमा जैसे देव श्रेष्ठों से भिन्न हैं। दनु के पुत्र अन्य तथा देव अलग-अलग हैं ॥ ५५ ॥

एषां पुत्रैश्च पौत्रैश्च तत्पुत्रैश्चैव भूरिभिः ।
जगद् व्याप्तमिदं सर्वं बलवीर्यसमन्वितैः ।।५६।।

इनके ही बल एवं पराक्रम से सम्पन्न पुत्र-पौत्रों तथा उनके बहुत से पुत्रों से यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है ॥ ५६ ॥

दनायूषोऽभवन् पुत्राश्चत्वारो बलवत्तराः ।
वीरभद्रो विक्षरश्च वत्सो वृत्तस्तथैव च ।।५७।।

दनायू के एक से बढ़कर एक बलवान, वीरभद्र, विक्षर, वत्स तथा वृत्त नाम के चार पुत्र हुए ॥ ५७ ॥

एषां चतुर्णां बहवः पुत्रा जाता द्विजोत्तमाः ।
रूपसत्वबलोपेता एकैकस्य शतं शतम् ।।५८।।

हे द्विजसत्तमों ! इन चारों के एक-एक से सौ-सौ पुत्र, इस प्रकार बहुत से उत्पन्न हुए। जो रूप, बल एवं सत्त्व से युक्त थे ॥ ५८ ॥

कालायास्तनया जाताः कालेया इति विश्रुताः ।
विख्यातास्ते महावीर्याश्चत्वारो दानावाधिपाः ।।५९।।

काला के कालेय नाम से प्रसिद्ध, चार, विख्यात, दानवों के स्वामी, महान् बलशाली पुत्र हुये ॥ ५९ ॥

विनाशनश्च क्रोधश्च क्रोधहन्ता तथैव च ।
क्रोधशक्रस्तथा चैते कालापुत्राः प्रकीर्तिताः ।।६०।।

विनाशन, क्रोध, क्रोधहन्ता, तथा क्रोधशक्र, ये चार काला के पुत्र कहे गये हैं ॥ ६० ॥

सिंहिकायाः सुतो जातो राहुश्चन्द्रार्कमर्दनः ।
सुचन्द्रश्चन्द्रहन्ता च तथा चन्द्रविमर्दनः ।।६१।।

सिंहिका के चन्द्रमा और सूर्य का मर्दन करने वाला राहु, सुचन्द्र, चन्द्रहन्ता, तथा चन्द्रविमर्दन नामक चार पुत्र हुए ॥ ६१ ॥

गणः क्रोधवशोनाम क्रूरकर्मारिमर्दनः ।
क्रोधायास्तनया जाताः क्रूरकर्मकरास्तथा ।।६२।।

गण, क्रोधवश, क्रूरकर्मा, अरिमर्दन नामक क्रूरकार्य करने वाले क्रोधा के पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ६२ ॥

सिंहिका चैव क्रोधा च द्वे सुते क्रूरिके सदा ।
ताभ्यां च प्रभवो वंशो ह्यतः क्रूरतरः स्मृतः ।।६३।।

सिंहिका और क्रोधा, दक्ष प्रजापति की ये पुत्रियाँ सदैव क्रूरकर्म करने वाली हैं । इसीलिए उनसे उत्पन्न वंश क्रूरतर स्मरण किया गया है ॥ ६३ ॥

एक एव मुनेः पुत्रो जातः शुक्रः कविर्महान् ।
दैत्यदानवकालेयप्रभृतीनां सदा गुरुः ।।६४।।

मुनि को एक ही शुक्र नामक महान विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सदैव दैत्य (दिति के पुत्रों), दानव (दनु के पुत्रों), कालेय (काला के पुत्रों) आदि का गुरु हुआ ॥ ६४ ॥

चत्वारस्तस्य तनया जाता असुरयाजकाः ।
त्वष्टावरस्तथात्रिश्च सौकलश्चेति वाग्मिनः ।
तेजसा सूर्यसदृशा ब्रह्मलोक-प्रभावनाः ।।६५।।

उनके त्वष्टा, वर, अत्रि तथा सौकल नाम के चार पुत्र उत्पन्न हुए जो तेज में सूर्य के समान, ब्रह्मलोक को प्रभावित करने वाले वक्ता तथा असुरों के यज्ञकर्त्ता पुरोहित थे ॥ ६५ ॥

असुराणां सदैत्यानां कालेयानां तथैव च ।।६६।।
क्रोधात्मजानाञ्च तथा सिंहिकातनयस्य च ।
सूतिप्रसूतिभिः सर्वं जगद्व्याप्तं चराचरम् ।।६७।।

दैत्यों के सहित असुरों, कालेय, क्रोधा के पुत्रों तथा सिंहिका के बेटों और उनके पुत्र-पौत्रों से यह चराचर जगत व्याप्त हो गया ॥ ६६-६७ ॥

तेषां तु यान्यपत्यानि वर्धितानि क्रमाद्द्विजाः ।
तेषां बहुत्वात् सङ्ख्यातुं चिरेणापि न शक्यते ।।६८।।

हे द्विजों ! उनके क्रमशः बढ़े हुए सन्तानों की अधिकता के कारण उनकी गणना चिरकाल में भी नहीं हो सकती ॥ ६८ ॥

तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च अनूरुर्गरुडस्तथा ।
आरुणिर्वारुणिश्चैव विनतातनयाः स्मृताः ।।६९।।

तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, अनूरु, गरुड़, आरुणि और वारुणि ये विनता के पुत्र स्मरण किये गये हैं ॥ ६९ ॥

शेषो वासुकिराजश्च तक्षकः कुलिकस्तथा ।
कूर्मश्च सुमनाश्चेति काद्रवेयाः प्रकीर्तिताः ।।७०।।

शेष, वासुकिराज, तक्षक, कुलिक, कूर्म और सुमन ये कद्रू की सन्तानें काद्रवेय कही गई हैं ॥ ७० ॥

भीमसेनोग्रसेनश्च सुपर्णो गरुडस्तथा ।
गोपतिर्धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च वीर्यवान् ।।७१।।
अर्कदृष्टः प्रयुक्तश्च विश्रुतः सुश्रुतस्तथा ।
भीमश्चित्ररथश्चैव विख्यातः सर्वविद्बली ।।७२।।
शालिशीर्षश्च पर्जन्यः कलिर्नारद एव च ।
इत्येते देव गन्धर्वा मुनिपुत्राः प्रकीर्तिताः ।।७३।।

भीमसेन, उग्रसेन, सुपर्ण, गरुड़, गोपत्रि, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्च, वीर्यमान, अर्कदृष्ट, प्रयुक्त, विश्रुत, सुश्रुत, भीम, चित्ररथ, विख्यात, सर्वविद्, बली, शालिशीर्ष, पर्जन्य, कलि तथा नारद ये प्रमुख देवता, गन्धर्व एवं मुनियों को पुत्र कहे गये हैं ॥ ७१-७३ ॥

अनवद्यां सानुरागां संवरां मार्गणां प्रियाम् ।
असूयां सुभगां भीमामिति कन्यामसूयत ।
प्राधा सर्वगुणोत्थानात् कश्यपात्तु तपोधनात् ।।७४।।

प्राधा नामवाली दक्षकन्या ने सभी गुणों से उन्नत, तपस्या ही जिनका धन है, ऐसे कश्यप ऋषि से अनवद्या, सानुरागा, संवरा, मार्गणा, प्रिया, असूया, सुभगा तथा भीमा नाम्नि कन्याओं को जन्म दिया ॥ ७४ ॥

विश्वावसुः सुचन्द्रश्च सुपर्णः सिद्धः एव च ।।७५।।
बर्हिः पूर्णश्च पूर्णाङ्गो ब्रह्मचारी रतिप्रियः ।
भानुश्च दशमश्चैते प्राधापुत्राः प्रकीर्तिताः ।।७६।।

(१) विश्वावसु, (२) सुचन्द्र, (३) सुपर्ण, (४) सिद्ध, (५) बर्हि, (६) पूर्ण, (७) पूर्णांग, (८) ब्रह्मचारी, (९) रतिप्रिय, (१०) भानु ये दश प्राधा के पुत्र कहे गये हैं ॥ ७५-७६ ॥

इत्येते देवगन्धर्वाः सन्ततं पुण्यलक्षणाः ।
प्राधासूत महामागा देवी देवर्षिसत्तमात् ।।७७।।

इस प्रकार से ऊपर वर्णित निरन्तर पुण्यमय लक्षणों से युक्त देवता, और गन्धर्व, देवर्षियों में श्रेष्ठ कश्यप मुनि एवं महान्भाग्यशाली देवी प्राधा से उत्पन्न हुये ॥ ७७ ॥

अलम्बुषा मिश्रकेशी गामिनी च मनोरमा ।
विद्युत्पन्नानधारम्भा ह्यरुणा रक्षितातुला ।।७८।।
सुबाहुः सुरता चैव मुरजा सुप्रिया तथा ।
वपुस्तिलोत्तमा चेति मुख्या अप्सरसः स्मृताः ।।७९।।

अलम्बुषा[१], मिश्रकेशी[२], गामिनी[३], मनोरमा[४], विद्युत्पन्ना[५], अनघा[६], रम्भा[७], अरुणा[८], रक्षिता[९], तुला[१०], सुबाहु[११], सुरता[१२], मुरजा[१३], सुप्रिया[१४], वपु[१५], तिलोत्तमा[१६] ये मुख्य अप्सरायें कही गयी हैं ॥ ७८-७९ ॥

अतिबाहुस्तुम्बुरुश्च हाहा हूहूस्तथैव च ।
गन्धर्वाणामिमे मुख्या देवतुल्याः प्रकीर्तिताः ।।८०।।

अतिबाहु, तुम्बुरु, हाहा, हूहू, ये मुख्य गन्धर्व भी देवताओं के समान बताये गये हैं ॥ ८० ॥

अमृतं ब्राह्मणा गावो मुनयोऽप्सरसस्तथा ।
कपिलातनयाः प्रोक्ता महाभागा महोत्सवाः ।।८१।।

अमृत, ब्राह्मण, गौ, मुनिगण, अप्सरायें ये महान्भाग्यशाली और अत्यधिक आनन्दपूर्ण हैं । ये सभी दक्ष-कन्या कपिला के पुत्र कहे गये हैं ॥ ८१ ॥

इति दक्षसुतानां ये कश्यपात्तनयाः स्मृताः ।
तैरिदं सकलं व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गम् ।।८२।।

इस प्रकार दक्ष कन्याओं के जो कश्यप ऋषि से उत्पन्न पुत्र थे, उनका वर्णन किया । इन्हीं से यह समस्त स्थावर एवं जङ्गम संसार व्याप्त है ॥ ८२ ॥

एवं यज्ञवराहस्य यज्ञरूपस्य पातनात् ।
त्रिभ्योऽग्निभ्यो मनोस्तस्मात् स्वायम्भुवमहात्मनः ।।८३।।

मुनिभ्यश्चैव सप्तभ्यः कश्यपादिभ्य एव च ।
नरनारायणाभ्यां तु व्यतीतेऽकालिके लये ।
पुनः प्रजाः पुरा सृष्टा हरिणानेकरूपिणा ।।८४।।

इस प्रकार प्राचीनकाल में यज्ञ वराह के यज्ञरूप के अवतरण तथा अकालिक प्रलय के व्यतीत होने पर तीन अग्नियों, कश्यपादि सप्तर्षियों एवं नर-नारायण के सहयोग से अनेकरूपधारी भगवान् विष्णु के द्वारा महात्मा स्वायम्भुव मनु रूप से प्रजा की पुनः सृष्टि की गयी ॥ ८३-८४ ॥

एवं पुनरभूत् सृष्टिः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणः ।
हरेस्तस्य प्रसादेन नरनारायणात्मनः ।।८५।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे पुनःसृष्टिवर्णने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

इस प्रकार सृष्टि, स्थिति और अन्त करने वाले भगवान विष्णु तथा उनकी ही कृपा से उन्हीं के नर-नारायण रूप द्वारा पुनः सृष्टि की गयी ॥ ८५ ॥

॥ श्रीकालिकापुराण में पुनः सृष्टिवर्णन नामक चौतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३४ ॥



पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

शरभकायत्यागः

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ईश्वरः शारभं कायं यथा तत्याज यत्नतः ।
तन्मे निगदतो भूयः श्रृणुध्वं द्विजसत्तमाः ।।१।।

मार्कण्डेय बोले–हे द्विजसत्तमों ! ईश्वर शिव ने जिस प्रकार प्रयत्नपूर्वक अपने शरभ शरीर का त्याग किया, उसे मैं कहता हूँ। आप पुनः सुनिये ॥ १ ॥

हते यज्ञवराहे तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
उवाच शरभं गत्वा सामयुक्तं जगद्धितम् ।।२।।

यज्ञवाराह के मारे जाने पर लोक के पितामह ब्रह्मा संसार के कल्याण कर्ता, शरभ (रूपधारी शिव) के पास जाकर उन्हें सामपूर्वक (समझाते हुए) बोले ॥ २ ॥

।। ब्रह्मोवाच ।।

देहाभोगेन भवतः पूरितं भूरियोजनम् ।
उपसंहर तस्मात् त्वं कायं लोकभयङ्करम् ।।३।।

ब्रह्मा बोले–आप ने अपने देह के विस्तार से बहुत दूरी छेक लिया है। इसलिए अब आप लोक को भयभीत करने वाले अपने इस शरीर का संयमन कीजिये ॥ ३ ॥

तव युद्धेन सकलं प्रणष्टं भुवनत्रयम् ।
आकाशं गन्तुं त्वां दृष्ट्वा विभेत्यद्य जनार्दनः ।
तस्मात् त्वमूर्धलोकानां हिताय त्यज वै तनुम् ।।४।।

आपके युद्ध से समस्त त्रिलोकी अत्यधिक नष्ट हो गयी है। आपको आकाश की ओर जाते देखकर आज भगवान विष्णु भयभीत हो रहे हैं। इसलिए आप ऊपरी लोकों के हित के लिए अपने इस शरीर को छोड़ दीजिये ॥ ४ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततस्तस्य वचः श्रुत्वा सुरज्येष्ठस्य शङ्करः ।
तत्याज शारभं कायं तोयोपर्येव तत्क्षणात् ।।५।।

मार्कण्डेय बोले–तब उन देवताओं में ज्येष्ठ ब्रह्मा के वचन को सुनकर शिव ने जलराशि पर ही तत्क्षण अपने शरभ शरीर को छोड़ दिया ॥ ५ ॥

त्यक्तस्य तस्य देहस्य शङ्करेण महात्मना ।
अष्टौ पादा अष्टमूर्तेस्तेषु चाष्टसु भेजिरे ।।६।।

महात्मा शङ्कर के द्वारा उस छोड़े गये शरभ शरीर के आठ पैर उनकी आठ मूर्त्तियों में बदल गये ।। ६ ।।

आद्यन्तु दक्षिणं पादमाकाशमगमद्द्रुतम् ।
तद्वामं मिहिरं भेजे पश्चाद् दक्षिणजं विधौ ।।७।।
वामन्तु ज्वलनं भेजे पृष्ठाग्रं पद्गतं क्षितिम् ।
पृष्ठाग्रवामं सलिलं तत्पश्चाद् दक्षिणं तथा ।
ययौ वामपदं भेजे होतारं सर्वतोमुखम् ।।८।।

उनका पहला दाहिना पैर तीव्रता से आकाश रूप को प्राप्त किया, उससे बायाँ, सूर्य स्वरूप को प्राप्त किया। बाद के दक्षिण में उत्पन्न पैर ने चन्द्रमा के रूप को तथा बायें पैर ने अग्नि का रूप धारण किया। पीछे का अगला दक्षिण पैर पृथ्वी रूप को तथा बायाँ पैर जल, पुनः दाहिना वायु तथा बायाँ होता के सर्वतोमुखी रूप को प्राप्त किया ।। ७-८ ।।

एवं तस्याष्टमूर्तेस्तु अष्टमूर्तिषु तत्क्षणात् ।
अष्टौ पादास्तथा भेजुः स्वं स्वं तेजो ययुः पदम् ।।९।।

इस प्रकार इस अष्टमूर्ति (शरभ वेषधारी शिव) की आठ मूर्तियों में उनके आठ पैरों ने अपने अनेक तेज एवं स्थान को प्राप्त कर लिया ।। ९ ।।

मध्यं तु शारभं कायं शङ्करस्य महात्मनः ।
कपाली भैरवो भूतश्चण्डरूपी दुरासदः ।।१०।।

तब उस महान आत्मा वाले भगवान शिव का मध्यवर्ती शरभशरीर, भयङ्कररूप, कपालधारी, भैरव के रूप में बदल गया ।। १० ।।

मस्तिष्कमेदसा युक्तं मांसं जुह्वति ते शुचौ ।
ब्रह्मकपालपात्रस्थं सुराभिर्देवपूजनम् ।।११।।
बलिर्मनुष्यमांसेन पानं तु रुधिरं सदा ।
सुरया पारणं यज्ञे कपालोक्षटधारणम् ।।१२।।

जो ब्रह्मकपाल के पात्र में रखी गयी सुरा से देवता का पूजन, मस्तिष्क के मेदा से युक्त मांस से हवन, मनुष्य के मांस से बलि (भोजन), रक्त का सदैव पान करते हैं; वे यज्ञों में सुरा (मदिरा) से पारण तथा उक्षट (उखाड़े हुए) कपाल को धारण करते हैं ।। ११-१२ ।।

व्याघ्रचर्मपरिधानं समलं त्रिवलीवृतम् ।
एवं कुर्वन्ति सततं कपालव्रतधारिणः ।
कपाली भैरवस्तेषां देवः पूज्यस्तु नित्यशः ।।१३।।

त्रिवली पेटिका लपेटे, व्याघ्रचर्म का वस्त्र धारण किये, मलयुक्त, मैले रहते हैं। कपाल व्रतधारण करने वाले कपाली लोग निरन्तर इसी प्रकार का आचरण करते हैं। कपालधारी भैरव उन कपालिकों के नित्य पूजनीय देवता हैं ॥ १३ ॥

महाभैरव रूप-वर्णन

श्मशानभैरवो योऽसौ यो महाभैरवाह्वयः ।।१४।।
बालसूर्यसमोद्योतः सदाष्टादशबाहुभिः ।
बिभ्राजमानो रक्ताक्षः सर्वदा नायिकाव्रजैः ।।१५।।
कालीप्रचण्डाप्रमुखैः क्रीडमानस्तु नित्यशः ।
सद्योदग्धनृमांसाशी गलल्लोलसद्भुजः ।।१६।।
लोहिताहारविघसः प्रेताशनगतः सदा ।
स्थूलवक्त्रोऽथ लम्बोष्ठो ह्रस्वस्थलपदालयः ।
विनोदी वादनो लोके साट्टहासस्तु भैरवः ।।१७।।

जो श्मशान भैरव हैं, उन्हें ही महाभैरव कहा जाता है। वे भैरव बालसूर्य के समान तेजयुक्त, सदैव अठारह भुजाओं से सुशोभित, लाल-लाल नेत्रों वाले, सर्वदा कालीप्रचण्डा आदि नायिकाओं के समूह में नित्य क्रीड़ा करते हैं। तुरन्त जले हुए मनुष्य के मांस का भोजन करने वाले, रक्तस्रावी चञ्चल भुजाओं से सुशोभित, रक्त का भोजन (जूठा भोजन) करने वाले सदैव प्रेतासन पर स्थित, विशालमुँह और लम्बेओंठ, छोटेपैर से युक्त विनोदी, बाजा बजाने वाले अट्टहासयुक्त वे भैरव रहते हैं ॥ १५-१७ ॥

एवं स च महादेवो महाभैरवरूपधृक् ।
मध्यशारभकायेन कायं दध्रे महाभुजः ।।१८।।

इस प्रकार उन महादेव शिव ने अपने शरभशरीर के मध्यभाग से महान् भुजाओं वाले महाभैरव रूपधारी शरीर को धारण किया ॥ १८ ॥

स जगाम ततो देवा हरस्य प्रमथान् प्रति ।
गणैः सार्धं तथाकाशे विक्रीडति स भैरवः ।।१९।।

तबसे शिव के गणों के साथ सभी देवता तथा वह भैरववशधारी शिव गणों के साथ आकाश में नित्य क्रीड़ा करते हैं ॥ १९ ॥

स महाभैरवो देवः पूज्यमानो जगज्जनैः ।
अद्यापि कुरुते नित्यमिष्टकामस्य साधनम् ।।२०।।

वही महाभैरव देवता आज भी सांसारिकजनों द्वारा पूजित हो नित्य उनके अभीष्ट काम का साधन करते हैं ॥ २० ॥

चैत्र - शुक्लचतुर्दश्यां मध्वासवपयःफलैः ।
मांसैर्मत्स्यैः सरुधिरैः सकृद्यो भैरवं यजेत् ।।२१।।
स सर्वकामान् संसाध्य भोगान् भुक्त्वा यथेष्टतः ।
प्रयाति शम्भुभवनमारुह्य वृषभं वरम् ।।२२।।

जो चैत्रशुक्ल चतुर्दशी को मधु, आसव, दूध, फल, मांस, मत्स्य, रक्तादि से एक बार भी भैरव का पूजन करता है, वह अपनी सभी कामनाओं को पूरा कर, इच्छानुसार भोगों को भोगकर (मृत्यु के उपरान्त) श्रेष्ठ बैल पर सवार होकर शिवलोक को जाता है ॥ २१-२२ ॥

एतद्वः कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहं द्विजोत्तमैः ।
भवद्भिर्यच्च वोऽन्यद् वा रोचते पृच्छ मां तु तत् ।।२३।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे शरभकायत्यागे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

हे द्विजोत्तमों ! यह आप लोगों द्वारा जो पूछा गया था वह मैंने कह दिया है । आपलोगों को और जो भी अच्छा लगे वह मुझसे पूछिये ॥ २३ ॥

॥ श्रीकालिकापुराण का शरभकायत्याग नामक पैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥३५॥



षट्त्रिंशोऽध्यायः

धरादुःखविमोचनम्

।। ऋषय ऊचुः ।।

कथं वराहपुत्रोऽसौ नरको नाम वीर्यवान् ।
संजातोऽसुरसत्त्वः स देवदेवीसुतोऽपि सन् ।।१।।

ऋषिगण बोले–देव (वाराहरूपधारी विष्णु) और देवी (पृथ्वी) का पुत्र होते हुए भी वाराह का वह नरक नामक शक्तिशाली पुत्र, असुरप्रवृत्ति से युक्त क्यों हो गया ? ।। १ ।।

चिरजीवी कथं सोऽभूत् किमर्थमुदरे चिरम् ।
पृथिव्यां न्यवसज्ञातः कुत्र वा स महाबलः ।।२।।

वह दीर्घजीवी कैसे हुआ ? पृथ्वी के उदर में वह बहुत समय तक क्यों रहा ? अथवा वह महाबलशाली कहाँ उत्पन्न हुआ ? ।। २ ।।

सोऽसुराणां कथं राजा पुरं तस्य किमाह्वयम् ।
मलिनीरतिसंजातः स क्षितौ पोत्रिणस्तथा ।।३।।
श्रूयते मुनिशार्दूल कथं भूतस्तथाविधः ।
एतत्सर्वमशेषेण पृच्छतां त्वं वदस्व नः ।।४।।
त्वं नो गुरुश्च शास्ता च सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
कथं लब्धवरो भूतो ब्रह्मणा प्रभविष्णुणा ।।५।।

वह असुरों का राजा कैसे हुआ ? उसके नगर का क्या नाम था ? सुना जाता है कि वह पृथ्वी तथा वाराह के मलिनावस्था में किये रतिप्रसङ्ग से उत्पन्न हुआ ? हे मुनियों में शार्दूल के समान ! इस प्रकार का प्रसङ्ग कैसे हुआ ? उपर्युक्त हमारे द्वारा पूछा गया तथा ब्रह्मा एवं प्रभावशाली भगवान विष्णु से उसने कैसे वर पाया ? यह सम्पूर्ण रूप से हमसे बताइये; क्योंकि आप हमारे गुरु, हमारे नियन्त्रणकर्त्ता हैं तथा आप सबकुछ को प्रत्यक्ष देखने वाले हैं ।। ३-५ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे यत् पृष्टोऽहं द्विजोत्तमाः ।
यथा स नरको जातो धरापुत्रो महासुरः ।।६।।

मार्कण्डेय बोले– हे द्विजोत्तमों ! हे मुनिगण ! आप लोगों ने जो मुझसे पूछा है उसे सुनिये। जिस प्रकार पृथ्वी देवी का पुत्र वह नरक, महान् असुर हुआ, वह मैं सुनाता हूँ ॥ ६ ॥

रजस्वलाया गोत्राया गर्भे वीर्येण पोत्रिणः ।
यतो यातस्ततोभूतो देवपुत्रोऽपि सोऽसुरः ॥७॥

रजस्वला अवस्था में पृथ्वी के गर्भ में वाराह भगवान के वीर्य से वह उत्पन्न हुआ, इसीलिए देवताओं का पुत्र होते हुए भी वह असुर हो गया ॥ ७ ॥

गर्भसंस्थं महावीरं ज्ञात्वा ब्रह्मादयः सुराः ।
वराहपुत्रं दुर्धर्षं महाबलपराक्रमम् ॥८॥
गर्भ एव तदा देवाः शक्त्या दध्रुश्चिरं दृढम् ।
यथा कालेऽपि संप्राप्ते नो गर्भाज्जायते स च ॥९॥

ब्रह्मादि देवताओं ने जब यह जाना कि महान बल और पराक्रम से युक्त, दुःख से जीता जाने वाला, महान् वीर, वाराह का पुत्र, गर्भ में है तो उन देवताओं ने गर्भ में ही उसे शक्ति से चिरकाल तक दृढ़ता से पकड़े रखा। जिससे समय होने पर भी वह गर्भ से उत्पन्न नहीं हुआ ॥ ८-९ ॥

ततस्त्यक्तशरीरस्तु वराहस्तनयैः सह ।
अतीव शोकसन्तप्ता जगद्धात्र्यभवत् क्षितिः ॥१०॥

तब वह जगत को धारण करने वाली पृथ्वी अपने तीनों पुत्रों सहित वाराह द्वारा अपने शरीर के छोड़ दिये जाने पर अत्यन्त शोक से सन्तप्त हो गयी ॥ १० ॥

शोकाकुला सा व्यलपच्चिरकालं मुहुर्मुहुः ।
प्रकृतिस्था क्षितिर्भूता माधवेन प्रबोधिता ॥११॥

वह शोक से व्याकुल हो बहुत देर तक बारम्बार विलाप करती रही। तत्पश्चात् विष्णु द्वारा समझाये जाने पर वह प्रकृतिस्था (स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त) हुई ॥ ११ ॥

ततः कालेऽपि सम्प्राप्ते दैवशक्त्या यदा धृतः ।
न गर्भः प्रसवं याति तदाभूत् पीडिता क्षितिः ॥१२॥

तब समय आने पर भी दैवी शक्तियों द्वारा रोके जाने के कारण उसके गर्भ का प्रसव नहीं हुआ तो पृथ्वी को अत्यन्त पीड़ा हुई ॥ १२ ॥

कठोरगर्भा सा देवी गर्भभारं न चाशकत् ।
यदा वोढुं तदा देवं माधवं शरणं गता ॥१३॥

कठोरगर्भ वाली वह पृथ्वी देवी, जब उस गर्भ को धारण न कर सकी तो भगवान् विष्णु के शरण में गयी ॥ १३ ॥

शरण्यं शरणं गत्वा माधवं जगतां पतिम् ।
प्रणम्य शिरसा देवी वाक्यमेतदुवाच ह ।।१४।।

शरणागतों को शरण देने वाले, जगत के स्वामी विष्णु के शरण में जाकर पृथ्वी देवी ने उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया तथा यह वचन बोला ॥ १४ ॥

।। पृथिव्युवाच ।।

नमस्ते जगदव्यक्तरूप - कारणकारण ।
प्रधान - पुरुषातीत - स्थित्युत्पत्तिलयात्मक ।।१५।।

पृथ्वी बोली– हे जगत् के प्रकट रूप, हे कारण के भी कारण, हे प्रधान, हे पुरुष से अतीत जगत की स्थिति उत्पत्ति और लयस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ १५ ॥

जगन्नियोजनपरः स्वाहाभोगधरोत्तम ।
जगदानन्दनन्दात्मन् भगवन् जगदीश्वर ।।१६।।
नियोजको नियोज्यश्च विभ्राजन् विष्णुरव्यय ।
नमस्तुभ्यं जगद्धातस्त्रिलोकालय विश्वकृत् ।।१७।।

आप संसार के नियोजन में लगे रहते हो आप उत्तम स्वाहायुत भोग अर्थात् हविष्य के धारण करने वाले हो। आप जगत के आनन्द को भी आनन्दित करने वाले, भगवान् तथा जगत् के स्वामी हो। आप ही नियोजन करने वाले हो, तथा आप ही नियोजन किये जाने योग्य हो। आप प्रकाशमान, अनश्वर, पुण्यवान्, जगत के पालन कर्त्ता, तीनों लोकों के आश्रय तथा विश्व के कर्त्ता हो। आपको नमस्कार है ॥ १६-१७ ॥

यः पालयति नित्यानि स्थापयत्येव तत्परः ।
त्वं त्वां नियमरूपेण नमामि जगदीश्वर ।।१८।।

जो पालन करते हैं, जो उन्हें नित्य पदार्थों में रत हों स्थापित करते हैं। हे जगदीश्वर ! उस तुम्हें तथा तुम्हारे नियम रूप को मैं नमस्कार करती हूँ ॥ १८ ॥

त्वं माधवः प्रवेकश्च कामः कामालयो लयः ।
प्रसूतिच्युतिहेत्वर्थ - त्राणकारणमीश्वर ।।१९।।

हे ईश्वर ! आप लक्ष्मी के पति, अत्यन्त श्रेष्ठ, काम तथा कामनाओं के आश्रय, अन्तिम स्थान हो। आप जन्म-मरण के हेतु और अर्थ से उद्धार करने वाले हो ॥ १९ ॥

न यस्य ते क्लेदाय स्युरापो नोष्मा तथोष्मणे ।
न शीताय भवेच्छीतं तस्मै तुभ्यं नमो नमः ।।२०।।

तुम्हें भिंगोने का सामर्थ्य न तो जल में और न तपाने की गर्मी अग्नि में है, जिसे ठण्डा करने वाली कोई ठण्डक ही नहीं है, उस आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ २० ॥

न समुद्रः प्लवकरो न शोषाय दहात्मकः ।
न मृत्यवे यस्य यमस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः ।।२१।।

जिसे डुबोने वाला न कोई समुद्र है और न सुखाने वाली अग्नि ही है, न जिसे मारने वाला कोई यमराज है, उस आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ २१ ॥

यच्चिद्धार्यं योगिभिः शान्तदेहै-
रुन्मार्गाणां यात्यरिध्येयकृत्यम् ।
नित्यं यद्रूपमार्गावसक्तं
स त्वं त्राहि त्राणमिच्छन् धरित्रीम् ।।२२।।

शान्ति देहवाले योगीजन उत्पथगामि कदाचारियों के शत्रुवत् व्यवहार को छोड़कर जिसे सदैव चित्त में धारण करते हैं। नित्य जिसके अनुरूप मार्ग में सम्पर्कशील रहते हैं वह परमात्मा मुझ त्राण चाहने वाली धरती की रक्षा करे ॥ २२ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति स्तुतो हृषीकेश जगद्धात्र्या तदा हरिः ।
प्रार्दुभूतस्तदा प्राह धरित्रीं दीनमानसाम् ।।२३।।

मार्कण्डेय बोले–तब जगत् को धारण करने वाली पृथ्वी के इस प्रकार से स्तुति किये जाने पर हृषीकेश[1] (इन्द्रियों के स्वामी) भगवान विष्णु प्रकट हुए और उस दुःखी मनवाली धरती से बोले—॥ २३ ॥

।। श्रीभगवानुवाच ।।

कथं दीनमना देवि धरित्रि परिदेवसे ।
तव वा किं कृता पीडा वेत्तुमिच्छामि तामहम् ।।२४।।

श्रीभगवान् बोले–हे देवि धरती ! तुम इस प्रकार दीनमन से क्यों कष्ट पा रही हो या किसने तुम्हें पीड़ा दी है ? उसे मैं जानना चाहता हूँ ॥ २४ ॥

मुखं ते परिशुष्कं तु शरीरं कान्तिवर्जितम् ।
आकुलं नयनद्वन्द्वं भ्रूविभ्रमविवर्जितम् ।।२५।।

तुम्हारा मुँह सूखा हुआ है, शरीर कान्तिहीन है, तुम्हारे दोनों नेत्र व्याकुल हैं, किन्तु पलकें चञ्चलतारहित स्थिर हैं ॥ २५ ॥

ईदृशं तव रूपं तु दृष्टपूर्वं कदापि न ।
रूपस्य तु विपर्यासे दुःखबीजं च भाषये ।।२६।।

इसके पहले तुम्हारा इस प्रकार का रूप कभी नहीं देखा गया। इस रूप के बिगड़ने तथा अपने दुःख के कारण को कहो ॥ २६ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य माधवस्य जगत्पतेः ।
विनयावनता देवी पृथ्वी प्राह सगद्गदम् ।।२७।।

उन जगत्पति भगवान विष्णु के इन वचनों को सुनकर नम्रता से झुककर पृथ्वी देवी ने गद्‌गद् वाणी में कहा—॥ २७ ॥

।। पृथिव्युवाच ।।

न गर्भभारं संवोढुं माधवाहं क्षमाधुना ।
भृशं नित्यं विषीदामि तस्मात् त्वं त्रातुमर्हसि ।।२८।।

पृथिवी बोली– हे माधव ! मैं इस समय गर्भ को वहन करने में समर्थ नहीं हूँ। मैं इसके कारण नित्य कष्ट पा रही हूँ। उस कष्ट से आप मेरी रक्षा करें ॥ २८ ॥

त्वया वराहरूपेण मलिनी कामिता पुरा ।
तेन कामेन कुक्षौ मे यो गर्भोऽयं त्वयाहितः ।।२९।।

आपके द्वारा प्राचीन काल में वाराहरूप से रजस्वला अवस्था में मैं कामरता हुई तथा उस काम के कारण मेरे उदर में जो यह गर्भ है, यह आपके ही द्वारा धारण कराया गया है ॥ २९ ॥

काले प्राप्तेऽपि गर्भोऽयं न प्रच्यवति माधव ।
कठोरगर्भा तेनाहं पीडितास्मि दिने दिने ।।३०।।

हे माधव ! समय पूरा हो जाने पर भी यह गर्भ बाहर नहीं होता। इसी से मैं दिन-प्रतिदिन इस कठोर गर्भ को धारण करके कष्ट पा रही हूँ॥ ३० ॥

यदि न त्राहि मां देव गर्भदुःखाज्जगत्पते ।
नचिरादेव यास्यामि मृत्योर्वशमसंशयम् ।।३१।।

हे देव ! हे जगत के स्वामी ! यदि आप इस गर्भ के दुःख से मेरी रक्षा नहीं करेंगे तो शीघ्र ही मैं मृत्यु के वशीभूत हो जाऊँगी। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३१ ॥

कयापि नेदृशो गर्भः पूर्वं माधव वै धृतः ।
योऽचलां चालयति मां सरसीमिव कुञ्जरः ।।३२।।

हे माधव ! इस प्रकार का गर्भ पहले किसी के द्वारा भी धारण नहीं किया गया जो मुझ स्थिर अचला (पृथ्वी) को भी जैसे—हाथी सरोवर को चञ्चल कर देता है वैसे ही चञ्चल बना रहा है ॥ ३२ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्याः पृथिव्याः पृथिवीपतिः ।
आह्लादयन् प्रत्युवाच हरिस्तप्तां लतामिव ।।३३।।

पृथ्वी द्वारा कहे इन वचनों को सुनकर, पृथ्वीपति विष्णु झुलसती लता की भाँति दुःखी, पृथ्वी को प्रसन्न करते हुए बोले ॥ ३३ ॥

।। श्रीभगवानुवाच ।।

न धरे ते महद्दुःखं चिरस्थायी भविष्यति ।
शृणु येन प्रकारेण चानुभूतमिदं त्वया ।।३४।।

श्रीभगवान बोले– हे धरा ! तुम्हारा यह महान् दुःख, चिरस्थायी नहीं होगा। जिस प्रकार से तुम्हें यह कष्ट अनुभव करना पड़ा है उसे सुनो ॥ ३४ ॥

मलिन्या सहसङ्गेन यो गर्भः सन्धृतस्त्वया ।
सोऽभूदसुरसत्त्वस्तु घृष्टेः पुत्रोऽपि दारुणः ।।३५।।

रजस्वला के सङ्ग से जो गर्भ तुम्हारे द्वारा धारण किया गया वह पुत्ररूप में असुर सत्त्व से युक्त, भयङ्कर,॥ ३५ ॥

ज्ञात्वा तस्य च वृत्तान्तं गर्भस्य द्रुहिणादयः ।
दैवीभिः शक्तिभिर्बद्धस्तव कुक्षौ तु तत् पुरः ।।३६।।

और उस गर्भ के वृत्तान्त को जानकर ब्रह्मादि देवताओं ने अपनी दैवी शक्तियों से उससे युक्त तुम्हारी कोख को बाँध दिया है ॥ ३६ ॥

सर्गादौ यदि जायेत भवत्यास्तादृशः सुतः ।
भ्रंशयेत् सकलान् लोकांस्त्रीनिमान् ससुरासुरान् ।।३७।।

यदि सृष्टि के आदि में ही आप द्वारा उस प्रकार का पुत्र उत्पन्न होता है तो देवताओं और असुरों के समेत इन तीनों लोकों को वह नष्ट कर देगा ॥ ३७ ॥

अतस्तस्य बलं वीर्यं ज्ञात्वा ब्रह्मादयः सुराः ।
प्राक्सृष्टिकाले ते गर्भं तथा धूर्जगतां कृते ।।३८।।

इसलिए उसके बल एवं पराक्रम को जानकर ब्रह्मादि देवताओं ने सृष्टि के प्रारम्भिककाल में उस प्रकार से तुम्हारे गर्भ को बोझ-स्वरूप कर दिया है ॥ ३८ ॥

अष्टाविंशतितमे प्राप्ते आदिसर्गाच्चतुर्युगे ।
त्रेतायुगस्य मध्ये तु सुतं त्वं जनयिष्यसि ।।३९।।

आदिसर्ग से अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के प्राप्त होने पर उसके त्रेता युग के मध्य में तुम इस पुत्र को जन्म दोगी ॥ ३९ ॥

यावत् सत्ययुगं याति त्रेतार्धं च वरानने ।
तावद् वह महागर्भं दत्तः कालो मया तव ।।४०।।

हे श्रेष्ठ मुखवाली ! जब तक सत्ययुग और आधा त्रेता नहीं बीत जाता तब तक तुम इस महान गर्भ को धारण करो। यह मैंने तुम्हारे लिए समय निर्धारित किया है ॥ ४० ॥

न यावज्जायते धात्रि गर्भस्ते ह्यतिदारुणः ।
तावद् गर्भवती दुःखं न त्वं प्राप्स्यसि भामिनी ।।४१।।

हे पालन करने वाली भामिनी ! जब तक तुम्हारा यह अत्यन्त भयानक गर्भ, जन्म नहीं लेता तब तक तुम गर्भवती होने से उत्पन्न दुःख को नहीं प्राप्त करोगी ॥ ४१ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुः पृथिवीं गर्भिणीं तदा ।
नाभौ पस्पर्श दयितां शङ्खाग्रेणातिपीडिताम् ।।४२।।

मार्कण्डेय बोले– तब भगवान विष्णु ने अत्यन्त कष्ट में पड़ी हुई, गर्भवती, अपनी पत्नी, पृथ्वी के नाभि में शङ्ख के अगले भाग से स्पर्श किया ॥ ४२ ॥

सा स्पृष्टा विष्णुना पृथ्वी शरीरं लघु चासदत् ।
गर्भेऽपि लघिमानं सा प्रापातीव सुखप्रदम् ।।४३।।

विष्णु द्वारा स्पर्श किये जाने पर उस पृथ्वी ने लघु शरीर को प्राप्त किया तथा गर्भावस्था में भी बहुत सुखप्रद और छोटे रूप को प्राप्त किया ॥ ४३ ॥

अगर्भा यादृशी नारी तादृशी साप्यजायत ।
धृतगर्भापि मुदिता सा बभूव जगत्प्रसूः ।।४४।।

जिस प्रकार बिना गर्भ धारण की हुई नारी होती है, जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता के गर्भ को धारण करती हुई, वह पृथ्वी उसी प्रकार, प्रसन्न चित्त हो गयी ॥ ४४ ॥

ततः पुनरिदं वाक्यमुक्त्वा स भगवान् क्षितिम् ।
पुनः प्रसादयामास सामभिर्बहुभिश्च ताम् ।।४५।।

तब उन भगवान् विष्णु ने उस पृथ्वी से इस प्रकार के बहुत से साम (समझौते) पूर्ण वाक्य कहकर उसे प्रसन्न किया ॥ ४५ ॥

जगद्धात्रि महासत्वे त्वं धृतिर्धारणात्मिका ।
सर्वेषां धारणाद्देवि त्वं धात्रीति प्रगीयसे ।।४६।।

हे जगत् को धारण करने वाली ! तुम महान सत्त्व वाली हो, तुम धारण करने वाली धृति शक्ति हो तथा सबको धारण करने ही के कारण तुम्हें धात्री कहा जाता है ॥ ४६ ॥

क्षमा यस्माज्जगद्धर्तुं शक्ता क्षान्तियुतात्र यत् ।
सर्वं वसु त्वयि न्यस्तं यस्माद्वसुमती ततः ।।४७।।

संसार को धारण करने में समर्थ होने तथा क्षान्ति से युक्त होने के कारण तुम्हें क्षमा कहा जाता है । सभी धन तुम्हारे में ही व्यवस्थित रूप में रखे गये हैं । इसीलिए तुम वसुमती भी हो ॥ ४७ ॥

तद्दुःखं त्यज पुत्रस्ते यदा संजायते तदा ।
मां स्मरिष्यसि देवि त्वं पुत्रं ते पालयाम्यहम् ।।४८।।

हे देवि ! इस पूर्व दुःख को छोड़ दो । जब तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा तब तुम मेरा स्मरण करोगी और मैं तुम्हारे पुत्र का पालन करूँगा ॥ ४८ ॥

इदं रहस्यं कुत्रापि न प्रकाश्यं त्वया धरे ।
यन्मया कथितं देवि रहस्यं परमं परम् ।।४९।।

हे पृथ्वी ! तुम्हारे द्वारा यह रहस्य कहीं भी प्रकाशित नहीं होना चाहिये । यह जो मैंने रहस्य बताया है, यह श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है ॥ ४९ ॥

गर्भस्तव महाभागे त्रेतायामध्यभागतः ।
उत्पत्स्यते हते वीरे रावणे रामसंज्ञिना ।।५०।।

हे महान् भाग्यशालिनी ! तुम्हारा यह गर्भ त्रेता के मध्य भाग में रामनामधारी पुरुषोत्तम द्वारा वीर रावण के मारे जाने के पश्चात् उत्पन्न होगा ॥ ५० ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ।
आज्ञाप्य पृथिवीं देवीं गर्भभारप्रपीडिताम् ।।५१।।

मार्कण्डेय बोले– ऐसा कहकर तथा गर्भ के भार से विशेष रूप से पीड़ित पृथ्वी देवी को उपर्युक्त आज्ञा दे, भगवान विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ५१ ॥

धरापि कुशला क्षामा लघुकाया बलैर्युता ।
अगर्भेव ययौ देवी मुदा परमया युता ।।५२।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे धरादुःखविमोचने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

पृथ्वी देवी भी गर्भरहित नारी की भाँति कुशल, समर्थ, लघु शरीर वाली, बल और परम प्रसन्नता से युक्त हो गईं ॥ ५२ ॥

॥ श्रीकालिकापुराण में धरादुःखविमोचन नामक छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३६ ॥



सप्तत्रिंशोऽध्यायः

नरकासुरजन्मकथनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ काले वहुतिथे व्यतीते द्विजसत्तमाः ।
विदेहविषये राजा जनको नाम वीर्यवान् ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– हे द्विजसत्तमों ! बहुत समय बीत जाने पर विदेह के राज्य में जनक नाम के एक पराक्रमी राजा हुए ।। १ ।।

सर्वराजगुणैर्युक्तो राजनीतिविवर्धितः ।
सत्यवाक् शीलवान् दक्षो ब्रह्मण्यः प्रयतः शुचिः ।।२।।

वे सभी राजोचित गुणों से युक्त थे, राजनीति में बढ़े-चढ़े, सत्यवादी, शीलवान, चतुर, ब्राह्मणभक्त, समर्पित, पवित्र आचार वाले थे ।। २ ।।

देवद्विजगुरूणां च पूजासु निरतः सदा ।
बभूव सर्वलोकानां पितेव परिपालकः ।।३।।

वे सदैव, देवता, ब्राह्मण तथा गुरुओं की पूजा में लगे रहते थे एवं सभी लोकों का पिता की भाँति पालन करने वाले थे ।। ३ ।।

तस्य राज्ञः सुतो नाभूत् प्राप्ते कालेऽपि वै सदा ।
तदा स विमना भूत्वा चिन्ताध्यानपरोऽभवत् ।।४।।

सदा समय आने पर भी उन राजा को पुत्र नहीं हुआ, तब वह उदास हो चिन्ता और ध्यान में परायण हो गये ।। ४ ।।

एकदा सोऽथ शुश्राव नारदस्य मुखान्नृपः ।
अपुत्रो नृपतिर्वृद्धो नाम्ना दशरथो महान् ।।५।।

एक बार उस राजा ने नारद के मुँह से सुना कि दशरथ नाम के एक महान राजा थे, जो वृद्धावस्था में भी बिना पुत्र के थे ।। ५ ।।

पुत्रान् लेभे महासत्वानध्वरेण महामतिः ।
अयोध्यायां नगर्यां तु ऋष्यशृङ्गपुरोगमैः ।।६।।

उस महा बुद्धिमान राजा ने शृङ्गीऋषि के नेतृत्व में ऋषियों द्वारा अयोध्या नगरी में सम्पादितयज्ञ से महान् सत्त्व बल वाले पुत्रों को प्राप्त किया ।। ६ ।।

मुनिभिर्विहितैर्यज्ञैर्लब्धवान् स नृपः सुतान् ।
रामं च भरतं चैव शत्रुघ्नं लक्ष्मणं तथा ।
महासत्वान् महावीरान् देवगर्भोपमाञ्छुभान् ।।७।।

उस राजा ने मुनिजनों द्वारा किये गये यज्ञ से, राम, भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न नाम के महान् सत्त्ववान्, महान् वीर, देवपुत्रों के समान तथा शुभ लक्षणयुक्त पुत्रों को प्राप्त किया ।। ७ ।।

तच्छ्रुत्वा जनको राजा प्रविश्यान्तःपुरं स्वकम् ।
भार्याभिर्मन्त्रयामास यज्ञार्थं पुत्रजन्मने ।।८।।

उस समाचार को सुनकर राजा जनक ने अपने अन्तःपुर में प्रवेश कर पुत्रजन्म हेतु यज्ञ के लिए अपनी पत्नियों के साथ विचार-विमर्श किया ।। ८ ।।

मन्त्रयित्वा तदा राजा महिषीप्रमुखैः स्वयम् ।
चतसृभिस्तु भार्याभिर्यज्ञार्थं दीक्षितोऽभवत् ।।९।।

तब राजा अपनी मुख्य रानियों से विचार-विमर्श करके चार पत्नियों के सहित यज्ञ के निमित्त दीक्षित हुआ ।। ९ ।।

ततः पुरोधसं राजा गौतमं मुनिसत्तमम् ।
तत्पुत्रं च शतानन्दं पुरोधायोकरोन्मखम् ।।१०।।

तब राजा जनक ने अपने पुरोहित मुनिश्रेष्ठ गौतम तथा उनके पुत्र शतानन्द को पुरोहित बनाकर पुत्र हेतु यज्ञ किया ।। १० ।।

द्वौ पुत्रौ तस्य संजातौ यज्ञभूमौ मनोहरौ ।
एका च दुहिता साध्वी भूम्यन्तरगता शुभा ।।११।।

उनके यज्ञभूमि में दो सुन्दर पुत्र तथा भूमि के अन्दर से शुभ लक्षणों वाली एक साध्वी कन्या उत्पन्न हुई ।। ११ ।।

नारदस्योपदेशेन यज्ञभूमिं ततो नृपः ।
हलेन दारयामास यज्ञबाटावधिस्वयम् ।।१२।।

तब स्वयं राजा ने नारद के उपदेश के अनुसार यज्ञ भूमि को हल से, यज्ञभूमि की सीमा तक विदीर्ण कर दिया ।। १२ ।।

तद्भूमिजातसीतायां शुभां कन्यां समुत्थिताम् ।
लेभे राजा मुदा युक्तः सर्वलक्षणसंयुताम् ।।१३।।

उस भूमि में बनी हुई हल की रेखा से उठी हुई सुन्दरी कन्या, सभी लक्षणों से युक्त कन्या बनी, जिसे राजा ने प्रसन्नतापूर्वक प्राप्त किया ।। १३ ।।

तस्यां तु जातमात्रायां पृथिव्यन्तर्हिता स्वयम् ।
जगाद वचनं चेदं गौतमं नारदं नृपम् ।।१४।।

उसके उत्पन्न होते ही पृथ्वी ने अन्तर्हित रहते हुए ही नारद, गौतम एवं राजा जनक से यह वचन कहा ।। १४ ।।

।। पृथिव्युवाच ।।

एषा सुता मया दत्ता तव राजन् मनोहरा ।
एनां गृहाण सुभगां कुलद्वयशुभावहाम् ।।१५।।

पृथ्वी बोली– हे राजन् ! यह मनोहारिणी पुत्री मेरे द्वारा तुम्हें दी जा रही है। सौभाग्यशालिनी पितृ एवं पति दोनों कुलों का शुभ करने वाली इस कन्या को तुम ग्रहण करो ।। १५ ।।

अनया मे महाभारस्तत्त्वतो हेतुभूतया ।
क्षयं यास्यति भारार्तिं मोचयिष्यामि दारुणाम् ।।१६।।

तुम्हारे लिए उत्पन्न इस कन्या का मेरे पर एक महान भार है, वह नष्ट हो जायेगा। तथा मैं भयङ्कर दुःख से मुक्त हो जाऊँगी ।। १६ ।।

रावणाद्या महावीराः कुम्भकर्णादयोऽपरे ।
नाशं यास्यन्ति दुर्धर्षाः कृतेऽस्या राक्षसाः परे ।।१७।।

रावण, कुम्भकर्ण आदि महान् वीर तथा अन्य दुर्धर्ष राक्षसगण इसके लिए विनाश को प्राप्त करेंगे ।। १७ ।।

त्वञ्च मोदं दुराधर्षं दुहितृकृतिजं नृपः ।
अवाप्स्यसि सुराणां च पितॄणामृणशोधनम् ।।१८।।

हे राजन् ! तुम पुत्री के कार्यों से उत्पन्न आनन्द तथा देवताओं एवं पितरों के ऋणशोधन का अवसर प्राप्त करोगे ।। १८ ।।

किन्त्वेकः समयः कार्यस्त्वया मम नरोत्तम ।
तमहं ते प्रवक्ष्यामि पुरो नारदगौतमौ ।।१९।।

हे नरों में श्रेष्ठ ! किन्तु तुम्हें, नारद और गौतम मुनियों के सम्मुख, मुझसे एक वादा करना होगा जो मैं तुमसे कहूँगी ।। १९ ।।

निहते रावणे वीरे भारार्ति-रहिता सुखम् ।
सुपुत्रं . जनयिष्यामि यज्ञभूमावहं तव ।।२०।।

वीरवररावण के मारे जाने पर, भार और दुः:ख से मुक्त हो मैं सुखपूर्वक तुम्हारी यज्ञभूमि में एक सुन्दर पुत्र को जन्म दूँगी ।। २० ।।

तं पुत्रवत् पालयिता भवान् नृपतिसत्तम ।
यावद्व्यतीतबाल्यः सन् भविता तनयो मम ।।२१।।

हे नृपसत्तम ! जब तक मेरे उस पुत्र का बचपन न बीत जाय तब तक तुम उसको अपने पुत्र की भाँति पालन करने वाले होवोगे ।। २१ ।।

व्यतीतबाल्यं तमहं पालयिष्ये स्वयं नृप ।
तस्य स्यान्मानुषो भावो यथा त्वं तत्करिष्यसि ।।२२।।

हे राजन् ! उसके बचपन के बीत जाने के बाद मैं स्वयं उसका पालन करूँगी । उसमें मनुष्योचित भावनाओं का विकास हो ऐसा तुम (उसके बचपन में) करोगे ॥ २२ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति पृथिव्या वचनं श्रुत्वा राजा तदा मुदा ।
प्रणम्य पृथिवीं प्राह साम्ना स जनकाह्वयः ।।२३।।

मार्कण्डेय बोले– तब पृथ्वी के इस वचन को सुनकर उस जनक नाम के राजा ने प्रसन्नता पूर्वक पृथ्वी को प्रणाम किया तथा उसकी स्तुति करते हुए बोले—॥ २३ ॥

।। राजोवाच ।।

यत् त्वं ब्रूषे जगद्धात्रि करिष्ये तद्वचस्तव ।
ममापीष्टं प्रयच्छस्व प्रसीद परमेश्वरि ।।२४।।

राजा बोले– हे जगत् को धारण करने वाली, जो तुमने कहा है तुम्हारा वह कथन मैं पूरा करूँगा । हे परमेश्वरी ! तुम प्रसन्न होओ और मेरी इच्छा पूर्ण करो ॥ २४ ॥

देवि प्रत्यक्षतो रूपं द्रष्टुमिच्छाम्यहं तव ।
शक्तिस्त्वं लोकजननी त्वां नमामि प्रसीद मे ।।२५।।

हे देवी ! मैं आपके रूप का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ । आप शक्ति स्वरूपा हो, लोकों को उत्पन्न करने वाली हो, मैं आपको नमस्कार करता हूँ, आप मुझ पर प्रसन्न होइये ॥ २५ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा जनकस्य तदा क्षितिः ।
मुनीनां सन्निधौ रूपं दर्शयामास भूभृते ।।२६।।

तब उस राजा जनक के इस प्रकार के वचन सुनकर पृथ्वी देवी ने राजा को उन मुनियों के सम्मुख ही अपना प्रत्यक्ष रूप दिखाया ॥ २६ ॥

नीलोत्पलदलश्यामामक्षमालाब्जधारिणीम् ।
बाहुयुग्मेन शुभ्रेण मृणालायतशोभिना ।
सुन्दरीं लोकधात्रीं तां दृष्ट्वा शश्वत् नृपोऽनमत् ।।२७।।

वे नीलकमल के दल के समान श्यामवर्ण की तथा कमल और रुद्राक्ष की माला धारण किये हुए थीं । उनकी दोनों भुजाएँ श्वेत कमलनाल के समान लम्बी शोभायमान हो रही थीं । इस प्रकार की लोक को धारण करने वाली उस सुन्दरी पृथ्वी देवी को प्रत्यक्ष देखकर राजा ने उन्हें नमस्कार किया ॥ २७ ॥

ततः सा पृथिवी देवी सीतां जातां नृपात्मजाम् ।
करेण शश्वत् संस्पृश्य वचनं चेदमब्रवीत् ।।२८।।

तब वह पृथ्वी देवी सीता (हल की रेख) से उत्पन्न हुई उस राज-पुत्री को प्रत्यक्ष रूप से अपने हाथों से स्पर्श करती हुई यह वचन बोलीं—॥ २८ ॥

।। पृथिव्युवाच ।।

इयं ते मानुषं भावमवाप्स्यति जगत्प्रसूः ।
तव पुत्री नृपश्रेष्ठ समयं प्रतिपालय ।।२९।।

पृथिवी बोली– यह जगत् को उत्पन्न करने वाली जगदम्बा है, किन्तु तुम्हारे प्रति मनुष्यवत् व्यवहार करेगी तथा तुम्हारी पुत्रीरूप में रहेगी । तुम अपने दिये गये वचन का पालन करना ॥ २९ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा पृथिवी देवी राजानं जनकाह्वयम् ।
सम्भाष्य नारदादींस्तांस्तत्रैवान्तरधीयत ।।३०।।

मार्कण्डेय बोले–उन नारदादि ऋषियों तथा राजा जनक से इस प्रकार कहकर पृथ्वी देवी वहीं अन्तर्धान हो गईं ॥ ३० ॥

जनकोऽपि सुतां लब्ध्वा सर्वलक्षणशालिनीम् ।
सुतद्वयं तथा प्राप्य मुदितः स्वगृहं ययौ ।।३१।।

राजा जनक भी दो पुत्र तथा सभी लक्षणों से युक्त पुत्री को प्राप्त कर प्रसन्नतापूर्वक अपने घर को चले गये ॥ ३१ ॥

ततः काले तु सम्प्राप्ते रावणे राक्षसे हते ।
मानुषेण स्वरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना ।।३२।।
गत्वा विदेहराजस्य यज्ञभूमिं तदा क्षितिः ।
सुषुवे तनयं वीरं यत्र सीता पुराभवत् ।।३३।।

तब समय आने पर मनुष्य रूपधारी, प्रभविष्णु, विष्णु द्वारा रावण के मारे जाने के पश्चात् पृथ्वी देवी ने विदेह राज्य की जहाँ पहले सीता उत्पन्न हुई थीं, उसी यज्ञभूमि में जाकर अपने वीरपुत्र को जन्म दिया ॥ ३२-३३ ॥

जाते पुत्रे तदा देवी जगद्धात्री जगत्प्रभुम् ।
सस्मार समये विष्णुं स्मरन्ती समयं पुरा ।।३४।।

तब उस पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर जगत् को धारण करने वाली पृथ्वी देवी ने जगत के स्वामी भगवान विष्णु का, उनसे पहले किये हुए समझौते के अनुसार स्मरण किया ॥ ३४ ॥

स्मृतमात्रस्तदा देवः समयं प्रत्यपालयत् ।
क्षितेर्यत्र सुतो जातस्तत्र प्रादुर्बभूव ह ।।३५।।

तब स्मरण करने मात्र से ही भगवान विष्णु, अपने वचन का पालन करते हुए पृथ्वी ने जहाँ पुत्र उत्पन्न किया था, वहीं पर प्रकट हो गये ॥ ३५ ॥

प्रादुर्भूतं तदा देवी प्रणम्य परमेश्वरम् ।
संस्तूय सुनृतं शश्वदिदमाह जगत्प्रभुम् ।।३६।।

तब पृथ्वी देवी ने स्तुति करते हुए प्रत्यक्ष रूप में सुन्दर वाणी में वहाँ प्रकट हुए जगत् के स्वामी, परमेश्वर को प्रणाम कर यह कहा ॥ ३६ ॥

।। पृथिव्युवाच ।।

एष ते तनयो जातः सुकुमारो महाप्रभः ।
संस्मरन् समयं पूर्वं त्वमेनं प्रतिपालय ।।३७।।

पृथिवी बोली– हे महान् प्रभा वाले ! यह आपका सुकुमार बालक उत्पन्न हो गया है । अब आप अपने पहले दिये वचनों का स्मरण कर इसका पालन कीजिए ॥ ३७ ॥

।। श्रीभगवानुवाच ।।

अयं ते तनयो देवी महाबलपराक्रमः ।
भविता मानुषं भावं तन्वानः सुचिरं बुधः ।।३८।।

श्रीभगवान बोले–हे देवी ! तुम्हारा यह महान् पुत्र बल और पराक्रम युक्त, विद्वान् तथा चिरकाल तक मनुष्यत्व का विस्तार करने वाला होगा ॥ ३८ ॥

यावन्मानुषभावं ते तनयो भावयिष्यति ।
तावत् कल्याणभाग्भूत्वा चिरं राज्यं करिष्यति ।।३९।।

तुम्हारा यह पुत्र जब तक मनुष्यता से युक्त रहेगा तब तक यह कल्याण का पात्र हो बहुत समय तक राज्य करेगा ॥ ३९ ॥

त्यक्तमानुषभावस्तु यदा चायं विचेष्टते ।
तदा तु नास्य सुचिरं जीवितं सम्भविष्यति ।।४०।।

जब यह मनुष्यभाव को छोड़कर कार्य करेगा तब बहुत समय तक इसका जीवन नहीं रहेगा ॥ ४० ॥

सम्प्राप्ते षोडशे वर्षे राज्यमासादयिष्यति ।
धनरत्नगजैश्वर्ययुक्तोऽयं रथसञ्चयैः ।
आसाद्य महतीं नित्यं श्रियं भोक्ष्यति वीर्यवान् ।।४१।।

सोलह वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर यह राज्य प्राप्त करेगा तथा धन, रत्न, हाथी, रथ-समूह और ऐश्वर्य से युक्त हो नित्य महती श्री का भोग करेगा ॥ ४१ ॥

यस्मिन् यस्मिन् युगे भावो यो वा भवति वै नृणाम् ।
तं तं भावं तथैवायं करिष्यति तथा कुरु ।।४२।।

जिस-जिस युग में जो-जो भाव मनुष्यों का रहेगा यह उनके साथ वैसे ही भाव रखे ऐसा तुम कुछ करो ॥ ४२ ॥

एतस्य निभृतं राज्यं यत् प्राग्ज्योतिषसंज्ञकम् ।
पुरं तत्र चिरं शास्ता राज्यमेष सुतस्तव ।।४३।।

इसका जो रक्खा हुआ प्राक्ज्योतिषपुर नामक राज्य है, तुम्हारा यह पुत्र चिरकाल तक वहाँ के राज्य का शासन करेगा ।। ४३ ।।

इत्युक्त्वा पृथिवीं विष्णुः समाभाष्य जगत्पतिः ।
दृश्यमानस्तया क्षिप्रं तत्रैवान्तर्दधे प्रभुः ।।४४।।

मार्कण्डेय बोले– पृथिवी से ऐसा कहकर जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु उसके देखते ही देखते वहीं अन्तर्धान हो गये ।। ४४ ।।

प्रसूय पृथिवी पुत्रं मध्यरात्रे महाद्युतिम् ।
जनकं ज्ञापयामास रहस्यं पूर्वमीरितम् ।।४५।।

पृथिवी ने मध्यरात्रि में महान् तेजस्वी पुत्र को जन्म दे, पहले कहे हुये रहस्य से जनक को अवगत कराया ।। ४५ ।।

विदेहराजो ज्ञात्वैव पृथिवीजनितं सुतम् ।
तत्रैव यज्ञवाटं स रात्रावागात् कृतक्रियः ।।४६।।

पृथिवी ने पुत्र जन्म दिया है यह जानकर विदेहराज जनक अपने कार्य सम्पन्न कर रात्रि में ही वे यज्ञभूमि की ओर चल पड़े ।। ४६ ।।

गच्छन्तं यज्ञवाटं तं दृष्ट्वा सर्वसहा तदा ।
नोक्त्वा किञ्चन तं शश्वदन्तर्धानं गता नृपम् ।।४७।।

तब उस राजा को यज्ञ भूमि की ओर जाते हुए देखकर पृथिवी ने उनसे कुछ नहीं कहा और वह प्रत्यक्ष रूप से अन्तर्धान हो गयी ।। ४७ ।।

अथ गत्वा तदा तत्र विदेहाधिपतिः सुतम् ।
धरायां ददृशे कान्त्या चन्द्रार्कज्वलनोपमम् ।।४८।।

इसके बाद तब वहाँ जाकर विदेह राज्य के स्वामी राजा जनक ने चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि के समान कान्तिमान् पृथ्वी के पुत्र को देखा ।। ४८ ।।

रुदन्तं बहुशः स्निग्धं चलद्हस्तपदद्वयम् ।
वपुष्मन्तं श्रियादीप्तं कार्तिकेयमिवापरम् ।।४९।।

वह बहुत रो रहा था, चिकना (कोमल) था, अपने दोनों हाथ-पैर चला रहा था। वह मूर्तिमान् दूसरे कार्तिकेय के समान शोभा से देदीप्यमान था ।। ४९ ।।

उद्गच्छन् स रुदन् बालो यज्ञभूमिं व्यतीत्य च ।
कियद्दूरं जगामाशूत्तानशायी महाद्युतिः ।।५०।।

वह महान् द्युति वाला रोते हुए, ऊपर की ओर चित्त सोये हुये ही, यज्ञभूमि को पार कर कुछ दूर चला गया ।। ५० ।।

मनुष्यस्य शिरस्तत्र मृतस्य प्राप्य बालकः ।
स्वशिरस्तत्र विन्यस्य रुदंस्तस्थौ क्षणं तदा ।।५१।।

तब वह बालक वहाँ मरे हुए मनुष्य के सिर को लेकर तथा उसके स्थान पर अपने सिर को रखकर क्षणभर में रोने लगा ॥ ५१ ॥

ततो विदेहराजोऽपि मार्गमाणः क्षितेःसुतम् ।
व्यतीत्य यज्ञभूमिं तमाससादाञ्जसा बहिः ।।५२।।

उस पृथ्वीपुत्र को खोजते हुए तब विदेहराज जनक, भी यज्ञभूमि को पारकर, शीघ्र ही बाहर आकर उसे प्राप्त किये ॥ ५२ ॥

आसाद्य बालकं दीप्तं प्रदीप्तमिव पावकम् ।
कान्त्या चन्द्रमसस्तुल्यं तेजोभिर्भास्करोपमम् ।।५३।।
शरमध्यगतं पूर्वं पावकिं पावको यथा ।
स्वयं जग्राह तं राजा पृथिव्याः समयं स्मरन् ।।५४।।

प्रज्ज्वलित अग्नि के सामन देदीप्यमान, चन्द्रमा के समान कांतियुक्त, तेज में सूर्य के समान बालक को प्राप्त कर, शरपत के बीच अग्नि ने पावकि (कार्तिकेय) को जिस प्रकार उठा लिया था, उसी प्रकार पृथिवी के साथ किये गये वचन का स्मरण कर, राजा ने स्वयं उस बालक को उठा लिया ॥ ५३-५४ ॥

उद्वहन् तच्छिरोदेशे ददृशे मानुषं शिरः ।
शशंस चाचिरं शीर्षं मानुषं गौतमाय सः ।।५५।।

उठाने पर उसके शिर के स्थान पर राजा ने मनुष्य का शिर देखा तथा उसने गौतम से इस शिर की शीध्र ही प्रशंसा किया ॥ ५५ ॥

अथ बालं समादाय प्रविश्यान्तःपुरं स्वकम् ।
महिष्यै कथयामास प्राप्तं पुत्रं गुहोपमम् ।।५६।।

इसके बाद उस बालक के सहित अन्त:पुर में प्रवेश कर अपनी महारानी से उन्होंने कहा कि आज मुझे स्कन्द के समान एक पुत्र प्राप्त हुआ है ॥ ५६ ॥

सा तं दृष्ट्वा विशालाक्षं सिंहस्कन्धं महाभुजम् ।
विस्तीर्णहृदयं कान्तं नीलोत्पलदलच्छविम् ।
मुमोद पालनीयोऽयं मयेति न्यवदत् नृपम् ।।५७।।

उन महारानी ने विशाल नेत्र, सिंह के समान मजबूत कन्धे, महान् भुजाओं, विस्तृत हृदय (वक्षस्थल), नीलकमल की पंखुड़ियों के समान शोभा से सुशोभित उस बालक को देखकर प्रसन्न हुईं, तथा उन्होंने राजा से कहा कि यह मेरे पालन करने योग्य है ॥ ५७ ॥

तां राजापि ततः प्राह पुत्रोऽयं मम सुन्दरि ।
यज्ञभूमौ समुत्पन्नः स्वच्छन्दं पाल्यतामयम् ।।५८।।

तब राजा ने उससे कहा कि हे सुन्दरी ! यह मेरा पुत्र स्वच्छन्द रूप से यज्ञभूमि से उत्पन्न हुआ है, तुम इसका पालन करो ॥ ५८ ॥

यत् पृथिव्या रहः प्रोक्तं न तद्देव्यै न्यवेदयत् ।
सत्यसन्धो नृपश्रेष्ठः प्रियाया अपि भाषितम् ।।५९।।

पत्नी द्वारा पूछे जाने पर भी, पृथिवी ने जो रहस्य बताया था उसे सत्यनिष्ठा वाले एवं श्रेष्ठ राजा ने महारानी से भी नहीं बताया ॥ ५० ॥

मम सुतसुतवंशान् पालयित्री धरेय-
मिति नरपतिवर्यो मोदवांस्तद्दिने च ।
सुरतनयसमानं पुत्रमासाद्य देवी ।
जितरिपुरतिधीमान् स्यादयञ्चेत्यमोदत् ।।६०।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे नरकजन्म-कथने सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

उस दिन राजाओं में श्रेष्ठ जनक, इस हेतु प्रसन्न हुए कि यह धरती मेरे पुत्र और उसके वंशजों का पालन करने वाली है तथा महारानी यह पुत्र, शत्रुओं को जीतने वाला, अत्यन्त बुद्धिमान् होगा । इस प्रसन्नता से देवताओं के पुत्र के समान दिव्यपुत्र पाकर प्रसन्न हुए ॥ ६० ॥

॥ श्रीकालिकापुराण में नरकासुरजन्मकथन नामक सैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३७ ॥



अष्टत्रिंशोऽध्यायः

नरकासुरअभिषेकवर्णनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ तस्य नृपश्रेष्ठो गौतमेन महर्षिणा ।
संस्कारं कारयामास विधिना मानुषेण तु ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– इसके बाद उस श्रेष्ठ राजा (जनक) ने महर्षि गौतम के द्वारा मनुष्योचित विधि से उस बालक के संस्कार सम्पन्न कराये ॥ १ ॥

नरस्य शीर्षे स्वशिरो निधाय स्थितवान् यतः ।
तस्मात्तस्य मुनिश्रेष्ठो नरकं नाम वै व्यधात् ।।२।।

वह मनुष्य का शिर अपने शिर पर धारण किये हुए था। इसीलिए मुनियों में श्रेष्ठ गौतम ने उसका नाम 'नरक' रखा ॥ २ ॥

अपरान् बालसंस्कारान् क्षात्रेण विधिना मुनिः ।
केशान्तावधि संचक्रे ऋग्यजुः-साममन्त्रकैः ।।३।।

(उपर्युक्त नामकरण संस्कार के पश्चात्) उसके केशान्त (मुण्डन) पर्यन्त अन्य संस्कार, उन मुनि ने ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद के मन्त्रों द्वारा क्षात्रविधि से सम्पन्न कराया ॥ ३ ॥

ववृधे तस्य सदने नरको नाम भूसुतः ।
दिनं दिनं धृतान्यश्रीः शरदीव निशाकरः ।।४।।

उस राजा के घर में वह नरक नामक पृथ्वी का पुत्र, दिनोंदिन विशेष शोभा को धारण कर, शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा ॥ ४ ॥

स राजा तं सदा भावैर्मानुषैर्योजयन् स्वयम् ।
गौतमस्य सुतेनाथ शतानन्देन धीमता ।
ग्राहयामास तन्नित्यं क्षात्रं भावं च मानुषम् ।।५।।

वह राजा स्वयं उस बालक को मानवीय भावनाओं से युक्त कराते थे तथा उन्होंने गौतम ऋषि के पुत्र, बुद्धिमान् शतानन्द द्वारा उसे नित्य क्षत्रियोचित एवं मनुष्योचित भावनाएँ ग्रहण करायीं ॥ ५ ॥

तथैव पृथिवी देवी धात्रीवेषेण तं सुतम् ।
नियतं ग्राहयामास मानुषं चरितं शुभम् ।।६।।

उसी प्रकार पृथिवी देवी भी धात्री (धाय) के वेश में उस पुत्र को नियन्त्रित कर, मानवीय शुभचरित्रों को ग्रहण कराती थीं ॥ ६ ॥

यदैव पुत्र उत्पन्नस्तदैव पृथिवीस्वयम् ।
मायामानुषरूपेण नृपान्तःपुरमाविशत् ।।७।।

ज्योंही पुत्र उत्पन्न हुआ त्योंही स्वयं पृथ्वी ने भी माया से मनुष्य रूप धारण कर राजा के अन्त:पुर में प्रवेश किया ॥ ७ ॥

प्रविश्य तत्र सा देवी नृपस्यानुमतेऽभवत् ।
धात्री तस्य द्विजश्रेष्ठाः कात्यायन्याह्वनयस्थया ।।८।।

हे द्विजश्रेष्ठों ! वहाँ प्रवेश कर वह देवी राजा की अनुमति से कात्यायनी नामक एक प्रौढ़ा के रूप में उसकी धाय बन गयी ॥ ८ ॥

यावत् षोडशवर्षाणि तस्य बालस्य भावीनि ।
तावत् स्वयं पालयन्ती ग्राहयामास संनयम् ।।९।।

जब तक उस बालक की सोलह वर्ष की अवस्था नहीं हो गयी तब तक स्वयं उसका पालन करती हुयी वे संयम-उचित, नीतिपूर्ण व्यवहार ग्रहण कराती (सिखाती) रहीं ॥ ९ ॥

स वर्धमानोऽनुदिनं नरकः पृथिवीसुतः ।
अत्यक्रामत् सुतान् सर्वान् जनकस्य महात्मनः ।।१०।।

वह पृथ्वी का बेटा नरक, दिनोंदिन विकास करता हुआ महात्मा जनक के सभी पुत्रों से आगे निकल गया ॥ १० ॥

शरीरेणाथ वीर्येण रूपेण बलवत्तया ।
धनुषा गदया वीरो ह्यत्यक्रामन् नृपात्मजान् ।।११।।

क्योंकि शरीर से, पराक्रम से, रूप से, बल से, धनुषविद्या तथा गदा चलाने की कला से उसने राजकुमारों को पीछे छोड़ दिया था ॥ ११ ॥

स शास्त्रवादकुशलो धनुर्वेदे च कोविदः ।
वर्षैः षोडशभिर्भूतो वीरैरन्यैर्दुरासदः ।।१२।।

वह शास्त्रार्थ में कुशल तथा धनुर्वेद में प्रवीण था । सोलह वर्ष की अवस्था में ही वह अन्य वीरों के लिए दुर्धर्ष (अजेय) हो गया ॥ १२ ।

विदेहाधिपतिर्दृष्ट्वा महाबलपराक्रमम् ।
ततो न्यून्यान् स्वपुत्रांश्च नातिहृष्टमनाभवत् ।।१३।।

विदेह के स्वामी जनक, उसके महान् बल और पराक्रम तथा अपने पुत्रों को उससे हीन देखकर बहुत प्रसन्न नहीं हुये ॥ १३ ॥

निरस्यासौ च मत्पुत्रान् मम राज्यं ग्रहीष्यति ।
काले प्राप्ते महावीरो मतिस्तस्याभवत् पुरा ।।१४।।

प्राचीनकाल में उस राजा की यह बुद्धि हो गयी कि समय आने पर यह महान् वीर नरक मेरे पुत्रों को हराकर, मेरा राज्य ग्रहण कर लेगा ।। १४ ।।

अन्तःपुरे यदा पुत्रान् सर्वान् रमयते नृपः ।
तदा तु नरकं वीक्ष्य हर्षं प्राप्नोति नाधिकम् ।।१५।।

अन्त:पुर में जब राजा सभी पुत्रों के साथ रमण (क्रीड़ा) करते रहते तो वे नरक को देखकर बहुत प्रसन्न नहीं होते थे ।। १५ ।।

तस्य तद्बुबुधे देवी नृपस्याथ वसुन्धरा ।
महिषी विस्मयं चक्रे तस्मिन् भावे तु भूभृतः ।।१६।।

पृथ्वी देवी ने उन राजा जनक की उस बुद्धि को जान लिया किन्तु राजा के उसके प्रति बदले हुए भाव को देखकर महारानी को आश्चर्य हुआ ।। १६ ।।

अथैकदा महादेवी जनकस्य महात्मनः ।
पप्रच्छ नृपतिश्रेष्ठं विदेहाधिपतिं पतिम् ।।१७।।

एक बार महादेवी (महारानी) ने विदेह के अधिपति, राजाओं में श्रेष्ठ, अपने पतिदेव, महान् आत्माओं वाले राजा जनक से पूछा— ।। १७ ।।

।। महादेव्युवाच ।।

नाथ पृच्छामि ते किञ्चिद्रहस्यं यदि नो तव ।
तदा मां तद्वदस्व त्वं कृपा चेद्विद्यते मयि ।।१८।।

महादेवी बोलीं– हे नाथ ! मैं आपसे कुछ पूछती हूँ । यदि आपके लिए कोई रहस्य की बात न हो और यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा हो तब उसे आप मुझसे कहिये ।। १८ ।।

यदैव तनयाः सर्वे विहरन्ति पुरस्तव ।
तदैव नरकं दृष्ट्वा विशीर्ण इव लक्ष्यसे ।।१९।।

जब सभी बच्चे आपके सामने विहार करते रहते हैं उस समय आप नरक को देखकर दु:खी दिखायी देते हैं ।। १९ ।।

तन्मे रात्रिन्दिवं वाढं विस्मयः प्रतिवर्धते ।
संशयश्च भयं चैव न जहाति च मां सदा ।।२०।।

वह प्रसङ्ग रात-दिन बहुत अधिक आश्चर्य को बढ़ाता है । सदैव मुझे संशय और भय भी नहीं छोड़ते ।। २० ।।

रूपवान् वीर्यवानेष नये च विनये तथा ।
कुशलः प्रतिबुद्धश्च पुत्रस्तव महाबलः ।।२१।।

स सभाजयते कस्मात् पुत्रमन्यैर्दुरासदम् ।
तदहं ज्ञातुमिच्छामि यदि तथ्यं वदस्व मे ।।२२।।

यह रूपवान्, पराक्रमी, नीति एवं नम्रता में कुशल, विशेष बुद्धिमान्, महाबली अन्यों द्वारा न जीते जाने योग्य आपका पुत्र (नरक) आपको क्यों नहीं अच्छा लगता ? उसे मैं जानना चाहती हूँ, यदि उचित हो तो मुझसे कहिये ॥ २१-२२ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रियायाः पृथिवीपतिः ।
तूष्णीं भूत्वा क्षणं देवीमिदं वचनमब्रवीत् ।।२३।।

मार्कण्डेय बोले– उस प्रिया की इस बात को सुनकर, क्षणभर चुप रहकर राजा, रानी से ये वाक्य बोले— ॥ २३ ॥

।। राजोवाच ।।

कथयिष्ये प्रिये तत्त्वं यत् पृष्टोऽहं त्वयाधुना ।
मासत्रये व्यतीते तु समयं प्रतिपालय ।।२४।।

राजा बोले– हे प्रिये ! जो तुम्हारे द्वारा इस समय मुझसे पूछा गया है उसे मैं तुमसे तीन महीने बीतने के बाद कहूँगा । समय की प्रतीक्षा करो ॥ २४ ॥

निगूढः कश्चिदत्रास्ति देवस्य समयो मम ।
तेनाधुना न किञ्चित्ते कथयिष्यामि तद्रहः ।।२५।।

किसी देवता के साथ मेरा गुप्त समझौता है, इसीलिए इस समय मैं इस रहस्य के विषय में तुमसे कुछ नहीं कहूँगा ॥ २५ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

राज्ञो ह्ययं सभार्यस्य संवादोऽभवदन्तिके ।
मानुषी पृथिवी धात्री तं शुश्राव यदा तदा ।।२६।।

मार्कण्डेय बोले– पत्नी के साथ एकान्त में जब राजा का यह संवाद हो रहा था उस समय मनुष्य स्त्रीरूप में धात्री बनी, पृथ्वी ने उसे सुना ॥ २६ ॥

श्रुत्वा तयोस्तु संवादं महिषीभूपयोः क्षितिः ।
मासत्रयेण समयं दत्तं देव्यै धराभृता ।।२७।।

राजा और महारानी दोनों के वार्तालाप को तथा राजा द्वारा महारानी को दिये गये तीन महीने के समय को पृथिवी ने सुना ॥ २७ ॥

तत्काले विमनस्कं च भूपं नरकसंज्ञया ।
त्रिभिर्मासैर्व्यतीतैः स्यादस्य षोडशवत्सरः ।।२८।।

उस समय नरक के प्रति उदास राजा के, तीन माह बीत जाने पर इसके सोलह वर्ष पूर्ण हो जाएँगे ॥ २८ ॥

ततो नृपो महिष्यास्तु कथयिष्यति तद्रहः ।
ततो मम रहस्यं तु विदितं सम्भविष्यति ।।२९।।

तब राजा महारानी से उस रहस्य को कहेंगे, उस समय वह रहस्य मुझे भी ज्ञात हो जायगा ॥ २९ ॥

चिन्तयित्वेति सा देवी जगद्धात्री सुतं प्रति ।
निश्चित्येदं तदा कृत्यं प्राप्तकालमचेष्टत ।।३०।।

जगत् को धारण करने वाली उस पृथ्वी देवी ने अपने पुत्र के प्रति इस प्रकार विचार कर, अनायास उपस्थित अवसर को पाकर अपने कर्त्तव्य का, इस प्रकार निश्चय किया ॥ ३० ॥

ततो रहसि भूपं तं समासाद्य सगौतमम् ।
इदमाह जगद्धात्री स्वपुत्रार्थे यशस्विनी ।।३१।।

तब एकान्त में गौतम ऋषि के सहित उस राजा जनक के पास पहुँचकर यशस्विनी पृथ्वी देवी ने अपने पुत्र के लिये यह कहा ॥ ३१ ॥

।। पृथिव्युवाच ।।

यो मया समयो दत्तः पालितः स त्वयानघ ।
पुत्रश्च पालितो मेऽयं नरको विनयैर्युतः ।।३२।।

पृथ्वी बोली– हे निष्पाप ! मेरे द्वारा जो वचन दिया गया था, उसका आपके द्वारा पालन किया गया है । मेरे इस नरक नामक विनम्र पुत्र का आपने पालन किया है ॥ ३२ ॥

सम्प्राप्तयौवनः पुत्रो योजितश्च त्वया नयैः ।
तव प्रसादात् पुत्रो मे सुखी वृद्धो गृहे तव ।।३३।।

युवाअवस्था को प्राप्त यह पुत्र आपके द्वारा नीति में नियोजित किया गया। आपकी कृपा से ही मेरा यह पुत्र, आपके घर में सुख से बड़ा हुआ है ॥ ३३ ॥

तमहं पूर्वसमयान्नयिष्यामि स्वमात्मजम् ।
अनुजानीहि भयं ते नरकस्य गतिं प्रति ।।३४।।

पहले के वादे के अनुसार मैं अपने पुत्र को ले जाऊँगी । मैं नरक के व्यवहार के प्रति तुम्हारे भय को जानती हूँ ॥ ३४ ॥

रक्षितव्यश्च भवता समयः सपुरोधसा ।
छन्नमेव नयिष्यामि भूपते मा कृथा व्यथाम् ।।३५।।

पुरोहित के सहित आपके द्वारा वचन की रक्षा हो । इसलिए मैं गुप्तरूप से उसे ले जाऊँगी । हे राजन् ! इस सम्बन्ध में आप कष्ट न करें ॥ ३५ ॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

इत्युक्त्वा जगतां धात्री विदेहाधिपतिं नृपम् ।
तत्रैव पश्यता तेषामन्तर्धानमुपागमत् ॥३६॥

मार्कण्डेय बोले– विदेह के अधिपति राजाजनक से ऐसा कहकर जगत का पालन करने वाली पृथ्वी देवी, उनके देखते ही देखते वहीं अन्तर्धान हो गयीं ॥ ३६ ॥

नृपोऽपि तस्यास्तद्वाक्यमगींकृत्य क्षितिं प्रति ।
तस्याः प्रत्यक्षतः स्थानं जगाम सपुरोहितः ॥३७॥

राजा भी पृथ्वी द्वारा अपने प्रति कहे वाक्यों को स्वीकार कर, जहाँ वे प्रत्यक्ष (प्रकट) हुई थीं, उस स्थान पर पुरोहित के साथ गये ॥ ३७ ॥

अथैकदा धरा देवी मायामानुषरूपिणी ।
उपांशु नरकं प्राह धात्री तस्य महात्मनः ॥३८॥
त्वया समं महाबाहो गङ्गां यातुं मनो मम ।
यदि त्वं यासि यास्यामि रथेनाद्यैव पुत्रक ॥३९॥

इसके बाद एक बार माया से मनुष्य का रूप धारण कर, पृथ्वी देवी ने उस महान् आत्मा वाले की धाय के रूप में गुप्त रूप से नरक से कहा कि हे महान् भुजाओं वाले, मेरी तुम्हारे साथ गङ्गा-स्नान के लिए जाने की इच्छा हो रही है। हे बेटे ! यदि तुम चलो तो मैं आज ही तुम्हारे साथ रथ से चलूँगी ॥ ३८-३९ ॥

॥ नरक उवाच ॥

न पितुर्वचनं यास्ये विना मातस्त्वया समम् ।
अनुज्ञाप्य रथेनाहं यास्ये गङ्गां त्वया समम् ॥४०॥

नरक बोला– हे माता ! मैं पिता की आज्ञा के बिना तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा। उनकी आज्ञा प्राप्त कर ही मैं गङ्गा-स्नान के लिए तुम्हारे साथ जाऊँगा ॥ ४० ॥

॥ धात्र्युवाच ॥

न ते पितायं जनको यः सर्वजगतां प्रभुः ।
स ते पिता तं गङ्गायां पश्य गत्वा मया सह ॥४१॥

धाय बोली– ये राजा जनक, तुम्हारे पिता नहीं है। तुम्हारे पिता तो समस्त जगत के जो स्वामी हैं, वे हैं। मेरे साथ गङ्गा तट पर चल कर उनको देखो ॥ ४१ ॥

अयं पिता पालकस्ते न राज्यं सम्प्रदास्यति ।
यस्ते वर्धयिता तात तमासादय पुत्रक ॥४२॥

हे पुत्र.! जिन्हें तुम पिता समझ रहे हो, ये तुम्हारे पालनकर्त्ता हैं। ये तुम्हें राज्य नहीं प्रदान करेंगे। हे तात ! जो तुम्हारे वृद्धि में सहायता देने वाले हैं, उन अपने वास्तविक पिता को तुम प्राप्त करो ॥ ४२ ॥

अत्र यद्यद्रहस्यं तद् गङ्गायामेव पुत्रक ।
कथयिष्याम्यहं सर्वं रहोभङ्गस्ततोऽन्यथा ।।४३।।

हे पुत्रक ! इस सम्बन्ध में जो मेरा रहस्य है, उसे मैं गङ्गातट पर ही तुमसे कहूँगी । अन्यथा रहस्यभेदन हो जायेगा ॥ ४३ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

जातसम्प्रत्ययो धात्र्या वचसा नरकस्तथा ।
विहाय यानं छन्देन पद्भ्यां गङ्गां ययौ तदा ।।४४।।

मार्कण्डेय बोले– तब धाय के वचन से नरक में विश्वास उत्पन्न हो जाने पर वह, अपनी इच्छा से वाहन को छोड़कर, पैदल ही गङ्गातट पर गया ॥ ४४ ॥

अथ गङ्गां समासाद्य संस्नाप्य विधिवत् सुतम् ।
आत्मानं दर्शयामास पृथिवी स्वसुताय वै ।।४५।।

इसके बाद गङ्गातट पर पहुँचकर तथा अपने पुत्र को विधिपूर्वक स्नान कराकर पृथिवी ने उसे अपना यथार्थ रूप दिखाया ॥ ४५ ॥

मायामानुषमूर्तिं तां विहाय जगतां प्रसूः ।
नीलोत्पलदलश्यामं सर्वलक्षणसंयुतम् ।।४६।।
सर्वाङ्गसुन्दरं चारु नानालङ्कारभूषितम् ।
पुत्राय दर्शयामास नरकाय वसुन्धरा ।।४७।।

तब जगत को उत्पन्न करने वाली पृथ्वी ने अपने उस मायामय मनुष्यरूप को छोड़कर, नीलकमल की पङ्खुड़ियों के समान श्याम, सभी अङ्गों से सुन्दर, सभी लक्षणों से युक्त, अनेक आभूषणों से सुशोभित, अपने सुन्दर वास्तविक रूप को स्वकीय नरक नामक पुत्र को दिखाया ॥ ४६-४७ ॥

कथामेताञ्च पूर्वस्मिन्नुद्भूतां पृथिवी तदा ।
कथयामास पुत्राय प्रतीतिर्जायते यथा ।।४८।।

तब पृथ्वी ने इसके पहले ही घटी हुई समस्त कथा को उस पुत्र से कहा, जिससे परस्पर विश्वास उत्पन्न हो ॥ ४८ ॥

।। पृथिव्युवाच ।।

मम गर्भे यथा पुत्र वर्धसे त्वं दिने दिने ।
ब्रह्मादयस्तदा देवा आलोक्य स्वयमेव ते ।।४९।।

पृथिवी बोली– हे पुत्र ! मेरे गर्भ में जब तुम दिनों दिन बढ़ रहे थे, तब ब्रह्मादि देवताओं ने स्वयं तुम्हें देखा ॥ ४९ ॥

मलिनीक्षितिसंजातः पुत्रो विष्णोर्महात्मनः ।
आसुरं भावमास्थाय सर्वानस्मान् हनिष्यति ।।५०।।

इति चिन्तापरा देवाः कुमन्त्रं चक्रिरे तदा ।
अयं नोत्पद्यतां गर्भाद्गर्भे तिष्ठत्वयं सदा ।।५१।।

तब रजस्वला अवस्था में पृथिवी से उत्पन्न, महात्माविष्णु का यह पुत्र, आसुरी भाव को प्राप्त कर हम सबको मार डालेगा। इस चिन्ता से युक्त हो देवताओं ने यह (षडयन्त्र) कुविचार किया कि यह गर्भ से उत्पन्न न हो तथा सदैव गर्भ में ही रहे ॥ ५०-५१ ॥

ततो मम भवान् गर्भे सुबहूनि युगान्यथ ।
अवसद्दुःखवान् पुत्र देवानां च कुमन्त्रतः ।।५२।।

तब हे पुत्र देवताओं के उस कुविचार या षडयन्त्र के कारण तुम बहुत युगों तक दुःख उठाते हुये मेरे गर्भ में ही रहे ॥ ५२ ॥

मृतकल्पाभवमहं भवतो धारणात् सुत ।
ततोऽहं शरणं याता भगवन्तं सनातनम् ।।५३।।

तब मैं तुम्हारे धारण करने के कारण मृतकतुल्य हो गयी। उस समय मैं सनातन भगवान् विष्णु के शरण में गयी ॥ ५३ ॥

नारायणस्य वाक्यात् तु भवानुत्पन्नवांस्ततः ।
इति सत्यं मम वचः पुत्र जानीहि निश्चितम् ।।५४।।

तब तुम भगवान् नारायण के वचनानुसार उत्पन्न हुए। हे पुत्र ! मेरे इस वचन को तुम सत्य और निश्चित समझो ॥ ५४ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ यावन्नपुत्रस्य विस्मयः समपद्यत ।
तावदेव स्वयं देवी प्रोचे पुत्रमिदं वचः ।।५५।।
यथा विदेहराजस्य यज्ञभूमावसूयत ।
विदेहराजेन समं यादृशः समयोऽभवत् ।।५६।।
यथा मानुषरूपेण धात्री सा समपद्यत ।
तत् सर्वं कथयामास नरकाय महात्मने ।।५७।।

मार्कण्डेय बोले– इसे सुनकर भी उस नरक नामक पुत्र को जब आश्चर्य नहीं हुआ, तब स्वयं पृथ्वी देवी ने जिस प्रकार वह विदेहराज जनक के यज्ञभूमि से उत्पन्न हुआ तथा इस सम्बन्ध में पृथ्वी और जनक के बीच जो वादा हुआ था और जिस प्रकार मनुष्यरूप धारण कर वह उसकी धात्री बनी थी, अपने पुत्र महात्मा नरक से वह सब कह दिया ॥ ५५-५७ ॥

अथ तां पृथिवीं प्राह नरकः पुनरेव हि ।
पृथिव्याः वचनं श्रुत्वा स्वल्पसंशयसंयुतः ।।५८।।

इसके बाद पृथ्वी ने पुनः जब नरक से इस प्रकार की बातें कहीं तो उनके वचनों को सुनकर, थोड़ा संशययुक्त हो, नरक ने कहा ॥ ५८ ॥

।। नरक उवाच ।।

यद्येवं मे पिताविष्णुर्माता त्वं पृथिवी शुभे ।
आगच्छतु जगन्नाथो ममैवाभ्युपपत्तये ।।५९।।

नरक बोला– यदि इस प्रकार तुम्हारे कथनानुसार मेरे पिता भगवान् विष्णु हैं तथा माता तुम पृथिवी देवी हो तो मुझे विश्वास दिलाने के लिए स्वयं भगवान् विष्णु ही पधारें ॥ ५९ ॥

स एव सर्वलोकेशो यदि मां भाषतेऽच्युतः ।
पिताहं ते त्वियं माता श्रद्दधे तदहं शुभे ।।६०।।

हे शुभस्वरूपा पृथ्वी ! यदि स्वयं वह लोक के स्वामी भगवान् विष्णु मुझसे कहें कि मैं तुम्हारा पिता तथा ये तुम्हारी माता हैं तब मैं तुम्हारे वचन का विश्वास करूँ ॥ ६० ॥

त्वया मानुषरूपेण धात्र्याहं प्रतिपालितः ।
तद्रूपं द्रष्टुमिच्छामि यदि ते रूपमीदृशम् ।।६१।।

तुम्हारे द्वारा धात्री के मनुष्यरूप में मेरा पालन किया गया है। यदि वह तुम्हारा रूप है तो मैं तुम्हारे उस रूप को देखना चाहता हूँ ॥ ६१ ॥

।। पृथिव्युवाच ।।

अहं ते जननी तात मया ज्ञातोऽसि पुत्रक ।
पृथिव्यहं जगद्धात्री मद्रूपं मृन्मयन्त्विदम् ।।६२।।

पृथ्वी बोली–हे पुत्र ! मैं जानती हूँ कि मैं तुम्हारी माता हूँ। मैं जगत का पालन करने वाली पृथ्वी देवी हूँ। मेरा यह रूप जो सभी देखते हैं वह मिट्टी का बना हुआ है ॥ ६२ ॥

पिता तव महाबाहो प्रभुर्नारायणोऽव्ययः ।
अच्युतो जगतां धाता महात्मा शूकरात्मधृक् ।।६३।।

हे महाबाहु ! तुम्हारे पिता अविनाशी, अच्युत, जगत के पालनकर्त्ता भगवान् नारायण हैं, जिन्होंने वाराहरूप धारण किया था ॥ ६३ ॥

तेनाहितस्त्वं मद्गर्भे सुचिरं त्वं पुरावसः ।
सम्प्राप्ते समये जातः पालितश्चेह भूभृता ।।६४।।

प्राचीनकाल में उनके द्वारा ही तुम्हारा मेरे गर्भ में आधान किया गया तथा तुमने मेरे गर्भ में निवास किया। समय आने पर तुम्हारा जन्म हुआ एवं इन राजा जनक द्वारा तुम पाले गये हो ॥ ६४ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा हर्षशोकाकुलस्तदा ।
नरकः पृथिवीदेवीमिदमाह धनुर्धरः ।।६५।।

मार्कण्डेय बोले–तब धनुर्धारी नरक, उनके उपर्युक्त बचनों को सुनकर हर्ष और शोक दोनों से ही भरकर, पृथ्वी देवी से इस प्रकार बोला– ॥ ६५ ॥

।। नरक उवाच ।।

न माता विदिता पूर्वं माताहमिति भाससे ।
विष्णुः पितेति च वचो न पिता विदितो मम ।।६६।।

नरक बोला– मैं पहले से किसी माता को नहीं जानता और तुम, माता मैं हूँ, ऐसा कह रही हो। इसी प्रकार तुम्हारे पिता विष्णु हैं, यह कह रही हो जबकि मैं किसी पिता को भी नहीं जानता ॥ ६६ ॥

जानामि पितरं चाहं विदेहाधिपतिं नृपम् ।
तस्य भार्य्यां सुमत्याख्यामहं जानामि मातरम् ।।६७।।

मैं तो विदेहराजा जनक को ही अपना पिता तथा सुमती नाम वाली उनकी पत्नी को ही अपनी माता जानता हूँ ॥ ६७ ॥

भ्रातरस्तत्सुताः सर्वे सीता मे भगिनी शुभा ।
सुमतिर्मम मातेति लोको जानाति सन्ततम् ।।६८।।

हे शुभे ! उनके सभी पुत्र मेरे भाई तथा सीता मेरी बहिन है। महारानी सुमती मेरी माता हैं। यही निरन्तर संसार जानता है ॥ ६८ ॥

कात्यायनी च धात्री मे याधुनैव कृता त्वया ।। ६९।।
एतत् सर्वं त्वया मिथ्या शंशितं मम साम्प्रतम् ।
यथा तवाहं तनयः सत्यमाख्याहि तन्मम ।।७०।।

अब तक जो तुमने प्रौढ़ा स्त्री का रूप धारण कर मेरी धाय का कार्य किया। वह सब तुमने मुझे झूठा दर्शाया है। अतः तुम जिस प्रकार से मेरी माता हो उसे सत्य-सत्य बताओ ॥ ६९-७० ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

पुत्रस्य वचनं चेति श्रुत्वा सर्वसहा तदा ।
सर्वं तत् पूर्ववृत्तान्तं तनयाय न्यवेदयत् ।।७१।।
यथा मलिन्या सम्भोगो वराहस्याभवत् पुरा ।
यथा गर्भे धृतो देवैर्येन वा कारणेन सः ।।७२।।
यथा च गर्भदुःखार्ता माधवं शरणं गता ।
यथा तेन प्रदत्तश्च समयो जनकं प्रति ।।७३।।

मार्कण्डेय बोले– तब पुत्र के इस वचन को सुनकर सब कुछ सहने वाली पृथ्वी ने जिस प्रकार प्राचीनकाल में वाराह के साथ उसका रजस्वलावस्था में संभोग हुआ था, देवताओं के द्वारा जिस प्रकार से उनका गर्भधारण (रोका) गया था, जिस प्रकार वह दुःखी होकर भगवान् माधव (विष्णु) के शरण में गयी थी, जिस प्रकार से उसने जनक को वचन दिया था, पहले का वह समस्त वृतान्त अपने पुत्र से निवेदित कर दिया ॥ ७१-७३ ॥

।। ऋषयः ऊचुः ।।

किमर्थं समयो दत्तो विष्णुना प्रभविष्णुना ।
निहते रावणे वीरे रामेण सुमहात्मना ।।७४।।
भविष्यति सुतस्ते वै तत्र नः संशयो महान् ।
एतान् त्वं संशयान् छिन्धि गुरो शास्तासि नः सदा ।।७५।।

ऋषिगण बोले– प्रभविष्णु, विष्णु द्वारा यह वचन क्यों दिया गया कि महात्मा राम द्वारा रावण के मारे जाने पर ही तुम्हारा पुत्र उत्पन्न होगा ? इस विषय में हमें महान् संशय है । हे गुरु ! आप सदैव हमारे उपदेश देने वाले हैं अतः इन संशयों को आप दूर कीजिए ॥ ७४-७५ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

भारार्ता रावणादीनां पृथिवी मांसभोगिनाम् ।
अधोगता योजनानि पञ्च वै द्विजसत्तमाः ।।७६।।

*मार्कण्डेय बोले–*हे द्विजसत्तमों ! रावण आदि मांसाहारियों के भार से पीड़ित हो पृथिवी पाँच योजन (४० मील) नीचे चली गयी ॥ ७६ ॥

अयं वराहवीर्येण जातो गर्भे क्षितेः पुनः ।
असावपि महाराजो दशग्रीवो यथाभवत् ।।७७।।
अधो यास्यति भारार्ता सातीव पृथिवीत्विति ।
समयो दत्तवान् विष्णू रावणे निहते सति ।
धरायै भारविहतिव्याजेन द्विजसत्तमाः ।।७८।।

हे द्विजसत्तमों ! यह वाराह के वीर्य से तथा पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न होने वाला पुत्र भी महाराज दशानन (रावण) की ही भाँति होगा । तब यह पृथ्वी भार से आक्रान्त हो, बहुत अधिक नीचे चली जायेगी । यह विचार कर विष्णु और प्रभविष्णु द्वारा रावण के मारे जाने के बाद का समय दिया गया । पृथ्वी का भार कम करने के निमित्त ही यह वचन दिया गया था ॥ ७७-७८ ॥

त्वत्पूर्वरूपं दृष्ट्वा वै वचनाच्च जगद्गुरोः ।
जातश्रद्धो महाभागे स्थास्यामि समये तव ।।७९।।

पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा पृथिवी प्रथमं तदा ।
मायामानुषरूपं तत् प्रतिजग्राह तत्पुरः ।।८०।।

हे महाभागवाली ! "तुम्हारे पूर्व पहले के रूप को देखकर तथा जगद्गुरु भगवान विष्णु के वचन के आधार पर श्रद्धा उत्पन्न हो जाने पर ही मैं तुम्हारे समझौते का निर्वाह करूँगा ।" पुत्र की उपर्युक्त बात को सुनकर पृथिवी ने उसके सामने ही अपने पहले मायामय मनुष्यरूप को ग्रहण कर लिया ।। ७९-८० ।।

यथा कात्यायनीरूपं येन रूपेण पालितः ।
नरकः सा तु तद्गृह्य तत्याज पृथिवीतनुम् ।।८१।।

जिस कात्यायनी (प्रौढ़ा स्त्री) के रूप को धारण कर उसने नरक का पालन किया था, उसी को धारण करके उसने अपने पृथ्वी शरीर को छोड़ दिया ।। ८१ ।।

अथ दृष्टैव नरको धात्रीं कात्यायनीं तदा ।
पप्रच्छ पूर्ववृत्तान्तं यद्वृत्तं नृपमन्दिरे ।।८२।।

इसके बाद तब कात्यायनीरूप वाली धाय को देखकर नरक ने उससे, राजा के भवन में जो घटनायें घटी थीं, उनका वृत्तान्त पूछा ।। ८२ ।।

सा तथा कथयामास यथा सम्प्रति पालितः ।
यद्वृत्तं पूर्वतो गेहे नृपस्य जनकस्य तु ।।८३।।

उसने वैसे ही वृत्तान्त सुनाया जैसा उसके द्वारा इस समय राजा जनक के घर में पहले नरक को पाला गया ।। ८३ ।।

जातसम्प्रत्ययस्तत्र नरकः समपद्यत ।
पृथिवी च पुनर्देवीरूपं स्वं जगृहे तदा ।।८४।।

उस समय जब नरक को विश्वास हो जाने के कारण वह सन्तुष्ट हो गया तो पृथिवी ने पुनः अपने यथार्थरूप को धारण कर लिया ।। ८४ ।।

अथ सस्मार पृथिवी जगन्नाथं हरिं प्रभुम् ।
समये पूर्वविहिते प्रणम्य शिरसा मुहुः ।।८५।।

इसके बाद पृथ्वी ने अपने पहले के समझौते के अनुसार, जगत् के स्वामी विष्णु भगवान् को मस्तक झुकाकर बारम्बार प्रणाम करते हुए स्मरण किया ।। ८५ ।।

स्मृतमात्रस्तदा क्षित्या माधवो गरुड़ध्वजः ।
प्रसन्नो जगतां नाथः प्रत्यक्षत्वं गतस्तदा ।।८६।।

तब पृथिवी द्वारा स्मरण मात्र करते ही गरुड़ध्वज वाले, जगत् के स्वामी, भगवान् माधव (विष्णु) वहाँ ही प्रकट हो गये ।। ८६ ।।

तं दृष्ट्वा पृथिवी देवी देवं गरुड़वाहनम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं शङ्खचक्रगदाधरम् ।।८७।।

उस समय पृथ्वी देवी ने गरुड़ पर सवार, देव (भगवान विष्णु) को देखा— जो नीलेकमल की पङ्खुड़ियों के समान श्यामवर्ण के थे तथा शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये हुए थे ।। ८७ ।।

पीताम्बरं जगन्नाथं श्रीवत्सोरस्कमव्ययम् ।
प्रणनाम महाभक्त्या पस्पर्श शिरसा महीम् ।।८८।।

शिर से पृथ्वी का स्पर्श करते हुए अत्यन्त भक्तिपूर्वक पृथ्वी देवी ने उन पीताम्बरधारी, जगत् के स्वामी, हृदय पर श्रीवत्सचिन्हधारी, अविनाशी, भगवान् विष्णु को प्रणाम किया ।। ८८ ।।

परमेश जगन्नाथ जगत् कारणकारण ।
प्रसीदेति वचश्चापि तदा प्रोचे जगत्प्रसूः ।।८९।।

उस समय जगत् को उत्पन्न करने वाली पृथ्वी देवी ने हे परमेश्वर ! हे जगत् के स्वामी ! हे जगत् के कारण के भी कारण ! आप प्रसन्न होइये, ऐसा वचन भी कहा ।। ८९ ।।

नरकस्तु हरिं दृष्ट्वा निमील्य नयनद्वयम् ।
तत्तेजसा चाभिभूतस्तदा भूमावुपाविशत् ।।९०।।

नरक ने भी दोनों आँखें झपका-झपका कर भगवान् विष्णु को देखा तथा उसके तेज से प्रभावित हो भूमि पर ही बैठ गया ।। ९० ।।

उपविष्टे तदा देवी तनये नरकाह्वये ।
प्रसादयामास तदा पुत्रार्थे वरवर्णिनी ।।९१।।

तब नरक नाम के अपने उस पुत्र के बैठ जाने पर उत्तम रूप-रङ्ग वाली उस पृथ्वी देवी ने भगवान विष्णु को प्रसन्न किया ।। ९१ ।।

प्रसाद्यमानो धरया हरिर्नारायणोऽव्ययः ।
शङ्खाग्रेण तदा पुत्रं पस्पर्श नरकाह्वयम् ।।९२।।

तब पृथ्वी देवी द्वारा प्रसन्न किये जाने पर अविनाशी नारायण विष्णु ने शंख के अगले भाग से नरक नामक पुत्र का स्पर्श किया ।। ९२ ।।

स्पृष्टमात्रोऽथ हरिणा नरकोऽभूत् सुदर्शनः ।
दृष्टश्चोत्साहवांश्चैव बलवान् समपद्यत ।।९३।।

श्री विष्णु द्वारा स्पर्श किये जाते ही वह नरक, अत्यन्त दर्शनीय हो गया तथा उनके देखने मात्र से ही वह उत्साहवान् एवं बलवान् हो गया ।। ९३ ।।

तत उत्थाय नरको हरिं नारायणं प्रभुम् ।
भक्त्या प्रणम्य गोविन्दं साष्टाङ्गं च मुहुर्मुहुः ।।९४।।

तब नरक ने उठकर भगवान्, नारायण ज़ो हरि और गोविन्द भी हैं, उन्हें भक्तिपूर्वक बार-बार प्रणाम किया ॥ ९४ ॥

ननाम पृथिवीं वीरो जातसम्प्रत्ययस्तदा ।
प्रणम्य च महाभागां भक्त्या परमया युतः ।
प्राञ्जलिः पुरतस्तस्थौ नोक्त्वा किञ्चन वै भिया ।।९५।।

तब विश्वास हो जाने के पश्चात् उस वीर ने परमभक्तियुक्त हो उन महाभागशालिनी पृथ्वी देवी को प्रणाम करते हुए नमस्कार किया तथा अञ्जलि बाँध सामने खड़ा रहा और भयवश कुछ नहीं बोला ॥ ९५ ॥

ततस्तदर्थे पृथिवी माधवं समयाचत ।
प्रसीद देवदेवेश समयं प्रतिपालय ।।९६।।
त्वयाहं तनयो दत्तो मम सर्वं जगत्पते ।
एतदर्थे प्रतिज्ञातं यद्दत्तं प्रतिपालय ।।९७।।

तब पृथ्वी देवी ने उस बालक के निमित्त माधव विष्णु भगवान् से याचना किया कि हे देवताओं के भी देवेश ! आप प्रसन्न होइये तथा पूर्व निर्धारित वचन का पालन कीजिये। हे जगत्पति ! आपके द्वारा मुझे यह पुत्र प्रदान किया था। यह मेरा सर्वस्व है। इसके लिए आपने प्रतिज्ञापूर्वक जो वचन दिया था, अब उसका पालन कीजिए ॥ ९६-९७ ॥

।। भगवानुवाच ।।

भवती यत्सुपुत्रार्थे मामयाचत पुरा मया ।
तत् सर्वं तव दत्तं वै राज्यं च त्वत्सुते ।।९८।।

श्रीभगवान् बोले–आपने अपने पुत्र के निमित्त जो कुछ मुझसे माँगा था वह सब पहले ही मेरे द्वारा आपको तथा आपके पुत्र के लिए राज्य के रूप में प्रदान किया गया है ॥ ९८ ॥

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुरादाय नरकाह्वयम् ।
सार्द्धं पृथिव्या गङ्गायां ममज्ज जगतां प्रभुः ।।९९।।

ऐसा कहकर जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु नरक नामक उस पुत्र को लेकर पृथ्वी के सहित गङ्गानदी में प्रवेश कर गये ॥ ९९ ॥

निमज्य क्षणमात्रेण प्राग्ज्योतिषपुरं गतः ।
मध्यगं कामरूपस्य कामाख्या यत्र नायिका ।।१००।।

वे जल में प्रवेश करके क्षण भर में प्राग्ज्योतिषपुर को चले गये जो कामरूप प्रदेश के मध्यभाग में स्थित है तथा जहाँ की स्वामिनी कामाख्या देवी हैं ॥ १०० ॥

स च देशः स्वराज्यार्थे पूर्वं गुप्तश्च शम्भुना ।
किरातैर्बलिभिः क्रूरैरज्ञैरपि च वासितः ।।१०१।।

वह स्थान अपने राज्य (अधिकार क्षेत्र) के रूप में स्वयं शिव द्वारा गुप्त रूप से सुरक्षित रखा गया था तथा उसे बलवान्, क्रूर तथा मूर्ख किरातों से बसाया गया था ॥ १०१ ॥

रुक्मस्तम्भनिभांस्तत्र किरातान् ज्ञानवर्जितान् ।
अनर्थमुण्डितान् मद्यमांसाशनैकतत्परान् ।
ददर्श विष्णुः कुपितान् विष्णुं दृष्ट्वा द्विजर्षभाः ।।१०२।।

हे द्विजसत्तमों ! स्वर्ण के स्तम्भों के समान पीलीआभा वाले, ज्ञान से वर्जित तथा व्यर्थ निष्प्रयोजन केश मुड़ाये हुए, मद्य एवं मांस भोजन में तत्पर किरात, विष्णु को वहाँ आया हुआ देखकर कुपित हुए, उन किरातों को भगवान् विष्णु ने देखा ॥ १०२ ॥

तेषामधिपतिस्तत्र घटको नाम वीर्यवान् ।
रुक्मस्तम्भनिभस्तत्रः प्रदीप्त इव पावकः ।।१०३।।

वहाँ उनका स्वामी एक पराक्रमी स्वर्णस्तम्भ की आभा के समान पीताभ तथा जलती हुई अग्नि की भाँति शोभायमान घटक नाम का किरात था ॥ १०३ ॥

स क्रोधाच्चतुरङ्गेन बलेन महता युतः ।
आससाद जगन्नाथं नरकं च महाबलम् ।।१०४।।

वह महती चतुरंगिणी सेना से युक्त होकर, क्रोधपूर्वक जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु तथा महान् बलशाली नरक के समीप पहुँचा ॥ १०४ ॥

आसाद्य शरवर्षेण ववर्ष प्रभुमव्ययम् ।
किरातैः सहितो राजा घटकाख्यः किरातराट् ।।१०५।।

अविनाशी भगवान् विष्णु के पास किरातों के सहित पहुँचकर उस किरातराज, राजाघटक ने उन पर बाणों की वर्षा की ॥ १०५ ॥

माधवोपि तदा पुत्रं नरकं वीर्यवत्तरम् ।
प्रेसयामास युद्धाय किरातनृपतेस्तदा ।।१०६।।

तब विष्णु ने भी उससे श्रेष्ठ बलशाली, अपने पुत्र, नरक को उस किरातराज से युद्ध करने के लिए भेजा ॥ १०६ ॥

नरको धनुरादाय सह तैर्बलवत्तरैः ।
युयुधे सुचिरं तत्र शस्त्रास्त्रैर्बहुधेरितैः ।।१०७।।

वहाँ नरक ने भाँति-भाँति के शस्त्रास्त्र संचालन में सक्षम उन बलवान किरातों के साथ बहुत समय तक युद्ध किया ॥ १०७ ॥

ततोऽसौ भल्लमादाय योजयित्वा धनुर्गुणैः ।
शिरः किरातराजस्य चिच्छेद नरको बली ।।१०८।।

तब उस बलशाली नरक ने भल्ल नामक बाण लेकर, उसे धनुष की डोरियों से समायोजित कर किरातराज घटक के सिर को काट दिया ॥ १०८ ॥

मुख्यान् मुख्यान् किरातांश्च बहून् सेनाधिपांस्तथा ।
जघान कुपितो वीरः केशरीव मतङ्गजान् ।।१०९।।

क्रोधित हो उस वीर ने, जिस प्रकार सिंह, हाथियों को मार डालता है, उसी प्रकार मुख्य-मुख्य किरातों तथा बहुत से उनके सेनापतियों को मार डाला।

हतेऽथ नृपतौ केचित् पलायनपरायणाः ।
किराताः केचन पुनर्नरकं शरणं गताः ।।११०।।

अपने राजा घटक के मारे जाने पर, कुछ किरात भाग गये तो कुछ नरक के शरण में पुनः लौटकर चले गये ॥ ११० ॥

निहत्य युध्यमानांस्तु संरक्ष्य शरणं गतान् ।
नरकः पितरं गत्वा प्रणम्याथ न्यवेदयत् ।।१११।।

युद्ध करने वालों को मारकर तथा शरण में गये हुओं की रक्षा कर, नरक ने अपने पिता, विष्णु के पास जाकर, उन्हें प्रणाम कर, उनसे निवेदन किया ॥ १११ ॥

।। नरक उवाच ।।

हतस्तात किरातानामधिपो घटको मया ।
सेनाधिपाश्च तस्यान्ये किमन्यत् करवाण्यहम् ।।११२।।

नरक बोला– हे तात ! मेरे हाथों किरातराज घटक तथा उसके दूसरे सेनापति मारे गये हैं अब मैं और कौन-सा अन्य कार्य करूँ ॥ ११२ ॥

।। भगवानुवाच ।।

किरातान् जहि यावत्त्वं देवीं दिक्करवासिनीम् ।
पलायमानान् विद्राव्य पालय शरणं गतान् ।।११३।।

भगवान् बोले– तुम दिक्करवासिनी देवी (शिव के अन्तर में वास करने वाली देवी) के स्थान किंवा मानसरोवर क्षेत्र में बहने वाली दिक्करवासिनी दिक्करिक नदी तक किरातों को समाप्त करो, इस अभियान में भागने वालों को भगाओ तथा शरण में आये हुओं की रक्षा करो ॥ ११३ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततः स नरको वीरः समारुह्य सितं गजम् ।
चतुर्दन्तं महाकायं किराताधिपवाहनम् ।।११४।।
ऐरावतसमं वीर्ये वेगेन गरुडोपमम् ।
किरातान् द्रावयामास यावद् दिक्करवासिनीम् ।
पितरं पुनरागत्य वचनं चेदमब्रवीत् ।।११५।।

मार्कण्डेय बोले- तब पराक्रम में ऐरावत के समान तथा वेग में गरुड़ के समान विशालशरीरधारी, किरातराज के वाहन श्वेतगजराज पर चढ़कर उस वीर नरक ने किरातों को दिक्करवासिनी तक खदेड़ दिया एवं लौटकर पिता से यह कहा— ॥ ११४-११५॥

।। नरक उवाच ।।

विद्राविताः किरातास्ते सागरान्तं समाश्रिताः ।
हतश्च घटकाख्यो हि किराताधिपतिर्महान् ।।११६।।
वेगिनं गजमारुह्य ऐरावतसमं गुणैः ।
यदन्यत् करणीयं मे तदाज्ञापय सम्प्रति ।।११७।।

नरक बोला- मैंने गुणों में ऐरावत के समान श्रेष्ठ, हाथी पर सवार हो, सागरपर्यन्त फैले हुए, उन किरातों को खदेड़ दिया है तथा घटक नामक महान किरातराज मारा गया है। अब और भी जो कुछ करने योग्य हो उसे मुझे बताइये ॥ ११६-११७ ॥

।। भगवानुवाच ।।

करतोया सदागङ्गा पूर्वभागावधिश्रया ।
यावल्ललितकान्तास्ति तावदेव पुरं तव ।।११८।।

पूर्वभाग में स्थित सदागङ्गा करतोया नाम्नी नदी ललितकान्ता ललिता नामक नदी (वर्तमान कामाख्या क्षेत्र) तक तुम्हारा यह नगर बसेगा ॥ ११८ ॥

अत्र देवी महाभागा योगनिद्रा जगत्प्रसूः ।
कामाख्यारूपमास्थाय सदा तिष्ठति शोभना ।।११९।।

यहाँ जगत् को उत्पन्न करने वाली, महान् भाग्यशालिनी, सुन्दरी, योगनिद्रा (कालिका) देवी कामाख्यारूप धारण कर सदैव विराजमान रहती हैं ॥ ११९ ॥

अत्रास्ति नदराजोऽयं लौहित्यो ब्रह्मणः सुतः ।
अत्रैव दशदिक्पालाः स्वे स्वे पीठे व्यवस्थिताः ।।१२०।।

यहाँ पर ब्रह्मा का पुत्र, यह लोहित नामक नदों का राजा है तथा यहीं दशों दिक्पाल, अपने-अपने स्थानों पर व्यवस्थित रूप से विराजमान हैं ॥ १२० ॥

अत्र स्वयं महादेवो ब्रह्मा चाहं व्यवस्थितः ।
चन्द्रः सूर्यश्च सततं वसतोऽत्र च पुत्रक ।।१२१।।

हे पुत्र ! यहीं स्वयं महादेव, ब्रह्मा और मैं विष्णु स्थित हैं तथा सूर्य एवं चन्द्रमा सदैव निवास करते हैं ॥ १२१ ॥

सर्वे क्रीडार्थमायाता रहस्यं देशमुत्तमम् ।
अत्र श्रीर्वसते भद्रा भोग्यमत्र तथा बहु ।।१२२।।

सभी यहाँ इस रहस्यमय, उत्तमक्षेत्र में क्रीड़ा हेतु आये हैं। यहाँ कल्याणमयी शोभा बसती है तथा बहुत प्रकार के भोग करने योग्य साधन सुलभ हैं॥ १२२॥

अस्य मध्ये स्थितो ब्रह्मा प्राङ्नक्षत्रं ससर्ज ह।
ततः प्राग्ज्योतिषाख्येयं पुरी शक्रपुरीसमा॥१२३॥

प्राचीन काल में ब्रह्मा ने इसके मध्य में ही नक्षत्रों की सृष्टि की थी। तब से इन्द्र की नगरी के समान श्रेष्ठ, यह पुरी प्राग्ज्यो पुरी के नाम से जानी जाती है॥ १२३॥

अत्र त्वं वस भद्रं ते ह्यभिषिक्तो मया स्वयम्।
कृतदारः सहामात्यै राजा भूत्वा महाबलः॥१२४॥

हे महाबली! यहाँ तुम स्वयं मेरे द्वारा अभिषिक्त हो, राजा बनव दारायुक्त (सपत्नीक) हो, अमात्यें त, यहाँ निवास करो। तुम्हारा कल्याण हो॥ १२४॥

॥ मार्कण्डेय उवाच॥

एवमुक्त्वा स्वयं विष्णुः शम्भोरनुमते तदा।
सर्वान् किरातान् पूर्वस्यां सागरान्ते न्यवेशयत्॥१२५॥

मार्कण्डेय बोले– तब ऐसा कहकर स्वयं विष्णु ने भगवान शिव की आज्ञा से सभी किरातों को पूर्व दिशा में सागर पर्यन्त बसाया॥ १२५॥

पूर्वं ललितकान्तायाः समादायावधिं पुनः।
यावत् सागरपर्यन्तं किरातास्तावदावसन्॥१२६॥

पूर्व दिशा में ललितकान्ता (ललिता) नदी की सीमा से प्रारम्भ कर सागर पर्यन्त किरातों को बसाया॥ १२६॥

पश्चाल्ललितकान्तायाः देशं कृत्वावधिं पुनः।
करतोया नदीं यावत् क ाख्यानिलयं तु तत्॥१२७॥

ललिताकान्ता से पश्चिम में करत ानदीपर्यन्त जो क्षेत्र है, वह कमाख्या देवी का निवास-स्थान है॥ १२७॥

तस्मात् किरातानुत्सार्यवेदशास्त्रातिगान् बहून्।
द्विजातीन् वासयामास तत्र वर्णान् सनातनान्॥१२८॥

उस स्थान से किरातों को निकाल कर वहाँ पर वेदशास्त्रों के जानने वाले सनातन रूप से बहुत से द्विजवर्णों को बसाया॥ १२८॥

वेदाध्ययनदानानि सततं वर्तते यथा।
तथा चकार भगवान् मुनिभिर्वासयन् विभुः॥१२९॥

जिससे वेदों का अध्ययन, दान आदि कर्म निरन्तर चलते रहें। इस विचार से भगवान् विष्णु ने वहाँ मुनियों को बसाया॥ १२९॥

वेदवादरताः सर्वे दानधर्मपरायणाः ।
नचिरादभवद्देशः कामरूपाह्वयस्तदा ।।१३०।।

वे सब मुनिगण वेदाध्ययन में संलग्न तथा धर्म में तत्पर रहने वाले थे। फलतः थोड़े समय में ही वह देश तब से ''कामरूप'' नाम वाला हो गया ॥ १३० ॥

ततो विदर्भराजस्य पुत्रीं मायाह्वयां हरिः ।
पुत्रार्थे वरयामास नरकस्य समां गुणैः ।।१३१।।

तब भगवान् विष्णु ने विदर्भराज की माया नामक पुत्री को, जो गुणों में नरक के समान थी, अपने पुत्र के लिए वरण किया ॥ १३१ ॥

तामुद्वाह्य हृषीकेशस्तस्मिन् पुरवरे स्वयम् ।
तया समं स्वतनयं राजत्वेनाभ्यषेचयत् ।।१३२।।

उससे विवाह कराकर हृषीकेश ने उसी के साथ अपने पुत्र नरक का उस नगर के राजा के रूप में अभिषेक किया ॥ १३१ ॥

सुगुप्तां च पुरीं चक्रे गिरिदुर्गेण माधवः ।
जलदुर्गं सर्वतो भद्रं देवैरपि दुरासदम् ।।१३३।।

माधव ने उस नगरी को दुर्गम पर्वतों से घिरे गिरि-दुर्ग से सुरक्षित, सब ओर से समृद्धियुक्त, जलदुर्ग से रक्षित तथा देवताओं के लिए भी अजेय बना दिया ॥ १३३ ॥

ततः किरातराजस्य चतुर्दन्ताः सुदन्तिनः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रा महामात्रकुथैर्युताः ।।१३४।।
यानि रत्नान्यनेकानि सैन्यानि विविधानि च ।
अश्वाश्चाभरणाश्चैव तत्सर्वं नरकोऽग्रहीत् ।।१३५।।

तब किरातराज के जो भी सुन्दर दातों, बड़ी-बड़ी विचित्र झूलों से सुशोभित, पच्चीस हजार हाथी तथा अनेक प्रकार के रत्न और भाँति-भाँति की सेना, अश्व और आभरण थे, नरक ने उन सब को अपने अधिकार में ले लिया ॥ १३४-१३५ ॥

यद्यत् सुभूषणं राज्ञो ध्वजाश्चाभरणानि च ।
तानि तानि स्वयं विष्णुस्तनयस्य ददौ तदा ।।१३६।।

राजा के जो-जो आभूषण, ध्वजा, आभरण आदि थे, उन्हें स्वयं भगवान् विष्णु ने अपने पुत्र को प्रदान किया ॥ १३६ ॥

रथं च प्रददौ तस्मै त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
लोहाष्टचक्रसञ्छन्नमर्धयोजनविस्तृतम् ।।१३७।।

उसे विष्णु भगवान् ने एक ऐसा रथ प्रदान किया जो तीनों लोकों में दुर्लभ था। वह रथ आधायोजन (६ मील) फैला हुआ तथा लोहे के आठ पहियों से युक्त था ॥ १३६ ॥

युक्तमश्वसहस्त्रैश्च तथाष्टाभिर्मनोजवैः ।
रत्नकाञ्चनचित्राढ्यं वेदिकाभागविस्तरम् ।।१३८।।

उसमें एकहजारआठ मन, के समान तीव्र वेग वाले घोड़े जुते हुये थे तथा उसका वेदिका भाग (बैठक) विस्तृत था। वह सोने और विचित्र रत्नों से सुशोभित था ॥ १३८ ॥

वज्रध्वजेन महता काञ्चनेन विराजितम् ।
हेमदण्डपताकाढ्यं वैदूर्यमणिकूवरम् ।।१३९।।

वह विशाल, स्वर्णमयध्वज से सुशोभित था, जिस पर वज्र का चिन्ह अंकित था। वह सोने की दण्डों वाली पताकाओं से सम्पन्न था, जिसका कूवर वैदूर्यमणि का बना हुआ था ॥ १३९ ॥

सिंहव्याघ्रसमुद्भूतैश्चर्मभिश्छादितं सदा ।
लोहजालैश्च सञ्छन्नं किंकिणीजालमालिनम् ।
सर्वप्रहरणैर्युक्तं बहुमायासमन्वितम् ।।१४०।।

वह रथ, सिंह, बाघों से उत्पन्न चमड़ों से सदैव मढ़ा तथा लोहे की जाली से ढँका हुआ था, किंकिणियों के समूह की मालाओं से सजा और बहुत प्रकार की मायाओं वाले सब प्रकार के आयुधों से युक्त था ॥ १४० ॥

शक्तिं च प्रददौ तस्मै सर्वशत्रुविशातनीम् ।
ज्वालामालाभिदीप्ताङ्गीं रिपुकक्षाग्निरूपिणीम् ।।१४१।।

उन्होंने उस नरक को सभी शत्रुओं का विनाश करने वाली, ज्वालासमूह से जलते हुए अङ्गों वाली, शत्रुरूपी बाड़ को जलाने के लिए अग्निस्वरूपा शक्ति प्रदान की ॥ १४१ ॥

इमं च समयं प्रोचे नरकाय महात्मने ।
नरकस्य हितायेशो वसुधायाः समक्षतः ।।१४२।।

ईश्वर (भगवान् विष्णु) ने इस महात्मा नरक के लिए, उसके कल्याणहेतु पृथ्वी के सामने यह वादा किया ॥ १४२ ॥

।। भगवानुवाच ।।

इमां शक्तिं न हि भवान् प्राणस्य संशयं विना ।
प्रयोक्ष्यति कदाचित्तु मानुषेषु विशेषतः ।।१४३।।

भगवान् बोले– तुम अपने प्राणों पर सङ्कट आये विना कभी भी इस शक्ति का प्रयोग नहीं करोगे। विशेष रूप से मनुष्यों के ऊपर तो नहीं ही करोगे ॥ १४३ ॥

एषा भार्या च वैदर्भी भवतः सदृशी गुणैः ।
भवतो जीवनं यावत्तावत् स्थास्यति शोभना ।।१४४।।

यह विदर्भदेश की तुम्हारी सुन्दरीपत्नी, गुणों में तुम्हारे ही समान होगी तथा तुम्हारे जीवनपर्यन्त तुम्हारा साथ देगी ॥ १४४ ॥

त्वं तु प्रजायै त्रेतायां यत्नवान् वै भविष्यसि ।
द्वापरान्ते तु सम्प्राप्ते प्रजा तत्र भविष्यति ।।१४५।।

तुम त्रेतायुग में सन्तान हेतु प्रयत्नशील होओगे तब द्वापर के अन्त में सन्तान प्राप्त करोगे ॥ १४५ ॥

विरोधो मुनिभिः सार्धं ब्राह्मणैरपि पुत्रक ।
न कदाचित्त्वया कार्यश्चिरञ्जीवितुमिच्छता ।।१४६।।

हे पुत्र ! यदि तुम चिरञ्जीवी होना चाहो तो कभी भी तुम्हारे द्वारा मुनियों और ब्राह्मणों से विरोध नहीं किया जाना चाहिए ॥ १४६ ॥

न राजभिर्न देवैश्च विरोधो युज्यते तव ।
महादुर्गस्य वै मध्ये वसतो ह्यपराजिते ।।१४७।।

महान् दुर्गों में रहने वाले अपराजेय राजाओं एवं देवताओं से तुम्हारा विरोध उचित नहीं है ॥ १४७ ॥

दिव्ययोषिद्गणैः सार्धं वसमानोऽतिभोगवान् ।
स्वपर्वते कामरूपे चिरं त्वं तिष्ठ पुत्रक ।।१४८।।

हे पुत्र ! देव सुन्दरियों के साथ रहते हुए अत्यधिक सुखभोग पूर्वक तुम अपने इस कामरूप पर्वत पर चिरकाल तक निवास करो ॥ १४८ ॥

महादेवीं महामायां जगन्मातरमम्बिकाम् ।
कामाख्यां त्वं विना पुत्र नान्यदेवं यजिष्यसि ।।१४९।।

हे पुत्र ! तुम, महादेवी, महामाया, जगत्माता, अम्बिका कामाख्या के बिना अन्य देवताओं का पूजन नहीं करोगे ॥ १४९ ॥

इतोऽन्यथा त्वं विहरन् गतप्राणो भविष्यसि ।
तस्मान्नरक यत्नेन समयं प्रतिपालय ।।१५०।।

इससे भिन्न विहार करते हुए ही तुम प्राणरहित होओगे । इसलिए हे नरक तुम प्रयत्नपूर्वक मेरे वचन का पालन करो ॥ १५० ॥

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुर्नरकं तनयं स्वकम् ।
तमपास्य रहस्येनां पृथिवीं वाक्यमब्रवीत् ।।१५१।।

मार्कण्डेय बोले– अपने पुत्र नरक के प्रति ऐसा (उपर्युक्त वचन) कहकर भगवान् विष्णु उससे दूर हटकर एकान्त में पृथिवी से यह वाक्य बोले—॥ १५१ ॥

यद् यत् पूर्वं मया प्रोक्तं कर्तव्यं तव सुन्दरि ।
तत् सर्वं नरकायाशु भूत्यै समुपदेशय ।।१५२।।

हे सुन्दरि ! जो-जो मेरे द्वारा तुम्हारे करने के लिए पहले कहा गया है, उन सबका तुम नरक के ऐश्वर्य के लिए शीघ्र उपदेश करो ॥ १५२ ॥

यदैनं त्वं स्वयं हन्तुं मां जगद्धात्रि भाषसे ।
तदा तु मानुषः कश्चिन्नरकं निहनिष्यति ॥१५३॥

हे जगत् का पालन करने वाली ! जब तुम स्वयं इसे मारने के लिए मुझसे कहोगी, तभी कोई मनुष्य, इस नरक का वध करेगा ॥ १५३ ॥

॥ पृथिव्युवाच ॥

प्रजार्थमेष यत्नो मे निन्द्यः स्यात् सन्ततिं विना ।
तस्मान्नाथ प्रयत्नान्मे सन्ततिं पालयिष्यसि ॥१५४॥

पृथ्वी बोली– प्रजा के लिए किया गया मेरा यह प्रयत्न सन्तान के विना निन्दनीय हो जायगा । इसलिए हे प्रभो ! आप प्रयत्नपूर्वक मेरे इस सन्तान का पालन कीजिएगा ॥ १५४ ॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

एवमस्त्विति तां विष्णुः पृथिवींप्रति पावनः ।
नरकं च समाभाष्य तत्रान्तर्धिमगात् क्षणात् ॥१५५॥

मार्कण्डेय बोले– "ऐसा ही हो ।" उस पृथिवी और नरक से ऐसा कहकर पवित्ररूप भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये ॥ १५५ ॥

गते हरौ निजस्थानं पृथिवी तनयं स्वकम् ।
यत् पूर्वं हरिणा प्रोक्तं तत्र तं व्यनयत् स्वयम् ॥१५६॥

भगवान् विष्णु द्वारा अपने स्थान (बैकुण्ठ) को चले जाने पर, पृथिवी अपने पुत्र के साथ पहले जहाँ के लिए भगवान् विष्णु ने कहा था, उसे स्वयं ले गयी ॥ १५६ ॥

नरकोऽपि तदा धीमान् वेदशास्त्रार्थपारगः ।
ब्रह्मण्यनीतिकुशलो वदान्यो दानतत्परः ॥१५७॥
कामाख्यापूजनरतो नीलकूटे महागिरौ ।
महाभोगी महाश्रीमान् हीनबाधश्च शत्रुभिः ।
सुचिरं राज्यमकरोच्छक्रवत्त्रिदशालये ॥१५८॥

तब बुद्धिमान् नरक भी जो वेद-शास्त्र का ज्ञाता था, ब्राह्मणभक्त, नीतिकुशल, दान में तत्पर हो, महान् नीलकूटपर्वत पर, कामाख्या देवी की पूजा में संलग्न हो,

शत्रुओं द्वारा उपस्थित बाधाओं से रहित, उसी प्रकार बहुत समय तक राज्य किया जैसे इन्द्र स्वर्ग में राज्य करते हैं। वह महान् भोगों को भोगनेवाला तथा महतीश्री से युक्त था ॥ १५७-१५८ ॥

ततो विदेहराजोऽपि श्रुत्वैव नरकश्रियम् ।
सपुत्रभार्यः सगणो नरकं द्रष्टुमभ्यगात् ।।१५९।।

तब विदेहराज जनक भी नरक की श्री (वैभव) को देखकर अपनी पत्नी, पुत्रों तथा गणों के सहित, नरक को देखने के लिए वहाँ आये ॥ १५९ ॥

प्राग्ज्योतिषं पुरं गत्वा कामरूपान्तरस्थितम् ।
ददर्श नरकं राजा शरच्चन्द्रसमं श्रिया ।।१६०।।

कामरूप प्रदेश के अन्तर्गत स्थित प्राग्ज्योतिषपुर में जाकर राजा जनक ने वहाँ शोभा में शरदऋतु के चन्द्रमा के समान स्थित नरक को देखा ॥ १६० ॥

प्राग्ज्योतिषं पुरं मेने स राजा त्वमरावतीम् ।
देवेन्द्रं नरकं मेने सत्परिच्छदभूषणम् ।
ततो महिष्यै तत् सर्वं जनको वाक्यमब्रवीत् ।।१६१।।

उस राजा ने आभूषणों से भलीभाँति ढके हुए नरक को देवराज इन्द्र तथा उसकी राजधानी, प्राग्ज्योतिषपुर को अमरावती माना तब यह सब वचन। जनक ने महारानी से कहा ॥ १६१ ॥

।। जनक उवाच ।।

एष ते पालितसुतः श्रीमान् नरकसंज्ञकः ।।१६२।।
पृथिव्या दयितः पुत्रः संजातो घृष्टिरूपिणा ।
विष्णुना जगदीशेन त्वमेनं पश्य संगतम् ।।१६३।।

जनक बोले– यही तुम्हारे द्वारा पाला गया नरक नामक पुत्र है। सूकर रूपधारी, जगत के स्वामी, विष्णु द्वारा पृथिवी से उत्पन्न इस प्रिय एवं उपयुक्त, पुत्र को देखो ॥ १६२-१६३ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा जनको राजा यथा वृत्तं तथा पुरा ।
वृत्तान्तं कथयामास नरको जातवान् यथा ।।१६४।।

मार्कण्डेय बोले– ऐसा कहकर राजाजनक ने प्राचीन काल में जैसा हुआ था, तथा जिस प्रकार नरक उत्पन्न हुआ था, वह समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १६४ ॥

ततस्तत्र चिरं स्थित्वा प्राग्ज्योतिषपुरे मुदा ।
विदेहाधिपती राजा नरकेण प्रपूजितः ।।१६५।।
स्वस्थानं गतवांस्तस्मात् स्वगणैः परिवारितः ।।१६६।।

विदेहराज, राजा जनक वहाँ नरक द्वारा पूजित हो, प्रसन्नतापूर्वक बहुत समय तक प्राग्ज्योतिषपुर में निवास किये । तब वहाँ से अपने गणों के साथ अपने निवास स्थान को चले गये ।। १६५-१६६ ।।

एवं स नरको जातः पृथिव्यास्तनयस्तदा ।
हीनासुरस्वभावः संविजहार चिरं क्षितौ ।।१६७।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे नरकाभिषेचनेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ।।३८।।

तब पृथ्वी का वह पुत्र नरक, इस प्रकार उत्पन्न हुआ तथा अपने आसुरीभाव को छोड़कर, दीर्घकाल तक पृथिवी पर विहार किया ।। १६७ ।।

।। श्रीकालिकापुराण में नरकाभिषेक नामक अड़तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। ३८ ।।



एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

भौमतपस्यावर्णनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

स राजा नरकः श्रीमांश्चिरञ्जीवी महाभुजः ।
मानुषेणैव भावेन चिरं राज्यमथाकरोत् ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– उस नरक नाम के राजा ने जो श्रीसम्पन्न, चिरञ्जीवी और महान् पराक्रमी था, बहुत समय तक मनुष्यभाव के साथ राज्य किया ॥ १ ॥

त्रेतायां च व्यतीतायां द्वापरस्य तु शेषतः ।
अभवच्छोणितपुरे बाणो नाम महासुरः ।।२।।

तब त्रेतायुग के बीत जाने पर द्वापर के अन्त में शोणितपुर नगर में बाण नाम का एक महान असुर हुआ ॥ २ ॥

तस्याग्निदुर्गं नगरं स च शम्भुसखो बली ।
सहस्रबाहुर्दुर्धर्षः प्रियः पुत्रः स वै बलेः ।।३।।

उसका नगर अग्नि द्वारा रक्षित था और वह स्वयं शिव का मित्र (भक्त) था। वह बलवान था तथा हजार बाहुओं को धारण करने वाला था। वह दुर्धर्ष था। वह राजा बलि का प्रिय पुत्र था ॥ ३ ॥

नरकेण समं तस्य महामैत्री व्यजायत ।
गमनागमनान्नित्यमन्योन्यानुग्रहैस्तथा ।
तयोरभूद् महाप्रीतिः पवनानलयोर्यथा ।।४।।

नरक के साथ उसकी महान् मित्रता हो गयी तथा निरन्तर एक-दूसरे के यहाँ आने-जाने तथा परस्पर के अनुग्रह के कारण उन दोनों में आग और हवा की भाँति प्रीति हो गयी ॥ ४ ॥

स च बाणः समाराध्य महादेवं जगत्प्रभुम् ।
आसुरेणाथ भावेन व्यचरच्चाकुतोभयः ।।५।।

और वह बाण जगत् के स्वामी महादेव की आराधना करके आसुरीभाव से युक्त हो, निर्भय होकर विचरण करने लगा ॥ ५ ॥

तत्संसर्गात् स नरको दृष्ट्वा तस्याद्भुतां कृतिम् ।
तेनैव सह भावेन विहर्तुमुपचक्रमे ।।६।।

उसी के संसर्ग से उस नरक ने भी उसके अद्भुत कार्यों को देखकर, उसी के (आसुरी) भाव से उस बाण के साथ विचरण करना आरम्भ किया ।। ६ ।।

न ब्राह्मणान् पूजयति यथा पूर्वं तथा द्विजाः ।
न च यज्ञेषु दानेषु पूर्ववन्मुदितः स च ।।७।।

तब (आसुरी भाव युक्त होने पर) न तो वह जिस प्रकार ब्राह्मणों की पहले पूजा करता था वैसी पूजा करता और न यज्ञ एवं दान से वह पहले की भाँति प्रसन्न ही होता था ।। ७ ।।

न तथा विष्णुमभ्येति पृथिवीं वापि नार्च्चति ।
कामाख्यायां तथा भक्तिस्तदा तस्थाय नाभवत् ।।८।।

तब न उस प्रकार (पहले की भाँति) वह अपने पिता विष्णु के पास जाता था अथवा न माता पृथिवी की अर्चना करता था। कामाख्या देवी के प्रति उसकी पहले वाली भक्ति भी तब नहीं रही ।। ८ ।।

एतस्मिन्नन्तरे धातुस्तनयो मुनिसत्तमः ।
वसिष्ठो नाम कामाख्यां द्रष्टुं प्राग्ज्योतिषं गतः ।।९।।

इसी बीच ब्रह्मा के पुत्र महर्षि वसिष्ठ नामक श्रेष्ठमुनि कामाख्या देवी के दर्शन हेतु प्राग्ज्योतिषपुर गये ।। ९ ।।

तां दुर्गाभ्यन्तरे नीलकूटदेवीं व्यवस्थिताम् ।
द्रष्टुं गन्तुं वसिष्ठस्य न द्वारं नरको ह्यदात् ।।१०।।

दुर्ग के भीतर नीलपर्वत पर स्थित उस देवी के दर्शन हेतु गये हुए वसिष्ठ जी को नरक ने वहाँ जाने का द्वार (मार्ग) नहीं दिया ।। १० ।।

ततो वसिष्ठः कुपितो वचनं परुषं मुनिः ।
जगाद नरकं वीरं गर्हयन्मुनिसत्तमः ।।११।।

तब क्रोधित होकर मुनियों में श्रेष्ठ, वसिष्ठ मुनि ने वीर नरक की भर्त्सना करते हुए ये कठोर वचन कहे ।। ११ ।।

।। वसिष्ठ उवाच ।।

कथं पृथिव्यास्तनयो वराहस्य सुतोऽञ्जसा ।
देवीं द्रष्टुं ब्राह्मणस्य न ददासि तथागतः ।।१२।।

वसिष्ठ बोले– वाराह तथा पृथ्वी के पुत्र होते हुये भी तुम मुझ ब्राह्मण को उचित मार्ग क्यों नहीं दे रहे हो? ।। १२ ।।

किं ते कुलोचितं कर्म त्वं करोषि धरात्मज ।
देवीं प्राग्ज्योतिषं गत्वा पूजयिष्ये जगन्मयीम् ।।१३।।

हे धरती के पुत्र ! क्या यह तुम्हारा अपने कुल के अनुरूप कर्म है ? मैं प्राग्ज्योतिषपुर जाकर जगत्मयी देवी का पूजन ही करूँगा ॥ १३ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततः स नरको राजा प्राप्तकालः क्षितेः सुतः ।
परुषेणाथ वाक्येन तमाक्षिप्य निरस्तवान् ।
ततो मुनिः स कुपितः शशाप नरकं नृपम् ।।१४।।

मार्कण्डेय बोले– तब उस पृथ्वीपुत्र राजा नरक ने, जिसका अन्त समय सन्निकट आ गया था । कठोर वचनों द्वारा उन पर आक्षेप करते हुए, उनको निरस्त कर दिया, तो वसिष्ठ ने क्रोधित हो राजा नरक को शाप दिया ॥ १४ ॥

।। वसिष्ठ उवाच ।।

नचिराद् येन जातोऽसि तेन मानुषरूपिणा ।
मरणं भविता पाप वराहकुलपांसन ।।१५।।

वसिष्ठ बोले– हे वाराह कुल को कलंकित करने वाले पापरूप ! तुम जिस (विष्णु) के द्वारा उत्पन्न हुए हो, उसी मनुष्यरूपधारी (विष्णु) द्वारा तुम्हारा मरण भी शीघ्र ही होगा ॥ १५ ॥

मृते त्वयि महादेवीं कामाख्यां जगतां प्रभुम् ।
पूजयिष्याम्यहं पाप तिष्ठ यास्ये स्वमालयम् ।।१६।।

हे पाप ! तुम्हीं यहाँ रहो । मैं अपने आवास पर चला जाऊँगा तथा तुम्हारे मरने के बाद ही जगत्जननी महादेवी कामाख्या का पूजन करूँगा ॥ १६ ॥

त्वं यावज्जीविता पाप कामाख्यापि जगत्प्रभुः ।
सर्वैः परिकरैः सार्धमन्तर्धानाय गच्छतु ।।१७।।

हे पाप ! जब तक तुम जीवित रहो, तब तक जगत् को उत्पन्न करने वाली यह कामाख्या देवी भी अपने सभी परिकरों के सहित अन्तर्धान हो जावें ॥ १७ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा ब्रह्मपुत्रः स स्वस्थानं गतवान् मुनिः ।
वसिष्ठस्तेन भौमेन निरस्तः कुपितो भृशम् ।।१८।।

मार्कण्डेय बोले– उस भूमिपुत्र द्वारा निर्वासित किये गये वसिष्ठमुनि अत्यन्त कुपित हुए तथा उपर्युक्त वचन कहकर अपने आश्रम को लौट गये ॥ १८ ॥

गते वसिष्ठे नरकः शीघ्रं विस्मयसंयुतः ।
जगाम देवीभवनं नीलकूटं महागिरिम् ।।१९।।

वसिष्ठ मुनि के लौट जाने पर आश्चर्य से भरकर नरक, शीघ्र ही देवी के मन्दिर में, नीलकूट नामक विशाल पर्वत पर पहुँचा ॥ १९ ॥

तत्र गत्वा न चापश्यत् कामाख्यां कामरूपिणीम् ।
न योनिमण्डलं तस्याः सर्वान् परिकरांस्तथा ॥२०॥

वहाँ जाकर उसने कामरूपधारिणी कामाख्या देवी को नहीं देखा और न तो उनके योनिमण्डल को एवं न उनके सभी परिकरों को ही देखा ॥ २० ॥

ततः स विमना भूत्वा क्षितिं सस्मार मातरम् ।
पितरं च जगन्नाथं नरकः प्रभुमव्ययम् ॥२१॥

तब दुःखीभाव हो, नरक ने अपनी माता पृथ्वी तथा पिता अविनाशी ईश्वर, जगत के स्वामी भगवान् विष्णु का, स्मरण किया ॥ २१ ॥

न तावपि तदा यातौ तस्य प्रत्यक्षतां द्विजाः ।
व्युत्क्रान्तसमयस्येति नीतिहीनस्य शम्भवे ॥२२॥

हे द्विजों ! जिस प्रकार विपरीत समय आने पर, नीतिहीन पुरुष शिव का दर्शन नहीं प्राप्त करता उसी प्रकार वे दोनों भी तब उसके सम्मुख प्रत्यक्षरूप से उपस्थित नहीं हुए ॥ २२ ॥

चिरं प्रतीक्ष्य तौ तत्र भौमो वज्रध्वजस्तदा ।
अप्राप्तक्षितिविष्णुः स सशोकः स्वं निवेशनम् ॥२३॥

तब बहुत देर तक उन दोनों की प्रतीक्षा कर वह भौमासुर जिसकी ध्वजा पर वज्र का चिह्न अंकित रहता था, अपनी माता पृथ्वी और पिता विष्णु को न पाकर शोकपूर्वक अपने स्थान को चल पड़ा ॥ २३ ॥

स गच्छन् स्वगृहं भौमः पुरीं स्वां दृष्टवांस्तु सः ।
पूर्वश्रिया परित्यक्तां मलिनां वनितामिव ॥२४॥

अपने घर को लौटते हुए उस भौमसुर ने अपनी नंगरी को रजस्वला स्त्री की भाँति पूर्ववर्ती शोभा से रहित देखा ॥ २४ ॥

देव्यामन्तर्हितायां तु वेदवादविवर्जितम् ।
पुण्यस्वल्पदारजनं तत् पुरं समपद्यत ॥२५॥

देवी के अन्तर्हित हो जाने पर उसने वैदिक आचार से हीन तथा जिनके पुण्य कम हो गये थे, ऐसे अकुलीन स्त्रियों की भाँति श्रीहीन, नगर को उसने प्राप्त किया ॥ २५ ॥

न देवास्तत्र गच्छन्ति न विप्रा न महर्षयः ।
बभूव नगरं तस्य स्वल्पयज्ञक्रियोत्सवम् ॥२६॥

वहाँ न देवता जाते थे, न ब्राह्मण और न महर्षि ही। अतः उसके नगर में यज्ञ की क्रियाएँ एव महोत्सव भी क्षीण हो गये ॥ २६ ॥

ईतयो बहवो जाता मृताश्च बहवो जनाः ।
लौहित्यनदराजोऽपि हीनतोयस्तदाऽभवत् ।।२७।।

तब अनेक दैवी आपदायें आने लगीं, जिनमें बहुत-सी प्रजा मर गयी । नदों का राजा (लौहित्य) ब्रह्मपुत्र भी उस समय जल से हीन हो गया ॥ २७ ॥

बहूनि विपरीतानि दृष्ट्वा स नरकस्तदा ।
मेने मरणमासन्नमात्मनो ब्रह्मशापतः ।।२८।।

तब वह नरक बहुत से उपर्युक्त विपरीत लक्षणों को देखकर, ब्राह्मण के शाप के कारण अपनी मृत्यु निकट आयी समझने लगा ॥ २८ ॥

ततः प्राग्ज्योतिषाध्यक्षः शोकविह्वलचेतनः ।
चिन्तयन् मनसा मित्रं बाणं बलिसुतं ययौ ।।२९।।

तब वह प्राग्ज्योतिषपुर का स्वामी भौमासुर, शोक से विह्वल चित्तवाला हो, मानसिकरूप से अपने मित्र बलि-पुत्र बाणासुर के पास गया ॥ २९ ॥

सखा प्राणसमः सोऽस्य सततान्योन्यरक्षणे ।
तत्परौ बाणनरकौ स्ववैंद्यावश्विनाविव ।।३०।।

वह इसका प्राण के समान प्रिय मित्र था । बाण एवं नरक दोनों ही परस्पर एक दूसरे की रक्षा में देव-वैद्य आश्विनी कुमारों की भाँति सदैव तत्पर रहते थे ॥ ३० ॥

एतस्मिन्नन्तरे बाणो मित्रं शम्भुसखो बली ।
अनुकूलयिता मन्त्रप्रदानेन महाबुधः ।।३१।।
इति चासीन्मतिस्तस्य वज्रकेतोस्तदाचला ।
दूतं च प्राहिणोद् दीप्तं बाणस्य नगरं प्रति ।।३२।।

इस संकट में शिवभक्त, बलवान्, महती बुद्धिवाला, मित्र बाण ही मन्त्रदान, विचार-विमर्श हेतु अनुकूल रहेगा, ऐसी स्थिर बुद्धि तब उस वज्रध्वजाधारी नरक की हो गयी और उसने बाण की नगरी के लिए तेजस्वी दूत भेजा ॥ ३१-३२ ॥

स शोणितपुरं गत्वा स्यन्दनेनाशुगामिना ।
ततो भौमस्य वृत्तान्तं वाणायाशु न्यवेदयत् ।।३३।।

तब तीव्रगामी रथ से वह दूत शोणितपुर नामक नगर में पहुँचा और वहाँ पहुँचकर, शीघ्रतापूर्वक भौम का वृत्तान्त बाण से कह सुनाया ॥ ३३ ॥

यथा शप्तो वसिष्ठेन यथा चान्तर्हिताम्बिका ।
यथा विघ्नः पुरवरे जातः प्राग्ज्योतिषाह्वये ।।३४।।
समयस्य व्यतिक्रान्तिर्भूमिमाधवयोर्यथा ।
तथा स दूतो भौमस्य शशंस बलिसूनवे ।।३५।।

भौमासुर के उस दूत ने जिस प्रकार वसिष्ठ द्वारा शाप दिया गया, जिस प्रकार अम्बिका (कामाख्या) देवी अन्तर्हित हुईं, जिस प्रकार प्राग्ज्योतिष नामक श्रेष्ठ नगर

में विघ्न हुए, पृथ्वी और विष्णु भगवान् द्वारा जिस प्रकार अपने ही वचन के विपरीत किया गया, वह सब ज्यों का त्यों बलि-पुत्र बाणासुर से कह सुनाया ॥ ३४-३५ ॥

स समाकारमित्रस्य सम्यग् दैवपराभवम् ।
स्वयं जगाम नरकं सभाजयितुमीश्वरः ।।३६।।

उस बाणासुर ने मित्र नरक के भाग्य के पराभव का प्रसङ्ग भलीभाँति सुना तथा स्वयं शिव की अर्चना हेतु नरक के समीप चल पड़ा ॥ ३६ ॥

स काञ्चनविचित्राङ्गं युक्तमश्वशतैस्त्रिभिः ।
लोहचक्रं च वैयाघ्रं मयूरध्वजभूषितम् ।।३७।।
हेमदण्डसितच्छत्रच्छादितं किंकिणीगणैः ।
नानारत्नौघरचितमारुरोह महारथम् ।।३८।।

इस हेतु वह सोने से सजे हुए अङ्गों वाले, तीन सौ घोड़ों से युक्त, लोहे के चक्कों से युक्त तथा बाघ के चमड़ों से मढ़े हुए, मयूर-ध्वज सुशोभित, स्वर्णदण्ड तथा श्वेतछत्र एवं किंकिणी समूहों से आच्छादित, नानारत्नसमूहों से विरचित, विशाल रथ पर आरूढ़ हुआ ॥ ३७-३८ ॥

स सहस्रभुजः श्रीमांश्चतुरङ्गबलैर्युतः ।
प्राग्ज्योतिषं भौमपुरमचिरादाजगाम ह ।।३९।।

वह हजार भुजाओं वाला, श्रीमान् तथा चतुरंगिणी सेना से युक्त हो बिना विलम्ब किये भौम की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर पहुँच गया ॥ ३९ ॥

तमासाद्य महाबाहुर्बाणः प्राग्ज्योतिषेश्वरम् ।
हीनं पूर्वश्रिया मित्रमपश्यन्नगरं च तत् ।।४०।।

वहाँ पहुँचकर महान भुजाओं वाले बाण ने प्राग्ज्योतिषपुर के अधिपति, अपने मित्र, भौम तथा उसके नगर को पहले की शोभा से हीन अवस्था में देखा ॥ ४० ॥

स तेन पूजितो बाणो यथायोग्यं सुतेन कोः ।
पप्रच्छ किं निमित्तं ते हीनश्रीकमभूत् पुरम् ।।४१।।

उस बाण ने उस पृथ्वीपुत्र नरक द्वारा यथायोग्य क्रम से पूजित हो, उससे पूछा कि तुम्हारे स्वयं के तथा नगर के शोभाहीन होने का क्या कारण है ? ॥ ४१ ॥

।। बाण उवाच ।।

शरीरं च यथापूर्वं तथा न तव राजते ।
मनश्च ते नाति हृष्टं तत्र हेतुं वदस्व मे ।।४२।।

बाण बोला–तुम पहले की भाँति अब शोभायमान नहीं हो रहे हो । पहले की भाँति तुम्हारा मन भी हर्षित नहीं है । इसमें जो कारण हो उसे बताओ ॥ ४२ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एवमादीनि पृष्टः स नरकः क्षितिनन्दनः ।
यथा वसिष्ठशापोऽभूत् तत् सर्वं तस्य चाब्रवीत् ।।४३।।

मार्कण्डेय बोले–इस प्रकार पूछे जाने पर पृथ्वीपुत्र उस नरक ने, जिस प्रकार वसिष्ठ का शाप हुआ था, प्रारम्भ से वह सब वृत्तान्त, उससे बता दिया ॥ ४३ ॥

यच्छ्रुतं भौमवदनात्तद्दूतावेदितं पुरा ।
ज्ञात्वां तथा तं प्रोवाच बाणो वज्रध्वजं पुनः ।।४४।।

जो कुछ भौमासुर के मुँह से उसने सुना वही दूत ने पहले ही निवेदित कर दिया था । उसी प्रकार उसे जान कर, बाणासुर ने पुनः व्रजध्वज धारण करने वाले भौमासुर से कहा—॥ ४४ ॥

।। बाण उवाच ।।

नहिमन्युस्त्वया कार्यः सुखे दुःखे शरीरिणाम् ।
चक्रवत् परिवर्तेते नैताभ्यां कोऽपि हीयते ।।४५।।

बाण बोला– शरीरधारियों के सुख-दुःख को देखकर तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये । ये चक्र की भाँति परिवर्तित होते रहते हैं । इनसे कोई भी मुक्त नहीं होता ॥ ४५ ॥

परं तत्र प्रतीकारः कार्यो धीरैर्विभूतये ।
भवानपि प्रतीकारं कर्तुमर्हति सम्प्रति ।।४६।।

परन्तु धीर पुरुषों द्वारा विभूति प्राप्ति हेतु इनका प्रतिकार अवश्य करना चाहिए । इस समय आप भी दुःखों का प्रतिकार करो ॥ ४६ ॥

य एष मानुषः पृथ्व्यामसाधारणभूतिभिः ।
वर्धते दानवो वापि दैत्यो वाप्यथवासुरः ।
राक्षसः किन्नरो वापि शक्रस्तान् सहते नहि ।।४७।।

इस पृथ्वी पर जो भी मनुष्य, दानव, दैत्य, असुर, राक्षस अथवा किन्नर आदि अपनी असाधारण विभूति से युक्त होता है, उसे इन्द्र सहन नहीं कर सकता ॥ ४७ ॥

स कौटिल्यं देवगणैः सार्धं कुर्वन्नितस्ततः ।
यथा तथा प्रकारेण भ्रंशयत्येव तं श्रियः ।।४८।।

वह देवगणों के साथ इधर-उधर कुटिलता करते हुए जिस किसी भी प्रकार से उसकी सम्पत्ति को नष्ट कर देता है ॥ ४८ ॥

तस्य चेष्टतमो देवो विष्णुर्नित्यं सनातनः ।
स न शक्रस्य कुरुते मनोऽनिष्टं मनागपि ।।४९।।

उस इन्द्र के सबसे अधिक इष्ट (सहायक), नित्य एवं सनातनदेव भगवान् विष्णु हैं, वह इन्द्र का मन से भी, थोड़ा भी अनिष्ट नहीं करते ॥ ४९ ॥

यः समाराधयेद् विष्णुं शक्रस्यानिष्टकारकः ।
तस्मै वरं तु सच्छिद्रं दत्त्वा तं शातयत्वितः ।।५०।।

इन्द्र का अनिष्ट करने वाला जो व्यक्ति विष्णु की आराधना करता है, उसे वे छलपूर्वक वर दे, उसका इस लोक से नाश ही कर देते हैं ।। ५० ।।

चिरमाराधितो विष्णुरिष्टान् कामान् प्रयच्छति ।
महता कायदुःखेन पूजितः सम्प्रसीदति ।।५१।।

विष्णु बहुत दिनों तक आराधना करने के बाद ही इष्ट कामनाओं को देते हैं। महान् शारीरिक दुःख से पूजे जाने पर ही वे प्रसन्न होते हैं ।। ५१ ।।

विनेष्टदेवतापूजां विभूतिमतुलां पुमान् ।
कः प्राप्नोति श्रुतः पूर्वं न वा पूर्वतरैः क्वचित् ।।५२।।

बिना इष्टदेवता के पूजन के किसी पुरुष ने अतुल वैभव प्राप्त किया हो, ऐसा पहले न कभी सुना गया, न भविष्य में सुना जायेगा ।। ५२ ।।

त्वया नाराधितः पूर्वं ब्रह्मा वा विष्णुरीश्वरः ।
तेन तेऽद्य महाविघ्ना उत्पन्ना विषये तव ।।५३।।

इस रूप में तुम्हारे द्वारा पहले कभी ब्रह्मा, विष्णु या ईश्वर (शिव) की पूजा नहीं की गयी। इसी कारण आज तुम्हें और तुम्हारे राज्य में महान् विघ्न उत्पन्न हो रहे हैं ।। ५३ ।।

यो वा विष्णुः पालकस्ते न निसर्गानुकम्पकः ।
किन्तु ते स क्षितेर्वाक्यात्तया चाराधितो मुहुः ।।५४।।

विष्णु जो तुम्हारे पालनकर्त्ता हैं, वे तुम्हारे ऊपर स्वाभाविक रूप से कृपा करने वाले नहीं हैं। किन्तु तुम्हारे द्वारा पृथ्वी के वचनानुसार बारम्बार उनकी उपासना की गयी ।। ५४ ।।

दत्तं छिद्रं च ते विष्णुर्नापराध्यास्त्वया द्विजाः ।
इतोऽन्यथा त्वं भविता हतश्रीरिति नः श्रुतम् ।।५५।।

हमारे द्वारा सुना गया है कि विष्णु ने एक छिद्र, गुप्तभेद तुम्हें बताया कि तुम्हें ब्राह्मणों का अपराध नहीं करना चाहिये। अन्यथा यहाँ तुम श्रीहीन हो जाओगे ।। ५५ ।।

अपराध्यस्त्वया भूप वसिष्ठः परमो मुनिः ।
तेन स्मरणमात्रेण नायातौ क्षितिमाधवौ ।।५६।।

हे राजन् ! तुम्हारे द्वारा मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ का अपमान हो गया। इसी कारण तुम्हारे द्वारा स्मरण करने मात्र से वे, पृथ्वी तथा विष्णु नहीं आये ।। ५६ ।।

तस्मात्त्वं मित्र बुध्यस्व कौटिल्यं हरिमेधसः ।
नाधुना युज्यते भौम तवोदासीनताकृतिः ।।५७।।

अतः हे मित्र ! तुम विष्णु के बुद्धि की कुटिलता को जानो । हे भौम ! इस समय तुम्हारी उदासीनता युक्त आकृति उचित नहीं लगती ॥ ५७ ॥

यत्ते मनसि तातोऽयमिति सम्प्रत्ययः स ते ।
वराह एव ते तातः स च लोकान्तरं गतः ।।५८।।

तुम्हारे मन में यह जो विश्वास है कि यह विष्णु मेरे पिता हैं तो वाराह ही तुम्हारे पिता थे और अब वह परलोकगामी हो गये हैं ॥ ५८ ॥

वराहोऽपि हरेरंश इति यच्छ्रूयते त्वया ।
तस्यांश इत्यनुक्रोशः केन वा क्रियते वद ।।५९।।

वाराह भी विष्णु के ही अंश हैं, यह जो तुम्हारे द्वारा सुना जाता है, (यह उसका अंश है ऐसा कथंन किसके द्वारा किया जा रहा है ? बताओ।

तस्मात्त्वं कुरु शम्भोर्वा ब्रह्मणो वाधुनार्च्चनम् ।
स ते प्रसन्नः परममिष्टकामं प्रदास्यति ।।६०।।

इसलिए अब तुम शिव या ब्रह्मा की आराधना करो वह प्रसन्न होकर तुम्हारी सर्वोत्तम कामना को पूर्ण करेंगे ॥ ६० ॥

विघ्नो वा मुनिशापो वा महेतिर्वातिपीडकः ।
विधौ प्रसन्ने शम्भौ वा नचिरात्क्षयमेष्यति ।।६१।।

विघ्न हो अथवा मुनि का शाप हो या अत्यन्त पीड़ा देने वाली महती दैवी विपत्ति हो, ब्रह्मा या शिव के प्रसन्न होते ही, शीघ्र नाश को प्राप्त होवेगी ॥ ६१ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

जातसम्प्रत्ययो भौमो बाणस्य वचनात् तदा ।
सुप्रीतः समुवाचेदं धीरघर्घरनिःस्वनः ।।६२।।

मार्कण्डेय बोले–तब बाण के वचन पर विश्वास हो जाने पर भौमासुर ने अत्यन्त प्रसन्न हो धीरतापूर्वक घर्घरनाद में यह कहा—॥ ६२ ॥

।। भौम उवाच ।।

यत् त्वया गदितं बाण हितं मे मित्रवत्सल ।
तत् कार्यमचिरादेव तपश्चरणमुत्तमम् ।।६३।।

भौम बोला– हे मुझ मित्र से प्रेम करने वाले बाण ! तुम्हारे द्वारा जो मेरे लिए हितकर कहा गया है, वह तपस्या जैसा उत्तम कार्य, मेरे द्वारा शीघ्र ही किया जायेगा ॥ ६३ ॥

विष्णुर्नाराधनीयो मे तत्र हेतुस्त्वयोदितः ।
नैवाराध्यस्तथा शम्भुरन्तर्गुप्तः स मे पुरे ।।६४।।

मेरे द्वारा विष्णु आराधना के योग्य नहीं हैं । इसका कारण आपके द्वारा बता ही दिया गया है । मेरे नगर में गुप्तरूप से रहने के कारण शिव भी आराधना के योग्य नहीं हैं ।। ६४ ।।

तस्माद् ब्रह्मा समाराध्यो वचनात् तव मित्रक ।
तत्पुत्रस्य महाबाहो लौहित्यस्याम्बुसन्निधौ ।।६५।।

हे मित्रक ! हे महाबाहु ! इसलिए तुम्हारे वचनों के आधार पर ब्रह्मा अपने पुत्र लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नामक नद के जल के निकट आराधना करने योग्य हैं ।। ६५ ।।

भवताध्यापितश्चाहं शिष्योऽथ गुरुणा यथा ।
मित्रं मित्रं यथा धीर साम्ना परमवल्गुना ।।६६।।

मैं आपके द्वारा धीर, आश्वस्त करने वाली, श्रेष्ठवाणी से उसी प्रकार सिखाया गया हूँ, जिस प्रकार शिष्य को गुरु द्वारा तथा मित्र को मित्र द्वारा सिखाया जाता है ।। ६६ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा स महाबाहुर्बाणं वज्रध्वजस्तदा ।
यथावत् पूजयामास तन्मित्रं मित्रवत्सलः ।।६७।।

तब उस वज्रध्वज नरक ने महाबाहु बाण से इस प्रकार कहकर मित्र-प्रेम से युक्त उस बाण की यथोचित पूजा किया ।। ६७ ।।

अर्चयित्वा यथायोग्यं प्रस्थाप्य च बलेः सुतम् ।
ब्रह्माराधनमत्युग्रं कर्तुमिच्छन् क्षितेः सुतः ।।६८।।

पृथ्वीपुत्र भौम ने यथोचित रूप से बलिपुत्र बाण की पूजाकर तथा उन्हें आवास आदि में प्रस्थापित कर, अत्यन्त उग्र (कठोर) रूप से ब्रह्मा की आराधना करने की इच्छा किया ।। ६८ ।।

स तीरे नदराजस्य लौहित्यस्य महात्मनः ।
ब्रह्माचलं समारुह्य तपस्तप्तुमुपस्थितः ।।६९।।

तब वह महात्मा नदों के राजा लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) के किनारे पर स्थित ब्रह्माचल पर चढ़कर तपस्या करने को उपस्थित हुआ ।। ६९ ।।

स मानुषेण मानेन क्षितिपुत्रः शतं समाः ।
जलाहारव्रतेनैव समानर्च पितामहम् ।।७०।।

उस पृथ्वीपुत्र, भौम ने मनुष्य के मान से सौ वर्षों तक जलाहार व्रत से (जलमात्र ग्रहण कर) पितामह ब्रह्मा की आराधना की ।। ७० ।।

सन्तुष्टः शतवर्षान्ते ब्रह्मा लोकपितामहः ।
प्रत्यक्षीभूय नरकस्याग्रतः समुपस्थितः ।।७१।।

सौवें वर्ष के अन्त में लोक के पितामह ब्रह्मा, प्रसन्न हुए तथा नरक के सम्मुख प्रत्यक्ष होकर उपस्थित हुए ।। ७१ ।।

प्रीतोऽस्मि ते वरं दास्ये वरं वरय सुव्रत ।
इति चोवाच नरकं स तदा कमलासनः ।।७२।।

हे सुन्दर व्रत वाले ! मैं प्रसन्न हूँ । तुम वर माँगो । मैं तुम्हें वर दूँगा । ऐसे वचन तब कमलासन, ब्रह्मा ने नरक से कहे ।। ७२ ।।

स दृष्ट्वा सर्वलोकेशं प्रत्यक्षं कमलासनम् ।
प्रणम्य प्राञ्जलिः प्रोचे विनयानतकन्धरः ।।७३।।

सभी लोकों के स्वामी कमलासन ब्रह्मा को प्रत्यक्ष देखकर वह नरक नम्रता से कन्धों को झुकाकर, हाथ जोड़कर प्रणाम करता हुआ बोला- ।। ७३ ।।

।। भौमो वाच ।।

देवासुरेभ्यो रक्षोभ्यः सर्वेभ्यो देवयोनितः ।
अवध्यत्वं सुरश्रेष्ठ वरमेकं प्रयच्छ मे ।।७४।।

भौम बोला– हे देवताओं में श्रेष्ठ ! एक वर आप मुझे यह दें कि देवता, राक्षस, असुरों, सभी गन्धर्वादि देवयोनियों में उत्पन्न जनों द्वारा मैं न मरने योग्य हो जाऊँ ।। ७४ ।।

अविच्छिन्ना सन्ततिर्मे यावच्चन्द्रो रविस्तपेत् ।
तावद्भवतु लोकेश द्वितीयोऽयं वरो मम ।।७५।।

हे लोकों के स्वामी ! दूसरा वर आप मुझे यह दीजिये कि जब तक सूर्य और चन्द्रमा तपते रहें तब तक मेरी सन्तान परम्परा अक्षुण्ण रहे ।। ७५ ।।

तिलोत्तमाद्या या देव्यः सद्रूपगुणसंयुताः ।
तास्ता मे दयिताः सन्तु सहस्राणि तु षोडश ।।७६।।

तिलोत्तमा आदि जो उत्तम रूप और गुणों से युक्त, सोलह हजार देवियाँ हैं, वे सब मेरी पत्नियाँ होवें ।। ७६ ।।

अजेयत्वं सदा श्रीर्मा न जहातु कदाचन ।
इति पञ्च वरा मेऽद्य वृतास्त्वत्तः पितामह ।।७७।।

मैं सदैव अजेय रहूँ और कभी भी लक्ष्मी मेरा साथ न छोड़े । हे पितामह ! आज मैंने ये पाँच वर आपसे माँगे हैं ।। ७७ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

मायया मोहितो भौमो मुनिशापं विस्मृत्य च ।
अन्यद्वरान्तरं वव्रे मुनिशापस्तथा स्थितः ।।७८।।

मार्कण्डेय बोले– माया से मोहित होने के कारण भौम ने मुनिशाप को भूल कर, दूसरे-दूसरे वर माँगे। किन्तु मुनिवसिष्ठ का शाप ज्यों का त्यों बना रहा ॥ ७८ ॥

एवमस्त्विति तान् सर्वान् वरान् दत्त्वा पितामहः ।
उवाचेदं द्वापरान्ते सन्ध्यायां सुरकन्यकाः ।
तिलोत्तमाद्यास्ते जायाः सम्भविष्यन्ति भूतले ।।७९।।

तब ऐसा ही हो इस वचन के साथ उन सभी वरों को देकर पितामह ब्रह्मा ने ये वचन कहे—द्वापरयुग के अन्त में युगसन्ध्या के काल में तिलोत्तमा आदि उपर्युक्त देवकन्याएँ इस पृथिवीलोक में तुम्हारी पत्नियाँ होवेंगी ॥ ७९ ॥

न यावन्नारदो याति वज्रध्वज पुरं तव ।
तावन्न मैथुने योज्या भवता ताः क्षितेः सुत ।।८०।।

हे पृथिवी के पुत्र ! वज्रध्वजाधारण करने वाले नरक ! जब तक नारद तुम्हारे नगर में न आ जायँ, तब तक तुम उन्हें मैथुन कर्म में मत लगाना ॥ ८० ॥

इत्युक्त्वा सर्वलोकेशः क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ।
मुदमासाद्य परमां स्वस्थानं नरकोऽभ्यगात् ।।८१।।

ऐसा कहकर सभी लोकों के स्वामी ब्रह्मा, क्षणभर में ही अन्तर्हित हो गये एवं नरक भी अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ अपने स्थान पर वापस लौट गया ॥ ८१ ॥

ततो मुदितलोकं तं नगरं श्रीनिषेवितम् ।
सदा सोत्साहसम्पूर्णभीतिविघ्नविवर्जितम् ।।८२।।

तब वहाँ के लोग प्रसन्नचित्त हो गये तथा वह नगर श्री सम्पन्न हो गया। सदा वह उत्साह से पूर्ण, दैवी आपदाओं एवं विघ्नों से रहित हो गया ॥ ८२ ॥

अभवत् पशुसंघैश्च वाजिवारणकुम्भकैः ।
सम्पूर्णं देवराजस्य दयितेवामरावती ।।८३।।

वह नगर घोड़े, मतवाले हाथियों आदि पशु-समूहों से परिपूर्ण हो देवराज इन्द्र की प्रिय नगरी, अमरावती की भाँति शोभायमान होने लगा ॥ ८३ ॥

उत्तीर्णतपसं श्रुत्वा बाणो दत्तवरं तथा ।
स्वयं पुनरुपातिष्ठद् भौमं वज्रध्वजं तदा ।।८४।।

जब बाण ने सुना कि भौम तपस्या में सफल हो तथा वरदान प्राप्त कर चुका है तब वह वज्रध्वजा वाले भौमासुर के पास स्वयं पुनः उपस्थित हुआ ॥ ८४ ॥

स गत्वा भौमनगरं बाणः प्राग्ज्योतिषाह्वयम् ।
पप्रच्छ नरकं मित्रं तपसः सन्निवेशनम् ।।८५।।

उस बाण ने भौमासुर की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर नामक नगर में जाकर अपने मित्र नरक से उसकी तपस्या के विषय में पूछा ॥ ८५ ॥

।। बाण उवाच ।।

कुत्र त्वया तपस्तप्तं किं वा चीर्णं त्वया व्रतम् ।
कीदृशो वा वरो लब्धस्त्वं ममाख्यातुमर्हसि ।।८६।।

बाण बोला–तुमने कहाँ तपस्या की ? या कौन सा दीर्घव्रत किया ? या किस प्रकार का वर तुमने प्राप्त किया ? यह सब मुझसे कहो ॥ ८६ ॥

दृष्टं तव पुरं सर्वं प्रहृष्टजनसंकुलम् ।
वाजिवारणरत्नौघैः पूरितं मङ्गलस्वनैः ।।८७।।

मैंने तुम्हारे नगर को प्रसन्न लोगों तथा हाथी, घोड़े और विविध रत्नों एवं मंगलध्वनि से परिपूर्ण देखा है ॥ ८७ ॥

दृश्यतेऽद्य त्वया पाल्यं शस्यपूर्णमनामयम् ।
कथ्यतां वा कथं ब्रह्मा वरं तुभ्यं प्रदत्तवान् ।।८८।।

आज तुम्हारे द्वारा पालन किया गया राज्य, हरा-भरा और रोगरहित दिखाई दे रहा है । बताओ, ब्रह्मा ने तुम्हें कैसा वर प्रदान किया है ? ॥ २८ ॥

।। भौम उवाच ।।

ब्रह्मा स्वयं पर्वतरूपधारी
कामेश्वरीं धर्तुमिहावतीर्णः ।
तत्र स्वयं सम्प्रति घस्रमेति
पुरा न यावच्छपते वसिष्ठः ।।८९।।

भौम बोला– ब्रह्मा स्वयं पर्वत का रूप धारण कर कामाख्या देवी को धारण करने के लिए यहाँ अवतीर्ण हुए हैं तथा प्राचीन काल में जब वसिष्ठ ने शाप नहीं दिया था तो वे स्वयं प्रतिदिन यहाँ आते थे ॥ ८९ ॥

सोऽयं पुरे मे बलिपुत्र राजते
देवौघसेव्योऽप्यमरोत्तमांशः ।
तत्राहमेको वरतोयभोजनो
वर्षाण्यकार्षं च तपः शतानि वै ।।९०।।

हे बलिपुत्र ! वे देवश्रेष्ठ, स्वयं देवसमूहों से सेवित हो मेरे नगर में निवास करते हैं । वहीं मैंने एकमात्र लौहित्यनद के श्रेष्ठजल का भोजन करते हुये सौ वर्षों तक तपस्या की ॥ ९० ॥

लौहित्यतीरे घनवायुसेविते
मनोहरे प्राणभृतां सुखप्रदे ।
तपःप्रवृत्तस्य सुखं समागम-
च्छरद् यथैका शरदां शतानि मे ।।९१।।

लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नद के मेघ और वायु से युक्त प्राणियों के लिए सुखप्रद या मनोहरतट पर तपस्या करते हुए मेरे सौ वर्ष, एक वर्ष की भाँति सुखपूर्वक व्यतीत हो गये ॥ ९१ ॥

ततः स तुष्टश्चतुराननोऽभवत्
प्रत्यक्षतो मां न्यगदच्च मद्धितम् ।
तव प्रसन्नोऽस्मि वरं तथेप्सितं
दास्ये गृहाणेति पुरोऽथ भूत्वा ।।९२।।

तब वे ब्रह्मा प्रसन्न हुए और मेरे सम्मुख प्रत्यक्ष हो मुझसे बोले—"तुम्हारे पर प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हें तुम्हारा इच्छित वर देता हूँ। उसे ग्रहण करो।" ॥ ९२ ॥

अवध्यता मे सुरयोनितः सुरा-
दच्छिन्नसन्तानमजेयता तथा ।
सदा विभूतिर्न जहातु मामिति
वराश्च नार्यो नवयौवनान्विताः ।।९३।।
एते वराः पञ्च मया ततो वृताः
सोऽपि प्रतिश्रुत्य गतो निजास्पदम् ।।९४।।

मेरे द्वारा देवताओं एवं देवयोनियों से अबध्यता, निरन्तर सन्तानपरम्परा, अजेयता, सदैव सम्पत्ति मेरा साथ न छोड़े, तथा नवयौवनयुक्त स्त्रियों के सम्पर्क के रूप में ये पाँच वर मेरे द्वारा उनसे माँगे गये। तब वर देकर वे भी अपने लोक को चले गये ॥ ९३-९४ ॥

ततोऽहमभ्येत्य पुरं निजं मुदा
मन्त्रिप्रवीरैः सहितः पुनस्तान् ।
पौरान् सबन्धून् सगणानमोदयम्
दानेन मानेन च भोजनेन ।।९५।।

तब से मैं भी प्रसन्नतापूर्वक अपने नगर में आकर वीर सैनिकों, मन्त्रियों, नागरिकों, बन्धुओं, गणों के साथ दान-मान और भोजन द्वारा पुनः आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ ॥ ९५ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इतीरितं तस्य बलेः सुतस्तदा
भौमस्य श्रुत्वा मुमुदे न तत्क्षणात् ।

इदं तदोचे वचनं क्षितेः सुतं
तत्कालयुक्तं न च सूनृतोद्भवम् ।।९६।।

मार्कण्डेय बोले– उस समय भौमासुर के इस प्रकार कहे वचनों को सुनकर, बलि का पुत्र बाण, तब प्रसन्न नहीं हुआ तथा पृथ्वीपुत्र भौम से उसने यह कहा जो सत्य तो था किन्तु उस अवसर के अनुरूप नहीं था ॥ ९६ ॥

।। बाण उवाच ।।

न ते मुनेः शापमतीत्य गन्तुं
भूता मतिर्मित्र तदा विधेः पुरः ।
कथं तु भद्रं भविता तवेह
भावीत्यवश्यं क्षितिपुत्र नित्यम् ।।९७।।

*बाण बोला–*हे पृथ्वीपुत्र ! हे मित्र ! विधाता के सम्मुख वसिष्ठ मुनि के शाप को लाँघ कर आगे बढ़ने की तुम्हारी बुद्धि नहीं हुई। तब तुम्हारा इस लोक में कल्याण कैसे होगा ? होनी अवश्य होती है, वह नित्य है ॥ ९७ ॥

कृतस्य करणं नास्ति दैवाधिष्ठितकर्मणः ।
भावीत्यवश्यं यद्भाव्यं तत्र ब्रह्माप्यबाधकः[१] ।।९८।।

दैव के द्वारा किये गये कार्य का कोई साधन अपेक्षित नहीं होता, जो होनी है वह अवश्य होती है, उसे ब्रह्मा भी नहीं रोक सकते ॥ ९८ ॥

तस्मात् त्वं सुमहावीरानसुरान् पावकोपमान् ।
सन्ध्याय च पुरस्कृत्य साचिव्ये विनियोजय ।।९९।।

इसलिए तुम अग्नि के समान महान् पराक्रमी असुरों को खोजकर और सम्मानित कर मन्त्रित्व के लिए विनियोजित करो ॥ ९९ ॥

द्वारि संस्थाप्य वै वीरान् देवैरपि दुरासदान् ।
अतिक्रमस्व देवेशं यदि लब्धवरो भवान् ।।१००।।

नगर के द्वार पर देवताओं द्वारा भी अजेय वीरों को स्थापित कर देवराज इन्द्र पर आक्रमण करो; क्योंकि तुमने देवताओं से अबध्यता का वर प्राप्त कर लिया है ॥ १०० ॥

---

१. यह उत्तम सूक्ति है।

विधिना यो वरो दत्तो भवते तत्-परीक्षणम् ।
कतुमर्हसि जायायामपुत्रो जनकात्मजम् ।।१०१।।

इस प्रकार से ब्रह्मा द्वारा जो तुम्हें वर दिया गया है उसका परीक्षण भी हो जायेगा। तुम अपुत्र हो, पत्नी से अपने पुत्रों को उत्पन्न करो ॥ १०१ ॥

इत्युक्त्वा प्रययौ बाणो यथावत् तेन पूजितः ।
नरको मित्रवचनं कर्तुं समुपचक्रमे ।।१०२।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे भौमतपस्यायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

ऐसा कहकर उस भौम द्वारा यथोचित रूप से पूजित हो, बाण लौटकर अपने स्थान को चला गया तथा नरक भी मित्र के कथनानुसार कर्म करने को उद्यत हुआ ॥ १०२ ॥

॥ श्रीकालिकापुराण का भौमतपस्या सम्बन्धी उन्तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३९ ॥



चत्वारिंशोऽध्यायः

नरकोपाख्यानम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ऋतुमत्यां तु जायायां काले स नरकः क्रमात् ।
भगदत्तं महाशीर्षं मदवन्तं सुमालिनम् ।।१।।
चतुरो जनयामास पुत्रानेतान् क्षितेः सुतः ।
महासत्त्वान् महावीर्यान् वीरैरन्यैर्दुरासदान् ।।२।।

मार्कण्डेय बोले– समय आने पर उस पृथ्वीपुत्र नरक ने अपनी ऋतुमती (मासिकधर्मान्तरा) पत्नी से क्रमशः (१) भगदत्त, (२) महाशीर्ष, (३) मदवन्त, (४) सुमालिन् इन चार महान् पराक्रमी, दूसरों के द्वारा अजेय, महाबलशाली, वीरपुत्रों को उत्पन्न किया ।। १-२ ।।

ततो बाणस्य वचनाद् हयग्रीवं तथा मुरुम् ।
सन्धायाथ समानीय सैनापत्येऽभ्यषेचयत् ।।३।।

तब बाण के वचनानुसार हयग्रीव तथा मुरु नामक महान् दैत्यों को ढूँढ़कर, उन्हें लाकर, अपने सेनापति के पद पर अभिषिक्त किया ।। ३ ।।

मुरुं सन्निहितं श्रुत्वा हयग्रीवं च भौमिना ।
ये ये क्षितौ तदा ह्यासन्नसुरास्तेऽपि सङ्गताः ।।४।।

मुरु तथा हयग्रीव को भौमासुर के साथ आया हुआ जानकर उस समय जो-जो पृथ्वी पर असुर थे, वे सब उस समय भौम के साथ हो गये ।। ४ ।।

हयग्रीवं मुरुं श्रुत्वा नरकेण समागतम् ।
निसुन्दसुन्दनामानावसुरौ सैनिकैः सह ।।५।।

हयग्रीव तथा मुरु को नरक के साथ आया हुआ सुनकर, निसुन्द और सुन्द नामक दो असुर भी अपने सैनिकों सहित आ गये ।। ५ ।।

विरूपाक्षस्तदा दैत्यः सर्वे तेन समागमन् ।
ततः स पश्चिमद्वारि नरकः सेनया सह ।।६।।
मुरुं द्वाराधिपं चक्रे हयग्रीवं तथोत्तरे ।
पूर्वद्वारि निसुन्दन्तु विरूपाक्षं तु दक्षिणे ।।७।।

तब विरूपाक्ष नामक दैत्य उन सबके साथ आ गया। तब उस नरक ने पश्चिम द्वार पर सेनासहित मुरु को, हयग्रीव को उत्तरी द्वार पर, निसुन्द को पूर्वी द्वार पर और विरूपाक्ष को दक्षिणी द्वार पर, द्वाराधिपति नियुक्त किया ॥ ६-७ ॥

मध्ये पञ्चजनं सुन्दं सैनापत्येऽभ्यषेचयत् ।
मुरुं क्षुरान्तान् पाशांश्च षट्सहस्राण्ययोजयत् ।
द्वारि तत् पुररक्षार्थं सत्कृतः क्षितिसूनुना ।।८।।

उसने मध्य में पञ्चजन, सुन्द को सेनापति पद पर अभिषिक्त किया। इतना ही नहीं तो मुरु, क्षुर, पाश आदि साठ हजार असुरों को उस नगर और द्वार की रक्षा के लिए पृथ्वीपुत्र भौम के द्वारा सम्मानपूर्वक नियुक्त किया गया ॥ ८ ॥

एवं पूर्वान् पूर्वतरानवमत्य सुमन्त्रिणः ।।९।।
असुरैरेव सततं सोऽसुरो मुदितोऽभवत् ।
पूर्वं गृहीतं भावं स परित्यज्य क्षितेः सुतः ।।१०।।
आसुरं भावमासाद्य बाधते त्रिदिवौकसः ।
न देवान् न मुनीन् सर्वान् न च जानाति कांश्चन ।।११।।

इस प्रकार पहले और उससे भी पहले के सुन्दर मन्त्रियों की अवहेलना कर वह नरक नामक असुर, असुरों के साथ ही आनन्दयुक्त हो रहने लगा। वह पृथ्वीपुत्र पहले ग्रहण किये, मानुषभाव को छोड़कर, आसुरी भाव ग्रहण कर देवताओं को कष्ट देने लगा। वह देवता, मुनिगणों में से किसी को नहीं जानता था (महत्त्व देता था)॥ ९-११ ॥

सुरेश्वरं जिगायाशु हयग्रीवसहायवान् ।
एवं स चासुरं भावं तन्वानो विचरन् क्षितौ ।।१२।।

इस प्रकार आसुरीभाव का प्रसार करता हुआ वह देवराजइन्द्र को हयग्रीव की सहायता से जीतने की इच्छा ले, पृथिवी पर विचरण करने लगा ॥ १२ ॥

बाणस्य वचनाच्छक्रं बाधयत्येव वै मुनीन् ।
देवेश्वरं त्रिधा जित्वा हयग्रीवसहायवान् ।।१३।।

बाण के वचनानुसार वह इन्द्र और मुनियों को ही विशेष कष्ट पहुँचाता था। हयग्रीव की सहायता से उसने देवराजइन्द्र को तीन बार जीता ॥ १३ ॥

अदित्याः कुण्डलयुगं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
सर्वरत्नामृतस्नावि दुःखविघ्नहरं परम् ।
जहार नरको भौमो निर्भीतो मुनिशापतः ।। १४।।

मुनिवसिष्ठ के शाप से न डरते हए भूमिपुत्र नरक ने तीनों लोकों में विख्यात, सभी रत्नों से अमृतवर्षा करने वाले, दुःख और विघ्नों को दूर करने वाले, देवमाता अदिति के दोनों दिव्य कुण्डलों का अपहरण कर लिया ॥ १४ ॥

एवं देवान् बाधमानो मुनीन् विप्रान् क्षितेः सुतः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि राज्यं प्राग्ज्योतिषेऽकरोत् ।।१५।।

पृथ्वीपुत्र भौम ने इस (ऊपरवर्णित) प्रकार से देवताओं, ऋषियों, ब्राह्मणों को कष्ट देते हुए प्राग्ज्योतिषपुर में पाँच हजार वर्षों तक राज्य किया ॥ १५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवी महाभारार्दिता क्षितिः ।
ब्रह्मविष्णुमुखान् देवान् रक्षार्थं शरणं गता ।
इदं चोवाच धातारं प्रणम्योर्वी समाधवम् ।।१६।।

इस बीच पृथ्वी देवी महान् भार से पीड़ित हो, अपनी रक्षा हेतु ब्रह्मा, विष्णु आदि प्रमुख देवताओं के शरण में गयी तथा विष्णु के सहित ब्रह्मा को प्रणाम कर इस प्रकार बोली— ॥ १६ ॥

।। पृथिव्युवाच ।।

दानवा राक्षसा दैत्या हरिणा ये च सूदिताः ।
ते राज्ञां मन्दिरे जाता अधुना बलगर्विताः ।।१७।।

पृथ्वी बोली– जो राक्षस, दानव एवं दैत्य, पहले विष्णु द्वारा मारे गये थे, वे अब राजाओं के भवनों में बल से गर्वित हो रहे हैं ॥ १७ ॥

तेषां भारमहं सोढुं न शक्नोमि महत्तरम् ।
असङ्ख्याताश्च ते सर्वे तान् सङ्ख्यातुं न चोत्सहे ।।१८।।

ऐसे असुरभाव प्राप्त राजाओं के महान् भार को ढोने में मैं समर्थ नहीं हूँ। वे असंख्य है, उनकी संख्या को गिनने का साहस नहीं किया जा सकता ॥ १८ ॥

अष्टौ शतसहस्राणि तेषां मुख्या महाबलाः ।
तेष्वप्यतिबलान् वोढुं न ताञ्छक्नोमि चाधुना ।।१९।।

उनमें भी आठ सौ हजार (८०००००) मुख्य और महान् बलशाली हैं। उनमें भी कई अत्यन्त बलवान् हैं, मैं इस समय जिनका भार सहन नहीं कर पा रही हूँ, वे निम्नलिखित हैं—॥ १९ ॥

बाणं बलेः सुतं वीरं कंसं धेनुकमेव च ।
अरिष्टं च प्रलम्बं च सुनामानं मुरुं शलम् ।।२०।।
चाणूरमुष्टिकौ मल्लौ जरासन्धं महाबलम् ।
नरकं च हयग्रीवं निसुन्दं सुन्दमेव च ।।२१।।
विरूपाक्षं पञ्चजनं हिडिम्बं च बकं बलम् ।
जटासुरं च किर्मीरमनायुधमलम्बुषम् ।।२२।।
सौभाख्यं च जरासन्धं द्विविदं चापि वानरम् ।
श्रुतायुधं महादैत्यं शतायुधमथापरम् ।।२३।।

ऋष्यश्रृङ्गसुतं चैव सुबाहुमतिबाहुकम् ।
कालकंजांस्तथा दैत्यान् हिरण्यपुरवासिनः ।।२४।।

बलि का पुत्र बाण, वीरवरकंस, धेनुक, अरिष्ट, प्रलम्ब, सुनामान, मुरु, शल, पहलवान चाणूर और मुष्टिक, महाबलीजरासन्ध, नरक, हयग्रीव, निसुन्द, सुन्द, विरूपाक्ष, पंचजन, हिडिम्ब, बलवान्बकासुर, जटासुर, किर्मीर, अनायुध, अलम्बुष, सौभ, जरासन्ध, वानरद्विविद, महादैत्यश्रुतायुध, शतायुध, शृङ्गी ऋषि के पुत्र सुबाहु और अतिबाहु, कालकंज तथा हिरण्यपुर निवासी अन्य दैत्य ।। २०-२४ ।।

एतेषां तु पदक्षोभैर्विशीर्णाहं दिने दिने ।
लोकान् वोढुं न शक्नोमि तान्निघ्नन्तु सुरोत्तमाः ।।२५।।

हे देवश्रेष्ठों ! इन ऊपरवर्णित, राजवेषधारी, राक्षसों के पैरों के चालन से क्षुब्ध हो मैं दिनोंदिन नष्ट हुई जा रही हूँ । अतः लोक के भी वहन की सामर्थ्य नहीं रह गयी है । अतः आप इन्हें मार डालिये ।। २५ ।।

नचेद्रक्षां प्रकुर्वन्ति भवन्तः सुरसत्तमाः ।
तदा विशीर्णा यास्यामि पातालमवशाऽधुना ।।२६।।

यदि आप सब देव-श्रेष्ठ मेरी रक्षा नहीं करेंगे तो मैं नष्ट हो, विवश हो, पाताल में चली जाऊँगी ।। २६ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततस्तस्या वचः श्रुत्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
इत्यूचुस्ते करिष्यामः क्षितेः भारविमोक्षणम् ।।२७।।

मार्कण्डेय बोले– तब उस (पृथिवी देवी) के वचन को सुनकर ब्रह्मा, विष्णु, और महेश बोले कि हम सब पृथिवी के भार का विमोचन करेंगे ।। २७ ।।

विसृज्य पृथिवीं देवीं सर्वे देवाः सनातनम् ।
माधवं तोषयामासुर्भारावतरणं प्रति ।।२८।।

उपर्युक्त आश्वासन दे, पृथिवी देवी को विदाकर, वे सभी देवता भारोद्धार हेतु सनातन देव माधव (भगवान विष्णु) को प्रसन्न करने लगे ।। २८ ।।

स तु तुष्टः सुरान् सर्वान् स्वांशैरवतरन्तु वै ।
क्षितौ भारावतारायेत्युक्त्वा स्वयमिह प्रभुः ।
अवतीर्णोऽथ देवक्या गर्भे भारावतारणे ।।२९।।

तब वह विष्णु, सन्तुष्ट हो, "पृथ्वी के भारहरण हेतु सभी देवता अपने-अपने अंशों से पृथिवी पर अवतार ग्रहण करें" ऐसा कहकर, स्वयं भार दूर करने के लिए देवकी के गर्भ से अवतीर्ण हुए ।। २९ ।।

विष्णुं चावतरिष्यन्तं ज्ञात्वा देवाः सनातनम् ।।३०।।
रम्भातिलोत्तमाद्याश्च देव्यो रूपगुणान्विताः ।
क्षितावुत्पादयामासुः सहस्राणि तु षोडश ।।३१।।

सनातन भगवान् विष्णु को अवतार लिया जानकर देवताओं ने रूप गुण से युक्त रम्भा, तिलोत्तमादि सोलह हजार देवियों को पृथिवी पर उत्पन्न किया ॥ ३०-३१ ॥

ताः सर्वा हिमवत्पृष्ठे क्रीडमाना वरस्त्रियः ।
अपश्यन्नरको भौमस्तान् जहार तदा हठात् ।।३२।।

वे सभी श्रेष्ठस्त्रियाँ, हिमालयपर्वत पर क्रीड़ा कर रही थीं। नरक ने उन्हें देखा तथा उन्हें बलपूर्वक हरण कर लिया ॥ ३२ ॥

तेन ता धर्षिता देव्यो नीताः प्राग्ज्योतिषं प्रति ।
नरकं प्रार्थयामासु; समयं मैथुनं प्रति ।।३३।।

उसके द्वारा हरण की वे स्त्रियाँ जब प्राग्ज्योतिषपुर में लायी गयीं तब उन्होंने नरक से मैथुन के लिए अवसर प्रदान करने की प्रार्थना की ॥ ३३ ॥

नारदो यावदायाति नगरं प्रति भौम ते ।
अस्माकं कुरु रक्षां च तावन्नो मुंच मैथुने ।।३४।।

उन्होंने कहा—हे भौम ! जब तक नारद तुम्हारे नगर में नहीं आ जाते तब तक तुम मैथुन से मुक्त कर हमारी रक्षा करो ॥ ३४ ॥

स समेष्यति वीर त्वां न चिरान्नो ह्यनुग्रहात् ।
तेन दृष्टा वयं सार्धमेष्यामः सङ्गमं त्वया ।।३५।।

हे वीर ! वह शीघ्र ही कृपापूर्वक तुम्हारे यहाँ पधारेंगे और उनको देखकर हम तुम्हारे साथ सम्पर्क करेंगी ॥ ३५ ॥

इति सम्प्रार्थितस्ताभिर्नरको भूमिनन्दनः ।
ब्रह्मवाक्यं तदा स्मृत्वा एवमस्तूचिवान् मुहुः ।।३६।।

उनके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर भूमिपुत्र नरक ने ब्रह्मा के वाक्यों का तब स्मरण किया और पुनः उनसे ऐसा ही हो, यह कहा ॥ ३६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवो भगवान् लोकभावनः ।
देवक्या जठराज्जातो वृद्धो नन्दगृहेऽभवत् ।।३७।।

इस बीच लोकप्रिय लगने वाले भगवान् विष्णु, देवकी के गर्भ से प्रकट हुए तथा नन्द के घर में बड़े हुए ॥ ३७ ॥

कंसकेशिप्रलंबादीन् हत्वा दैत्याननेकशः ।
अकरोद् द्वारकावासं सागरे सलिलान्तरे ।।३८।।

उन्होंने कंस, केशि, प्रलम्बादि अनेक दैत्यों को मारकर सागर के जल में स्थित द्वारिका नगरी में अपना निवास किया ॥ ३८ ॥

तत्राष्टौ कन्यकास्तेन स्वधर्मेण च स्वीकृताः ।
कालिन्दी सत्यभामा च रूक्मिणी रमणी तथा ।।३९।।
नग्नजित्तनया भद्रा लक्ष्मणा चारुहासिनी ।
सुशीला मित्रवृन्देति तथा जाम्बवती सती ।।४०।।

वहाँ उनके द्वारा धर्मपूर्वक आठ कन्यायें, पत्नी के रूप में स्वीकार की गयीं। उनके नाम हैं—(१) कालिन्दी (जमुना), (२) सत्यभामा (३) रमणी रुक्मिणी, (४) नग्नजितराज की पुत्री (सत्या) (५) भद्रा (६) सुन्दरहँसीवाली लक्ष्मणा, (७) सुशीला मित्रवृन्दा (८) सती जाम्बवती ॥३९-४० ॥

एतासु स्त्रीषु च ततो ह्यनुरक्तस्य तस्य वै ।
षट्त्रिंशद्वत्सरा जाता बलदेवसहायिनः ।।४१।।

बलदेव के सखा श्रीकृष्ण के इन सब के साथ अनुरक्त हुये छत्तीस वर्ष बीत गये ॥ ४१ ॥

प्रद्युम्नसाम्बप्रमुखाः पुत्रास्तस्य महाबलाः ।
जातोस्तत्र द्विजश्रेष्ठाः शास्त्रे शस्त्रे च कोविदाः ।।४२।।

हे द्विजश्रेष्ठों ! उनके प्रद्युम्न, साम्बादि महाबली पुत्र उत्पन्न हुये जो शास्त्र एवं शस्त्र दोनों ही विद्याओं में निष्णात थे ॥ ४२ ॥

अनेके निहता दैत्या भारभूतास्तदा क्षितेः ।
प्रहृष्टः क्रीडमानश्च द्वारकायामुवास सः ।।४३।।

तब पृथ्वी के भार स्वरूप अनेक दैत्य मारे गये और वे प्रसन्नतापूर्वक क्रीड़ा करते हुए द्वारिका में निवास करने लगे ॥ ४३ ॥

अथ शक्रस्तदायातो नरकेणार्दितो भृशम् ।
द्वारकां प्रति कृष्णस्य दर्शनाय गणैः सह ।।४४।।

तब नरक से बहुत अधिक पीड़ित हो, इन्द्रदेव, कृष्ण के दर्शन हेतु अपने गणों के सहित द्वारिका आये ॥ ४४ ॥

तत्र गत्वा परिष्वज्य कृष्णं लोकनमस्कृतम् ।
पूजितस्तेन बहुशः आसने काञ्चने स्थितः ।।४५।।
कथयामास हरये नरकस्य विचेष्टितम् ।
शक्रो यथा पूर्ववृत्तं यथा वा वर्ततेऽधुना ।।४६।।

वहाँ जाकर वे लोक द्वारा नमस्कार योग्य कृष्ण से मिले। उनके द्वारा बहुत प्रकार से सम्मानित हो, स्वर्ण के आसन पर स्थित हो, श्रीकृष्ण से इन्द्र ने नरक की चेष्टाओं का वर्णन किया कि पहले वह कैसा था और अब वह कैसा हो गया है ॥ ४५-४६ ॥

।। शक्र उवाच ।।

श्रृणु कृष्ण महाबाहो यदर्थमहमागतः ।
कथयिष्यामि तत् सर्वं तत्र शङ्कां न संकुरु ।।४७।।

इन्द्र बोले–हे कृष्ण ! हे महाबाहु ! मैं जिस लिए यहाँ आया हूँ, वह सब मैं कहता हूँ, उसे सुनिये । उसमें थोड़ी भी शङ्का मत कीजिए ॥ ४७ ॥

भूमिपुत्रोऽसुरो नाम्ना नरकः सुरमर्दनः ।
चिरंजीवी पुरा विष्णुक्षितिभ्यां परिपालितः ।।४८।।

भूमि का पुत्र नरक नामक असुर है । वह देवताओं का मर्दन करने वाला, चिरंजीवी है । पृथिवी और विष्णु ने प्राचीन काल में उसका पालन किया है ॥ ४८ ॥

अधुना स क्षितिं विष्णुमवज्ञाय दुरासदः ।
बाणस्य वचनाद् भौमो ब्रह्माणं पर्यतोषयत् ।।४९।।

इस समय दुष्टात्मा भौम ने पृथ्वी एवं विष्णु की भी अवज्ञा करके बाण के वचनों के अनुसार ब्रह्मा को परितुष्ट किया है ॥ ४९ ॥

ब्रह्मतः स वरान् लब्ध्वा ह्यतीवाभूत् प्रदर्पितः ।
माधवं पृथिवीं वापि सस्मार न कदाचन ।।५०।।

ब्रह्मा से वरप्राप्त कर आज वह, अत्यन्त, विशेष घमण्ड से भर गया है, आज वह विष्णु या पृथ्वी देवी का कभी स्मरण भी नहीं करता ॥ ५० ॥

पूर्वमासीत् स धर्मात्मा ह्याराधितसुरो व्रती ।
अधुना बाधते सर्वानासुरं भावमाश्रितः ।।५१।।

पहले वह धर्मात्मा था तथा व्रतपरायण था । वह देवताओं की आराधना किया करता था । आज वह आसुरीभाव का आश्रय ले, उन सब देवताओं को कष्ट पहुँचा रहा है ॥ ५१ ॥

अदितेः कुण्डले मोहाज्जहारामृतसम्भवे ।
देवानृषीन् बाधमानो विप्राणामप्रिये रतः ।।५२।।

अमृतउत्पन्न करने वाले अदिति के कुण्डलों का उसने मोहवश हरण कर लिया है तथा देवताओं और ऋषियों को कष्ट देता हुआ वह ब्राह्मणों के अप्रिय करने में लगा हुआ है ॥ ५२ ॥

मां चापि बाधते नित्यं कामगामी दुरासदः ।
जेता तु सुरदैत्यानामवध्यः सर्वदेहिनाम् ।
तव चाप्यन्तरप्रेक्षी तं पापं जहि भूतये ।।५३।।

इच्छानुसार गमन करनेवाला, कामाचारी, दुष्टात्मा, देवता और असुरों द्वारा अवध्य तथा सब प्राणियों को जीतने वाला वह, मुझे भी नित्य बाधा देता है और

सबके अन्तर में स्थित तुम्हें भी कष्ट देता है। अतः ऐश्वर्यहेतु उस पाप का बध कर दीजिए ॥ ५३ ॥

त्वदर्थं सर्वदेवैर्या देवगन्धर्वकन्यकाः ।।५४।।
पुरा पर्वतमुख्ये तु हिमवत्यवतारिताः ।
चतुर्दश सहस्राणि सहस्रे द्वे शताधिके ।।५५।।
ताः सर्वाः कन्यकाः पापः प्रसह्य वरदर्पितः ।
जहार स दुराधर्षो हयग्रीवसहायवान् ।।५६।।

देवता और गन्धर्वों की जो सोलह हजार एक सौ कन्यायें प्राचीनकाल में तुम्हारे लिए सभी देवताओं द्वारा पर्वतराजहिमालय पर अवतरित की गयी थीं, ब्रह्मा के वरदान से घमण्ड में आकर तथा हयग्रीव की सहायता से उस अजेय पापी ने उन सभी कन्याओं का बलपूर्वक हरण कर लिया है ॥ ५४-५६ ॥

सागरे यानि रत्नानि पृथिव्यां च त्रिविष्टपे ।
तानि सर्वाणि संहृत्य प्रमथ्य सुरमानुषान् ।।५७।।

समुद्र में पृथ्वी पर या स्वर्ग में जो भी रत्न है, देवताओं और मनुष्यों को जीतकर उन सबका संग्रह कर लिया है ॥ ५७ ॥

तीरे लौहित्यतीर्थस्य सोऽकरोन्मणिपर्वतम् ।
तस्मिन् गिरौ पुरीं रम्यां कारयित्वाऽलकाह्वयाम् ।।५८।।

ऐसा करके उसनें लौहित्यतीर्थ, ब्रह्मपुत्र के किनारे एक मणियों का पर्वत बनाया है तथा उस पर्वत पर उसने अलका नाम वाली एक सुन्दर नगरी बसायी है ॥ ५८ ॥

ताः सर्वा वासयामास देवगन्धर्वयोषितः ।
एकवेणीधराः सर्वाः सम्भोगपरिवर्जिताः ।
त्वामेव ताः प्रतीक्षन्ते सनाथाः, कुरु कृष्ण ताः ।।५९।।

वे सब देव और गन्धर्वों की कन्यायें वहीं बसाई गयी हैं। वे सभी एक चोटी धारण करने वाली तथा सम्भोग से वर्जित हो, तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रही हैं। हे कृष्ण ! तुम उन्हें जाकर सनाथ करो ॥ ५९ ॥

यावदागच्छति पुरं भवतो नारदो मुनिः ।।६०।।
तावन्न मैथुने यत्नं भौम त्वं संकरिष्यसि ।
इति ताः समयं चक्रुर्नरकस्य दुरात्मनः ।।६१।।

उन सबने दुरात्मा नरक के साथ यह अनुबन्ध कर रखा है कि जब तक नारद मुनि आपके नगर में नहीं आयेंगे, हे भौम! तब तक आप मैथुन के लिए यत्न नहीं करोगे ॥ ६०-६१ ॥

नारदश्च तदायातः प्राग्ज्योतिषपुरं प्रति ।
यदा त्वं नरकं हन्तुं गन्ता तत्पुरमुत्तमम् ।।६२।।

तथा नारद उसके नगर प्राग्ज्योतिषपुर में तब आयेंगे जब आप नरकासुर को मारने के लिए उसके उत्तमनगर में जायेंगे ।। ६२ ।।

तस्मात् त्वं पापकर्माणं नरकं नरकोपमम् ।
जहि देवमनुष्याणां कण्टकं तं दुरासदम् ।।६३।।

इसलिए आप देवताओं और मनुष्यों को कष्ट पहुँचाने वाले, पापी, पाप कर्म करने वाले, नरक के समान उस नरक को मार डालो ।। ६३ ।।

बधात् तस्य क्षितिर्देवी पुत्रशोकं न चाप्स्यसि ।
स्वयमेव वधं तस्य देवेभ्यो यदयाचत ।।६४।।

उसके वध से पृथिवी देवी शोक का अनुभव नहीं करेगी; क्योंकि स्वयं उन्होंने ही देवताओं से उसके वध हेतु याचना की है ।। ६४ ।।

तस्मात् तं जहि पापिष्ठं नरकं पापपूरुषम् ।
स्त्रीरत्नान्यपि रत्नानि तं निहत्य समुद्धर ।।६५।।

इसलिए उस पापी पापपुरुष नरक का वध करो । उसे मार कर उसके द्वारा अधिगृहीत रत्नों एवं स्त्री-रत्नों का भी उद्धार करो ।। ६५ ।।

इत्युक्तो जगतां नाथः शक्रेण सुमहात्मना ।
प्रतिजज्ञे क्षितिसुतं हन्तुं प्रति तदैव हि ।।६६।।

जगत के स्वामी श्रीकृष्ण ने महात्मा इन्द्र द्वारा ऐसा कहे जाने पर, तभी पृथ्वीपुत्र नरक को मारने की प्रतिज्ञा की ।। ६६ ।।

प्रतिज्ञाय वधं तस्य शक्रेण सह केशवः ।
तदैव यात्रामकरोत् प्राग्ज्योतिषपुरं प्रति ।।६७।।

उस (नरक) के वध की प्रतिज्ञा करके केशव (कृष्ण) ने इन्द्र के साथ उसी समय प्राग्ज्योतिषपुर के लिए यात्रा की ।। ६७ ।।

आरुह्य गरुडं कृष्णः सत्यभामाद्वितीयकः ।
प्राग्ज्योतिषमुखोऽगच्छद्वासवस्त्रिदिवं ययौ ।।६८।।

सत्यभामा को साथ ले, गरुड़ पर सवार हो, कृष्ण प्राग्ज्योतिषपुर की ओर गये तथा इन्द्र स्वर्ग चले गये ।। ६८ ।।

दिवमाक्रम्य गच्छन्तौ कृष्णशक्रौ महाद्युती ।
यादवाः ददृशुस्तत्र सूर्याचन्द्रमसौ यथा ।।६९।।

तब आकाश को पार कर जाते हुए महान् द्युतिसम्पन्न कृष्ण और इन्द्र को यादवों ने सूर्य और चन्द्रमा जैसा देखा ।। ६९ ।।

संस्तूयमानौ गन्धर्वैर्देवैरप्सरसां गणैः ।
कृष्णः शक्रः क्षणादेव गतौ खे तावदृश्यताम् ।।७०।।

देवताओं, गन्धर्वों, अप्सराओं के समूहों द्वारा स्तुति किये जाते हुए दोनों कृष्ण और इन्द्र, आकाश में अदृश्यता को प्राप्त हो गये ॥ ७० ॥

ततः क्षणेन गरुडेनाससाद जगत्पतिः ।
पुरं प्राग्ज्योतिषं रम्यं नरकेण वशीकृतम् ।।७१।।

तब गरुड़ पर सवार हो, जगत के स्वामी, श्रीकृष्ण, क्षणभर में नरक के वशवर्ती, सुन्दर प्राग्ज्योतिषपुर में पहुँच गये ॥ ७१ ॥

स दुर्गं मौरवैः पाशैः षट्सहस्त्रैर्भयङ्करैः ।
क्षुरान्तैर्वेष्टितं पार्श्वे मृत्युपाशैरिवोच्छ्रितम् ।।७२।।

वह छः हजार भयङ्कर मुरु, पाश, क्षुर आदि भयङ्कर राक्षसों से घिरा हुआ मृत्युपाश की भाँति चारोओर से घिरा हुआ और रक्षित था ॥ ७२ ॥

निर्गच्छन्तं पुरात् तस्मात् नारदं च ददर्श सः ।
स तु देवमुनिः श्रीमान् यदागान्नरकं प्रति ।।७३।।
तदा प्राग्ज्योतिषं गत्वा सत्कृतस्तेन नारदः ।
सङ्गमे समयं प्रोचे नरकाय स योषिताम् ।।७४।।

तब उन्होंने उस नगर से नारद को निकला हुआ देखा। वे श्रीमान देवर्षि नारद जब नरक के पास गये तब नारद ने प्राग्ज्योतिषपुर में जाकर उस नरकासुर द्वारा सम्मानित हुए और देवकन्याओं से सम्पर्क के लिए उसे समय बताया था ॥ ७३-७४ ॥

।। नारद उवाच ।।

प्रवर्ततेऽद्य चैत्रस्य शुक्लपक्षस्य पञ्चमी ।
नवम्यां तु धरापुत्र प्राप्नोति महदापदम् ।।७५।।

नारद बोले– हे धरतीपुत्र भौम ! आज चैत्रमास के शुक्लपक्ष की पंचमी तिथि है, किन्तु नवमी को महान आपत्ति आने वाली है ॥ ७५ ॥

तदा यदि चतुर्दश्यां सुस्नाता योषितस्त्विमाः ।
सुरतेषु त्वया तत्र प्रयोक्तव्या यथासुखम् ।।७६।।

तब उस आपत्ति के टल जाने पर यदि चतुर्दशी तिथि को स्नान की हुई इन स्त्रियों की इच्छानुसार सुरत सम्बन्धी सुख प्राप्ति हेतु तुम्हारे द्वारा उपयोग किया जाना चाहिए ॥ ७६ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा नरको भयमोहितः ।
आसारं च प्रसारं च नगरे सन्न्यवेदयत् ।।७७।।

रक्षिभी रक्षितं राज्यं रक्षितं च समन्ततः ।
भयहर्षयुतो भौमः समयं समवैक्षत ।।७८।।

नारद के उपयुक्त वचनों को सुनकर नरक, भयवश मोहित हो गया तथा उसने नगर की रक्षा हेतु जो भी व्यवस्था की थी, वह सब नारद को बता दिया। राक्षसों द्वारा सुरक्षित अपनी राज्य व्यवस्था, जो सब प्रकार से सुरक्षित थी, उसके विषय में भी बताकर आगत आपदा तथा मिलन के क्रमशः भय और हर्ष युक्त हो अवसर की प्रतीक्षा करने लगा ॥ ७७-७८ ॥

तस्मिन्नवसरे प्राप कृष्णः प्राग्ज्योतिषं पुरम् ।
प्रथमं पश्चिमं द्वारमासाद्य गरुडध्वजः ।।७९।।

उस समय अवसर पाकर गरुड़ध्वज भगवान् श्रीकृष्ण सर्वप्रथम, प्राग्ज्योतिषपुर के पश्चिमी द्वार पर पहुँचे ॥ ७९ ॥

पाशानां षट्सहस्राणि क्षुरान् सञ्छिद्य नैकधा ।
जघान स मुरुं दैत्यं सानुगं च सबान्धवम् ।।८०।।

छ हजार पाश और क्षुर नामक दैत्यों को अनेक प्रकार से मारकर अपने अनुयायियों एवं बान्धवों समेत मुरु नाम दैत्य को मार डाला ॥ ८० ॥

षट्सहस्रा महावीरा दानवा द्वारि संस्थिताः ।
हताश्चक्रेण हरिणा तदैव मुरुणा सह ।।८१।।

उस समय जो छः हजार, महान् वीर, दानव अपने सेनापति मुरु के साथ वहाँ द्वार पर उपस्थित थे वे सभी श्रीकृष्ण (विष्णु) द्वारा तत्काल चक्र से मारे गये ॥ ८१ ॥

मुरुं हत्वा सहस्राणि पुत्रांस्तस्यापरांश्च षट् ।
जघान चक्रेण तदा खण्डशोऽन्यांश्च दानवान् ।।८२।।

तब मुरु तथा उसके अन्य छः हजार पुत्रों को मारकर, अन्य राक्षसों को भी उन्होंने चक्र से टुकड़े-टुकड़े कर दिया ॥ ८२ ॥

ततोऽनेकशिलासङ्घानतिक्रम्य जनार्दनः ।
सगणं सानुगं चैव निसुन्दं समपोथयत् ।।८३।।

तब अनक शिलासमूहों को पार कर, जनार्दन भगवान् विष्णु ने सेवकों और अनुयायियों के समेत निसुन्द को मार डाला ॥ ८३ ॥

एको यो योधयेद्देवान् सहस्रं वत्सरान् पुरा ।
शक्रं च समतिक्रम्य महावीरपराक्रमः ।
तं जघान हयग्रीवं समतिक्रम्य केशवः ।।८४।।

पहले जो अकले हजारों देवताओं से वर्षों तक लड़ता था, जो महापराक्रमी था, जिसने इन्द्र को भी जीत लिया था, उस हयग्रीव नामक दैत्य को भी जीतकर केशव ने मार डाला ॥ ८४ ॥

मध्ये लौहित्यसंज्ञस्य भगवान् देवकीसुतः ।।८५।।
औदकायां विरूपाक्षं सुन्दं हत्वा महाबलः ।
ततः पञ्चजनं वीरं जघान परमेश्वरः ।।८६।।

भगवान् देवकीसुत, श्रीकृष्ण ने लौहित्य नामक नद के मध्यभाग में स्थित नहर पर विरुपाक्ष तथा महाबली सुन्द को मारा तत्पश्चात् परमेश्वर ने पंचजन नामक वीर का भी वध कर दिया ।। ८५-८६ ।।

एतान् हत्वा महाकायान् महावीर्यान् दुरासदान् ।
आससाद जगन्नाथः पुरं प्राग्ज्योतिषाह्वयम् ।।८७।।

इन विशाल शरीर वाले, महान् पराक्रमी, पापी राक्षसों को मारकर जगत्पति श्रीकृष्ण प्राग्ज्योतिष नामक नगर में पहुँच गये ।। ८७ ।।

वियत्स्थैर्दैवतैः सर्वैर्नारदेन महात्मना ।
जयशब्दैः स्तूयमानः प्रविवेश यथेश्वरः ।।८८।।

स्वर्ग में स्थित सभी देवताओं तथा महात्मा नारद द्वारा स्तुति किये जाते एवं जय-जयकार किये जाते हुए स्वयं राजा की भाँति उन्होंने उस नगर में प्रवेश किया ।। ८८ ।।

श्रिया युक्तां दीप्यमानां प्राकाराट्टालभूषिताम् ।
स मेने नगरीं विष्णुः किमिन्द्रस्यामरावती? ।।८९।।

लक्ष्मी से युक्त दीप्तमान चहारदीवारी तथा अट्टालिकाओं से सुशोभित उस नगरी को उस समय उस कृष्णरूपधारी विष्णु ने समझा कि क्या यह इन्द्र की अमरावती है ? ।। ८९ ।।

तत्र युद्धं महद्भूतं नानाप्रहरणोद्यतम् ।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ।
यथा देवासुरं युद्धं तथैव समपद्यत ।।९०।।

वहाँ जैसे देवताओं और असुरों के महान संग्राम हुए थे उसी प्रकार अनेक शस्त्रों से उद्यत वीरों से महान् युद्ध हुआ जो भयभीतों को और अधिक भयभीत करने वाला तथा शूरवीरों को प्रसन्नता देने वाला था ।। ९० ।।

ततः शार्ङ्गविनिर्मुक्तैर्बाणैस्तान् दानवान् बहून् ।
निजघान महाबाहुर्गरुडस्थो जनार्दनः ।।९१।।

तब जनार्दन श्रीकृष्ण ने जो महान भुजाओं वाले और गरुड़ पर स्थित थे, शार्ङ्गधनुष से छोड़े हुए बाणों द्वारा बहुत से दानवों को मार डाला ।। ९१ ।।

अष्टौ शतसहस्राणि अष्टौ शतशतानि च ।
हत्वासुरान् महाबाहुर्नरकं तं समासदत् ।।९२।।

आठ लाख अस्सी हजार राक्षसों का वध करने के पश्चात् श्रीकृष्ण उस महाबाहु नरक के समीप पहुँचे ।। ९२ ।।

ततः श्रुत्वा स नरकः पतितानसुरान् बहून् ।
दृष्ट्वा कृष्णं महाबाहुं गरुडस्थं महाबलम् ।।९३।।
वसिष्ठशापं सस्मार समयं माधवस्य च ।
नारदस्य वचश्चापि वरच्छिद्रं तथा विधेः ।।९४।।

तब उस नरक ने बहुत से मारे गये दैत्यों के विषय में सुनकर तथा गरुड़ पर आरूढ़, महाबाहु, महाबलशाली कृष्ण को सम्मुख उपस्थित देखा एवं वसिष्ठ ऋषि के शाप, विष्णु के अनुबन्ध, नारद के कथन और ब्रह्मा के वर में छिपे रहस्य का उसने स्मरण किया ।। ९३-९४ ।।

स प्राप्तकालश्च तदा केशवेन समागतः ।
युद्धमेव वरं मेने स्मरन् बाणवचस्तदा ।।९५।।

तब उसने केशव के रूप में अपने काल को ही आया हुआ मानकर, बाण के वचनों को स्मरण करते हुए उनसे युद्ध करने को ही श्रेष्ठ समझा ।। ९५ ।।

सः काञ्चनं समारूह्य रथं वज्रध्वजं वरम् ।
लोहचक्राष्टसंयुक्तं त्रिनल्वप्रमितं रथम् ।।९६।।
युक्तमश्वसहस्रैस्तु वज्रध्वजधिराजितम् ।
नानाप्रहरणोपेतं बहुतूणीरसंयुतम् ।
अगच्छत् समरायाशु नरकः पृथिवीसुतः ।।९७।।

तब स्वर्णनिर्मित, वज्रध्वज से सुशोभित, आठ लौह चक्रों से युक्त, जो तीन नल्व (१२०० हाथ) विस्तृत था, जिसमें हजार घोड़े जुते हुए थे, जो अनेक शस्त्रास्त्रों तथा बहुत से तूणीर आदि से युक्त था, जिस पर वज्राङ्कित ध्वजा फहरा रही थी, ऐसे श्रेष्ठ रथ पर विराजमान हो पृथ्वी का पुत्र, वह नरकनामक असुर, उन श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिए शीघ्र ही सम्मुख आया ।। ९६-९७ ।।

स गच्छन् समरायाशु मानुषं भावमर्चितम् ।
निन्द्यं तथासुरं मेने स्मरन् पूर्ववचो हरेः ।।९८।।

उस समय युद्ध में जाते हुए उसने अपने पिता विष्णु द्वारा कहे वचनों का स्मरण करते हुए, पहले के मनुष्यभाव को पूज्य तथा वर्तमान आसुरीभाव को निन्द्य माना ।। ९८ ।।

क्षणात् कृष्णं स ददर्श गरुडोपरि संस्थितम् ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवरासिधरमच्युतम् ।।९९।।

किरीटकुण्डलयुतं श्रीवत्सवक्षसं हरिम् ।
कौस्तुभोद्भासितोरस्कं पीताम्बरधरं परम् ।।१००।।

क्षण भर में उसने वहाँ पहुँचकर गरुड़ पर स्थित, श्रीकृष्ण को देखा जो शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष, श्रेष्ठखड्ग धारण किये, अच्युत (स्थिर) थे। जो मस्तक पर मुकुट, कानों में कुण्डल, वक्षस्थल पर श्रीवत्समणि धारण किये थे। उसने कौस्तुभमणि से प्रकाशितवक्षस्थल वाले, पीताम्बर धारण करने वाले, सर्वश्रेष्ठ, श्रीकृष्ण का दर्शन किया ॥ ९९-१०० ॥

स तेन युयुधे वीरो विष्णुना प्रभविष्णुना ।
प्राग्ज्योतिषाधिपो भीमो नरकः पृथिवीसुतः ।।१०१।।

उस प्राग्ज्योतिषपुर के राजा, पृथ्वी के पुत्र, वीरभौमासुर, नरक ने उपर्युक्त वेषधारी प्रभविष्णु के साथ युद्ध किया ॥ १०१ ॥

स युध्यत् कृष्णनिकटे कालिकां कालिकोपमाम् ।
रक्तास्यनयनां दीर्घां खड्गशक्तिधरां तदा ।।१०२।।
अपश्यज्जगतां धात्रीं कामाख्यामपि मोहिनीम् ।।१०३।।

तब उस नरकासुर ने, युद्ध करते समय कृष्ण के निकट, कालीस्याही के समान काले रंग वाली कालिका देवी को देखा जिनके नेत्र और मुखमण्डल लाल थे, जो लम्बी थीं, जो खड्ग और शक्ति धारण किये हुए थीं, ऐसी मोहिनी, पालन करने वाली कामाख्या देवी को भी देखा ॥ १०२-१०३ ॥

स विस्मितस्तदा भीतस्तां दृष्ट्वा जगतां प्रसूम् ।
योद्धव्यमित्येव तदा युयुधे नरकोऽसुरः ।।१०४।।

तब वह जगत्जननी कामाख्या को शत्रुपक्ष में देखकर विस्मित भी हुआ और भयभीत भी; क्योंकि वह उसकी आराध्या थीं। जो हो, युद्ध तो करना ही है। इस भाव से नरक ने उनसे भी युद्ध किया ॥ १०४ ॥

तेन सार्धं तदा कृष्णः कृत्वा सुमहदद्भुतम् ।
युद्धं यादृक् पुरा भूतं न देवे न च मानुषे ।।१०५।।

उसके साथ कृष्ण ने ऐसा महान् एवं अद्भुतयुद्ध किया जैसा युद्ध इसके पहले न देवताओं में हुआ था न मनुष्यों में ॥ १०५ ॥

ततस्तेनाथ भौमेन युद्धकेलिं स माधवः ।
चिरं कृत्वा जघानाथ देवेन्द्रं प्रतिहर्षयन् ।।१०६।।

तब उस भौमासुर के साथ चिरकाल तक युद्धक्रीड़ा करते हुए तथा देवेन्द्र को विशेष रूप से प्रसन्न करते हुए विष्णु ने उसे मार डाला ॥ १०६ ॥

सुदर्शनेन चक्रेण मध्यदेशे तदा हरिः ।
द्विधा चिच्छेद नरकं खण्डितोऽभ्यपतद् भुवि ।।१०७।।

उस समय हरि, श्रीकृष्ण ने सुदर्शनचक्र के द्वारा, शरीर के मध्यभाग कटिप्रदेश में दो भागों में नरक को काट दिया जिससे वह खण्डित हो पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ १०७ ॥

विभक्ततच्छरीरं तु भूमौ निपतितं तदा ।
विराजते वज्रभिन्नो यथा गैरिकपर्वतः ।।१०८।।

उस पृथिवी पर पड़ा हुआ उसका खण्डितशरीर, वज्र से अलग किये हुए गैरिकपर्वत की भाँति शोभायमान हो रहा था ॥ १०८ ॥

पतिते तनये देवी पृथ्वी दृष्ट्वा शरीरकम् ।
शोकवेगं तदा सेहे ज्ञात्वा कालं तदागतम् ।।१०९।।

तब पुत्र के शरीर को देखकर पृथ्वी देवी ने उसका काल ही आ गया था ऐसा जानकर पुत्र शोक के वेग को सहन कर लिया ॥ १०९ ॥

आदितेः कुण्डलयुगं स्वयमादाय काश्यपी ।
उपातिष्ठत गोविन्दं वचनं चेदमब्रवीत् ।।११०।।

तब कश्यपतनया पृथ्वी, अदिति के दोनों कुण्डलों को लेकर स्वयं गोविन्द के सम्मुख उपस्थित हुईं और यह वचन बोलीं ॥ ११० ॥

।। पृथिव्युवाच ।।

त्वया वराहरूपेण यदाहं चोद्धृता पुरा ।
तदा त्वद्गात्रसंस्पर्शात् पुत्रो मे नरकः स्थितः ।
सोऽयं त्वया पालितश्च पातितश्चाधुना सुतः ।।१११।।

पृथ्वी बोली–प्राचीनकाल में वाराहरूपधारी तुम्हारे द्वारा जब मेरा उद्धार किया गया था तब तुम्हारे शरीर के संस्पर्श से यह नरकनामक पुत्र, उत्पन्न हुआ था, वही आपके द्वारा पाला गया तथा इस समय मार गिराया गया है ॥ १११ ॥

गृहाण कुण्डले चेमे अदितेः सर्वकामदे ।
सन्ततिं चास्य गोविन्द प्रतिपालय नित्यदा ।।११२।।

हे गोविन्द ! अदिति के सब प्रकार के कामनाओं को पूरा करने वाले इन दोनों कुण्डलों को ग्रहण करो तथा इसकी सन्तानों का नित्य पालन करो ॥ ११२ ॥

।। श्रीभगवानुवाच ।।

भारावतरणे देवि नरकस्य वधः पुरा ।
त्वयैव प्रार्थितो यस्मात् तेनासौ निहतो मया ।।११३।।

श्रीभगवान बोले–देवि ! तुम्हारे ही द्वारा अपना भार दूर करने के लिए नरक के वध के लिए मुझसे पहले ही प्रार्थना की गयी थी । इसीलिए यह मेरे द्वारा मारा गया है ॥ ११३ ॥

पालयिष्येऽस्य सन्तानं देवि त्वद्वचनादहम् ।
प्राग्ज्योतिषेऽभिषेक्ष्यामि नप्तारं भगदत्तकम् ।।११४।।

हे देवि ! तुम्हारे वचनानुसार मैं इसकी सन्तान का पालन करूँगा तथा प्राग्ज्योतिषपुर में भगदत्त नामक अपने पौत्र को अभिषिक्त करूँगा ।। ११४ ।।

एवमुक्त्वा महाबाहुर्भगवान् मधुसूदनः ।
अन्तःपुरं विवेशाथ नरकस्य धनालयम् ।।११५।।

ऐसा कहकर महान भुजाओं वाले भगवान् मधुसूदन ने नरक के धनागार और अन्त:पुर में प्रवेश किया ।। ११५ ।।

स तत्र ददृशे वीरो रत्नानि विविधानि च ।
राशीभूतानि शुद्धानि पर्वतानिव राजतः ।।११६।।

उस वीरपुरुष ने वहाँ इकट्ठा किये हुए अनेक प्रकार के शुद्ध रत्नों को जो पर्वतों की भाँति शोभायमान हो रहे थे, देखा ।। ११६ ।।

मुक्तामणिप्रवालानां वैदूर्यस्य च पर्वतम् ।
तथा रजतकूटानि वज्रकूटानि माधवः ।।११७।।

माधव ने वहाँ मोती, मणि, मूँगा और स्फटिक के पर्वत तथा चाँदी एवं हीरे के शिखरों को देखा ।। ११७ ।।

सुवर्णसंचयात् रुक्मदण्डान् रत्नमयध्वजान् ।
वाहनानि विचित्राणि यानानि शयनानि च ।।११८।।

उन्होंने सुवर्ण के संग्रहों, स्वर्णदण्डों, रत्नमयध्वजाओं, विचित्र वाहनों, सवारियों, शय्याओं को भी वहाँ देखा ।। ११८ ।।

खचितानि स्वर्णरत्नैर्महार्हाणि महान्ति च ।
यद् यद् दृष्टं च यावच्च धनं रत्नं मणिस्तथा ।
भुवि तादृक् च नो दृष्टमन्यत्र नरकालयात् ।।११९।।

बहुमूल्य सोना और रत्नों से सजे हुये जिन-जिन और जितना धन, रत्न तथा मणियों को उस समय उन्होंने देखा, उस प्रकार का नरकासुर के निवास के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं देखा गया था ।। ११९ ।।

न कुबेरस्य नेन्द्रस्य न यमस्याप्यपां पतेः ।
तावन्ति धनरत्नानि यावन्ति नरकालये ।।१२०।।

जितने धन और रत्न, नरकासुर के घर में थे उतने न तो कुबेर के, न इन्द्र के, न यम के और न अपांपति वरुण के घर में ही थे ।। १२० ।।

केशवोऽप्यथ तत्रैव नारदेन च सङ्गतः ।।१२१।।
अवेक्ष्यान्तःपुरधनं सारं सारतरं ततः ।
तेषां समाददे ग्राह्यं प्रभूतं परवीरहा ।।१२२।।

केशव ने नारद के साथ वहाँ ही अन्तःपुर के धन को देखा तत्पश्चात् उसमें से सार से भी सारतर अर्थात् महत्त्वपूर्ण ग्रहण करने योग्य जो कुछ था उसे शत्रु पक्ष के वीरों का नाश करने वाले कृष्ण ने बड़ी मात्रा में ले लिया ॥ १२१-१२२ ॥

या दत्ता वैष्णवीशक्तिर्विष्णुना प्रभविष्णुना ।
हत्वा भौमं तु तां शक्तिं जगृहे देवकीसुतः ॥१२३॥

प्रभविष्णु विष्णु भगवान् द्वारा जो वैष्णवी शक्ति अपने पुत्र नरक को प्रदान की गयी थी उसे भौमासुर को मारकर देवकीपुत्र श्रीकृष्ण ने स्वयं ले लिया ॥ १२३ ॥

पृथिव्या नारदेनैव सहितः केशवस्तदा ।
भगदत्तं भौमसुतं प्राग्ज्योतिषपुरोत्तमे ।
अभिषिच्य तदा भूतं पुरमध्ये न्यवेशयत् ॥१२४॥

तब उत्तम प्राग्ज्योतिषपुर में भौम के पुत्र भगदत्त को अभिषिक्त कर, पृथिवी और नारद के सहित, केशव ने प्रवेश किया ॥ १२४ ॥

अभिषिक्तं तु तं दृष्ट्वा भगदत्तं तदा क्षितिः ।
नप्तुरर्थेऽथ तां शक्तिं केशवं समयाचत ॥१२५॥

तब उस भगदत्त को अभिषिक्त देखकर पृथिवी देवी ने पौत्र के लिए केशव से उस वैष्णवीशक्ति की याचना की ॥ १२५ ॥

केशवोऽपि क्षितेर्वाक्यान्नारदानुमतेन च ।
तां शक्तिं भगदत्ताय सुप्रीतमनसा ददौ ॥१२६॥

तब केशव ने भी पृथिवी के कथन तथा नारद की अनुमति से उस शक्ति को प्रसन्नतापूर्वक भगदत्त को दे दिया ॥ १२६ ॥

यच्छत्रं वरुणं जित्वा काञ्चनस्राविसंज्ञकम् ।
समानयत् पुरा भौमस्तच्छत्रं हरिराददे ॥१२७॥

वरुणदेव को जीतकर जो काञ्चनस्रावि नामक छत्र, भौमासुर पहले लाया था, उस छत्र को श्रीकृष्ण ने ले लिया ॥ १२७ ॥

अष्टभारसुवर्णानि यत्संस्रवति चान्वहम् ।
यत् क्रोशमात्रविस्तीर्णमर्धयोजनमुच्छ्रितम् ॥१२८॥

जो प्रतिदिन आठ भार स्वर्ण, नित्य वर्षाता था तथा जो एक कोश मात्र (२ मील) विस्तृत एवं आधा योजन (४ मील) ऊँचा था ॥ १२८ ॥

रत्नोत्तमानि सर्वाणि चतुर्दन्तांस्तथा गजान् ।
चतुर्दशसहस्राणि पूजिताः प्रमदास्तथा ॥१२९॥
द्वारकां प्रति दैत्यौघैर्वाहयामास केशवः ॥१३०॥

सभी उत्तमरत्नों तथा चार दाँतों वाले हाथियों तथा चौदह हजार पूजित (देव) स्त्रियों को कृष्ण ने दैत्यसमूहों के द्वारा द्वारका के लिए भेजवाया ॥ १२९-१३० ॥

या देवकन्यकाः पूर्वं नरकेण हृता बलात् ।
तासां कृत्वा हृषीकेशो वेणीबन्धविमोक्षणम् ॥१३१॥
वासोभिर्भूषणैर्दिव्यैस्ताः सत्कृत्य मुहुर्मुहुः ।
आरोप्य च विमाने तु रक्षिभिर्बलिभिर्दृढैः ।
नारदाधिष्ठिताः सर्वा द्वारकां प्रत्यवाहयत् ॥१३२॥

जो देव कन्याएँ पहले नरक द्वारा बलपूर्वक हरण कर ली गयी थीं, हृषीकेश श्रीकृष्ण ने उनके वेणीबन्ध को मुक्त किया और दिव्य वस्त्राभूषणों से बार-बार उनका सत्कार कर उन्हें विमान पर बलवान रक्षकों द्वारा आरूढ़ कर नारद के निर्देशन में सबको द्वारिका की ओर भेज दिया ॥ १३१-१३२ ॥

यः कृतः सुरकन्यार्थे भौमेन मणिपर्वतः ॥१३३॥
मणिरत्नौघसम्पूर्णो दिवाकरसमप्रभः ।
उत्पाट्य तं जगन्नाथस्तार्क्ष्यपृष्ठे न्यधापयत् ॥१३४॥

भौमासुर ने देवकन्याओं के लिए मणि तथा रत्नों के समूह से परिपूर्ण, सूर्य के समान आभा वाला जो मणिमयपर्वत बनाया था, उसे ऊखाड़ कर जगत्पति श्रीकृष्ण ने गरुड़ की पीठ पर रख लिया ॥ १३३-१३४ ॥

तथैव वारुणं छत्रं गरुडोपरि माधवः ।
आरोप्य सत्यभामा सहासीनः सुमना हरिः ॥१३५॥

उसी प्रकार माधव ने वरुण के छत्र को भी गरुड़ पर रख लिया और श्रीकृष्ण प्रसन्नमन से सत्यभामा के साथ उसी गरुड़ पर आसीन हो गये ॥ १३५ ॥

भगदत्तं समाभाष्य पृथिवीं च जगत्पतिः ।
प्रतस्थे द्वारकां वीरो वियन्मार्गेण वै द्रुतम् ॥१३६॥

तब जगत् के स्वामी वीरश्रीकृष्ण, भगदत्त और पृथिवी को भलीभाँति समझाकर, आकाशमार्ग से शीघ्र ही द्वारिका के लिए प्रस्थान कर गये ॥ १३६ ॥

सुपर्णः काञ्चनस्राविच्छत्रं समणिपर्वतम् ।
केशवं सत्यभामां च हेलया खे वहन् ययौ ॥१३७॥

तब सुपर्णगरुड़, काञ्चनस्राविछत्र एवं मणिपर्वत, तथा सत्यभामा और कृष्ण को खेल-खेल में ढोता हुआ आकाश में चल पड़ा ॥ १३७ ॥

क्षणेन द्वारकां प्राप्य केशवः परवीरहा ।
मुदं च लेभे सकलैर्बान्धवैश्च तथा गणैः ॥१३८॥

शत्रुओं के वीरों को मारने वाले केशव ने क्षण भर में द्वारिका नगरी में पहुँचकर सभी बान्धवों एवं गणों के साथ आनन्द प्राप्त किया ॥ १३८ ॥

एवं काली महामाया कालिकाख्या जगन्मयी ।
विष्णुं च जगतां नाथं परापरपतिं हरिम् ।।१३९।।
जगत्कारणकर्तारं ज्ञानगम्यं जगन्मयम् ।
सन्मोहयत्येव तथा ह्यनुरागविरागवान् ।।१४०।।

इस प्रकार महामाया, कृष्णवर्णा, कालिका नामवाली, जगत्स्वरूपा देवी, परात्परपति, जगत् के स्वामी, हरि, विष्णु को जो जगत् के कारण एवं कर्त्ता, ज्ञान से जाने जाने योग्य, जगत्स्वरूप हैं। उनको सम्मोहित करती हैं तथा कभी अनुरागयुक्त तो कभी विरागयुक्त बनाती हैं ॥ १३९-१४० ॥

अनुगृह्णाति मित्राणि ह्यमित्राणि निहन्ति च ।
नारीषु मूढो रमते द्वन्द्वेनापि च मुह्यते ।।१४१।।

वही मित्रों पर अनुग्रह करती हैं तथा अमित्रों (शत्रुओं) को मारती हैं । उन्हीं की प्रेरणा से मूढ़जन स्त्रियों में रमण करते हैं तथा सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में मोहित होते हैं ॥ १४१ ॥

इति वः कथितं विप्रा यथाभून्नरकोऽसुरः ।
यथा च वरलाभोऽभूद् यथा चास्य विचेष्टितम् ।।१४२।।
आराधितो यथा ब्रह्मा बाणबुद्ध्याथ भौमिना ।
किमन्यदुचितं वास्ति तद्ब्रुवन्तु द्विजोत्तमाः ।।१४३।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे नरकोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

हे विप्रों ! जिस प्रकार नरकनामक असुर उत्पन्न हुआ, जिस प्रकार उसे वर का लाभ हुआ, जैसी उसकी चेष्टाएँ थीं । बाण की बुद्धि का आश्रय ले, भौमासुर द्वारा जिस प्रकार ब्रह्मा की आराधना की गयी । वह सब आप लोगों से कह दिया गया है । हे द्विजोत्तमों ! दूसरा क्या सुनना उचित है ? उसे आप लोग बताइये ।

॥ श्रीकालिकापुराण में नरकोपाख्यान सम्बन्धी चालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४० ॥



एकचत्वारिंशोऽध्यायः

नारदागमनम्

।। ऋषयः ऊचुः ।।

कथं गिरिसुता काली बभूव जगतां प्रसूः ।
दाक्षायणी त्यक्ततनुः कथमाप हरं पतिम् ।।१।।

ऋषिगण बोले– जगत् को उत्पन्न करने वाली काली, किस प्रकार पर्वतराज हिमालय की पुत्री, पार्वती हुईं ? दाक्षायणी (दक्षपुत्री सती) ने अपने शरीर को छोड़कर कैसे शिव को पति के रूप में प्राप्त किया? ॥ १ ॥

कथमर्धशरीरं सा जहार च पिनाकिनः ।
एतन्नः पृच्छतां सम्यक् कथयस्व महामते ।।२।।

हे महान् बुद्धि वाले! उसने पिनाकी (शिव) के अर्धशरीरत्व को कैसे प्राप्त किया ? हम पूछने वालों से यह भलीभाँति कहिये ॥ २ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः यथा दाक्षायणी सती ।
भूता गिरिसुता पूर्वं यथार्धमहरत्तनुम् ।।३।।

मार्कण्डेय बोले– हे मुनियों में शार्दूलवत् श्रेष्ठ मुनिगण ! प्राचीनकाल में दक्ष की पुत्री, सती देवी जिस प्रकार पर्वतपुत्री पार्वती हुईं तथा जैसे उन्होंने शिव के अर्धाङ्ग को प्राप्त किया, उसे आप सब सुनें ॥ ३ ॥

यदाऽत्यजत्तनुं देवी पूर्वं दाक्षायणी सती ।
तदैव मनसागच्छन् मेनकां हिमवद्गिरिम् ।।४।।

प्राचीन काल में जब दक्ष की कन्या देवी सती ने अपने शरीर का त्याग किया तभी वह मानसिक रूप से हिमालय पर्वत व मेनका को प्राप्त हुई थीं ॥ ४ ॥

यदा हरेण सहिता दक्षकन्या हिमाचले ।
चिक्रीड च तदा तस्या मेनकाऽभूद् हितैषिणी ।।५।।

जब दक्षकन्या सती ने हिमालयपर्वत पर शिव के साथ विहार किया था, उस समय मेनका उसकी सहायिका हुई थीं ॥ ५ ॥

तस्याः सुता स्यामिति च आधाय मनसि द्विजाः ।
त्यक्तप्राणा तदा देवी भूता हिमवतः सुता ।।६।।

हे द्विजों ! उन्हीं की पुत्री होऊँ, यह मन में ध्यान कर, देवी ने प्राण छोड़े तब वह हिमालय की पुत्री हुईं ।। ६ ।।

यदा दाक्षायणी प्राणान् दक्षकोपाज्जहौ पुरा ।
तदैव मेनका देवी आरिराधयिषुः शिवाम् ।।७।।

जिस समय दक्ष पर क्रोध करके प्राचीनकाल में दक्षपुत्री सती देवी ने प्राणों को छोड़ा था, उसी समय मेनका देवी ने उस शिवा (काली) की आराधना करने की कामना व्यक्त की थी ।। ७ ।।

महामायां जगद्धात्रीं योगनिद्रां सनातनीम् ।
मोहिनीं सर्वभूतानां शरणं सर्वनाकिनाम् ।।८।।

जो शिवा महामाया हैं, जगत का पालन करने वाली हैं, योगनिद्रा, सनातन-स्वरूपा, सभी प्राणियों को मोहने वाली तथा सभी स्वर्गस्थ देवताओं की शरण-स्थली हैं ।। ८ ।।

मेनका कृताराधन

अष्टम्यामुपवासं तु कृत्वा सा नवमीतिथौ ।
मोदकैर्बलिभिः पिष्टैः पायसैर्गन्धपुष्पकैः ।।९।।
चैत्रे मासि समारभ्य सप्तविंशतिवत्सरान् ।
यावत् सम्पूजयामास पुत्रार्थिन्यन्वहं शुचिः ।।१०।।

वे मेनका देवी भगवती की आराधना हेतु अष्टमी को उपवास, कर नवमी तिथि को मोदक के नैवेद्य, चूर्ण, खीर, गन्ध, पुष्पादि से पूजन करतीं । इस प्रकार उन्होंने चैत्रमास से आरम्भ कर सत्ताईस वर्षों तक प्रतिदिन सन्तान की इच्छा से, पवित्रता पूर्वक भलीभाँति पूजन किया ।। ९-१० ।।

गङ्गायामोषधिप्रस्थे कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ।
कदाचित् सा निराहारा कदाचित् सा धृतव्रता ।।११।।
शिवाविन्यस्तमनसा सप्तविंशतिवत्सरान् ।
निनाय मेनका देवी परमां भूतिमिच्छती ।।१२।।

हिमालय की राजधानी ओषधिप्रस्थ में गङ्गा के तट पर भगवती की मिट्टी की मूर्ति बनाकर, कभी निराहार रहकर, कभी व्रत करती हुई, शिवा (कालिका) में अपना मन लगाये हुये, परम ऐश्वर्य को चाहने वाली, उस मेनका देवी ने सत्ताईस वर्ष व्यतीत कर दिये ।। ११-१२ ।।

सप्तविंशतिवर्षान्ते जगन्माता जगन्मयी ।
सुप्रीताऽभवदत्यर्थं प्राह प्रत्यक्षतां गता ।।१३।।

इस प्रकार आराधना करते हुए सत्ताईसवें वर्ष के अन्त में जगत् माता, जगत्रूपिणी प्रसन्न हुईं तथा प्रत्यक्ष हो बोलीं ॥ १३ ॥

।। देव्युवाच ।।

यत् प्रार्थितं त्वया देवि मत्तस्तत्प्रार्थयाधुना ।
दास्ये तवाहं तत्सर्वं वाञ्छितं यद् हृदा भवेत् ।।१४।।

देवी बोलीं– हे देवि मेनका ! तुमने पहले जो कुछ प्रार्थना किया है, वह सब अब मुझसे प्रार्थना करो। तुम्हारे हृदय में जो कुछ भी इच्छित होगा, वह मैं तुम्हें प्रदान करूँगी ॥ १४ ॥

।। मार्कण्डेय बोले ।।

ततः सा मेनका देवी प्रत्यक्षं कालिकां गताम् ।
दृष्ट्वैव प्रणनामाथ वचनं चेदमब्रवीत् ।।१५।।

मार्कण्डेय बोले– तब उस मेनका देवी ने प्रकट हुई कालिका देवी को देखते ही प्रणाम किया और यह वचन बोलीं ॥ १५ ॥

।। मेनकोवाच ।।

देवी प्रत्यक्षतो रूपं तव दृष्टं मयाऽधुना ।
त्वामहं स्तोतुमिच्छामि प्रसन्ना यदि मे शिवे ।।१६।।

मेनका बोलीं– हे देवि ! आपका प्रत्यक्षरूप आज मेरे द्वारा देखा गया है। हे शिवे ! यदि आप प्रसन्न हों तो मैं आपकी स्तुति करना चाहती हूँ ॥ १६ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततः सा मातरित्युक्त्वा कालिका सर्वमोहिनी ।
बाहुभ्यां चारुवृत्ताभ्यां मेनकां परिषस्वजे ।।१७।।

मार्कण्डेय बोले– तब उस सबको मोहित करने वाली कालिका देवी ने माँ, ऐसा कहकर अपने सुडौल तथा सुन्दर बाहुओं से मेनका का आलिङ्गन कर लिया ॥ १७ ॥

ततः सा मेनका देवी कालिकां परमेश्वरीम् ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः शिवां प्रत्यक्षतः स्थिताम् ।।१८।।

तब उस मेनका देवी ने अपने सम्मुख प्रकट हुई उस शिवा, कालिका, परमेश्वरी की इच्छित वचनों द्वारा स्तुति की ॥ १८ ॥

।। मेनकोवाच ।।

प्रेरयन्तीं जगद्धाम चण्डिकां लोकधारिणीम् ।
प्रणमामि जगद्धात्रीं सर्वकामार्थसाधिनीम् ।।१९।।

मेनका बोली– सम्पूर्ण जगत् को प्रेरित करने वाली, लोक को धारण करने वाली, सब कामनाओं की अथवा सभी के कामनाओं की पूर्ति करने वाली, जगत् का पालन करने वाली चण्डिका देवी को मैं प्रणाम करती हूँ ॥ १९ ॥

नित्यानन्दां ज्ञानमयीं योगनिद्रां जगत्प्रसूम् ।
प्रणमामि शिवां शुद्धां विधिशौरिशिवात्मिकाम् ।।२०।।

मैं नित्य आनन्दस्वरूपा, ज्ञानमयी, योगनिद्रा, जगत् को उत्पन्न करने वाली, ब्रह्मा-विष्णु-शिव स्वरूपा, शुद्धसत्वा, शिवा देवी को प्रणाम करती हूँ ॥ २० ॥

मायामयीं महामायां भक्तशोकविनाशिनीम् ।
कामस्यवनितां भद्रां नमामि त्वां चितिं शिवाम् ।।२१।।

मायामयी, स्वयं महामाया, भक्तों का शोक नष्ट करने वाली, कामदेव की स्त्री, भद्रा (कल्याणकारिणी), चिति (चैतन्यरूपा), उन आप शिवा देवी को मैं नमस्कार करती हूँ ॥ २१ ॥

सत्त्वोद्रेकाद् या भवित्रीह नित्या
नित्या चापि प्राणिनां बुद्धिरूपा ।
सा त्वं बन्धच्छेदहेतुर्यतीनां
कस्ते गद्यो मादृशीभिः प्रभावः ।।२२।।

सत्त्व गुण की अधिकता के कारण जो नित्य होने वाली अर्थात् मूल प्रकृति हैं, जो शाश्वत, बुद्धि स्वरूपा भी हैं। वही आप, यतियों के बन्धन को दूर करने का कारण हैं। इस प्रकार का आपका कौन-सा प्रभाव है, जो मेरे जैसी स्त्रियों द्वारा वर्णन किया जा सके ? ॥ २२ ॥

या त्वं साम्नां सिद्धिरुक्तिस्तथार्चा
या वृत्तिर्या यजुषां दीर्घरूपा ।
हिंसाचैवाथर्ववेदस्य सा त्वं
नित्यं कामं त्वं ममेष्टं विधेहि ।।२३।।

जो साममन्त्रों द्वारा अर्चा, उक्ति तथा सिद्धि, यजुष् (यजुर्वेद के छंदों) की दीर्घरूपा वृत्ति, अर्थववेद में वर्णित बलि आदिगत हिंसा है, वह आप ही हो अर्थात् स्तुति, यज्ञ और बलिदान तीनों आप ही हो। ऐसी आप सदैव मेरी अभीष्ट कामनाओं को पूर्ण करो ॥ २३ ॥

नित्यानित्यैर्भागहीनैः पुरस्थैः
स्तन्मात्रैर्यैर्यत्यते भूतवर्गः ।
तेषां शक्तिस्त्वं सदा नित्यरूपा
का ते योषा योग्यं वक्तुं समर्था ।।२४।।

जिससे नित्य और अनित्य भागों से रहित हो शरीर में स्थित तन्मात्राओं द्वारा प्राणिमात्र का संचालन किया जाता हैं। उनमें सदैव शाश्वतरूप से विद्यमान् रहने वाली आप शक्ति हो। कौन ऐसी स्त्री है जो आपकी वर्णनीय विशेषताओं का वर्णन करने में समर्थ हो ? ॥ २४ ॥

क्षितिर्धरित्री जगतां त्वमेव
त्वमेव नित्या प्रकृतिस्वरूपा ।
यया वशः क्रियते ब्रह्मरूपः ।
सा त्वं नित्या मे प्रसीदास्तु मातः ।।२५।।

जगत को धारण करने वाली धरती भी आपही हो, नित्य प्रकृतिरूप वाली भी आपही हो, जिसने ब्रह्म को भी अपने वश में कर लिया है, हे माता ! ऐसी जो नित्य, अविनाशी आप हो, वह मेरे पर प्रसन्न होओ ॥ २५ ॥

त्वं जातवेदोगतशक्तिरूपा
त्वं दाहिका सूर्यकरस्य शक्तिः ।
आह्लादिका त्वं बहु चन्द्रिकाया-
स्तां त्वामहं स्तौमि नमामि चाम्बिकाम् ।।२६।।

आप अग्नि के भीतर रहने वाली उसकी शक्ति हो, आपही सूर्य के किरणों की दाहिका शक्ति भी हो । आप ही चन्द्रिका में पर्याप्त रूप से स्थित आह्लादिनी शक्ति भी हो । ऐसी आप अम्बिका को मैं नमस्कार करती हूँ। मैं आपकी स्तुति करती हूँ॥ २६ ॥

योषा योषित्प्रियाणां त्वं विद्या त्वं चोर्ध्वरेतसाम् ।
वाञ्छा त्वं सर्वजगतां माया च त्वं तथा हरेः ।।२७।।

आप कामीजनों के लिए स्त्रीस्वरूपा हो तथा आप ऊर्ध्वरेतस् योगीजनों के लिए विद्या हो, सभी प्राणियों के अन्तर में विद्यमान वाञ्छा भी आप ही हो और आप ही विष्णु की माया भी हो ॥ २७ ॥

याऽनेकरूपाणि विधाय नित्यं
सृष्टिं स्थितिं हानिमपीह कर्त्री ।
ब्रह्माच्युतस्थाणुशरीरहेतुः
सा त्वं प्रसीदाद्य पुनर्नमस्ते ।।२८।।

जो अनेक रूपों को नित्य धारण कर इस संसार का सृष्टि, पालन और संहार क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की कारणभूत हो, उनके ही माध्यम से करने वाली हैं, ऐसी आप आज मुझपर प्रसन्न होओ । आपको बार-बार नमस्कार है ॥ २८ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततः सा जगतां माता कालिका पुनरेव हि ।
उवाच मेनकां देवीं वाञ्छितं वरयेत्युत ।।२९।।

मार्कण्डेय बोले–तब जगत की माता कालिका देवी ने मेनका से पुनः कहा कि वह अपना मनोवाञ्छित वर माँग ले ॥ २९ ॥

ततः सा प्रथमं पुत्रशतं वव्रे यशस्विनी ।
वीर्यवच्चायुषायुक्तमृद्धिसिद्धिसमन्वितम् ।।३०।।
पश्चात् तथैकां तनयां सुरूपां गुणशालिनीम् ।
कुलद्वयानन्दकरीं भुवनत्रयदुर्लभाम् ।।३१।।

तब उस यशस्विनी मेनका ने सर्वप्रथम, वीर्य (पराक्रम), आयुष्य तथा ऋद्धि-सिद्धि से युक्त सौ पुत्रों का वर माँगा। तत्पश्चात् तीनों लोकों में दुर्लभ, दोनों कुलों को आनन्दित करने वाली, गुणों से युक्त, सुन्दर रूप वाली एक पुत्री का भी, वर माँगा ॥ ३०-३१ ॥

ततो भगवती प्राह मेनकां मुनिसन्निभाम् ।
स्मितपूर्वं तदा तस्याः पूरयन्ती मनोरथम् ।।३२।।

तब भगवती ने मुस्कुराते हुए, मुनियों के समान आभावाली, मेनका से उसके मनोरथों को पूर्ण करती हुई कहा ॥ ३२ ॥

।। देव्युवाच ।।

शतं पुत्राः सम्भवन्तु भवत्या वीर्यसंयुताः ।
तत्रैको बलवान्मुख्यः प्रथमं सम्भविष्यति ।।३३।।
सुता च तव देवानां मानुषाणां च रक्षसाम् ।
हिताय सर्वजगतां भविष्याम्यहमेव ते ।।३४।।

देवी बोलीं– तुम्हारे सौ पराक्रमी पुत्र होंगे, जिनमें एक बलवान्, मुख्य और सर्वश्रेष्ठ होगा तथा देवताओं, मनुष्यों, राक्षसों एवं सम्पूर्ण जगत् के कल्याण के लिए, मैं स्वयं तुम्हारी पुत्री होऊँगी ॥ ३३-३४ ॥

त्वं सुखप्रसवा नित्यं तथा नित्यं पतिव्रता ।
अम्लाना रूपसम्पन्ना सुभगा च भविष्यसि ।।३५।।

तुम सदैव अपने सन्तानों को सुखपूर्वक जन्म देने वाली तथा पतिव्रता होओगी। तुम बहुत प्रजावती होने पर भी अपने मुख कभी न मलिन पड़ने वाले, रूप से युक्त, सुन्दरी होओगी ॥ ३५ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एवमुक्त्वा जगद्धात्री तत्रैवान्तरधीयत ।
मेनका च मुदं लब्ध्वा स्वस्थानं प्रविवेश ह ।।३६।।

मार्कण्डेय बोले– ऐसा कहकर जगत् का पालन करने वाली कालिका देवी वहीं अन्तर्धान हो गईं तथा मेनका ने भी प्रसन्नता को प्राप्त कर अपने निवास-स्थान में प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

ततः काले तु सम्प्राप्ते मैनाकमचलोत्तमम् ।
पक्षेण सह योऽद्यापि सिन्धुमध्ये प्रवर्तते ।
मेनका सुषुवे देवी देवेन्द्रं स्पर्धयागतम् ।।३७।।

तब समय आने पर मैनाक नामक उत्तम पर्वत को जो आज भी अपने पंखों के सहित समुद्र के भीतर निवास करता है तथा देवेन्द्र से स्पर्धा करता है, सती मेनका देवी ने जन्म दिया ॥ ३७ ॥

अन्यानूनशतं पुत्रान् क्रमात् सा सुषुवे सती ।
महावीर्यान् महासत्त्वान् सम्पन्नान् सर्वतो गुणैः ।।३८।।

उस सती मेनका देवी ने महान् पराक्रमी, महान् सत्व (बल) से युक्त, सभी गुणों से सम्पन्न, अन्य एक कम सौ (९९) पुत्रों को क्रमशः जन्म दिया ॥ ३८ ॥

ततः सा कालिका देवी योगनिद्रा जगन्मयी ।
पूर्वत्यक्तसतीरूपा जन्मार्थं मेनकां ययौ ।।३९।।
समयस्यानुरूपेण मेनका जठरे शिवा ।
समुद्भूय समुत्पन्ना सा लक्ष्मीरिव सागरात् ।।४०।।

तब वह जगन्मयी, योगनिद्रा, कालिका, जिन्होंने अपने सती रूप को पहले ही छोड़ दिया था, जन्मग्रहण करने के लिए मेनका के यहाँ गयीं तथा समय के अनुरूप वह शिवा, मेनका के गर्भ से उसी प्रकार उत्पन्न हुई जैसे लक्ष्मी समुद्र से उत्पन्न हुई थीं ॥ ३९-४० ॥

।। पार्वती-जन्म ।।

वसन्तसमये देवी नवम्यामृक्षयोगतः ।
अर्धरात्रे समुत्पन्ना गङ्गेव शशिमण्डलात् ।।४१।।

चन्द्रमण्डल से उद्भूत आकाशगङ्गा की भाँति बसन्तऋतु में, चैत्र (महीने) की नवमी तिथि को उत्तम नक्षत्र और योग में, अर्धरात्रि में कालिका देवी पार्वती रूप में उत्पन्न हुईं ॥ ४१ ॥

ततस्तस्यां तु जातायां प्रसन्ना अभवन् दिशः ।।४२।।
अनुकूलो ववौ वायुर्गम्भीरो गन्धवाञ् शुभः ।
बभूव पुष्पवृष्टिश्च तोयवृष्टिस्तथापरा ।।४३।।

तब उनके उत्पन्न होते ही दिशायें प्रसन्न (साफ) हो गयीं । सब ओर शुभ, सुगन्धित, गम्भीर तथा अनुकूल वायु बहने लगी । पहले फूलों की तत्पश्चात् जल की वर्षा होने लगी ॥ ४२-४३ ॥

जज्वलुश्चाग्नयः शान्ता जगर्जुश्च घनाघनम् ।
तस्यां तु जातमात्रायां सर्वं स्वास्थ्यमपद्यत ।।४४।।

अग्नियाँ शान्तिपूर्वक जलने लगीं । घने बादल भी गम्भीर गर्जना करने लगे । उनके जन्म लेते ही सभी कुछ स्वस्थ हो गया ॥ ४४ ॥

तां तु दृष्ट्वा तथा जातां नीलोत्पलदलानुगाम् ।
श्यामां सा मेनका देवी मुदमापातिहर्षिता ।।४५।।

नीलेकमल की पङ्खुड़ियों के समान रङ्गों वाली, उन कालिका देवी को उत्पन्न हुआ देखकर, उन मेनका देवी ने अत्यधिक प्रसन्न हो, आनन्द का अनुभव किया ॥ ४५ ॥

देवाश्च हर्षमतुलं प्रापुस्तत्र मुहुर्मुहुः ।
तुष्टुवुश्चान्तरिक्षस्था गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥४६॥

उस समय देवताओं ने बारम्बार प्रसन्नता का अनुभव किया तथा अन्तरिक्ष में स्थित गन्धर्व एवं अप्सराओं के समूहों ने स्तुति की ॥ ४६ ॥

तां तु नीलोत्पलदलश्यामां हिमवतः सुताम् ।
कालीति नाम्ना हिमवानाजुहाव कृतोदने ॥४७॥

अन्नप्राशन के दिन उस नील कमल की पङ्खुड़ियों के समान श्याम रङ्ग वाली अपनी पुत्री का नाम हिमालय ने 'काली' ऐसा रखा ॥ ४७ ॥

बान्धवैस्तु समस्तैस्तन्नाम्ना सा पार्वतीति च ।
कालिकेति तथा नाम्ना कीर्तिता गिरिनन्दिनी ॥४८॥

वह पर्वतपुत्री, अपने समस्त बान्धवों द्वारा कालिका, पार्वती तथा गिरिनन्दिनी आदि नामों से पुकारी गईं ॥ ४८ ॥

ततः सा ववृधे देवी गिरिराजगृहे शुभा ।
गङ्गेव वर्षासमये शरदीवाथ चन्द्रिका ॥४९॥

तब जिस प्रकार (वर्षा ऋतु) में गंगा या शरद ऋतु में चाँदनी बढ़ती है, उसी प्रकार वे कल्याणकारिणी, काली भी पर्वतराज, हिमालय के घर में बड़ी होने लगीं ॥ ४९ ॥

एधमानानुदिवसं चार्वङ्गी चारुतां मुहुः ।
दध्रे सानुदिनं काली चन्द्रबिम्बं कलामिव ॥५०॥

चन्द्रबिम्ब की कला की भाँति वे सुन्दर अङ्गों वाली, प्रतिदिन बढ़ती हुईं, काली अधिकाधिक सुन्दरता को प्राप्त करने लगीं ॥ ५० ॥

सा बालभावमापन्ना क्रीडन्ती कालिका मुदम् ।
सखीभिः प्राप विपुलां कालिन्दीव सरिद् व्रजैः ॥५१॥

वे कालिका बालभाव को प्राप्त कर अपनी सखियों के साथ प्रसन्नतापूर्वक उसी प्रकार क्रीड़ा करतीं जैसे नदियों के बीच बढ़ी हुई, कालिन्दी यमुना शोभायमान् होती हैं ॥ ५१ ॥

षड्गुणास्तां स्वयं देवी पूर्वजन्मवशीकृताः ।
स्वयमीयुर्द्विजश्रेष्ठाः प्रावृषं कालिका यथा ॥५२॥

हे द्विजश्रेष्ठों ! वर्षाऋतु में जैसे कालीघटा अपने आप बढ़ती है, उसी प्रकार उन देवी ने पूर्वजन्म से वश में किये हुए षड्गुणों के विकास को स्वयं प्राप्त किया ॥ ५२ ॥

अतिचक्राम स्वगुणैः सा देवी देवकन्यकाः ।
रूपैरप्सरसः सर्वा गीतैर्गन्धर्वकन्यकाः ॥५३॥

उन देवी ने अपने गुणों से देवकन्याओं को, रूप से अप्सराओं को तथा गायन से सभी गन्धर्व कन्याओं को जीत लिया ॥ ५३ ॥

सा बाल्य एव सततं बन्धुवर्गप्रिया शुभा ।
गुणैः स्वबन्धून् पितरं मातरं चाप्यतोषयत् ॥५४॥

वे कल्याणी, बाल्यावस्था में ही निरन्तर अपने बन्धुओं में प्रिय हो गयीं, उन्होंने अपने गुणों से अपने बन्धु-वर्ग तथा माता-पिता को सन्तुष्ट कर लिया ॥ ५४ ॥

मातुः स्तुतिकरी नित्यं पितृपूजनतत्परा ।
सर्वदा भ्रातृसहिता जगन्माताऽभवत्तदा ॥५५॥

तब वे जगन्माता, नित्य अपनी माता की स्तुति तथा पिता के पूजन में भाइयों के सहित, सदैव तत्पर रहती थीं ॥ ५५ ॥

सर्वदा सा जगन्माता कन्या सा समुपस्थिता ।
पितुः समीपे वसति कालिन्दीव विभावसोः ॥५६॥

जिस प्रकार यमुना सूर्य के पास रहती हैं, उसी प्रकार वे जगन्माता, कन्यारूप में सदैव अपने पिता, हिमालय के निकट रहा करती थीं ॥ ५६ ॥

अथैकदा तां निकटे निधाय हिमवद्गिरिः ।
तनयैः सह सङ्गम्य स्थितः परमकौतुकात् ॥५७॥
अथागतस्तत्र मुनिर्नारदो देवलोकतः ।
हिमवन्तं सुखासीनं सुतैः सार्धं ददर्श सः ॥५८॥

एक बार पर्वतराज हिमालय उन देवी को निकट बैठा, पुत्रों के साथ एकत्र हो, शोभायमान हो रहे थे। उसी समय देवलोक से वहाँ नारदमुनि, अत्यधिक कौतुकवश आये और उन्होंने पुत्रों के साथ सुखपूर्वक बैठे हुए हिमालय को देखा ॥ ५७-५८ ॥

अपश्यन्निकटे कालीं कालिकामिव सूर्यतः ।
ज्योत्स्नामिव सुधांशोस्तु सम्यग्वृद्धां शरन्निशि ॥५९॥

उस समय सूर्य के निकट काली घटा की भाँति एवं शरद ऋतु की रात्रि में भली प्रकार बढ़ी हुई चाँदनी की भाँति, उन्होंने हिमालय के निकट काली को देखा ॥ ५९ ॥

पूजितस्तेन गिरिणा कृतासन-परिग्रहः ।
नारदः प्रथमं शैलं वृत्तान्तं पर्यपृच्छत ॥६०॥

नारद मुनि ने हिमालयपर्वत द्वारा पूजित होने के पश्चात् आसन ग्रहण किया और सबसे पहले पर्वतराज का समाचार पूछा ॥ ६० ॥

ततो विदितवृत्तान्तो नारदो मेनकां प्रति ।
उवाच हर्षयन् वाक्यं मुनिर्वाक्यविशारदः ॥६१॥

तब समाचार जानने के पश्चात्, वाक्यरचना में निपुण, नारद मुनि ने उनकी प्रसन्नता को बढ़ाते हुए, मेनका के प्रति ये वाक्य कहे— ॥ ६१ ॥

।। नारद उवाच ।।

एषा ते तनया रुच्या शुद्धांशोरिव वर्धिता ।
आद्या कला शैलराज सर्वलक्षणशालिनी ।।६२।।

नारद बोले–हे पर्वतराज ! तुम्हारी यह कन्या, रुचिवश चन्द्रमा की पहली कला की भाँति बढ़ने वाली तथा सभी लक्षणों से युक्त है ।। ६२ ।।

शम्भोर्भवित्री दयिता सानुकूला सदा हरे ।
तस्य चित्तं वशे चैषा करिष्यति तपस्विनी ।।६३।।

यह सदाशिव के अनुकूल रहने वाली, उनकी पत्नी होने वाली है । यह तपस्या करके उनके चित्त को वश में करेगी ।। ६३ ।।

स चाप्येनामृते जायां नान्यामुद्वाहयिष्यति ।
एतयोर्यादृशः प्रेम कयोश्चिन्नैव तादृशः ।।६४।।

वे भी इसे छोड़कर अन्य किसी से पत्नी के रूप में विवाह नहीं करेंगे । इन दोनों में जैसा प्रेम होगा, वैसा किन्हीं दो प्राणियों में नहीं होगा ।। ६४ ।।

भूतो वा भविता वापि नाधुना च प्रवर्तते ।
अनया सुरकार्याणि कर्तव्यानि बहूनि च ।।६५।।

न ऐसा प्रेम हुआ है, न होगा । न इस समय कोई है । इसके द्वारा देवताओं के बहुत से कार्य किये जायेंगे ।। ६५ ।।

अनयैव गिरिश्रेष्ठ अर्धनारीश्वरो हरः ।
भविष्यति च सौहार्दोज्योत्स्नयैवामृतात्मनः ।।६६।।

हे पर्वतों में श्रेष्ठ ! इसी से संयुक्त हो, शिव, अर्धनारीश्वर बनेंगे और इन दोनों में अमृतात्माचन्द्रमा एवं उसकी चाँदनी की भाँति, परस्पर सौहार्द होगा ।। ६६ ।।

शरीरार्धं हरस्यैषा करिष्यति निजास्पदे ।
स्वर्णगौरी सुवर्णाभा तपसा तोषिते हरे ।।६७।।

यह तपस्या से शिव को संतुष्ट कर सुवर्ण के समान गोरी, सुवर्ण के समान आभावाली होकर, शिव के शरीर के आधे भाग को अपना आश्रय बनावेगी ।। ६७ ।।

विद्युद्गौरी त्वियं काली तव पुत्री भविष्यति ।
गौरीति नाम्ना पश्चात्तु ख्यातिमेषा गमिष्यति ।।६८।।

तब तुम्हारी यह काली नाम्ना पुत्री, विद्युत् के समान गौरवर्णा हो जायेगी । तत्पश्चात् यह गौरी नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त करेगी ।। ६८ ।।

नान्यस्मै त्वमिमां दातुं मनः कर्तुमिहार्हसि ।
इदं चोपांशु देवानां न प्रकाशं करिष्यसि ।।६९।।

तुम इसे किसी अन्य को देने का मन, मत बनाना । यह देवताओं की अपनी योजना है । इसे प्रकाशित नहीं करना ।। ६९ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवर्षेर्नारदस्य च ।
उवाच हिमवान् वाक्यं मुनिं प्रति विशारदः ।।७०।।

मार्कण्डेय बोले– इस प्रकार देवर्षि नारद के वचनों को सुनकर चतुर हिमवान् ने उन मुनि के प्रति ये वचन कहे— ॥ ७० ॥

।। हिमवान् उवाच ।।

श्रूयते त्यक्तसङ्गः स महादेवो यतात्मवान् ।
तपश्चोपांशु तपति देवानामप्यगोचरः ।।७१।।

हिमालय बोले– सुना जाता है कि महादेव, इस समय नियतात्मा होकर गुप्त रूप से तपस्या करहे हैं, वे देवताओं के लिए भी अगोचर हैं ॥ ७१ ॥

स कथं ध्यानमार्गस्थः परब्रह्मार्पितं मनः ।
प्रभ्रंषिष्यति देवर्षे तत्र मे संशयो महान् ।।७२।।

हे देवर्षि ! वह जो ध्यान मार्ग में स्थित हो, अपने मन को परमब्रह्म में अर्पित किये हुए हैं, अपने लक्ष्य से कैसे भ्रष्ट होंगे । मुझे इसमें महान् संशय है ॥ ७२ ॥

अक्षरं पेरमं ब्रह्म प्रदीपकलिकोपमम् ।
सोऽन्तः पश्यति सर्वत्र न तु बाह्यं निरीक्षते ।।७३।।

वे सभी स्थानों पर अपने अन्तर में ही प्रदीप की कलिका के समान स्वयं प्रकाशवान्, अविनाशी परंब्रह्म को देखा करते हैं न कि बाहर देखते हैं ॥ ७३ ॥

इति स्म श्रूयते नित्यं किन्नराणां मुखाद् द्विज ।
स कथं तादृशं स्वान्तं शक्तो भ्रंशयितुं हरः ।।७४।।

हे द्विज! किन्नरों के मुख से ऐसा नित्य सुना गया है । उस प्रकार से अपने अन्तः में ही आसक्त, शिव कैसे भ्रमित किये जा सकेंगे ? ॥ ७४ ॥

विशेषतः श्रूयते स्म दाक्षायण्या समं हरः ।
समयं ज्ञातवान् पूर्वं तन्मे निगदतः शृणु ।।७५।।

विशेष रूप से यह सुना जाता है कि प्राचीन काल में शिव ने दाक्षायणी के साथ कोई अनुबन्ध किया था, वह मेरे द्वारा कहा जाता है । उसे आप सुनिये ॥ ७५ ॥

त्वामृतेऽन्यां न वनितां दाक्षायणि सति प्रिये ।
भार्यार्थे संग्रहीष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।।७६।।

हे दाक्षायणी ! हे सती प्रिये ! तुम्हारे बिना मैं किसी अन्य स्त्री को पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं करूँगा । यह मैं तुमसे सत्य ही कह रहा हूँ ॥ ७६ ॥

इति सत्या समं तेन पुरैव समयः कृतः ।
तस्यां मृतायां स कथं स्त्रियमन्यां ग्रहीष्यति ।।७७।।

सती से उन शिव ने पहले ही ऐसा अनुबन्ध किया है। अब उसके मरने पर वह कैसे अन्य स्त्री को ग्रहण करेंगे? ॥ ७७ ॥

।। नारदोवाच ।।

नात्र कार्या त्वया चिन्ता गिरिराज भवत्सुता ।
एषा सती समुत्पन्ना हरायैव न संशयः ।।७८।।

नारद बोले–हे गिरिराज ! तुम्हारी कन्या, तुम्हारे द्वारा चिन्ता करने योग्य नहीं है। ये शिव के लिए स्वयं सती ही उत्पन्न हुई हैं। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ७८ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा स तु देवर्षिर्नारदस्तु यथा सती ।
मेनकायां समुत्पन्ना सर्वं तत् प्रोक्तवान् गिरौ ।।७९।।

मार्कण्डेय बोले– ऐसा कहकर देवर्षि नारद ने, जिस प्रकार सती मेनका के गर्भ से उत्पन्न हुई थीं, वह सब, हिमालयपर्वत से कह दिया ॥ ७९ ॥

तत्सर्वं पूर्ववृत्तान्तं नारदस्य मुखाद् गिरिः ।
श्रुत्वा सपुत्रदारः स तदा निःसंशयोऽभवत् ।।८०।।

जब पहले का वह सब वृत्तान्त, हिमालयपर्वत ने नारद मुनि के मुख से अपने पुत्रों एवं पत्नी के सहित सुना, तब वह संशयरहित हो गये ॥ ८० ॥

ततः काली कथां श्रुत्वा नारदस्य मुखात् तदा ।
लज्जयाऽधोमुखी भूत्वा स्मितविस्तारितानना ।।८१।।

तब काली, नारद के मुख से उस कथा को सुनकर, लज्जा से अधोमुखी हो गयीं तथा मुस्कान से उनके मुख फैल गये ॥ ८१ ॥

करेण तां तु संगृह्य प्रोन्नमय्य मुखं गिरिः ।
मूर्ध्नि सम्यगुपाघ्राय स्वासने संन्यवेशयत् ।।८२।।

तब हिमालय ने उन्हे हाथ से पकड़ कर उनके मुख को ऊपर उठाया और उनके मस्तक को भलीभाँति सूँघकर, अपने आसन पर बैठाया ॥ ८२ ॥

ततस्तां पुनरेवाह नारदः शैलपुत्रिकाम् ।
हर्षयन् गिरिराजं तु मेनकां तनयैः सह ।।८३।।

तब नारद मुनि ने गिरिराज हिमालय और पुत्रोंसहित माता मेनका को प्रसन्न करते हुए, शैलपुत्री के प्रति पुनः कहा— ॥ ८३ ॥

।। नारद उवाच ।।

सिंहासनेन किं स्वस्याः शैलराज भवेत् तव ।
शम्भोरूरुः सदैवास्या आसनं तु भविष्यति ।।८४।।

नारद बोले–हे शैलराज ! तुम्हारे सिंहासन से इसका क्या होगा? इसका आसन तो सदैव शिव के जाँघों पर होगा ॥ ८४ ॥

हरोरुमासनं प्राप्य तनया तव संततम् ।
नान्यत्र कुत्रचित्तुष्टिमासने प्राप्यते गिरे ।।८५।।

हे गिरि ! शिव के जंघों का आसन प्राप्त कर, तुम्हारी यह पुत्री, अन्यत्र किसी भी आसन पर सन्तोष नहीं प्राप्त करेगी ॥ ८५ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति वचनमुदारं नारदः शैलराजं
त्रिदिवमगमदुक्त्वा तत्क्षणाद् देवयानैः ।
गिरिपतिरपि चिन्ताहर्षसन्मोहयुक्तः
प्रविशदचलयासौ स्वान्तरं पद्मगर्भम् ।।८६।।

॥ इति श्रीकालिकापुराणे नारदागमने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

मार्कण्डेय बोले– नारद मुनि, शैलराज, हिमालय से इस प्रकार के उदारतापूर्ण वचन कहकर, देवमार्ग से स्वर्ग को चले गये। तब गिरिपति हिमालय भी चिन्ता, हर्ष और मोह से युक्त हो अपने पद्मगर्भनामक निवास के अन्दर प्रवेश किये ॥ ८६ ॥

॥ श्रीकालिकापुराण में नारदागमन सम्बन्धी एकतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४१ ॥



द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

कामदहनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एतस्मिन्नन्तरे शम्भुः क्षिप्रं त्यक्त्वा तदा सरः ।
गङ्गावतारमगमद् हिमवत्-प्रस्थमुत्तमम् ।।१।।
यत्र गङ्गा निपतिता पुरा ब्रह्मपुरात् सृता ।
ओषधीप्रस्थनगरस्यादूरे सानुरुत्तमः ।।२।।

मार्कण्डेय बोले– तब शम्भु, इस बीच क्षिप्रसरोवर को छोड़कर, हिमालय के गङ्गावतार नामक उत्तमशिखर पर चले गये। जहाँ प्राचीनकाल में ब्रह्मलोक से निकलकर गङ्गा धरती पर उतरी थीं, जो उत्तमशिखर ओषधिप्रस्थ नामक नगर से दूर नहीं है ।। १-२ ।।

तत्र भर्गः स्वमात्मानमक्षरं परमात्परम् ।
चेतो ज्ञानमयं नित्यं ज्योतीरूपं निराकुलम् ।।३।।
जगन्मयं प्रदीपाभं द्वैतहीनाविशेषकम् ।
एकाग्रं चिन्तयामास भगवान् वृषभध्वजः ।।४।।

वहाँ वृषभध्वज, भर्ग, भगवान् शिव, अपने आपके अविनाशी, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ, चैतन्य, ज्ञानमय, नित्य, ज्योतिस्वरूप, आकुलतारहितशान्त, जगन्मय, प्रदीपवत् आभावाले, द्वैत से रहित, विशेष, एकाग्रस्वरूप का चिन्तन करने लगे ।। ३-४ ।।

हरे ध्यानपरे तस्मिन् प्रमथा ध्यानतत्पराः ।
अभवन् केचिदपरे नन्दिभृंग्यादयो गणाः ।।५।।
द्वाःस्था भूता महाभागा ये पूर्वद्वारि योजिताः ।
तावन्तोऽपि गणास्तत्र नैव किञ्चन कूजितम् ।।६।।

उस समय शिव के ध्यानपरायण होने पर प्रमथगण भी ध्यान में तत्पर हो गये तो कोई दूसरे नन्दि, भृङ्गी आदि गण जो पहले ही द्वार पर नियुक्त किये गये थे। वे सभी गण, बिना कुछ बोले, वहाँ, द्वार पर स्थित थे ।। ५-६ ।।

तेषां संश्रूयते सर्वे निःशब्दाः संस्थितास्ततः ।
अन्ये तु तत्र क्रीडन्ति गणा दूरान्तरस्थिताः ।।७।।

वहाँ चुपचाप स्थित हो वे सब उनका सब कुछ सुनते थे। तथा अन्य गण वहाँ से दूर रह कर क्रीड़ा करते थे ॥ ७ ॥

कुसुमैश्च दलैर्भक्तैर्गिरिप्रस्रवणोदकैः ।
रत्नानि च विचिन्वन्तो भूषिता गैरिकैस्तथा ॥८॥

वे दलों में बँटे हुए, शिव के गण, फूलों से, पर्वतीयझरनों के जल से क्रीड़ा कर रहे थे। वे रत्नों का चयन कर, गैरिकपदार्थों से अपने को सजा रहे थे ॥ ८ ॥

सगणं तु तथा दृष्ट्वा गिरिराजो गतं हरम् ।
स्वस्थानमोषधिप्रस्थान्निःसृत्य सहितो गणैः ।
पूजार्थमुपतस्थे स यथायोग्यं तथार्चयत् ॥९॥

अपने गणों के सहित उस अवस्था में शिव को वहाँ गया हुआ देखकर, हिमालय भी अपने निवासस्थान ओषधिप्रस्थ से निकलकर गणों के सहित उनकी पूजा के लिए उपस्थित हुये तथा उनकी यथायोग्य पूजा की ॥ ९ ॥

स चापि शम्भुस्तस्यार्चां परया श्रद्धया युतः ।
प्रतिजग्राह कूटस्थो गङ्गाशीर्षे यथा पुरा ॥१०॥

उन शिव ने भी उनकी (हिमालय की) पूजा को स्वयं ध्यानस्थ हो तथा परमश्रद्धा से युक्त हो, उसी प्रकार धारण किया, जिस प्रकार पहले गङ्गा को सिर पर धारण किया था ॥ १० ॥

पूजितस्तेन सहसा गिरिराजं वृषध्वजः ।
उवाच ध्यानयोगस्थः स्मयन्निव जगत्पतिः ॥११॥

उनके द्वारा पूजित हो, ध्यानयोग में स्थित हो, जगत् के स्वामी, बैल की ध्वजा वाले, भगवान शिव ने सहसा मुस्कुराते हुये, गिरिराज हिमालय से कहा—॥ ११ ॥

॥ ईश्वर उवाच ॥

तव प्रस्थे तपस्तप्तुं रहस्यमहमागतः ।
न यथा कोऽपि निकटं समायाति तथा कुरु ॥१२॥

ईश्वर बोले— आपके शिखर पर मैं एकान्त में तपस्या करने आया हूँ; इसलिये जिस प्रकार कोई भी मेरे निकट न आ सके, आप वैसी ही व्यवस्था करो ॥ १२ ॥

त्वं महात्मा जगद्धाम मुनीनां च सदाश्रयः ।
देवानां राक्षसानां च यक्षाणां किन्नरस्य च ॥१३॥
सदावासो द्विजातीनां गङ्गापूतश्च नित्यदा ।
त्वत्पुरस्यास्य निकटे प्रस्थं गङ्गावतारणम् ॥१४॥
आश्रितोऽहं गिरिश्रेष्ठ तद्योग्यं कुरु साम्प्रतम् ॥१५॥

आप महान् आत्मा वाले हो, आप जगत् के धाम तथा मुनियों, देवताओं, राक्षसों, यक्षों एवं किन्नरों के उत्तम आश्रय हो। जहाँ द्विज जातियाँ सदैव निवास

करती हैं तथा जो नित्य ही गङ्गा के जल से पवित्र है। हे गिरिश्रेष्ठ ! आपके नगर के समीप ही गङ्गावतरण नामक का एक शिखर है, मैं वहाँ आश्रय ले सकूँ, उसे इस समय इस योग्य बनायें ॥ १३-१५ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा जगतां नाथस्तूष्णीमास वृषध्वजः ।
गिरिराजस्तदा शम्भुं प्रणयादिदमब्रवीत् ।।१६।।

मार्कण्डेय बोले– ऐसा कहकर जगत् के स्वामी वृषभध्वज शिव जब मौन हो गये तब गिरिराज हिमालय, शिव से विनम्रतापूर्वक यह बोले—॥ १६ ॥

।। गिरिराजोवाच ।।

पूतोऽस्मि जगतां नाथ त्वयाऽहं परमेश्वर ।
आगतेनाद्य विषयमितः कृत्यं किमस्ति मे ।।१७।।

गिरिराज बोले– हे जगत् के स्वामी ! हे परमेश्वर ! आपके यहाँ पर आने से आज मैं पवित्र हो गया हूँ। इस विषय में अब मेरा क्या कर्त्तव्य है? ॥ १७ ॥

तपसा महता त्वं हि देवैर्यत्नपरिस्थितैः ।
न प्राप्यसे जगन्नाथ स त्वं स्वयमुपस्थितः ।।१८।।

जगत् के ग्वामी, जो आप परमात्मचिन्तन में लगे हुये देवगणों को महती तपस्या द्वारा भी प्राप्त नहीं होते, वही आप मेरे सामने स्वयं उपस्थित हैं ॥ १८ ॥

मत्तो धन्यतरो नास्ति न मत्तोऽन्योऽस्ति पुण्यवान् ।
यद्भवान् हिमवत्-प्रस्थे तपसे समुपस्थितः ।।१९।।

आप मुझ हिमालय के शिखर पर तपस्या हेतु उपस्थित हुये हैं। अतः आज न तो कोई मुझसे अधिक धन्य है, न पुण्यवान है ॥ १९ ॥

देवेन्द्रादधिकं मन्ये आत्मानं परमेश्वर ।
सगणेन त्वया प्राप्तो यदाऽहं कामचारतः ।।२०।।

हे परमेश्वर ! जब मैं आपको स्वेच्छया गणों के साथ पाता हूँ तो मैं अपने को देवताओं के राजा, इन्द्र से भी श्रेष्ठ मानता हूँ ॥ २० ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा गिरिराजोऽथ स्ववेश्म पुनरागमत् ।
नियमाय परिवारान् गणानप्यवदत् स्वकान् ।।२१।।

मार्कण्डेय बोले–ऐसा कह कर गिरिराज हिमालय अपने निवासस्थान पर वापस लौट आये तथा नियमों की दृष्टि से अपने परिवारवालों एवं गणों से कहे—॥ २१ ॥

।। गिरिराजोवाच ।।

अद्य प्रभृति ना गन्ता कोऽपि गङ्गावतारणम् ।
मच्छासनं न हि विना यो गन्ता दण्डये ह्यहम् ।।२२।।

गिरिराज बोले–आज से कोई गङ्गावतरण नामक स्थान पर नहीं जायेगा। मेरी आज्ञा के बिना जो वहाँ जायेगा, वह मेरे द्वारा दण्डनीय होगा ॥ २२ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति स्वान् स नियम्याशु तिलपुष्पकुशान् फलम् ।
समादायाशु तनयासहितोऽगाद् हरान्तिकम् ।।२३।।

मार्कण्डेव उवाच–इस प्रकार से अपने स्वजनों को नियन्त्रित कर, शीघ्र ही तिल, पुष्प, कुशा एवं फल आदि को लेकर, वे स्वयं पुत्री के सहित, शिव के समीप गये ॥ २३ ॥

अथ गत्वा जगन्नाथं हरं ध्यानपरं तदा ।
नमयामास तनयां कालीं सर्वगुणान्विताम् ।।२४।।

इसके बाद तब ध्यान में स्थित, जगत् के स्वामी, शिव के पास पहुँचकर उन्होंने सभी गुणों से युक्त, काली नामक अपनी पुत्री से नमस्कार कराया ॥ २४ ॥

तिलपुष्पादिकं यद् यत्तत्तदग्रे निधाय सः ।
अग्रे कृत्वा सुतां शम्भुमिदमाह स शैलराट् ।।२५।।

वे पर्वतराज भेंटस्वरूप जो-जो तिल-पुष्प आदि ले गये थे, उसे उन्होंने शिव के आगे रख दिया तथा कन्या को आगे कर ये वचन कहे—॥ २५ ॥

।। गिरिराजोवाच ।।

भगवंस्तनयेयं मे त्वमाराधयितुं प्रति ।
समादिष्टा समानीता त्वदाराधनकांक्षिणी ।।२६।।

गिरिराज बोले–हे भगवन् यह मेरी पुत्री है, जिसे तुम्हारी आराधना के लिये आदेश दिया गया है। तुम्हारी आराधना की इच्छा से ही यह यहाँ लायी गयी है ॥ २६ ॥

सखिभ्यां सह नित्यं त्वां सेवतामीश शङ्कर ।
अनुजानीहि सेवायै मयि ते यद्यनुग्रहः ।।२७।।

हे ईश्वर ! हे शङ्कर ! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा हो तो यह अपनी सखियों के साथ आपकी नित्य सेवा करे, इसे सेवाहेतु स्वीकार कीजिए ॥ २७ ॥

काली पार्वती सौन्दर्य वर्णन

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ तां शङ्करोऽपश्यत् प्रथमारूढयौवनाम् ।
फुल्लेन्दीवरपत्राभां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।।२८।।

मार्कण्डेय बोले–पिता के उपर्युक्त कथन के बाद शिव ने उस हिमालयतनया काली को देखा—जो यौवन के प्रथम तल पर आरूढ़ हो रही थी तथा खिले हुए नीले कमल के पत्तों के समान जिनकी आभा, कांति थी और जिनका मुख पूर्णचन्द्रमा के समान था ॥ २८ ॥

समग्रनीलकेशौघ - प्राप्तवेश - विजृम्भिकाम् ।
कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं चारुकर्णयुगोज्ज्वलाम् ।।२९।।

उनके समस्त केश समूह नीले (काले) तथा खुले हुये अवस्था को प्राप्त थे। उनका गला, शङ्ख के समान था, वे विशाल नेत्रों वाली थीं और उनके दो उज्ज्वल (निर्मल) कान शोभायमान हो रहे थे ॥ २९ ॥

मृणालायतपर्यन्त - बाहुयुग्ममनोरमाम् ।
राजीवकुड्मलप्रख्य - घनपीनोन्नतस्तनौ ।।३०।।

उनकी दोनों भुजाएँ, कमल के डण्ठल के समान पतली और सुन्दर थीं तथा उनके दोनों स्तन, कमलकोश के समान घने एवं पुष्ट थे ॥ ३० ॥

बिभ्रतीं क्षीणसन्मध्यां रक्तपाणितलद्वयाम् ।
स्थलपद्मप्रतीकाश - पादयुग्ममनोरमाम् ।।३१।।

वे सुन्दर पतले मध्यभाग (कटिभाग) से शोभित थीं तथा उनके दोनों हाथों के तल (हथेलियाँ) लाल थे। जमीन पर खिले हुए कमल के फूलों के समान उनके दोनों पैर, सुन्दर लग रहे थे ॥ ३१ ॥

मध्यक्षीणांमहासत्त्वां वृत्तस्थूलघनोज्ज्वलाम् ।
सुजङ्घां नागनासोरुं निम्ननाभिविभूषिताम् ।।३२।।

उनका मध्यभाग (कटिप्रदेश) पतला था, वे महती बलवती थीं, उनकी जाँघें, हाथी के सूँड़ के समान गोल, विशाल, पुष्ट, उज्ज्वल एवं सुन्दर थीं। वे गहरी नाभि से सुशोभित थीं ॥ ३२ ॥

सुवृत्तचारुजङ्घाग्रां त्रिगम्भीरां षडुन्नताम् ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णां त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम् ।।३३।।

उनके जाँघों के अग्रभाग सुन्दर गोल और सुन्दर थे। वे ठुड्डी, नाभि, योनि इन तीन गहरे तथा कपोल, स्तन एवं नितम्बों के जोड़े रूपी छः उन्नत अङ्गों से सुशोभित थीं। वे सभी लक्षणों से युक्त, तीनों लोकों में दुर्लभ (अद्वितीय सुन्दरी) थीं ॥ ३३ ॥

ध्यानपंजरनिर्बन्ध - मुनिमानसमप्यरम् ।
दर्शनाद् भ्रंशितुं शक्तां योषिद्-गणशिरोमणिम् ।।३४।।

वे ध्यान के पिंजरे में बँधे हुए मुनियों के मन को भी दर्शनमात्र से ही तेजी से भ्रष्ट करने में समर्थ, स्त्रियों के समूह में भी सिरमौर थीं ॥ ३४ ॥

तां दृष्ट्वा तपसे नित्यं ध्यानिनां च मनोहराम् ।
विघ्नहेतुं चानुरागवर्धिनीं कामरूपिणीम् ॥३५॥
गिरिराजस्य वचनात्तनयां तस्य शङ्करः ।
पर्येषणायै जगृहे गौरवादपि गोरथः ॥३६॥
उवाचेदं तव सुता सखिभ्यां सह शैलराट् ।
नित्यं मे सेवया यत्ता निर्भीता ह्यत्र तिष्ठतु ॥३७॥

उस, नित्य तपस्या में लगे हुए, ध्यानियों के भी विघ्न का कारण, मन को हरने वाली, प्रेम को बढ़ाने वाली, कामरूपिणी को देखकर, गिरिराज हिमालय के वचनानुसार, भगवान् शङ्कर, गोरथ (वृषवाहन) ने उनकी कन्या को पूजा के लिए तथा उनका मान रखने के लिये स्वीकार कर लिया और यह कहा– हे पर्वतराज ! तुम्हारी कन्या अपनी सखियों के साथ मेरी सेवा में रत हो, निर्भयतापूर्वक यहाँ रहे ॥३५-३७ ॥

एवमुक्त्वा तु तां देवीं सेवायै जगृहे हरः ।
इदमेव महद्धैर्यं यद् विघ्नो न हि विघ्नयेत् ।
निर्विघ्नं स्थानमासाद्य यत्तपः क्रियते द्विजैः ॥३८॥
सविघ्नो विघ्नहेतुं यः परिभूय प्रवर्तते ।
त्वन्महत्त्वं च तपसां धीरता च तपस्विनाम् ॥३९॥

ऐसा कहकर शिव ने उस देवी को अपनी सेवाहेतु स्वीकार कर लिया कि यह महान् धैर्य की बात है कि विघ्न रहते हुए भी विघ्न न पहुँचायें; क्योंकि निर्विघ्न स्थान प्राप्त कर, द्विजातियों द्वारा जो तपस्या की जाती है, वह विघ्नों के कारण पराजित हो, विघ्नयुक्त हो जाती है । इनके रहने पर ही तुम्हारे यहाँ तपस्या का महत्त्व और तपस्वियों की धीरता है ॥ ३८-३९ ॥

ततः स्वपुरमायातो गिरिराट् परिचारकैः ।
हरश्च ध्यानयोगेन परं चिन्तयितुं स्थितः ॥४०॥

तब पर्वतराज हिमालय अपने सेवकों सहित, अपनी नगरी में लौट गये तथा शङ्कर भी ध्यानयोग के द्वारा परमतत्त्व के चिन्तन में तत्पर हो गये ॥ ४० ॥

काली की शिव सेवा

काली सखिभ्यां सहिता प्रत्यहं चन्द्रशेखरम् ।
सेवमाना महादेवं गमनागमनैः स्थिता ॥४१॥

भगवती काली भी सखियों के साथ प्रतिदिन, चन्द्रमा जिनके मस्तक पर सुशोभित थे ऐसे शिव के समीप आकर और जाकर, उन महादेव की सेवा में लग गयीं ॥ ४१ ॥

कदाचित् सहिता काली सखिभ्यां शङ्कराग्रतः ।
वितन्वती शुभं गीतां पञ्चमञ्चात्तनोत्तदा ।।४२।।

तब काली कभी सखियों के साथ शिव के आगे पञ्चमस्वर में मङ्गलमय गीतों को फैलातीं (सुनातीं) थीं ॥ ४२ ॥

कदाचित् कुशपुष्पादिसमिद्वारि हराय सा ।
सखिभ्यां स्नानसत्कारं कुर्वन्ती न्यवसत्तदा ।।४३।।

वे कभी शिव के लिये कुश, फूल, समिधाओं के द्वारा उनकी सेवा करती, तो कभी सखियों के साथ उनका स्नान, सत्कार आदि करते हुए वे, वहाँ निवास करती थीं ॥ ४३ ॥

कदाचिदग्रे नियता स्थिता चन्द्रभृतो मुखम् ।
वीक्षन्ती चिन्तयामास सकामा चन्द्रशेखरम् ।।४४।।

कभी वे सामने स्थिररूप से खड़ी होकर चन्द्रधारण करने वाले शिव के मुख को देखती हुईं, चन्द्रशेखर शिव का, कामना पूर्वक चिन्तन करतीं ॥ ४४ ॥

यदा कार्येषु सा व्यग्रा तदा तत्कर्म चेष्टते ।
कृत्यहीना यदा सा तु तदैवाचिन्तयद्धरम् ।।४५।।

जब वे कार्यों में व्यस्त रहतीं तो उन्हीं के लिये कार्य करतीं तथा जब कार्य से मुक्त होतीं तो उन्हीं शिव का ही चिन्तन करती थीं ॥ ४५ ॥

कदा मामेष भूतेशः कर्ता पाणिगृहीतिकाम् ।
कदा मया समं रन्ता नानासद्भावभावनैः ।।४६।।
इति चिन्तापरा काली स्वप्नेऽपि परमेश्वरम् ।
अर्चयत्येव परमं सदाचिन्तनतत्परा ।।४७।।

ये भूतेश्वर कब मेरा पाणिग्रहण करेंगे तथा कब मेरे साथ अनेक सुन्दर भावनाओं के सहित रमण करने वाले होंगे। इन चिन्ताओं से युक्त हो, उस परमतत्त्व के चिन्तन में सदैव तत्पर रहकर काली, स्वप्न में भी उन्हीं परमेश्वर का ही पूजन करती थीं ॥ ४६-४७ ॥

अग्रं गता यदा काली प्रध्यायति महेश्वरम् ।
तदा तद् वेदभूतेशस्तां निसर्गपरिस्थिताम् ।।४८।।
किन्तु गर्भगतैर्बीजैर्धूतदेहेति तां तदा ।
नाग्रहीद्गिरिशः कालीं भार्यार्थे ह्यधृतव्रताम् ।।४९।।

जब काली महेश्वर के सम्मुख स्थित हो उनका ध्यान करतीं तब उन्हें उस अवस्था में जानकर भूतनाथ, गिरीश, शिव, स्वाभाविकरूप से परिस्थिति को प्राप्त

किन्तु गर्भगत बीजदोष से मलिन शरीर वाली, काली को जो व्रतपूर्वक सेवा में रत नहीं थी, पत्नी रूप में स्वीकार नहीं किया ॥ ४८-४९ ॥

महादेवोऽपि तं दृष्ट्वा तदैवेदमचिन्तयत् ।
कथमेषा तपश्चर्याव्रतं कुर्याद् गिरेः सुता ।।५०।।

तभी महादेव ने भी उसे देखकर यह विचार किया कि यह पर्वतराज की पुत्री, कैसे तपश्चर्या करेगी ? ।।५०।।

कृतव्रतां ग्रहीष्यामि गर्भबीजविवर्जिताम् ।
कालीं भार्यां स्वंदयितां योनिजामतिदूषिताम् ।।५१।।

जब यह व्रत करके, गर्भबीज दोष से मुक्त हो जायेगी तो मैं अपनी इस पत्नी, काली को, जो मातृयोनि से उत्पन्न होने के कारण अतीव दूषित हो गयी है, पत्नी के रूप में स्वीकार कर लूँगा ॥ ५१ ॥

व्रतेन चाथ संस्कारैर्गर्भबीजं विमुच्यते ।
तस्माद् व्रतं यथा काली कुर्यात् तद् युज्यते कथम् ।।५२।।

इसका गर्भबीज सम्बन्धी दोष, व्रत एवं संस्कारों के द्वारा दूर हो जायगा । अतः वह कार्य कैसे किया जाय कि काली व्रतहेतु प्रवृत्त होवें ॥ ५२ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति संचिन्त्य भूतेशस्तदा ध्यानमनाः स्थितः ।
ध्यानासक्तस्य तस्याथ नान्यचिन्ता व्यजायत ।।५३।।

मार्कण्डेय बोले– ऐसा विचारकर भूतेश्वर शिव तब ध्यान में स्थित हो गये । फिर ध्यानावस्थित शिव के मन में कोई चिन्ता नहीं उत्पन्न हुई ॥ ५३ ॥

काली त्वनुदिनं शम्भुं भक्त्या भृशमसेवत ।
विचिन्तयन्ती सततं तस्य रूपं महात्मनः ।।५४।।

काली ने भी प्रतिदिन भक्तिपूर्वक शिव की बहुत अधिक सेवा की । उस समय वे उन महात्मा के रूप का ही सदैव चिन्तन किया करती थीं ॥ ५४ ॥

हरोध्यानपरः कालीं नित्यं प्रत्यक्षतः स्थिताम् ।
विस्मृत्य पूर्ववृत्तान्तं पश्यन्नपि न पश्यति ।।५५।।

शिव भी ध्यान में ऐसे तत्पर रहते थे कि काली के नित्य प्रत्यक्ष रहते हुये भी पूर्ववृतान्त को भूलकर उन्हें देखते हुए भी नहीं देखते थे ॥ ५५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवांस्तारको नाम दैत्यराट् ।
बबाधे सर्वलोकांश्च ब्रह्मणो वरदर्पितः ।।५६।।

इसी बीच तारक नाम के दैत्यराज ने ब्रह्मा के वर से दर्प में आकर, सभी लोकों और देवताओं को कष्ट पहुँचाया ॥ ५६ ॥

वशीकृत्य स लोकांस्त्रीन् स्वयमिन्द्रो बभूव ह ।
विद्राव्य सकलान् देवान् दैत्यान् स्वांस्तत्-पदेषु च ।
स्वयं नियोजयामास देवयोनिषु चाप्यसौ ।।५७।।

तीनों लोकों को वश में करके वह स्वयं इन्द्र बन बैठा तथा सभी देवताओं को भगाकर, देवताओं के पदों पर, अपने दैत्यों को उसने नियुक्त किया ।। ५७ ।।

न यमः स्वेच्छया लोकांस्तस्मिन् राज्ञि नियच्छति ।
न स्वेच्छया तथा सूर्यो लोकांस्तपति तद्भयात् ।।५८।।

उसके राज्य में न यमराज स्वेच्छा से नियमन कर सकते थे और न सूर्य उसके भय के कारण इच्छानुसार लोकों में तपते ही थे ।। ५८ ।।

चन्द्रस्तु नर्मसाचिव्यं तस्य कुर्वन् स रश्मिभिः ।
वायुना सह संगम्य तत्-सेवां विदधेऽनिशम् ।।५९।।

चन्द्रमा अपनी किरणों द्वारा उसके कामकेलि में परामर्शदाता का ही कार्य करते थे । वायु के साथ वह रात-दिन उसकी सेवा में तत्पर रहते थे ।। ५९ ।।

सदा सौगन्ध्यगाम्भीर्य-शैत्यस्निग्धत्वसंयुतः ।
तं वीजयन् ववौ वायुः शासनात्तस्य भूभृतः ।।६०।।

उस राजा के शासन से सदैव सुगन्ध की गम्भीरता तथा शीतलता की स्निग्धता से युक्त हो, वायु भी उसे पंखा झलते हुये, बहते थे ।। ६० ।।

धनदोऽपि यथासारं धनमादाय यत्नतः ।
सावधानस्तस्य सेवामकरोत्तारकेच्छया ।।६१।।

कुबेर भी तारकासुर की इच्छानुसार ही, प्रयत्नपूर्वक, सामर्थ्य के अनुसार, धन लेकर, सावधान हो, उसकी सेवा किया करते थे ।। ६१ ।।

अग्निस्तस्याभवत् सूदः शासनात्तारकस्य तु ।
व्यञ्जनान्यथ भोज्यानि चक्रे तस्येच्छया तदा ।।६२।।

उस समय तारक के शासन से, अग्नि भी स्वयं उसके रसोइया बन गये थे और उसकी इच्छानुसार भोजन के योग्य पदार्थ बनाया करते थे ।। ६२ ।।

निर्ऋतिस्तस्य सततं सहितः सर्वराक्षसैः ।
अश्वान् गजान् वाहनानि कारयामास साध्वसात् ।।६३।।

निर्ऋति सभी राक्षसों के सहित, निरन्तर उसके थके हुए घोड़ों, हाथियों और वाहनों की सेवा किया करते थे ।। ६३ ।।

नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च स्तुवद्भिः सूतमागधैः ।
गायमानैश्च गन्धर्वैः संचिक्रीड सुरान् द्विषन् ।।६४।।

वह देवताओं से द्वेष करता हुआ, नाचती हुई अप्सराओं, स्तुति करते सूत-मागधों तथा गीत गाते हुए गन्धर्वों के साथ क्रीड़ा करता था ।। ६४ ।।

एवं स सर्वलोकांस्तु त्रिष्वप्यथ विलोडयन् ।
लोकेषु सारान् सारांश्च देवानामप्यथाग्रहीत् ।।६५।।

इस प्रकार उसने तीनों लोकों को भयभीत (व्यथित) कर, उन लोकों एवं देवताओं के सारतत्त्व को ग्रहण कर लिया ॥ ६५ ॥

तेनाभिबाधिताः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुरनाथा नाथमुत्तमम् ।।६६।।

उससे सब ओर से बाधित होकर, इन्द्र के नेतृत्व में सभी देवगण, अनाथभाव से उत्तमस्वामी तथा शरणस्थान ब्रह्मा के निकट गये ॥ ६७ ॥

ते प्रणम्य सुराः सर्वे पुरुहूतपुरोगमाः ।
इदमूचुर्महात्मानं सर्वलोक - पितामहम् ।।६७।।

देवराज इन्द्र को आगे कर उन सब देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया तथा सभी लोकों के पितामह, महात्मा, ब्रह्मा से ये वचन बोला—॥ ६७ ॥

देवकृतब्रह्मस्तुति

।। देवा ऊचुः ।।

लोकेश तारको दैत्यो वरेण तव दर्पितः ।
निरस्यास्मान् हठादस्मद्विषयान् स्वयमग्रहीत् ।।६८।।

देवता बोले– हे लोकेश ! आपके ही वर के कारण, दर्प से भरकर, तारकासुर ने बलपूर्वक हमलोगों को निकालकर, हमारे राज्य को स्वयं ग्रहण कर लिया है ॥ ६८ ॥

रात्रिंदिवं बाधतेऽस्मान् यत्र तत्र स्थिता वयम् ।
पलायिताश्च पश्यामः सर्वकाष्ठासु तारकम् ।।६९।।

वह रात-दिन हमलोगों को कष्ट पहुँचाता है। भागकर हमलोग जहाँ-जहाँ जाते हैं, सभी क्षण तारकासुर को वहाँ ही देखते हैं ॥ ६९ ॥

अग्निर्यमोऽथ वरुणो निर्ऋतिर्वायुरेव च ।
तथा मनुष्यधर्मा च सर्वैः परिकरैर्युतः ।।७०।।
एते तेनार्दिता ब्रह्मन् देवास्तस्यैव शासनात् ।
अनिच्छाकार्यनिरताः सर्वे तस्यानुजीविनः ।।७१।।

हे ब्रह्मदेव ! अग्नि, यम, वरुण, निर्ऋति और वायु सभी मनुष्यधर्मा देवता अपने परिकरों के सहित उसी के शासन से पीड़ित हैं एवं अनिच्छापूर्वक उसके अनुजीवी (अनुचर) बनकर कार्य कर रहे हैं ॥ ७०-७१ ॥

या देववनिताः स्वर्गे ये चाप्यप्सरसां गणाः ।
तान् सर्वानग्रहीद् दैत्यः सारं लोकेषु यच्च यत् ।।७२।।

स्वर्ग में जो देवताओं की स्त्रियाँ या अप्सराएँ थीं, उन सबको तथा लोकों में जो भी सारतत्त्व था उसे इस दैत्य ने ग्रहण कर लिया है ॥ ७२ ॥

न यज्ञाः सम्प्रवर्तन्ते न तपस्यन्ति तापसाः ।
दानधर्मादिकं किञ्चिद् न लोकेषु प्रवर्तते ।।७३।।

आज न तो यज्ञ हो रहे हैं और न तपस्वीजन तपस्या ही कर रहे हैं । लोकों में दानधर्मादि भी कुछ नहीं हो रहा है ॥ ७३ ॥

तस्य सेनापतिः पापः क्रौंचो नामास्ति दानवः ।
स पातालतलं गत्वा बाधतेऽहर्निशं प्रजाः ।।७४।।

उसका क्रौंचनामक सेनापति एक पापी दानव है, जो पाताल लोक में जाकर वहाँ की प्रजा को रात-दिन कष्ट दे रहा है ॥ ७४ ॥

तस्मात् तु तारकेणेदं सकलं भुवनत्रयम् ।
हृतं सर्वं जगत् त्राहि पापात्तस्मात् पितामह ।।७५।।

हे पितामह ! उस तारकासुर ने समस्त तीनों लोकों का हरण कर लिया है अतः आप उस पापी से सम्पूर्ण जगत की रक्षा कीजिये ॥ ७५ ॥

वयं च यत्र स्थास्यामस्तत्स्थानं विनिदेशय ।
स्वस्थानाच्च्यावितास्तेन लोकनाथ जगद्गुरो: ।।७६।।

हे जगत् के पूज्य, हे लोकनाथ ! उसके द्वारा अपने-अपने स्थानों से च्युत किये गये, हम सब इस समय जहाँ निवास करें, उस स्थान का निर्देश कीजिए ॥ ७६ ॥

त्वं नो गतिश्च शास्ता च त्वं नस्त्राता पिता प्रसू ।
त्वमेव भुवनानां च स्थापकः पालकः कृती ।।७७।।

आप ही हम सबकी गति हैं, शासक हैं, हम सबके रक्षक, पिता, उत्पन्न करने वाले भी, आप ही हैं । आप ही सभी भक्तों की स्थापना करने वाले, पालन करने वाले तथा यशस्वी हैं ॥ ७७ ॥

तस्माद् यावत्तारकाख्ये वह्नौ दग्धाः प्रजापते ।
न भवामस्तथा कर्तुं भवता युज्यतेऽधुना ।।७८।।

हे प्रजापति ! इसलिए इस समय आपको ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे हम उस तारक नामक अग्नि से दग्ध नहीं हों ॥ ७८ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

सुराणां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मलोके पितामहः ।
प्रत्युवाच सुरान् सर्वास्तत्कालसदृशं वचः ।।७९।।

मार्कण्डेय बोले–ब्रह्मलोक में पितामह ब्रह्मा ने देवताओं के वचनों को सुनकर, उन सबसे उस समय के उपयुक्त वाणी में, उन्हें उत्तर दिया—॥७९ ॥

।। ब्रह्मोवाच ।।

ममैव वरदानेन तारकाख्यः समेधितः ।
न मत्तस्तस्य मरणं युज्यते त्रिदिवौकसः ।।८०।।

ब्रह्मा बोले–हे देवताओं ! यह तारक नामक असुर मेरे ही वरदान से वृद्धि को प्राप्त हुआ है । इसलिए उसका मेरे द्वारा मरण, उचित नहीं प्रतीत होता ।। ८० ।।

युष्माकञ्च प्रतीकारः कर्तव्यः प्रतिकर्मणि ।
किन्तु सम्यक् न शक्नोमि प्रतिकर्तुं प्रचोदितः ।।८१।।

आप लोगों का उसके बदले प्रतीकार करना चाहिये किन्तु आप सबसे कहे जाने पर भी मैं भलीभाँति प्रतिकार, नहीं कर पा रहा हूँ ।। ८१ ।।

तस्माद् यथा तारकाख्यः स्वयमेष्यति संक्षयम् ।
तथा यूयं संविदध्वमुपदेशकरस्त्वहम् ।।८२।।

अतः जिस प्रकार तारक स्वयं ही विनाश को प्राप्त हो, ऐसा उपदेश मैं आप लोगों को करता हूँ, आप सब वही करें ।। ८२ ।।

न मया तारको वध्यो न तथा वनमालिना ।
न हरेण तथा वध्यो नान्यैरपि सुरैर्नरैः ।।८३।।
एष एव वरो दत्तो मया तस्मै तपस्यते ।
उपायश्चिन्तितश्चास्ति तत्कुर्वन्तु सुरोत्तमाः ।।८४।।

हे देववरों ! जब वह तपस्या कर रहा था तभी मेरे द्वारा उसे यह वर दे दिया गया था कि जिस प्रकार मेरे द्वारा तारक नहीं मारा जा सकेगा, उसी प्रकार वह न तो वनमाली भगवान् विष्णु द्वारा मारा जायेगा, न शिव द्वारा और न किसी अन्य देवता के द्वारा ही वह मारा जा सकेगा । ऐसी परिस्थिति में एक उपाय मेरे द्वारा सोचा गया है । आप सभी वही कीजिए ।। ८३-८४ ।।

सती दाक्षायणी पूर्वं त्यक्तदेहा स्वजन्मने ।
अगच्छन्मेनकां देवीं शैलराजस्य योषितम् ।।८५।।

पूर्वजन्म में दक्ष की पुत्री जिस सती ने अपने शरीर को छोड़ दिया था वही अब पर्वतराजहिमालय की पत्नी मेनका देवी के गर्भ में आई हैं ।। ८५ ।।

तां समुत्पादयामास मेनकाजठरे गिरिः ।
लक्ष्मीमिव पुरा ख्यातां भृगुः स्वतनयो मम ।।८६।।

उसे लक्ष्मी की भाँति हिमालय ने मेनका के गर्भ से उत्पन्न किया है ऐसा पहले ही मेरे पुत्र भृगु ने मुझसे बताया है ।। ८६ ।।

तामवश्यं महादेवः कुर्यात् पाणिगृहीतिकाम् ।
यथा स नचिरात्तस्यामनुरक्तो भवेत् सुराः ।
तथा विदध्वं सुतरां तत्तेजः प्रतिकर्तृ वः ।।८७।।

हे देवगण ! वे महादेव उसके प्रति अनुरक्त हो उसे जैसे अपनी पाणिगृहीता पत्नी अवश्य और शीघ्र बनावें वैसा ही आप सब करें क्योंकि उनका तेज, वीर्य ही आप लोगो की बाधा का प्रतीकार करने वाला होगा ।।८७।।

तमूर्ध्वरेतसं शम्भुं सैव प्रच्युतरेतसम् ।
कर्तुं समर्था नान्यास्ति काचिदप्यबलापरा ।।८८।।

उन ऊर्ध्वरेता शिव को पतितरेता करने में वही समर्थ हैं, अन्य कोई स्त्री नही हैं ।।८८।।

तस्य तेजश्च्युतं यच्च तस्माद् यो जायते सुतः ।
स एव तारकाख्यस्य हन्ता नान्यस्तु विद्यते ।।८९।।

उनका जो वीर्य, पतित होगा । उससे जो पुत्र उत्पन्न होगा वही तारक का वध करने वाला होगा और कोई दूसरा नहीं ।। ८९ ।।

सा सुता गिरिराजस्य साम्प्रतं रूढयौवना ।
तपस्यन्तं गिरिप्रस्थे नित्यं पर्येषते हरम् ।। ९०।।
वाक्याद् हिमवतः सा तु काली नाम्ना विषेवते ।
सखिभ्यां सह सर्वज्ञं ध्यानस्थं परमेश्वरम् ।।९१।।

गिरिराजहिमालय की वही कन्या, इस समय युवावस्था में प्रवेश कर, गिरिप्रस्थ पर तपस्यारत, शिव की नित्य पूजा करती है तथा अपने पिता, हिमालय की काली नाम वाली वह कन्या, सखियों के साथ सब कुछ जानने वाले, ध्यान में स्थित, परमेश्वर, शिव की उपासना कर रही है ।। ९०-९१ ।।

तामग्रतो वर्तमानां त्रिलोकवरवर्णिनीम् ।
ध्यानासक्तो महादेवो मनसापि न चेच्छति ।।९२।।

उस तीनों लोकों में श्रेष्ठ कन्या के आगे उपस्थित होने पर भी ध्यानस्थ महादेव उसे मन से भी नहीं चाहते ।।९२ ।।

यथा समीहते भार्यां कालीं च चन्द्रशेखरः ।
तथा कुरुध्वं त्रिदशा नचिरादेव यत्नतः ।।९३।।

हे देवगण ! जिस प्रकार चन्द्र को मस्तक पर धारण करने वाले शिव, काली को पत्नी के रूप में चाहने लगें आप सब शीघ्र ही उसी प्रकार का प्रयत्न कीजिए ।। ९३ ।।

स्वस्थानं भवतां स्वर्गस्तस्मात् तारकमप्यहम् ।
निवर्तयिष्ये सङ्गम्य गच्छध्वं विगतज्वराः ।।९४।।

आपलोगों का अपना स्थान स्वर्ग है, समझा कर यह तारक को भी मैं वहाँ से लौटाऊँगा । आप सब निश्चित होकर जायँ ।। ९४ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा सर्वलोकेशस्तारकाख्यमुपस्थितः ।
उपसङ्गम्य वचनं समाभाष्येदमब्रवीत् ।।९५।।

मार्कण्डेय बोले-ऐसा कहकर सभी लोकों के स्वामी ब्रह्मा, तारक के निकट पहुँचकर उसे समझाते हुए इस प्रकार के वचन बोले—।। ९५ ।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

भो भो तारक मा स्वर्गराज्यं त्वं परिशाधि भोः ।
तदर्थं न तपस्तप्तं समये भवता पुरा ।।९६।।
वरो नापि मया दत्तो न मया स्वर्गराजता ।
तस्मात् स्वर्गं परित्यज्य क्षितौ राज्यं समाचर ।
देवभोग्यानि तत्रैव सम्भविष्यन्ति तेऽसुर ।।९७।।

ब्रह्मा बोले- हे तारक! तुम स्वर्ग के राज्य का शासन मत करो। उस समय तुम्हारे द्वारा इस हेतु तपस्या भी नहीं की गयी थी, न मेरे द्वारा स्वर्ग के राज्य हेतु तुम्हें वर ही दिया गया था। इसलिये स्वर्ग का राज्य छोड़कर तुम पृथिवी पर राज्य करो। हे असुरराज! देवताओं के उपभोगयोग्य सभी सामग्री तुम्हें वहीं उपलब्ध हो जावेगी।। ९६-९७ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा सर्वलोकेशस्तत्रैवान्तरधीयत ।
स तारकः परित्यज्य स्वर्गं क्षितिमथाभ्ययात् ।।९८।।

मार्कण्डेय बोले- ऐसा कहकर सभी लोकों के स्वामी, ब्रह्मा भी वहीं अन्तर्धान हो गये तथा वह तारक भी स्वर्ग को छोड़कर पृथिवी पर चला आया ।। ९८ ।।

तत्रैव संस्थितो देवान् बाधते स्म स नित्यशः ।
इन्द्रं करप्रदं चक्रे निदेशस्थं महाबलम् ।।९९।।

वहीं स्थित हो, वह नित्य देवताओं को कष्ट पहुँचाता था। उसने महाबली इन्द्र को अपने निर्देशों का पालन करने वाला और अपना कर देने वाला बना लिया ।। ९९ ।।

तमिन्द्रः सततं देवभोग्यानि वितरन् मुहुः ।
सेवमानः क्षमो नाभूत् सन्तोषयितुमीश्वरम् ।।१००।।

देवराजइन्द्र अपने उस स्वामी को नित्य देवताओं के उपभोग के योग्य सामग्री बारम्बार पहुँचाते और सेवा करते हुए भी उसे सन्तुष्ट करने में सक्षम नहीं हुए ।। १०० ।।

एवं तेनार्दिता देवा मन्युना परिपीडिताः ।
विधातुरुपदेशेन यत्नं चक्रुर्हरान्वये ।।१०१।।

इस प्रकार उससे पीड़ित हो, क्रोधवश और अधिक पीड़ित हो, विधाता के उपदेश के अनुसार शिव को प्रसन्न करने के लिए देवगण प्रयत्न करने लगे ।। १०१ ।।

तत इन्द्रोऽथ गुरुणा संगम्य कृतनिश्चयः ।
कुसुमेषुं समाहूय वचनं चेद्मब्रवीत् ।।१०२।।

तब इन्द्र ने गुरु के साथ मन्त्रणाकर, निश्चय करके, पुष्प ही जिसका बाण है, ऐसे कामदेव को बुलाकर, उससे ये वचन कहे—॥ १०२ ॥

।। इन्द्र उवाच ।।

त्वयेदं पाल्यते विश्वं त्वया विश्वं प्रसूयते ।
त्वं ब्रह्मविष्णुरुद्राणां प्रीतिहेतुः पुराभवः ।।१०३।।

इन्द्र बोले–तुम्हारे द्वारा ही यह विश्व पाला जाता है तथा तुम्हारे ही द्वारा उत्पन्न होता है । तुम प्राचीनकाल में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की प्रसन्नता के कारण हुये हो ॥ १०३ ॥

ब्रह्मा प्रीत्या यथा पूर्वमगृह्णाच्चरितव्रताम् ।
सावित्रीं माधवो लक्ष्मीं सतीं दाक्षायणीं हरः ।।१०४।।

पहले जिस प्रकार ब्रह्मा ने प्रेमपूर्वक सुन्दर आचरण वाली सावित्री, माधव ने लक्ष्मी तथा शिव ने दक्ष की पुत्री सती को स्वीकार किया था ॥ १०४ ॥

ताः प्रीतये पुरा तेषां देवेशानां यथा कृता ।
तथैव कुरु मे प्रीतिं काम प्राणभृतां सदा ।।१०५।।

हे काम ! देवियों की उन देवताओं से प्रीति हेतु तुमने जैसा पहले किया था तुम मेरे लिए और सब प्राणियों में सदैव वैसा ही प्रेम किया करो ॥ १०५ ॥

न त्वं न कस्यचित् स्वर्गे पाताले वाथ भूतले ।
प्रियः प्राणभृतां काम सततं जगतां मतः ।।१०६।।

हे काम ! संसार के प्राणियों की दृष्टि से तुम नहीं तो कोई भी स्वर्ग, पृथिवी या पाताल में इतना प्रिय नहीं है । अर्थात् तुम सर्वाधिक प्रिय हो ॥ १०६ ॥

देवदानवयक्षाणां रक्षसां मानुषस्य च ।
त्वं पालकश्च कर्ता च हृदये च प्रवर्तसे ।।१०७।।

हे काम ! तुम देवता, दानव, यक्ष, राक्षस तथा मनुष्य सभी के पालनकर्त्ता हो तथा सभी के हृदय में निवास करते हो ॥ १०७ ॥

तस्मात् त्वं सर्वजगतां हिताय कुरु चेष्टितम् ।
देवदानवयक्षाणां मानुषाणां महात्मनाम् ।।१०८।।

इसलिए तुम समस्त जगत, देवता, दानव, यक्ष, मनुष्य आदि तथा महान् आत्माओं के कल्याण के लिए प्रयत्नशील होओ ॥ १०८ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शक्रस्य मकरध्वजः ।
देवराजमुवाचेदं सुप्रीतस्तद्वचोऽमृतैः ।।१०९।।

मार्कण्डेय बोले–उन इन्द्र के इस प्रकार के वचनों को सुनव, मकरध्वज, कामदेव ने प्रसन्न हो देवराजइन्द्र से यह वचन कहा— ॥ १०९ ॥

।। काम उवाच ।।

यत्राहमीशिता शक्र तत्कर्म विदितं त्वया ।
तस्मान्ममोचितं शक्यं करिष्ये तन्निदेशय ।।११०।।

कामदेव बोले–हे इन्द्र ! जो मेरा महत्त्व है, वह कर्म आप जानते ही हैं। इसलिए मेरे लिए जो उचित करने योग्य हो, उसका निर्देश कीजिए, मैं उसे करूँगा ॥ ११० ॥

पञ्चैव बाणा मृदवस्ते च पुष्पमया मम ।
चापस्तथा पुष्पमयः शिञ्जिनी भ्रमरात्मिका ।।१११।।

आपने मुझे पुष्पमय पाँच कोमल बाण, तथा पुष्पों का ही धनुष, जिसकी डोरी भौरों की बनी हुयी है, प्रदान किया है ॥ १११॥

रतिर्मे दयिता जाया वसन्तः सचिवो मम ।
यन्ता मलयजो वायुर्मित्रं मम सुधानिधिः ।।११२।।

मेरी पत्नी, रति नाम की स्त्री है तथा मेरा सचिव, बसन्त, मेरा नियन्त्रण करने वाला, मलयाचल का वायु एवं मेरा मित्र, चन्द्रमा है ॥ ११२ ॥

सेनाधिपो मे शृङ्गारो हावा भावाश्च सैनिकाः ।
सर्वे मे मृदवोऽक्रूरा अहं चापि तथाविधः ।।११३।।

शृङ्गार मेरा सेनापति है और हावभाव सैनिक हैं। इस प्रकार मेरे सभी सहायक कोमल और सौम्य हैं। मैं भी उसी प्रकार का हूँ ॥ ११३ ॥

यद् येन युज्यते कार्यं धीमांस्तत्तेन योजयेत् ।
मम योग्यं तु यत् कर्म तस्मात्तस्मिन् नियोजय ।।११४।।

जो जिसके योग्य कार्य होता है, बुद्धिमान् उसे उसी में नियुक्त करते हैं। अतः मेरे योग्य जो कार्य हो, उसी में मुझे नियुक्त कीजिये ॥ ११४ ॥

।। इन्द्र उवाच ।।

यत् कारयितुमिच्छामि भवता तन्मनोभव ।
तत्ते समुचितं कर्म तस्मिन् परिवृतो भवान् ।।११५।।

इन्द्र बोले–हे मनोभव ! जो मैं तुमसे कराना चाहता हूँ, वह तुम्हारे लिये उचित ही है; क्योंकि आप उससे घिरे हुए हो ॥ ११५ ॥

कृतकर्मापि तत्र त्वं कृती चापि मनोभव ।
त्वदन्यैः किन्तु दुःसाध्यं तत्त्वां तत्र नियोजये ।।११६।।

हे मनोभव ! उस कार्य में तुम कृतकर्मा (सफल) तथा यशस्वी भी हो, किन्तु तुम्हारे अतिरिक्त अन्य के लिए वह दुःसाध्य है, उसी कर्म में तुम्हें नियोजित किया जायेगा ॥ ११६ ॥

श्रूयते हि तपस्यन्तं ध्यानस्थं वृषभध्वजम् ।
गिरेर्हिमवतः प्रस्थे निराकांक्षं वधूकृतौ ।।११७।।

सुना जाता है कि वृषभध्वज शिव, पत्नी सम्बन्धी आकांक्षा से रहित हो, ध्यानमग्न हो, हिमालय पर्वत के शिखर पर तपस्या कर रहे हैं ॥ ११६ ॥

तं पितुर्वचनात् काली तपस्यन्तं निषेवते ।
सखिभ्यां सहिता नित्यं हरस्यानुमतेऽधुना ।।११८।।

काली अपने पिता के वचनानुसार शिव की अनुमति से उस नित्य तपस्या करते, शिव की सखियों के सहित, इस समय सेवा कर रही है ॥ ११८ ॥

आरूढयौवनां तां तु स्त्रीरत्नमपि सुन्दरीम् ।
ध्यानासक्तो महादेवो नेहते मनसापि च ।।११९।।

उस सुन्दर स्त्रीरत्न को जो युवावस्था में प्रवेश कर चुकी है, ध्यानस्थित शिव, मन से भी नहीं चाहते ॥ ११९ ॥

सानुरागो यथा तस्यां जायते वृषभध्वजः ।
तथा विधत्स्व देवानां हिताय जगतामपि ।।१२०।।

उसके प्रति शिव जिस प्रकार से अनुरागयुक्त होवें वैसा तुम देवताओं तथा जगत के हित के लिए करो ॥ १२० ॥

सह सत्या यथा रेमे सानुरागो वृषध्वजः ।
तथैतया गिरिजया रमतां तत्कृतेन वै ।।१२१।।

जिस प्रकार वृषभध्वजशिव अनुरागयुक्त हो, सती के साथ रमण करते थे, उसी प्रकार तुम्हारे कर्म के कारण वे इस गिरिजा के साथ भी रमण करने लगें ॥ १२१ ॥

तस्याः कृते तु यत्तेजः प्रच्युतं यद् हरस्य वै ।
ततो यो जायते सोऽस्मांस्तारकादुद्धरिष्यति ।।१२२।।

उसके लिये शिव का जो तेज क्षरित होगा, उससे जो (पुत्र) उत्पन्न होगा वही तारकासुर से हमलोगों का उद्धार करेगा ॥ १२२ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

ततः स देवराजस्य वचः श्रुत्वा मनोभवः ।
प्राप्तकालं च सस्मारं शापं ब्रह्मकृतं पुरा ।।१२३।।

मार्कण्डेय बोले– तब वह मनोभव (कामदेव) देवराज के वचनों को सुनकर तथा समय पाकर, ब्रह्मा के पहले दिये शाप का स्मरण किया— ॥ १२३ ॥

सन्ध्यां प्रतिविधातारं यदा शस्त्रं परीक्षितम् ।
कामोऽहनत् पुष्पबाणैस्तदा तमशपद्विधिः ।।१२४।।
शम्भुनेत्राग्निदग्धस्त्वं भविष्यसि द्विजोत्तमाः ।
यदा कुर्याद् गिरिसुतां हरः पाणिगृहीतिकाम् ।
तदा भवान् शरीरेणागमिष्यति समग्रताम् ।।१२५।।

हे द्विजसत्तमो ! अपने शस्त्र की परीक्षण करते हुए सन्ध्या के प्रति विधाता पर जब कामदेव ने अपने पुष्प बाणों से प्रहार किया था तब विधाता ने उसे शाप दिया था कि तुम शिव के नेत्र से उत्पन्न, क्रोधाग्नि से दग्ध हो जाओगे और जब शिव, पर्वतपुत्री पार्वती को अपनी पाणिगृहीता पत्नी बनायेंगे तभी तुम अपने शरीर की पूर्णता को प्राप्त करोगे ॥ १२४-१२५ ॥

इति स्मृत्वा विधेः शापं भीतोऽपि मकरध्वजः ।
अङ्गीचक्रे शक्रवाक्यात् काल्या योजयितुं हरम् ।
इदं च वचनं प्रोचे तत्कालसदृशं पुनः ।।१२६।।

इस प्रकार विधाता द्वारा दिये शाप का स्मरण कर भयभीत मकरध्वजा वाले कामदेव ने इन्द्र के वचनानुसार काली को शिव के प्रति संयुक्त कराने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तथा उस समय के अनुरूप उसने पुनः यह वचन कहा—॥ १२६ ॥

।। मदन उवाच ।।

करिष्ये तद्वचः शक्र हरं सङ्गमयाम्यहम् ।
काल्या गिरिजया सार्धं दाक्षायण्या यथा पुरा ।।१२७।।

मदन बोले–हे शक्र ! मैं तुम्हारा वचन पूरा करूँगा । प्राचीनकाल में जैसा शिव का दक्ष की पुत्री सती के साथ सम्बन्ध हुआ था वैसा ही पर्वत से उत्पन्न काली से भी उनका सम्बन्ध कराऊँगा ॥ १२७ ॥

किन्त्वेकं मम साहाय्यं कर्ता त्वं हरमोहने ।
यदा सन्मोहनेनाहं हरं सन्मोहयामि च ।।१२८।।
तदा कुरु सहायं त्वं स्वस्थमाप्याययस्व माम् ।
प्रविश्याहं सुरभिणा नचिराच्छंकराश्रमम् ।।१२९।।

किन्तु शिव को मोहित करने में मेरी एक सहायता आप कीजिएगा । जब मैं सम्मोहन नामक अस्त्र से शिव को सम्मोहित करूँ तब आप मुझे स्वस्थ एवं बलशाली बनाये रखने में मेरी सहायता कीजिएगा । जिससे मैं शीघ्र ही सुगन्ध के माध्यम से शिव के आश्रम में प्रवेश कर जाऊँगा ॥ १२८-१२९ ॥

विधाय पूर्वं मनसो विकारं हर्षणेन तु ।
सम्मोहनेन सुदृढं मोहयिष्ये वृषध्वजम् ।।१३०।।

पहले मैं, उनमें हर्षण नामक बाण से मानसिक विकार उत्पन्न करूँगा फिर सम्मोहन के द्वारा वृषध्वज शिव को दृढ़तापूर्वक मोहित करूँगा ॥ १३० ॥

स्मरिष्यसि त्वं सम्प्राप्ते काले मां मम पालने ।
अहं गच्छामि सहितं तत्कर्तुं बलसूदन ।।१३१।।

हे बलसूदन (इन्द्र) ! मेरे पालन की दृष्टि से मेरा काल उपस्थित हो जाने पर आप मेरा स्मरण रखियेगा । मैं आपके निर्देशानुसार कार्य करने जा रहा हूँ ॥ १३१ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा स जगामाथ मदनः शङ्कराश्रमम् ।
शक्रोऽपि त्रिदशान् सर्वानिदमाह वचस्तदा ।।१३२।।

मार्कण्डेय बोले–ऐसा कहकर वह कामदेव, शङ्कर के आश्रम को गया, तब इन्द्र ने भी सभी देवताओं से ये वचन कहे ॥ १३२ ॥

।। इन्द्र उवाच ।।

यूयं कुरुध्वं साहाय्यं यत्र याति मनोभवः ।
तत्र तत्रानुगम्यैव समये मां च बोधत ।।१३३।।

इन्द्र बोले– कामदेव जहाँ जा रहे हैं, वहाँ आप सब इनका अनुगमन करते हुए इनकी सहायता करें तथा समयानुसार मुझे भी सूचित करें ॥ १३३ ॥

यदा सम्मोहनेनायं सम्मोहयति शङ्करम् ।
तदाहमपि यास्यामि तत्र बोधत मां सुराः ।।१३४।।

जब यह सम्मोहन के द्वारा शिव को सम्मोहित करेंगे तो मैं भी वहाँ पहुँचूँगा। इसलिए हे देवगण ! उस समय आप सब मुझे सूचित करना ॥ १३४ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्तास्तेन शक्रेण देवा जग्मुर्मनोभवम् ।
सोऽपि गत्वा यत्र हरो गङ्गावतरणे गिरेः ।
हिमभारभृतः सानौ सुरभिं च न्ययोजयत् ।।१३५।।

मार्कण्डेय बोले– उस देवराज इन्द्रद्वारा इस प्रकार कहे जाने पर, देवगण कामदेव के पास गये। बर्फ का भार धारण करने वाले, हिमालयपर्वत के गङ्गावतरण नामक शिखर पर, जहाँ शिव (तपस्यारत) थे, वहाँ, उस कामदेव ने भी जाकर, सुरभि, सुगन्ध को नियोजित किया ॥ १३५ ॥

ततस्तत्र गते सम्यक्सुरभौ तस्य लक्षणम् ।
अभवन्नचिरादेव तरुगुल्मलतासु च ।।१३६।।

तब उसके एवं सुरभि दोनों के वहाँ पहुँचने पर वृक्षों, लताओं एवं गुल्मों में उसके लक्षण, शीघ्र ही उत्पन्न हो गये ॥ १३६ ॥

पुष्पिताः किंशुकास्तत्र मञ्जुलाः केतकास्तथा ।
सरांसि च सपद्मानि सविकाराश्च जन्तवः ।।१३७।।

उस समय ढाक के वृक्ष, फूलों से भर गये तथा सुन्दर केतकी के फूल भी पुष्पित हो उठे। सरोवर, कमलों से युक्त हो गये एवं प्राणी विकारग्रस्त हो गये ॥ १३७ ॥

ववौ वायुश्च गम्भीरो गंधिलः पुष्परेणुभिः ।
शनैः शनैः सुखकरः कर्षयन् स हि मानसम् ।।१३८।।

तब लोगों के मन को आकर्षित करती हुयी सुखदायी, गम्भीर तथा फूलों के परागकणों से गन्धयुक्त वायु, धीरे-धीरे बहने लगा ॥ १३८ ॥

पक्षिणश्च मृगाश्चैव ये चान्ये प्राणधारिणः ।
सिद्धाश्च किन्नराश्चैव द्वन्द्वभावं वितेनिरे ।।१३९।।

उस समय वहाँ जो भी पशु, पक्षी या सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर या अन्य प्राणी उपस्थित थे, वे सभी द्वन्द्व (संयोग) भाव से पूर्ण हो गये ॥ १३९ ॥

चूताः कुसुमितास्तत्र नवस्तवकभूषिताः ।
अशोकाः पाटलाश्चैव नागकेशरकारुणाः ।।१४०।।

नये मञ्जरियों के समूहों से सुशोभित आम के वृक्ष, पुष्पित तथा अशोक, पाटल, नागकेशर के वृक्ष, लाल हो उठे ॥ १४० ॥

सविकारा गणाश्चासन् शङ्करस्य तदा द्विजाः ।
प्रत्यक्षतो ययुस्तेऽपि विकारं शम्भुसाध्वसात् ।।१४१।।

हे द्विजो ! उस समय शिव के गण विकारग्रस्त हो गये। जो शम्भु के भयवश सदैव उनके सम्मुख रहते थे वे भी विकारयुक्त हो गये थे ॥ १४१ ॥

भ्रमन्ति स्म तदा तत्र भ्रमराः कुसुमोद्भवम् ।
पिबन्तो बहुशश्च्युतं गुञ्जन्तः सह जायया ।।१४२।।

उस समय भौंरे, वहाँ अपनी पत्नियों के सहित पुष्पों से उत्पन्न तथा अधिकता से बहते हुए मधुकणों का पान करते एवं गुञ्जार करते हुये, घूम रहे थे ॥ १४२ ॥

एवं प्रवृत्ते सुरभौ शृङ्गारोऽपि गणैः सह ।
हावभावयुतस्तत्र प्रविवेश हरान्तिकम् ।।१४३।।

इस प्रकार सुरभि के प्रवृत्त होने पर शृङ्गार ने भी अपने गणों और हाव-भाव के सहित, शिव के निकट वहाँ प्रवेश किया ॥ १४३ ॥

मदनः सगणस्तत्र निवसंश्चिरमेव हि ।
न दृष्टवांस्तदा शम्भोश्छिद्रं येन प्रवेक्ष्यति ।।१४४।।

कामदेव ने भी अपने सेवकों के सहित वहाँ बहुत समय तक निवास किया किन्तु उसे उस समय शिव में कोई छिद्र (दोष) नहीं दिखा जहाँ से वह शिव के अन्तरस्थल में प्रवेश करे ॥ १४४ ।

यदा च प्राप्तविवरस्तदा भयविमोहितः ।
नाग्रेसरोऽभवत् तस्य मदनो रतिवारितः ।।१४५।।

जब उसे छिद्र मिला तो भयवश या रति द्वारा रोके जाने के कारण कामदेव, उनकी ओर आगे नहीं बढ़ा ॥ १४५ ॥

एवं यातस्तस्य कालः प्रभूतो द्विजसत्तमाः ।
निरूपयन् न वा चाप छिद्रं तस्य यतेस्तदा ।।१४६।।

इस प्रकार हे द्विजसत्तमो ! उसका बहुत अधिक समय उस योगीराज शिव के छिद्र पर अपने धनुष के सञ्चालन की प्रतीक्षा में बीत गया तथा उसे अवसर नहीं मिला ॥ १४६ ॥

ज्वलत्कालाग्निसंकाशं भानुलक्षसमप्रभम् ।
ध्यानस्थं शङ्करं को वा समासादयितुं क्षमः ।।१४७।।

भला जलती हुई प्रलयकालीन अग्नि या लाखों सूर्यों के समान देदीप्यमान, ध्यानावस्थित, शिव को कष्ट पहुँचाने में कौन सक्षम हो सकता था ? ॥ १४७ ॥

अथैकदा गिरिसुता काली तस्याभवत्पुरः ।
कृत्वा परीष्टिं कर्त्तव्या सखिभ्यां प्रणता स्थिता ।।१४८।।

एक बार पर्वतनन्दिनी काली, सखियों के सहित उन शिव की श्रेष्ठ पूजा की कामना से विनम्रतापूर्वक उनके सामने उपस्थित हुईं ॥ १४८ ॥

शङ्करोऽपि तदा ध्यानं त्यक्त्वा तत् क्षणमास्थितः ।
योजयन् स्वगणान् कृत्ये ज्योतिश्चिन्ताविवर्जितः ।।१४९।।

तब शिव भी उस क्षण ज्योतितत्त्व के चिन्तनसम्बन्धी अपना ध्यान छोड़कर, अपने गणों को आवश्यक निर्देश देने लगे ॥ १४९ ॥

तच्छिद्रं प्राप्य मदनः प्रथमं हर्षणेन तु ।
बाणेन हर्षयामास पार्श्वस्थं चन्द्रशेखरम् ।।१५०।।

इस त्रुटि को पाकर कामदेव ने भी पहले हर्षण नामक बाण से अपने निकटवर्ती चन्द्रशेखर (शिव) को, हर्षित किया ॥ १५० ॥

शृङ्गारश्च तदा भावैर्हावैश्च सहितो हरम् ।
जगाम कामसाहाय्यं कुर्वन् सुरभिणा सह ।।१५१।।

तब शृङ्गार भी हाव-भाव तथा सुरभि के सहित कामदेव की सहायता हेतु शिव तक पहुँच गया ॥ १५१ ॥

हर्षणेनातिहृषितः शृङ्गाराद्यैर्निषेवितः ।
शङ्करो वदनं काल्याः साकूतं संव्यलोकयत् ।।१५२।।

तब हर्षण नामक बाण के प्रभाव से हर्षित तथा शृङ्गार आदि के द्वारा सेवित, शिव ने काली के मुख को अनुराग के सहित भलीभाँति देखा ॥ १५२ ॥

तत् प्राप्य विवरं कामः पुष्पं चापे न्ययोजयत् ।
सम्मोहनं पुष्पवृतं पुष्पमालाविवर्धितम् ।।१५३।।

उस छिद्र को पाकर कामदेव ने फूल के बने तथा फूल की मालाओं से विकसित, सम्मोहन नामक बाण को अपने फूलों वाले धनुष पर नियोजित किया ॥ १५३ ॥

तदाभूद् दक्षिणे पार्श्वे रतिः प्रीतिस्तु वामतः ।
पृष्ठे बसन्ततूणीरं पौष्पमादाय सुन्दरः ।।१५४।।

इस प्रकार से काम स्वयं, दक्षिणभाग में, प्रेमपूर्वक रति उसके वामभाग में तथा पुष्पमय सुन्दर तरकस के साथ बसन्त, पृष्ठभाग में उपस्थित हुआ ॥ १५४ ॥

आकर्णपूरितं पुष्पं चापमाकृष्य संयतः ।
यदा मनोभवो वायुस्तदा तं समुपेयिवान् ।।१५५।।

कान तक उस पुष्पधनु को खींचकर जब संयतात्मा कामदेव ने संधान किया। उस समय वायु ने उसे लक्ष्य तक पहुँचाया ॥ १५५ ॥

संहिते पुष्पबाणे तु गिरिजां चन्द्रशेखरः ।
जातेन्द्रियविकारः सन् जिघृक्षुः सङ्गमेऽभवत् ।।१५६।।

तब उस पुष्पबाण से घायल चन्द्रशेखर ने इन्द्रियविकार उत्पन्न हो जाने के कारण गिरिजा (काली) को सम्मिलन की इच्छा से देखा ॥ १५६ ॥

अमराः शक्रसहितास्तदा सर्वे वियद्गताः ।
सभ्यं मनोभवं मेने सुरकृत्ये निवेशितम् ।।१५७।।

उस समय इन्द्र के सहित सभी देवताओं ने आकाश में स्थित हो, देवकार्य में लगे हुये उस कामदेव को सम्मानित माना ॥ १५७ ॥

अथ संस्मृत्य संयम्य निगृह्य विकृति तदा ।
इन्द्रियस्य महादेवः सहसेदं व्यचिन्तयत् ।।१५८।।

इसके बाद अपने स्वरूप का स्मरण कर तथा अपने को संयमित कर, उस समय विकारग्रस्त हुए इन्द्रिय को निग्रहीत कर, शिव ने अचानक विचार किया ॥ १५८ ॥

योनिजां गिरिजां कालीं तपोव्रतविवर्जिताम् ।
कथं सङ्गमकामोऽहं धर्तुमिच्छामि वै हठात् ।।१५९।।
तपोव्रतपवित्राङ्गीं तपश्चरणसत्कृताम् ।
स्वयमेव ग्रहीष्यामि सतीं दाक्षायणीमिव ।।१६०।।

मैं स्वयं अयोनिज होता हुआ भी मातृयोनि से उत्पन्न, तपस्या एवं व्रतादि से रहित, काली को, तपस्या के आचरण से युक्त, तपस्या और व्रतों से पवित्र हुई शरीर वाली, दक्षपुत्री सती की भाँति बलपूर्वक कामभाव से मैं कैसे ग्रहण करने की इच्छा करूँ ? अर्थात् नहीं कर सकता ॥ १५९-१६० ॥

कथं विकृतकामोऽहमनिच्छन्निव साम्प्रतम् ।
केनापि चाकृष्ट इव चिकीर्षुः सङ्गमोद्भवम् ।।१६१।।

आज न चाहते हुए भी कैसे मैं किसी के द्वारा आकर्षित हुआ, स्वयं काम से विकारयुक्त होकर, पार्वती से सङ्गम (सम्मिलन) की इच्छा करने लगा ? ॥ १६१ ॥

एवं विकारहेतुं स निश्चिन्वन्निन्द्रियस्य तु ।
पुरोवलोकयामास संहितेषुं मनोभवम् ।।१६२।।

इस प्रकार अपने इन्द्रियविकार के सम्बन्ध में विचार कर शिव ने, बाण का सन्धान किये हुये कामदेव को अपने सम्मुख देखा ॥ १६२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा विज्ञातसमयः सुरान् ।
दृष्ट्वा स्थानादाजगाम तत्समाजमनुग्रहात् ।।१६३।।

इसी बीच ब्रह्मा भी उपयुक्त समय जानकर, वहाँ उपस्थित देवताओं को देखकर, देवताओं के समाज पर कृपापूर्वक वहाँ आ पहुँचे ॥ १६३ ॥

ततः स कुपितो दृष्ट्वा सन्धितेषुं मनोभवम् ।
जज्वाल ज्वलनप्रख्यस्तं दिधक्षुः प्रसह्य तु ।।१६४।।

तब वे शिव भी बाण का सन्धान किये हुये कामदेव को सम्मुख देखकर, क्रोधित हो, उसे जला देने की कामना से, असह्य अग्नि के समान प्रज्ज्वलित हो उठे ॥ १६४ ॥

कामोऽयं समयं ज्ञात्वा मां मोहयितुमिच्छति ।
मनो मे स्ववशं कर्तुं तन्नयामि यमक्षयम् ।।१६५।।
एवं विचिन्तमानस्य नेत्रोद्भाविततेजसा ।
वर्धतो ज्वलनो भूत्वा क्रोधं नेत्रात् ससर्ज ह ।।१६६।।

यह काम भी आज उचित समय देखकर, मुझे मोहित करके अपने वश में करना चाहता है, इसे मैं अभी यमलोक पहुँचाता हूँ, ऐसा विचार करते ही उन्होंने नेत्र से उत्पन्न तेजयुक्तअग्नि के रूप में, बढ़े हुये क्रोध को उत्पन्न किया ॥ १६५-१६६ ॥

तं क्रोधाग्निःसरिष्यन्तं जातवेदःस्वरूपिणम् ।
ज्ञात्वा कामस्य तान् बाणान् पौष्पचापनिषण्णकान् ।।१६७।।
शक्तिं प्राणांस्तथात्मानमाकृष्यापालयद्विधिः ।
उत्सारयामास तदा वसन्तं स पितामहः ।।१६८।।

उस क्रोध को अग्नि के रूप में निकलते जानकर ब्रह्मा ने उसके पुष्पधनुष पर संधानित बाण, शक्ति, प्राण तथा आत्मा के सहित आकृष्ट कर कामदेव की रक्षा की तथा उन पितामह ने बसन्त को भी वहाँ से हटा दिया ॥ १६७-१६८ ॥

निजशक्त्या तदा शम्भुक्रोधाद्रक्षन्मनोभवम् ।
अथाकाशगता देवाः क्रुद्धं दृष्ट्वा महेश्वरम् ।।१६९।।

तब अपनी शक्ति द्वारा शिव के क्रोध से कामदेव की रक्षा करते हुए देवगण, शिव को क्रोधित देख, आकाश में चले गये ॥ १६९ ॥

प्रसीद जगतां नाथ कामे क्रोधं परित्यज ।
त्वया यथा पुरा सृष्टः शम्भुरूपेण कर्मणा ।।१७०।।
येन चायोजितं कर्म तत्करोति मनोभवः ।
तस्मात् त्वं मदने शम्भो क्रोधाग्निमुपसंहर ।
प्रसीद सर्वभूतेश भक्त्या त्वां प्रणता वयम् ।।१७१।।

हे जगत् के स्वामी! आप प्रसन्न होइये तथा कामदेव के प्रति उत्पन्न अपने क्रोध का त्याग कीजिये; क्योंकि पहले आपने अपने शम्भुरूप से सृष्ट कर, उसे जिस कार्य में नियुक्त किया था, इस समय भी कामदेव ने वही कर्म किया है। अतः हे शिव! आप काम के प्रति उत्पन्न अपनी क्रोधग्नि का संवरण कीजिये। हे सभी प्राणियों के स्वामी! आप प्रसन्न होइये। हम सब भक्तिपूर्वक आपको प्रणाम करते हैं॥ १७०-१७१ ॥

इति स्म वदतां तेषाममराणां तदानलः ॥१७२॥
ललाटचक्षुःसम्भूतो भस्माकार्षीन्मनोभवम् ।
दग्ध्वा कामं तदा वह्निर्ज्वालामालातिदीपितः ॥१७३॥

ऐसा उन देवताओं द्वारा कहे जाने पर भी ललाट से उत्पन्न अग्नि की ज्वालासमूह द्वारा प्रज्ज्वलित, उस क्रोधाग्नि ने काम को जलाकर भस्म कर दिया॥ १७२-१७३ ॥

संस्तम्भितोऽथ विधिना हरं गन्तुं शशाक न ।
महादेवोऽपि तद्भस्म मनोभवशरीरजम् ।
आदाय सर्वगात्रेषु भूतिलेपं तदाकरोत् ॥१७४॥

उस समय ब्रह्मा भी शिव को ऐसा करने से रोकने में समर्थ नहीं हुये तथा महादेव ने भी कामदेव के शरीर से उत्पन्न भस्म को लेकर विभूति के रूप में सम्पूर्ण शरीर में लेप कर लिया॥ १७४ ॥

लेपशेषाणि भस्मानि समादाय तदा हरः ।
सगणोऽन्तर्दधे कालीं विहाय विधिसम्मते ॥१७५॥

तब हाथ में भस्म पोते शिव, शेष भस्मों को लेकर तथा काली को ब्रह्मा के ही समीप छोड़, अपने गणों के सहित अन्तर्धान हो गये॥ १७५ ॥

ब्रह्मा क्रोधानलं शम्भोर्दहन्तं सकलान् सुरान् ।
वडवारूपिणं चक्रे देवानां पुरतस्तदा ॥१७६॥

तब देवताओं के सामने ही, ब्रह्मा ने सभी देवताओं को जलाने को उद्यत उस शिव के क्रोधानल को बड़वा (घोड़ी) रूप में परिणित कर दिया॥ १७६ ॥

वडवां तां तदा देवाः सौम्यां ज्वालामुखीं शुभाम् ।
दृष्ट्वा निर्विघ्नमनसो बभूवुः पूर्वपीडिताः ॥१७७॥

तब पहले जो देवगण पीड़ित थे, वे भी उस ज्वालामयी मुखवाली सुन्दरी, सौम्य बडवा को देखकर निर्विघ्न मन वाले हो गये॥ १७७ ॥

वडवां तां समादाय तदा ज्वालामुखीं विधिः ।
सागरं प्रययौ लोक-हिताय जगतां पतिः ॥१७८॥

गत्वाथ सागरं ब्रह्मा प्रोवाच परिपूजितः ।
यथावत्तेन विप्रेन्द्राः समयं च निवेदयन् ।।१७९।।

तब जगत् के स्वामी ब्रह्मा, संसार के हित की कामना से उस ज्वालामुखी बड़वा को सागर के पास ले गये। हे विप्रेन्द्रों ! वहाँ जाकर सागर द्वारा पूजित होकर उन्होंने यथावत् रूप से उससे इस शर्त को कहा—।। १७८-१७९ ।।

अयं क्रोधो महेशस्य वडवारूपधृक् त्वया ।
ज्वालामुखः सदा धार्यो यावन्न विनयाम्यहम् ।।१८०।।
यदा त्वामहमागम्य वदामि सरितां पते ।
तदा त्वया परित्याज्यः क्रोधोऽयं वडवामुखः ।।१८१।।
भोजनं भवतस्तोयमेतस्य तु भविष्यति ।
यत्नादेवं विधार्योऽयं यथा नो याति चान्तरम् ।।१८२।।

इस घोड़ी के रूप में अपने सम्मुख उपस्थित शिव के क्रोध को, जिसका मुख ज्वालायुक्त है, तुम्हारे द्वारा सदैव धारण किया जाना चाहिये। जब तक कि मैं तुमसे दूसरा आग्रह न करूँ। हे नदियों के स्वामी ! जब मैं तुमसे कहूँ तभी तुम इस बडवारूपी क्रोध का परित्याग करना। तुम्हारा बढ़ा हुआ जल ही इसका भोजन होगा। यत्नपूर्वक ऐसा प्रयत्न करना जिससे यह अन्यत्र न जा सके ।। १८०-१८२ ।।

इत्युक्तो ब्रह्मणा सिन्धुरङ्गीचक्रे तदा क्रुधम् ।
ग्रहीतुं वडवावक्त्रे शम्भोश्चाशक्यमप्यरम् ।।१८३।।

ब्रह्मा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर समुद्र ने शिव के उस असह्य क्रोधाग्नि को जो घोड़ी के समान मुख वाला था स्वीकार किया ।। १८३ ।।

ततः प्रविष्टो जलधौ पावको वडवामुखः ।
वार्योघान्निदहन् सम्यग् ज्वालामालातिदीपितः ।।१८४।।

तब ज्वालासमूह से प्रज्ज्वलित, घोड़े के मुख वाले उस अग्नि ने समुद्र में प्रवेश किया तथा उसी समय से जल के समूह को भलीभाँति जलाता रहता है ।। १८४ ।।

यदाभवच्छम्भुनेत्राद् ददाह मदनं तदा ।
अभवत् सुमहाशब्दो येनाकाशः प्रपूरितः ।।१८५।।

जब शिव के नेत्र से काम का दहन हुआ उस समय ऐसा महान् शब्द हुआ, जिससे आकाश भर गया ।। १८५ ।।

तेन शब्देन महता कामदाहे क्षणेन च ।
सखीभ्यां सह भीताभूत् काली शोकयुता तदा ।।१८६।।

काली उस समय सखियों के सहित कामदहन के समय उत्पन्न उस महान् शब्द से भयभीत तथा शोकाकुल हो गयीं ।। १८६ ।।

तेन शब्देन हिमवांश्चकितो विस्मितस्तदा ।
सुतामेव जगामाशु गतां काली हराश्रमम् ।।१८७।।

उस शब्द के कारण उस समय हिमालय भी चकित और विस्मित होकर अपनी पुत्री काली के पास शिव के आश्रम पर पहुँच गये ।। १८७ ।।

तां तत्र कालीं तनयां भयशोकाकुलां शुभाम् ।
रुदन्तीं शम्भुविरहादाससादाचलेश्वरः ।।१८८।।

वहाँ भय एवं शोक से व्याकुल उस सुन्दरी, शिव के विरह में रोती हुई, अपनी पुत्री, काली के पास पर्वतराज हिमालय पहुँच गये ।। १८८ ।।

आसाद्य पाणिना तस्या मार्जयन्नयनद्वयम् ।
मा भैषीः कालि मा रोदीरित्युक्त्वा तां तदाग्रहीत् ।।१८९।।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने हाथों से उनके नेत्रों को पोंछते हुए काली ! मत डरो, मत रोओ ऐसा कहते हुए उसे पकड़ लिया ।। १८९ ।।

क्रोडीकृत्य सुतां तां तु हिमवानचलेश्वरः ।
स्वमालयमथानिन्ये सान्त्वयामास चार्दिताम् ।।१९०।।

उस दुःखी कन्या को गोद में लेकर पर्वतराज हिमालय अपने घर को आये तथा उसे सान्त्वना दिया ।। १९० ।।

अन्तर्हिते हरे काली विरहात् तस्य संततम् ।
निवसन्ती पितुर्गेहे शुशोच च मुमोह च ।।१९१।।

शिव के अन्तर्धान हो जाने पर, उनके विरह में काली, निरन्तर पिता के घर में पड़ीरहती थीं। ऐसी अवस्था में कभी वे चिन्तित होतीं तो कभी मूर्छित हो जाती थीं ।। १९१ ।।

शैलाधिराजोऽप्यथ मेनकापि
मैनाक - मुख्योऽपि सखीद्वयं च ।
तां सान्त्वयांचक्रुरदीनसत्त्वां
हरं विसस्मार तथापि नोमा ।।१९२।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे कामदहने द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४२।।

पर्वतराजहिमालय, मातामेनका, भाई मैनाक तथा दोनों सखियाँ भी उस दीनहीन हुई पार्वती को सान्त्वना देती थीं, तो भी उमा (काली) शिव को नहीं भूलती थीं ।। १९२ ।।

।। श्रीकालिकापुराण में कामदहन सम्बन्धी बयालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। ४२ ।।



त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

पार्वतीतपवर्णनम्

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ देवमुनिर्यातो हिमवन्मन्दिरं तदा ।
नियोजितो बलभिदा नारदः कामगः परम् ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– इन्द्रद्वारा भेजे हुये, इच्छानुसार गति वाले, श्रेष्ठ, देवर्षि, नारद तब हिमालय के निवासस्थान पर पधारे ।। १ ।।

स गतः पूजितस्तेन धरेशेन महात्मना ।
तं समुत्सृज्य रहसि कालीं तामाससाद ह ।।२।।

जाने के बाद उस महात्मा-हिमालय द्वारा पूजित होकर वे उन्हें छोड़कर, एकान्त स्थान में जहाँ काली उपस्थित थीं, उनके निकट पहुँचे ।। २ ।।

आसाद्य कालीं स मुनिः सम्बोध्य ज्ञानशालिनीम् ।
उवाचेदं वचस्तथ्यं सर्वेषां जगतां हितम् ।।३।।

ज्ञानमयीकाली के पास पहुँचकर, उन्हें सम्बोधित कर उन मुनि ने सभी प्राणियों के हित को ध्यान में रखते हुये, ये तथ्यपूर्ण वचन कहे- ।। ३ ।।

।। नारद उवाच ।।

शृणु कालि वचो मह्यं सत्यं तदवधारय ।
सेवितः स महादेवस्त्वयेह तपसा विना ।।४।।

नारद बोले–हे कालि ! मेरे सत्यवचनों को सुनो और सुनकर उन्हें धारण करो । अभी तुम्हारे द्वारा बिना तपस्या के ही वे महादेव सेवित हुये हैं ।। ४ ।।

अनुरक्तोऽपि तेन त्वां महादेवो विसृष्टवान् ।
त्वामृते शङ्करो नान्यां द्वितीयां संग्रहीष्यति ।।५।।

उनसे अनुरक्त रहने पर भी तुम्हें महादेव ने छोड़ दिया, किन्तु तुम्हारे अतिरिक्त वे किसी अन्य स्त्री का संग्रह नहीं करेंगे ।। ५ ।।

त्वं चापि नान्यं दयितं ग्रहीष्यसि विनेश्वरम् ।
तस्मात् त्वं तपसा युक्ता चिरमाराधयेश्वरम् ।।६।।

तुम भी शिव के बिना किसी अन्य पुरुष को पति के रूप में ग्रहण नहीं करोगी । इसलिये तुम तपस्या में निरत होकर चिरकाल तक शिव की आराधना करो ।। ६ ।।

तपसा संस्कृतां त्वां तु स द्वितीयां करिष्यति ।
मन्त्रोऽयं तस्य सुभगे शृणु त्वं येन सोऽचिरात् ।।७।।
आराधितस्ते प्रत्यक्षो भविष्यति महेश्वरः ।
ॐ नमः शिवायेति च सर्वदा शङ्करप्रियः ।।८।।

तपस्या से संस्कृत हुई तुम्हें, वे अपनी (सती के बाद की) द्वितीय पत्नी बनावेंगे । हे सुन्दरी ! उनका मन्त्र "ॐ नमः शिवाय" उन्हें हमेशा प्रिय है, जिससे आराधना किये जाने पर वे, महेश्वर शीघ्र प्रत्यक्ष हो जायेंगे ।। ७-८ ।।

चिन्तयन्ती तु [illegible]द्रूपं नियमस्था षडक्षरम् ।
मन्त्रं जप त्वं [illegible]गिरिजे तेन तुष्टो भवेद्धरः ।।९।।

हे गिरिजा ! [illegible] उसी रूप का चिन्तन करती हुयी उपर्युक्त षडक्षर मन्त्र का नियमपूर्व[illegible] करो, जिससे शिव प्रसन्न हो जायेंगे ।। ९ ।।

एवमुक्ता तदा काली नारदेन महात्मना ।
कर्तव्यमनुमेने सा हितं तथ्यञ्च तद्वचः ।।१०।।

तब महात्मानारद द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर, उस काली ने उस वचन को करने योग्य, हितकारक एवं तथ्यपूर्ण माना ।। १० ।।

अनुमान्य तपस्तप्तुं तदा कालीञ्च नारदः ।
स्वर्गं जगाम तस्याश्च निश्चिताभून्मतिर्व्रते ।।११।।

तब नारद काली को तपस्या करने के लिए मनाकर स्वर्ग को चले गये तथा उन काली की व्रत में निश्चित मति हो गयी ।। ११ ।।

अथ याते देवमुनौ काली सासाद्य मेनकाम् ।
तपःश्रद्धां समाचख्ये चात्मनो हरसङ्गमे ।।१२।।

देवमुनि नारद के चले जाने पर माता मेनका के निकट पहुँचकर, उस काली ने शिव के सङ्गम हेतु तपस्या के प्रति, अपनी श्रद्धा का उल्लेख किया ।। १२ ।।

।। काल्युवाच ।।

तपस्तप्तुं गमिष्यामि मातः प्राप्तुं महेश्वरम् ।
अनुजानीहि मां गन्तुं तपसेऽद्य तपोवनम् ।।१३।।

काली बोली–हे माता ! मैं शिव को प्राप्त करने के लिए तपस्या करने जाऊँगी । आप मुझे आज तपस्या के लिए तपोवन जाने की आज्ञा दीजिये ।। १३ ।।

तपःकरणयत्नं मे पितुरावेदय द्रुतम् ।
यावन्न दह्ये जननि भूतेशविरहाग्निना ।।१४।।

हे माता ! शिव के विरह की अग्नि में जब तक मैं जल न जाऊँ, तुम शीघ्र ही पिता से मेरी तपस्या करने की चेष्टा का निवेदन करो ।। १४ ।।

इति तस्या वचः श्रुत्वा मेनका शोककर्शिता ।
आलिंग्य स्वसुतामूचे मा तपः कुरु वल्लभे ।।१५।।
मृदुदेहासि पुत्रि त्वं मा तपो याहि कर्कशम् ।
तपः सोढुं मुनेर्गात्रं शक्तं ते न कलेवरम् ।।१६।।

उनके इन वचनों को सुनकर मेनका, शोक से पीड़ित हो, अपनी पुत्री का आलिङ्गन कर, हे प्रिये ! हे पुत्री ! तुम तपस्या मत करो; क्योंकि तुम तुम कोमल शरीर वाली हो, तपस्या जैसे कठोर कार्य हेतु मत जाओ। मुनियों का शरीर ही तपस्या हेतु समर्थ होता है न कि तुम्हारा कोमल शरीर समर्थ है ।। १५-१६ ।।

वनवासश्च ते पुत्रि नेष्टः शत्रुगणैरपि ।
तस्मात् त्वं सम्परित्यज्य वनवासोद्भवं तपः ।
आत्मनो ह्यनुरूपेण तपस्तत् कुरु यद्धितम् ।।१७।।

हे पुत्री ! वनवास तो तुम्हारे शत्रुओं के लिए भी अभीष्ट नहीं है। अतः तुम वनवासपूर्वक तपस्या के विचार को छोड़कर अपने अनुरूप जो हितकारक तपस्या हो उसे करो ।। १७ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

मातुः सा वचनं श्रुत्वा गिरिजा दीनमानसा ।
इत्यूचे च तदा वाक्यं तपोयत्नपरा प्रसूम् ।।१८।।
मा निषेधय मां यास्ये तपसेऽद्य तपोवनम् ।
प्रच्छन्नमपि यास्यामि नानुज्ञाताप्यहं त्वया ।।१९।।

मार्कण्डेय बोले– माता के वचन को सुनकर, गिरिजा, दुःखीमन से तपस्या हेतु प्रयत्नशील हो, माता से ये वाक्य बोलीं कि मुझे मत रोको। मैं आज ही वन में तपस्या के लिए जाऊँगी। यदि आपसे आज्ञा न मिली तो मैं छुपकर भी चली जाऊँगी ।। १८-१९ ।।

।। मेनकोवाच ।।

गृहेषु देवाः सततं ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
तस्माद् गृहे पुत्रि देवानर्चय त्वं यथेप्सितान् ।।२०।।

मेनका बोली– हे पुत्रि ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता घरों में ही निरन्तर निवास करते हैं। इसलिए अपनी इच्छानुसार, उन देवताओं की घर में ही पूजा करो ।। २० ।।

स्त्रीणां तपोवनगतिर्न श्रुता स्वामिना विना ।
तस्मान्न युज्यते पुत्रि तपोयात्रा वनं प्रति ।।२१।।

स्त्रियों की पति के बिना तपोवन में जाने की बात नहीं सुनीं गयी है। इसलिए हे पुत्रि! तपस्या हेतु तुम्हारी वनयात्रा, उचित नहीं जान पड़ती ।। २१ ।।

यतो निरस्ता तपसे वनं गन्तुं च मेनया ।
उमेति तेन सोमेति नाम प्राप तदा सती ।।२२।।

मेनका के द्वारा उमा कहकर तपस्या हेतु वन जाने की बात निरस्त की गयी। इसी से तभी से उन सती पार्वती ने उमा नाम प्राप्त किया ।। २२ ।।

अवज्ञाय तदा मातुर्वचनं हिमवत्सुता ।
सखीभ्यां ज्ञापयामास पितरं तपसोद्यमम् ।।२३।।

तब माता के वचनों की अवहेलना कर हिमालय की पुत्री, पार्वती ने सखियों के माध्यम से अपने तपस्यासम्बन्धी उद्यम की जानकारी पिता को दी ।। २३ ।।

स तु ज्ञात्वा गिरिपतिस्तपसे चरितोद्यमम् ।
दुहितुश्चानुमेने च नातिहृष्टमना इव ।।२४।।

उन पर्वतों के राजा ने, तपस्या के लिए अपनी पुत्री के आचरण एवं चेष्टाओं को जानकर, बिना प्रसन्नमन के ही अनुमति प्रदान कर दिया ।। २४ ।।

सानुज्ञाप्य तदा तातं यत्र दग्धो मनोभवः ।
शम्भुना प्रययौ तत्र गङ्गावतरणं प्रति ।।२५।।

तब पिता की अनुज्ञा प्राप्त कर, पार्वती, उस गङ्गावतरण क्षेत्र को गयीं, जहाँ भगवान शङ्कर ने कामदेव को भस्म कर दिया था ।। २५ ।।

गङ्गावतरणं नाम प्रस्थो हिमवतः स च ।
हरशून्योऽथ ददृशे काल्या तच्चिन्तया तदा ।।२६।।

उस समय गङ्गावतरणनामक हिमालय का वह शिखर, उन्हीं की चिन्ता में निमग्न, काली द्वारा शिवशून्य देखा गया ।। २६ ।।

यत्र स्थित्वा पुरा शम्भुर्ध्यानवानभवद् भृशम् ।
तत्र क्षणं तु सा स्थित्वा बभूव विरहार्दिता ।।२७।।

जिस स्थान पर पहले बहुत समय तक शिव ने ध्यानधारण किया था वहीं क्षणभर स्थित हो, वह देवी विरह से पीड़ित हो गयीं ।। २७ ।।

हा हरेति क्षणं तत्र रोदमाना गिरेः सुता ।
विललापातिदुःखार्ता चिन्ताशोकसमन्विता ।।२८।।

उस समय पर्वतनन्दिनीपार्वती, किसी क्षण चिन्ता और शोक से भरकर, अत्यन्त दुःखी हो, हो हर ऐसा कहकर रोने तथा विलाप करने लगतीं ।। २८ ।।

क्षणं विलप्य सा काली स्मृत्वा पूर्वोद्भवं तदा ।
हार्दं हरस्य सा मोहमवाप कमलेक्षणा ।।२९।।

उन काली ने क्षणभर विलाप किया तथा पहले उत्पन्न, शिव के हृदयगत भावों का स्मरण कर, वे कमल के समान सुन्दरआँखोंवाली, देवी, मोह (मूर्छा) को प्राप्त हो गयीं ।। २९ ।।

ततश्चिरेण सा मोहं धैर्यात् संस्तभ्य भामिनी ।
नियमायाभवत्तत्र दीक्षिता हिमवत्-सुता ।।३०।।

तब बहुत समय बाद, अपने मोह को धैर्यपूर्वक नियन्त्रित कर, हिमालय की कन्या, वहाँ नियमों के लिए दीक्षित हुईं ॥ ३० ॥

प्रथमं नियमस्तस्या बभूव फलभोजनम् ।
चर्या पञ्चातपा चिन्ता शाम्भवी शाम्भवो जपः ।।३१।।

उन्होंने पहले फलाहार करने का, पञ्चाग्निसेवन, शिव का चिन्तन तथा शिव के ही जप का नियम लिया ॥ ३१ ॥

पार्वतीतपवर्णन

यज्ञियैर्दारुभिः शुष्कैश्चतुर्दिक्षु चतुष्कृतम् ।
वह्निसंस्थापनं ग्रीष्मे तीव्रांशुस्तत्र पञ्चमः ।।३२।।
हस्तान्तरे चतुर्वह्नीन् कृत्वा वैश्वानरेष्टिना ।
तन्मध्यस्था सूर्यविम्बं वीक्षन्ती वल्कलांशुका ।
ग्रीष्मं निन्ये वह्निमध्ये शिशिरे तोयवासिनी ।।३३।।

ग्रीष्म ऋतु में, चार दिशाओं में सूखी हुयी यज्ञीयसमिधाओं द्वारा चार अग्नियों की स्थापना करके वहाँ पाँचवें तीव्र किरणों वाले सूर्य को मान कर, अपने से एक हाथ की दूरी पर, चारों अग्नियों की वैश्वानरयज्ञ की रीति से स्थापना कर, वल्कलवस्त्र धारण कर उनके बीच में स्थित हो, सूर्य के बिम्ब को देखती हुईं, उन्होंने गर्मी तथा जल में निवास करते हुए, शिशिर ऋतु बिता दिया ॥ ३२-३३ ॥

प्रथमं फलभोगेन द्वितीयं तोयभोजनम् ।
तृतीयं तु स्वयम्पाति-वृक्षपल्लव-भोजनम् ।।३४।।
क्रमेण तु तदा पर्णं निरस्य हिमवत् सुता ।
निराहारव्रता भूत्वा तपश्चरणखिन्निका ।।३५।।
आहारे त्यक्तपर्णाभूद्यस्माद्धिमवतः सुता ।
तेन देवैरपर्णेति कथिता पृथिवीतले ।।३६।।

पहले फलाहार, तत्पश्चात् जलाहार, तपस्या के तीसरे क्रम में अपने आप गिरे हुये वृक्षों के पत्तों का भोजन करते हुए, क्रमशः उन पत्तों को भी हिमालय की उन पुत्री ने छोड़ दिया। तब निराहारव्रतवाली होकर तपस्या के कारण, अत्यन्त क्षीणकाय हो गयीं। भोजन में हिमालय की कन्या ने पत्तों को भी छोड़ दिया। इसलिए देवताओं द्वारा वे पृथ्वीतल पर अपर्णा नाम से पुकारी गयीं ॥ ३४-३६ ॥

पञ्चातपव्रतेनैव तोयानाञ्च प्रवेशनैः ।।३७।।
एकपादस्थिता सा तु वसन्ते हिमवत्सुता ।
षडक्षरं जपन्ती सा चिरं तेपे तपो महत् ।।३८।।

पञ्चाग्निव्रत तथा जल में प्रवेश करने और बसन्त ऋतु में एक पैर पर खड़ी हो, हिमालयपुत्री पार्वती ने चिर काल तक "ॐ नमः शिवाय" इस षडक्षरमन्त्र का जप करते हुये महान् तपस्या की ॥ ३७-३८ ॥

चीरवल्कलसंवीता जटासङ्घातधारिणी ।
कृशाङ्गी चिन्तने शक्ता जिगाय तपसा मुनीन् ॥३९॥

वल्कलवस्त्र तथा जटासमूहों को धारण कर उन्होंने दुर्बलकाय होते हुये शिव के चिन्तन में आसक्त हो, तपस्या में मुनियों को भी जीत लिया ॥ ३९ ॥

तां तपश्चरणे शक्तां ररक्ष शङ्करः स्वयम् ।
आप्यायति स्म स तदा भयाद्रक्षति हर्षितः ॥४०॥

उनके तपस्या में निरत रहने पर स्वयं भगवान् शङ्कर, उनकी रक्षा करते थे। वे प्रसन्न हो, उन्हें बलप्रदान करते तथा भयों से उनकी रक्षा भी करते थे ॥ ४० ॥

एवं तस्यास्तपस्यन्त्याश्चिन्तयन्त्या महेश्वरम् ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि जग्मुः काल्यास्तपोवने ॥४१॥

इस प्रकार उन काली को शिव का चिन्तन करते तथा तपस्या करते, तपोवन में तीन हजारवर्ष व्यतीत हो गये ॥ ४१ ॥

षट्त्रिवर्षसहस्राणि संस्कृता वीक्षणात् स्वयम् ।
दैवेन विधिना देवी हरयोग्या तथाभवत् ॥४२॥

छत्तीसहजार वर्षों तक अपने ही देख-रेख में मंहादेव शिव द्वारा, स्वयं विधिपूर्वक संस्कारित किये जाने से देवी पार्वती, शिव के योग्य हो गयीं ॥ ४२ ॥

षट्त्रिवर्षसहस्रान्ते यत्र तेपे तपो हरः ।
तत्र क्षणमथोषित्वा चिन्तयामास भामिनी ॥४३॥

छत्तीस हजार वर्ष बीत जाने पर, भगवान शङ्कर ने जहाँ तपस्या किया था, क्षणभर वहीं बैठकर देवी ने चिन्तन किया ॥ ४३ ॥

नियमस्थां महादेवः किं मां जानाति नाधुना ।
येनाहं सुचिरं तेन नानुज्ञाता तपोरता ॥४४॥

क्या महादेव मुझ, नियमों में स्थित को, नहीं जानते? चिरकाल तपस्या में संलग्न रहकर भी जिससे मैं उनकी अनुज्ञा (कृपा) न प्राप्त कर सकी ? ॥ ४४ ॥

लोके नास्त्यत्र गिरिशः किं तत्र मुनिभिः स्तुतः ।
सर्वज्ञः सर्वगो देवो हरो देवैर्निगद्यते ॥४५॥

मुनियों के द्वारा स्तुति किये गये गिरीश (शिव), का इस लोक में क्या अस्तित्व नहीं है किन्तु देवताओं द्वारा तो शिव, सब कुछ जानने वाले, सब जगह गमन करने वाले कहे जाते हैं ॥ ४५ ॥

स सर्वगस्तु सर्वज्ञः सर्वात्मा सर्वहृद्गतः ।
सर्वभूतिप्रदो देवः सर्वभावनभावनः ।।४६।।

वे सब जगह गमनशील, सब कुछ जानने वाले, सबके आत्मरूप, सबके हृदय में स्थित, सब प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करने वाले तथा सबकी भावनाओं को जानने वाले देवता हैं ॥ ४६ ॥

सती च मेनका माता यदि चाहं वृषध्वजे ।
सानुरक्ता नचान्यस्मिन् स प्रसीदतु शङ्करः ।।४७।।

यदि मेनका माता का, मेरी तथा सती का वृषध्वज शिव के अतिरिक्त अन्य किसी में अनुराग न हो तो उपर्युक्त शङ्कर प्रसन्न होवें ॥ ४७ ॥

यदि नारदवक्त्रोत्थो मन्त्रोऽयं स्यात्षडक्षरः ।
यदि भक्त्या मया जप्तं हरस्तेन प्रसीदतु ।।४८।।

यदि यह षडाक्षरमन्त्र नारद के मुँह से निकला तथा मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक जपा गया हो तो उस मन्त्र के जप से शिव प्रसन्न होवें ॥ ४८ ॥

सत्यं यदि तपस्तप्तं सत्यं चाराधितो हरः ।
सत्यं भवेद् यदि तपो हरस्तेन प्रसीदतु ।।४९।।

यदि तपस्या सच्चाई से की गयी हो, शिव की आराधना सच्ची हो, यदि तपस्या सार्थक होवे तो उससे भगवान् शङ्कर प्रसन्न होवें ॥ ४९ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एवं विचिन्तयन्ती सा यदातिष्ठद्धराश्रमे ।
अधोमुखी दीनवेशा जटावल्कलमण्डिता ।।५०।।

मार्कण्डेय बोले–इस प्रकार शिव के आश्रम में जब वे जटा और वल्कल से सुशोभित, दीन वेश में नीचे मुँह किये सोच रही थीं ॥ ५० ॥

तदैव ब्राह्मणः कश्चिद् ब्रह्माचारी धृतव्रतः ।
कृष्णाजिनोत्तरीयेण धृतदण्डकमण्डलुः ।।५१।।

उसी समय ब्रह्मचर्यव्रत धारण करने वाला, कृष्णमृगचर्म का उत्तरीय और दण्ड तथा कमण्डलुधारी कोई ब्राह्मण, वहाँ उपस्थित हुआ ॥ ५१ ॥

ब्राह्मश्रिया दीप्यमानः स्वर्ण गौरः सुशोभनः ।
जटाभिः परिवीताभिरुद्रिक्तस्तनुदेहभृत् ।
उपस्थितस्तदा कालीं शम्भुर्ब्राह्मणरूपधृक् ।।५२।।

तब ब्राह्मश्री से देदीप्यमान, सुवर्ण के समान सुन्दर घिरी हुई जटाओं से घिरे, पतले शरीरधारी, ब्राह्मणरूप धारण कर, शिव स्वयं काली के सम्मुख उपस्थित हुये ॥ ५२ ॥

आसाद्य प्रथमं कालीं समाभाष्य तदा द्विजः ।
ज्ञातुं प्रत्यक्षतो रागं श्रोतुमिच्छंश्च तद्वचः ।।५३।।
वाग्मी विचित्रवाक्येन पप्रच्छ गिरिजां तदा ।।५४।।

तब उन ब्राह्मण वेशधारी शिव ने उनके प्रेम को प्रत्यक्ष रूप से जानने तथा उनके वचनों को सुनने की इच्छा से, सर्वप्रथम काली के पास पहुँचकर बोलने में कुशल, गिरिजा से विचित्र (रहस्यमय) वाक्यों द्वारा प्रश्न किया ।। ५३-५४ ।।

।। ब्राह्मण उवाच ।।

कां त्वं कस्यासि कल्याणि किमर्थं विजने वने ।
तपश्चरसि दुर्धर्षं मुनिभिः प्रयतात्मभिः ।।५५।।

ब्राह्मण ने कहा– हे कल्याणी ! तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ? किसलिये इस निर्जनवन में नियतात्मा मुनियों के लिए भी कठिन, यह तपस्या कर रही हो ? ।। ५५ ।।

न बाला त्वं नापि वृद्धा तरुणी चातिशोभना ।
कथं पतिं विनाभीक्ष्णं तपश्चरसि साम्प्रतम् ।।५६।।

इस समय न तुम बाला (बच्ची) हो, न वृद्धा हो, तुम तो अत्यन्त सुन्दरी युवती हो, फिर बिना पति का दर्शन किये, क्यों तपस्या कर रही हो ? ।। ५६ ।।

किंवा तपस्विनी भद्रे कस्यचित् सहचारिणी ।
तपस्विनः स पुष्पादि समाहर्तुं गतोऽन्यतः ।।५७।।

हे भद्रे ! अथवा क्या तुम किसी की सहचारिणी तपस्विनी हो, और वह तपस्वी इस समय तुम्हें छोड़कर, पुष्पादि लानेहेतु कहीं दूसरे स्थान पर चला गया है? ।। ५७ ।।

एतन्मम समाचक्ष्व यदि गुह्यं भवेन्न ते ।
यदि ते हृदये मन्युः कच्चिद्वसति सम्प्रति ।
तदाचक्ष्व समर्थोऽस्मि तमहं चापि वारितुम् ।।५८।।

यदि तुम्हारे द्वारा गोपनीय न हो तो यह सब मुझसे बताओ। यदि तुम्हारे मन में कोई क्रोध (क्षोभ) है तो भी मैं उसे दूर करने में समर्थ हूँ। तुम उसे भी बताओ ।। ५८ ।।

इत्युक्ता तेन विप्रेण गिरिजाथ निजां सखीम् ।
तस्योत्तरप्रदानाय कटाक्षेण न्ययोजयत् ।।५९।।

उस ब्राह्मण द्वारा ऐसा कहे जाने पर नेत्रों के सङ्केत से पार्वती ने अपनी सखी को, उसे उत्तर देने के लिए, नियुक्त किया ।। ५९ ।।

सा सखी विजया तस्या वचनाद् ब्राह्मणं तदा ।
प्रोवाचेदं यथातथ्यं वीक्षन्ती गिरिजामुखम् ।।६०।।

तब उस विजया नाम की उनकी सखी ने गिरिजा के मुख को देखते हुए उनके वचनानुसार, ब्राह्मण से ये तथ्यपूर्ण वचन कहे ॥ ६० ॥

।। विजयोवाच ।।

एतस्य गिरिराजस्य तनयेयं द्विजोत्तम ।
ख्याता च पार्वतीनाम्ना कालीति च सुशोभना ।।६१।।

विजया बोली– ये पर्वतराजहिमालय की सुन्दरी कन्या हैं, जो काली और पार्वती नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ ६१ ॥

ऊचे यन्न च केनापि शङ्करं वृषभध्वजम् ।
वाञ्छन्ती दयितं तीव्रं तपश्चरति वै पतिम् ।।६२।।

जो किसी से कुछ नहीं बोलतीं तथा वृषभध्वज शिव को ही अपने पति के रूप में चाहती हुईं, तीव्र तपस्या कर रही हैं ॥ ६२ ॥

षट्त्रि वर्षसहस्राणि तपस्तपति भामिनी ।
न शङ्करो गिरिसुतामद्याप्यभ्युपपद्यते ।।६३।।

छत्तीस हजार वर्षों तक तपस्या करने के पश्चात् भी ये देवी पार्वती, आज भी भगवान् शङ्कर को प्राप्त नहीं कर सकीं ॥ ६३ ॥

शङ्करो गिरिशो देवः सर्वगः परमेश्वरः ।
इति स्म गद्यते देवैर्मुनिभिश्च तपोधनैः ।।६४।।

जबकि तपस्वियों, देवताओं और मुनियों द्वारा यह कहा जाता है कि महादेव, शङ्कर जो गिरीश भी हैं, वे सर्वत्र गमन करने वाले परमेश्वर हैं ॥ ६४ ॥

किमेनां स न जानाति किं सानौ नास्ति वा गिरेः ।
इति चिन्ताविषण्णेयमद्य नो लभते सुखम् ।।६५।।

वे क्या इसको नहीं जानते ? या क्या वे इस समय हिमालय में नहीं है ? इन्हीं चिन्ताओं से पीड़ित हो, ये सुख का अनुभव नहीं करती हैं ॥ ६५ ॥

अप्रार्थितस्त्वमनया दयसे यदि वा सुखम् ।
तदैनां शङ्करेणाद्य त्वं सङ्गमय सुव्रत ।।६६।।

हे सुन्दर व्रतों वाले, ब्राह्मणदेव ! यदि इनके द्वारा बिना प्रार्थना किये ही आप दया करके इन्हें सुख दे सकते हैं तो आज आप शङ्कर भगवान् से इनका मिलन कराओ ॥ ६६ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति तस्या वचः श्रुत्वा ब्रह्मचारी तदा द्विजः ।
स्मयमान इदं वाक्यं हेलयोवाच पार्वतीम् ।।६७।।

मार्कण्डेय बोले– उस विजया की इन बातों को सुनकर ब्रह्मचारीवेशधारी उस ब्राह्मण ने मुस्कुराते हुए किन्तु तिरस्कारपूर्वक, पार्वती से ये वचन कहे—॥ ६७ ॥

।। ब्राह्मण उवाच ।।

अमोघदर्शनश्चास्मि हरं चानयितुं क्षमः ।
किन्त्वेकं निगदाम्यद्य निश्चितं मन्मतं शृणु ।।६८।।

ब्राह्मण बोले–हे देवि ! मेरा दर्शन अमोघ है (निष्फल नहीं जाता)। मैं शिव को भी लाने में समर्थ हूँ किन्तु आज मैं तुमसे अपना एक निश्चित विचार रखता हूँ, तुम उसे सुनो ॥ ६८ ॥

शिव की व्याज स्तुति

जानाम्यहं महादेवं तं वदामि शृणुष्व मे ।
वृषध्वजो महादेवो भूतिलेपी जटाधरः ।।६९।।

मैं उस, तुम्हारे आराध्य महादेव को जानता हूँ, तुम्हें भी बता रहा हूँ, उसे सुनो— वे महादेव बैल चिह्नित ध्वजा वाले हैं, वे जटाधारण किये रहते तथा भस्म पोते रहते हैं ॥ ६९ ॥

व्याघ्रचर्मांशुकश्चैकः संवीतो गजकृत्तिना ।
कपालधारी सर्पौघैः सर्वगात्रेषु वेष्टितः ।।७०।।

बाघ के चमड़े को वे वस्त्र के रूप में धारण करते हैं तथा हाथी के चमड़े को भी लपेटे रहते हैं। वे कपाल धारण करते हैं और सारे शरीर में सर्पों के समुदाय को लपेटे रहते हैं ॥ ७० ॥

विषदग्धगलस्त्र्यक्षो विरूपाक्षो विभीषणः ।
अव्यक्तजन्मा सततं गृहभोग्यविवर्जितः ।।७१।।

उनका गला विष से जला हुआ है, उनके तीन भद्दे नेत्र हैं। वे देखने में भयानक हैं। उनके जन्म के विषय में कोई ज्ञान नहीं है, वे कुल गोत्र रहित हैं, इस समय वे निरन्तर गृहभोग से रहित रहते हैं ॥ ७१ ॥

ज्ञातिभिर्बान्धवैर्हीनो भक्ष्यभोज्यविवर्जितः ।
श्मशानवासी सततं तत्सङ्गपरिवर्जितः ।।७२।।

वे जाति भाइयों से हीन, उनके खाने-पीने से रहित हैं तथा अपने स्वजनों के सङ्ग से रोके जाने के कारण सदैव श्मशान में निवास करने वाले हैं ॥ ७२ ॥

गर्जद्भिर्विकटैस्तीक्ष्णैर्भूतौघैः परिवारितः ।
शृङ्गाररसहीनश्च भार्यापुत्रविवर्जितः ।।७३।।

वे गर्जना करते हुए भयानक, तीखे भूतों के समूह से सदैव घिरे रहते हैं। उनकी शृङ्गाररस में कोई रुचि नहीं है, न तो उनकी कोई स्त्री या पुत्र ही है ॥ ७३ ॥

केन वा कारणेन त्वं भर्तारं तं समीहसे ।
पूर्वं श्रुतं मया चैव तस्यापरमिदं कृतम् ।।७४।।

ऐसी परिस्थिति में किस कारण से तुम उन्हें अपना पति बनाना चाहती हो ? उनके अन्य कार्यों के विषय में पहले से ही मेरे द्वारा बहुत कुछ सुना गया है ॥ ७४ ॥

शृणु ते निगदाम्यद्य यदि ते गृह्ण रोचते ।
दक्षस्य दुहिता साध्वी सती वृषभवाहनम् ।।७५।।
वव्रे पतिं पुरा दैवात् सम्भोगपरिवर्जितम् ।
कपालिजायेति सती दक्षेण परिवर्जिता ।।७६।।

आज मैं तुमसे कहता हूँ। सुनो यदि अच्छा लगे तो उसे ग्रहण करो। प्राचीन काल में दक्षप्रजापति की सती नाम की एक साध्वी कन्या ने वृषवाहन शिव को पति के रूप में वरण किया था। दैववश उसे शिव का संभोगसुख भी नहीं मिला तथा कपालधारी की पत्नी है, इस हेतु, दक्षद्वारा भी वह त्याग दी गयी ॥ ७५-७६ ॥

यज्ञभागप्रदानाय शम्भुश्चापि विवर्जितः ।
साथ तेनापमानेन भृशं शोकाकुला सती ।
तत्याज स्वान् प्रियान् प्राणांस्तया त्यक्तश्च शङ्करः ।।७७।।

शिव को यज्ञभाग देने का निषेध कर दिया गया। तब इस अपमान से बहुत अधिक शोकाकुल हो उस सती ने अपने प्रिय प्राणों को त्याग दिया था। इस प्रकार उसने भी शङ्कर का परित्याग कर दिया ॥ ७७ ॥

त्वं स्त्रीरत्नं तव पिता राजा निखिलभूभृताम् ।
तथाविधं पतिं कस्मादुग्रेण तपसेहसे ।।७८।।

तुम तो स्त्रियों में रत्न के समान श्रेष्ठ हो, तुम्हारे पिता समस्त पर्वतों के राजा हैं, तो भी इस प्रकार के पति को प्राप्त करने के लिए तुम उग्रतप क्यों कर रही हो? ॥ ७८ ॥

देवेन्द्रो वा धनेशो वा पवनो वाप्यपांपतिः ।।७९।।
अग्निर्वाऽन्यः सुरो वापि स्ववैंद्यावश्विनावपि ।
विद्याधरो वा गन्धर्वो नागो वा मानुषोऽथवा ।।८०।।
रूपयौवनसम्पन्नः समस्तगुणसंयुतः ।
स ते योग्यः पतिः श्रीमानुदारकुलसम्भवः ।।८१।।

तुम्हारे लिये तो देवराज इन्द्र, धनपति कुबेर, पवनदेव या जल के देवता वरुण, अग्नि या अन्य कोई देवता या स्वर्ग के वैद्य, अश्विनी कुमार, धनवान्, उदारकुल में उत्पन्न, रूप, यौवन आदि समस्त गुणों से सम्पन्न, कोई भी विद्याधर, गन्धर्व, नाग या मनुष्य पति होने के योग्य है ॥ ७९-८१ ॥

येन त्वं बहुरत्नौघ-पूरितेऽनर्घविस्तृते ।
माल्यप्रवरसंयुक्ते धूपचूर्णैः सुवासिते ।।८२।।

मृद्वास्तरणसंयुक्ते विस्तृते सुमनोहरे ।
चारुप्रासादगर्भस्थे जाम्बूनदविचित्रिते ।
शय्यातले समासाद्य स योग्यस्ते भवेत् पतिः ।।८३।।

जिसके द्वारा तुम बहुत से रत्नों के समूह से भरे हुए अमूल्य विस्तृत, श्रेष्ठ मालाओं से युक्त, धूप के चूर्णों से सुगन्धित, मुलायम बिछावन से युक्त, सुन्दर महल के भीतर स्थित, स्वर्ण से विशेष रूप से चित्रित, शय्यातल, तुम्हें उपलब्ध हो, वह तुम्हारे योग्य पति होना चाहिये ॥ ८२-८३ ॥

एवं ज्ञात्वाऽद्य सुभगे यदि वाञ्छसि शङ्करम् ।
किं ते तपोभिः सुतरामहं तं योजये त्वया ।।८४।।

हे सुभगे ! यदि ऐसा जानकर भी तुम शङ्कर की ही इच्छा करती हो तो तुम्हें तपस्या करने की क्या आवश्यकता है ? मैं तुम्हें शीघ्र उनसे मिला दूँगा ॥ ८४ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति श्रुत्वा तदा काली ब्राह्मणस्योत्तरं तदा ।
मितं तथ्यं जगादैनं ब्राह्मणं कोपसंयुता ।।८५।।

मार्कण्डेय बोले– जब काली ने ब्राह्मण के इस उत्तर को सुना तब वे क्रोध से भरकर, उस ब्राह्मण के प्रति यह तथ्यपूर्ण तथा सीमित वचन बोलीं ॥ ८५ ॥

।। काल्युवाच ।।

न जानासि हरं देवं त्वं जानामीति भाषसे ।
बहिर्यद् दृश्यते तत्ते कथितं द्विजनन्दन ।।८६।।

काली बोलीं– हे द्विजपुत्र ! तुम यह तो कहते हो कि मैं देवाधिदेव शिव को जानता हूँ, किन्तु वस्तुतः तुम उन्हें नहीं जानते । बाहर से जो दिखायी देता है, अब तक तुमने वही कहा है ॥ ८६ ॥

यस्य भावं न जानन्ति सेन्द्रा ब्रह्मादयः सुराः ।
तस्य त्वं विप्रतनय शिशुर्ज्ञास्यसि किं भवम् ।।८७।।

जिन शिव के भावों को देवराजइन्द्र के सहित ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जानते, उनको तुम ब्राह्मणबालक, जो अभी बच्चे हो, क्या जानो? ॥ ८७ ॥

यच्छ्रुतं भवता नीचवदनाद् भाषितं लघु ।
इतस्ततस्तु श्रुत्वैव भाषसे त्वं न दृष्टवान् ।।८८।।

जो तुम्हारे द्वारा नीच लोगों के मुख से इधर-उधर कही जाती, छोटी बातें सुनी गयी हैं, उन्हें ही सुनकर तुमने कहा है । वे बातें तुम्हारे द्वारा देखी नहीं गयी हैं ॥ ८८ ॥

तस्मात् त्वत्तो वरं नाहं वाञ्छये नापि वा पतिम् ।
अन्यद् वद न च त्वत्तो वाञ्छये हरसङ्गमम् ।।८९।।

इसलिए तुमसे न तो मैं वरदान चाहती हूँ और न पति ही पाना चाहती हूँ और कहो तो मैं तुम्हारे माध्यम से शिव से मिलन भी नहीं चाहती ॥ ८९ ॥

इत्युक्त्वा गिरिजा विप्रमवलोक्य सखीमुखम् ।
इदमाह तदा काली संशयारूढचेतना ।।९०।।

तब ब्राह्मण से ऐसा कहकर फिर सखी के मुँह को देखकर संशयग्रस्त चित्त से गिरिजा, काली ने कहा ॥ ९० ॥

महता चिन्तनेनेह तपसाराधितो हरः ।
तन्ममाग्रे विप्रसुतो निन्दितुं वाक्यमुक्तवान् ।
तदहं चापनेष्यामि स्तुतिवाक्येन साम्प्रतम् ।।९१।।

मैंने महान् चिन्तन और महती तपस्या से इस समय शिव की आराधना की थी। वैसी मुझ तपस्विनी के आगे इस ब्राह्मणपुत्र ने उनकी निन्दाकारक वाक्य कहे॥ ९१ ॥

महात्मनां च यो निन्दां शृणोति कुरुतेऽथवा ।।९२।।
तयोरागःसमं पूर्वं मया तातमुखाच्छ्रुतम् ।
तस्मात्तदपनेष्येऽहं तन्निषेधय विप्रकम् ।।९३।।

उसका समाधान मैं इस समय स्तुति वाक्यों द्वारा करूँगी; क्योंकि मैंने पिता के मुँह से सुना है कि जो महात्माओं की निन्दा करता है या सुनता है, दोनों का पाप समान ही होता है। उसका मैं निराकरण करूँगी किन्तु तुम ब्राह्मण को रोको ॥ ९२-९३ ॥

इत्युक्त्वा सा सखीं काली शम्भुसङ्गतमानसा ।
अघंसंमार्जनायाशु हरं स्तोतुमुपाक्रमत् ।।९४।।

सखी से ऐसा कहकर वे काली, शिव में अपने मन को समाहित कर उपर्युक्त पाप के समार्जन के लिए, शीघ्र, शिव की स्तुति करने लगीं ॥ ९४ ॥

।। काल्युवाच ।।

नमः शिवाय शान्ताय कारणत्रयहेतवे ।
निवेदयामि चात्मानं त्वं गतिः परमेश्वर ।।९५।।

काली बोलीं–शिव, शान्त तथा सृष्टि-स्थिति एवं विनाश तीनों के हेतु को नमस्कार है। हे परमेश्वर ! आप परम गति हो। अतः मैं अपने आपको तुम्हारे प्रति निवेदित करती हूँ ॥ ९५ ॥

विज्ञानसौभाग्यसुहृद्गताय ते
प्रपञ्चहीनाय हिरण्यबाहवे ।
नमोऽस्तु नारायणपद्मसम्भव-
प्रधानबीजाय जगद्धिताय ते ।।९६।।

सुहृदपुरुषों द्वारा विज्ञान और परमसौभाग्य के फलस्वरूप जाने-जाने वाले, आपको नमस्कार है। आप प्रपञ्च से रहित, हिरण्यबाहुरूप हैं, नारायण (विष्णु) एवं पद्मसम्भव (ब्रह्मा) के प्रधानबीज, संसार के हितकारक, आपको नमस्कार है ॥ ९६ ॥

इति स्तुवन्तीं पुनरेव स द्विज-
स्तदा वचः किञ्चिदुदीरितुं पुनः ।
समीक्ष्य कालीमकरोत् सयत्नकं
बुद्ध्वा समाचष्ट सखीं गिरेः सुता ।।९७।।

तब इस प्रकार से स्तुति करती हुई काली से पुन: उस ब्राह्मण द्वारा कुछ वचन कहने का प्रयत्न करते देख और समझकर, पर्वतराजकन्या पार्वती ने अपनी सखी से आगे कहा ।। ९७ ।।

अयं द्विजः किञ्चन वक्तुमिच्छ-
त्युग्रं हरं चापि न संविदानः ।
निन्दन्नहि प्राणहरीं हरस्य
निन्दामहं श्रोतुमिह क्षमामि ।।९८।।

उग्र शिव के सम्बन्ध में कुछ भी न जानते हुए भी यह ब्राह्मण, शिव की निन्दा करते हुये पुन: कुछ कहना चाहता है। मैं अपने प्राणों को हरने वाली, इस शिव की निन्दा को, सुनने में समर्थ नहीं हूँ ।। ९८ ।।

यावद् भूरिवचोऽस्याहं न शृणोम्यधुना सखि ।
गच्छामि तावद् दूराय समुत्तिष्ठामि मत्प्रिये ।।९९।।

इसलिए हे मेरी प्रिय सखी ! इस समय जहाँ इसकी बहुत-सी बातें न सुनायी दें उतनी दूर जाकर मैं अपना निवास बनाती हूँ ।। ९९ ।।

इत्युक्त्वा सा तया सख्या सहिता हिमवत्सुता ।
प्रतस्थेऽथ समुत्थाय तमुत्सृज्य द्विजं हठात् ।।१००।।

ऐसा कहकर वह हिमालयनन्दिनी, उस ब्राह्मण को बलपूर्वक छोड़कर उस सखी के सहित उठकर चल पड़ीं ।। १०० ।।

अथ शम्भुनिजं रूपमास्थाय हिमवत्सुताम् ।
तं समुत्सृज्य गच्छन्तीं हरः स्मेरमुखोऽन्वयात् ।।१०१।।

इसके बाद शम्भु अपने यथार्थरूप को धारण कर, उस छोड़कर जाती हुई हिमालय की कन्या के पीछे मुस्कुराते हुए चल पड़े ।। १०१ ।।

अहं हरो महादेवो मां संस्तौषि न चाधुना ।
सम्मुखीभव हे कालि समाश्वासय शाङ्करि ।।१०२।।

हे शङ्करपत्नी ! हे काली ! यह मैं शिव हूँ, महादेव हूँ, क्या तुम इस समय मेरी स्तुति नहीं करोगी? मेरे सम्मुख हो मुझे समाश्वस्त करो ।। १०२ ।।

इत्युक्त्वा स महादेवो गच्छन्त्याः पुरतो गतः ।
प्रसार्य हस्तौ काल्यास्तु गतिं तस्या विरोधयन् ।।१०३।।

ऐसा कहकर महादेव, जाती हुई काली के सामने जाकर, दोनों हाथों को फैलाकर उसकी गति को रोकने लगे ॥ १०३ ॥

सा वीक्ष्य शम्भुवदनं तत्क्षणादभवद्धठात् ।
अधोमुखी तडिद्वातचकितेव गिरेः सुता ॥१०४॥

शिव के मुख को देखकर, पर्वतपुत्रीपार्वती, बिजली और वायु से अचम्भित हुई सी उसी समय हठपूर्वक नीचे मुख वाली हो गयीं ॥ १०४ ॥

मन्दाक्षं प्रीतिलज्जाभिः सा जडेव तदाभवत् ।
वक्तुं च नाशकत् किञ्चिद्विवक्षुरपि भामिनी ॥१०५॥

उस समय वे प्रेम एवं लज्जा के कारण मन्ददृष्टि से जड़वत् हो गयीं । तथा वे देवी न कुछ बोल सकीं, न सोच ही सकीं ॥ १०५ ॥

मनोरथानां सिद्ध्या तु सुधाभिरिव पूरितम् ।
शरीरमभवत्तस्या मुदा पूर्णं द्विजोत्तमाः ॥१०६॥

हे द्विजोत्तमों ! मनोरथों की सिद्धि से उनका शरीर अमृत से भरे हुए की भाँति आनन्द से परिपूर्ण हो गया ॥ १०६ ॥

षट्त्रिंवर्षसहस्रैस्तु तपःक्लेशमविन्दत ।
यत्तं क्षणात् समुत्सृज्य सम्मोदमुदिताभवत् ॥१०७॥

छत्तीस हजार वर्षों तक जिस तपस्याजन्य क्लेश का अनुभव किया था, उसे उसी क्षण से छोड़कर, वे आनन्द से आनन्दित हो उठीं ॥ १०७ ॥

तां च वीक्ष्य तथाभूतां प्रणयाद् वृषभध्वजः ।
कामेन भस्मरूपेण गात्रस्थेन च मोहितः ॥१०८॥
अथ तां विरहोद्रिक्तः समेत्य वृषभध्वजः ।
सम्बोधयन्निदं चाटुवचनं प्रोक्तवान् मुदा ॥१०९॥

उन्हें इस प्रकार देखकर, प्रेमवश एवं भस्मरूप में शरीर पर स्थित काम से मोहित हो, वृषभध्वज शिव विरह से भरकर, उनके निकट जाकर, उन्हें सम्बोधित कर, प्रसन्नता से ये प्रिय वचन बोले—॥ १०८-१०९ ॥

॥ शिव उवाच ॥

न तु सुन्दरि मां वक्तुं किञ्चनापि त्वमीहसे ।
तपःक्लेशं स्मरन्ती किं मह्यं कुप्यसि साम्प्रतम् ॥११०॥

शिव बोले–हे सुन्दरि ! क्या तुम मुझसे कुछ भी बात करना नहीं चाहती ? अपनी तपस्या के कष्टों का स्मरण करती हुई क्या तुम आज भी मुझ पर क्रोधित हो ॥ ११० ॥

अहं च परितप्यामि त्वामृते सुभगे मम ।
समयाद् यत् समारब्धं तपस्तप्तुं त्वया समम् ॥१११॥

सानुरक्तोऽथ संस्कृत्य भविष्यामि त्वया प्रिये ।
अधुना समतीतो मे यः कृतः समयो मया ।।११२।।

हे सुभगे ! मैं भी तुम्हारे बिना दु:खी हो रहा हूँ । तुम्हारी तपस्या के साथ ही मेरा जो अनुबन्ध आरम्भ हुआ था कि हे प्रिये ! तुम्हें संस्कारित करके ही तुम्हारे साथ अनुरक्त हूँगा, वह इस समय बीत गया । मेरा अवसर पूर्ण हुआ ॥ १११-११२ ॥

तपसे भवती चापि तपसैव सुसंस्कृता ।
संचिन्तनेन जप्येन तीव्रेण तपसा तदा ।
मूल्येन महता क्रीतो दासोऽहं मां नियोजय ।।११३।।
त्वदंगानां संस्करणे जटानां च प्रसाधने ।
प्रमुच्य वल्कलं गात्राच्चार्वंशुकनिवेशने ।।११४।।

तपस्या में रत रहकर, तपस्या से ही सुसंस्कृत हो, मेरे भलीभाँति चिन्तन से, मेरे मन्त्र के जप से तथा उस समय की गयी तपस्या का महान् मूल्य देकर, मैं तुम्हारे द्वारा खरीदा हुआ, तुम्हारा सेवक हूँ । अब यथारुचि, तुम्हारे (अपने) अङ्गों को संस्कारित करने, जटाओं को सुधारने, शरीर से वल्कलों को हटाकर, सुन्दर वस्त्रों को स्थापित कराने में मुझे नियुक्त करो ॥ ११३-११४ ॥

हारनूपुरकेयूरकाञ्च्यादिपरिधापने ।
द्रुतं नियोजय शुभे यदि स्नेहोऽस्ति मादृशि ।।११५।।

हे शुभे ! यदि तुम्हें मेरे ही जैसा प्रेम हो तो, मुझे शीघ्र ही अपने हार, नूपुर, केयूर (बाजूबंद), करधनी आदि आभूषण पहिराने में नियोजित करो ॥ ११५ ॥

निर्दग्धो योमया कामो भस्मरूपेण मत्तनौ ।
स्थितो मां प्रतिकृत्येव त्वदग्रे दग्धुमिच्छति ।।११६।।

जो कामदेव पहले मेरे द्वारा जला दिया गया था वही आज भस्म के रूप में मेरे शरीर पर स्थित हो, मुझे अपना बदला लेते हुए तुम्हारे सामने जलाने की इच्छा रखता है ॥ ११६ ॥

तस्मादुद्धर मां कामादग्नेरिव मनोहरे ।
त्वदङ्गामृतदानेन प्रसीद दयिते मम ।।११७।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे पार्वतीतपोवर्णने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४३।।

हे मन को हरने वाली ! अपने अङ्गरूपी अमृत का दान कर, उस अग्नि के समान काम से मेरा उद्धार करो । हे मेरी प्रिये ! तुम प्रसन्न होओ ॥ ११७ ॥

।। श्रीकालिकापुराण में पार्वतीतपवर्णन नामक तिरालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।४३।।



चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

कालीहरसमागमः

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

अथ श्रुत्वा वचः शम्भोर्गिरिजातीव हर्षिता ।
मेने प्राप्तं तदा शम्भुं सुन्दरं दयितं पतिम् ।।१।।

मार्कण्डेय बोले– इसके बाद, शिव के वचनों को सुनकर, गिरिजा (पार्वती), अत्यन्त प्रसन्न हुईं तथा उन्हीं शिव जैसे सुन्दर, प्रिय पति को अपने लिए उपलब्ध माना ॥ १ ॥

अथ प्राह तदा काली सखीवक्त्रेण शङ्करम् ।
यथा स शृणुते वाक्यं श्रोतुमिच्छंश्च शङ्करः ।।२।।

तब काली ने सखी के मुख से शङ्कर से कहा, जिससे उनके वचनों को सुनने कीं इच्छा रखने वाले शङ्कर भी, उनकी बात सुन सकें ॥ २ ॥

न सन्धावतिभेदेन प्रवर्तन्तेऽत्र सज्जनाः ।
मर्यादया हरस्त्वं मे पाणिं गृह्णातु शङ्करः ।।३।।

सज्जनपुरुष मिलन हेतु अत्यन्त गुप्त रूप से प्रवृत्त नहीं होते। हे हर ! हे शङ्कर ! आप मर्यादापूर्वक मेरा पाणिग्रहण करें ॥ ३ ॥

पितृदत्ता भवेत् कन्या तपोदत्ता भवेन्नहि ।
तपसा चेत् प्रदत्ताहं मां तातश्च प्रदास्यति ।।४।।

कन्या तो पिता के द्वारा ही वर को दी जाती है, तपस्या के द्वारा नहीं। यदि मैं तपस्या द्वारा भी आपको देने योग्य हो गई हूँ, तो भी मुझे, पिता ही आपको प्रदान करेंगे ॥ ४ ॥

तस्मात् सम्प्रार्थ्य पितरं हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
वैवाहिकेन विधिना पाणिं गृह्णातु मे हरः ।।५।।

इसलिए हे शिव ! मेरे पिता पर्वतराजहिमालय से प्रार्थना कर, वैवाहिक-विधि से आप मेरा पाणिग्रहण करें ॥ ५ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्त्वा विररामाथ काली लज्जासमन्विता ।
हरोऽपि तद्वचः सत्यं तथ्यं योग्यं तदाग्रहीत् ।।६।।

मार्कण्डेय बोले–ऐसा कहकर काली, लज्जा से युक्त हो मौन हो गयीं तथा शिव ने भी उस समय के उनके वचन को सत्य, उचित और तथ्यपूर्ण मानकर स्वीकार कर लिया ॥ ६ ॥

ततः स सगणः शम्भुस्तत्र वासं तदाकरोत् ।
गङ्गावतरणे सानौ यथापूर्वं तथाधुना ।।७।।

तब वे शिव उस समय गणों के सहित वहाँ, गङ्गावतरण नामक शिखर पर पहले की ही भाँति, निवास करने लगे ॥ ७ ॥

काली पितुर्गृहं याता सखीभिः परिवारिता ।
नालोकयन्ती सा दीना गुरूणां वदनं सती ।।८।।

काली भी सखियों के साथ घिरी हुई पिता के घर चली गयीं । वे दीन भाव (लज्जा) ग्रस्त होने के कारण बड़ों (माता-पिता) के मुख की ओर नहीं देखती थीं ॥ ८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे सप्तमरीचिप्रमुखान् मुनीन् ।
चिन्तयामास शशिभृत् कालीं प्रार्थयितुं तदा ।।९।।

तब इसी बीच चन्द्रमा को धारण करने वाले शिव द्वारा काली से प्रार्थना के लिए मरीचि आदि सप्तर्षियों का चिन्तन किया गया ॥ ९ ॥

चिन्तिताः सप्तमुनयस्तत्क्षणान्मदनारिणा ।
आकृष्टा इव केनापि तत्सकाशमुपागताः ।।१०।।

मदन (कामदेव) के शत्रु, शिव द्वारा चिन्तन किये जाते ही, किसी के द्वारा खींचे जाते हुए की भाँति वे सप्तर्षि, तत्क्षण उनके समीप आ गये ॥ १० ॥

तान् मुनीन् ददृशे शम्भुः सप्ताग्नीनिव दीपितान् ।
अरुन्धतीं वसिष्ठस्य सकाशे ददृशे सतीम् ।।११।।

शिव ने सात अग्नियों की भाँति देदीप्यमान् उन सात मुनियों को तथा वसिष्ठ मुनि के समीप सती अरुन्धती देवी को देखा ॥ ११ ॥

अरुन्धतीं ततो दृष्ट्वा वसिष्ठस्य समीपतः ।
मेने योषिद्ग्रहं धर्मं मुनिभिश्चाप्यवर्जितम् ।।१२।।

तब अरुन्धती को वसिष्ठमुनि के समीप देखकर उन्होंने माना कि पत्नी को ग्रहण करना धर्म है, जो मुनियों द्वारा भी अवर्जित अर्थात् समर्थित है ॥ १२ ॥

ततस्ते मुनयः सर्वे सम्पूज्य वृषभध्वजम् ।
इदमूचुः प्रहर्षेण स्मरणाकर्षिताः प्रियम् ।।१३।।

तब उन सब मुनियों ने जिनके स्मरण से आकर्षित होकर वे आये थे, उन प्रिय, वृषभध्वज की पूजा की तथा वे उनसे प्रसन्नतापूर्वक यह बोले—॥ १३ ॥

।। ऋषय ऊचुः ।।

यत् प्रत्यक्षं दृश्यते शुद्धरूपं
चन्द्रप्रख्यं चन्द्रखण्डोपशोभि ।
अन्तःप्रज्ञं भावितं तन्मुनीनां
भाग्यं दृष्टं भागधेयेन मुक्तैः ।।१४।।

ऋषिगण बोले–जो चन्द्र के समान चन्द्रखण्ड से सुशोभित, शुद्धरूप, आज प्रत्यक्ष दिखायी दे रहा है वह मुनियों के अन्तःप्रज्ञा में जाना जाता है। वह भागधेय से मुक्त हो आज हमें भाग्यवश दिखायी दे रहा है।। १४ ।।

प्रज्ञातन्त्रं ध्यानतन्त्रं पुरस्ता-
न्नित्यं ध्येयं ध्यायिनां स्वप्रकाशम् ।
पुञ्जीभूतं बाह्यतत्त्वेन शश्वद्
योग्यप्राप्यं धाम शम्भोरुदारम् ।।१५।।

जो ध्यान करने वालों के द्वारा ज्ञान एवं ध्यान के मार्ग का अनुगमन करते हुए नित्य स्वप्रकाश रूप में ध्यान करने योग्य है वह बाह्य तत्त्वों के पुञ्जीभूत रूप, सदैव प्राप्त करने योग्य, शिव का उदार धाम ही है।। १५ ।।

दृष्ट्वा यस्यैवाग्रभागं स नेत्रं
त्राणाय स्याद् दर्शनं सूर्यतुल्यम् ।
तद्धामेदं स्थानसर्वस्य नित्यं
भक्त्या स्तुत्यं तं नमः शम्भुदेहम् ।।१६।।

शिव के जिन सूर्यग्रह तुल्य, नेत्रयुक्त शरीर के अग्रभाग शिर को देखकर, रक्षा होती हैं, वही सबका नित्य आश्रय स्थान है। उस शिव (शरीर) की हम भक्तिपूर्वक स्तुति करते हैं तथा उसे नमस्कार करते हैं।। १६ ।।

प्रकाशते यः प्रथमादिभागतः
स्थितः स वामे य इहैव नेता ।
सोऽस्माकमस्तु प्रथमं स्वसिद्ध्यै
हरस्य शक्त्या विधृतो ललाटे ।।१७।।

जो प्रथम (प्रतिपदादि) भागों से प्रकाशित होता है वह चन्द्र यहीं वाम में स्थित है। जिसे शिव ने अपनी शक्ति से ललाट पर धारण किया है, वह प्रथम सिद्धि का कारण होवे।। १७ ।।

यः प्रधानात्मकः सत्त्वरजोभ्यां तमसान्वितः ।
पुरुषः सर्वजगतां स हरो नः प्रसीदतु ।।१८।।

जो शिव, सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों के समन्वय से प्रधान से युक्त हो सम्पूर्ण संसारहेतु, पुरुषरूप हैं, वे हम पर प्रसन्न होवे।। १८ ।।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इति संस्तुत्य देवेशं मुनयो विनयानताः ।
ऊचुः किमर्थं भवता स्मृतास्तन्नो निगद्यताम् ।।१९।।

मार्कण्डेय बोले- देवाधिदेव शिव की ऐसी स्तुति कर मुनियों ने नम्रतापूर्वक उनसे पूछा कि हम लोग किस निमित्त आप द्वारा स्मरण किये गये हैं, वह हमें बताइये ॥ १९ ॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा शङ्करः प्रहसन्निव ।
जगाद तान्मुनीन् सर्वानाभाष्य च पृथक् पृथक् ।।२०।।

उन मुनियों के उन वचनों को सुनकर हँसते हुये शिव ने सबसे अलग-अलग कहा—॥ २० ॥

।। ईश्वर उवाच ।।

हिताय सर्वजगतां सम्भोगायात्मनस्तथा ।
दारान् ग्रहीतुमिच्छामि तथा सन्तानवृद्धये ।।२१।।

ईश्वर (शिव) बोले–सम्पूर्ण जगत् के कल्याण तथा अपनी सम्भोगेच्छा की पूर्ति एवं सन्तानवृद्धि हेतु मैं स्त्रियों को ग्रहण करना चाहता हूँ ॥ २१ ॥

सहायं तत्र कुर्वन्तु भवन्तो मम साम्प्रतम् ।
मदर्थे च ततः कालीं याचन्तां तुहिनाचलम् ।।२२।।

उसमें आप सब, इस समय मेरी सहायता कीजिये तथा हिमालयपर्वत से मेरे लिये उनकी पुत्री, काली की याचना कीजिये ॥ २२ ॥

महता तपसा काली मां पतिं लघु विन्दताम् ।
किन्तु ग्रहीष्ये विधिना तस्माद् याचन्तु तं गिरिम् ।।२३।।

यद्यपि काली ने अपनी महती तपस्या द्वारा मुझे पति के रूप में सहजता से वरण कर लिया है तथापि वह विधिपूर्वक ग्रहण करेगी; इसलिये आप उस पर्वतराज हिमालय से मेरे लिए याचना करें ॥ २३ ॥

यथा यथा स्वयं कालीं शैलो दातुं समुत्सहेत् ।
तथा तथा विदध्वं हि यूयं वाग्विभवान्विताः ।।२४।।

आप सब वाग्वैभव से युक्त हैं; इसलिये जिससे हिमालयपर्वत, स्वयं काली को मुझे प्रदान करने का उत्साह दिखाएँ, वैसी ही योजना आप सब कीजिए ॥ २४ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

हरं सम्बोध्य मुनयो ह्यगच्छन् गिरिराड्गृहम् ।
तेन प्रपूजितास्ते तु प्रोचुस्तं मुनयो गिरिम् ।।२५।।

मार्कण्डेय बोले–शिव को सम्बोधित कर मुनिगण गिरिराज हिमालय के यहाँ पहुँच गये तथा उनसे पूजित हो, उन मुनियों ने पर्वतराज से कहा—॥ २५ ॥

।। मुनयः ऊचुः ।।

यश्चन्द्रशेखरो देवो देवदेवश्च यो मतः ।
शापानुग्रहणे शक्तो य एको जगतां पतिः ।।२६।।

मुनिगण बोले– जो देवता, चन्द्रमा को अपने सिर पर धारण करते हैं, जो हमारी दृष्टि में देवाधिदेव हैं, जो शाप और अनुग्रह दोनों में ही समर्थ हैं, जो जगत् के एक मात्र स्वामी हैं ॥ २६ ॥

यः संहरति सर्वाणि जगन्ति प्रलयोद्भवे ।
यो विभूतिप्रदो भक्ते नानारूपो मनोहरः ।
स ते दुहितरं कालीं भार्यामादातुमिच्छति ।।२७।।

जो प्रलयकाल में समस्तजगत का संहार करते हैं, जो अनेक रूपों में भी मनोहर हैं तथा जो भक्तों को ऐश्वर्यप्रदान करने में समर्थ हैं, वे ही शिव, तुम्हारी पुत्री, काली को पत्नी के रूप में ग्रहण करना चाहते हैं ॥ २७ ॥

यदि पश्यसि त्वं योग्यं वरं तं दुहितुः समम् ।
तदा प्रयच्छ तनयां कालीं शशिभृते गिरे ।।२८।।

हे गिरि ! यदि तुम उन्हें अपनी कन्या के योग्य वर समझते हो तो अपनी कन्या, काली को उन चन्द्रधरशिव को प्रदान करो ॥ २८ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्युक्तस्तैर्गिरिपतिश्चिरं स्वहृदयस्थितम् ।।२९।।
दुहितुश्च प्रियं ज्ञात्वा प्राप्य सद्वचनान्मुदम् ।
आह चेदं प्रकाशेन युष्माभिस्त्वहमागतैः ।।३०।।
पावितो मुनिशार्दूलैः पूरितश्च मनोरथः ।
दास्यामि शम्भवे पुत्रीं युष्माभिः प्रार्थितस्त्वहम् ।।३१।।

मार्कण्डेय बोले– चिरकाल से, अपने हृदय में स्थित तथा पुत्री के भी प्रिय को जानकर एवं प्राप्तकर, उनके इस प्रकार के उत्तम वचनों के कहे जाने पर, पर्वतराज ने प्रकट रूप से प्रसन्नतापूर्वक कहा—हे मुनि शार्दूलों ! आपलोगों के यहाँ आने से मैं पवित्र हो गया तथा मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया है। मैं आपलोगों की प्रार्थना के अनुसार शिव के लिए अपनी पुत्री अवश्य प्रदान करूँगा ॥ २९-३१ ॥

पूर्वमेव तपस्तप्त्वा तयेशः पतिरीहितः ।
धातुर्नियोजनमिदं कोऽन्यथा कर्तुमुत्सहेत् ।।३२।।

पहले ही उसके द्वारा तपस्या करके शिव की पति के रूप में इच्छा की गयी है। यह विधाता की ही योजना है। भला कौन इसे अन्यथा करने का साहस कर सकता है? ॥ ३२ ॥

कोऽन्यः प्रार्थयितुं शक्तः सुतां मम विना हरात् ।
हरेणावगृहीताया तामन्यः कः समुत्सहेत् ।।३३।।

शिव के अतिरिक्त और कौन मेरी कन्या हेतु प्रार्थना कर सकता है ? जिसको शिव ने ग्रहण कर लिया है, उसे अन्य कौन ग्रहण करने का साहस कर सकता है ? ॥ ३३ ॥

हरं गृहीत्वा मनसा नान्यं सापीह वाञ्छति ।
इत्युक्त्वा मेनया सार्धं सुतां दातुं च शम्भवे ।
अङ्गीकृत्य विसृष्टास्ते ह्यनुप्रापुर्महेश्वरम् ।।३४।।

शिव को ग्रहण करने के बाद, वह भी किसी अन्य को, मन से भी नहीं चाहती। ऐसा कहकर मैना के सहित हिमालय द्वारा शिव के लिए कन्यादान की बात स्वीकार कर लिये जाने पर, उनके द्वारा विसर्जित हो, वे सप्तर्षि शिव के समीप, पहुँच गये ॥ ३४ ॥

ते गत्वा मुनयः सर्वे मरीचिप्रमुखा द्विजाः ।।३५।।
शैलराजो यदाचष्ट तदूचुर्मदनारये ।
हिमवांस्तनयां दातुं तुभ्यमुत्सहते हरः ।।३६।।

हे द्विजों ! उन मरीचि आदि ऋषियों ने वहाँ जाकर पर्वतराजहिमालय ने जो कुछ कहा था, वह कामदेव के शत्रु, शिव से कह दिया। हे शिव ! हिमालय आपको अपनी कन्या देने के लिए उत्साहित हैं ॥ ३५-३६ ॥

यदिदानीं त्वया कुर्तुं युज्यते क्रियतां तु तत् ।
अस्मांश्चाप्यनुजानीहि हर गन्तुं निजास्पदम् ।।३७।।

अब आपको जो करना उचित हो, वह कीजिये। हमको भी अपने स्थानों पर लौटने की आज्ञा दीजिये ॥ ३७ ॥

सिद्धं ज्ञात्वा हरः साध्यं मुदितस्तान् विसृष्टवान् ।
यथायोग्यं समाभाष्य क्रमादेकैकशो मुनीन् ।।३८।।

शिव ने उद्देश्य पूरा हुआ जानकर, एक-एक मुनि से क्रमशः यथायोग्य वार्तालाप कर, उन्हें प्रसन्नतापूर्वक विदा किया ॥ ३८ ॥

कालीविवाहावसरे यूयमायात मां प्रति ।
इति ते वै हरेणोक्तं प्रतिश्रुत्यर्षयो ययुः ।।३९।।

मेरे तथा काली के विवाह के अवसर पर आप सब पुनः पधारियेगा ऐसा शिवद्वारा कहे जाने पर उसे स्वीकार कर, ऋषिगण अपने-अपने स्थानों को चले गये ॥ ३९ ॥

अथान्योन्यप्रियतया कृत्वा कृत्वा गतागतम् ।
समयं कारयामास विवाहाय हरो गिरिम् ।।४०।।

इस प्रकार परस्पर्श प्रेमपूर्वक गमनागमन करके हिमालय से शिव ने विवाह हेतु अनुबन्ध किया ।। ४० ।।

माधवे मासि पञ्चम्यां सिते पक्षे गुरोर्दिने ।
चन्द्रे चोत्तरफाल्गुन्यां भरण्यादौ स्थिते रवौ ।।४१।।
आगता मुनयस्तत्र मरीचिप्रमुखा मुहुः ।
हरेण चिन्तिताः सर्वे तथा ब्रह्मादयः सुराः ।।४२।।
तथा च सर्वे दिक्पाला मुनयश्च तपोधनाः ।
शच्या सह तथा शक्रो ब्रह्माण्याद्यास्तु मातरः ।
नारदश्च गतस्तत्र देवर्षिर्ब्रह्मणः सुतः ।।४३।।

वैशाखमास की शुक्लपक्ष की पञ्चमी तिथि को गुरुवार के दिन जब चन्द्रमा उत्तराफाल्गुनि नक्षत्र तथा सूर्य रोहिणी नक्षत्र में थे । तब शिव द्वारा स्मरण किये जाते ही मरीचि आदि मुनिगण दुबारा तथा ब्रह्मादि सभी देवता, सभी दिक्पाल, तपस्वी मुनिगण, शची के सहित देवराजइन्द्र एवं ब्रह्माणी आदि मातृकायें आ गयीं और ब्रह्मा के पुत्र देवर्षिनारद भी वहाँ पहुँच गये ।। ४२-४३ ।।

एतैः परिचरैः सार्धं गणैराप्यायितः स्वकैः ।
वैवाहिकेन विधिना गिरिपुत्रीं हरोऽग्रहीत् ।।४४।।

इन परिचरों तथा अपने गणों के सहित शिव ने विवाह-विधि से पार्वती का पाहिग्रहण किया ।। ४४ ।।

विवाहे गिरिजा शम्भोः सर्पा येऽष्टौ तनौ स्थिताः ।
ते जाम्बुनदसंनद्धा अलङ्कारास्तदाभवन् ।।४५।।
द्विभुजोऽभून्महादेवो जटाः केशत्वमागताः ।
शिरस्थितश्चन्द्रखण्डः सोऽर्चिषा ज्वलितोऽभवत् ।।४६।।

शिव पार्वती के विवाह के समय शिव के शरीर पर जो आठ सर्प थे, वे स्वर्ण से बने हुये सुन्दर आभूषण हो गये, स्वयं महादेव चतुर्भुज से दो भुजाओं वाले हो गये, तथा उनकी जटाओं ने केश का रूप धारण कर लिया उनके सिर पर जो चन्द्रखण्ड था वह किरणों से देदीप्यमान हो उठा ।। ४५-४६ ।।

विचित्रवसनं व्याघ्रकृत्तिरासीत्तदा द्विजाः ।
विभूतिलेपो ह्यस्याभूत् सुगन्धिमलयोद्भवः ।।४७।।
गौररूपो हरस्तत्र बभूवाद्भुतदर्शनः ।।४८।।

हे द्विजों ! उस समय उनका जो वस्त्र, व्याघ्र और हाथी के चर्म का था वह रंग-बिरंगा वस्त्र हो गया तथा उनका भस्म का लेप सुगन्धित चन्दन का लेप हो गया। उस समय शिव भी अद्भुत दिखायी देने वाले, गौरवर्ण के हो गये ॥ ४७-४८ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरोरगाः ।
विस्मयं परमं जग्मुर्हरं दृष्ट्वा तथाविधम् ।।४९।।

तब शिव को उस प्रकार का देखकर, गन्धर्वों, विद्याधरों, सिद्धों, नागों के सहित देवगण, परम विस्मय को प्राप्त हुये ॥ ४९ ॥

हिमवान् मुदितश्चासीत् सहपुत्रैश्च मेनया ।
ज्ञातयश्चास्य मुमुहुर्हरं दृष्ट्वा तथाविधम् ।।५०।।

हिमालय अपने पुत्रों एवं मेनका तथा जाति भाइयों के सहित शिव के उस रूप को बार-बार देखकर मोहित हो गये ॥ ५० ॥

।। ब्रह्मोवाच ।।

इदं ब्रह्मा तत्र जगौ हरं दृष्ट्वा मनोहरम् ।।५१।।
सर्वं शिवकरं यस्मात् सुवेशमभवत्सुराः ।
तस्माच्छिवोऽयं लोकेषु नाम्नाख्यातोऽधिकः शिवः ।।५२।।

ब्रह्मा बोले– उस समय शिव के उस सुन्दररूप को देखकर ब्रह्मा ने यह कहा—हे देवताओं! शिव का सम्पूर्ण वेश इस समय कल्याणकर हो गया है। इसीलिए यह शिव इस नाम से लोक में विशेष प्रसिद्ध होंगे ॥ ५१-५२ ॥

महेश्वरमुमायुक्तमीदृशं यः स्मरेद्धृदा ।
सततं तस्य कल्याणं वाञ्छितं च भविष्यति ।।५३।।

इस प्रकार के उमा के सहित शिव का जो हृदय में स्मरण करेगा उसका सदैव अभीष्ट कल्याण होगा ॥ ५३ ॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

एवं काली महामाया योगनिद्रा जगत्प्रसूः ।
पूर्वं दाक्षायणी भूत्वा पश्चाद् गिरिसुताभवत् ।।५४।।

योगनिद्रा, महामाया, काली इस प्रकार से पहले दक्ष की पुत्री सती होकर बाद में गिरिराजहिमालय की पुत्री पार्वती हुईं ॥ ५४ ॥

स्वयं समर्थापि सती काली सम्मोहितुं हरम् ।
तथाप्युग्रं तपस्तेपे हिताय जगतां शिवा ।
एवं सम्मोहयामास कालिका चन्द्रशेखरम् ।।५५।।

स्वयं शिव को सम्मोहित करने में समर्थ, उस कल्याणकारिणी काली ने संसार के कल्याण के लिए, इसी कार्यहेतु उग्र तपस्या की। इस प्रकार से काली ने चन्द्रशेखर शिव को सम्मोहित किया ॥ ५५ ॥

इत्येतत् कथितं सर्वं त्यक्तदेहा सती यथा ।
हिमवत्तनया भूत्वा पुनः प्राप महेश्वरम् ।।५६।।

जिस प्रकार से सती ने शरीर का त्याग किया तथा हिमालय की पुत्री होकर पुनः महेश्वर, शिव को पतिरूप में प्राप्त किया, वह सब मैंने आप लोगों से कह दिया—॥ ५६ ॥

इदं यः कीर्तयेत् पुण्यं कालिकाचरितं द्विजाः ।
नाधयो व्याधयस्तस्य दीर्घायुः स च जायते ।।५७।।

हे द्विजों ! जो इस पवित्र कालिका चरित का कीर्तन (कथन) करेगा, उसे किसी प्रकार का मानसिक या शारीरिक रोग नहीं होता तथा वह दीर्घायु हो जाता है ॥ ५७ ॥

इदं पवित्रं परममिदं कल्याणवर्धनम् ।
श्रुत्वापि सकृदेवेदं शिवलोकाय गच्छति ।।५८।।

इस परमपवित्र, कल्याणवर्धक चरित को एक बार भी सुनकर व्यक्ति शिवलोक चला जाता है ॥ ५८ ॥

यः श्राद्धे श्रावयेद्विप्रान् कालिकाचरितं महत् ।
पितरस्तस्य कैवल्यमाप्नुवन्ति न संशयः ।।५९।।

जो श्राद्ध में ब्राह्मणों को यह महान् कालिकाचरित सुनाता है, उसके पितर कैवल्य (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ५९ ॥

यः श्रावयेद् ब्राह्मणानां सन्निधौ वा समागतः ।
तत्र स्वयं हरो गत्वा शृणोति सह मायया ।।६०।।

जो ब्राह्मणों के निकट जाकर या उनके आने पर इसे सुनाता है तो स्वयं शिव, माया (काली) के सहित वहाँ जाकर इसका श्रवण करते हैं ॥ ६० ॥

इति वः कथितं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
युष्मभ्यं रोचते चान्यद्यत्तत् पृच्छन्तु सत्तमाः ।।६१।।

।। इति श्रीकालिकापुराणे कालीहरसमागमो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४४।।

यह मैंने आपलोगों से सभी पापों को नष्ट करने वाला, अत्यन्त पुण्यमय, कालिकाचरित कह दिया। हे द्विजसत्तमों ! यदि आप लोगों को कुछ और अच्छा लगता हो तो उसे पूछिये ॥ ६१ ॥

॥ श्रीकालिकापुराण में कालीहरसमागम नामक चौवालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४४ ॥



पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः
अर्धनारीश्वरचरितवर्णनम्

।। ऋषय ऊचुः ।।

विचित्रमिदमाख्यानं ब्रह्मन् कालीहरागमम् ।
पुण्यं पापहरं नित्यं श्रुतिसौख्यप्रदं वरम् ।।१।।

ऋषिगण बोले- हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! काली एवं शिव के समागम का कहा गया यह प्रसङ्ग, अद्भुत, पवित्र, पापों को दूर करने वाला, शाश्वत, कानों को सुखप्रदान करने वाला, तथा श्रेष्ठ है ।।१।।

भूयः कथय शर्वस्य कालीतन्वार्धमुत्तमम् ।
कथं जहार गौरी वा कथम्भूताथ कालिका ।।२।।
केन वा कारणेनाशु कृष्णा गौरीत्वमागता ।
तन्नः कथय तत्त्वेन मुनिश्रेष्ठ द्विजोत्तम ।।३।।

हे मुनि श्रेष्ठ, हे द्विजो में उत्तम ! पुनः कहिये कि काली ने शिव के उत्तम आधे शरीर को कैसे धारण किया ? या कालिका गौरी कैसे हुईं ? किस कारण से कृष्णा ने गौरीत्वको प्राप्त किया ? वह सब हमसे तत्त्वरूप में कहिये ।

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इदं तु महदाख्यानं कथयिष्यामि वोऽधुना ।
महर्षयस्तच्छृण्वन्तु तत्त्वेन शुभदं परम् ।।४।।

मार्कण्डेय बोले- हे महर्षियों! अब मैं आप सबसे इस अत्यन्त शुभदायक, महान् आख्यान को तत्वपूर्वक (पूर्णतः) कहूँगा, आप उसे तत्व से (गम्भीरता से) सुनें ।।४।।

एतदौर्वं पुरा राजा सगरः पृष्टवान्मुनिम् ।
स तं यथा समाचष्ट तद्वोऽथ निगदाम्यहम् ।।५।।

प्राचीनकाल में इस प्रसङ्ग को राजा सगर ने और्वमुनि से पूछा था । उन्होंने इसे उस समय जिस रूप में उन राजा से कहा (बताया) था, अब मैं वही आप लोगों से कहता हूँ ।।५।।

पुराभूत् सोमवंशे च सगरो नाम पार्थिवः ।
स श्रीमान् बलवान् दक्षः सर्वशास्त्रार्थपारगः ।।६।।

प्राचीनकाल में चन्द्रवंश में एक सगर नाम के राजा हुये जो श्री (धन) से युक्त, बलवान्, चतुर तथा सभी शास्त्रों के अर्थज्ञान में पारङ्गत थे ।।६।।

सोऽभूदेकरथेनैव जित्वा सर्वान् महीभुजः ।
सार्वभौमो नरपतिः सर्वराजगुणैर्युतः ।।७।।

वे एकरथ से ही सभी राजाओं को जीतकर, सभी राजोचित गुणों से युक्त होकर, सार्वभौम राजा हुये ।।७।।

तं प्राप्तराज्यं राजानं सगरं पार्थिवोत्तमम् ।
सभाजयितुमत्यर्थं मुनयः समुपागताः ।।८।।

राजाओं में श्रेष्ठ, उस राजा सगर के राज्य प्राप्त कर लेने पर उनका अत्यधिक समादर करने हेतु मुनिगण (उनके यहाँ) पधारे ।।८।।

प्राच्योदीच्या महात्मानो दाक्षिणात्यास्तथोत्तराः ।
मुनयो ब्राह्मणाश्चैव नृपं द्रष्टुं समागमन् ।।९।।

उस समय पूर्वोत्तर, दक्षिण तथा उत्तर दिशाओं से मुनिगण, महात्मा लोग तथा ब्राह्मणवर्ग राजा को देखने के लिए आये ।।९।।

आगतेष्वथ सर्वेषु महात्मा ज्वलनोपमः ।
और्वो नाम मुनिः श्रीमानागतो नन्दितुं नृपम् ।।१०।।

तत्पश्चात् उनसभी महात्माओं के आजाने पर अग्नि के समान देदीप्यमान, श्री (शोभा) से युक्त, और्व नामक मुनि, राजा को प्रसन्न करने के लिए वहाँ पधारे ।।१०।।

तमागतं मुनिं दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम् ।
सपर्यया महत्या तु सगरस्तमपूजयत् ।।११।।

जलती हुई अग्नि के समान प्रकाशमान उस मुनि को आया हुआ देखकर, राजा सगर ने महती सेवापूर्वक उनका पूजन किया ।।११।।

पाद्यमाचमनीयं च दत्त्वैवार्घपुरोगमम् ।
निवेशयामास च तं मुनिश्रेष्ठं वरासने ।।१२।।

उन मुनिश्रेष्ठ को पहले पाद्य (पाद प्रक्षालन हेतु जल), आचमनीय, एवं अर्घ देकर उन्होंने उन्हें श्रेष्ठआसन पर बैठाया ।।१२।।

उवाच च महात्मानमौर्वं स सगरो नृपः ।
प्रणम्य च यथायोग्यं कुशलं तु इति द्विजम् ।।१३।।

राजासगर ने द्विज, महात्मा, और्व को प्रणाम कर उनसे यथायोग्य कुशल-प्रश्न पूछा ।।१३।।

स च प्राह मुनिश्रेष्ठो नरराज सदा मम ।
सर्वत्र कुशलं त्वां तु द्रष्टुं कुशलमुत्सहे ।।१४।।

तब उन मुनिश्रेष्ठ ने कहा–हे नरराज ! मेरा सदैव सब जगह कुशल है। मैं आपका कुशल देखने की कामना करता हूँ ॥१४॥

त्वत्तः कोन्योऽस्ति कुशली पृथिव्यां सर्वराजसु ।
य एकः सञ्जिगायाशु भवान् सकलपार्थिवान् ।।१५।।

पृथिवी पर सभी राजाओं में तुमसे अधिक कुशल कौन हैं ? अर्थात कोई नहीं है क्योंकि तुमने अकेले ही शीघ्रतापूर्वक सभी राजाओं को जीत लिया है ॥१५॥

कुशलं वर्धतां नित्यं तव राजवरोत्तम ।
यथा नीत्या सदाचारैः पृथिवीं शाधि भूपते ।।१६।।

हे श्रेष्ठराजाओं में उत्तम ! तुम्हारी कुशलता जिससे नित्य बढ़ती रहे। ऐसी ही नीति से तुम सदाचारपूर्वक पृथ्वी का शासन करो ॥१६॥

तव वृद्धौ जगद्वृद्धिर्वृद्धौ चेष्टां ततः कुरु ।
शुभ्रांशुवृद्धौ सततं सागरस्येव वर्धनम् ।।१७।।

तुम्हारी वृद्धि से ही जगत् की वृद्धि है अतः इसी दिशा में दृढ़तापूर्वक प्रयत्न करो क्योंकि चन्द्रमा के विकास से ही निरन्तर सागर की वृद्धि होती है ॥१७॥

प्रथमं सद्गुणैरात्मा क्रियतां नृप योजनम् ।
ततः स्वभार्या महिषी क्रियतां तद्गुणैर्युता ।।१८।।

हे राजन् ! पहले अपने आपका सद्गुणों से संयोजन कीजिये, तत्पश्चात् अपनी पत्नी, महारानी को उन्हीं गुणों से युक्त कीजिये ॥१८॥

नित्या संयोजिता चेत् स्याद्वनिता स्वयमेव हि ।
स्वगुणेषु प्रवेक्ष्यन्ती महत्यपि धृतव्रता ।।१९।।

यदि स्त्री स्वयं ही नित्यगुणों में संयुक्त हो तो शम्भु में मन लगाये हुये महान् धैर्यव्रतधारिणी अपने गुणों में प्रवेश कर जाएगी ॥१९॥

श्रूयते हिमवत्पुत्री शम्भुसंगतमानसा ।
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिः शम्भुना सा प्रयोजिता ।।२०।।
ततोऽतिमहता प्रेम्णा शङ्करस्याथ पार्वती ।
शरीरमर्धमहरत्तस्यैवानुमते सती ।।२१।।

सुना जाता है कि हिमालय की पुत्री पार्वती जिसका मन सदैव शिव में लगा रहता था। शिव के द्वारा बहुत सी क्रियाओं एवं उपायों द्वारा प्रायोजित की गईं। शिव पार्वती में बहुत अधिक प्रेम होने के कारण, उन्हीं की आज्ञा से सती पार्वती ने शिव के शरीर के आधे भाग को प्राप्त कर लिया ॥२०-२१॥

अर्धनारीश्वरस्तेन तदा प्रभृति शङ्करः ।
अभवन् नृपशार्दूल नान्यां भार्यां गृहीतवान् ।।२२।।

हे राजाओं में शार्दूल के समान श्रेष्ठ ! तब से ही भगवान् शङ्कर अर्ध नारीश्वर हो गये तथा उन्होंने अन्य किसी को भी ग्रहण नहीं किया ॥२२॥

तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र स्वजायामात्मनोत्तरे ।
गुणैः संयोजय लघुं संयोजय ततः सुतम् ॥२३॥

हे राजेन्द्र ! इसलिए आप भी अपने श्रेष्ठगुणों से शीघ्र ही अपनी पत्नी को युक्त करो, तत्पश्चात् अपने पुत्र को उससे कम गुणों से संयोजित करना ॥२३॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥

इत्यौर्वभाषितं श्रुत्वा सगरोऽपि मुदान्वितः ।
इदं मुनिमपृच्छत् स नृपतिः स्मितसन्ततः ॥२४॥

मार्कण्डेय बोले–और्वमुनि के इस कथन को सुनकर प्रसन्नतापूर्वक मुस्कुराते हुए, उस राजा सगर ने उन मुनि से इस प्रकार पूछा ॥२४॥

॥ सगर उवाच ॥

कथं सा गिरिजा देवी कायार्धमहरत् सती ।
शङ्करस्य द्विजश्रेष्ठ तदहं श्रोतुमुत्सहे ॥२५॥

सगर बोले– हे द्विज श्रेष्ठ ! सती गिरिजा देवी ने कैसे शङ्कर के अर्धशरीर को धारण किया ? उसे मैं सुनने की इच्छा रखता हूँ ॥२५॥

नीत्या यया वा योक्तव्या स्वात्मा भार्या सुतोऽथवा ।
तां नीतिं च सदाचारसंहितां श्रोतुमुत्सहे ॥२६॥

जिस नीति के द्वारा अपने को, अपनी पत्नी को या पुत्र को गुणों से युक्त किया जा सकता है, उस नीति को तथा सदाचारसंहिता को मैं सुनना चाहता हूँ ॥२६॥

राजनीतिं सतां नीतिमन्येषां च कृतात्मनाम् ।
पृथक् पृथक् श्रोतुमिच्छुरहं त्वां नाथये द्विज ॥२७॥

हे द्विज ! राजनीति तथा कृतात्मा लोगों द्वारा दूसरों के प्रति अपनाई गई नीति को अलग-अलग सुनने का इच्छुक हो, मैं आप से प्रार्थना कर रहा हूँ ॥२७॥

यदि गुह्यमिदं ब्रह्मन्न तदा श्रोतुमुत्सहे ।
तथा नाज्ञापयामि त्वां श्रोतुमिच्छुश्च तत्समम् ।
कृपया कथनीयं चेत्तदा कथय तन्मुने ॥२८॥

हे मुनि ! हे ब्रह्मन् ! यदि यह (उपर्युक्त प्रश्न) गोपनीय न हो तो आपसे इसे सुनना चाहता हूँ। उन सबको सुनने की इच्छा रखने वाला मैं, ऐसा करने (सुनाने) के लिए आपको आज्ञा भी नहीं देता तथापि यदि कहने योग्य हो तो आप उसे कृपा करके कहिये ॥२८॥

।। मार्कण्डेय उवाच ।।

इत्येवं सगरेणोक्तमौर्वोऽपि द्विजसत्तम ।
प्रत्युवाच महात्मानं कृपालुस्तत्र भूपतौ ।।२९।।

मार्कण्डेय बोले– हे द्विजसत्तम ! उस समय सगर के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर कृपालु और्वमुनि ने महान् आत्मा वाले, राजा को उत्तर देते हुए कहा ।।२९।।

।। और्व उवाच ।।

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यद् यत् पृष्टमिह त्वया ।
यथा हरस्य तन्वर्धं भूभृत्पुत्री पुराहरत् ।।३०।।

हे राजन् ! जो-जो आप द्वारा पूछा गया है, उसे मैं बताऊगाँ । आप उसे ध्यान से सुनो कि किस प्रकार पर्वतराजहिमालय की पुत्री, पार्वती ने प्राचीनकाल में शङ्कर के अर्धाङ्ग को ग्रहण किया ।।३०।।

यथा नीतिस्त्वया कार्या यत्र यत्र नृपोत्तम ।
सर्वेषां च सदाचारं क्रमाद् वक्ष्यामि तच्छृणु ।।३१।।

हे राजाओं में उत्तम ! जहाँ-जहाँ तुम्हें जिस नीति का प्रयोग करना चाहिये उसे तथा सबके द्वारा आचरण करने योग्य सदाचार, मैं क्रमशः कहूँगा, उसे सुनो ।।३१।।

यदोढा हिमवत्पुत्री शङ्करेण महात्मना ।
कियन्तं स तदा कालं तत्र निन्ये समोमया ।।३२।।

जब हिमालय की पुत्री, पार्वती का महात्मा शङ्कर से विवाह हो गया तो उन (शिव) ने उस समय वहीं, उन्ही उमा के साथ अपना कुछ समय व्यतीत किया ।।३२।।

रममाणस्तया सार्धं सानौ कुञ्जे दरीषु च ।
विजहार चिरं तत्र पार्वतीं मोदयन् हरः ।।३३।।

उस समय, उन पार्वती के साथ पर्वत-शिखरों पर, कुञ्जों में, गुफाओं में पार्वती को आनन्दित करते हुये भगवान शङ्कर ने बहुत समय तक विहार किया ।।३३।।

अथ काले तु सम्प्राप्ते शम्भुः कैलासपर्वतम् ।
सगणो भार्यया सार्धमगच्छत्त्रिदिवोपमम् ।।३४।।

इसके बाद, समय आने पर शिव, अपने गणों एवं पत्नी सहित, स्वर्ग के समान श्रेष्ठ, अपने कैलाशपर्वत पर चले गये ।।३४।।

स तया क्रीडमानश्च त्यक्तध्यानात्मचिन्तनः ।
तद्वक्त्रचन्द्रे नेत्राणि चकोरानिव चाकरोत् ।।३५।।

उनके साथ क्रीड़ा करते हुए वे अपने आत्मचिन्तनमय ध्यान को छोड़कर उनके मुखरूपी चन्द्रमा हेतु अपने दोनों नेत्रों को चकोर बनाये रहते थे अर्थात् एकटक पार्वती के मुख को ही देखा करते थे ।।३५।।

पुष्पाणि क्वचिदाहृत्य गिरिजां प्रति शङ्करः ।
सर्वाङ्गसङ्गिनीं मालां विदधेऽतिमनोहराम् ।।३६।।

शङ्कर कभी पुष्पों को लाकर गिरिजा (पार्वती) के लिए अङ्गों की शोभा बढ़ाने वाली अत्यन्तसुन्दरमाला की रचना करते ।।३६।।

कदाचिदादर्शतले युगपच्चात्मनो मुखम् ।
मुखं तथैवापर्णाया: वीक्षाञ्चक्रे वृषध्वज: ।।३७।।

वृषध्वजशिव कभी दर्पण में एक साथ पावर्ती के सहित अपना मुँह देखते तो कभी उसी भाँति अपने सहित पार्वती का मुँह देखते ।।३७।।

कदाचिन्मृगनाभीनां विलेपैर्गन्धिपत्रकम् ।
तस्या घनस्तनयुगे विलिलेख स्मरान्तक: ।।३८।।

स्मर (कामदेव) का अन्त करने वाले वे शिव, कभी मृग की नाभि से उत्पन्न, कस्तूरी नामक पदार्थ से युक्त चन्दन के लेप से उनके दोनों पुष्टस्तनों पर चित्र बनाते थे ।।३८।।

गन्धसारविलेपेन तिलकान्यम्बिकातनौ ।
ललाटे चाकरोच्चारु चन्द्रवद्घनसन्धिषु ।।३९।।

वे कभी अम्बिका (पार्वती) के शरीर और ललाट पर चन्दन के लेप से बादलों के बीच चन्द्रमा की भाँति सुन्दर चिन्हों का अङ्कन करते[1] ।।३९।।

उमानिर्यासिसंसक्तकेशपाशेषु चित्रकम् ।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुंकुमस्य विलेपनै: ।।४०।।
चकार येन तस्यास्तु केशपाशो व्यराजत ।
नर्तनायावतीर्णस्य शिखिपुच्छस्य साम्यधृक् ।।४१।।

चित्रक वृक्ष के रस (गोंद) से गुँथे ,हुए उमा (पार्वती) के केशों को वे चन्दन, अगर, कस्तूरी और कुंकुम के विलेपन से जब चित्रित करते तो वे केशपाश, नाचने के लिए उद्यत, मोर के पखों की समानता रखते हुए शोभायमान होते थे ।।४०-४१।।

जाम्बूनदमयाञ् शुद्धान् कुण्डलाद्यान् मनोहरान् ।
अलङ्कारानुमा देहे समाकार्षीद् वृषध्वज: ।।४२।।

वृषध्वजशिव, शुद्धस्वर्ण जाम्बूनद, के बने सुन्दर आभूषणों को पार्वती के अंगों पर सजाते थे ।।४२।।

तैर्जाम्बूनदसम्भूतैर्योजितैर्गिरिजातनु: ।
विभाति जलदापूर्णे कालिकेव तडिद्गणै: ।।४३।।

उस समय स्वर्णिम आभूषणों से युक्त उन गिरिजा का शरीर, बिजलियों से परिपूर्ण, काले बादलों की भाँति सुशोभित होता था ।।४३।।

सर्वैर्दिव्यैरलङ्कारैर्नानारत्नैः सदंशुकैः ।
सम्पूर्णमण्डिता काली सादृश्यं प्रकृतेर्दधौ ।।४४।।

उस समय, उत्तम वस्त्रों, अनेक रत्नों तथा सब प्रकार के दिव्यअलङ्कारों से पूर्णरूप में सजी हुई भगवती काली (पार्वती), पराप्रकृति की सौन्दर्यमयी समता को धारण करने लगीं ।।४४।।

एवं सदा सानुरागस्तस्यां शम्भुर्जगत्पतिः ।
जगद्धिताय चिक्रीड काल्या दयितया सह ।।४५।।

जगत् के स्वामी भगवान् शिव, संसार के कल्याण हेतु, उस अपनी पत्नी काली के साथ, इस प्रकार से सदैव प्रेमपूर्वक क्रीड़ा करते रहे ।।४५।।

काली च जगतां माता महामाया जगन्मयी ।
योगनिद्रा जगद्बुद्धिर्विद्याविद्यात्मिकाखिला ।।४६।।
प्रकृतिः परमामूर्तिः सर्गान्तस्थितिकारिणी ।
सम्मोह्य शङ्करं यत्नाज्जगतां च हितैषिणी ।
रेमे तेन समं देवी चन्द्रिकेव सुधांशुना ।।४७।।

जगत् की माता, महामाया, स्वयं जगत्स्वरूपा, योगनिद्रा, जगतकी बुद्धि, विद्या और अविद्या, सबकी आत्मस्वरूपा, पराप्रकृति, सर्वश्रेष्ठ रूपवाली, सबकी सृष्टि-पालन और अन्त करने वाली तथा संसार का हित चाहने वाली, काली ने यत्नपूर्वक भगवान् शङ्कर को मोहित कर, उनके साथ उसी प्रकार रमण किया जैसे चन्द्रिका, सुधांशु (चन्द्रमा) के साथ करती है[1] ।।४६-४७।।

अथैकदा स्मरहरः कैलासाग्रे सहोमया ।
रममाणो मुदा युक्तो ददृशेऽप्सरसः शुभाः ।।४८।।
रूपयौवनसम्पन्नाः सर्वलक्षणसंयुताः ।
तासां मध्यगता वेश्या उर्वशी च मनोहरा ।।४९।।

एक बार कैलाश के शिखर पर उमा के साथ प्रसन्नतापूर्वक रमण करते हुए, स्मरहर (कामारि भगवान् शङ्कर) ने रूपयौवन से सम्पन्न, सभी लक्षणों से युक्त, शुभदायिनी, सुन्दरी, अप्सराओं को तथा उनके बीच मन को हरण करने वाली उर्वशी नामक वैश्या (अप्सरा) को देखा ।।४८-४९।।

ताः सर्वा रक्तगौराङ्ग्यः सर्वालङ्कारभूषिताः ।
मुनीनां च मनोऽत्यर्थं शक्ता मोहयितुं हठात् ।।५०।।

वे सभी लालिमायुक्ता, गोरेरङ्ग की, सभी अलङ्कारों से सुशोभित तथा मुनियों के भी मन को बरबस मोहने में समर्थ थीं ।।५०।।

ताः प्रणम्य हरं दृष्ट्वा गिरिजां च मनोरमाम् ।
अग्रे प्राञ्जलयस्तस्थुस्तद्धीतिनतमस्तकाः ।।५१।।

वे अप्सरायें हर (शिव) तथा सुन्दरीगिरिजा को देखकर उनके सम्मुख भय एवं विनम्रतावश हाथ जोड़कर, खड़ी हो गईं ॥५१॥

अथ प्राह तदा भर्गः पार्वतीमिदमद्भुतम् ।
तासां समक्षं तस्यां तु भाषितुं स्याद् यदप्रियम् ॥५२॥

तब इसके बाद भर्ग (शिव) ने, उन अप्सराओं के सामने ही उन पार्वती से ये अद्भुत वचन कहे, जो अप्रिय भी थे ॥५२॥

॥ भर्ग उवाच ॥

कालि भिन्नाञ्जनश्यामे उर्वश्याद्यप्सरोगणैः ।
त्वयेह स्त्रीस्वभावेन संलापः क्रियतामिति ॥५३॥

भर्ग (शिव) बोले– हे अञ्जन (काजल) के टुकड़े के समान कालेरङ्ग वाली, काली ! स्त्रीस्वभाववश तुम, इस समय इन उर्वशी आदि (गौराङ्गी) अप्सराओं से संलाप (वार्तालाप) करो ॥५३॥

॥ और्व उवाच ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य यथायोग्यं च सोर्वशी ।
अप्सरसः समाभाष्य विसृष्टा गिरिजा तया ॥५४॥
अथ सा क्रोधवशगा पार्वती भर्गभावितात् ।
काली भिन्नाञ्जनश्यामेत्युदिता ह्यभवत् क्षणात् ॥५५॥

और्व बोले– उन शिव के इस वचन को सुनकर, उर्वशीसहित उन अप्सराओं के साथ यथोचित वार्तालाप कर, उन्हें अपने द्वारा विदाकर दिये जाने के बाद, क्षण भर में ही वह पार्वती (शिवद्वारा) 'काजल के टुकड़े के समान काली' कहे जाने से क्रोधित हो गई ॥५४-५५॥

सा चाप्सरसां पुरतो वर्णोद्देशविकत्थनम् ।
न सेहे मन्युना युक्ता गिरिजेन्दुकलाभृतः ॥५६॥

अपने रंग को लक्ष्यकर, चन्द्रकला को धारण करने वाले, शिव की अप्सराओं के सम्मुख व्यंग्योक्ति को पार्वती, क्रोध से मुक्त होने के कारण सह न सकीं ॥५६॥

अथ सा रोषसंयुक्ता त्यक्त्वा वृषभवाहनम् ।
अपह्नुते शैलसानौ रोषापह्नुतिमागता ॥५७॥

इसके बाद वे क्रोध से युक्त हो, अपने क्रोध को बिना प्रकट किये ही, वृष-वाहन शिव को छोड़ किसी अज्ञात शिखर पर चली गईं ॥५७॥

मार्गमाणोऽथ विरहव्याकुलो वृषवाहनः ।
नाससाद कियत्कालं पार्वतीं पर्वतोत्तमे ॥५८॥

तत्पश्चात् कुछ समय तक विरहसे व्याकुल हो उस उत्तमपर्वत पर खोजते हुए भी वृषवाहनशङ्कर पार्वती को न प्राप्त कर सके ॥५८॥

विरहव्याकुलं ज्ञात्वा स्वयं सा पार्वती हरम् ।
आत्मानं दर्शयामास गिरसानावपह्नुते ॥५९॥

तब शिव को विरह से व्याकुल जानकर, उन पार्वती ने स्वयं उन्हें गुप्त पर्वत पर अपने आपको दिखाया ॥५९॥

तामासाद्य ततः शम्भुः किमर्थमभजः प्रिये ।
मानं मनोनुदं देवि विशीर्ण इव चाब्रवीत् ॥६०॥

तब उन्हें प्राप्तकर "हे प्रिये ! तुमने क्यों मुझे छोड़ दिया ? हे देवि ! अब तुम मन से मान को हटा दो, ऐसा शिव ने दीन की भाँति कहा ॥६०॥

॥ शिव उपाच ॥

भर्तुर्रागः पुरन्ध्रीणां मानग्रहणकारणम् ।
तद्विना ग्रहणात्तस्य भीरु प्राप्नोति वाच्यताम् ॥६१॥

शिव बोले–पति का प्रेम ही सौभाग्यवती स्त्रियों के मानग्रहण (रूठने) का कारण होता है । अनुराग के बिना वह रूठना, उससे डरने वाले के लिए केवल कथनमात्र ही रह जाता है ।

तस्मात् किमर्थमकरो रोषं त्वं जलजानने ।
तदाचक्ष्व द्रुतं कान्ते मनो मे न प्रसीदति ॥६२॥

अतः हे कमल के समान मुखवाली, हे प्रिये ! तुम शीघ्र बताओ, अन्यथा मेरा मन प्रसन्न नहीं हो पा रहा है ॥६२॥

॥ और्व उवाच ॥

इत्युक्त्वा शङ्करो देवीं तामालिङ्गितुमुद्यतः ।
काली तं वारयामास वचनं चाब्रवीदिदम् ॥६३॥

और्व मुनि बोले– ऐसा कह कर भगवान शङ्कर उन देवी का आलिङ्गन करने को उद्यत हो गये । तब काली ने उन्हें ऐसा करने से रोका और यह वचन कहा ॥६३॥

॥काल्युवाच ॥

न दृष्टपूर्वा किमहं येन भिन्नाञ्जनोपमा ।
क्रियते मयि भूतेश भवताप्सरसां पुरः ॥६४॥

काली बोलीं– हे भूतों के स्वामी ! क्या मैं आपके द्वारा पहले नहीं देखी गई थी, जो अप्सराओं के सामने आपके द्वारा मेरी तुलना काजल के टुकड़े से की गई ॥६४॥

जातिहीनं वृत्तिहीनं रूपहीनमदक्षिणम् ।
हीनांगमतिरिक्ताङ्गं तेन दोषेण नाक्षिपेत् ।।६५।।

जाति की दृष्टि से हीन, जीविका से हीन, रूप से हीन (कुरूप), अदक्षिण (मूर्ख), अङ्गों से हीन, अतिरिक्तअंगोवाले को उसके दोष के कारण आक्षेप नहीं लगाना चाहिये ।।६५।।

इति ब्रह्मा पुरा प्राह वैदौघार्थाविनिश्चयम् ।
तं चावमन्य भवता परिहासोऽभ्यभाष्यत ।।६६।।

वेदों के समूह के अर्थ का निश्चय करते हुए प्राचीन काल में ब्रह्मा ने ऐसा कहा था । आप द्वारा, (ब्रह्मा के) उस कथन की अवमानना करते हुए परिहास में ऐसा कहा गया है ।।६६।।

यावन्न मे शरीरस्य भवित्री स्वर्णगौरता ।
न समेष्ये त्वया तावदिति सत्यं ब्रवीमि ते ।।६७।।

अत: जब तक मेरे शरीर की स्वर्णिम गोराई नहीं हो जायेगी तबतक मैं आपको प्राप्त नहीं होऊँगी । यह मैं आपसे सच-सच बता रही हूँ ।।६७।।

शरीरगौरतां शम्भो न समेष्ये त्वया विना ।
तत्र मे शृणु सन्धाय आत्मनः शिरसा शपे ।।६८।।

हे शम्भु ! शरीर की गोराई के विना मैं आपको प्राप्त नहीं हूँगी । इस लिए मेरी सुनें तो मेरे मिलाप के लिए आपको, अपने आपको माथा पीटकर कोसना होगा ।।६८।।

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्त्वा सा तदा देवी तस्यैव पुरतो ययौ ।
महाकोषीप्रपाताख्यं हिमवत्सानुमुत्तमम् ।।६९।।

और्व बोले– तब ऐसा कहकर देवी, उन (शिव)के सामने ही हिमालय के महाकोपीप्रपात नामक उत्तमशिखर पर चली गईं ।।६९।।

महादेवोऽपि तां भाव्यं ज्ञानेन कृतनिश्चयम् ।
अर्थं ज्ञात्वा तदापर्णां सर्वज्ञो नाप्यवारयत् ।।७०।।

अपने ज्ञान के द्वारा उसे होनी मानकर, सब कुछ जानने वाले, महादेव ने उस समय अपर्णा (पार्वती) को भी, उनके प्रयोजन को समझकर नहीं रोका ।।७०।।

।। कालीतपवर्णन ।।

सा गत्वा पूर्ववत्तत्र शम्भुसङ्गतमानसा ।
शतमाराधयामास वर्षाणि वृषभध्वजम् ।।७१।।

वे वहाँ जाकर शिव में अपना मन लगाकर पहले की ही भाँति सौ वर्षों तक भगवान शिव की आराधना कीं ।।७१।।

एकं पादं समुत्क्षिप्य वामेनाक्रम्य सा क्षितिम् ।
उत्तराभिमुखी भूत्वा निराहारा निरन्तरम् ।।७२।।

वे एक (दाहिना) पैर उठाकर, दूसरे (बायें) पैर से पृथिवी को आक्रान्तकर, उत्तरदिशा में मुँह किये हुए, निरन्तर, निराहार रहकर आराधना की ।।७२।।

वैयाघ्रचर्मवसना सोर्ध्वमूर्द्धानना सती ।
ज्योतिर्मयं परं शान्तं शिवं शिवकरं वरम् ।
आत्मस्वरूपतत्त्वज्ञा तत्त्वेनाराधयद्धरम् ।।७३।।

व्याघ्र के चमड़े के बने हुए परिधान को धारण कर, ऊपर की ओर मुँह की हुई, आत्मस्वरूप के तत्व को जाने वाली, उन सती (काली) ने श्रेष्ठ, परम शान्तिकारक, ज्योतिर्मय, कल्याणकारी, शिव की तत्वपूर्वक (यथार्थ रूप से) आराधना किया ।।७३।।

तां चिन्तयन्तीं परमनिश्चलां तत्त्वमानसाम् ।
मेने मुनिगणः स्थाणुर्यो न जानाति तत्त्वतः ।।७४।।
एवं तस्यास्तपस्यन्त्या जग्मुर्वर्षाणि वै शताम् ।
अन्येषां च यथा शश्वदेकं नृपतिसत्तम ।।७५।।

जो मुनि उन्हें यथार्थ रूप में नहीं जानते थे, उन्होंने परम निश्चल हो, मन में तत्व का चिन्तन करती हुई, उनको काष्ठ ही माना । हे नृपसत्तम ! इस प्रकार (अन्यों की अपेक्षा निरन्तर अकेले ही) ! तपस्या करते उनके एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये ।।७४-७५।।

ततस्तां शतवर्षान्ते शङ्करो योगतत्परः ।
आत्मानं दर्शयामास क्रमादेकं स सत्रयम् ।।७६।।

तब सौवें वर्ष के अन्त में, योग में लगे हुए भगवान् शंकर ने उनको अपने तीनों रूपों को साथ-साथ और क्रमशः एक-एक करके दिखाया ।।७६।।

प्रथमं दर्शयामास ब्रह्माणं च हरिं ततः ।
ततस्तु शाम्भवं देहं ततस्तेषामथैकताम् ।।७७।।
ज्योतिर्मयत्वं शुद्धत्वं सर्वेषां हेतुतां तथा ।।७८।।

उन्होंने पहले ब्रह्मा के रूप को दिखाया, तत्पश्चात विष्णु के रूप को तदनन्तर अपने शिवस्वरूप को दिखाया । इनके बाद उन तीनोंरूपों की एकता, ज्योतिर्मयता, शुद्धत्ता और सबके कारणरूप का दर्शन कराया ।।७७-७८।।

ततस्तु शम्भुरूपं स दर्शयामास शङ्करः ।
योगनिद्रां महामायां योगिनीं कालिकाम्बिकाम् ।।७९।।

तब उन शंकर ने अपने शम्भुस्वरूप का पुनः दर्शन तथा योगनिद्रा, महामाया, योगिनी, अम्बिका, नामों वाली देवी का दर्शन कराया ।।७९।।

प्रथमं दर्शयित्वा तु तस्याः प्रकृतिरूपताम् ।
पश्चात् सा पार्वतीत्येव क्रमात्तस्या अदर्शयत् ।।८०।।

इस क्रम में उन्होंने पहले उन अम्बिका के पराप्रकृतिरूप का दर्शन कराया तदनन्तर क्रमशः अनेक रूपों को दिखाते हुए वे ही पार्वती हैं, ऐसा उन पार्वती को दर्शन कराया ।।८०।।

तपसा सम्भृतेनाशु ज्ञानमासाद्य पार्वती ।
अन्तर्दृष्ट्या बहिर्दृष्ट्या तत्त्वं ज्ञात्वा यथातथम् ।।८१।।

अपनी समस्त तपस्या से पार्वती ने शीघ्र ज्ञानप्राप्त कर, आन्तरिक एवं बाह्य दोनों ही दृष्टियों से यथार्थतत्व को जान लिया ।।८१।।

शम्भुं जगन्मयं मेने तथात्मानं जगन्मयीम् ।
ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चापि ततः सर्वमिदं जगत् ।।८२।।

तब उन पार्वती ने शम्भु को जगन्मय एवं स्वयं को जगन्मयी माना, जिनसे समस्त जगत् और ब्रह्मा-विष्णु-महेश की उत्पत्ति हुई है ।।८२।।

अहं समस्तप्रकृतिर्योगनिद्रा तथा सती ।
इति ध्यानेन सा देवी प्राप्य ध्यानं तदात्यजत् ।
उन्मील्य नयनद्वन्द्वं बहिः शम्भुं ददर्श च ।।८३।।

तब मैं ही समस्त प्रकृति, योगनिद्रा, और सती हूँ, यह तथ्य ध्यानद्वारा जानकर, उन देवी ने तपस्यागत ध्यान को छोड़ दिया और अपने दोनों नेत्रों को खोलने पर शम्भु को बाहर की ओर प्रत्यक्ष उपस्थित देखा ।।८३।।

सा दृष्ट्वा शङ्करं देवं देवदेवमुमापतिम् ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्यमिनं योगतत्परम् ।।८४।।

उस समय उन्होंने देवों के देव, उमापति, योग में तत्पर, भगवान् शंकर को देखा तथा उन सयंमीदेव की इच्छितवाणी से स्तुति की ।।८४।।

।। पार्वत्युवाच ।।

नमस्ते जगतां नाथ नमस्ते केशवाव्यय ।
प्रधानपुरुषातीत कारणत्रयकारण ।।८५।।

पार्वती बोली– हे जगत् के स्वामी, हे केशव, हे अव्यय, प्रधान और पुरूष से भी परे, तीनों ही कारणों के कारण, आपको नमस्कार है ।।८५।।

योगमोहमनोराग - धर्माधर्ममयस्तथा ।
विद्याविद्यास्वरूपश्च शाम्भवः काय एष ते ।।८६।।

आपका यह शिव-शरीर, योग, मोह, मानसिक राग, धर्म-अधर्ममय तथा विद्या और अविद्या का स्वरूप है ।।८६।।

त्वं निःश्रेयः श्रेयसा युज्यमानो
दृश्योऽदृश्यो योगमूर्तिर्मनीषी ।
सम्यक् श्रद्धा पौरुषे तत्त्वरूपं
त्वं वै ज्योतिःशान्तिरूपं पुरस्तात् ।।८७।।

आप ही श्रेय से युक्त और निश्रेयस हैं, आप दृश्य, अदृश्य भी हैं। आप योगस्वरूप मनीषी, सम्यक्श्रद्धा और पुरुषार्थ से युक्त तत्वरूप हैं। आप अग्रगामी शान्तिरूप, ज्योतिरूप हैं ।।८७।।

ब्रह्मा विष्णुस्त्वं हरस्त्वं महेन्द्रः
सूर्यः सोमो वायुरग्निर्धनेशः ।
त्वं तोयेशः शमनो राक्षसश्च
शेषस्त्वत्तो विद्यते कोऽपि नास्मिन् ।।८८।।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, महेन्द्र, सूर्य, सोम (चन्द्रमा), वायु, अग्नि, धनेश (कुबेर), तोयेश (वरुण), शमन (यम), राक्षस (निऋती) आप ही हैं। आप से अतिरिक्त यहाँ कोई नहीं है ।।८८।।

त्वं भूमिर्द्यौर्द्युसदां चापि पन्था-
स्त्वं स्थावरो जङ्गमो भूर्वलस्थः ।
ज्ञानं ज्ञेयं ध्यानगम्यं च तत्त्वं
परात्परं व्यक्तरूपं परेषाम् ।।८९।।

आप भूमि, आकाश, आकाश में रहने वालों के मार्ग भी आप हैं। पृथिवीवलय में स्थित जो भी स्थावर जङ्गम है, वह आप ही हैं, आप ही ज्ञान की क्रिया तथा उसके द्वारा जाने-जाने वाले विषय हैं। ध्यान द्वारा जाना-जाने वाला, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ, दुर्लभ तत्वों में भी व्यक्ततत्व आप ही हैं ।।८९।।

त्वं पुरुषः परमात्मा प्रधानं
त्वं हि ज्यायानागमो ज्ञानगम्यः ।
भावः कृत्यं पञ्चरूपी समस्तै-
रासाद्यस्ते गोचरास्तद्भवाय ।।९०।।

आप प्रधानपुरुष परमात्मा हैं। क्योंकि आपही महान् आगमों के ज्ञानद्वारा जाने जानेवाले हैं। जो भी इन्द्रिय से जाने-जानेयोग्य है, वह आप से ही उत्पन्न है ।।९०।।

कीर्तिः कीर्त्यः स्तुत्यरूपी स्तुतिश्च
द्रष्टा दृश्यः स्थैर्यधृक् स्थावरश्च ।
नित्योऽनित्यो मुक्तयोगो वियोगो
दानादाने भेदसामप्रयोगः ।।९१।।

कीर्ति और कीर्तिमान, स्तुति और स्तुतियोग्य, देखने वाले एवं देखे जाने वाले, स्थिरता को धारण करने वाले और नित्य-अनित्य, योगों से मुक्ति लाभ पाने वाले तथा वियोगी, बिना दान के भी दान, साम प्रयोगों के साथ भेद आप ही हैं ॥९१॥

नीतिर्नेयो दीक्षितो दक्षिणाश्च
सारात् सारः संविधाता विधेयः ।
आर्योऽनार्यो रूपधृग्रूपहीनो
दिव्यो देवो मानुषोऽमानुषश्च ॥९२॥

आप ही नीति तथा नीति की उपलब्धि, दीक्षित और दक्षिणा, सारतत्व के सारभूत, संविधानकर्त्ता तथा उसके कर्म, श्रेष्ठ, हीन, रूपवान (साकार), रूपहीन (निराकार), दिव्य, देव, मनुष्य और मनुष्येतर सब कुछ आप ही हैं ॥९२॥

सृज्यः स्रष्टा पालकः पाल्यरूप-
श्चेता चेयो नोर्मियुक्तस्तथोर्मिः ।
विद्याविद्यावेदवादैकरूपो
रूपारूपस्तीक्ष्णसौम्यैकरूपः ॥९३॥

बनाये जाने वाले तथा बनाने वाले, पालन कर्ता और और पालित, चयन कर्ता एवं चयनित, तरंगित एवं तरंगहीन (स्थिर), विद्या-अविद्या, वेद-वाद, एकरूप, रूप-अरूप, तीक्ष्ण (उग्र)-सौम्य रूप आप ही हैं ॥९३॥

भावाभावः शोभनः शुद्धरूपी
शश्वद्दान्तः शान्तिरुग्रा मुनीनाम् ।
द्वन्द्वोऽद्वन्द्वः सर्वगोऽसर्वगश्च
भ्रान्तोऽभ्रान्तः सिद्धसिद्धिप्रदश्च ॥९४॥

आप भाव-अभाव, सुन्दर, शुद्धरूप, निरन्तरदान्त (दमन शील), शान्ति, उग्र, द्वद्व-अद्वन्द्व, सर्वत्रगामी, असर्वग (निश्चल) भ्रान्तिग्रस्त, भ्रान्तिहीन, सब बन जानेवाले, सब प्रकार के मुनियों को उनकी आंकाक्षा के अनुरूप सिद्धि-असिद्धि प्रदान करने वाले हैं ॥९४॥

एकस्थस्त्वं सर्वगोप्ता सुदेहो
निर्देहस्त्वं देह एकः सुराणाम् ।
स्थूलः सूक्ष्मो निर्विकारः शरीरी
विश्वात्मा त्वं नास्ति भिन्नो भवत्तः ॥९५॥

आप अकेले ही सुन्दर देह धारण किये या बिना देह के (निराकार) सभी देवों में एक मात्र देहरूप, स्थूल एवं सूक्ष्म, विकारों से रहित, शरीरधारी, सबकी आत्मा हैं। आप से भिन्न कुछ भी नहीं है ॥९५॥

कार्याकार्ये यस्य रूपे समस्ते
व्याप्याव्याप्ये भोगहीनोऽतिपूर्णः ।
योगज्ञानस्थात्मकं यस्य नित्यं
रूपं यस्य श्रीद तस्मै नमस्ते ।।९६।।

कार्य-अकार्य, व्याप्य-अव्याप्य, अखण्ड तथा भोगहीन, अत्यन्तपूर्ण, योगज्ञान में स्थित आत्ममय, श्रीदायी, नित्य, सभी जिसके रूप हैं, उन आपको नमस्कार है ।।९६।।

प्रधानपुंसोरपि यो विधाता
यः कालरूपी पुरुषः परेशः ।
तमीशमुग्रं वरदं वरेण्यं
नमामि चिन्नीतिवितानकं त्वाम् ।।९७।।

आप जो प्रधान और पुरुष के भी रचयिता, कालरूपी, परमईश्वर हैं, उस वरदायक, पूजनीय, ईश्वर, उग्र (शिव) को जो चित् और नीति दोनों के ही प्रस्तुतकर्ता हैं, मैं नमस्कार करती हूँ ।।९७।।

अक्षयो योऽव्ययः साक्षी क्षेत्रज्ञः क्षेत्रधृग्वरः ।
तस्मै नमस्ते विश्वात्मन् वृषध्वज महेश्वर ।।९८।।

जो अक्षय, अव्यय, साक्षी, क्षेत्र को जाननेवाले तथा उसको श्रेष्ठतापूर्वक धारण करने वाले, विश्वात्मरूप, महेश्वर, वृषध्वज हैं, उनको नमस्कार है ।।९८।।

ज्ञानामृतविनिस्यन्दि यस्य चिच्चन्द्रमाः सदा ।
तद्रूपमेकं यं ज्ञेयं भक्तिमात्रं नमोऽस्तु ते ।।९९।।

जिनके चित्त रूपी चन्द्रमा से सदैव ज्ञान-रूप अमृत, विशेष रूप से झरता रहता है, उन एकमात्र, केवल भक्ति से ही जाने-जाने योग्य शिव को नमस्कार है ।।९९।।

।। और्व उवाच ।।

इति स्तुतो महादेवः सर्वभूतानुकम्पकः ।
प्रसन्नवदनः प्राह पार्वतीं प्रतिहर्षयन् ।।१००।।

और्व बोले– इस प्रकार स्तुति किये जाने पर, सभी प्राणियों पर अनुकम्पा करने वाले, महादेव, प्रसन्नवदन हो, पार्वती को प्रसन्न करते हुए बोले ।।१००।।

।। ईश्वर उवाच ।।

प्रीतोऽस्मि देवि भद्रं ते वरं वरय वाञ्छितम् ।
तपसाप्यायितश्चाहं त्वया ब्रह्मा तथा हरिः ।।१०१।।

ईश्वर बोले–हे देवि ! मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा मङ्गल हो। अब अपना इच्छित वर माँगो। तुम्हारे द्वारा तपस्या से मुझे, ब्रह्मा और विष्णु को भी प्रसन्न कर लिया गया है।

तपसा त्वत्समो नास्ति शीलेन च गुणेन च।
त्वां विना न हि तृप्यामि प्रिये कुरु यथेप्सितम् ॥१०२॥

हे प्रिये ! इस समय तपस्या, गुण, शील में तुम्हारे समान कोई नहीं है। तुम्हारे बिना मुझे कोई तृप्त नहीं कर सकता अतः तुम अपना इच्छित सम्पन्न करो ॥१०२॥

ततः सा मोहिता प्राह मायया हिमवत्सुता।
जाम्बुनदाभगौरो मे देहो भवतु साम्प्रतम्।
अनन्यकान्तस्त्वं चापि भूया मत्तो विना हर ॥१०३॥

तब उन माया से मोहित हो हिमालय की पुत्री ने कहा— हे हर! "मेरा शरीर सोने के समान वर्ण का तत्काल हो जाय और आप भी मेरे अतिरिक्त किसी अन्य से प्यार करने वाले न होवें ॥१०३॥

एवमुक्तो महादेवः पार्वत्या पार्वती ततः।
आकाशगङ्गातोयौघे मज्जयामास भामिनीम् ॥१०४॥

तब पार्वती द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर महादेव ने तत्क्षण ही पर्वती को आकाशगंगा की जलराशि में स्नान कराया ॥१०४॥

सा निमज्ज्य समुत्तीर्णा विद्युद्गौरी व्यजायत।
सिताम्भोमध्यगा देवी शारदाभ्रे तडिद्यथा ॥१०५॥

वे देवी, पार्वती, चाँदनी के जल में स्नान करने के पश्चात् बिजली कीं भाँति गोरी होकर शरदऋतु के बदलों के मध्य आकाशीयबिजली की भाँति सुशोभित हो उठीं ॥१०५॥

शम्भुश्चाङ्गीचकराशु नाहं त्वत्तो विना प्रिये।
मनसापि ग्रहीष्यामि नान्यां सत्यं ब्रवीमि ते ॥१०६॥

शिव ने भी उन्हें, हे प्रिये ! "मैं तुम्हारे बिना किसी अन्य को मन से भी नहीं ग्रहण करूँगा। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ" ऐसा कहकर शीघ्र ही उन्हें स्वीकार कर लिया ॥१०६॥

॥ और्व उवाच ॥

अथ तोयात् समुत्तीर्णा पार्वती मोदसंयुता।
तपःक्लेशपरित्यक्ता चन्द्रिकेव विधोर्यथा ॥१०७॥

तत्पश्चात् आकाशगङ्गा के जल से निकली और तपस्या के क्लेश से मुक्त हुई, पार्वती, चन्द्रमा की चाँदनी की भाँति प्रसन्न हो उठीं ॥१०७॥

अथ तां पार्वतीं देवीमादाय वृषभध्वजः ।
जगाम शैलं कैलासं स्वमाश्रमपदं लघु ॥१०८॥

तब उन पार्वतीदेवी को लेकर भगवान् शङ्कर शीघ्र ही, कैलाशपर्वत पर स्थित, अपने निवास स्थान को चले गये ॥१०८॥

तदा गत्वा हरो देवीमधिवास्य विभूष्य च ।
पूर्ववन्मोदयामास नर्महासकथादिभिः ॥१०९॥

तब भगवान् शङ्कर भी वहाँ देवी पार्वती को ले जाकर और बसाकर, उन्हें विभूषित कर (भस्म से सजाकर), पहले की ही भाँति उन्हें नर्म (कामुक) तथा हासकथाओं से प्रसन्न किये ॥१०९॥

सापि सौवर्णगौराङ्गी वीक्ष्य रूपं मनोहरम् ।
गृहीतसमयं शम्भुं प्राप्यातीव मुमोद ह ॥११०॥

उन पार्वती ने भी जो अब सोने के समान गौरवर्ण वाली हो गई थीं, अपने सुन्दररूप को देख तथा वचनबद्ध शिव को प्राप्तकर अत्यधिक प्रसन्नता को प्राप्त किया ॥११०॥

एवं तयोस्तु शिवयोरन्योन्यरममाणयोः ।
जगाम सुचिरं कालं कैलासे पर्वतोत्तमे ॥१११॥

इस प्रकार उस उत्तम कैलास पर्वत पर उनके एवं शिव के परस्पर रमण करते हुए बहुत समय बीत गये ॥१११॥

अथैकदा महादेवसमीपे हिमवत्सुता ।
आसीना ददृशे तस्य स्वां छायामुरसि स्थिताम् ॥११२॥

एक बार महादेव के समीप बैठी हुई हिमालय की पुत्री, पार्वती ने उनके हृदय में स्थित अपनी ही छाया को देखा ॥११२॥

स्फटिकाभ्रसमे स्वच्छे हृदि शम्भोर्मनोहरे ।
योगिज्ञानादर्शतले चार्वङ्गीं प्रतिबिम्बिताम् ॥११३॥
आत्मच्छायां गिरिसुता वामभागे मनोहरे ।
ददर्श वनितारूपं स्मितवक्त्रां मनोहराम् ॥११४॥

एक बार स्फटिक के बादल के समान, शिव के सुन्दर एवं स्वच्छ हृदय में, योगियों के आदर्शज्ञान तल में प्रतिबिम्बित, शिव के सुन्दर वामभाग में पत्नी के रूप में स्थित, मुस्कुराते मुखवाली, सुन्दर अंगोवाली, सुन्दरी, अपनी ही छाया को गिरिसुता, पार्वती ने देखा ॥११३-११४॥

भ्रान्त्या दृष्ट्याथ पार्वत्यास्तदा ज्ञानमजायत ।
कृतसत्योऽपि गिरिशः किमन्यां वनितां दधौ ।
मायया स्थापितां गात्रे वीक्षन्तीं कुटिलं च माम् ।।११५।।

तब भ्रमपूर्णदृष्टि के कारण, पार्वती को यह हुआ कि क्या शपथ के पश्चात् भी शिव ने किसी अन्य को अपनी पत्नी बना लिया है । जो माया से उनके शरीर में स्थित हो, अपनी कुटिल दृष्टि से मुझे देखरही है ।।११५।।

इति तस्यास्तदा वक्त्रं मलिनं भ्रुकुटीयुतम् ।
बभूव वृषकेतुश्च श्याम उत्पातको यथा ।।११६।।

ऐसा कहते ही उनका मुख काला पड़ गया, भौहें टेढ़ी हो गईं मानो उत्पात् का सूचक श्यामवर्ण का वह वृषकेतु हो ।।११६।।

सा दृष्ट्वाथ तदा छायां विष्णुमाया-विमोहिता ।
अपह्नुतं गिरेः शृङ्गं मानाद्रोषाद्विवेश ह ।।११७।।

तब विष्णुमाया से विशेषरूप से मोहित होने के कारण, वे उस छाया को देखकर मान और रोषवश, अपह्नुत पर्वत के शिखर पर चली गईं ।।११७।।

अथ तां मार्गमाणस्तु शङ्करो विरहाकुलः ।
चिरादपह्नुतां देवीमाससाद ततो हरः ।।११८।।

इसके पश्चात् शिव भी विरह से व्याकुल हो उन्हें खोजते हुए बहुत देर बाद अपह्नुतपर्वत पर स्थित देवी के पास पहुँचे ।।११८।।

तामासाद्य महादेवो विवर्णवदनां प्रियाम् ।
उवाच रोषणे हेतुं ज्ञातुमिच्छुर्यथातथम् ।।११९।।

उन विवर्णमुखी पत्नी को प्राप्त कर महादेव ने यथोचित रूप से उनके क्रोध का कारण जानने के लिये पूछा ।।११९।।

।। ईश्वर उवाच ।।

किमर्थस्त्वं वरारोहे मह्यं कुप्यसि कोपने ।
रोषहेतुमहं वक्तुं तवेच्छामीह वल्लभे ।।१२०।।

ईश्वर (शिव) बोले– हे प्रिये, हे श्रेष्ठजंघो वाली, हे क्रोधिता ! किसालिए तुम मुझसे रुष्ट हुई हो ? मैं इस समय, तुम्हारे क्रोध का कारण, तुम्हारे से ही सुनना चाहता हूँ ।।१२०।।

न तुभ्यमपराध्यामि वाचा वा मानसाथवा ।
कायेन वा कथं कोपं कर्तुमर्हसि भामिनि ।।१२१।।

हे भामिनी ! मैं ने मन से, वचन से या शरीर से किसी प्रकार का भी तुम्हारे प्रति कोई अपराध नहीं किया है तो भी तुम क्यों क्रोधित हो रही हो? ।।१२१।।

।। देव्युवाच ।।

समयेन मया पूर्वं तथा सम्प्रार्थितो भवान् ।
कथं तं परिहाय त्वमन्यां भार्यां समीहसे ।।१२२।।

देवी बोलीं– पहले मेरे द्वारा प्रार्थना किये जाने पर आपने वचन दिया था तो भी आप उसे छोड़कर अन्य स्त्री की आकांक्षा क्यों करते हैं ? ।।१२२।।

प्रत्यक्षेण मया दृष्टा तव हृद्यन्तरे हर ।
चार्वङ्गी वनिता काचित्तोयनिर्यातभस्मनि ।।१२३।।

हे हर ! आपके जल से मुक्त, भस्म के बीच, हृदय के भीतर, प्रत्यक्षरूप से मैंने, सुन्दर अंगोवाली किसी स्त्री को देखा है ।।१२३।।

भवान् सर्वज्ञानमयः सर्वगः परमेश्वरः ।
तोषितो मे तपोव्रातैर्न तुष्टस्त्वं महेश्वर ।।१२४।।
तस्मादहं तपस्तप्तुं शश्वद्गन्तुं समुत्सहे ।
अनुजानीहि मां शम्भो मा विलम्बं वृथा कृथाः ।।१२५।।

हे महेश्वर ! आप सबकुछ जाननेवाले तथा सर्वत्र गमन करने वाले परमेश्वर हैं। अपने तपों के समुच्चय द्वारा आपको सन्तुष्ट करने के मेरे प्रयास किये जाने पर भी आप सन्तुष्ट नहीं हुए हैं। इसलिए मैं स्थायी रूप से तपस्या करने हेतु जाना चाहती हूँ अतः आप मेरा पीछा करके व्यर्थ विलम्ब न कीजिये ।।१२४-१२५।।

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः स्मितविस्तारिताननः ।
शङ्करः पार्वतीं प्राह सन्दिग्धामिव भामिनीम् ।।१२६।।

उनके इस प्रकार के वचनों को सुनकर विस्तार से मुँह खोले शिव, किञ्चित मुस्कुराते हुए, उस सन्देह से ग्रस्त, अपनी पत्नी पार्वती से बोले ।।१२६।।

।। ईश्वर उवाच ।।

नाहमन्यां स्त्रियं वोढा नाहं समयभेदकः ।
तव मिथ्यामतिर्जाता मुग्धे मूढतयाधुना ।।१२७।।

ईश्वर बोले– हे मुग्धे ! मैंने न तो किसी अन्य स्त्री से विवाह किया है और न मैं अपने वचन को भंग करने वाला हूँ। इस समय मूखर्तावश तुम्हारी मिथ्या (भ्रमित) बुद्धि हो गयी है ।।१२७।।

त्वमिच्छसि यदि श्रोतुं तत्र हेतुं च पार्वति ।
तदहं कथये तत्त्वं मानं मानिनि मा कृथाः ।।१२८।।

हे पार्वती ! यदि तुम उसका कारण जानना चाहती हो तो सुनो । मैं तुमसे उसे कहता हूँ । हे मानिनी ! मान, मत करो ॥१२८॥

मम वक्षसि विस्तीर्णे दर्पणस्वच्छभासिनि ।

तवैव वपुषश्छायाबिम्बितालोकिता त्वया ॥१२९॥

दर्पण के समान स्वच्छ प्रतीत होने वाले मेरे विस्तृत वक्षस्थल में, भासित होने वाली, अपने ही शरीर की उभरी बिम्बात्मक छाया ही तुम्हारे द्वारा देखी गयी है ॥१२९॥

इदानीमेव बुध्यस्व त्वामृते नास्ति सा मयि ।

नात्र मानस्त्वया कार्यो हृदयान्तरसंस्थिते ॥१३०॥

हे मेरे हृदय के अन्तर्गत स्थित प्रिये ! अब से यह भलीभांति जान लो कि तुम्हारे अतिरिक्त मेरे में वह दूसरी कोई नहीं है। अत: अब तुम्हें मान नहीं करना चाहिये ॥१३०॥

॥ देव्युवाच ॥

मयि स्थितायां छायास्ति मामृते नास्ति सा पुनः ।

कथमेतन्मया ज्ञेयं तन्मे वद वृषध्वज ॥१३१॥

देवी बोली– हे वृषध्वजा वाले शिव ! तुम्हारे में जो छाया स्थित है, वह मेरे अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है । इसे मैं कैसे जानूँ, यह बताइये ॥१३१॥

॥ ईश्वर उवाच ॥

गवाक्षाभ्यन्तरे स्थित्वा तज्जालेन मनोहरे ।

पश्य तोयौघनिर्यातभूतिलेपमुरो मम ॥१३२॥

तथा त्वं मण्डितं देहं वीक्ष्यादर्शतले पुनः ।

मद्धृदासन्नमासाद्य तादृक्छायां विलोकय ॥१३३॥

ईश्वर बोले– हे सुन्दरी ! खिड़की के भीतर खड़ी हो उसकी जाली से तुम जल समूह से युक्त विभूति से लिप्त मेरे हृदय को देखो तदनन्तर अपने सुसज्जित शरीर को पुन: दर्पण के तल में देखो तथा मेरे हृदय के आसन को प्राप्त की हुई, उसी छाया को देखो ॥१३२-१३३॥

यथा द्रक्ष्यसि देहे स्वं तत् कुरु त्वं तथा मम ।

आलोकय निजां छायां त्वां विना नास्ति तत् पुनः ॥१३४॥

उस समय जैसा तुम मेरे शरीर में देखती हो वैसा ही करो । तुम अपनी छाया को देखो । तुम्हारे विना मेरे लिये कोई दूसरी नहीं हैं ॥१३४॥

त्वमेव ज्ञास्यसि च्छायां मद्वक्षसि मनोहरे ।
ज्ञात्वा विसृज्यमानं मां त्वं चाप्युपपत्स्यसि ॥१३५॥

हे मनोहरे ! तब तुम स्वयं ही मेरे वक्षस्थल में स्थित छाया को जान जाओगी । इसे जानकर तुम मान छोड़कर, मेरे में अपने विश्वास को प्राप्त कर लोगी ॥१३५॥

॥ और्व्व उवाच ॥

एवमुक्ता हरेणाथ पार्वतीन्दुकलाभृतः ।
तोयैर्निर्धाव्य हृदयं स्वां छायां पुनरैक्षत ॥१३६॥

और्व बोले–चन्द्रकलाधारी शिव के द्वारा ऐसा कहे जाने पर पार्वती ने जल के समान भासित, उनके हृदय में अपनी छाया को पुनः देखा ॥१३६॥

दृष्ट्वादर्शतले वक्त्रं निजं देहं च पार्वती ।
आलोकयामास तदा शश्वच्छंकरवक्षसि ॥१३७॥

तदनन्तर पार्वती ने अपने शरीर एवं मुख मण्डल को दर्पण में देखकर पुनः उनके वक्षस्थल में स्थित देखा ॥१३७॥

यथा सा कुरुते देवी कापट्यं नेत्रविभ्रमम् ।
तथा सा कुरुते च्छाया करकम्पादिकं तथा ॥१३८॥

उस समय वे देवी जैसी कपटलीला या नेत्र भ्रमण कर रही थीं, वैसे ही वह छाया भी कर-कम्पन आदि लीलाएँ कर रही थी ॥१३८॥

ततः पुनर्गवाक्षस्य जाले स्थित्वा हिमाद्रिजा ।
तथा व्यलोकयच्छम्भोर्हृदयं वीतभूतिकम् ॥१३९॥

तब फिर खिड़की के ओट से शिव के भस्मरहित हृदय में पार्वती ने अपनी छाया को देखा ॥१३९॥

तया तत्र तु पार्वत्या वृषभध्वजवक्षसि ।
न कापि दृष्टा वनिता दृष्टं जालस्य मण्डलम् ॥१४०॥

उस समय पार्वती द्वारा वृषभध्वजशिव के वक्षस्थल में कोई स्त्री नहीं देखी गई, केवल खिड़की की जाली ही दिखाई दी ॥१४०॥

एवं बहुविधैर्देवी तदोपायैस्तथेतरैः ।
निर्यातसंशया भूत्वा लज्जां प्राप वराङ्गना ।।१४१।।

तब इस प्रकार के और बहुत से अन्यउपायों द्वारा परीक्षाकर संशयरहित हो, श्रेष्ठ अंगोवाली, उन देवी ने लज्जा का अनुभव किया ।।१४१।।

तां लज्जितां गिरिसुतामीषद्भीतामधोमुखीम् ।
शम्भुरालिंग्य पाणिभ्यां मुखं चास्याश्चुचुम्ब च ।
स तामाह महादेवो देवीमाश्वासयन् मुहुः ।।१४२।।

उस समय, उन लज्जित, कुछ भयभीत, नीचे मुख की हुई पार्वती का शिव ने हाथों से आलिंगन किया और उनके मुँह को भी चूम लिया तथा उन्हें बार-बार आश्वस्त करते हुए महादेव ने उनसे कहा ।।१४२।।

।। महादेव उवाच ।।

मा व्रीडस्व महाभागे भ्रान्तिः कस्य न जायते ।।१४३।।
मानस्त्वयि वरस्त्रीभिः कार्यः प्रेमकरो यतः ।
त्वयापि विरलः कार्यो मानो देवि न सर्वदा ।।१४४।।

महादेव बोले–हे देवि ! लज्जा मत करो । भ्रम किसे नहीं होता ? तुम्हारी जैसी श्रेष्ठ स्त्रियों द्वारा मान किया जाना ही चाहिये क्योंकि वह प्रेम बढ़ाने वाला होता है । तुम्हारे द्वारा भी कभी-कभी मान किया जाना चाहिये । सदैव नहीं ।।१४३-१४४।।

।। और्व उवाच ।।

इत्युक्ता देवदेवेन मैनाकसहजाम्बिका ।
शङ्करं प्रणयात् प्राह सूनृतं मधुरं वचः ।।१४५।।

और्व बोले–देव-देव महादेव द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर, मैनाक जिसके भाई थे, ऐसी अम्बिकादेवी ने प्रेमपूर्वक, ये सत्य एवं मधुर वचन कहे ।।१४५।।

।। देव्युवाच ।।

यथा तवाहं सततं छायेवानुगता हर ।
भवेयं साहचर्येण तथा मां कर्तुमर्हसि ।।१४६।।

देवी बोली– हे हर ! जिस प्रकार मैं सदैव तुम्हारे द्वारा अनुगमन की गई हूँ वैसे ही हम दोनों का निरन्तर साहचर्य भी रहे, वैसा कुछ मेरे प्रति आप करें ।।१४६।।

सर्वगात्रेण संस्पर्शं नित्यालिङ्गनविभ्रमम् ।
अहमिच्छामि भवतस्तत्त्वं चेत् कर्तुमर्हसि ।।१४७।।

मैं अपने सम्पूर्ण शरीर से आपके सत्आलिंगन गत स्पर्शसुख का अनुभव करना चाहती हूँ। इस दृष्टि से आप यदि कुछ कर सकें तो करें ॥१४७॥

।। भगवानुवाच ।।

रोचते तन्मह्यमपि यस्त्वमिच्छसि भामिनि ।
तत्रोपायमहं वक्ष्ये यदि शक्नोषि तं कुरु ।।१४८।।

भगवान् (शिव) बोले- हे भामिनी ! जो तुम चाहती हो वही मुझे भी अच्छा लगता है। उसका उपाय मैं तुम्हें बताता हूँ, यदि कर सको तो उसे करो ॥१४८॥

अर्धं मम गृहाण त्वं शरीरस्य मनोहरे ।
अर्धं भवतु मे नारी अथैवार्धं पुमानिति ।।१४९।।

हे मन को हरने वाली ! मेरे आधे शरीर को तुम ग्रहण करो। जिससे मेरे शरीर का आधा भाग नारी का तथा आधा पुरुष का हो जाय ॥१४९॥

यदि त्वमपि शक्नोषि कर्तुं तदर्धमीदृशम् ।
तदाहं ते हरिष्यामि शरीरार्धं वरानने ।।१५०।।

हे श्रेष्ठ मुखों वाली ! यदि तुम इस प्रकार से आधा-आधा कर सको तो मैं भी तुम्हारे शरीर के आधे भाग को ग्रहण कर लूँगा ॥१५०॥

तवैवार्धं तथा नारी ह्यर्धं भवतु पूरुषः ।
विद्यते तत्र शक्तिर्मे त्वमनुज्ञातुमर्हसि ।।१५१।।

उस समय से ही तुम्हारा आधाभाग नारीरूप तथा आधा पुरुष रूप होवे। इसी रूप में मेरी शक्ति कार्य करे। ऐसी तुम आज्ञा दो ॥१५१॥

।। देव्युवाच ।।

तवैवाहं हरिष्यामि शरीरार्धं वृषध्वज ।
किं त्वहं त्वेकमिच्छामि तच्चेत्त्वं कर्तुमिच्छसि ।।१५२।।

देवी बोलीं- हे वृषध्वज ! मैं आपके ही शरीर के आधे भाग को ग्रहण करूँगी किन्तु इस विषय में मेरी एक इच्छा है, यदि आप उसे पूरी कर सकें तो करें ॥१५२॥

यदाहमर्धं भवतो भूत्वा तिष्ठामि तावता ।
त्यजाम्यहं यदा तेऽर्धं सम्पूर्णं स्यात्तदा द्वयम् ।।१५३।।

जब मैं आधेशरीर की होकर तुम्हारे आधेशरीर को ग्रहण कर शेष आधे शरीर को छोड़ दूँ, उस समय दोनों के ही शरीर पूर्ण हो जायें ।।१५३।।

इत्यर्धभागहरणं भवेद्यदि यथेप्सितम् ।
तवैवाहं तदा शम्भो शरीरार्धं हराम्यहम् ।।१५४।।

हे शम्भु ! यदि इस प्रकार से शरीरार्ध के ग्रहण का काम, इच्छित रूप से होवे तो मैं आपके शरीर के आधे भाग को ग्रहण करूँ ।।१५४।।

।। ईश्वर उवाच ।।

एवमस्तु भवेन्नित्यं यथार्धं हर्तुमर्हसि ।
शरीरस्यार्धहरणं भूयस्तव यथेप्सितम् ।।१५५।।

ईश्वर बोले– ऐसा ही नित्य हो जिससे तुम मेरा आधाशरीर ग्रहण करो तथा तुम्हारा आधाशरीर पुनः इच्छित रूप से पूर्ण हो जायेगा ।।१५५।।

।। अर्धनारीश्वर रूप की उत्पत्ति ।।

।। और्व्व उवाच ।।

अथ गौरी तदा पूर्वमनुभूतं तपःस्थितौ ।
योगनिद्रास्वरूपं तदात्मनोऽचिन्तयद्धिया ।।१५६।।

और्व बोले– तब गौरी ने जैसा तपस्या करते समय पहले अनुभव किया था अपने हृदय में योगनिद्रा के स्वरूप का वैसा ही चिन्तन किया ।।१५६।।

हरं प्रणम्य प्रथमं ब्रह्माणं च ततः परम् ।
ततस्त्रिजगतामीशं हरिं नारायणं प्रभुम् ।।१५७।।

इस क्रम में उन्होंने सर्वप्रथम शिव को, तब ब्रह्मा को तथा अन्त में त्रिलोकी के स्वामी नारायण, भगवान् विष्णु को प्रणाम किया ।।१५७।।

चिन्तयित्वा यदा तेषामेकतां सा जगन्मयी ।
आत्मानं योगनिद्रां च चिन्तयित्वा तपस्विनी ।।१५८।।

तब उन जगन्मयी, तपस्विनी, पार्वती ने उन तीनों की एकता का चिन्तन कर अपना एवं योग-निद्रा का चिन्तन किया ।।१५८।।

दक्षिणे स्वशरीरस्य भागार्धं शशभृद्धृतः ।
शरीरस्य तदा वाममतिप्रेम्णा निजं हरे ।।१५९।।

उसी समय अपने शरीर के दक्षिणी आधेभाग में शशिशेखर शिव के वामभाग को बड़े प्रेम से धारण कर लिया ॥१५९॥

हरोऽपि स्वशरीरार्धं गौरीकाये तदा स्वयम् ।
प्रेम्णा न्यवेशयत्तस्याश्चिकीर्षुः प्रियमद्भुतम् ॥१६०॥

तब शिव ने भी अपने शरीर के आधेभाग को स्वयं पार्वती के शरीर में उनकी इच्छानुसार प्रेमपूर्वक स्थापित किया। यह अत्यन्त प्रिय एवं अद्भुतकार्य हुआ ॥१६०॥

अथ स्थित्वा तदा भर्गः काल्या सह चिरं तदा ।
परित्यज्य शरीरार्धं पृथगेव बभौ रुचा ॥१६१॥

तपश्चात् शिव भी काली के साथ अपने अर्धशरीर का परित्याग करके भी स्वतंत्र रूप से अलग-अलग पूर्ण शरीर से चिरकाल तक प्रेमपूर्वक रहे ॥१६१॥

काली भूत्वा स्वर्णगौरी शरीरार्द्धं च शङ्करम् ।
प्राप्तमोदा तदात्मानं सन्तुष्टा च जगन्मयी ॥१६२॥

उस समय जगन्मयी काली भी स्वर्णवर्ण की गौराङ्गी हो गईं तथा शिव के अर्द्धाङ्ग को प्राप्तकर, अपने आनन्द को प्राप्त कर सन्तुष्ट हुईं ॥१६२॥

॥ शिव-शक्ति सौन्दर्य वर्णन ॥

एवं यदा शरीरार्धमादाय परमेश्वरी ।
रहस्ये तिष्ठति तदा राजतेऽतीव शोभना ॥१६३॥

इस प्रकार वे परमेश्वरी जब शिव के अर्ध भाग को ग्रहणकर एकान्त में स्थित होती थीं। उस समय वे, बहुत सुन्दर लगती थीं ॥१६३॥

अर्द्धं धम्मिल्लसंयुक्तं जटाजूटार्द्धयोजितम् ।
एकस्मिन् श्रवणे भोगी भागे जाम्बूनदार्चितम् ॥१६४॥
कुण्डलं श्रवणेऽन्यस्मिन् शीर्षे तस्या व्यराजत ।
अर्द्धं मृगाक्षि चान्यार्द्धं वृषभाक्षि व्यजायत ॥१६५॥

वे आधेभाग में मृग के समान सुन्दर नेत्रों वाली तो आधेभाग में बैल के समान विशाल नेत्रों वाली थीं। उस समय उनका आधाभाग समलंकृत जूड़े से तो आधाभाग जटा-जूट से सुशोभित था। उनके एक कान में सांप का कुण्डल था तो दूसरे भाग में जाम्बूनद (सोने) के बने उत्तमकुण्डल उनके सिर की शोभा बढ़ा रहे थे ॥१६४-१६५॥

अर्द्धं स्थूलनसं चारु तिलपुष्पनसं परम् ।
दीर्घश्मश्रु तथैवार्द्धमर्द्धं श्मश्रुविवर्जितम् ।।१६६।।

उनकी नाक का आधा भाग स्थूल था तो आधा भाग तिल के पुष्प की भाँति सुन्दर था। आधे मुखमण्डल में लम्बी दाढ़ी-मूँछ थी तो आधाभाग उससे रहित था ।।१६६।।

आरक्तचारुदशनं रक्तौष्ठमेकतस्तथा ।
अर्द्धं शुक्लविपुलं दीर्घाकृतिरदं परम् ।।१६७।।

एक ओर लालओठों सहित, लाल मसूड़ोंयुक्त, सुन्दरदाँत थे तो दूसरी ओर बड़े और लम्बे आकार वाले उत्तम श्वेतदाँत थे ।।१६७।।

अर्द्धनीलगलं चार्द्धमपरं हारसंयुतम् ।
अर्द्धं कंकणकेयूरयुक्तबाहु तथापरम् ।।१६८।।
नागकेयूरसंयुक्तं स्थूलबाहुनिरूर्मिकम् ।
अर्ध विलोलसुभुजं परिहस्तभुजं परम् ।।१६९।।

उनके गले का आधाभाग नीलेरंग का था तो दूसरा आधाभाग हार से सुशोभित था। पहले आधेभाग में कङ्कण और केयूर युक्त बाहु था तो दूसरे में बिना अंगूठी का नागनिर्मित बाजूबन्द से युक्त स्थूल बाहु था। एक भाग, चञ्चल सुन्दर भुजाओंवाला तो दूसरा हाथी की सूंड़ के समान पुष्ट भुजाओंवाला था ।।१६८-१६९।।

एकत्र सोर्मिकाशाखा करस्यान्यत्र तां विना ।
एकस्तनं तु हृदयं रोमावल्यर्धसंयुतम् ।।१७०।।

एक ओर हाथ की अंगुलियाँ अँगूठियों सहित थीं तो दूसरी ओर बिना अंगूठियों के एक ओर स्तनयुक्त हृदय था तो दूसरी ओर का आधाभाग रोमावली युक्त था ।।१७०।।

रम्भास्तम्भसमानोरू सुपार्ष्णि मृदुपादकम् ।
एकं तथापरं स्थूलं संहतोरुपदाम्बुजम् ।।१७१।।

एक ओर केले के खम्भे के समान जाँघ, सुन्दर एँड़ी, तथा कोमल पैरों से युक्त था तो दूसरा स्थूल और ठोस जांघ, एवं पदकमलों से युक्त था ।।१७१।।

एकं चारुमृदुस्थूलजघनं सुमनोहरम् ।
तथापरं दृढकटि संहतोर्द्धपदान्वयम् ।।१७२।।

एक भाग सुन्दर कोमल जघन (टखनों) से सुशोभित था तो दूसरा दृढ़कटि और ठोसपदान्वय से युक्त था ॥१६२॥

एकं वैयाघ्रचर्मौघयुक्तं भूतिविलेपनम् ।
अपरं मृदु कौशेयवसनं चन्दनोक्षितम् ॥१७३॥

एक व्याध्रचर्म-समूह तथा विभूति के लेप से सुशोभित था तो दूसरा कोमल, रेशमीवस्त्रों तथा चन्दन से शोभायमान था ॥१७३॥

एवमर्द्धं तथा जातं योषिल्लक्षणसंयुतम् ।
अपरं बलवद् भूरि सुगूढं पुरुषाकृति ॥१७४॥

इस प्रकार उनका आधाभाग स्त्रियों के लक्षण से युक्त हो गया था तो दूसरा अत्यधिक बलवान्, सुन्दरढंग से गूढ़पुरुषाकृति का था ॥१७४॥

एवमर्द्धं स्मररिपोर्जहार गिरिजा सती ।
हिताय सर्वजगतां कालिका कालिकोपमा ॥१७५॥

इस प्रकार कालीघटा के समान काली, सती, गिरिजा ने समस्त संसार के कल्याण के लिए कामदेव के शत्रु, शिव के आधेभाग को ग्रहण किया ॥१७५॥

तस्याः शरीरं राजेन्द्र हरतन्वर्द्धसंयुतम् ।
येनोपमेयं तत्रास्ति मार्गितं भुवनत्रये ॥१७६॥

हे राजेन्द्र ! शिव के अर्धशरीर से युक्त उनके शरीर की जो उपमा है उसकी खोज, तीनों लोकों में रहती है ॥१७६॥

सन्तानः पारिजातो वा एकान्तविशदस्तरुः ।
अमोघया यथा वल्ल्या तौ चापि ययतुर्नहि ॥१७७॥

सन्तान या पारिजात का एक मात्र विशाल वृक्ष, अमोधबल्ली से युक्त होकर भी, दोनों उसकी उपमा को प्राप्त नहीं कर सकते ॥१७७॥

बहुधा च पृथक् तेन तौ रेमाते नरेश्वर ।
अर्द्धनारीश्वरो भूत्वा स तु रेमे कदाचन ॥१७८॥

हे नरेश्वर ! अधिकांशतः वेदोनों अलग-अलग पूर्णकाय होकर रमण करते थे किन्तु कभी-कभी अर्धनारीश्वर रूप में भी रमण करते थे ॥१७८॥

इति यद्यपि भूतेशः स्वयं शक्नोति कालिकाम् ।
गौरीं कर्तुं तदा सर्वभूतकारणकारणः ॥१७९॥

इस प्रकार यद्यपि भूतनाथशिव जो सभी प्रणियों के कारण के भी कारण हैं, स्वयं काली को गौरी बनाने में समर्थ थे ॥१७९॥

तथापि तां गिरिसुतां संयोज्य विविधैः पुरा ।
तपस्ययोजयद् देवः क्रियोपायैरनेकशः ॥१८०॥
तपोनिर्धूतसर्वाङ्गीं पश्चाद् गौरीमथाकरोत् ।
अर्द्धं च प्रददौ तस्यै शरीरस्य महेश्वरः ॥१८१॥

तो भी उन पर्वतपुत्रीपार्वती को उन महादेव ने पहले अनेक प्रकार की तपस्या तथा क्रियोपचारों में लगाया, तब तपस्या के प्रभाव से पापरहित हुई उन सम्पूर्ण अंगोवाली को, गौरी बनाया एवं महेश्वर ने उन्हें अपने शरीर का आधाभाग प्रदान किया ॥१८०-१८१॥

नैवास्य तत्त्वं जानन्ति शक्राद्याः सकलाः सुराः ।
शरीरार्द्धप्रदानस्य तपसे योजनस्य च ॥१८२॥

इस तपस्या में लगाये जाने तथा शिव द्वारा शरीरार्धदान के रहस्य को इन्द्रादि समस्त देवता भी नहीं जानते ॥१८२॥

एतस्य तत्त्वं जानन्ति महात्मानो महाबलाः ।
नन्दी भृङ्गी महाकालो वेतालौ भैरवस्तथा ॥१८३॥
अङ्गभूता महेशस्य वीतभीतास्तपोधनाः ।
ये मानुषशरीरेण प्रापिरे तपसो बलात् ।
गणानामाधिपत्यं तु ते जानन्ति हरं परम् ॥१८४॥

इसके तत्व को नन्दी, भृङ्गी, महाकाल, वेताल तथा भैरव आदि महाबली, तपस्वी, निर्भय महात्मागण ही जानते हैं जो स्वयं महेश के अङ्गभूत ही हैं। जिन्होंने अपने तपस्या के श्रेष्ठ बल से मनुष्य शरीर से शिव के गणों का आधिपत्य प्राप्त कर लिया है ॥१८३-१८४॥

एवं सदा त्वया योज्याः सानुगा नृपसत्तम ।
वनिता सत्क्रियोपायैस्ततो भद्रमवाप्स्यसि ॥१८५॥

हे नृपसत्तम ! इसी प्रकार अपनी अनुगामिनी पत्नी को सत्कर्म में लगाना चाहिये, ऐसा करने से तुम कल्याण को प्राप्त करोगे ॥१८५॥

य इदं शृणुयान्नित्यमद्भुतं पुण्यदायकम् ।
शिवयोः प्रीतिकरणं शरीरार्द्धग्रहं तथा ।।१८६।।
गौरीत्वसाधनञ्चैव कालिकायाः शुभावहम् ।।१८७।।

जो इस अद्भुत, पुण्यदायक, शिव-शिवा के प्रीति कारक, शरीरार्ध के ग्रहण तथा कालिका के गौरीत्वसाधन के शुभदायकप्रसंग को नित्य सुनता है ।।१८६-८७।।

न तस्य विघ्ना जायन्ते स च पुण्यतमो मतः ।
दीर्घायुः स सुखी भूयात् पुत्रपौत्रसमन्वितः ।।१८८।।

उसके कार्यों में कोई विघ्न नहीं होता । वह पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ माना जाता है । वह दीर्घायु, सुखी तथा पुत्रपौत्र से युक्त होगा ।।१८८।।

सततं परिशृण्वानः शिवयोश्चरितं महत् ।
शिवलोकमवाप्नोति सुचिरं शिववल्लभः ।।१८९।।

।। इति श्रीकालिकापुराणेऽर्द्धनारीश्वरचरिते पञ्चचत्वारिंशोध्यायः ।।४५।।

शिव-शिवा के इस चरित्र को नित्य सुनने वाला, शिव का प्रिय होकर चिरकाल तक शिवलोक को प्राप्त करता है ।।१८९।।

।। श्रीकालिकापुराण का अर्धनारीश्वरचरित सम्बन्धी पैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।४५।।

कालिकापुराण का कल्याणीहिन्दीटीका युक्त कालिका-खण्ड सम्पूर्ण हुआ।।

